जातक
षष्ठ खण्ड
भदन्त आनन्द कौसल्यायन

जातक

[षष्ठ खण्ड]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

दो शब्द

अनेक अप्रत्याशित विघ्न-बाधाओं के बावजूद 'जातक' का यह छठा और अंतिम खंड भी प्रकाशित हो ही सका है। इन सभी खण्डों के अनुवाद-कार्य, पाण्डु-लिपि तैयार करने और प्रूफ देखने आदि में जितने सुहृद-मित्रों का सहयोग मिला उन सभी को हार्दिक धन्यवाद।

सुयोग की बात है कि जिस वर्ष 'जातक' अनुवाद-कार्य और उसका प्रकाशन एक प्रकार मे समाप्त हो रहा है वही वर्ष सम्यक्-संबुद्ध तथागत के परिनिर्वाण का पच्चीसवां शतक है। देश-विदेश की जनता तथा सरकारें जिस उत्साह के साथ इस वर्ष की वैशाख-पूर्णिमा के पुण्यपर्व को मनाने जा रही हैं उसी उत्साह की सम-वेत धारा को लेखक की यह जातक-रूपिणी जलांजलि भी समर्पित है।

अनुवादक और मुद्रक की भौगोलिक दूरी के कारण जहाँ-तहाँ कुछ अन्यथा मुद्रण भी हो ही गया है, जिसे विज्ञजन सुधार ही लेंगे।

'जातक' अनुवाद का यह कार्य बिना उसकी एक विस्तृत अनुक्रमणिका के अधूरा ही समझा जायगा। 'जातक' के पाठक शीघ्र ही उसे भी देख सकेंगे।

इस अवसर पर मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्राण राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, सम्मेलन के पिछले अनेक वर्षों के साहित्य-मंत्रियों, सहायक-मंत्री आदि के प्रति आभार प्रदर्शित करना अपना विशेष कर्तव्य समझता हूं, जिनके सतत सहयोग के बिना यह कार्य कभी पूरा हो ही नहीं सकता था।

'जातक' के सभी खण्डों को मुद्रित करने वाले प्रेसों, विशेषकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन मुद्रणालय का भी मैं कम आभारी नहीं हूँ।

धर्मोदय बिहार
कालिम्पोङ्ग
वैशाख पूर्णिमा
बुद्धवर्ष २५००

--आनन्द कौसल्यायन

विषय-सूची

कनिष्ठ के प्रति खराब कर दिया। ज्येष्ठ ने कनिष्ठ को बन्धनागार में डलवा दिया। कनिष्ठ की सत्य-क्रिया के प्रताप से जंजीरें टूट गईं और बन्धनागार के दरवाजे खुल गये। वह जाकर प्रत्यन्त-जनपद में रहने लगा।

बाद में वह अपने बहुत से अनुयाइयों को लेकर आया और भाई को कहला भेजा—"या तो राज्य दो या युद्ध करो।"

राजा युद्ध में मारा गया। गर्भिणी देवी को शक्र ने चम्पा-नगर पहुंचाया। दिशा-प्रसिद्ध आचार्य ने उसे 'बहन' बना घर में रखा। देवी ने 'महाजनक' को जन्म दिया जो विधवा-पुत्र कहलाने लगा।

बड़े होने पर उसने 'माँ' के धन में से आधा धन लिया और अधिक कमाने के लिये नौका पर चढ़ स्वर्ण-भूमि गया। रास्ते में नौका टूट गई। महाजनक तैरने लगा। सप्ताह भर तैरता रहा। मणि-मेखला देवी ने उसकी परीक्षा ली और उसे अत्यन्त वीर्य्यवान पा अपने बल से 'मिथिला नगर' पहुंचा दिया।

पोलजनक को कोई पुत्र नही था। उसके मरने पर उसके उत्तराधिकारी का प्रश्न सामने आया। बोधिसत्व राजा बना।

आगे चलकर महाजनक के मन में वैराग्य पैदा हो गया। वह सोचने लगा। वह समय कब आयेगा—"जब मैं मिथिला-नगरी को छोड़ हिमालय में प्रवेश कर प्रव्रज्या ग्रहण करूंगा।"

वह चुपके से प्रव्रजित-वेष में राजमहल से निकल पड़ा। उसे रोकने के सब प्रयास विफल हुए।

महाजनक वैराग्य की मूर्ति था।]

५४०. साम जातक ७८ से १०८

[सेठ-पुत्र प्रव्रजित हो गया। उसके माता-पिता दरिद्र हो गये। वह 'भिक्षु' रहता हुआ भी माता-पिता की सेवा करने लगा।

पिलीयक्ख नरेश ने माता-पिता के लिये पानी भरने आये

'साम' को तीर से बींध दिया। माता-पिता की सत्य-क्रियाओं ने 'साम' को विषमुक्त किया।]

ने नाग-कुल और राज-कुल में भेद पैदा कर नागों द्वारा राज-कुल को नष्ट कराना चाहा। राज-कुल को मजबूर होकर नाग-नरेश धृतराष्ट्र को राज्य-कन्या सौंपनी पड़ी।

राज-कन्या ने नाग-भवन में रहते समय चार पुत्रों को जन्म दिया। उनमें से एक भूरि-दत्त ने देव-कुल में जन्म ग्रहण करने की इच्छा से उपोसथ-व्रत करना आरम्भ किया। एक ब्राह्मण द्वारा उपोसथ-व्रत के पालन में बाधा उपस्थित होने की संभावना देख वह पुत्र सहित उस ब्राह्मण को भी नाग-भवन ले गया। कुछ समय नाग-भावन रह पिता-पुत्र फिर मनुष्य-लोक लौट आये। ब्राह्मण पहले की तरह ही मृगया द्वारा जीविका चलाने लगा।

एक दूसरे ब्राह्मण को भूरिदत्त की सेविकाओं से मणि प्राप्त हो गई थी। इस ब्राह्मण ने उससे वह मणि ठगने का प्रयास किया। अन्य उपाय न देख उसने भूरि-दत्त के साथ मित्र-द्रोह करके उस ब्राह्मण से वह मणि प्राप्त की। आल-म्बायन का भूरि-दत्त को पकड़ना। सुदर्शन का उसे मुक्त कराना। यज्ञ-वेद तथा ब्राह्मणों की मिथ्या-प्रशंसा तथा इस मिथ्या-दृष्टि का जोरदार खण्डन।]

[विदेह-नरेश ने अमात्यों से परामर्श किया कि चातुर्मासिक कुमुदिनी का उत्सव किस प्रकार मनाया जाय। तै हुआ कि अर्थ-धर्म के जानकार श्रमण-ब्राह्मणों की संगति की जाय। राजा सर्वप्रथम आजीवक के पास गया। काश्यप आजीवक की बातें सुन राजा एक दम योग-वादी बन गया।

उसकी रुजा नाम की कन्या उससे मिलने गई तो राजा ने उसकी दान-शीलता का उपहास किया। रुजा राज-कन्या ने राजा को नाना प्रकार से धर्मोपदेश दिया।

उस समय बोधिसत्व नारद नामक महाब्रह्मा थे। उन्होंने प्रव्रजित वेष में आकर राजा को मिथ्या-दृष्टि से मुक्त किया।]

[कुरु राष्ट्र में इन्द्रप्रस्थ नगर में धनञ्जय नामक कोरव्य राजा राज करता था। उसका विधुर-पण्डित नाम का मेधावी धर्म अर्थ-धर्मानुशासक था। उसने शक्र, गरुड़, नागराज तथा धनञ्जय-राज की शंकाओं का समाधान किया।

नागराज की विमला नामक भार्य्या ने विधुर-पण्डित का उपदेश सुनना चाहा। पुण्णक यक्ष ने विधुर-पण्डित को नाग-भवन ले जाने का प्रयास किया। अन्य उपाय न देख उसने कोरव्य-नरेश को जुए में जीत लिया।

नाग-भवन जाने से पहले विधुर-पण्डित ने नाना प्रकार के नीति के उपदेश दिये।

नाग-भवन में विधुर-पण्डित के उपदेश।]

[मिथिला के विदेह नाम के राजा के चार अर्थ धर्मानुशासक अमात्य थे—सेनक, पुक्कुस, काविन्द तथा देविन्द।

उधर यवमज्झक गांव में श्री वर्धन नामक सेठ की सुमना नामक देवी ने एक पुत्र को जन्म दिया जो महोषध-पण्डित कहलाया।

राजा को उसकी बुद्धि के चमत्कारों की बात सुनने को मिलती थी, तो वह महोषध-पण्डित को अपने राज-दरबार में बुलाना चाहता था। चारों पण्डित ईर्षा के वशीभूत हो चिर काल तक इसमें बाधक बने रहे।

उन्होंने राजा से कह कर तरह तरह से 'महोषध-पण्डित' की परीक्षा लिवाई। अन्त में राजा ने महोषध-पण्डित को अपने यहां बुलवाया। बोधिसत्व के प्रज्ञा-बल के कारण राजा उसके प्रति उत्तरोत्तर निष्ठावान होता गया।

राजा के अमात्यों ने महोषध-पण्डित से लक्ष्मी-पति श्रेष्ठ है अथवा प्रज्ञावान श्रेष्ठ है, प्रश्न पुछवाकर उसे हतप्रभ करना चाहा। महोषध पण्डित के समाधान से राजा उसके प्रति और भी निष्ठावान हो गया।

उद्म्बरादेवी ने अपने 'छोटे भाई' महोषध-पण्डित का अमरादेवी से विवाह कराया।

चारों पण्डितों ने महोषध-पण्डित को चोर बनाकर बदनाम करना चाहा। किन्तु उनकी पोल खुल गई।

छत्र में रहने वाली देवी ने जो प्रश्न पूछे उसका उत्तर भी सेनक आदि किसी दूसरे पण्डित से नहीं बना।

चारों पण्डितों ने षड़यन्त्र करके महोषध-पण्डित को राजा के सामने राज-बैरी बनाकर दिखाना चाहा। वे असफल रहे। महोषध-पण्डित ने अपने अहित चिन्तकों के प्रति भी उदारता का व्यवहार किया।

अब राजा ने महोषध-पण्डित को अपना अर्थ-धर्मानुशासक अमात्य बना लिया।

इसके बाद कम्पिल राष्ट्र के चूळनी-ब्रह्मदत्त राजा के केवह नाम के ब्राह्मण-अमात्य और महोषध पण्डित के राजनीतिक दाँव-पेंच आरम्भ होता है। छल-कपट, गुप्तचर-लीला, युद्ध, सन्धि सभी कुछ है।

अन्त में महोषध-पण्डित ही श्रीवान् होता है।]

५४७. महावेस्सन्तर जातक ५१८ से ६५६

[सिवि राष्ट्र के जेतुत्तर नगर में राज्य करते समय सिवि-नरेश को सञ्जय नाम के पुत्र का लाभ हुआ। सञ्जय और मद्र-राज्य कन्या फुसति 'वेस्सन्तर' कुमार के माता-पिता हुए।

वेस्सन्तर बचपन से ही दान-शील था। उत्तरोत्तर उसकी दान-चेतना बढ़ती ही गई। अन्त में उसने कलिङ्ग राष्ट्र से आगत ब्राह्मणों को मंगल-काशी तक का दान दे दिया। सिवि जनपदवासी क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने राजा को मजबूर किया कि वह उसे राज्य से निकाल दे। वेस्सन्तर अपने दोनों पुत्रों तथा उनकी माता को ले जंगल में जाकर रहने लगा।

एक ब्राह्मण उस जंगल में से भी उन दोनों बच्चों को 'मांग' लाया।

अंतमें सिवियोंके राष्ट्रवर्धन वेस्संतर ने ही राज्य ग्रहण किया।]

५३८. मूगपक्ख जातक

'मा पण्डितियं' यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय महानैष्क्रम्य के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन भिक्षु धर्म सभा मे एकत्रित हो भगवान के महाभिनिष्क्रमण की प्रशंसा करने लगे। भगवान् ने आकर पूछा, "भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर 'भिक्षुओ, इसमें क्या आश्चर्य है, यदि मैंने इस समय जब मैं पारमितायें पूरी कर चुका हूँ अभिनिष्क्रमण किया है। मैंने ज्ञान के अपरिपक्व रहने पर, पारमियों की पूर्ति के समय भी राज्य छोड़कर अभिनिष्क्रमण किया हो' कह, उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में काशीराजा धर्मानुसार राज्य करता था। उसकी सोलह हजार स्त्रियाँ थी। उनमें से किसी एक को भी लड़का अथवा लड़की नहीं हुई। नागरिकों ने 'हमारे राजा के वंश का रक्षक पुत्र नहीं है' सोच, कुस जातक[1] मे आये वर्णन के अनुसार इकट्ठे हो, राजा से निवेदन किया कि पुत्र के लिये प्रार्थना करे। राजा ने सोलह हजार स्त्रियों को आज्ञा दी कि पुत्रों की प्रार्थना करो। उन्होंने चन्द्रादि की सेवा में रह प्रार्थना की, किन्तु उन्हें पुत्र लाभ नहीं ही हुआ। उसकी पटरानी मद्दराज कन्या, नाम चन्द्रादेवी सदाचारिणी थी। उसे भी कहा गया, "पुत्र की प्रार्थना कर।" उसने पूर्णिमा के दिन उपोसथ-व्रत ग्रहण किया, और फिर छोटी चारपाई पर लेट अपने शील का विचार कर यह सत्य-क्रिया की कि यदि मैं अखण्डित-शील हूँ तो इस सत्य के प्रताप से मुझे एक पुत्र मिले। उसके शील तेज से शक्र भवन गरम हो उठा।

१. कुस जातक (५३१)

शक्र को विचार करने पर यह मालूम हुआ कि चन्द्रादेवी पुत्र की कामना करती है। उसने सोचा, 'इसे पुत्र दूंगा।' फिर उसके योग्य पुत्र का विचार करते हुए बोधिसत्व को देखा। उस समय बोधिसत्व बीस वर्ष वाराणसी में राज्य कर चुकने के बाद, वहाँ से च्युत होकर उस्सद-नरक में अस्सी हजार वर्ष पकता रहा था। वहाँ से वह त्र्योत्रिंश-भवन में पैदा हुआ था : वहाँ आयु भर रह, वहाँ से च्युत होकर ऊपर के देवलोक में जाना चाहता था। शक्र ने उसके पास पहुँच, कहा—"मित्र! यदि तू मनुष्य-लोक में जन्म ग्रहण करेगा तो पारमिताओं की भी पूर्ति होगी और जनता की भी उन्नति होगी। यह काशी-नरेश की चन्द्रा नामकी पटरानी पुत्र की कामना करती है। तू उसकी कोख से जन्म ग्रहण कर।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और पाँच सौ देवपुत्रों के साथ च्युत होकर, स्वयं पटरानी की कोख में जन्म ग्रहण किया। अन्य देवपुत्रों ने अमात्यों की स्त्रियों की कोख में जन्म ग्रहण किये। देवी की कोख ऐसी हो गई, मानों उसमें वज्र भरा हो। उसने 'गर्भ धारण हुआ' जान राजा को कहा। राजा ने 'गर्भ की आवश्यकतायें' दिलवाईं। गर्भ पूरा होने पर पटरानी ने धान्य-पुण्य लक्षणों वाले पुत्र को जन्म दिया। उसी दिन अमात्यों के घरों में पाँच सौ कुमारों ने जन्म ग्रहण किया। उस समय राजा अमात्यों के बीच (राज प्रासाद के) महान् तल पर बैठा था। उसे सूचना दी गई, "देव! आपको पुत्र हुआ है।" यह शब्द सुनते ही उसके मन में पुत्र-प्रेम उमड़ पड़ा और वह चमड़ी आदि को छेदकर हड्डी-मज्जा तक जा पहुंचा। अन्दर प्रीति भर गई। हृदय शीतल हो गया। उसने अमात्यों से पूछा, "मेरे पुत्रके पैदा होने पर क्या तुम्हें प्रसन्नता हुई है?" "देव! क्या कहते हैं! हम पहले अनाथ थे। अब सनाथ हो गये। हमें स्वामी मिल गया।"

राजा ने महासेना-रक्षक को आज्ञा दी, "मेरे पुत्र को साथियों की अपेक्षा होगी। देखो अमात्य-कुलों में आज कितने बच्चे पैदा हुए हैं?" उसने पाँच सौ बच्चे देख, आकर राजा को सूचना दी। राजा ने पाँच सौ कुमारों के लिये पाँच सौ ही अलंकारादि भेज,पाँच सौ ही दाइयाँ भेजीं। बोधिसत्व के लिये अति-दीर्घ आदि दोषों से रहित, जिनके स्तन लम्बे नहीं थे और जिनका दूध मीठा था, ऐसी चौसठ दाइयों की व्यवस्था की। बहुत लम्बी (स्त्री) के पास बैठकर स्तन पान करने से बच्चे की

गरदन बहुत लम्बी हो जाती है। बहुत छोटी के पास बैठकर पीने से कन्धे की हड्डी दब जाती है। बहुत दुबली के पास बैठकर पीनेवालों की जांघ दुखने लगती है। अति स्थूल के पास बैठकर पीने से पैर सुन्न (?) हो जाते हैं। अति काली का शरीर अति शीतल होता है। अति श्वेत का बहुत गरम। लम्बी-स्तन वालियों का दूध पीने से नाक का अगला हिस्सा चिपटा हो जाता है। किसी का दूध खट्टा होता है, किसी का कड़ुआ आदि। इसीलिये इन सभी दोषों को बचा, अति-दीर्घ आदि दोषों से रहित, जिनके स्तन लम्बे नहीं थे और जिनका दूध मधुर था, ऐसी चौसठ दाइयों की व्यवस्था कर बहुत सत्कार किया और चन्द्रा देवी को भी 'वर' दिया। उसने 'लिया' करके रख दिया। नाम-ग्रहण के दिन लक्षण जाननेवाले महा ब्राह्मणों का बहुत सत्कार कर उनसे पूछा गया—"कुमार को कोई विघ्न-बाधा तो नहीं है?" उन्होंने उसके लक्षणों को देख उत्तर दिया, "महाराज! यह कुमार धान्य तथा पुण्य लक्षणोंवाला है। एक द्वीप की तो बात ही क्या, यह चारों महाद्वीपों का राज्य करने में समर्थ है। इसे कोई खतरा नहीं दिखाई देता।" राजा ने उनपर प्रसन्न हो कुमार का नाम रखते हुए, क्योंकि कुमार के पैदा होने के दिन सारे अस्सी राष्ट्रों में देव वर्षा और क्योंकि वह राजा और अमात्यों के हृदयों को स्निग्ध करता हुआ पैदा हुआ, इसलिये उसका नाम तेमिय-कुमार ही रख दिया गया।

जब वह एक महीने का हो गया तो उसे सजाकर राजा के पास लाये। प्रिय पुत्र को देख राजा ने उसका आलिंगन कर उसे गोद में बिठाया और (स्वयं) आनन्द मनाता हुआ बैठा रहा। उस समय चार चोर लाये गये। राजाने उनमें से एक के लिये आज्ञा की कि इसे हजार काँटेदार कोड़े लगाये जाँय। दूसरे को बेड़ियाँ पहनाकर जेल-खाने में डाल देने की। तीसरे को शक्ति-प्रहार की। चौथे को सूली पर चढ़ाने की। बोधिसत्व ने पिता की आज्ञा सुनी तो भयभीत होकर सोचने लगा, "ओह! मेरा पिता राज्य के लिये भयानक नरक-गामी कर्म करता है।" आगे चलकर एक दिन उसे श्वेत-छत्र के नीचे अलंकृत शय्या पर लिटाया गया। थोड़ी देर सोते रहने के बाद, जागने पर, आँख खुलते ही श्वेत-छत्र को देखते हुए उसने बड़े ऐश्वर्य को देखा। वह पहले से ही भयभीत था। और भी अधिक भयभीत हो गया। वह विचार करने लगा कि मैं इस राज-गृह में कहाँ से आया हूँ? पूर्व-जन्म का ज्ञान होने

से उसे मालूम हुआ कि देव-लोक से। इससे आगे विचार करने पर उसे पता लगा कि वह नरक में पकता रहा है। उससे आगे सोचने पर उसने अपने आपको उसी नगर में राज-गृह में देखा। यह सोचकर उसके मन में बड़ा ही भय पैदा हुआ कि "मैं बीस वर्ष राज्य करके अस्सी हजार वर्ष तक उस्सद-नरक में जलता रहा। अब फिर इस चोर-गृह में पैदा हो गया हूँ। मेरे पिता ने भी कल उन चोरों के लाये जाने पर वैसी कठोर, नरक ले जानेवाली बात ही कही। यदि मैं राज्य करूंगा, तो फिर नरक में जन्म ग्रहण कर बड़ा दुःख भोगूँगा। उसकी कंचन जैसी देह हाथ से मली गई की तरह म्लान तथा दुर्वर्ण हो गई। वह पड़ा-पड़ा सोचने लगा कि इस चोर-गृह से कैसे मुक्त होऊ ?"

तब किसी पूर्व-जन्म में उसकी मां रही, छत्र में रहने वाली देवी ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा, "तात तेमिय ! डर मत। यदि यहाँ से मुक्त होना चाहता है तो लूला न होते हुए भी लूले की तरह हो जा, बहरा न होते हुए भी बहरे की तरह हो जा, गूंगा न होते हुए भी गूंगे की तरह हो जा। इन तीनों अंगों से युक्त बनकर अपना पाण्डित्य मत प्रकट कर।" यह कह उसने गाथा कही—

मा पण्डितियं विभावय
बालमतो भव सब्बपाणिनं
सब्बो तं जनो ओचिनायतु
एवं तव अत्थो भविस्सति ॥१॥

[अपना पाण्डित्य मत प्रकट कर। सभी के लिये 'मूर्ख' बन जा। सभी तेरी अवज्ञा करने लग जांय। तभी तेरा उद्देश्य पूरा होगा ॥१॥]

उसने उसकी बात सुनी तो आश्वस्त हुआ और बोला—

करोमि ते तं वचनं यं मं भणसि देवते,
अत्थकामासि मे अम्म हितकामासि देवते ॥२॥

[हे देवी ! मुझे जो कहा है, मैं तेरा कहना करूंगा। हे अम्म ! तू मेरा अर्थ चाहने वाली है, तू मेरा हित चाहनेवाली है ॥२॥]

यह गाथा कह उसने वे तीन संकल्प किये। राजा ने कुमार का दिल लगाये रखने के लिये उन पाँच सौ कुमारों को उसके पास ही रखवा दिया। वे बच्चे स्तन के लिये

रोते थे। बोधिसत्व नहीं रोते थे—नरक के भय के सिर पर रहते सूखकर मर जाना ही श्रेयस्कर है। दाइयों ने यह समाचार चन्द्रा देवी को कहा। उसने राजा को कहा। राजा ने निमित्तज्ञ ब्राह्मणों को बुलाकर पूछा। ब्राह्मण बोले, "देव ! कुमार को स्वाभाविक समय के बीतने पर स्तन पान कराना चाहिये। ऐसा होने पर वह रोता हुआ स्तन को दृढ़ता पूर्वक पकड़ स्वयं ही पियेगा।" उसके बाद से वे स्वाभाविक समय बिताकर स्तन पान कराने लगीं। देतीं तो कभी एक 'वार' लंघा देतीं और कभी सारा दिन भी न देतीं। वह नरक-भय से भयभीत होने के कारण सूखता जाता हुआ स्तन के लिये न रोता। उसके न रोने पर भी 'पुत्र भूखा है' सोच माता अथवा दाइयाँ दूध पिला देतीं। शेष बच्चों को स्तन न मिलते ही रो पड़ते। वह न रोता, न सोता, न हाथ-पाँव सिकोड़ता और न आवाज सुनता। तब उसकी दाइयों ने सोचा, "लूलों के हाथ-पाँव ऐसे नहीं होते। गूंगों के जबड़ों का अन्त ऐसा नहीं होता। बहरों के कान ऐसे नही होते। इसमें कोई बात होगी। हम इसकी परीक्षा करेंगी।" उन्होंने दूध से परीक्षा करने के इरादे से सारा दिन दूध न दिया। वह सूखता हुआ भी दूध नहीं ही मांगता था। तब उसकी माता 'मेरा पुत्र भूखा है, इसे दूध दो' कह दूध दिला देती। इस प्रकार बीच-बीच मे दूध देकर वर्ष भर तक परीक्षा करते रहने के बावजूद वे कुछ पता न पा सकीं।

तब 'बच्चों को पूए तथा खाजा आदि बहुत अच्छे लगते है। इनसे परीक्षा करेंगी' सोच पाँच सौ कुमारों को उसके पास बिठाकर नाना प्रकार की मिठाइयाँ ला, थोड़ी दूरी पर रख, 'यथारुचि मिठाइयाँ लो' कह छिपकर खड़ी हुई। शेष बच्चे परस्पर झगड़ते हुए, एक दूसरे के साथ मार-पीट करते हुए, उसे लेकर खाने लगे। बोधिसत्व तेमिय सोचता कि 'पूवे और खाजे की इच्छा का मतलब है नरक की इच्छा करना'। इसलिये नरक के डर के मारे वह मिठाई की ओर देखता तक नहीं था। इस प्रकार वर्ष भर पूओं और मिठाई से परीक्षा लेते रहने पर भी कुछ पता न लगा।

तब यह समझकर कि बच्चों को फलाफल बहुत अच्छे लगते हैं, नाना प्रकार के फलाफल लाकर परीक्षा की गई। शेष बच्चे परस्पर झगड़कर खाने लगे। उसने उधर देखा तक नहीं। इस प्रकार फलाफलों से भी वर्ष भर परीक्षा की गई। तब 'बच्चों को खिलौने प्रिय होते है' सोच स्वर्ण आदि के हाथी आदि थोड़ी दूर पर रखे।

शेष बच्चों ने लूटमार शुरू कर दी। बोधिसत्व ने देखा तक नहीं। इस प्रकार खिलौनों से भी वर्ष भर परीक्षा ली गई। तब सोचा गया कि चार वर्ष के बच्चों को भोजन प्रिय होता है, उससे परीक्षा लेंगे। नाना प्रकार के भोजन लाये गये। शेष बच्चे कौर-कौर करके खाने लगे। किन्तु बोधिसत्व ने अपने आपको सम्बोधन कर, 'हे तेमिय ! ऐसे जन्मों की गिनती नहीं है, जब तुझे ये सब भोजन मिले हैं' कहा और नरक के डर के मारे उधर नहीं देखा। तब उसकी मां ने स्नेह के वशीभूत हो अपने हाथ से खिलाया। तब यह सोचा गया कि 'पाँच वर्ष के बच्चे आग से डरते हैं। हम इस तरह इसकी परीक्षा लेंगे।' उन्होंने अनेक द्वारोंवाला एक बड़ा घर बनाया। उसे ताड़-पत्रों से ढका। फिर उसे सभी बच्चों के बीच उस घर में बिठाकर आग लगा दी गई। सभी बच्चे चिल्लाते हुए भाग खड़े हुए। बोधसत्व यह समझ कि नरक की आग में पकने से यही अच्छा है ध्यानावस्थित की तरह बैठा रहा। आग पास आने लगी तो उसे उठाकर ले गये। तब यह सोच कि छः वर्ष की आयु के बच्चे मस्त हाथी से डरते हैं, हाथी को अच्छी तरह सिखा, बोधिसत्व को शेष बच्चों के बीच में बिठा हाथी को छोड़ा। वह क्रौंच-नाद करता हुआ सूंड से भूमि को मर्दित करता हुआ, डराता हुआ आया। शेष बच्चे मृत्यु-भय के मारे इधर-उधर भागे। बोधिसत्व नरक के भय के मारे वहीं बैठा रहा। सुशिक्षित हाथी ने उसे लेकर इधर-उधर किया और बिना कष्ट दिये ही चला गया। सात वर्ष की आयु होने पर उसे बच्चों के बीच बिठा ऐसे साँपों को छोड़ा जिनके दांत निकाल दिये गये थे और मुंह बांध दिये गये थे। बाकी सभी बच्चे चिल्लाकर भाग खड़े हुए। बोधिसत्व नरक-भय का ध्यानकर उसकी अपेक्षा नाश को प्राप्त होने को ही श्रेष्ठतर मान निश्चल ही बैठा रहा। साँप उसके सारे शरीर से लिपट गये और सिर पर फण कर लिया। तब भी वह निश्चल ही बैठा रहा। इस प्रकार बीच-बीच में परीक्षा लेने से भी कुछ पता न लगा।

तब यह सोच कि बच्चों को तमाशा देखना अच्छा लगता है, उसे राजांगन में पाँच सौ बच्चों के बीच बिठाया और वहीं नृत्य कराया। शेष बच्चे तमाशा देख 'साधु' कह जोर-जोर से हँसने लगे। बोधिसत्व इस बात को याद करके कि नरक में पैदा होने पर कुछ भी हंसना तथा प्रसन्न होना नहीं है, नरक-भय का ध्यान कर

निश्चल ही बैठा रहा। देखा (तक) नहीं। इस प्रकार बीच-बीच में परीक्षा लेने पर भी कुछ पता नहीं लगा।

तब 'खड्ग से परीक्षा लेंगे' सोच बच्चों के साथ राजांगन में बिठाया। जिस समय बच्चे खेल रहे थे, एक आदमी स्फटिक-वर्ण तलवार घुमाता हुआ दौड़कर आया और बोला, "काशी-राज का एक मनहूस लड़का है। वह कहाँ है? उसका सिर काटेंगे।" उसे देख बाकी सभी बच्चे भय के मारे चिल्लाते हुए भाग गये। बोधिसत्व नरक के भय की चिन्ता करता हुआ अ-बूझ की तरह बैठा रहा। उस आदमी ने सिर से तलवार को छूकर 'तेरा सिर काटूंगा' कह डराना चाहा। जब वह इस प्रकार भी नहीं डरा सका, तो वह चला गया। इस प्रकार बीच-बीच में परीक्षा लेने पर भी कुछ पता नहीं लगा।

दस वर्ष की आयु होने पर उसके बहरेपन की परीक्षा करने की सोची गई। उसकी शैय्या को कनात से घेर दिया गया। चारों ओर छेद कर दिये गये और उससे छिपाकर उसकी शैय्या के नीचे शंख बजानेवाले छिपा दिये गये। वे सब एक साथ जोर से शंख बजाते। बड़ी आवाज होती। आमात्यों ने चारों ओर खड़े होकर छिद्रों में से झांका। उन्हें एक दिन भी न उसकी घबराहट दिखाई दी, न हाथ-पैर हिलाना और न हिलना-डोलना। इस प्रकार वर्ष बीत जाने पर अगले वर्ष उसी प्रकार ढोल से परीक्षा की गई। तब भी कुछ न पता लगा।

तब दीपक से परीक्षा करने की सोची गई। यह पता लगाना चाहा कि रात को अन्धेरे में हाथ पैर हिलाता है वा नही? घड़ों में दीपक जलाये गये। शेष सभी दीपक बुझा दिये गये। फिर उसे थोड़ी देर अन्धेरे में बिठा, यकायक घड़ों में से दीपक बाहर किये गये। एक बार ही प्रकाश करके उसके उठने-बैठने का निरीक्षण किया गया। इस प्रकार वर्ष भर तक निरीक्षण करने पर भी उसके शरीर का हिलना तक नहीं दिखाई दिया। तब शीरे से परीक्षा करने की सोची गई। सारे शरीर पर शीरा मल, बहुत मक्खियों की जगह पर लिटा, मक्खियाँ उड़ाई गईं। वह उसे चारों ओर से घेर सूई से बींधने की तरह खाने लगीं। वह निरोध-ध्यान में बैठे हुए की तरह निश्चल ही बैठा रहा। इस प्रकार वर्ष भर परीक्षा करते रहने पर भी कुछ पता नहीं लगा।

चौदह वर्ष की आयु होने पर सोचा गया कि अब यह बड़ा हो गया। अब इसे सफाई अच्छी लगती होगी और गन्दगी बुरी। इसलिये अब गन्दगी से परीक्षा लेंगे। वे उसे न नहलाते और न शौच के हाथ धुलाते। वह पेशाब-पाखाना करके वहीं पड़ा रहता। दुर्गन्ध के मारे अन्दरका[१] बाहर आने जैसा होता। मक्खियाँ खातीं। उसे घेरकर कहा जाता, "तेमिय! अब तू बड़ा हो गया। कौन हमेशा तेरी टहल करेगा? क्या तुझे लज्जा नहीं आती? क्यों पड़ा है? उठकर शरीर को ठीक कर।" इस प्रकार उसे गाली दी जाती, उसका मजाक उड़ाया जाता। उस प्रकार के गूंह ढेर में पड़ा हुआ भी 'सौ योजन दूर बैठे लोगों के हृदय को भी घृणा से भर देनेवाले गूंह के नरक की दुर्गन्ध की याद कर' वह उपेक्षावान् ही रहा। बीच-बीच में वर्ष भर तक परीक्षा लेते रहने पर भी कुछ पता नहीं लगा सके। उसकी चारपाई के नीचे आग के ठीकरे रखे गये। हो सकता है कि गरमी के मारे वेदना न सह सकने के कारण चंचलता प्रकट करे। शरीर में छाले से पड़ गये। बोधिसत्व 'अवीचि नरक की आग सौ योजन तक फैलती है। महान् दुःख है। यह दुःख उससे सौ गुणा हज़ार गुणा अच्छा है' सोच शान्त ही रहा।

उसके माता-पिता का तो मानों हृदय टूट गया। उन्होंने आदमियों को हटा दिया और उसे अग्नि-ताप से दूर ले जाकर निवेदन किया, "तात! तेमिय कुमार! हम जानते हैं कि तू लूला आदि नहीं है। उनके पैर, मुंह, कान, इस तरह के नहीं होते। तू हमारी प्रार्थना से मिला पुत्र है। हमारा विनाश मत कर। हमें जम्बुद्वीप भर के राजाओं की निन्दा से बचा।" उनके इस प्रकार प्रार्थना करने पर भी वह अन-सुने ही की तरह चुप-चाप पड़ा रहा। उसके माता-पिता भी रोते-पीटते लौट गये। इसके बाद कभी अकेला पिता आकर गिड़गिड़ाता, कभी अकेली माता। इस प्रकार वर्ष भर तक बीच-बीच में परीक्षा लेते हुए भी कुछ पता न पा सके।

जब सोलह वर्ष का हुआ तो सोचने लगे, "चाहे लूला हो, चाहे गूंगा हो, चाहे बहरा हो, आयु-प्राप्त होने पर ऐसा कोई नहीं जो राग की जगह अनुरक्त न हो और द्वेष की जगह विरक्त न हो। समय आने पर पुष्पों के विकसित होने की तरह यह

१. 'अन्तरुद्धीनं' शब्द अस्पष्ट है।

स्वाभाविक ही है। इसकी सेवा में नर्तकियाँ उपस्थित कर, इसकी परीक्षा करेंगे। तब देव-कन्याओं के समान तीन सुन्दर, विलास-युक्त कन्याओं को बुलाया गया और उन्हें कहा गया, "जो कुमार को हँसा सकेगी अथवा रति-क्रीड़ा में बाँध सकेगी, वही इसकी पटरानी होगी।" फिर कुमार को सुगन्धित जल से स्नान कराया गया, देव-पुत्र की तरह सजाया गया, देव-विमान सदृश शयनागार में, अच्छी शैय्या पर लिटाया गया और यह सब कर वे शयनागार को मालाओं, पुष्पों, धूप, सुगन्धी तथा मदिरासव आदि सुगन्धियों से भरकर चले गये।

उन स्त्रियों ने उसे घेरकर नृत्य-गीत और मधुर वचन आदि नाना प्रकार से वहलाने का प्रयत्न किया। उसने यह देख कि ये स्त्रियाँ बड़ी बुद्धिमान् हैं सोचा कि ये मेरे शरीर-स्पर्श का अनुभव न कर सकें और अपना साँस रोक लिया। उसका शरीर जड़ हो गया। उन्हें जब उसके शरीर-स्पर्श का अनुभव नहीं हुआ और उन्होंने देखा कि वह तो जड़ है तो उन्होंने उसके माता-पिता को सूचना दी कि यह मनुष्य नहीं, यक्ष है। इस प्रकार बीच-बीच में परीक्षा करते हुए भी उसके माता-पिता उसका पता नहीं पा सके। इस प्रकार सोलह वर्ष में सोलह बड़ी परीक्षायें लेकर तथा अन्य अनेक छोटी-छोटी परीक्षायें लेकर भी उसका पता नहीं ही लगा सके।

तब राजा को बड़ा अनुताप हुआ। उसने लक्षणज्ञों को बुलाया और पूछा—"तुम तो कहते थे कि यह धान्य-पुण्य लक्षण वाला है। इसे किसी प्रकार की विघ्न-बाधा नहीं है। यह तो लूला, गूंगा तथा बहरा हो गया। तुम्हारा कथन तो मेल नहीं खाता।"

"महाराज! ऐसी कोई बात नहीं जिसे आचार्य्य न देख सकें। लेकिन यह सोचकर कि 'राजकुल में प्रार्थना करके प्राप्त हुआ पुत्र मनहूस है' कहने से तुम्हारा मन खिन्न हो जायगा, नहीं कहा।"

"अब क्या करना चाहिये?"

"महाराज! इस कुमार के इस घर में रहने से तीन खतरे दिखाई देते हैं, जीवन को, अथवा छत्र को अथवा पटरानी को। इसलिये अमंगल-रथ में अमंगल घोड़ों को जोत कर, वहाँ उसमें लिटाकर, पश्चिम द्वार से निकाल कच्चे श्मशान में गड़वा देना चाहिये।"

राजा ने खतरों की बात सुनी तो डर के मारे 'अच्छा' कह स्वीकार कर लिया। चन्द्रा देवी को पता लगा तो वह राजा के पास पहुंची और बोली, "देव ! तुमने मुझे वर दिया था। मैंने वह 'लिया' करके रख दिया था। अब मुझे वह 'वर' दें।"

"देवी ! ले।"

"मेरे पुत्र को राज्य दें।"

"देवी ! नहीं दे सकता। तेरा पुत्र मनहूस है।"

"देव ! तो जीवन-भर का न देकर सात-वर्ष का दें।"

"देवी ! नहीं दे सकता।"

"तो छः वर्ष, पाँच, चार, तीन, दो, एक वर्ष, सात महीने, छः, पांच, चार, तीन, दो महीने, एक महीना अथवा आधा महीना दें।"

"देवी ! नहीं दे सकता।"

"तो सात दिन दे।"

"अच्छा, ले।"

यह कहने पर उसने पुत्र को अलंकृत कराया, तेमिय कुमार का राज्याभिषेक होगा, कह नगर में मुनादी कराई, नगर सजवाया, पुत्र को हाथी के कन्धे पर बिठा सिर पर श्वेत छत्र झुलाया, और नगर की प्रदक्षिणा कराई। लौट कर आने पर उसने उसे शैय्या पर लिटाया और सारी रात प्रार्थना करती रही, "तात तेमिय कुमार ! तेरे कारण सोलह वर्ष तक जागते रहने से मेरी आँखें पक गई। शोक के मारे हृदय फटा जा रहा है। मै जानती हूँ कि तू लूला नहीं है। मुझे अनाथ मत बना।" इसी प्रकार दूसरे दिन भी और तीसरे दिन भी करके पाँच दिनों तक गिड़गिड़ाती रही।

छठे दिन राजा ने सुनन्द नामक सारथी को बुलवाकर आज्ञा दी, "तात ! कल प्रातःकाल ही अमंगल रथ में अमंगल घोड़े जोत, कुमार को उसमें लिटा, पश्चिम-द्वार से बाहर ले जा, कच्चे श्मशान में चौकोर गढ़ा खोदकर, उसे उसमें फेंक, कुदाल की मूठ से उसका सिर फोड़, जान से मार, ऊपर मिट्टी डाल, ज़मीन को बराबर कर स्नान करके आना।"

छठी रात भी देवी कुमार की मिन्नत करती रही, "तात ! काशी राज ने कल तुझे कच्चे श्मशान में गाड़ने की आज्ञा दे दी है। पुत्र। कल मृत्यु हो जायगी।"

यह सुन तेमिय बोधिसत्व के मन में यह सोच आनन्द हुआ कि सोलह वर्ष तक किया गया परिश्रम सफल होगा। किन्तु उसकी माँ का हृदय फटा जा रहा था। ऐसा होने पर भी उसने मुंह से एक शब्द नहीं निकाला, कि कहीं मेरे उद्देश्य की पूर्ति में बाधा न हो जाय।

रात के बीतने पर प्रातःकाल ही सुनन्द सारथी ने रथ जोता और द्वार पर लाकर खड़ा किया। फिर शयनागार में जा 'देवी! मुझ पर क्रोध न करें, राजाज्ञा है' कह, पुत्र को लेकर सोई हुई देवी की पीठ को हाथ से हटा, कुमार को पुष्प-गुच्छ की तरह उठाया और महल से उतरा। चन्द्रा देवी ने छाती पीट ली और ज़ोर जोर से विलाप करती हुई महल के तल्ले पर रह गई। बोधिसत्व ने देखा तो उसे लगा कि यदि मै चुप रहा तो यह हृदय फटकर मर जायगी, इसलिये उसकी बोल देने की इच्छा हुई। किन्तु फिर उसने सोचा, 'मेरा सोलह वर्ष का परिश्रम बेकार चला जायगा। मैं बिना बोले ही अपनी तथा माता-पिता की प्रतिष्ठा का कारण बनूंगा।" उसने सब कुछ सह लिया।

सारथी ने उसे रथ में बिठाया और पश्चिम द्वार की बजाय (भूल से) पूर्व द्वार की ओर हो लिया। रथ का पहिया देहली से टकराया। बोधिसत्व ने आवाज़ सुनी तो मन में अच्छी तरह प्रसन्न हुआ कि मेरी कामना पूरी हुई। रथ नगर से निकलकर देवताओं के प्रताप से तीन योजन दूर चला गया। वहाँ का जंगल सारथी को कच्चे श्मशान सा प्रतीत हुआ। उसने यह समझ कि यह स्थान सुविधाजनक है, रथ को रास्ते से एक ओर खड़ा किया। फिर रथ से उतर, बोधिसत्व के गहने उतार, उनकी गठरी बाँधी, एक ओर रखा और कुदाल ले थोड़ी ही दूर पर गढ़ा खोदने लगा।

तब बोधिसत्व ने सोचा, "अब यह मेरा समय आया है। मैंने सोलह वर्ष तक हाथ-पाँव नहीं हिलाये। मै देखूं कि उन पर मेरा क़ाबू है अथवा नहीं?" उसने उठकर बायें हाथ से दाहिना हाथ, दाहिने हाथ से बायाँ हाथ, दोनों हाथों से पाँवों को रगड़कर रथ से उतरने का इरादा किया। उसी समय इसके पाँव रखने की जगह वायु भरी धूंकनी के चमड़े की तरह ऊपर उठकर रथ के अन्तिम सिरे से लग गई। उसने उतरकर कई बारें इधर उधर चहल-कदमी की और देखा कि इस तरह

एक दिन में सौ योजन जाने का भी बल है। फिर यह देखने के लिये कि यदि सारथी लड़े, तो उससे लड़ने का भी बल है अथवा नहीं वह रथ के पिछली ओर गया और बच्चों के खेलने के रथ को उठा लेने की तरह उस रथ को उठाकर खड़ा हुआ। उसे निश्चय हो गया कि उसमें लड़ने का बल है। तब उसके मन में अपने आपको सजाने का संकल्प पैदा हुआ। उसी समय शक्र-भवन गरम हो उठा।

शक्र ने जान लिया कि तेमिय कुमार का उद्देश्य पूरा हो गया और अब वह अपने आपको अलंकृत करना चाहता है। उसने सोचा, 'इसे मानुषी अलंकारों से क्या ?' और उसने विश्वकर्मा को दिव्य अलंकारों के साथ भेजा तथा आज्ञा दी, "जा काशी राजपुत्र को अलंकृत कर।" उसने 'अच्छा' कहा और जाकर दस हजार दुशाले लपेट उसे दिव्य तथा मानुषी अलंकारों से शक्र की तरह अलंकृत किया। उसने देवराज के ढंग से सारथी के गढ़ा खोदने की जगह पहुंच, गढ़े के किनारे खड़े हो तीसरी गाथा कही—

किन्नु सन्तरमानोव कासुं खणसि सारथि,
पुट्ठो मे सम्म अक्खाहि किं कासुया करिस्ससि ॥३॥

[सारथी ! यह क्या जल्दी-जल्दी गढ़ा खोद रहा है ? हे मित्र ! मुझे कहो कि गढ़े का क्या करेगा ? ॥३॥]

यह सुन सारथी ने बिना ऊपर देखे, गढ़ा खोदते हुए ही चौथी गाथा कही—

रञ्ञो मूगोच च पक्खो च पुत्तो जातो अचेतसो,
सोम्हि रञ्ञो समज्झिट्ठो पुत्तं मे निखणं वने ॥४॥

[राजा के यहाँ एक गूंगा, (बहरा) लूला, जड़, लड़का पैदा हुआ है। राजा ने मुझे आज्ञा दी है कि मेरे पुत्र को वन में गाड़ आ ॥४॥]

तब बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

न बधिरो न मूगोस्मि न पक्खो न पि पंगुलो,
अधम्मं सारथी कयिरा मञ्चे त्वं निखणं वने ॥५॥
ऊरू बाहू च मे पस्स भासितञ्च सुणोहि मे,
अधम्मं सारथी कयिरा मञ्चे त्वं निखणं वने ॥६॥

[न बहरा हूँ, न गूंगा हूँ, न लूला हूँ और न लंगड़ा हूँ। यदि हे सारथी ! तू मुझे वन में गाड़ता है तो तू अधर्म करता है ।।५।। मेरी जांघों को देख, मेरे बाजुओं को देख और मेरी वाणी सुन। यदि हे सारथी ! तू मुझे वन में गाड़ता है तो तू अधर्म करता है ।।६।।]

सारथी सोचने लगा, यह कौन है जो आने के समय से ही अपनी प्रशंसा कर रहा है ? उसने गढ़ा खोदना छोड़ ऊपर देखा और उसका सौन्दर्य देख, यह न जान सकने के कारण कि यह मनुष्य है अथवा देवता, यह गाथा कही—

देवतानुसि गन्धब्बो आदु सक्को पुरिन्ददो
को व त्वं कस्स वा पुत्तो कथं जानेमु तं भयं ।।७।।

[तू देवता है ? तू गन्धर्व है ? अथवा तू इन्द्र है ? तू कौन है ? अथवा किसका पुत्र है ? हम तुझे कैसे जानें ? ।।७।।]

बोधिसत्व ने अपने आपको प्रकट करते हुए तथा धर्मोपदेश देते हुए कहा—

नम्हि देवो न गन्धब्बो न पि सक्को पुरिन्ददो,
कासिरञ्ञो अहं पुत्तो यं कासुया निघञ्ञसि ।।८।।
तस्स रञ्ञो अहं पुत्तो यं त्वं समूपजीवसि,
अधम्मं सारथी कयिरा यं चे त्वं निखणं वने ।।९।।
यस्स रुक्खस्स छायाय निसीदेय्य सयेय्य वा,
न तस्स साखं भञ्जेय्य मित्तदूभो हि पापको ।।१०।।
यथा रुक्खो तथा राजा यथा साखा तथा अहं
यथा छायूपगो पोसो एवं त्वमसि सारथी,
अधम्मं सारथी कयिरा मञ्चे त्वं निखणं वने ।।११।।

[न मैं देव हूँ, न गन्धर्व हूँ और न इन्द्र ही हूँ। मैं काशी राज का पुत्र हूँ, जिसके लिये तू गढ़ा खोदता है ।।८।। मैं उस राजा का पुत्र हूँ, जिसके सहारे तू जीता है। यदि हे सारथी ! तू मुझे वन में गाड़ता है तो तू अधर्म करता है ।।९।। जिस वृक्ष की छाया में बैठे या सोये उसकी शाखा न काटे, मित्र-द्रोह पातक है ।।१०।। जैसे छाया में बैठने वाला पुरुष उसी के समान हे सारथी ! तू है। यदि हे सारथी ! तू मुझे वन मे गाड़ता है तो अधर्म करता है ।।११।।]

बोधिसत्व के ऐसा कहने पर भी सारथी को विश्वास नहीं हुआ। बोधिसत्व ने सोचा, "इसे विश्वास कराऊंगा।" उसने देवताओं के 'साधुकार' और अपने वचन से सारे जंगल को गुंजाते हुए मैत्री-धर्म सम्बन्धी दस गाथायें कहीं—

पहूत भक्खो भवति विप्पवुत्थो सका घरा,
बहू नं उपजीवन्ति यो मित्तानं न दूभति ॥१२॥
यं यं जनपदं याति निगमे राजधानियो,
सब्बत्थ पूजितो होति यो मित्तानं न दूभति ॥१३॥
नास्स चोरा पसहन्ति नातिमञ्ञेति खत्तियो,
सब्बे अमित्ते तरति यो मित्तानं न दूभति ॥१४॥
अक्कुद्धो स घरं एति सभाय पटिनन्दितो,
ञातीनं उत्तमो होति यो मित्तानं न दूभति ॥१५॥
सक्कत्वा सक्कतो होति गरु होति सगारवो,
वण्णकित्तिभतो होति यो मित्तानं न दूभति ॥१६॥
पूजको लभते पूजं वन्दको पटिवन्दनं,
यसो कित्तिञ्च पप्पोति यो मित्तानं न दूभति ॥१७॥
अग्गि यथा पज्जलति देवताव विरोचति,
सिरिया अजहितो होति यो मित्तानं न दूभति ॥१८॥
गावो तस्स पजायन्ति खेत्ते वुत्तं विरूहति,
वुत्तानं फलमस्नाति यो मित्तानं न दूभति ॥१९॥
दरितो पब्बतातो वा रुक्खातो पतितो नरो,
चुतो पतिट्ठं लभति यो मित्तानं न दूभति ॥१०॥
विरूळ्ह मूल सन्तानं निग्रोधमिव मालुतो,
अमित्ता न प्पसहन्ति यो मित्तानं न दूभति ॥२१॥

[अपने घर से प्रवास में जाने पर उसे खाने-पीने की कमी नहीं रहती। वह बहुतों की जीविका का आश्रय होता है, जो मित्र-द्रोह नहीं करता ॥१२॥ जिस-जिस जनपद में जाता है, निगम में अथवा राजधानी में; वह सभी जगह आदृत होता है, जो मित्र-द्रोह नहीं करता ॥१३॥ चोर उसके साथ जबर्दस्ती नहीं कर सकते

और क्षत्रिय (= राजागण) भी उसकी अवहेलना नहीं कर सकते ; जो मित्रों के साथ द्रोह नहीं करता ।।१४।। शान्ति-युक्त अपने घर लौटता है, सभा में प्रसन्न रहता है, रिश्तेदारों में श्रेष्ठ माना जाता है, जो मित्र-द्रोह नहीं करता ।।१५।। दूसरों का सत्कार करके स्वयं संस्कृत होता है, दूसरों का गौरव करके स्वयं गौरवान्वित होता है, उसका गुणानुवाद होता है और उसकी कीर्ति फैलती है; जो मित्र-द्रोह नहीं करता ।।१६।। दूसरों की पूजा करके स्वयं पूजित होता है, दूसरों की वन्दना करके स्वयं वन्दित होता है, वह यश तथा कीर्ति को प्राप्त होता है; जो मित्र-द्रोह नहीं करता ।।१७।। जैसे अग्नि प्रज्वलित होती है, वैसे ही वह देवता के समान प्रकाशित होता है, वह श्री से वियुक्त नहीं होता, जो मित्र-द्रोह नहीं करता है ।।१८।। उसकी गौवें जनती है, उसके खेतों में उगता है, और जो उगता है उसे वह खाता है; जो मित्र-द्रोह नहीं करता ।।१९।। दरार से, पर्वत से फिसल जाने पर, अथवा पेड़ से गिर पड़ने पर वह चोट से बच जाता है; जो मित्र-द्रोह नहीं करता ।।२०।। जिस प्रकार मालुता लता जड़ें वढ़े न्यग्रोध पेड़ का कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं, उसी प्रकार उसके शत्रु उससे पार नहीं पा सकते हैं; जो मित्र-द्रोह नहीं करता ।।२१।।]

इतनी गाथाओं से धर्मोपदेश देने से भी सुनन्द ने उसे नहीं पहचाना । 'यह क्या है !' जानने के लिये वह रथ के समीप पहुँचा । उसे तथा वह अलंकार-सामग्री देख उसने पहचान लिया, और पाँव में गिर, हाथ जोड़ कर प्रार्थना करते हुए उसने यह गाथा कही—

अहं तं पटिनेस्सामि राजपुत्त सकं घरं
रज्जं कारेहि भद्दन्ते किं अरञ्ञे करिस्ससि ।।२२।।

[हे राजपुत्र ! मैं तुझे वापिस घर ले चलूंगा । तेरा भला हो । तू राज्य कर । जंगल में क्या करेगा ।।२२।।]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

अलं मे तेन रज्जेन जातकेहि धनेन वा,
यं मे अधम्मचरियाय रज्जं लब्भेथ सारथि ।।२३।।

[मुझे उस राज्य, धन तथा रिश्तेदारों की अपेक्षा नहीं है; हे सारथि ! जो मुझे अधर्म–चर्या से प्राप्त हो ।।२३।।]

सारथी बोला—

पुण्णपत्तं पलब्भेहि राजपुत्त इतो गतो,
पिता माता च मे दज्जुं राजपुत्त तयि गते ।।२४।।
ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
तेपि अत्तमना दज्जुं राजपुत्त तयि गते ।।२५।।
हत्थारूहा अणीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
तेपि दज्जुं पतीता मे राजपुत्त तयि गते ।।२६।।
बहू जानपदा चञ्ञे नेगमा च समागता,
उपायनानि मे दज्जुं राजपुत्त तयि गते ।।२७।।

[हे राजपुत्र ! यहाँ से जाने पर पूर्ण-संतोष मिलेगा । हे राजपुत्र ! तेरे जाने पर (तेरे) पिता-माता मुझे (बहुत कुछ) देंगे ।।२४।। रनिवास के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण—ये सब भी सन्तुष्ट होकर हे राजपुत्र ! तेरे जाने पर मुझे (बहुत कुछ) देंगे ।।२५।। हाथी-सवार, घुड़सवार, रथी और पैदल भी प्रसन्न होकर हे राजपुत्र ! तेरे जाने पर मुझे (बहुत कुछ) देंगे ।।२६।। दूसरे बहुत जान-पद तथा आगत नेगम भी हे राजकुमार तेरे जाने पर मुझे बहुत सी भेंट देंगे ।।२७।।]

बोधिसत्व का उत्तर था—

पितुमातुवहं चत्तो रट्ठस्स निगमस्स च,
अथो सब्बकुमारानं नत्थि मय्हं सकं घरं ।।२८।।
अनुञ्ञातो अहं मत्या सञ्चत्तो पितरा अहं
एको अरञ्ञे पब्बजितो न कामे अभिपत्थये ।।२९।।

[पिता-माता ने मुझे छोड़ दिया । राष्ट्र ने और निगम ने भी । सभी कुमारों ने भी । मेरा अपना घर नहीं है ।।२८।। मुझे माता ने अनुज्ञा दे दी और पिता ने त्याग दिया । मैंने अकेले जंगल में प्रव्रज्या ग्रहण की है । मुझे काम भोगों की इच्छा नहीं है ।।२९।।]

इस प्रकार अपने गुणों की याद करने से बोधिसत्व के मन में आनन्द पैदा हो गया। तब आनन्दाभिभूत हो उसने उल्लास-पूर्ण-गाथायें कहीं—

अपि अतरमानानं फलासाव समिज्झति,
विपक्कब्रह्मचरियोस्मि एवं जानाहि सारथि ॥३०॥
अपि अतरमानानं सम्मदत्थो विपच्चति,
विपक्कब्रह्मचरियोस्मि निक्खन्तो अकुतोभयो ॥३१॥

[सब्र करने से फल की आशा पूरी हो जाती है। हे सारथी ! तू यह जान ले कि मैं सिद्ध-ब्रह्मचारी हूँ ॥३०॥ सब्र करने से अर्थ अच्छी तरह पूरा होता है। मैं सिद्ध ब्रह्मचारी हूं। मुझे (घर से) निकलने में क्या भय ? ॥३१॥]

सारथी बोला—

एवं वग्गुकथो सन्तो विस्सट्ठवचनोचसि,
कस्मा पितुच्च मातुच्च सन्तिके न भणी तदा ॥३१॥

[जब तेरी वाणी इतनी सुन्दर और स्पष्ट है तो तू ने पिता और माता के पास मुंह क्यों नहीं खोला ? ॥३२॥]

बोधिसत्व का उत्तर था—

नाहं असत्थिता पक्खो न बधिरो असोतता,
नाहं अजिह्वता मूगो मा मं मूगो अधारयि ॥३३॥
पुरिमं सरामहं जातिं यत्थ रज्जमकारयिं,
कारयित्वा तहिं रज्जं पापत्थं निरयं भुसं ॥३४॥
वीसतिं चेव वस्सानि तहिं रज्जमकारयिं,
असीति वस्ससहस्सानि निरयम्हि अपच्चिसं ॥३५॥
तस्स रज्जस्सहं भीतो मा मं रज्जाभिसेचयुं
तस्मा पितुच्च मातुच्च सन्तिके न भणिं तदा ॥३६॥
उच्छङ्गे मं निसीदेत्वा पिता अत्थानुसासति,
एकं हनथ बन्धथ एकं खारापतच्छिकं,
एकं सूलस्मिं अप्पेथ इच्चस्समनुसासति ॥३७॥

तस्साहं फरुसं सुत्वा वाचायो समुदीरिता,
अमूगो मूगवण्णेन अपक्खो पक्खसम्मतो
सके मुत्तकरीसस्मिं अच्छाहं सम्परिप्लुतो ॥३८॥
कसिरञ्च परित्तञ्च तञ्च दुक्खेन संयुतं,
को तं जीवितमागम्म वेरं कयिराथ केनचि ॥३९॥
पञ्ञाय च अलाभेन धम्मस्स च अदस्सना,
को तं जीवितमागम्म वेरं कयिराथ केनचि ॥४०॥
अपि अतरमानानं फलासाव समिज्झति,
विपक्कब्रह्मचरियोस्मि एवं जानाहि सारथि ॥४१॥
अपि अतरमानानं सम्मदत्थो विपच्चति,
विपक्कब्रह्मचरियोस्मि निक्खन्तो अकुतोभयो ॥४२॥

[मैं जांघ न होने से लंगड़ा नहीं हूँ, कान न होने से बहरा नहीं हूँ और जिह्वा न होने से गूंगा नहीं हूँ। मुझे तू गूंगा मत समझ ॥३३॥ मुझे अपने पूर्व जन्म का स्मरण है, जहाँ मैंने राज्य किया। वहाँ राज्य करने से मैं चिरकाल तक नरक में रहा ॥३४॥ वहाँ मैंने बीस वर्ष राज्य किया और नरक (की आग) में मुझे बीस हजार वर्ष पकना पड़ा ॥३५॥ उस राज्य से मैं भय-भीत हूँ। मुझे डर था कि मेरा राज्याभिषेक न कर दे। इस लिये मैं उस समय पिता और माता के पास नहीं बोला ॥३६॥ मुझे गोद में बिठाकर पिता अनुशासन करता था—एक को मारो, एक को बांधो, एक को यन्त्रणा दो और एक को सूली पर चढ़ाओ ॥३७॥ मैं उसकी कठोर वाणी सुनकर गूंगा न होता हुआ भी गूंगा बन गया, लंगड़ा न होता हुआ भी लंगड़ा हो गया। मैं अपने पेशाब-पाखाने में लथ-पथ पड़ा रहा ॥३८॥ कठिन, थोड़ा-सा तथा दुःख से प्राप्त। इस जीवन के लिये कौन किसी से वैर करे! ॥३९॥ प्रज्ञा न होने से तथा धर्म का दर्शन न होने से, इस जीवन के लिये कौन किसी से वैर करे ॥४०॥ सब्र करने से निकलने में क्या भय ॥४१-४२॥]

यह सुन सुनन्द ने सोचा, "इस कुमार ने राज्य-ऐश्वर्य को लाश के समान छोड़ दिया है। यह अपने संकल्प पर दृढ़ रह प्रव्रजित होने के लिये वन में प्रविष्ट हुआ है।

मुझे ही इस दुर्जीवन से क्या प्रयोजन है ? मैं भी इसके साथ प्रव्रजित होऊँगा" उसने यह गाथा कही—

अहम्पि पब्बजिस्सामि राजपुत्त तवन्तिके,
अव्हयस्सु मं भद्दन्ते पबज्जा मम रुच्चति ॥४३॥

[हे राजपुत्र ! मैं भी तेरे पास प्रव्रजित होऊँगा । तेरा भला हो ! मेरा भी आह्वाहन कर । मुझे प्रव्रज्या अच्छी लगती है ॥४३॥]

उसके इस प्रकार प्रार्थना करने पर बोधिसत्व ने सोचा, "यदि मैं अभी इसे प्रव्रजित कर दूंगा, तो मेरे माता-पिता यहाँ नहीं आ सकेंगे । उनकी हानि होगी । ये घोड़े, रथ तथा अलंकार नष्ट हो जायेंगे । मेरी निन्दा भी होगी कि वह यक्ष है, सारथी को खा गया ।" इस प्रकार अपने आपको निन्दा से बचाने के लिये तथा माता-पिता की अभिवृद्धि का ख्याल कर उसने घोड़े, रथ और अलंकार उसे 'ऋण' करके दिये और कहा—

रथं निय्यादयित्वान अनणो एहि सारथि,
अनणस्स हि पबज्जा एतं इसिहि वण्णितं ॥४४॥

[हे सारथी ! रथ को सौंपकर 'उऋण' होकर आ । ऋषियों ने 'उऋण' की प्रव्रज्या की ही प्रशंसा की है ॥४४॥]

यह सुन सारथी ने सोचा, "यदि मेरे नगर में चले जाने पर यह अन्यत्र चला जाय, और इसका पिता यह समाचार सुनकर 'मेरे पुत्र को दिखाओ', कह चला आये; और वह इसे न देखे; तो वह मुझे राज्य-दण्ड भी दे सकता है । इसलिये मैं अपने गुण कहकर इस से अन्यत्र कहीं न जाने की प्रतिज्ञा कराऊँगा" उसने दो गाथायें कहीं—

यदेव त्याहं वचनं अकरं भद्दमत्थु ते,
तदेव मे त्वं वचनं याचितो कत्तुमरहसि ॥४५॥
इधेव ताव अच्छस्सु याव राजानमानये,
अप्पेव ते पिता दिस्वा पतीतो सुमनो सिया ॥४६॥

[तुम्हारा भला हो, जैसे मैं तुम्हारा कहना करता हूँ, उसी प्रकार तुम्हारे लिये यह योग्य है कि तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार करो ॥४५॥ जब तक मैं राजा को लेकर

नहीं आता हूँ, तब तक यहीं रहो। यह सम्भव है कि तुम्हारे पिता को तुम्हें देखकर आनन्द हो ।।४६।।]

तब बोधिसत्व बोला—

करोमि ते तं वचनं यं मं भणसि सारथि,
अहम्पि दट्ठुकामोस्मि पितरंम्मे इधागतं ।।४७।।
एहि सम्म निवत्तस्सु कुसलं वज्जासि ञातिनं,
मातरं पितरं मय्हं वुत्तो वज्जासि वन्दनं ।।४८।।

[सारथी ! जो तू मुझे करने को कहता है मैं तेरे कहने के अनुसार करूँगा। मैं भी यहाँ आने पर अपने पिता का दर्शन करना चाहता हूँ ।।४७।। मित्र ! तू जाकर (शीघ्र) लौटकर आ। रिश्तेदारों को मेरा कुशल-समाचार कहना और माता-पिता से मेरा प्रणाम कहना ।।४८।।]

उसने सन्देश लिया, और

तस्स पादे गहेत्वान कत्वा च नं पदक्खिणं,
सारथी रथमारुय्ह राजद्वारं उपागमि ।।४९।।

[उसके पैरों में पड़ और उसकी प्रदक्षिणा कर, सारथी रथ पर चढ़कर राज-द्वार आ पहुंचा ।।४९।।]

उस समय चन्द्रा देवी झरोखे में बैठी सारथी के आने की प्रतीक्षा कर रही थी कि मेरे पुत्र का क्या समाचार लाता है ? उसने उसे अकेले आता देखा तो रोने-पीटने लगी।

इसी बात को स्पष्ट करने के लिये शास्ता ने कहा—

सुञ्ञं माता रथं दिस्वा एकं सारथिमागतं,
अस्सुपुण्णेहि नेत्तेहि रोदन्ती नं उदिक्खति ।।५०।।
अयं सो सारथी एति निहन्त्वान ममत्रजं
निहतो नून मे पुत्तो पथव्या भूमिवड्ढनो ।।५१।।
अमित्ता नून नन्दन्ति पतीता नूनवेरिनो,
आगतं सारथिं दिस्वा निहन्त्वान ममत्रजं ।।५२।।

सुञ्ञं माता रथं दिस्वा एकं सारथिमागतं,
अस्सुपुण्णेहि नेत्तेहि रोदन्ति परिपुच्छति ॥५३॥
किन्नु मूगो किन्नु पक्खो किन्नु सो विलपी तदा,
निहञ्ञमाना भूमिया तम्मे अक्खाहि सारथी ॥५४॥
कथं हत्थेहि पादेहि मूगो पक्खो विवज्जयि,
निहञ्ञमाना भूमिया तम्मे अक्खाहि पुच्छितो ॥५५॥

[रथ को शून्य तथा सारथी को अकेला आया देखकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से रोती हुई माता उसकी ओर देखने लगी ॥५०॥ मेरे पुत्र को मारकर यह सारथी चला आ रहा है। इसने निश्चय से मेरे भूमि के पृथ्वी-वर्धन पुत्र को मार डाला ॥५१॥ निस्स-न्देह मेरे पुत्र को मारकर आये सारथी को देख कर शत्रु तथा वैरी आनन्दित होंगे ॥५२॥ रथ को शून्य तथा सारथी को अकेला आया देख अश्रुपूर्ण नेत्रों से रोती हुई माता ने पूछा ॥५३॥ क्या वह गूंगा ही रहा ! क्या वह जड़ ही रहा ? अथवा भूमि में गाड़े जाने के समय वह बोला ? हे सारथी ! मुझे यह बता ॥५४॥ हे सारथी ! मैं तुझे पूछती हूँ, मुझे बता कि गाड़े जाते समय उस गूंगे ने, उस लंगड़े ने हाथ पैरों से तुझे कैसे मना किया ॥५५॥]

सारथी बोला—

अक्खिस्सं ते अहं अय्ये दज्जासि अभयं मम,
यम्मे सुतं वा दिट्ठं वा राजपुत्तस्स सन्तिके ॥५६॥

[हे आर्ये ! यदि मुझे 'अभय' मिले तो जो कुछ मैंने राजपुत्र के पास सुना या देखा, वह मैं सब कहूँ ॥५६॥]

चन्द्रा देवी बोली—

अभयं सम्म ते दम्मि अभीतो भण सारथि,
यं ते सुतं वा दिट्ठं वा राजपुत्तस्स सन्तिके ॥५७॥

[मैं तुझे 'अभय' देती हूँ। हे सारथी ! जो कुछ तूने राज-पुत्र के पास देखा या सुना, उसे निर्भय होकर कह ॥५७॥]

तब सारथी बोला—

न सो मूगो न सो पक्खो विस्सट्ठवचनोव सो,
रज्जस्स किर सो भीतो अकरी आलये बहू ॥५८॥
पुरिमं सो सरती जातिं यत्थ रज्जमकारयि,
कारयित्वा तहिं रज्जं पापत्थ निरयं भुसं ॥५९॥
वीसतिञ्चेव वस्सानि तहिं रज्जमकारयि,
असीति वस्स सहस्सानि निरयम्हि अपच्चि सो ॥६०॥
तस्स रज्जस्स सो भीतो मा मं रज्जाभिसेचयुं,
तस्मा पितुच्च मातुच्च सन्तिके न भणी तदा ॥६१॥
अंगपच्चंगसम्पन्नो आरोहपरिनाहवा,
विस्सट्ठवचनो पञ्ञो मग्गे सग्गस्स तिट्ठति ॥६२॥
सचे त्वं दट्ठुकामासि राजपुत्ति तवत्रजं,
एहि तं पापयिस्सामि यत्थ सम्मति तेमियो ॥६३॥

[न वह गूंगा है, न वह जड़ है। वह स्पष्ट वाणी बोलता है। उसने राज्य से भयभीत होने के कारण ही बहुत से ढंग बनाये ॥५८॥ उसे अपना पूर्व-जन्म याद है, जहाँ उसने राज्य किया। वहाँ राज्य करके वह दीर्घ-काल तक नरक में रहा ॥५९॥ बीस वर्ष उसने वहाँ राज्य किया, और बीस हजार वर्ष तक वह नरक में पकता रहा ॥६०॥ उस राज्य के कारण ही उसे डर लगता था कि कहीं फिर मुझे राजा न बना दें। इसलिये उस समय उसने पिता और माता के सामने मुंह नहीं खोला ॥६१॥ उसके अंग-प्रत्यंग सम्पूर्ण हैं, वह लम्बा-चौड़ा है, उसकी वाणी-स्पष्ट है, वह प्रज्ञावान है तथा वह स्वर्ग के मार्ग पर आरूढ़ है ॥६२॥ हे राजपुत्री! यदि तू अपने पुत्र को देखना चाहती है, तो आ मैं तुझे वहाँ ले चलूं जहाँ तेमिय रहता है ॥६३॥]

कुमार सारथी को विदा कर चुका तो उसकी प्रव्रजित होने की इच्छा हुई। उसके मन की बात जान शक्र ने विश्वकर्मा को भेजा "तात! तेमिय कुमार प्रव्रजित होना चाहता है। उसके लिये पर्णशाला और प्रव्रजित की आवश्यकतायें तैयार करके आ।" उसने अच्छा' कह स्वीकार किया, और जल्दी से आकर तीन योजन के वन-खण्ड में आश्रम का निर्माण किया। फिर उसे रात्रि-स्थान, दिन के स्थान,

पुष्करिणी, गढ़े और फलों के वृक्षों से युक्त कर, प्रव्रजितों की आवश्यकतायें तैयार कीं और अपने निवास-स्थान पर लौट आया। बोधिसत्व ने उसे देख जान लिया कि शक्र की व्यवस्था है। उसने पर्णशालामें प्रवेश कर वस्त्र उतारे और रक्तवर्ण वल्कल-चीर धारण कर, अजिन चर्म को एक कन्धे पर रखा और जटा बांधी। फिर बँहगी को कन्धे पर रख, हाथ की लकड़ी ले, पर्णशाला से निकला और प्रव्रजित-श्री का प्रदर्शन करते हुए, इधर उधर चन्क्रमण करने लगा। इसके बाद 'अहो सुख', 'अहो सुख' कहते हुए पर्णशाला में प्रवेश किया और काष्ठासन पर बैठ पाँच अभिञ्ञायें प्राप्त कीं। शाम को निकलकर चन्क्रमण-भूमि के सिरे पर खड़े वृक्ष से पत्ते ले, उन्हें शक्र के दिये हुए बरतन में, बिना निमक के, बिना घी (तक्र) के, बिना छौंके, पानी में उबालकर अमृत का सेवन करने की तरह खाया और चारों ब्रह्मविहारों की भावना करता हुआ वहीं रहने लगा।

काशीराज ने भी सुनन्द की बात सुन महा सेना-रक्षक को बुला चलने की तैयारी करने को कहा—

योजयन्तु रथे अस्से काच्छं नागानबन्धथ,
उदीरयन्तु सङ्खपणवा वदन्तु एकपोक्खरा ॥६४॥
नदन्तु भेरी सन्नद्धा वग्गुं वदतु दुन्दुभि
नेगमा च मं अन्वेन्तु गच्छं पुत्तनिवेदको ॥६५॥
ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
खिप्पं यानानि योजेन्तु गच्छं पुत्तनिवेदको ॥६६॥
हत्थारोहा अणीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
खिप्पं यानानि योजेन्तु गच्छं पुत्तनिवेदको ॥६७॥
समागता जानपदा नेगमा च समागता,
खिप्पं यानानि योजेन्तु गच्छं पुत्तनिवेदको ॥६८॥

[रथों में घोड़े जोते जायें, हाथियों का साज-सामान (कच्छ ?) बान्धा जाय। शङ्ख तथा पणव बजाये जायें और एक पोक्खर (-वाद्य) बजें ॥६४॥ भेरी-वादक भेरी बजायें और दुन्दुभि सुन्दर प्रकार से बजे। मैं पुत्र को निवेदन करने जा रहा हूँ। निगम-वासी मेरे पीछे-पीछे आयें ॥६५॥ मैं पुत्र को निवेदन

करने जा रहा हूँ। रनिवास के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण शीघ्र यानों को जुतवायें ॥६६॥ मैं पुत्र को निवेदन करने जा रहा हूँ। हाथी- असवार, घुड़-सवार, रथी तथा पैदल शीघ्र यानों को जुतवायें ॥६७॥ मैं पुत्र को निवेदन करने जा रहा हूँ। आगत जनपद के लोग तथा आगत निगमवासी शीघ्र यान जुतवायें ॥६८॥]

इस प्रकार राजाज्ञा से रथों में घोड़े जोते गये और रथों को राज-द्वार पर लाकर राजा को सूचना दी गई। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

अस्से च सारथी युत्ते सिन्धवे सीघवाहने,

राजद्वारं उपागञ्छुं युत्ता देव इमे हया ॥६९॥

[सैन्धव, शीघ्रगामी घोड़े जुते रथों को लेकर सारथी राज-द्वार पर आये और बोले, "देव! ये घोड़े जुते हैं॥" ॥६४॥]

तब राजा बोला—

थूला जवेन हायन्ति, किसा हायन्ति थामुना।

[स्थूल तेज चलने से थक जाते हैं और कृप बल की कमी से थक जाते हैं॥]
इस प्रकार के घोड़े न लो। सारथी बोला—

'किसे थूले विवज्जेत्वा संसट्ठा योजिता हया'

[कृष और स्थूलों को छोड़ कर समान गति तथा बल-वाले ही जोते गये हैं ॥७०॥]

राजा ने पुत्र के पास जाने के लिये चारों प्रकार की अठारह सेनायें तथा तमाम फौज इकट्ठी की। सारी फौज को इकट्ठे करने में तीन दिन बीत गये। चौथे दिन निकल, लेने योग्य सभी वस्तुयें ले, आश्रम पहुंच, पुत्र को देख, आनन्दित हो कुशल-क्षेम वार्तालाप किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो च राजा तरमानो पुत्त मारुय्ह सन्दनं,

इत्थागारं अज्झभासि सब्बाव अनुयाथ मे ॥७१॥

वाळवीजनिमुण्हीसं खग्गं छत्तञ्च पण्डरं,

उपादिरथमारुय्ह सुवण्णेन अलंकता ॥७२॥

ततो च राजा पायासि पुरक्खत्वान सारथिं
खिप्पमेव उपागञ्छि यत्थ सम्मति तेमियो ॥७३॥
तञ्च दिस्वान आयन्तं जलन्तमिव तेजसा
खत्तसंघपरिब्बूळहं तेमियो एतदब्रवि ॥७४॥

[तब शीघ्रतापूर्वक रथ पर चढ़ते हुए राजाने सभी स्त्रियों को कहा, "मेरे पीछे-पीछे आओ ॥७१॥ चौरी, उष्णीष, तलवार, श्वेत छत्र लेकर स्वर्ण से अलंकृत (राजा) रथ पर चढ़ा ॥७२॥ उसी समय राजा सारथी को आगे कर निकल पड़ा और जहाँ तेमिय रहता था वहाँ शीघ्र ही जा पहुंचा ॥७३॥ तेज से चमकते हुए के समान तथा क्षत्रियों के बीच उसे आता देखकर तेमिय बाला ॥७४॥]

तेमिय—**कच्चिन्नु तात कुसलं कच्चि तात अनामयं,**
कच्चिन्नु राजकञ्ञायो अरोगा मय्ह मातरो ॥७५॥

राजा—**कुसलञ्चेव मे पुत्त अथो पुत्त अनामयं,**
सब्बाव राजकञ्ञायो अरोगा तुय्ह मातरो ॥७६॥

[तात ! क्या कुशल है ? क्या सभी स्वस्थ है ? क्या मेरी राज-कन्या मातायें निरोग हैं ? ॥७५॥ पुत्र ! सभी कुशल हैं, सभी स्वस्थ हैं। तेरी सभी राजकन्या मातायें निरोग हैं ? ॥७६॥]

तेमिय—**कच्चिस्स मज्जपो तात कच्चि ते सुरमप्पियं**
कच्चि सच्चे च धम्मे च दाने ते रमती मनो ॥७७॥

राजा—**अमज्जपो अहं पुत्त अथो मे सुरमप्पियं,**
अथो सच्चे च धम्मे च दाने मे रमती मनो ॥७८॥

[तात क्या तू अमद्यप है ? क्या तुझे सुरा अप्रिय है ? क्या सत्य, धर्म तथा दान तुझे अच्छा लगता है ॥७७॥ पुत्र ! मैं अमद्यप हूँ, मुझे सुरा अप्रिय है। सत्य, धर्म और दान मुझे अच्छा लगता है ॥७८॥]

तेमिय—**अरोगं योग्गं ते कच्चि वहति वाहनं,**
कच्चि ते व्याधयो नत्थि सरीरस्सुपतापना ॥७९॥

राजा—**अथो अरोगं योग्गं मे अथवो वहति वाहनं,**
अथो मे व्याधयो नत्थि सरीरस्सुपतापना ॥८०॥

[क्या तेरी (घोड़े बैल आदि) की जोड़ियाँ निरोग हैं ? क्या तेरे वाहन (ठीक से) वहन करते हैं ? क्या तेरे शरीर में कष्ट देनेवाली व्याधियाँ नहीं हैं ? ।।७९।। मेरी जोड़ियाँ निरोग हैं। मेरे वाहन (ठीक से) वहन करते हैं। मेरे शरीर में कष्ट देनेवाली व्याधियाँ नहीं हैं ।।८०।।]

तेमिय—**कच्चि अन्ता चते फीता मज्झे च वहला तव,**

कोट्ठागारञ्च कोसञ्ज कच्चि ते पटिसन्थतं ।।८१।।

राजा—**अथो अन्ता च मे फीता मज्झे च बहला मम,**

कोटठागारञ्च कोसञ्च सब्बं मे पटिसन्थतं ।।८२।।

[क्या तेरे प्रत्यन्त-जनपद समृद्ध हैं ? क्या मध्यभाग घना बसा है ? क्या तेरा भंडार और कोष भरा है ? ।।८१।। प्रत्यन्त-जनपद समृद्ध है। मध्यभाग घना बसा है। भण्डार और कोष भरा है ।।८२।।]

तेमिय—**स्वागतं ते महाराज अथो ते अदुरागतं**

पतिट्ठापेन्तु पल्लंकं यत्थ राजा निसक्कति ।।८३।।

[महाराज ! तेरा स्वागत है। जहाँ राजा का बैठना हो, वहा पलंग बिछाया जाय ।।८३।।]

बोधिसत्व के प्रति गौरव का भाव होने से राजा पलंग पर नही बैठा। तब बोधिसत्व ने 'यदि पलंग पर नही बैठता, तो पत्तों का आस्तरण बिछाओ' कह वह बिछवाया और उसके बिछ जाने पर गाथा कही—

इधेव ते निसिन्नस्स नियते पण्णसन्थते,

एत्तो उदकमादाय पादे पक्खालयन्तु ते ।।८४।।

[यहीं इस बिछे पत्तों के आस्तरण पर बैठे ही बैठे यहां से पानी लाकर तेरे पैर धोयें जायें ।।८४।।]

राजा गौरव के कारण पत्तों के आसन पर भी न बैठ जमीन पर बैठा। बोधिसत्व ने भी पर्ण-शाला में जाकर और वह पत्तों का भोजन बाहर लाकर राजा को उसका निमंत्रण देते हुए यह गाथा कही—

इदम्पि पण्णकं मय्हं रन्धं राज अलोणकं,

परिभुञ्ज महाराज पाहुनो मेसि आगतो ।।८५।।

[हे राजन् ! यह मेरा बिना नमक के, पत्तों का बना हुआ भोजन है। महा-राज भोजन करें। आप हमारे अतिथि हैं ।।८५।।]

राजा बोला— **न चाहं पण्णं भुञ्जामि न हेतं मय्हं भोजनं**
सालीनं ओदनं भुञ्जे सुचिं मंसूपसेचनं ।।८६।।

[मैं पत्ते नहीं खाता। यह मेरा भोजन नहीं है। मैं मांस के साथ शुद्ध शाली (-धान) के भात का भोजन करता हूं ।।८६।।]

इस प्रकार राजा ने उस के भोजन का निषेध कर अपने भोजन की प्रशंसा करते हुए भी, उसके प्रति गौरव प्रदर्शित करने के लिये थोड़े पत्ते हाथ की हथेली पर ले, बैठकर उस से प्यारी बातचीत करने लगा "तात ! तू ऐसा भोजन खाता है ?"

उस समय रनिवास से घिरी हुई चन्द्रा देवी पहुंची। उसने प्रिय पुत्र को पैर पकड़कर प्रणाम किया और आँखों में आँसू भर एक ओर बैठी। राजा ने थोड़े पत्ते उसके हाथ पर रखते हुए कहा, "भद्रे ! पुत्र का भोजन देख"। शेष स्त्रियों को भी थोड़ा-थोड़ा दिया। वे सभी, 'स्वामी। ऐसा भोजन करते हैं' कह, उसे ले, 'स्वामी ! बहुत दुष्कर कार्य्य करते हैं' कह उसे नमस्कार कर बैठ गई। तब राजा ने 'तात', मुझे यह बड़े आश्चर्य की बात लगती है, कह गाथा कही—

अच्छेरकं मं पटिभाति एककम्पि रहोगतं,
एदिसं भुञ्जमानानं केन वण्णो पसीदति ।।८७।।

[मुझे यह बड़ा आश्चर्य मालूम देता है कि एकान्त में अकेले रहने और इस प्रकार का भोजन करने पर भी चेहरे पर तेज है ! ।।८७।।]

बोधिसत्व ने उसे उत्तर देते हुए कहा—

एको राज निपज्जामि नियते पण्णसन्थते,
ताय मे एक सेय्याय राज वण्णो पसीदति ।।८८।।
न चे नेत्ति संबन्धा मे राजरक्खा उपट्ठिता,
ताय मे सुखसेय्याय राज वण्णो पसीदति ।।८८।।
अतीतं नानुसोचामि नप्पजप्पामनागतं,
पच्चुप्पन्नेन यापेमि तेन वण्णो पसीदति ।।९०।।

अनागतप्पजप्पाय अतीतस्सानुसोचना,
एतेन बाला सुस्सन्ति नलोव हरितो लुतो ॥९१॥

[हे राजन् ! मैं पत्तों के नियत आस्तरण पर अकेला सोता हूँ। इससे चेहरे पर तेज है ॥८८॥ तलवार बांधे पहरेदार भी पहरे के लिये उपस्थित नहीं रहते। हे राजन् ! मेरे उस सुखपूर्वक सोने के कारण मेरे चेहरे पर तेज है ॥८९॥ मैं भूत-काल के सम्बन्ध में और भविष्यकाल के सम्बन्ध में भी संकल्प-विकल्प नहीं उठाता रहता, मैं वर्तमान में ही रहता हूँ; इससे मेरे चेहरे पर तेज है ॥९०॥ भविष्य सम्बन्धी संकल्प-विकल्प उठाते रहने तथा भूत-काल सम्बन्धी चिन्ता करते रहने से ही मूर्ख आदमी सूखते रहते हैं, जैसे काटा हुआ हरा बाँस ॥९१॥]

राजा ने विचार किया कि यहीं इसे राज्याभिषिक्त कर लेकर जाऊंगा। यह सोच, उसने उसे राज्य का निमन्त्रण देते हुए कहा—

हत्थाणीकं रथाणीकं अस्से पत्ती च वम्मिनो,
निवेसनानि रम्मानि अहं पुत्त ददामि ते ॥९२॥
इत्थागारम्पि ते दम्मि सब्बालंकारभूसितं,
ता पुत्त पटिपज्जस्सु त्वंनो राजा भविस्ससि ॥९३॥
कुसला नच्चगीतस्स सिक्खिता चतुरित्थियो,
कामे तं रमयिस्सन्ति किं अरञ्ञे करिस्ससि ॥९४॥
पटिराजूहि ते कञ्ञा आनयिस्सं अलंकता,
तासु पुत्ते जनेत्वान अथ पच्छा पब्बजिस्ससि ॥९५॥
युवा च दहरो चासि पठमुप्पत्तितो सुसु,
रज्जं कारेहि भद्दंते किं अरञ्ञे करिस्ससि ॥९६॥

[हाथी-सेना, रथ-सेना, अश्व, पैदल, कवचधारी और हे पुत्र ! मैं तुझे सुन्दर घर देता हूँ ॥९२॥ हे पुत्र ! मैं तुझे सभी अलंकारों से अलंकृत स्त्रियाँ भी देता हूँ। तू उन्हें ग्रहण कर। तू हमारा राजा होगा ॥९३॥ नृत्य-गीत में कुशल, शिक्षित, चतुर स्त्रियाँ तेरे साथ रमण करेंगी, तू जंगल में क्या करेगा ? ॥९४॥ मैं तेरे

लिये दूसरे राजाओं की कन्याएँ भी लाऊँगा। उनसे पुत्र पैदा करके, पीछे प्रव्रजित होना ॥९५॥ तू युवा है, तरुण है, उत्पत्ति से ही शिशु है। तेरा भला हो, तू राज्य कर; जंगल में क्या करेगा ? ॥९६॥]

इससे आगे बोधिसत्व का धर्मोपदेश है—

युवा चरे ब्रह्मचरियं ब्रह्मचारी युवा सिया,
दहरस्स हि पब्बज्जा एतं इसिहि वण्णितं ॥९०॥
युवा चरे ब्रह्मचरियं ब्रह्मचारी युवा सिया,
ब्रह्मचरियं चरिस्सामि नाहं रज्जेनमत्थिको ॥९८॥
पस्सामि वोहं दहरं अम्मतात वदं नरं
किच्छा लद्धं पियं पुत्तं अप्पत्वाव जरंमतं ॥९९॥
पस्सामि वोहं दहरिं कुमारिं चारुदस्सनं
नलवंसकलीरंव पलुग्गं जीवितक्खये ॥१००॥
दहरापि हि मीयन्ति नरा च अथ नारियो,
तत्थ कोविस्ससे पोसो दहरोम्हीति जीविते ॥१०१॥
यस्स रत्या विवसने आयु अप्पतरं सिया,
अप्पोदकेव मच्छानं किन्नु कोमारकं तहिं ॥१०२॥
निच्चमब्याहतो लोको केन च परिवारितो,
अमोघासु वजन्तीसु किं मं रज्जेन सिञ्चसि ॥१०३॥
केनमब्भाहतो लोको केन च परिवारितो,
कायो अमोघो गच्छन्ति तं मे अक्खाहि पुच्छितो ॥१०४॥
मच्चुना ब्याहतो लोको जराय परिवारितो,
रत्यो अमोघा गच्छन्ति एवं जानाहि खत्तिय ॥१०५॥
यथापि तन्ते वितते यं यदेवूपवीयति,
अप्पकं होति वेतब्बं एवं मच्चानजीवितं ॥१०६॥
यथा वारिवहो पूरो गच्छन्नुपनिवत्तति,
एवमायु मनुस्सानं गच्छन्नुपनिवत्तति ॥१०७॥

यथा वारिवहो पूरो वहे रुक्खूपकूलजे,
एवं जराय मरणेन वुय्हन्ते वन पाणिनो ॥१०८॥

[तरुण ब्रह्मचारी हो और ब्रह्मचारी तरुण हो । ऋषियों (बुद्धादि) ने तरुण की प्रव्रज्या के ही गुण गाये हैं ॥९७॥ तरुण ब्रह्मचारी हो और ब्रह्मचारी तरुण हो । मैं ब्रह्मचर्य्याचरण करूंगा, मुझे राज्य की अपेक्षा नहीं ॥९८॥ मैं देखता हूँ कि 'माँ-माँ, पिता-पिता' कहनेवाला, बड़ी कठिनाई से प्राप्त हुआ पुत्र बूढ़ा होने से पहले ही मर जाता है ॥९९॥ मैं देखता हूँ कि सुन्दर-वर्ण तरुण कुमारी, तरुण बाँस् की तरह, मृत्यु को प्राप्त होकर छिन्नविछिन्न हो जाती है ॥१००॥ नर और नारियाँ जवान भी मर जाती हैं। मैं जवान हूँ, कहकर कौन जीवन का विश्वास करे ॥१०१॥ रात्रि के अवसान की तरह जब आयु ही थोड़ी-सी हो, तो थोड़े पानी की मछलियों के समान कुमार-पन का क्या अर्थ है ? ॥१०२॥ जब संसार नित्य बन्धा हुआ है, जब संसार नित्य परिचालित है, जब अव्यर्थ (?) जा रही है, तो मुझे क्या राज्याभिषिक्त करता है ? ॥१०३॥ (राजा ने प्रश्न किया) यह संसार किससे बंधा हुआ है ? यह संसार किससे परिचालित है ? क्या अव्यर्थ जा रही है ?—यह मुझे बता ॥१०४॥ संसार मृत्यु से बंधा हुआ है, संसार जरा से परिचालित है, रात्रियाँ अव्यर्थ जा रही हैं—हे क्षत्रिय ! ऐसा जान ॥१०५॥ जिस तरह जुलाहा ज्यों-ज्यों कपड़ा बुनता जाता है, त्यों-त्यों बुनने के लिये शेष रहा कपड़ा थोड़ा होता जाता है, वैसा ही आदमियों का जीवन है ॥१०६॥ जिस प्रकार भरी हुई नदी चली ही जाती है, रुकती नहीं है, उसी प्रकार मनुष्यों की आयु चली ही जाती है, रुकती नहीं है ॥१०७॥ जिस प्रकार भरी हुई नदी तट के वृक्षों को बहा ले जाती है, उसी प्रकार जरा तथा मृत्यु प्राणियों को बहा ले जाती है ॥१०८॥]

राजा ने बोधिसत्व की धर्मकथा सुनी तो उसे गृहस्थी से विरक्ति हो गई और उसकी प्रव्रजित होने की इच्छा हुई । वह कहने लगा, 'मैं फिर नगर नहीं जाऊँगा, यहीं रहूँगा । यदि मेरा लड़का नगर जाये, तो इसे श्वेत छत्र दिया जाय ।' उसने उसका विचार जानने के लिये फिर राज्य स्वीकार करने का निमन्त्रण देते हुए कहा—

हत्थाणीकं रथाणीकं अस्से पत्ती च वम्मिनो,
निवेसनानि रम्मानि अहं पुत्त ददामि ते ॥१०९॥

इत्थागारम्पि ते दम्मि सब्बालंकारभूसितं,
ता पुत्त पटिपज्जस्सु त्वं नो राजा भविस्ससि ॥११०॥
कुसला नच्च गीतस्स सिक्खिता चतुरित्थियो,
कामे तं रमयिस्सन्ति किं अरञ्ञे करिस्ससि ॥१११॥
पटिराजूहि ते कञ्ञा आनयिस्सं अलंकता,
तासु पुत्तेजनेत्वान अथो पच्छा पब्बजिस्ससि ॥११२॥
युवाच दहरोचासि पठमुपप्पत्तितो सुसु,
रज्जं कारेहि भद्दं ते किं अरञ्ञे करिस्ससि ॥११३॥
कोट्ठागारञ्च कोसञ्च वाहनानि बलानिच,
निवेसनानि रम्मानि अहं पुत्त ददामि ते ॥११४॥
गोमण्डल परिब्बूलहो दासिसंघपुरक्खतो,
रज्जं कारेहि भद्दं ते किं अरञ्ञे करिस्ससि ॥११५॥

[१०९–११३ (अर्थ ऊपर आ गया है)। भण्डार, कोष, वाहन, सेना तथा सुन्दर घर हे पुत्र ! मैं तुझे देता हूँ ॥११४॥ सुभाषिणी राजकन्याओं के बीच रहकर, दासियों की सेवा प्राप्त करते हुए राज्य कर। तेरा भला हो। जंगल में क्या करेगा ? ॥११५॥]

बोधिसत्व ने राज्य की अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा—

किं धनेन यं जीयेथ किं भरियाय मरस्सति
कि योब्बनेन चिण्णेन यं जरा अभिहेस्सति ॥११६॥
तत्थ का नन्दि का खिड्डा का रतीका धनेसना
किं मे पुत्तेहि दारेहि राज मुत्तोस्मि बन्धना ॥११७॥
सोहं एवं पजानामि मच्चु मे न प्पमज्जति,
अन्तकेनाधिपन्नस्स का रती का धनेसना ॥११८॥
फलानमिव पक्कानं निच्चं पतनतो भयं,
एवं जातान पच्चानं निच्चं मरणतो भयं ॥११९॥
सायमेके न दिस्सन्ति पातो दिट्ठा बहुज्जना
पातो एके न दिस्सन्ति सायं दिट्ठा बहुज्जना ॥१२०॥

अज्जेव किच्चं आतप्पं को जञ्ञा मरणं सुवे,
नहि नो संगरं तेन महासत्तेन मच्चुना ॥१२१॥
चोरा धनस्स पत्थेन्ति राज मुत्तोस्मि बन्धना,
एहि राज निवत्तस्सु नाहं रज्जेन मत्थिको ॥१२२॥

[उस धन से क्या जो नष्ट हो जायगा, उस भार्य्या से क्या जो मर जायगी, उस यौवन से क्या जिसे जरा समाप्त कर देगी ॥११६॥ इसमें क्या आनन्द, क्या खिलवाड़, क्या मज़ा और क्या धन की लालसा? राजन्! मुझे पुत्रों से और स्त्री से क्या, मैं बन्धन से मुक्त हो गया हूँ ॥११७॥ मैं यह जानता हूँ कि मृत्यु मेरे विषय में प्रमाद नहीं करेगी। यमराज के सिर पर रहते हुए क्या मज़ा और क्या धन की लालसा! ॥११८॥ पके फलों के लिये नित्य गिर पड़ने का भय बना है उसी प्रकार उत्पन्न हुए प्राणियों के लिये नित्य मरने का भय बना है ॥११९॥ जो बहुत से जन प्रातःकाल दिखाई देते हैं, उनमें से कुछ सायंकाल नहीं दिखाई देते और जो बहुत से सायंकाल दिखाई देते हैं, उनमें से कुछ प्रातःकाल नहीं दिखाई देते ॥१२०॥ आज ही प्रयत्न करणीय है, कौन जानता है कल मरना हो। उस महान सेना वाले मृत्यु से हमारा कोई समझौता नहीं है ॥१२१॥ चोर धन की इच्छा करते हैं, राजन्! मैं (धनेच्छा रूपी) बन्धन से मुक्त हुआ। राजन्। आप मेरे वचन में दृढ़ हों। मुझे राज्य की अपेक्षा नहीं ॥१२२॥]

इस प्रकार बोधिसत्व का उपदेश यथाक्रम समाप्त हुआ। यह सुन राजा तथा चन्द्रा देवी से आरम्भ करके सोलह हजार रनिवास के लोग तथा अमात्यादि प्रव्रज्या के लिये तैयार हुए। राजा ने मुनादी करा दी, "जो मेरे पुत्र के पास प्रव्रजित होना चाहते हैं, वे प्रव्रजित हो जाँय।" उसने सभी स्वर्ण-भाण्डारादि के दरवाजे खुलवाकर 'अमुक अमुक स्थान में खजाने के बड़े-बड़े घड़े हैं, उन्हें ले लें' स्वर्ण-पट्ट पर लिखवाकर राज प्रासाद के ऊपर खम्भे मे बन्धवा दिया। नागरिक भी दुकानों तथा घरों को खुला छोड़कर राजा के पास गये। जनता सहित राजा ने बोधिसत्व के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। तीन योजन का शक्र प्रदत्त आश्रम हो गया।

बोधिसत्व ने पर्ण-कुटियों का विचार किया। यह कहकर कि स्त्रियाँ भीरू

स्वभाव की होती हैं, उसने स्त्रियों को बीच की कुटियाँ दिखलाईं और पुरुषों को बाहर की। विश्वकर्मा द्वारा निर्मित फलों के वृक्षों से सभी लोग जमीन पर खड़े ही खड़े फल लेकर, खाकर श्रमण-धर्म करते थे। जिसके मन में काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क विहिंसा-वितर्क पैदा होता, उसके मन की बात जानकर बोधिसत्व आकाश में बैठकर धर्मोपदेश देते। उसे सुन लोग शीघ्र ही अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ लाभ करते। एक सामन्त-राजा ने जब यह सुना कि काशी-राज्य प्रव्रजित हो गया, तो वह वाराणसी का राज्य लेने की नीयत से (वाराणसी) आया। उसने नगर में प्रवेश करके अलंकृत नगर को देखा और राजभवन पर चढ़ सात प्रकार के रतन देखे। उसने सोचा यह धन किसी भय का कारण हो सकता है। उसने एक सुरापायी को बुलवाकर पूछा—"राजा किस द्वार से निकला?" उत्तर मिला, "पूर्व द्वार से।" वह भी उसी द्वार से निकलकर नदी तट पर पहुंचा। उसके आने का समाचार पा, बोधिसत्व ने वहाँ पहुंच, आकाश मे स्थित होकर धर्मोपदेश दिया। परिषद सहित वह राजा बोधिसत्व के पास प्रव्रजित हुआ। इसी प्रकार ओर भी तीन राज्य छोड़ दिये गये। हाथी आरण्यक-हाथी हो गये, अश्व भी आरण्यक-अश्व हो गये। रथ आरण्य में ही विनष्ट हो गये। भाण्डागारों में के कार्षापण आश्रम में बालुका की तरह बिखेर दिये गये। सभी ने आठ समापत्तियाँ लाभ कीं और जीवन की समाप्ति पर ब्रह्म-लोकगामी हुए। पशुयोनि के हाथी, घोड़े भी ऋषि-गण के प्रति श्रद्धावान् होने के कारण छः काम-स्वर्गों में उत्पन्न हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, 'भिक्षुओ, न केवल अभी, मैंने पहले भी राज्य छोड़ अभिनिष्क्रम किया ही है" कह जातक का मेल बैठाया। उस समय छत्र में रहनेवाली देवी उत्पलवर्णा थी, सारथी सारिपुत्र था, मातापिता महाराज-कुल, परिषद बुद्ध-परिषद, और मूगपक्ख पण्डित तो मैं ही था।

[सिहल-द्वीप में आकर मङ्गणवासी खुद्दकतिस्स स्थविर तथा महावंसक स्थविर, कटकन्धकारवासी फुस्सदेव स्थविर, उपरिमण्डल मालवासी महारक्षित स्थविर, मग्गरिवासी महातिस्स स्थविर, वामन्थयपब्भारवासी महासीव स्थविर और कळाबेलवासी मलिय महादेव स्थविर—ये सब स्थविर कुद्दालक-सम्मेलन में,

मूगपक्ख सम्मेलन में, अयोधर सम्मेलन[1] में तथा हस्तिपाल सम्मेलन[2] में पीछे आने-वाले कहे जाते हैं। मद्धवासी महानाग स्थविर तथा मलिय महादेव स्थविर ने तो पीरनिर्वाण के दिन कहा, "आयुष्मानो, मूगपक्ख जातक के समय की परिषद आज छीज गई।" "भन्ते। क्यों?" "आयुष्मानो! उस समय हम सुरापायी थे। अपने साथ सुरापीने वाले दूसरे लोगों के न मिलने पर सबके बाद निकलकर प्रव्रजित हुए।]

५३९. महाजनक जातक

'कोयं मज्झे समुद्दस्मि' यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय महान् अभिनिष्क्रमण के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन धर्मसभा में बैठे हुए भिक्षु तथागत के महान् अभिनिष्क्रमण की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने पूछा, "भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत।" 'न केवल अभी, भिक्षुओ, पहले भी तथागत ने महान् अभि-निष्क्रमण किया ही है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र में मिथिला में महाजनक नाम का राजा राज्य करता था। उसके दो पुत्र थे अरिट्ठजनक तथा पोळजनक। राजा ने उनमें से ज्येष्ठ को उपराज दे दिया और छोटे को सेनापति पद। आगे चलकर महाजनक के मरने पर ज्येष्ठ राजा हुआ। उसने छोटे को उपराजा बना दिया। राजा के एक नौकर ने उसके पास पहुंचकर कहा, "देव! उपराजा तुम्हें मार डालना चाहता है," बार

१. अयोधर जातक (५१०)। २. हस्तिपाल जातक (५०९)

बार उसकी बात सुनने से राजा ने विश्वास कर पोळजनक को जंजीरों से बंधवा राजगृह से दूर एक घर में कैद करके पैहरा बिठा दिया।

कुमार ने सत्य-क्रिया की, "यदि मैं भ्रातृद्रोही हूँ तो मेरी जंजीरें भी न खुलें और द्वार भी न खुले, और यदि मैं भ्रातृद्रोही नहीं हूँ तो जंजीरें भी खुल जाँय और द्वार भी खुल जाय।" उसी समय जंजीरें टुकड़े टुकड़े हो गईं और द्वार भी खुल गया। वह निकलकर एक प्रत्यन्त-ग्राम में जाकर रहने लगा। प्रत्यन्त-ग्राम-वासियों ने उसे पहचानकर उसकी सेवा की। राजा उसे नहीं पकड़वा सका।

क्रमशः प्रत्यन्त जनपद उसके हाथ में आ गया। जब उसके बहुत अनुयाई हो गये तो उसने सोचा, 'पहले तो मैं भाई का बैरी नहीं था, किन्तु अब बैरी हूँ।' बड़े समूह के साथ वह मिथिला पहुंचा और नगर के बाहर डेरे डाल दिये। नगर वासियों को जब पता लगा कि पोळजनक कुमार आया है तो उनमें से अधिकांश हाथी, वाहन आदि ले उसी के पास जा पहुंचे। दूसरे भी नागरिक आये। उसने भाई के पास संदेश भेजा, "मैं पहले तुम्हारा वैरी नहीं था, किन्तु अब वैरी हूँ। या तो (राज-) छत्र दो, या युद्ध करो।"

राजा लड़ने के लिये चला तो उसने पटरानी को बुलाकर कहा, "भद्रे! युद्ध में जीत हार के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। यदि मेरे लिये खतरा पैदा हो जाय, तो तू गर्भ की रक्षा करना।" इतना कह उसने विदा ली। युद्ध में पोळजनक के योधाओं ने उसे जान से मार डाला। सारे नगर में हल्ला हो गया कि राजा मारा गया। देवी को जब पता लगा कि वह मर गया तो उसने सोना आदि सारवान वस्तुओं को टोकरी में डाला, उनके ऊपर चीथड़े रखे, ऊपर चावल बिखेरे और मैले कुचैले वस्त्र पहन, शरीर को कुरूप बना, टोकरी को सिर पर रखकर ठेठ दिन में ही निकल पड़ी। किसी ने नहीं पहचाना।

वह उत्तर-द्वार से निकली। पहले कहीं न गई रहने से मार्ग का ज्ञान न होने के कारण दिशा न जान सकी। उसने केवल इतना सुन रखा था कि काळ चम्पानगर है, इसलिये बैठ गई और पूछने लगी कि क्या कोई काळचम्पानगर जाने वाला है? उसकी कोख में कोई ऐसा वैसा प्राणी नहीं था। वह बोधिसत्व था जिसने पारमिताओं

की पूर्ति की थी। उसके तेज से शक्र-भवन काँप उठा। शक्र ने ध्यान दिया तो उसे कारण ज्ञात हुआ। उसने सोचा "उसकी कोख का प्राणी महापुण्यवान् है। मेरा जाना योग्य है।" उसने एक पर्देवाली गाड़ी तैयार की, उसमें शैय्या बिछाई और बूढ़े आदमी की तरह गाड़ी को हाँकता हुआ उस शाला के द्वार पर पहुंच कर खड़ा हुआ जहाँ वह बैठी थी, और पूछा—"कोई कालचम्पानगर जाने वाला है?"

"तात ! मैं चलूंगी।"

"अम्म ! तो रथपर चढ़कर बैठ।"

"तात ! मैं गर्भ-पूर्णा हूँ। मैं गाड़ी पर नहीं चढ़ सकती। मैं पीछे पीछे आऊँगी। मेरी इस टोकरी को जगह दे दे।"

"अम्म ! क्या कहती है। मेरे जैसा कोई दूसरा गाड़ी हाँकनेवाला नहीं है। डर मत। चढ़कर बैठ।"

उसके चढ़ने के समय शक्र ने अपने प्रताप से पृथ्वी को ऊपर उठाकर गाड़ी के पिछले किनारे से लगा दिया। उसने चढ़कर शैय्या पर लेटते ही जान लिया कि यह देवता होगा। उसे दिव्य शय्या पर लेटते ही नींद आ गई।

तीस योजन पर एक नदी के किनारे पहुंच, शक्र ने उसे जगाकर कहा, "अम्म ! उतरकर नदी में स्नान कर। तकिये पर कपड़ा है। उसे पहन ले। गाड़ी के अन्दर भोजन की पोटली है। उसे खा ले।" उसने वैसा किया और फिर लेट गई। शाम को चम्पा नगर पहुंच, वहाँ के द्वार, अट्टालिका तथा प्राकार देख पूछा—"तात ! इस नगर का क्या नाम है?"

"अम्म ! चम्पा नगर।"

"तात ! क्या कह रहे हो ? क्या हमारे नगर से चम्पा नगर साठ योजन की दूरी पर नहीं है !"

"अम्म ! ऐसा ही है किन्तु मैं सीधा रास्ता जानता हूँ।"

उसने उसे दक्षिण-द्वार के समीप उतार दिया और बोला, "अम्म ! हमारा गाँव आगे ही है। तू नगर में प्रवेश कर।"

आगे जाकर शक्र अन्तर्धान होकर अपने भवन को ही चला गया। देवी भी जाकर एक शाला में बैठी।

उस समय एक चम्पा-वासी मन्त्र-पाठी ब्राह्मण पाँच सौ शिष्यों को साथ लिये स्नान करने जा रहा था। उसने दूर से ही उस सुन्दर रमणी को वहाँ बैठे देखा। कोख के बालक के प्रताप से, देखने के साथ ही उसके मन में छोटी बहन का स्नेह पैदा हो गया। उसने शिष्यों को छोड़ा और अकेले ही शाला में पहुंचकर पूछा—

"बहन ! किस गाँव की रहनेवाली है ?"

"मैं मिथिला के राजा अरिट्ठजनक की पटरानी हूँ।"

"यहाँ किसलिये आई ?"

"पोळजनक ने राजा को मार डाला। मैं डरकर गर्भ-रक्षा के निमित्त भाग आई।"

"इस नगर में तुम्हारा कोई रिश्तेदार है ?"

"तात ! नहीं है।"

"तो चिन्ता मत कर। मैं ब्राह्मण महाशाल दिशा-प्रसिद्ध आचार्य्य हूँ। मैं तुझे बहन मानकर, तेरा पालन-पोषण करूंगा। तू मुझे 'भाई' कहकर पैर पकड़कर रो।"

वह चिल्लाती हुई उसके पैरों पर गिर पड़ी। वे परस्पर मिलकर रोये। शिष्यों ने दौड़कर पूछा, "आचार्य्य ! क्या लगती है ?"

"मेरी छोटी बहन है। अमुक समय मुझसे पृथक हो गई।"

उसे देख लेने के बाद ही शिष्यों ने कहा, "आचार्य ! चिन्ता न करें।" उसने उसे पर्देवाली गाड़ी में चढ़ा, वहाँ बिठाकर शिष्यों से कहा, "तात ! ब्राह्मणी से कहना, 'यह मेरी बहन है, सभी करणीय करे।" उसने उसे घर भेज दिया। ब्राह्मणी ने उसे गर्म पानी से स्नान करवा, शैय्या बिछाकर उसपर लिटाया। ब्राह्मण नहाकर आया। भोजन के समय उसने कहा, 'मेरी बहन को बुलाओ'। उसके साथ साथ भोजन करके उसने उसे घर में रखकर ही उसका पालन पोषण किया।

थोड़े ही समय बाद उसने पुत्र को जन्म दिया। पितामह के नामपर उसका नाम महाजनक कुमार ही रखा गया। वह बढ़ने लगा। लड़कों के साथ खेलने के समय, यदि वे उसे क्रोधित कर देते, तो वह शुद्ध क्षत्रिय-वंश में उत्पन्न होने के कारण,

बलवान होने के कारण तथा अभिमानी होने के कारण उन्हे जोर से पीट देता । वे जोर जोर से चिल्लाते । जब उन्हें पूछा जाता कि किसने पीटा ? वे कहते—"विधवा के पुत्र ने ।" कुमार सोचने लगा, यह मुझे नित्य 'विधवा का पुत्र' कहते हैं, मैं माँ से पूछूंगा । उसने एक दिन पूछा—"माँ ! मेरा पिता कौन है ?" माँ ने धोखा दिया, "तात । ब्राह्मण तेरा पिता है ।" उसने फिर एक दिन पीटा । लोगों ने उसे 'विधवा-पुत्र' कहा । वह बोला, क्या ब्राह्मण मेरा पिता नहीं है ? वे बोले "ब्राह्मण तेरा क्या लगता है ?" तब वह सोचने लगा, "यह कहते हैं, ब्राह्मण तेरा क्या लगता है ! माँ मुझे यह बात नहीं बताती है । वह अपनी मर्जी से नहीं बतायेगी । अच्छा, मैं उसे बताने के लिये मजबूर करूंगा ।" उसने स्तन-पान करते समय उसे डस लिया और बोला, "बता मेरा पिता कौन है ? यदि नहीं बतायेगी तो तेरा स्तन काट खाऊंगा ।" उसने धोखा न दे सकने के कारण कहा, "तात ! तू मिथिला के राजा अरिट्ठजनक का पुत्र है । तेरे पिता को पोळजनक ने मार डाला । मैं तेरी रक्षा करती हुई इस नगर में आ पहुंची । ब्राह्मण मुझे बहन मानकर पालन-पोषण करता है ।" उसके बाद से वह "विधवा-पुत्र" कहने पर भी क्रुद्ध नहीं होता था ।

उसने सोलह वर्ष के भीतर ही तीनों वेद और सब शिल्प सीख लिये । सोलह वर्ष की आयु होने पर सुन्दर रूपवान हुआ । 'पिता का राज्य लूंगा,' सोच उसने माता से पूछा, "अम्म ! कुछ तेरे पास है ? अन्यथा व्योपार करके धन उपार्जन कर राज्य ग्रहण करूँगा ।"

"तात ! मैं खाली हाथ नहीं आई । एक एक मोती, मणि तथा वज्र राज्य ग्रहण करने के लिये पर्याप्त है । उसे लेकर राज्य ग्रहण कर । व्योपार मत कर ।"

"मां ! वह भी धन मेरा ही है । उसमें से आधा ले, स्वर्ण-भूमि जा, बहुत धन ला, राज्य ग्रहण करूंगा ।"

उसने आधा धन मंगवाया, उससे सामान खरीदा । फिर उसे स्वर्ण-भूमि जाने वाले व्योपारियों के साथ नौका पर लदवा, जाकर माता को कहा, "मां ! मैं स्वर्ण-भूमि जाऊँगा ।"

"तात! समुद्र में सिद्धि कम है, खतरा बहुत है। मत जा। राज्य ग्रहण करने के लिये तेरे पास बहुत धन है।"

उसने, 'माँ! जाऊंगा ही' कहा और माँ को नमस्कार कर निकल कर नौका पर जा चढ़ा।

उसी दिन पोळजनक के शरीर में रोग उत्पन्न हो गया। वह फिर न उठने के लिये पड़ गया। सात सौ आदमी नौकाओं पर चढ़े। नौका सात दिनों में सात सौ योजन गई। वह बहुत तेजी से जाकर आगे न बढ़ सकी। तख्ते टूट गये। जहाँ तहाँ से पानी निकलने लगा। नौका बीच समुद्र टूट गई। लोग रोने-पीटने लगे, नाना प्रकार के देवताओं को नमस्कार करने लगे। बोधिसत्व ने न रोना-पीटना किया और न किसी देवता को ही नमस्कार किया। जब यह पता लगा कि नौका डूबने जा रही है तो घी और शक्कर मिलाकर, पेट भर खाया। फिर दो चिकने कपड़ों में तेल चिपड़, अच्छी तरह लपेट, मस्तूल के सहारे खड़ा हो गया। जब नौका डूबने लगी, मस्तूल पर चढ़ गया। लोग मच्छ तथा कच्छुओं का भोजन बन गये। सारा पानी रक्तवर्ण हो गया।

बोधिसत्व ने मस्तूल पर चढ़े ही चढ़े विचार किया कि मिथिला नगरी अमुक दिशा में है। फिर मस्तूल से उछलकर मच्छ तथा कछुओं को मारकर, महाबल-शाली होने के कारण, उसभ भर आगे गिरा। उसी दिन पोळजनक की मृत्यु हो गई। उस समय से बोधिसत्व मणिवर्ण लहरों में स्वर्णवर्ण लट्ठ की तरह तैरने लगे। जैसे एक दिन, उसी प्रकार वह सप्ताह तक तैरता रहा। समय देख, नमकीन-जल से मुँह प्रक्षालन कर उपोसथ-व्रत धारण करता रहा। उस समय चारों लोक-पालों ने मणि-मेखला नामकी देव-कन्या को समुद्र-रक्षक नियुक्त किया था कि माता-पिता की सेवा आदि गुणों से युक्त जो प्राणी समुद्र में गिरने के अयोग्य हों और तो भी गिर पड़ें, तो तू उनका ख्याल रख। उसने उन सात दिनों में समुद्र की ओर ध्यान नहीं दिया। सम्पत्तिका मजा लूटते रहने के कारण ही वह स्मृति-मूढ हो गई। यह भी कहा जाता है कि वह 'देव-समागम' में गई। उसने सोचा, 'मुझे समुद्र की ओर ध्यान दिये सात दिन बीत गये। क्या समाचार है?' जब उसने बोधिसत्व को देखा तो सोचा, "यदि महाजनक कुमार समुद्र में विनाश को प्राप्त

हुआ तो मुझे देव-सम्मेलन में प्रवेश तक नहीं मिलेगा।" उसने बोधिसत्व से थोड़ी ही दूर पर, अलंकृत शरीर से आकाश में खड़े ही, बोधिसत्व की परीक्षा लेते हुए यह गाथा कही—

कोयं मज्झे समुद्दस्मिं अपस्सं तीरमायुहे,
कं त्वं अत्थवसं ञत्वा एवं वायमस्स भुसं ॥१॥

[यह कौन है जो समुद्र में तट को न देखते हुए भी प्रयत्न कर रहा है? तू किस बात को समझकर इतना प्रयत्न कर रहा है? ॥१॥]

तब बोधिसत्व ने यह सोच कि आज मुझे समुद्र में तैरते हुए सातवाँ दिन हो गया। मैंने कोई दूसरा प्राणी नहीं देखा। यह कौन है जो मुझसे बात कर रहा है, आकाश की ओर देखते हुए दूसरी गाथा कही—

निसम्म वत्तं लोकस्स वायामस्स च देवते,
तस्मा मज्झे समुद्दस्मि अपस्सं तीरमायुहे ॥२॥

[हे देवी! लोक के कर्तव्य और प्रयत्न पर विचार किये रहने के कारण किनारे के अदृश्य रहने पर भी मैं समुद्र में प्रयत्न कर रहा हूँ ॥२॥]

उसने उसकी धर्मकथा सुनने की इच्छा से फिर गाथा कही—

गम्भीरे अप्पमेय्यस्मि तीरं यस्स न दिस्सति,
मोघो ते पुरिस वायामो अप्पत्वाव मरिस्ससि ॥३॥

[गहरे, असीम समुद्र में, जिसका तट भी दिखाई नहीं देता, हे पुरुष! तेरा प्रयत्न वृथा है। तू बिना तट पर पहुंचे ही मर जायगा ॥३॥]

बोधिसत्व ने यह 'क्या कहती है, मैं प्रयत्न करता हुआ मरने पर भी निन्दा से तो मुक्त रहूंगा' कह गाथा कही—

अनणो ञातीनं होति देवानं पितुनोच सो,
करं पुरिस किच्चानि न च पच्छानुतप्पति ॥४॥

[जो आदमी का कर्तव्य करता है, वह रिश्तेदारों के, देवताओं के, तथा पितृ-ऋण से उऋण हो जाता है और उसे बाद में अनुताप नहीं होता ॥४॥]

तब देवी बोली—

> **अपारणेय्यं यं कम्मं अफलं किलमथुद्दयं,**
> **तत्थ को वायमेनत्थो मच्चु यस्साभिनिप्फतं ॥५॥**

[जो प्रयत्न करने पर भी असाध्य है, जिसका कोई फल नहीं, जिसमें क्लेश ही क्लेश है और जिसका निश्चित परिणाम केवल मृत्यु है, ऐसे प्रयत्न से क्या लाभ ? ॥५॥]

ऐसा कहे जाने पर बोधिसत्व ने देवी को निष्प्रभ करने वाली गाथायें कहीं—

> **अपारणेय्यं अच्चन्तं यो विदित्वान देवते,**
> **न रक्खे अत्तनो पाणं जञ्ञा सो यदि हापये ॥६॥**
> **अधिप्पाय फलं एके अस्मिं लोकस्मि देवते,**
> **पयोजयन्ति कम्मानि तानि इज्झन्ति वा न वा ॥७॥**
> **सन्दिट्ठिकं कम्मफलं ननु पस्ससि देवते,**
> **सन्ना अञ्ञे तरामहं तञ्च पस्सामि सन्तिके ॥८॥**
> **सो अहं वायमिस्सामि यथा सत्ति यथाबलं,**
> **गच्छं पारं समुद्दस्स कासं पुरिसकारियं ॥९॥**

[हे देवी ! जो यह जानकर कि उद्देश्य की पूर्ति अत्यन्त असम्भव है अपने प्राणों की रक्षा नहीं करता, वह यदि प्रयत्न छोड़ता है, तो यह उसके प्रमाद का ही परिणाम है (?) ॥६॥ देवी ! इस लोक में कुछ लोग अभिप्राय-विशेष से किसी काम में लगते हैं। वह पूरा होता है, नहीं भी होता है ॥७॥ हे देवी ! मेरे इस कर्म का तो क्या तू साक्षात् फल नहीं देखती है ? दूसरे लोग डूब गये। मैं अभी भी तैर रहा हूँ और तेरा दर्शन मिला है ॥८॥ इसलिये मैं यथा-शक्ति यथा-बल समुद्र पार जाने का प्रयत्न करूंगा। मैं 'आदमी का कर्तव्य' करूंगा ॥४॥]

देवी ने उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा सुन उसकी प्रशंसा करते हुए गाथा कही—

> **यो त्वं एवं गते ओघे अप्पमेय्ये महण्णवे,**
> **धम्मवायाम सम्पन्नो कम्मना नावसीदसि,**
> **सो त्वं तत्थेव गच्छाहि यत्थ ते निरतो मनो ॥१०॥**

[जो तू इस प्रकार के असीम, गहरे, महासमुद्र में भी अपने धार्मिक-प्रयत्न रूपी कर्म को नहीं छोड़ रहा है, तो जहाँ तेरा मन है, तू वहीं पहुंच जा ।।१०।।]

इतना कहकर देवी ने पूछा, "पण्डित महापराक्रम ! तुझे कहाँ पहुँचा दूं ?" "मिथिला नगर ।" उसने बोधिसत्व को वैसे ही उठाया जैसे कोई माला-समूह को और दोनों हाथों में ले, छाती से लगा उसे उसी प्रकार आकाश में उड़ा कर ले चली जैसे कोई प्रिय-पुत्र को । नमकीन पानी में रहने से उसका शरीर पक गया था । दिव्य-स्पर्श के कारण निद्रा आ गई । वह उसे मिथिला ले गई और आम्रवन की मङ्गल-शिला पर दक्षिण-पार्श्व लिटा दिया । फिर उद्यान-देवताओं पर उसकी रक्षा का भार डाल अपने भवन को चली गई । पोळजनक का पुत्र नहीं था । हाँ, उसकी एक लड़की थी । उसका नाम सीवली देवी था, पण्डिता, व्यक्ता । जिस समय राजा मृत्यु-शैय्या पर था, उसे पूछा गया, "देव ! तुम्हारे देवत्व प्राप्त करने पर राज्य किसे सौंपें ?"

"जो मेरी पुत्री सीवली देवी को अच्छा लगे, जो चौकोर चारपाई का सिरहाना जानता हो, जो हज़ार के बल वाले धनुष को चढ़ा सकता हो तथा जो सोलह महान् निधियों को निकाल ला सके, उसे सौंप दें ।"

"देव ! उन निधियों का उदान-वाक्य कहें ।"

राजा ने निधियों के साथ शेष चीजों का भी 'उदान' कहा—

सुरियुग्गमणे निधि अथो ओग्गमणे निधि,
अन्तो निधि बहि निधि न अन्तो न बहि निधि ।।११।।
आरोहणे महानिधि अथो ओरोहणे निधि,
चतुरोच महासाला समन्ता योजने निधि ।।१२।।
दन्तग्गेसु महानिधि वालग्गेसु च केबुके,
रुक्खग्गेसु महानिधि सोळसेते महानिधि,
सहस्सत्थोमो पल्लंको सीवला राधनेन च ।।१३।।

[सूर्य्योदय होने के स्थान पर निधि है, सूर्य्यास्त होने के स्थान पर निधि है । अन्दर निधि है, बाहर निधि है, 'न अन्दर न बाहर' निधि है ।

चढ़ने की जगह पर निधि है, उतरने की जगह पर निधि है। चारों महाशाल और चारों ओर योजन भर में निधि है। दान्तो के आगे महानिधि है। बालों के सिरों पर, पानी में बड़े वृक्षों पर—इन सोलह जगहों में महानिधि है। सहस्र के उठाने का धनुष, पलंग और सीविली की संतुष्टी ।।११—१३।।]

अमात्यों ने राजा की मृत्यु के बाद उसका मृतक-कृत्य कर सातवें दिन इकट्ठे होकर सोचा, "राजा ने कहा है कि जो उसकी लड़की को अच्छा लगे उसे राज्य दिया जाय, उसे कौन सन्तुष्ट कर सकेगा?" उन्होंने सेनापति को 'प्रिय-पात्र' समझ सन्देश भेजा। उसने 'अच्छा' कहा और राज्यार्थी होकर राज-द्वार पर पहुंचा। उसने राजकन्या को अपने आगमन की सूचना भिजवाई। उसे जब सेनापति के आने का उद्देश्य मालूम हुआ तो उसने इस बात की परीक्षा करने के लिए कि उसमें राज्य-छत्र धारण करने की धृति है वा नहीं, कहला भेजा कि शीघ्र आ जाये।

वह जहाँ से सीढ़ी आरम्भ होती थी वहीं से तेजी से जा उसके पास खड़ा हुआ। उसने उसकी परीक्षा लेने के लिए कहा "ऊंचे तल्ले पर तेजी से दौड़।" वह राज्य-कन्या को प्रसन्न करने के उद्देश्य से जोर से कूदा। उसे फिर कहा "आ।" वह फिर तेजी से आया। उसने उसमें धृति का अभाव देख, कहा,"आ मेरे पैर दबा।" वह उसे प्रसन्न करने के लिए बैठकर पाँव दबाने लगा। उसने उसकी छाती में पाँव का प्रहार कर उसे चित्त गिरा दिया और दासियों को संकेत किया कि इस अंधे, मूर्ख, धृति-हीन आदमी को पीटकर गरदन से पकड़ बाहर निकाल दो। उन्होंने वैसा ही किया। लोगों ने पूछा, "सेनापति ! कैसा रहा?" वह बोला, "कुछ मत पूछो, वह स्त्री नहीं है, वह यक्षिणी है।" तब खजानची गया। उसे भी वैसे ही लज्जित कराया। तब श्रेष्ठी, छत्र-ग्राह, तथा असिग्राह सभी को लज्जित ही कराया। तब जनता ने विचार किया, "राज्य-कन्या को प्रसन्न कर सकने वाला कोई नहीं है, हज़ार के बल के धनुष को चढ़ा सकनेवाले को (राज्य) दें।" उसे भी कोई नहीं चढ़ा सका। तब कहा, "चौकोर चारपाई के सिरहाने के जानकार को दो।" उसे भी कोई नहीं जानता था। तब "सोलह महानिधि निकाल सकने वाले को दें।" वह भी कोई नहीं निकाल सका।

तब वे सोचने लगे, "राजा विहीन राज्य की रक्षा नहीं की जा सकती। क्या करना चाहिए?" तब पुरोहित ने कहा, "चिन्ता न करो। पुष्य-रथ का छोड़ना योग्य है। पुष्य-रथ से मिला हुआ राजा सारे जम्बु द्वीप पर राज्य कर सकता है।" उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और नगर को सजवाकर मङ्गल-रथ में चार कुमुद-वर्ण घोड़े जुतवाये। फिर ऊपर का कपड़ा डलवा पाँचो राजकीय चिन्ह रखवाये और उसे चतुरङ्गिनी सेना से घेरा। सस्वामी रथ में बाजे आगे-आगे बजते हैं और अस्वामी-रथ के पीछे-पीछे। इसलिए पुरोहित ने बाजे पीछे पीछे बजवाये। फिर रथ के बाजे तथा पैंणी को सोने की झारी से अभिसिञ्चित कर कहा, "जिसका राज्य करने का पुण्य है, उसके पास जा।" रथ राजगृह की प्रदक्षिणा कर घोषणा-पथ पर हो लिया। सेनापति आदि सोचने लगे, "रथ मेरे पास आयेगा, मेरे पास आयेगा।" वह सबके घर लाँघ नगर की प्रदक्षिणा कर, पूर्व-द्वार से निकल उद्यान की ओर चला गया।

उसे तेजी से जाता देख, लोगों ने रुकने के लिए कहा। पुरोहित ने मना किया, "मत रोको। चाहे सौ योजन भी जाये, जाने दो।" रथ उद्यान में दाखिल हुआ और मङ्गल-शिला की प्रदक्षिणा कर चलने को तैयार होकर खड़ा हुआ। पुरोहित ने बोधिसत्व को लेटे देख, अमात्यों को संबोधित कर कहा, "भो! शिला पर एक आदमी लेटा दिखाई देता है। नहीं कह सकते कि उसमें श्वेत-छत्र धारण करने योग्य धृति है अथवा नहीं है? यदि पुण्य-शाली होगा तो नहीं देखेगा। यदि मनहूस होगा तो डरकर, घबराकर उठेगा और काँपता हुआ देखेगा। शीघ्र सभी बाजे बजाओ।" उसी समय सैकड़ों बाजे बजाये गये। सिन्धु-गर्जन के समान हुआ। बोधिसत्व की आँख खुल गई। उसने सिर उघाड़ कर लोगों को देखा तो समझ लिया कि श्वेत-छत्र लेकर आये होंगे। वह फिर सिर ढककर पलटकर बाईं करवट लेट रहा। पुरोहित ने पाँव नंगेकर, लक्षणों को देखकर जान लिया कि एक द्वीप की तो बात ही क्या, यह चारों द्वीपों का राज्य कर सकता है। उसने फिर बाजे बजवाये। बोधिसत्व ने मुँह उघाड़, पलटकर दक्षिण करवट लेट जनता को देखा। पुरोहित ने लोगों को हटा दिया और हाथ जोड़कर, झुककर प्रार्थना की, "देव उठें। आपको राज्य प्राप्त हुआ है।"

"राजा कहाँ गया ?"

"मृत्यु हो गई।"

"उसका पुत्र या भाई नही है ?"

"देव ! नहीं है।"

"अच्छा, राज्य करूंगा" कह शिला पर पालथी मारकर बैठा। उसका वहीं अभिषेक किया गया। महाजनक राजा हुआ। वह श्रेष्ठ रथ पर चढ़, बड़े ठाट-बाट के साथ नगर में दाखिल हुआ। अपने राज-भवन पर चढ़ते हुए उसने सोचा कि सेनापति आदि के पदों पर जो नियुक्त रहे हैं, वे ही नियुक्त रहें। राजकन्या ने पहली मान्यता के अनुसार ही उसकी परीक्षा लेने के लिये एक आदमी को आज्ञा दी, "जा राजा को जाकर कह, देव ! सीवली देवी आपको बुलाती है, शीघ्र आयें।" राजा पण्डित था। उसकी बात अनसुनी करके, महल की ही प्रशंसा करता रहा, "ओह ! महल बड़ा सुन्दर है।" जब वह नहीं ही सुना सकी तो उसने जाकर देवी से कहा, "आर्ये ! वह राजा तुम्हारी बात नहीं सुनता। प्रासाद की ही प्रशंसा करता है। तुम्हें तिनके के बराबर भी नहीं समझता। महान् आशयवाला पुरुष होगा।" उसने दूसरी और तीसरी बार भी भेजा। राजा अपनी रुचि से, स्वाभाविक गति से सिंह की तरह जाग्रत हो प्रासाद पर चढ़ा। उसके पास जाने पर राजकन्या उसके तेज के कारण अपने आपको संभाले न रख सकी। उसने आकर हाथ का सहारा दिया।

उसके हाथ का सहारा ले वह महल के ऊपर के तल्ले पर चढ़ा ओर श्वेत-छत्र के नीचे राज्य सिंहासन पर बैठ उसने आमात्यों को सम्बोधित कर पूछा, "क्या राजा ने मरते समय कोई ख़ास बात कही थी ?"

"देव ! हाँ।"

"तो कहो।"

"देव ! उसने कहा जो सीवली देवी को अच्छा लगे उसे राज्य देना।"

"सीवली देवी ने आकर हाथ का सहारा दिया, सो वह प्रसन्न है, दूसरी बात कहो।"

"देव ! चौकोर चारपाई का सिराहना जान सकने वाले को राज्य देना।"

राजा ने सोचा, 'यह जानना कठिन है। किन्तु उपाय करके जाना जा सकता है।' उसने सिर में से स्वर्ण-सूई निकालकर देवी के हाथ पर रखी कि इसे रख दे। उसने उसे ले पलंग के सिराहने रखा। यह भी कहते ही हैं कि खड्ग दी। इस बात से उसने जान लिया कि यह सिराहना है। फिर बात नहीं सुनी होने के समान होकर पूछा, "क्या कहते हो?" उनके फिर उसी बात को दोहराने पर कहा, "इसका जान सकना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह सिराहना है। और क्या है?"

"देव। आज्ञा दी है कि जो हजार के बलवाले धनुष को चढ़ा सके उसी को राज्य देना।"

'तो मंगवाओ'। वह धनुष मंगवा उसने पलंक पर बैठे ही बैठे स्त्रियों के कपास धुनने की धुनकी की तरह उसे चढ़ा दिया। फिर पूछा, "और कहो?" "उसने कहा था कि जो सोलह निधियों को निकाल सके, उसे राज्य देना।" उनका कुछ अता-पता है? 'हाँ है' कहकर उन्होंने 'सुरियुग्गमणे निधि' आदि कहा। उसके सुनते ही उसे आकाश के चन्द्रमा की तरह उसका अर्थ प्रकट हो गया।

उसने उन्हें कहा, "आज समय नहीं है। कल निधि निकालेंगे।" अगले दिन उसने अमात्यों को एकत्रित कर पूछा, "तुम्हारा राजा प्रत्येक-बुद्धों को भोजन कराता था?" "देव! हाँ।" उसने सोचा, 'सूर्य्य' का मतलब 'सूर्य्य' नहीं है, सूर्य्य के समान होने से प्रत्येक-बुद्ध ही सूर्य्य हैं। उनकी अगवानी करने की जगह निधि होनी चाहिये। तब प्रश्न किया, "प्रत्येक बुद्धों के आने पर उनकी अगवानी करने के लिये राजा कहाँ तक जाता था?" 'अमुक स्थान तक' कहने पर वह जगह खुदवाकर वहाँ से खजाना निकलवाया। फिर पूछा, "जाते समय कहाँ तक पीछे जाकर, कहाँ खड़ा होकर विदा करता था?" "अमुक-स्थान पर" कहने पर 'वहाँ से निधि निकालो' कह निधि निकलवाई। जनता चिल्ला पड़ी। उसने यह कहते हुए अपनी प्रसन्नता व्यक्त की कि "'सुरियुग्गमण' कहने के कारण हम सूर्योदय की दिशा में खोदते फिरे और 'अवगमन' कहने के कारण सूर्य्यास्त की दिशा में। यह धन तो यहीं है। ओह आश्चर्य!" 'अन्दर खजाना' के संकेत से राजभवन के बड़े दरवाजे की देहली के नीचे से निधि निकलवाई। 'बाहर खजाना' के संकेत से देहली के बाहर से निधि निकलवाई। 'न अन्दर न बाहर' संकेत से देहली के नीचे

से निधि निकलवाई। 'चढ़ने के स्थान पर' संकेत से मंगल-हाथी पर चढ़ने के समय सोने की सीढी रखने के स्थान से निधि निकलवाई। 'उतरने के स्थान पर' संकेत से हाथी से उतरने के स्थान से निधि निकलवाई। 'चार महासाल' संकेत से भूमि में गड़ी हुई शैय्या के चारों पावे शालमय थे। उनके नीचे से खजाने के घड़े निकलवाये। 'चारों ओर योजन भर में' संकेत से योजन का अर्थ 'रथ-युग' करके शैय्या के चारों ओर युग भर की दूरी में से खजानों के घड़े निकलवाये। 'दान्तों के आगे महानिधि' के संकेत से मङ्गल हाथी के स्थान पर उसके दोनों दान्तों के सामने के स्थान से दो खजाने निकलवाये। 'बाल के सिरे पर' के संकेत से मङ्गल घोड़े के स्थान पर उसकी पूंछ उठाने की जगह से खजाना निकलवाया। 'केब्रुक' संकेत से यह जानकर कि केबुक कहते हैं जल को, मङ्गल-पुष्करिणी से जल निकलवाकर निधि दिखाई। 'वृक्षों के नीचे' के संकेत से अपने उद्यान में ही बड़े शाल वृक्ष के नीचे ठीक मध्याह्न के समय, मण्डलाकार वृक्ष की छाया के अन्दर से खजाने के घड़े निकलवाये। इस प्रकार सोलह निधियाँ निकलवाकर पूछा, "और कुछ है?"

"देव। और कुछ नहीं।" जनता बड़ी प्रसन्न हुई।

राजा ने यह धन 'दान करूँगा' सोच नगर के बीच में एक तथा चारों द्वारों पर चार, इस प्रकार पाँच दान शालायें बनवाकर महादान दिया। काल चम्पानगर से माता तथा ब्राह्मण को बुलाकर बड़ा सत्कार किया। उसके राज्य करना आरम्भ करने पर ही सारे विदेह राष्ट्र में उसका दर्शन करने के लिए हलचल मच गई। "अरिट्ठजनक राजा का लड़का महाजनक राजा राज्य करता है। वह पण्डित है। उसे देखेंगे।" जहाँ तहाँ से बहुत सी भेंट लेकर आये। नगर में महान् उत्सव किया गया। राज-भवन में हाथियों को झोल आदि ओढाये गये, सुगन्धियाँ और मालायें फैलाई गई; खील, फूल, सुगन्धी तथा धूप की अधिकता से अन्धेरा सा करके, नाना तरह के भोजन तैयार किये गये। लोग राजा को भेंट देने के लिये चान्दी सोने आदि के बरतनों में नाना प्रकार की खाने पीने आदि की सामग्री और फला-फल लिये जहाँ तहाँ इकट्ठे होकर खड़े थे। एक ओर आमात्य-मण्डल बैठा। एक ओर ब्राह्मण-गण, एक ओर श्रेष्ठी आदि। एक ओर उत्तम रूपवाली नटियाँ। ब्राह्मणों में स्वस्ति-वाचन तथा मङ्गल पाठ करने वाले थे। वे मङ्गल-गीत आदि में कुशल थे। उन्होंने

मङ्गल गाने गाये। सैकड़ों बाजे बजे। राजभवन-युगन्धर सागर की कोख की तरह गूंज उठा। जहाँ जहाँ देखो वहीं कांपता था।

बोधिसत्व ने श्वेतछत्र के नीचे राज्यासन पर बैठे, बैठे शक्र के ऐश्वर्य के समान ऐश्वर्य देख, अपने महासमुद्र में किये गये प्रयत्न को याद किया। उसने सोचा, प्रयत्न करना ही चाहिये। यदि मैंने महासमुद्र में प्रयत्न न किया होता, तो मुझे यह सम्पत्ति न मिलती। उसे बड़ा आनन्द आया। उसने आनन्द में मगन हो 'उदान' कहते हुए कहा--

आसिंसेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
पस्सामि वोहं अत्तानं यथा इच्छिं तथा अहु ॥१४॥
आसिंसेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
पस्सामि वोहं अत्तानं उदका थलमुब्भतं ॥१५॥
वायमेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
पस्सामि वोहं अत्तानं यथा इच्छिं तथा अहु ॥१६॥
वायमेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
पस्सामि वोहं अत्तानं उदका थलमुब्भतं ॥१७॥
दुक्खूपनीतोपि नरो सपञ्ञो
आसं न छिन्देय्य सुखागमाय,
बहू हि फस्सा अहिता हिता च
अवितक्किकता मच्चुमुपब्बजन्ति ॥१८॥
अचिन्तितम्पि भवति चिन्तितम्पि विनस्सति,
न हि चिन्तामया भोगा इत्थिया पुरिसस्स वा ॥१९॥

[आदमी आशा करता ही रहे। पण्डित को चाहिये कि कभी निराश न हो। मैं अपने आपको देखता हूँ कि मैंने जैसी इच्छा की थी, वैसा ही हो गया ॥१४॥ आदमी....न हो। मैं अपने आपको देखता हूँ कि मैं जल से स्थल पर लाया गया ॥१५॥ आदमी प्रयत्न करता ही रहे। पण्डित को चाहिये कि कभी निराश न हो। मैं अपने आपको ही देखता हूँ कि मैंने जैसी इच्छा की थी, वैसा ही हो गया ॥१६॥ आदमी प्रयत्न....न हो। मैं अपने आपको ही देखता हूँ कि मैं जल से स्थल पर

लाया गया ।।१७।। बुद्धिमान आदमी को चाहिये कि दुःख आ पड़ने पर भी सुख की आशा न छोड़े। बहुत से दुःखों तथा सुखों का विचार न करनेवाले यूं ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं ।।१८।। जिस की आशा नहीं होती है, वह भी हो जाता है जिसकी आशा होती है, वह भी नष्ट हो जाता है। स्त्री अथवा पुरुष के वैभव चिन्तन के आधीन नहीं हैं ।।१९।।]

इसके बाद से वह दस राज धर्मों के विरुद्ध न जा धर्मानुसार राज्य करने लगा। प्रत्येक-बुद्धों की सेवा करने लगा। आगे चलकर सीवली देवी ने धन तथा पुण्य के लक्षणों वाले पुत्र को जन्म दिया। दीर्घायुकुमार उसका नाम रखा गया। उसके बड़े होने पर राजा ने उसे उपराज पद दे दिया। एक दिन माली फलाफल और नाना प्रकार के पुष्प लाया। उन्हें देख सन्तुष्ट हो राजा ने उसका सम्मान किया और फिर कहा, "माली ! हम उद्यान देखेंगे। उसे सजवाओ।" उसने 'अच्छा' कह, वैसा करके राजा को सूचना दी। वह हाथी के कन्धे पर चढ़, बहुत से अनुयाइयों के साथ उद्यान-द्वार पर पहुंचा। वहाँ दो आम के पेड़ थे, गहरे हरे रंग के। एक पर फल थे दूसरे पर नहीं। फलवाले के फल अत्यन्त मधुर थे। किन्तु क्योंकि राजा ने उसका पहला-फल नहीं खाया था, इसलिये कोई उसका फल नहीं ले सकता था। राजा ने हाथी के कन्धे पर बैठे ही बैठे उसका एक फल लेकर खाया। जिह्वा पर रखते ही उसे दिव्य-ओज जैसा लगा। उसने सोचा, "लौटते समय बहुत खाऊंगा।" यह जान कि राजा ने पहला फल खा लिया उपराज से लेकर, यहाँ तक हथवान ने भी, सभी ने फल खाये। फल न मिलने पर डण्डों से शाखायें तोड़ उन्हें पत्र-विहीन कर दिया। पेड़ लुंज-मुंज हो गया। दूसरा पेड़ मणि-पर्वत के समान चमकता हुआ (पूर्ववत्) खड़ा रहा।

राजा ने उद्यान से निकलते समय उसे देख पूछा, 'यह क्या है ?' उत्तर मिला, "देव ! आपने पहला फल खा लिया, जान जनता ने इसे नोच-खसोट डाला।" "किन्तु उस (दूसरे) वृक्ष के न पत्ते ही बिगड़े और न रंग ही बिगड़ा।" "देव ! फल-रहित होने से कुछ नहीं बिगड़ा।" राजा के मन में वैराग्य पैदा हो गया। वह सोचने लगा, "यह वृक्ष फल-रहित होने से हरा-भरा खड़ा है। यह फलदार होने से नोचा-खसोटा गया। यह राज्य भी फलदार वृक्ष के समान है। प्रव्रज्या

फल-रहित वृक्ष के समान है। जिसके पास कुछ है, उसे ही भय है, जिसके पास कुछ नहीं, उसे भय भी नहीं। मैं फलदार वृक्ष जैसा न रह, फल-रहित वृक्ष जैसा होऊंगा। सम्पत्ति छोड़, निकलकर प्रव्रजित होऊंगा।" उसने अपने मन में दृढ़ संकल्प किया और नगर में प्रविष्ट हो, प्रासाद के द्वार पर खड़े ही खड़े सेनापति को बुलाकर कहा, "महासेनापति! आज से भोजन लानेवाले तथा मुखोदक और दातुन आदि लाने वाले सेवक के अतिरिक्त और कोई मेरे पास न आने पावे। पुराने न्यायाधीश अमात्यों को लेकर राज्य का अनुशासन करो। मैं अबसे ऊंचे तल्ले पर रहकर श्रमण-धर्म करूंगा।" यह कह, प्रासाद पर चढ़ वह अकेला ही श्रमण-धर्म करने लगा। इस प्रकार समय बीतने पर जनता राजाङ्गण में इकट्ठी हुई और कहने लगी, "हमारा राजा पहले जैसा नहीं रहा!" उसने दो गाथायें कहीं—

> अपुराणं वत भो राजा सब्बभुम्मो दिसम्पति,
> नाज्ज नच्चे निसामेति न गीते कुरुते मनो ॥२०॥
> न मिगे नपि उय्याने न पि हंसे उदिक्खति,
> मूगोव तुण्हिमासीनो न अत्थमनुसासति ॥२१॥

[हमारा सर्वत्र का दिशम्पति राजा अब पूर्व जैसा नहीं रहा, न अब वह नृत्य में ध्यान देता है और न उसे गीत अच्छे लगते हैं ॥२०॥ न शिकार, न उद्यान-क्रीड़ा और न वह (जल के) हंसों को ही देखता है। वह गूंगा बना बैठा रहता है। वह राज्य का अनुशासन नहीं करता है ॥२१॥]

राजा का मन काम-भोगों की ओर से उदासीन हो विवेक की ओर झुक गया। उसने अपने कुल-विश्वस्त प्रत्येक-बुद्धों की याद की और सोचने लगा कि कौन है जो मुझे उन शीलादि गुणों से युक्त, अकिञ्चन प्रत्येक-बुद्धों का निवास स्थान बतायगा? उसने गाथायें कहीं—

> सुखकामा रहोसीला वधबन्धा उपारता,
> केसं नु अज्ज आरामे दहरा बुद्धा च अच्छरे ॥२२॥
> अतिक्कन्तवनथो धीरा नमो तेसं महेसिनं,
> ये उस्सुकम्हि लोकम्हि विहरन्ति अनुस्सुका ॥२३॥

ते छेत्वा मच्चुनो जालं तन्तं मायाविनो दळहं,

छिन्नलयत्ता गच्छन्ति को तेसं गतिमापये ।।२४।।

[(निर्वाण–)सुख की कामना करने वाले, शील का विज्ञापन न करने वाले, वध-बन्धन से विरत छोटे और बड़े प्रत्येक बुद्ध आज किस विहार में रहते हैं ? ।।२२।। उन तृष्णा-रहित धैर्यवान महर्षियों को नमस्कार है, जो उत्सुकता-पूर्ण लोक में अनुत्सुक होकर विहार करते हैं ।।२३।। मायावी द्वारा दृढ़ करके फैलाये हुए तृष्णा-जाल को काटकर, आसक्ति-रहित होकर चले जाते हैं। कौन है जो मुझे उनके निवास-स्थान तक पहुंचा दे ।।२४।।]

प्रासाद में रहते हुए ही श्रमण-धर्म करते-करते उसके चार महीने गुजर गये। प्रव्रज्या की ओर उसका चित्त अत्यधिक झुक गया। घर लोकान्तरिक-नरक के समान लगने लगा। तीनों भव जलते हुए से प्रतीत हुए। वह सोचने लगा, 'वह समय कब आयेगा जब मैं इस शक्रभवन के समान सजे हुए मिथिला नगर को छोड़कर हिमालय में प्रवेश कर प्रव्रज्या ग्रहण करूंगा।' उसने मिथिला नगरी का वर्णन आरम्भ किया—

कदाहं मिथिलं फीतं विसालं सब्बतो पभं,

पहाय पब्बजिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ।।२५।।

कदाहं मिथिलं फीतं विभत्तं भागसोमितं,

पहाय........................।।२६।।

कदाहं मिथिलं फीतं बहुपाकारतोरणं,

पहाय........................ ।।२७।।

कदाहं मिथिलं फीतं दळहमट्टालकोट्टकं

पहाय........................ ।।२८।।

कदाहं मिथिलं फीतं सुविभत्तं महापथं

पहाय........................ ।।२९।।

कदाहं मिथिलं फीतं सुविभत्तन्तरापणं,

पहाय पब्बजिस्सामि.............. ।।३०।।

कदाहं मिथिलं फीतं गवास्सरथ पीळितं,

पहाय........................ ।।३१।।

कदाहं मिथिलं फीतं आरामवनमालिनिं,
पहाय........................ ॥३२॥
कदाहं मिथिलं फीतं उय्यानवनमालिनिं,
पहाय........................ ॥३३॥
कदाहं मिथिलं फीतं पासादवनमालिनिं,
पहाय पब्बज्जिस्सामि............. ॥३४॥
कदाहं मिथिलं फीतं तिपुरं राजबन्धुनिं,
मापितं सोमनस्सेन वेदेहेन यसस्सिना,
पहाय........................ ॥३५॥
कदाहं वेदेहे फीते निचिते धम्मरक्खिते,
पहाय पब्बजिस्सामि............. ॥३६॥
कदाहं वेदेहे फीते अजेय्ये धम्मरक्खिते,
पहाय पब्बजिस्सामि............. ॥३७॥
कदा अन्तेपुरं रम्मं विभत्तं भागसोभितं
पहाय...................... ॥३८॥
कदा अन्तेपुरं रम्मं सुधामत्तिकलेपनं,
पहाय पब्बजिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति॥३९॥
कदा अन्तेपुरं रम्मं सुचिगन्धमनोरमं
पहाय पब्बजिस्सामि............. ॥४०॥
कदाहं कूटागारे विभत्ते भागसोभिते,
पहाय पब्बजिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति॥४१॥
कदाहं कूटागारे सुधामत्तिकलेपने,
पहाय..................... ॥४२॥
कदाहं कूटागारे सुचिगन्धे मनोरमे,
पहाय..................... ... ॥४३॥
कदाहं कूटागारे लित्ते चन्दन फोसिते,
पहाय...................... ॥४४॥

कदाहं सुवण्णपल्लंके गोणके चित्तसन्थते,
पहाय .... ॥४५॥
कदाहं कप्पासकोसेय्यं खोमकोटुम्बरानिच,
पहाय पब्बजिस्सामि .... ॥४६॥
कदाहं पोक्खरणियो रम्मा चक्कवाकूपकूजिता,
मन्दालकेहि सञ्छन्ना पदुमुप्पलकेहि च,
पहाय .... ॥४७॥
कदाहं हत्थिगुम्बे सब्बालंकारभूसिते,
सुवण्णकच्छे मातंगे हेमकप्पन वाससे ॥४८॥
आरूळहे गामणीयेहि तोमरंकुसपाणिहि,
पहाय पब्बजिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥४९॥
कदाहं अस्सगुम्बे सब्बालंकारभूसिते,
आजानियेव जातिया सिन्धवे सीघवाहने ॥५०॥
आरूळहे गामणीयेहि इल्लियाचाय धारिहि,
पहाय पब्बजिस्सामि तं............... ॥५१॥
कदाहं रथसेणियो सन्नद्धे उस्सितद्धजे,
दीपे अथोपि वेय्यग्घे सब्बालंकारभूसिते ॥५२॥
आरूळहे गामणीयेहि चाप हत्थेहि वम्मिहि,
पहाय पब्बजिस्सामि.............. ॥५३॥
कदाहं सोवण्णरथे सन्नद्धे उस्सितद्धजे
दीपे अथोपि वेय्यग्घे सब्बालंकारभूसिते ॥५४॥
आरूळहे गामणीयेहि चापहत्थेहि वम्मिहि,
पहाय पब्बजिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥५५॥
कदाहं सज्झुरथे सन्नद्धे उस्सितद्धजे,
दीपे अथोपि वेय्यग्घे सब्बालंकारभूसिते ॥५६॥
आरूळहे गामणीयेहि चापहत्थेहि वम्मिह
पहाय पब्बजिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥५७॥

कदाहं अस्सरथे सन्नद्धे.................

दीपे.......................... ॥५८॥

आरूळहे.................

पहाय....................... ॥५९॥

कदाहं ओट्ठरथे सन्नद्धे..............

दीपे.......................... ॥६०॥

आरूळहे...................

पहाय....................... ॥६१॥

कदाहं गोरथे सन्नद्धे..........

दीपे......................... ॥६२॥

आरूळहे............

पहाय...................... ॥६३॥

कदाहं अजरथे सन्नद्धे...........

दीपे....................... ॥६४॥

आरूळहे.................

पहाय....................... ॥६५॥

कदाहं मेण्डरथे सन्नद्धे............

दीपे........................ ॥६६॥

आरूळहे.................

पहाय....................... ॥६७॥

कदाहं मिगरथे सन्नद्धे..........

दीपे.......................... ॥६८॥

आरूळहे.................

पहाय....................... ॥६९॥

कदाहं हत्थारूहे सब्बालंकारभूसिते
नील वम्मधरे सूरे तोमरंकुसपाणिने
पहाय पब्बजिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥७०॥

कदाहं अस्सारूहे.............
नील वम्मधरे इल्लियाचापधारिने
पहाय पब्बजिस्सामि..:..........   ॥७१॥

कदाहं धनुग्गहे.............
नीलवम्मधरे सूरे चापहत्थे कलापिने
पहाय पब्बज्जिस्सामि..............   ॥७२॥

कदाहं राजपुत्ते.............
चित्त वम्मधरे सूरे कञ्चनावेळधारिने
पहाय पब्बजिस्सामि............   ॥७३॥

कदाहं अरियगणे वत्थवन्ते अलंकते
हरिचन्दनलित्तंगे कासिकुत्तमधारिने
पहाय.......................   ॥७४॥

कदा सत्तसता भरिया सब्बालंकारभूसिता
पहाय पब्बजिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥७५॥

कदा सत्तसता भरिया सुसञ्ञा तनुमज्झिमा,
पहाय पब्बजिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥७६॥

कदा सत्तसता भरिया अस्सवा पियभाणिनी,
पहाय पब्बजिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥७७॥

कदा सतफलं कंसं सोवण्णं सतराजिकं,
पहाय पब्बजिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥७८॥

कदास्सु मं हत्थिगुम्बं सब्बालंकारभूसिता
सुवण्णकच्छा मातंगा हेमकप्पनवासया, ॥७९॥

आरूळहा गामणीयेहि तोमरंकुसपाणिहि,
यन्तं मा नानुयिस्सन्ति तं कदास्सु भविस्सति ॥८०॥

कदास्सु मं अस्सगुम्बा........
आजानिय्या च जातिया सिन्धवा सीघवाहना ॥८१॥

आरूळहा गामणीयेहि इल्लियाचापधारिहि
यं तं मं नानुयिस्सन्ति तं कदास्सु भविस्सति ॥८२॥
कदास्सु मं रथसेनी सन्नद्धा उस्सितद्धजा,
दीपा अथोपि वेय्यग्घा सब्बालंकारभूसिता ॥८३॥
आरूळहा गामणीयेहि चापहत्थेहि वम्मिहि
यं तं मं नानुयिस्सन्ति तं कदास्सु भविस्सति ॥८४॥
कदास्सु यं सोण्णरथा सन्नद्धा उस्सितद्धजा,
दीपा अथोपि वेय्यग्घा सब्बालंकारभूसिता ॥८५॥
आरूळहा गामणीयेहि चापहत्थेहि वम्मिहि,
यन्तं मं नानुयिस्सन्ति तं कदास्सु भविस्सति ॥८६॥
कदास्सु मं सञ्ञुरथा सन्नद्धा उस्सितद्धजा,
दीपा अथोपि वेय्यग्घा सब्बालंकारभूसिता ॥८७॥
आरूळहा................
यन्तं मं........................ ॥८८॥
कदास्सु मं अस्सरथा..........
दीपा........................ ॥८९॥
आरूळहा............... ..
यं तं मं........................ ॥९०॥
कदास्सु मं ओट्ठरथा..........
दीपा........................ ॥९१॥
आरूळहा..................
यं तं मं........................ ॥९२॥
कदास्सु मं गोरथा............
दीपा........................ ॥९३॥
आरूळहा..................
यं तं मं........................ ॥९४॥

कदास्सु मं अजरथा............
दीपा....................... ॥९५॥
आरूळ्हा.................
यं तं मं........................ ॥९६॥
कदास्सु मं मेण्डरथा...........
दीपा..................... ॥९७॥
आरूळ्हा..................
यं तं मं..................... ॥९८॥
कदास्सु मं मिगरथा............
दीपा........................ ॥९९॥
आरूळ्हा................
यन्तं मं..................... ॥१००॥
कदास्सु मं हत्थारूहा सब्बालंकारभूसिता
नीलवम्मधरा सूरा तोमरंकुसपाणिनो,
यं तं मं नानुथिस्सन्ति तं कदास्सु भविस्सति ॥१०१॥
कदास्सु मं अस्सारूहा.........
नीलवम्मधरा सूरा इल्लिया चापधारिनो
यं तं मं......................... ॥१०२॥
कदास्सु यं धनुग्गहा सब्बालंकारभूसिता
नील वम्म धरा सूरा चापहत्थाकलापिनो
यं तं मं.......................... ॥१०३॥
कदास्सु मं राजपुत्ता सब्बालंकारभूसिता
चित्तवम्मधरा सूरा कञ्चनावेठधारिनो,
यं तं मं नानुयिस्सन्ति तं कदास्सु भविस्सति ॥१०४॥
कदास्सु मं अरियगणा वत्थवन्ता अलंकता,
हरिचन्दनलित्तंगा कासिकुत्तमधारिनो,
यं तं मं नानुयिस्सन्ति तं कदास्सु भविस्सति ॥१०५॥

कदास्सु मं सत्तसता भरिया सब्बालंकारभूसिता,
यं तं मं नानुयिस्सन्ति तं कदास्सु भविस्सति ॥१०६॥
कदा सत्त सता भरिया सुसञ्ञा तनुमज्झिमा
यन्तं मं नानुयिस्सन्ति तं कदास्सु भविस्सति ॥१०७॥
कदा सत्तसता भरिया अस्तवा पियभाणिनो
यन्तं मं नानुयिस्सन्ति तं कदास्सु भविस्सति ॥१०८॥
कदा पत्तं गहेत्वान मुण्डो संघाटिपारुतो
पिण्डिकाय चरिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥१०९॥
कदाहं पंसुकूलानं उज्झितानं महापथे
संघाटिं धारयिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥११०॥
कदाहं सत्ताहं मेघे ओवट्टो अल्लचीवरो,
पिण्डिकाय चोरस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥१११॥
कदाहं सब्बहं ठानं रुक्खा रुक्खं वना वनं
अनपेक्खो विहरिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥११२॥
कदाहं गिरिदुग्गेसु पहीनभयभेरवो,
अदुतियो विहरिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥११३॥
कदाहं वीणंव रुजको सत्ततन्तिं मनोरमं
चित्तं उजुं करिस्सामि तं कदास्सु भविस्सति ॥११४॥
कदाहं रथकारोव परिकन्तं उपाहनं
कामसंयोजने छेच्छं ये दिब्बे ये च मानुसे ॥११५॥

(यह कब होगा कि मैं स्मृद्ध, विशाल, सभी ओर प्रकाशित मिथिला नगरी को छोड़कर प्रव्रजित होऊंगा ? ॥२५॥ यह कब होगा कि मैं स्मृद्ध, विभक्त, हिस्से कर के नापी गई मिथिला नगरी को छोड़कर प्रव्रजित होऊंगा ? ॥२६॥ यह कब होगा कि मैं स्मृद्ध, अनेक प्राकारों तथा तोरणों वाली मिथिला नगरी को...... ? २७॥ यह कब होगा कि मैं स्मृद्ध दृढ अट्टालिकाओं तथा कोठोंवाली मिथिला नगरी को... ? ॥२८॥ यह कब होगा.... सुविभक्ता, महापथवाली मिथिला नगरी को...? ॥२९॥ यह कब होगा...सुविभक्ता, अन्दर दुकानोंवाली मिथिला

नगरी को.... ?॥३०॥ यह कब होगा...गौवों, घोड़ों तथा रथों से भरी मिथिला नगरी को..... ?॥३१॥ यह कब होगा कि ...आराम वनों की पंक्तियोंवाली मिथिला नगरी को..... ?॥३२॥ यह कब होगा...उद्यान, बनों की पंक्तियों वाली मिथिला नगरी को...... ?॥३३॥ यह कब होगा ....प्रासाद वनों की पंक्तियों वाली मिथिला नगरी को.....?॥३४॥ यह कब होगा..... तीन पुरों वाली, राज-बन्धुओं वाली; यशस्वी, प्रसन्नचित्त विदेह द्वारा निर्मित मिथिला नगरी को.... ?॥३५॥ यह कब होगा कि.....धान्यादि संग्रह से युक्त, धर्म-रक्षित, विदेह-नगरी को....?॥३६॥ यह कब होगा कि...... अजेय धर्म-रक्षित विदेह...... ?॥३७॥ यह कब होगा कि रमणीय, विभक्त, हिस्से कर के नापे गये अन्तःपुर को..... ?॥३८॥ यह कब होगा कि रमणीय, चूने तथा मिट्टी से लेपे गये अन्तःपुर को......?॥३९॥ यह कब होगा कि रमणीय, पवित्र, मनोरम अन्तःपुर को ....?॥४०॥ यह कब होगा कि.....विभक्त, हिस्से करके नापे गये; चूने तथा मिट्टी से लेपे गये; पवित्र मनोरम शिखरों को छोड़कर ....?॥४१-४३॥ यह कब होगा कि रक्त-चन्दन से चर्चित किये गये शिखरों को...... ?॥४४॥ यह कब होगा कि.....चित्रित ऊनी आस्तरणों वाले सुनहरी पलंगों को...... ?॥४५॥ यह कब होगा कि मैं कपास, कोसिय क्षोम तथा कोटुम्बर (नगर) के वस्त्रों को...... ?॥४६॥ यह कब होगा कि मैं उन रमणीय पुष्करणियों को जहाँ चक्रवाक गूंजते हैं, जो मन्दालक से तथा पद्म और उत्पलों से ढकी हैं, छोड़कर... ॥४७॥ यह कब होगा कि मैं उन हाथियों को जो सभी अलंकारों से विभूषित है, जिनके गलों में स्वर्णमालायें हैं, जिनके तन पर सुनहरी झोल हैं और जिनके कंधे पर तोमर तथा अकुंश लिये हथवान बैठे हैं, छोड़कर.... ?॥४८-४९॥ यह कब होगा कि मैं ऐसे घोड़ों के समूह को जो सभी अलंकारों से विभूषित हैं, जो जाति से श्रेष्ठ हैं, सैन्धव हैं, शीघ्रगामी हैं, जिन पर इल्ली (-शस्त्र) तथा धनुष धारण किये घुड़सवार बैठे हैं, छोड़कर....? ॥५०-५१॥यह कब होगा कि रथों की पंक्तियों को, जो सन्नद्ध हैं, जिन पर ध्वजायें लहराती हैं, जिनपर चीते तथा व्याघ्रों के चमड़े बँधे हैं, जो सब अलंकारों से विभू-

षित हैं, जिनपर धनुष-धारी कवच-धारी रथवान बैठे हैं, छोड़कर....? ॥५२–५३॥ यह कब होगा कि स्वर्ण रथों को, जो सन्नद्ध हैं....छोड़कर....॥५४–५५॥ यह कब होगा कि चान्दी के रथों को, जो सन्नद्ध हैं....छोड़कर....॥५६-५७॥ यह कब होगा कि अश्व-रथों को जो सन्नद्ध है....छोड़कर...॥५८-५९॥ यह कब होगा कि ऊँटों के रथों को, जो सन्नद्ध हैं....छोड़कर....॥६०-६१॥ यह कब होगा कि बैलों के रथों को, जो सन्नद्ध हैं....छोड़कर....॥६२-६३॥ यह कब होगा कि बकरों के रथों को, जो सन्नद्ध हैं....छोड़कर....॥६४-६५॥ यह कब होगा कि मेढों के रथों को, जो सन्नद्ध हैं....छोड़कर....॥६६-६७॥ यह कब होगा कि मृगों के रथों को, जो सन्नद्ध हैं....छोड़कर....? ॥६८-६९॥ यह कब होगा कि मैं सब अलंकारों से विभूषित, नीलकवचधारी, शूर, तोमर-अंकुशधारी हथवानों को छोड़कर....? ॥७०॥ यह कब होगा कि मैं सब....उल्लिय (-शस्त्र) तथा धनुषधारी घुड़सवारों को छोड़कर....? ॥७१-७२॥ यह कब होगा कि मैं सब अलकारों से विभूषित, नीलकवचधारी, शूर, धनुष तथा तूणीरधारी धनुर्धारियों को छोड़कर....? ॥७२॥ यह कब होगा कि मैं सब अलंकारों से विभूषित, चित्रित कवचधारी, शूर, स्वर्णमालायें धारण करनेवाले राजपुत्रों को छोड़कर....? ॥७३॥ यह कब होगा कि मैं वस्त्रधारी, अलंकारधारी कांचन-वर्ण चन्दन का लेप करनेवाले, काशी का उत्तमवस्त्र धारण करनेवाले आर्य-गण को छोड़कर....? ॥७४॥ यह कब होगा कि मैं सभी अलंकारों से विभूषित सात सो स्त्रियों को छोड़कर....? ॥७५॥ यह कब होगा कि मैं सात सो सुसंयत, पतली कमरवाली स्त्रियों को छोड़कर....? ॥७६॥ यह कब होगा कि मैं सात सो आज्ञाकारिणी, प्रियभाषिणी भार्य्याओं को छोड़कर....? ॥७७॥ यह कब होगा कि सौ लकीरों वाली स्वर्णमय थाली को छोड़कर....॥७८॥ यह कब होगा कि वे हाथी, जो सभी अलंकारों से विभूषित हैं, जिनके गलों में स्वर्ण-मालायें हैं, जिनके तन पर सुनहरी झोल हैं और जिनके कन्धे पर तोमर तथा अंकुश लिये हथवान बैठे हैं, मेरा पीछा न करें? ॥७९–८०॥ यह कब होगा कि ऐसे घोड़ों के समूह, जो सभी अलंकारों से विभूषित हैं जो जाति से श्रेष्ठ हैं, सैन्धव हैं, शीघ्रगामी हैं, जिन पर इल्ली (-शस्त्र) तथा धनुष

धारण किये घुड़सवार बैठे हैं, मेरा पीछा न करें ॥८१-८२॥ यह कब होगा कि रथों की पंक्तियाँ, जो सन्नद्ध हैं, जिन पर ध्वजायें लहराती हैं, जिन पर चीते तथा व्याघ्रों के चमड़े बंधे हैं, जो सब अलंकारों से विभूषित हैं, जिन पर धनुषधारी कवच-धारी रथवान बैठे हैं, मेरा पीछा न करेंगी ? ॥८३-८४॥ यह कब होगा कि मेरे स्वर्ण-रथ, जो सन्नद्ध हैं....न करेंगे ? ॥८५-८६॥ यह कब होगा कि मेरे चान्दी के रथ, जो सन्नद्ध हैं....न करेंगे ? ॥८७-८८॥ यह कब होगा कि मेरे अश्व-रथ, जो सन्नद्ध हैं....न करेंगे ॥८९-९०॥ यह कब होगा कि मेरे ऊँटों के रथ, जो सन्नद्ध हैं....न करेंगे ? ॥९१-९२॥ यह कब होगा कि मेरे बैलों वाले रथ, जो सन्नद्ध हैं....न करेंगे ? ॥९३-९४॥ यह कब होगा कि मेरे बकरों वाले रथ, जो सन्नद्ध हैं....न करेंगे ? ॥९५-९६॥ यह कब होगा कि मेरे मेढों वाले रथ, जो सन्नद्ध हैं....न करेंगे ? ॥९७-९८॥ यह कब होगा कि मेरे मृगों वाले रथ, जो सन्नद्ध हैं....न करेंगे ? ॥९९-१००॥ यह कब होगा कि सब अलंकारों से विभूषित, नील कवचधारी, शूर, तोमर-अंकुशधारी रथवान मेरा पीछा न करें ? ॥१०१॥ यह कब होगा कि सब अलंकारों से अलंकृत....इल्लिय-(शस्त्र) तथा धनुषधारी घुड़सवार पीछा न करें ? ॥१०२॥ यह कब होगा कि सब अलंकारों से विभूषित, नील कवचधारी, शूर, धनुष तथा तूर्णारधारी धनुषधारी मेरा पीछा न करें ? ॥१०३॥ यह कब होगा कि सब अलंकारों से विभूषित, चित्रित कवच-धारी, शूर, स्वर्णमालायें धारण करनेवाले राजपुत्र मेरा पीछा न करें ? ॥१०४॥ यह कब होगा कि वस्त्रधारी, अलंकार-धारी, कांचन-वर्ण चन्दन का लेप करनेवाले काशी का उत्तम वस्त्र धारण करनेवाले आर्य-गण मेरा पीछा न करें ? ॥१०५॥ यह कब होगा कि सभी अलंकारों से अलंकृत, सात सौ भार्यायें मेरा पीछा न करे ? ॥१०६॥ यह कब होगा कि सात सौ सुसंयत, पतली कमरवाली स्त्रियाँ मेरा पीछा न करें ॥१०७॥ यह कब होगा कि सात सौ आज्ञाकारिणी, प्रिय भाषिणी भार्य्यायें मेरा पीछा न करें ? ॥१०८॥ यह कब होगा कि मैं भिक्षापात्र हाथ में लेकर, सिर मुण्डाकर, संघाटी धारण कर भिक्षाटन के लिये निकलूंगा ? ॥१०९॥ यह कब होगा कि मैं रास्ते पर फेंके हुए चीथड़ों की संघाटी बनाकर पहनूंगा ? ॥११०॥ यह कब होगा कि सप्ताह भर, पानी बरसने पर मैं भीगेवस्त्र भिक्षाटन के लिये

निकलूंगा ? ।।१११।। यह कब होगा कि मैं सारा दिन एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तथा एक वन से दूसरे वन अपेक्षा-रहित होकर विचरूंगा ? ।।११२।। यह कब होगा कि मैं गिरि तथा दुर्गों में भय-रहित होकर विचर सकूँगा ? ।।११३।। यह कब होगा कि मैं वीणा-वादक के सप्त-तन्त्री सुन्दर वीणा को सीधा करने की तरह अपने चित्त को सीधा कर लूंगा ?।।११४।। यह कब होगा कि रथ-कार के उपाहन को काट डालने की तरह मै काम-संयोजन को काट डालूंगा ? ।।११५।।)

उसका जन्म उस समय हुआ था, जब मनुष्यों की आयु दस हजार वर्ष की होती थी। उसने सात हजार वर्ष राज्य किया। तीन हजार वर्ष की आयु शेष रह जाने पर प्रव्रजित हुआ। हाँ, प्रव्रजित होते हुए वह उद्यान-द्वार पर आम्र-वृक्ष देखने के समय से चार महीने ही घर में रहा। उसने सोचा, "इस वेष से प्रव्रजित वेष ही अच्छा है, प्रव्रजित होऊंगा।" उसने चुपके से सेवक को आज्ञा दी, "तात! बिना किसी को सूचना दिये बाजार से काषाय वस्त्र तथा मिट्टी के पात्र ले आओ।" उसने वैसा ही किया। राजा ने नाई को बुलवा, केश तथा दाढ़ी मुंड़वायी। फिर उसे बिदाकर, एक काषाय-वस्त्र पहन लिया, एक ओढ़ लिया और एक कंधे पर रख लिया। उसने मिट्टी का बरतन भी थैली में डाल कन्धे पर लटका लिया। तब हाथ की लकड़ी ले प्रत्येक-बुद्ध की तरह तल्ले पर कई बार इधर से उधर टहला। उस दिन वह वहीं रहकर, अगले दिन सूर्योदय के समय प्रासाद से उतरने लगा।

तब सीवली देवी ने उन सात सौ भार्याओं को बुलाकर कहा, "राजा को देखे बहुत दिन हो गये। चार महीने बीत गये। आज उसे देखने चलेंगे। सभी सज-सजाकर आओ और स्त्रियों के हाव-भाव दिखाकर उसे यथाशक्ति राग के बंधन में बांधने का प्रयत्न करो।" फिर उन अलंकृत स्त्रियों को साथ ले, राजा को देखूँगी, सोचती हुई वह प्रासाद पर चढ़ने लगी। उसने राजा को उतरते देखा, किन्तु देखकर भी नहीं पहचाना। यह समझ कि राजा को उपदेश देने आये कोई प्रत्येक-बुद्ध होंगे, वह प्रणाम कर एक ओर खड़ी हो गई। बोधिसत्व भी महल से उतरा। उन्होंने ऊपर जाकर जब शैय्या पर राजा के काले बाल तथा सिंगार का सामान देखा, तब जाना "वह प्रत्येक-बुद्ध नहीं, हमारा प्रिय स्वामी ही होगा।" उसने उन सबको कहा, "आओ, उसकी मिन्नत कर उसे रोकेंगे।" वह ऊपर से उतरी और आङ्गन में

पहुंच, उन सबके साथ बालों को खोल, पीठ पर बिखेर लिया। फिर छाती पीटते हुए अत्यन्त करुण स्वर में यह कहते हुए कि 'महाराज! ऐसा क्यों करते हैं?' उसका पीछा किया। सारा नगर भी क्षुब्ध हो गया। वे भी रोते हुए राजा के पीछे हो लिये, "हमारा राजा प्रव्रजित हो गया। इस प्रकार का धार्मिक राजा हम फिर कहाँ पायेंगे?" उस समय उन देवियों का रोना-पीटना तथा उनके रोने-पीटने के बावजूद राजा का चल देना व्यक्त करने के लिये शास्ता ने कहा—

ता च सत्तसता भरिया सब्बालंकारभूसिता,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं कस्मा नो विजहिस्ससि ॥११६॥
ता च सत्तसता भरिया सुसञ्ञा तनुमज्झिमा,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं कस्मा नो विजहिस्ससि ॥११७॥
ता च सत्तसता भरिया अस्सवा पियभाणिनी,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं कस्मा नो विजहिस्ससि ॥११८॥
ता च सत्तसता भरिया सब्बालंकारभूसिता,
हित्वा सम्पद्दयी राजा पब्बज्जाय पुरक्खतो ॥११९॥
ता च सत्तसता भरिया सुसञ्ञा तनुमज्झिमा,
हित्वा सम्पद्दयी राजा पब्बज्जाय पुरक्खतो ॥१२०॥
ता च सत्तसता भरिया अस्सवा पियभाणिनी,
हित्वा सम्पद्दयी राजा पब्बज्जाय पुरक्खतो ॥१२१॥

[वह सात सौ, सब अलंकारों से विभूषित स्त्रियाँ बाहें उठाकर रोने लगीं, "हमें क्यों छोड़ता है?" ॥११६॥ वे सात सौ, सुसंयत पतली कमरवाली स्त्रियाँ ....वे सात सौ आज्ञाकारिणी, प्रियभाषिणी स्त्रियाँ बाहें उठाकर रोने लगीं, "हमें क्यों छोड़ता है?" ॥११७-११८॥ उन सभी अलंकारों से विभूषित स्त्रियों को छोड़ राजा प्रव्रजित होने के उद्देश्य से चल पड़ा ॥११९॥ उन सभी सुसंयत, पतली कमरवाली....आज्ञाकारिणी, प्रियभाषिणी स्त्रियों को छोड़ राजा प्रव्रजित होने के उद्देश्य से चल पड़ा ॥१२०-१२१॥]

हित्वा सतफलं कंसं सोवण्णं सतराजिकं,
अग्गहो मत्तिकापत्तं तं दुतियाभिसेचनं ॥१२२॥

[सौ जोड़ोंवाले, सौ लकीरोंवाले सोने के बरतन को छोड़कर मिट्टी का बरतन ग्रहण किया; यह उसका दूसरा जीवन हुआ ।।१२२।।]

जब सीवली देवी रोती-पीटती हुई भी राजा को न रोक सकी, तो उसे एक उपाय सूझा। उसने महासेना-रक्षक को बुलवाकर आज्ञा दी, "तात ! राजा के जाने के रास्ते पर आगे आगे पुराने घरों तथा पुरानी शालाओं में आग लगा दो। घास-पत्ते इकट्ठे कराकर जहाँ-तहाँ धुआँ करा दो।" उसने वैसा करा दिया। उसने राजा के पास पहुंच, पाँवों में गिर, मिथिला में आग लगने की बात कहते हुए दो गाथायें कहीं—

वेस्मा अग्गिस्मा जाला कोसा डय्हन्ति भागसो,
रजतं जातरूपञ्च मुत्ता वेलुरिया बहू ।।१२३।।
मणयो संखमुत्ता च वत्थिकं हरिचन्दनं,
अजिनं दन्तभण्डञ्च लोहं काळायसं बहुं,
एहि राज निवत्तस्सु मा ते तं विनसा धनं ।।१२४।।

[घरों में लगी आग में से ज्वाला निकल रही है, खजाने भी हिस्सा हिस्सा करके जल रहे हैं, चान्दी, सोना, मुक्ता तथा बहुत से बिलौर भी (जल रहे हैं) ।।१२३।। मणियाँ, शंख-मुक्ता, वस्त्र, हरित-वर्ण चन्दन, अजिन (चर्म), हाथी-दाँत का सामान, लोहा, बहुत-सा ताम्बा आदि (जल रहा है)। हे राजन् ! आकर रोके। तुम्हारा धन नष्ट न हो ।।१२३।।]

तब बोधिसत्व ने, 'यह देवी क्या कहती है ? जिनका कुछ होता है उन्हीं का जलता है। हम तो अकिंचन हैं' प्रकट करने के लिये गाथा कही—

सुसुखं वत जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं,
मिथिलाय डय्हमानाय न मे किञ्चि अडय्हथ ।।१२५।।

[हमारे पास कुछ नहीं है। हम सुखपूर्वक जीते हैं। मिथिला नगरी के जलने पर मेरा कुछ नहीं जलता ।।१२५।।]

यह कह उत्तर-द्वार से निकल पड़ा। उसकी वे स्त्रियाँ भी निकल पड़ीं। फिर देवी ने एक उपाय सोच कर आज्ञा दी, "ग्राम-घात, देश का लूटना जैसा करके

दिखाओ।" उसी समय शस्त्रधारी आदमी जहां तहां से दौड़ आकर लूट मचाने लगे, शरीर में लाख का रंग लगाकर जख्मी बने हुए जैसे और तख्तों पर लिटाकर लिये जाते हुए मरों जैसे (आदमी) राजा को दिखाये गये। लोग चिल्लाने लगे, "महाराज! तुम्हारे जीते जी राज्य लूटा जा रहा है। आदमी मारे जा रहे हैं।" देवी ने भी राजा को प्रणाम कर रोकने के लिये गाथा कही—

अटवियो समुप्पन्ना रट्ठं विद्धसयन्ति नं,
एहि राज निवत्तस्सु मा रट्ठं विनसा इदं ॥१२६॥

[जंगल में डाकू उत्पन्न हो गये हैं। वे राष्ट्र को उजाड़ रहे हैं। हे राजन् रुकें। इस राष्ट्र का विनाश न हो ॥१२६॥]

राजा समझ गया कि मेरे रहते ही चोर उठकर राष्ट्र को उजाड़ने लगे हों, यह बात नहीं। यह सीवली देवी का ही कृति होगी। उसने उसे अप्रतिभ करते हुए कहा—

सुसुखं वत जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं
रट्ठे विलुम्पमानम्हि न मे किञ्चि अजीरथ ॥१२७॥
सुसुखं वत जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभास्सरा यथा ॥१२८॥

[हमारे पास कुछ नहीं। हम सुखपूर्वक जीते हैं। राष्ट्र के उजड़ने से मेरी कुछ हानि नहीं ॥१२७॥ हमारे पास कुछ नहीं। हम सुखपूर्वक जीते हैं। जैसे अभास्वर देवता, वैसे ही हम प्रीति-भक्षक होकर रहेंगे ॥१२८॥]

ऐसा कहने पर भी जनता ने राजा का पीछा नहीं छोड़ा। तब उसके मन में हुआ, लोग रुकते नहीं हैं। इन्हें रोकूंगा। आधे गव्यूति चले जाने पर महा-मार्ग पर खड़े हो उसने आमात्यों से पूछा, "यह किनका राज्य है?"

"देव! आपका।"

"तो इस रेखा को लांघनेवाले को राज-दण्ड दो" कह हाथ की लकड़ी से तिरियक-लकीर खींची। तेजस्वी द्वारा खींची उस लकीर को कोई नहीं लांघ सका। जनता रेखा पर सिर रख जोर जोर से चिल्लाने लगी। देवी का भी उस रेखा को लांघने

का साहस नहीं हुआ। जब उसने देखा कि राजा पीठ फेरकर चला गया है तो वह शोक को न सह सकी। वह छाती पीटती हुई महा-मार्ग पर गिर पड़ी और लुढ़कती हुई रेखा लांघ गई। जनता ने देखा कि रेखा के स्वामियों ने ही रेखा तोड़ दी है, वह भी उसी मार्ग से गई। बोधिसत्व उत्तर हिमालय की ओर चला गया। देवी भी सारी सेना-वाहन आदि ले उसके साथ ही गई। राजा जनता को न रोक सकने के कारण उसे साथ लिये लिये ही साठ योजन गया।

उस समय हिमालय की स्वर्ण-गुफा में नारद नाम का तपस्वी रहता था। वह सप्ताह भर तक पाँच अभिज्ञाओं तथा ध्यान-सुख का आनन्द लेता रहा। सप्ताह बीतने पर वह ध्यान से उठ उल्लास-पूर्वक कहने लगा, "ओह सुख! ओह सुख।" वह सोचने लगा, क्या जम्बू द्वीप में कोई ऐसा है जो इस सुख की खोज करता हो? दिव्य-चक्षु से देखने पर उसे महाजनक बुद्धाङ्कुर दिखाई दिया। उसने देखा कि राजा ने महाभिनिष्क्रमण किया है और वह सीवली देवी के पीछे पीछे आती हुई जनता को रोक नहीं सक रहा है। उसे डर हुआ कि लोग विघ्न भी डाल सकते हैं। उसने सोचा कि मैं उसे और भी प्रसन्नतापूर्वक दृढ़ संकल्प करने का उपदेश दूंगा। यह सोच ऋद्धि-बल से जाकर, राजा के सामने आकाश में स्थित हो, उसका उत्साह बढ़ाने के लिये कहा—

किम्हेसो महतो घोसो कानु गामे किलीलिया,
समणञ्ञेव पुच्छाम कत्थेसो अभिसटोजनो॥१२९॥

[यह हल्ला किस कारण है? यह गांव जैसी किलकिल क्या है? हे श्रमण! मैं तुझी से पूछता हूँ यह जनता क्यों इकट्ठी हुई है? ॥१२९॥]

राजा बोला—

ममं ओहाय गच्छन्तं एत्थेसो अभिसटोजनो,
सीमातिक्कमनं यन्तं मुनि मोनस्स पत्तिया,
मिस्सं नन्दीहि गच्छन्तं किं जानमनुपुच्छसि॥१३०॥

[मैं छोड़कर जा रहा हूँ। यह जनता इसीलिये इकट्ठी हुई है। मैं सीमा-क्रान्त मुनि हूँ और मौन की प्राप्ति के लिये निकला हूँ। मैं मिश्रित-नन्दी-राग सहित जा रहा हूँ। क्या तुम जान बूझकर पूछ रहे हो? ॥१३०॥]

उसने उसे दृढ़ रहने के लिये उत्साहित करते हुए फिर गाथा कही—

मास्सु तिण्णो अमञ्ञित्थो सरीरं धारयं इमं,
अतीरणेय्यमिदं कम्मं बहूहि परिपन्थयो ॥१३१॥

[इस वेश को धारण कर लेने मात्र से यह नहीं समझना कि मैं पार हो गया हूँ। यह इस तरह से पार नहीं किया जा सकता। इसमें बहुत से विघ्न हैं ॥१३१॥]

तब बोधिसत्व ने प्रश्न किया—

को नु मे परिपन्थस्स मम एवं विहारिनो,
यो नेवदिट्ठे नादिट्ठे कामानमभिपत्थये ॥१३२॥

[मैं जो न इस लोक में और न देव-लोक में ही काम-भोगों की इच्छा करता हूँ, मेरे इस प्रकार विहार करनेवाले के रास्ते में कौन से विघ्न हैं ?]

उसने विघ्नों का उल्लेख करते हुए गाथा कही—

निद्दा नन्दि विजम्भिका अरती भत्तसम्मदो,
आवसन्ति सरीरट्ठा बहूहि परिपन्थयो ॥१३३॥

[निद्रा, आलस्य, जम्हाई लेना, उत्कण्ठा तथा भोजन-मद—ये बहुत से विघ्न शरीर में ही निवास करते हैं॥१३३॥]

बोधिसत्व ने उसकी प्रशंसा करते हुए गाथा कही—

कल्याणं वत यं भवं ब्राह्मणमनुसाससि,
ब्राह्मणञ्ञेव पुच्छामि कोनु त्वमसि मारिस ॥१३४॥

[आप मुझे श्रेष्ठ बात का उपदेश दे रहे हैं। मैं ब्राह्मण को ही पूछता हूँ कि हे मित्र ! आप कौन हैं ? ॥१३४॥]

तब नारद बोला—

नारदो इति मे नामं कस्सपो इति मं विदू,
भोतो सकासे आगच्छिं साधु सब्भि समागमो ॥१३५॥
तस्स ते सब्बो आनन्दो विहारो उपवत्ततु,
यदूनं तं परिपूरेहि खन्तिया उपसमेन च ॥१३६॥

पसारय सन्नतं च उन्नतञ्च पसारय,
कम्मं विज्जञ्च धम्मञ्च सक्कत्वान परिब्बज ॥१३७॥

[मेरा नाम नारद है, (गोत्र से) मुझे काश्यप जानते हैं। मैं आपके पास आया हूँ, क्योंकि सज्जनों की संगति अच्छी होती है ॥१३५॥ तेरे लिये सब आनन्द है। तू (ब्रह्म-) विहारों का अभ्यास कर। हे क्षत्रिय! जो कमी है उसे उपशमन द्वारा पूरा कर ॥१३६॥ नीच-मान तथा ऊंच-मान को छोड़ दे। कर्म, विद्या और धर्म को दृढ़कर प्रव्रज्या ग्रहण कर ॥१३७॥]

इस प्रकार वह बोधिसत्व को उपदेश दे आकाश-मार्ग से अपने-निवास स्थान को ही चला गया।

उसके चले जाने पर एक दूसरा मिगाजिन नामका तपस्वी भी उसी प्रकार ध्यान से उठा और उसने बोधिसत्व को देखा, सोचा कि जनता को रोकने के लिये उसे उपदेश दूंगा। वह भी उसी प्रकार जा, आकाश में खड़ा हो बोला—

बहू हत्थी च अस्से च नगरे जनपदानि च,
हित्वा जनक पब्बजितो कपल्ले रतिमज्झगा ॥१३८॥
कच्चिन्नु ते जानपदा मित्तामच्चा च ञातका,
दूभिं अकंसु जनक कस्मा चेतं अरुच्चथ ॥१३९॥

[हे जनक! तूने बहुत से हाथी, घोड़े, नगर तथा जनपदों को छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण की है और मिट्टी के भिक्षा-पात्र को पसन्द किया है ॥१३८॥ हे जनक! क्या तेरे जनपद के लोगों ने, मित्र-अमात्यों ने अथवा सम्बन्धियों ने विद्रोह किया है? तुझे यह भिक्षा-पात्र क्यों अच्छा लगा है? ॥१३९॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

न मिगाजिन जातुच्च अहंकञ्चि कुदाचनं,
अधम्मेन जिने ञातिं न चापि ञातयो ममं ॥१४०॥

[मिगाजिन! न मैंने ही अपने किसी रिश्तेदार को कभी भी अधर्म से जीता और निश्चय से ही न मेरे किसी रिश्तेदार ने मुझे अधर्म से हराया ॥१४०॥]

इस प्रकार उसके प्रश्न का प्रत्याख्यान कर प्रव्रज्या का कारण बताया—

दिस्वान लोक वसन्तं खज्जन्तं कद्दमीकतं,
हञ्जरे बज्झरे चेत्थ यत्थ सत्तो पुथुज्जनो,
एताहं उपमं कत्वा भिक्खकोस्मि मिगाजिन ।।१४१।।

[मैंने इस लोक को परिवर्तित होते, खाये जाते, गारा बनते देखा। यहाँ आसक्त पृथक-जन मारा जाता है, बांधा जाता है। मैंने अपने आपको उनके समान समझा और इसीलिये हे मिगाजिन! मैंने भिक्षा-पात्र ग्रहण किया ।।१४१।।]

उसने 'मिगाजिन' करके सम्बोधन किया। प्रश्न है कि उसे उसका नाम कैसे ज्ञात हो गया था? उत्तर है कि आरम्भ में कुशल-क्षेम पूछने के समय ही उसने पूछ लिया था। तपस्वी ने विस्तार-पूर्वक जानने की इच्छा से गाथा कही—

कोनु ते भगवा सत्था कस्सेतं वचनं सुचिं,
नहि कप्पं वा विज्जं वा पच्चक्खाय रथेसभ,
समणं आहु वत्तन्तं यथा दुक्खस्सतिक्कमो ।।१४२।।

[तुम्हारा शास्ता भगवान् कौन है? यह किसका पवित्र वचन है? हे राजन्! कर्मवादी-श्रमण अथवा विद्या-श्रमण का प्रत्याख्यान करके दुक्ख का अन्त करने-वाला श्रमण नहीं कहला सकता ।।१४२।।]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

न मिगाजिन जातुच्च अहं कञ्चि कुवाचनं,
समणं ब्राह्मणं वापि सक्कत्वा अनुपाविसिं ।।१४३।।

[हे मिगाजिन! मैंने निश्चय से कभी किसी श्रमण-ब्राह्मण की पूजा कर उससे नहीं पूछा ।।१४३।।]

इसने प्रत्येक-बुद्ध आदि से धर्म सुना था, किन्तु प्रव्रज्यादि के गुण विशेष रूप से कभी नहीं पूछे थे, इसीलिये ऐसा कहा।

इतना कह जिस कारण से प्रव्रजित हुआ उसे आरम्भ से स्पष्ट करने के लिये कहा—

महताचानुभावेन गच्छन्तो सिरियाजलं,
गीयमानेसु गीतेसु वज्जमानेसु वग्गुसु,
तुरियताळितसंघुट्ठे सम्पताल समाहिते ।।१४४।।

समिगाजिनमद्दक्खिं फलं अम्बं तिरोच्छदं,
तुज्जमानं मनुस्सेहि फलं कामेहि जन्तुहि ॥१४५॥
सो खोहेतं सिरिं हित्वा ओरोहित्वा मिगाजिन,
मूलं अम्बस्सुपागञ्छि फलिनो निप्फलितस्सचा ॥१४६॥
फलं अम्बं हतं दिस्वा विद्धस्तं विनलोकतं,
अथेतं इतरं अम्बं नीलोभासं मनोरमं ॥१४७॥
एवमेव नून अम्हे इस्सरे बहुकण्टके,
अमित्ता नो वधिस्सन्ति यथा अम्बो फली हतो ॥१४८॥
अजिनम्हि हञ्ञते दीपि नागो दन्तेहि हञ्ञति,
धनम्हि धनिनो हन्ति अनिकेतमसन्थवं,
फली अम्बो अफलोच ते सत्थारो उभो ममं ॥१४९॥

[बड़े प्रताप और ठाट बाट के साथ, जब गीत गाये जा रहे थे और जब बाजे बज रहे थे मैंने तुरिय-वादन से उद्घोषित तथा सम्म-ताळ युक्त उद्यान में जाते समय हे मृगाजिन ! मैंने प्राकार की ओट में आम्र-फल देखा जिसे फल की कामना वाले मनुष्य तथा अन्य प्राणी नाच रहे थे ॥१४४-१४५॥ हे मृगाजिन ! मैंने उस वैभव को छोड़ा ओर उतरकर मैं उस फलवाले तथा बिना फलवाले आम के पेड़ के नीचे आया ॥१४६॥ मैंने फल-दार पेड़ को ध्वस्त तथा उजड़ा हुआ देखा और दूसरे को हरा-भरा तथा मनोरम ॥१४७॥ तब मैंने सोचा, "इसी प्रकार बहुत काँटोंवाले ऐश्वर्यवान हम लोगों को हमारे शत्रु मार डालेंगे, जैसे फलदार पेड़ को ॥" ॥१४८॥ चमड़े के लिये चीता मारा जाता है, हाथी-दांत के लिये हाथी मारा जाता है और धन के लिये धनी मारा जाता है; अनागरिक तथा तृष्णाविहीन को कौन मारेगा ? फलदार तथा बिना फलवाला—ये दोनों आम के पेड़ मेरे शास्ता हैं ॥१४९॥]

यह सुन मृगाजिन ने राजा को अप्रमादी रहने का उपदेश दिया और अपने निवास-स्थान को चला गया । उस समय सीवली देवी राजा के पैरों पर गिरकर बोली—

सब्बो जनो पब्यधितो राजा पब्बजितो इति,

हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारिका ॥१५०॥

अस्सासयित्वा जनतं ठपयित्वा पटिच्छदं,

पुत्तं रज्जे ठपेत्वान अथ पच्छा पब्बजिस्ससि ॥१५१॥

[हाथी-वाले, घोड़ों-वाले, रथवाले, पैदल—सभी इस बात से दुखी हैं कि राजा प्रव्रजित हो गया ॥१५०॥ जनता को आश्वासन देकर, उसकी चादर बनकर और पुत्र को राज्य पर प्रतिष्ठित करके बाद में प्रव्रजित होना ॥१५१॥]

तब बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

चत्ता मया जानपदा मित्तामच्चा च ञातका,

सन्ति पुत्ता विदेहानं दीघावु रट्ठवड्ढनो,

ते रज्जं कारयिस्सन्ति मिथिलायं पजापति ॥१५२॥

[मैंने जनपद, के लोगों का, मित्र-अमात्यों का तथा सम्बन्धियों का त्याग कर दिया है। विदेहों का पुत्र राष्ट्रवर्धन दीर्घायु (कुमार) है। हे प्रजापति ! वे उससे मिथिला का राज्य करा लेंगे ॥१५२॥]

देवी बोली, 'तुम्हारे प्रव्रजित हो जाने पर मैं क्या करूंगी ?" "मैं बताता हूँ, मेरा कहना करना"कह उसने उत्तर दिया—

एहि नं अनुसिक्खामि यं वाक्यं मम रुच्चति,

रज्जं तुवं कारयन्ती पापं दुच्चरितं बहुं ॥१५३॥

कायेन वाचा मनसा येन गच्छिसि दुग्गतिं,

परदिन्नकेन परनिट्ठितेन

पिण्डेन यापेहि सरीरधम्मो ॥१५४॥

[आ तुझे जो बात मुझे अच्छी लगती है, उसकी शिक्षा दूं। जब तू राज्य करायेगी तो तुझे बहुत पाप होगा ॥१५३॥ शरीर, वाणी और मन से (बहुत पाप करेगी), जिससे दुर्गति को प्राप्त होगी। दूसरे के दिये हुए, दूसरे द्वारा समाप्त किए हुए भोजन से काम चला। यही धैर्यवानों का धर्म है ॥१५४॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने उसे उपदेश दिया। उनके परस्पर बातचीत करते हुए जाते जाते सूर्य्यास्त हो गया। देवी ने योग्य स्थान पर छावनी डलवा दी।

बोधिसत्व भी एक वृक्ष के नीचे पहुँचा। वह वहाँ रात भर रह अगले दिन प्रातः कृत्यों से निवृत्त हो मार्गारूढ़ हुआ। देवी भी 'सेना पीछे आती रहे', उसे छोड़ उसके पीछे हो ली। वे भिक्षाटन के समय थून नामक नगर में पहुँचे।

उस समय नगर में एक आदमी कसाई-खाने से बड़ा-सा माँस-खण्ड खरीद कर लाया था। वह उसे रसोइये से अंगारों पर भुनवाकर, ठण्डा करने के लिये एक पटड़े के सिरे पर रखवाकर, खड़ा था। उसका ध्यान कहीं और देख एक कुत्ता लेकर भागा। उसे पता लगा तो उसने दक्षिण-द्वार तक कुत्ते का पीछा किया। इसके बाद थककर रुक गया। कुत्ते के सामने आ जाने से राजा और देवी दो ओर हो गये। वह डरके मारे माँस छोड़ भाग गया। बोधिसत्व ने यह देख सोचा, "यह छोड़कर अपेक्षा-रहित होकर भाग गया। और भी इसका कोई मालिक नहीं दिखाई देता। इस प्रकार का निर्दोष धूलि में पड़ा हुआ भोजन मिलना (आसान) नहीं। मैं इसे खाऊंगा।" उसने मिट्टी का बरतन बाहर निकाला, उस माँस के टुकड़े को लिया, पोंछकर पात्र में रखा और पानी की सुविधा की जगह जाकर खाया। तब देवी ने, 'यदि यह राज्य चाहता होता तो इस प्रकार का घृणितधूल-लगा, कुत्ते का जूठा, माँस का टुकड़ा न खाता। अब यह हमारा नहीं ही है, सोच, कहा—"महाराज! ऐसा घृणित खाते हैं?"

'देवी, तू अपनी मूर्खता के कारण इस भिक्षा की विशेषता नहीं जानती है' कह उसके प्रतिष्ठा-स्थान की प्रत्यवेक्षणा कर, उसे अमृत के समान ग्रहण कर, मुंह साफ कर हाथ पैर धोये। उस समय देवी निन्दा करती हुई बोली—

योपि चतुत्थे भत्तकाले न भुञ्जे,
अजद्धुमारीव खुधाय मीये
न त्वेव पिण्डं लुलितं अनरियं
कुल पुत्तरूपो सप्पुरिसो न सेवे॥१५५॥
तयिदं न साधु तयिदं न सुट्ठु
सुनखुच्छिट्ठकं भुञ्जसे त्वं॥१५६॥

[जो चौथे (दिन) भोजन के समय भी न खाये, वह अनशन करनेवाले की तरह क्षुधा से मर भी जा सकता है। ऐसा होने पर भी सत्पुरुष, कुलपुत्र को चाहिये कि

धूल लगे अनार्य-भोजन का सेवन न करे ।।१५५।। यह ठीक नहीं है, यह अच्छा नहीं है कि जो तू कुत्ते का जूठा माँस खाता है ।।१५६।।]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

न चापि मे सीवलो सो अभक्खो,
ये होति चत्तं गिहिनो सुनखस्स वा,
ये केचि भोगा इध धम्मलद्धा
सब्बो सो भक्खो अनवज्जो ति वुत्तो ।।१५७।।

[हे सीवली ! जो कुछ आदमी अथवा कुत्ते ने त्याग दिया वह मेरे लिये अभक्ष्य नहीं है। जो कुछ भी धर्म से प्राप्य है, वह सभी भक्ष्य है, और निर्दोष है—ऐसा कहा गया है ।।१५७।।]

इस प्रकार दोनों बातचीत करते हुए नगर द्वार पर जा पहुंचे। वहाँ खेलते हुए बच्चों के बीच में एक लड़की छोटे कुल्लक (?) से बालू को थपथपा रही थी। उसके एक हाथ में एक कड़ा था। दूसरे में दो। वे परस्पर बजते थे। दूसरा हाथ निःशब्द था। राजा ने यह बात जान सोचा, "सीवली मेरे पीछे पीछे चलती है। स्त्री प्रव्रजित के लिये मलिनता है। 'यह प्रव्रजित होकर भी भार्य्या को नहीं छोड़ सकता है,' ऐसी मेरी निन्दा भी हो सकती है। यह कुमारी पण्डिता होगी। सीवली देवी को रोकने का उपाय कहेगी। इसकी बात सुन सीवली देवी को विदा करूंगा।" तब वह बोला—

कुमारिके उपसेनिये निच्चं निगळमण्डिते,
कस्मा ते एको भुजो जनति एको न जनति भुजो ।।१५८।।

[हे कुमारी ! हे (मां के) पास सोनेवाली ! हे शृंगार करने वाली ! क्या कारण है कि तेरी एक भुजा बजती है, एक नहीं बजती ? ।।१५८।।]

कुमारी ने उत्तर दिया—

इमस्मिं मे समण हत्थे पटिमुक्का दुनीधुरा,
संघाता जायते सद्दो दुतियस्सेव सा गति ।।१५९।।
इमस्मिं मे समण हत्थे पटिमुक्को एकनीधुरो,
सो अदुतियो न जनति मुनि भूतोव तिट्ठति ।।१६०।।

विवादपत्तो दुतियो केनेको विवादेस्सति,
तस्स ते सग्ग कामस्स एकत्तमुपरोचतं ॥१६१॥

[हे श्रमण ! मेरे इस हाथ में दो कङ्गन हैं। रगड़ से शब्द पैदा होता है। दो होने से यही होता है ॥१५९॥ हे श्रमण ! मेरे इस हाथ में एक ही कङ्गन है। वह अकेला होने से आवाज़ नहीं करता, चुपचाप रहता है ॥१६०॥ दो होने से विवाद होता है, एक किस से विवाद करेगा ? तुझे स्वर्ग की कामना करनेवाले को अकेला रहना ही रुचिकर लगे ॥१६१॥]

उसने उस छोटी लड़की की बात सुन, उसे आधार मान, देवी से बात करते हुए कहा—

सुणसी सीवलि गाथा कुमारिया पवेदिता,
पेस्सिका मं गरहित्थों दुतियस्सेव सा गति ॥१६२॥

[हे सीवली ! कुमारी द्वारा कही गई गाथा सुनती है। यह 'दासी' मेरी निन्दा करती है। दो होने से ही यह हालत है ॥१६२॥]

अयं द्वेधा पथो भद्दे अनुचिण्णो पथाविहि,
तेसं त्वं एकं गण्हाहि अहमेकं पुनापरं,
नेव मं त्वं पति मेति माहं भरियति वा पुन ॥१६३॥

[भद्रे ! पथिकों द्वारा वनाया हुआ यह रास्ता दो ओर जाता है। तू इनमें से एक ग्रहण कर ले, दूसरा मैं। अब से मैं तेरा पति नहीं, तू मेरी भार्य्या नहीं ॥१६३॥]

उसकी बात सुनी तो वह बोली, "देव ! तुम उत्तम हो, दक्षिण दिशा ग्रहण करो, मैं बाईं दिशा।" यह कह, प्रणाम कर थोड़ी दूर गई। किन्तु शोक को न सह सकने के कारण लौट आई और राजा के साथ बात करते हुए उसने उसके साथ ही नगर में प्रवेश किया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने आधी गाथा कही—

इममेव कथं कथयन्ता,
थूणं नगरुपागमुं ॥

(यहीं बातचीत करते 'थूण' नगरप हुंचे ।।]

उस गाँव में प्रवेश करने पर बोधिसत्व भिक्षाटन करते हुए बंस-फोड़ के दरवाजे पर पहुंचे । सीवली भी एक ओर खड़ी थीं । उस समय बंस-फोड़ अंगीठी में बांस को गरम कर, काञ्जी (?) से भिगो, एक आँख बन्दकर एक से देखता हुआ ही उसे सीधा कर रहा था । उसे देख, बोधिसत्व ने सोचा, "यदि यह पण्डित होगा, मुझे एक बात कहेगा । इसे पूछता हूँ ।" वह उसके पास पहुंचा । उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

> कोट्ठके उसुकारस्स भत्तकाले उपट्ठिते
> तत्र च सो उसुकारो एकञ्च चक्खुं निग्गय्ह,
> जिम्हमेकेन पेक्खति ।।१६४।।

[भोजन के समय वह बंस-फोड़ के द्वार पर उपस्थित हुआ । वह बंस-फोड़ एक आँख बन्द करके एक से (बांस का) टेढ़ापन देखता था ।।१६४।।]

तब बोधिसत्व ने कहा—

> एवं नो साधु पस्ससि उसुकार सुणोहि मे,
> यदेकं चक्खुं निग्गय्ह जिम्हमेकेन पेक्खसि ।।१६५।।

(हे बंस-फोड़ ! मेरी बात सुन । क्या तुझे इस तरह अच्छा दिखाई देता है, जो तू एक आँख को बन्द करके एक से (बांस के) टेढ़ेपन को देखता है ? ।।१६५।।)

उसने उत्तर देते हुए कहा—

> द्वीहि समण चक्खूहि विसालं विय खायति,
> असम्पत्वा परं लिंगं नुज्जुभावाय कप्पति ।।१६६।।
> एकञ्च चक्खुं निग्गय्ह जिम्हमेकेन पेक्खतो,
> सम्पत्वा परमं लिंगं उजुभावाय कप्पति ।।१६७।।
> विवादपत्तो दुतियो केनेको विवदिस्सति,
> तस्स ते सग्गकामस्स एकत्तमुपरोचतं ।।१६८।।

[हे श्रमण ! दोनों आँखों से विस्तृत-सा दिखाई पड़ता है । टेढ़ी जगह का पता न लगने से (बांस) सीधा नहीं होता ।।१६६।। एक आँख को बन्द करके एक

से टेढ़ापन देखने से, टेढ़ापन दिखाई देकर (बांस) सीधा हो जाता है ।।१६७।। दो होने से विवाद होता है । एक किस से विवाद करेगा ? तुझ स्वर्ग की कामना करनेवाले को अकेला रहना ही रुचिकर लगे ।।१६८।।]

बोधिसत्व ने भिक्षाटन कर, मिला-जुला भोजन इकट्ठाकर, पानी की सुविधा की जगह बैठकर भोजन किया । भोजन कर चुकने पर भिक्षा-पात्र को थैली में डाल सीवली को सम्बोधित किया—

सुणसी सीवलि गाथा उसुकारेन पवेदिता,
पेस्सिया मं गरहित्यो दुतियस्सेव सा गति ।।१६९।।
अयं द्वेधापथो भद्दे अनुचिण्णो पथाविहि,
तेसं त्वं एक गण्हाहि अहमेते पुनापरं,
नेव मं त्वं पति मेति माहं भरियति वा पुन ।।१७०।।

[हे सीवली ! बंस-फोड़ द्वारा कही गई गाथा सुनती है । इस 'दासी' शब्द से मेरी निन्दा होती है । दो होने से ही यह हालत है ।।१६९।। भद्रे ! पथिकों द्वारा बनाया हुआ यह रास्ता दो ओर जाता है । तू इनमें से एक ग्रहण कर ले, दूसरा मैं । अब से मैं तेरा पति नहीं, तू मेरी भार्य्या नहीं ।।१७०।।]

उसने 'दासी' शब्द कुमारी के ही सम्बन्ध में कहा । 'अबसे. . . .नहीं' कहने के बावजूद भी देवी बोधिसत्व के पीछे पीछे ही आई । राजा उसे नहीं रोक सकता था । जनता भी पीछे पीछे चली आ रही थी । वहाँ से जंगल दूर न था । बोधिसव ने हरियाली की पंक्ति देख उसे रोकना चाहा । उसे चलते चलते, रास्ते पर ही गूंज का तिनका दिखाई दिया । उसमें से सींक खींचकर उसने कहा, "सीवली ! देख' अब यह फिर इससे मिलाया नहीं जा सकता । इसी तरह से अब फिर मेरा तेरा साथ वास नहीं हो सकता ।" इतना कह यह आधी गाथा कही—

मुञ्जा विसिकापवाळ्हा एका विहर सीवलि ।।

[सीवलि ! गूंज की खींची गई सींक की तरह से अकेली विचर ।।]

यह सुना तो उसे विश्वास हो गया कि अब महाजनक राजा के साथ मेरा संवास नहीं होगा । वह शोक नहीं सहन कर सकी, और दोनों हाथों से छाती पीटती हुई, बेहोश हो महामार्ग पर गिर पड़ी । बोधिसत्व ने जब देखा कि वह बेहोश हो गई है

तो पद (चिह्नों) को नष्ट करते हुए जंगल में प्रवेश किया। अमात्यों ने आकर उसके शरीर पर पानी छिड़का ओर हाथ-पैर मलकर उसे होश में लाये। उसने पूछा—

'तात! राजा कहाँ है?"

"आप ही जानती होंगी।"

"तात! ढूंढो।"

इधर-उधर दौड़ने पर भी नहीं दिखाई दिया। वह बहुत जोर से रो-पीटकर, जहाँ राजा खड़ा था वहाँ चैत्य बनवाकर, उसकी गन्ध-मालादि से पूजाकर लौटी।

बोधिसत्व ने भी जंगल में प्रवेश कर सप्ताह के भीतर ही अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कीं। इसके बाद वह पुनः बस्ती में लौट आया।

देवी ने भी जहाँ बंस-फोड़ से बातचीत हुई थी, जहाँ कुमारी से बात-चीत हुई थी, जहाँ माँस का भोजन किया गया था, जहाँ मिगाजिन से बात हुई थी—सभी स्थानों पर चैत्य बनवा, उनकी गन्ध मालादि से पूजा कराई। फिर सेना सहित मिथिला नगरी लौट, आम्रवन में पुत्र का अभिषेक करा, उसे सेना सहित नगर में भेज, स्वयं ऋषियों के ढंग की प्रव्रज्या ग्रहण कर वहीं उद्यान में रहने लगी। वहाँ रहते रहते योग-विधि का अभ्यास कर, ध्यान-लाभ कर ब्रह्मलोकगामी हुई।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'भिक्षुओ, न केवल अभी, तथागत ने पहले भी महाभिनिष्क्रमण किया है' कह जातक का मेल बैठाया। उस समय समुद्रदेवी उत्पल-वर्णा थी। नारद सौरिपुत्र। मृगाजिन मौद्गल्यायन। कुमारी, क्षेमा-भिक्षुणी। बंस फोड़ आनन्द। सीवलि राहुलमाता। दीर्घायुकुमार राहुल। माता-पिता महाराज-कुल। महाजनक राजा तो मैं ही था।

५४०. साम जातक

"को नु मं उसुना विज्झि ...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक मातृ सेवक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में अठारह करोड़ धनवाले एक सेठ का एक पुत्र था, माता-पिता को बहुत प्रिय, अच्छा लगने वाला। एक दिन प्रासाद के ऊपर बैठा वह झरोखे से गली में झाँक रहा था। उसने देखा गन्ध-माला आदि हाथ में लिये लोग धर्म सुनने के लिये जेतवन जा रहे हैं। उसने सोचा, "मैं भी जाऊंगा।" गन्ध माला आदि लिवाकर वह विहार पहुंचा और वस्त्र, भैषज्य, पेय-पदार्थ आदि संघ को दिलवाकर उसने गन्धमाला आदि से भगवान् की पूजा की। फिर एक ओर बैठ धर्म सुना और काम-भोगों का दोष तथा प्रव्रज्या का लाभ समझ, परिषद के उठने के समय उसने भगवान् से प्रव्रज्या की याचना की। उसे पता लगा कि माता पिता की अनुज्ञा मिलने से ही तथागत प्रव्रजित करते हैं। वह गया और सप्ताह भर निराहार रहकर माता पिता की अनुज्ञा प्राप्त कर, आकर प्रव्रज्या की याचना की। शास्ता ने एक भिक्षु को आज्ञा दी। उसने उसे प्रव्रजित किया। प्रव्रजित होने पर उसे बहुत लाभ-सत्कार प्राप्त होने लगा। उसने आचार्य्यों तथा उपाध्यायों को (सेवा से) प्रसन्नकर उपसम्पदा प्राप्त की। फिर पाँच वर्ष तक धर्म का पालन करते रहकर उसने सोचा, "यहाँ मैं भीड़-भाड़ में रहता हूँ। यह मेरे अनुकूल नहीं है।" उसने 'जंगल में रहकर 'विपश्यना' प्राप्त करने की इच्छा की और इसलिये आचार्य्य के पास जा कर्म-स्थान ग्रहण किया। फिर एक प्रत्यन्त-ग्राम में जा आरण्य में रहने लगा। विपश्यना प्राप्त

कर बारह वर्ष तक लगातार प्रयत्न-शील रहने पर भी वह अर्हत्व नहीं प्राप्त कर सका। समय के व्यतीत होने के साथ साथ उसके माता पिता भी दरिद्र हो गये। जो भी उनका खेत वा उनसे व्यापार करते थे, जब उन्होंने देखा कि इस कुल में कोई पुत्र या भाई जोर डालकर वसूल करनेवाला नहीं है, तो वे जो-जो कुछ उनके हाथ लगा वह सब लेकर भाग गये। घर के दास और नौकर-चाकर आदि भी सोना आदि ले कर चम्पत हुए। आगे चलकर वे दोनों जन पानी के बरतन से भी हीन हो, घर बेच, बेघर हो, दरिद्र बन, चीथड़े पहन, हाथ में खप्पर ले भीख मांगने लगे।

उस समय एक भिक्षु जेतवन से निकल उसके निवास-स्थान पर पहुंचा। उसने उसका आगन्तुक सत्कार कर सुख पूर्वक बैठने पर पूछा, "कहां से आया?" उत्तर मिला "जेतवन से।" तब उसने शास्ता और महाश्रावकों आदि का कुशल समाचार पूछ माता-पिता का हालचाल पूछा—

"भंते! श्रावस्ती में अमुक सेठ परिवार का कुशल समाचार?"

"आयुष्मान! उस कुल का हाल मत पूछ।"

'भंते! क्यों?"

"आयुष्मान! उस कुल में एक ही पुत्र था। वह (बुद्ध-) शासन में प्रव्रजित हो गया। उसके प्रव्रजित हो जाने के बाद से इस प्रकार सब कुछ क्षीण हो गया। अब दोनों जने परम दयनीय अवस्था को प्राप्त हो भीख मांग कर खाते हैं।"

वह उसकी बात सुन होश सम्हाले न रख सका। आंखों में आंसू भरकर रोने लगा। 'आयुष्मान! रो क्यों रहा है' पूछने पर उत्तर दिया, "भंते! वे मेरे माता पिता हैं। मैं उनका पुत्र हूँ।" "आयुष्मान! तेरे माता पिता तेरे कारण विनाश को प्राप्त हुए। जा उनकी सेवा कर।" उसने सोचा, "बारह वर्ष तक प्रयत्न करके भी मैं मार्ग अथवा फल कुछ भी प्राप्त नहीं कर सका। हो सकता है कि मैं उसके लिये योग्य ही न होऊं। मुझे, प्रव्रज्या से क्या लेना? गृहस्थ हो, माता पिता का पोषण कर, दान दे स्वर्गाभिमुख होऊंगा।" यह सोच उसने अपना अरण्य निवास उस स्थविर को सौंपा और अगले दिन निकल क्रमशः श्रावस्ती के समीप ही जेतवन के पिछवाड़े के विहार आ पहुंचा। वहां दो मार्ग थे। एक जेतवन जाता था, दूसरा श्रावस्ती। उसने वहां खड़े होकर सोचा—'पहले माता-पिता का दर्शन करूं अथवा

दशबलधारी (बुद्ध) का ?' उसने सोचा—'मैंने चिरकाल से माता-पिता को नहीं देखा किन्तु अब इसके बाद मेरे लिए बुद्धदर्शन दुर्लभ हो जायगा। आज सम्यक सम-बुद्ध का दर्शन कर, धर्म सुन, कल प्रातःकाल ही माता पिता का दर्शन करूंगा।' उसने श्रावस्ती का मार्ग छोड़ दिया और शाम को जेतवन पहुंचा। उस दिन शास्ता ने प्रातःकाल लोक का ध्यान करते हुए इस कुलपुत्र के उद्धार की संभावना देखी। उसके आने के समय तथागत ने माता-पिता की सेवा करनेवाले पुत्र के लिये माता-पिता के गुणों का वर्णन किया। परिषद के अंत में खड़े होकर धर्मकथा सुनते हुए उस भिक्षु ने सोचा—"मैं सोचता था कि गृहस्थ होकर माता पिता की सेवा करूंगा। किन्तु शास्ता तो प्रव्रज्जित पुत्र का ही उपकारी होना कहते हैं। यदि मैं बिना शास्ता का दर्शन किये चला जाता तो इस प्रकार की प्रव्रज्या से हीन हो जाता। अब बिना गृहस्थ हुए प्रव्रजित रहकर ही माता पिता की सेवा करूंगा।" उसने शलाका[1] ली और उसके अनुसार शलाका-भात तथा शलाका-खिचड़ी प्राप्त की। बारह वर्ष तक वन-वास में रहे भिक्षु को ऐसा लगा मानो पाराजिका[2] जैसा गम्भीर अपराध हो गया हो।

उसने प्रातःकाल ही श्रावस्ती में प्रवेश करने पर सोचा, "पहले मैं खिचड़ी लूं। अथवा माता-पिता को देखूं ?" उसने सोचा, 'दरिद्रों के पास खाली हाथ जाना उचित नहीं है।' इसलिये वह खिचड़ी लेकर ही उनके पुराने घर-द्वार पर पहुंचा। माता-पिता खिचड़ी की भीख मांग किसी पराये की दीवार के पास जा बैठे थे। उन्हें उस स्थिति में बैठे देख उसके मन में शोक उत्पन्न हुआ और वह अश्रुपूर्ण नेत्रों से उनके थोड़ी ही दूर पर जा खड़ा हुआ। उन्होंने उसे देखकर भी नहीं पहचाना। उसकी माता ने यह समझ कि भिक्षा के लिये खड़ा होगा कहा, "भन्ते ! तुम्हें देने योग्य नहीं है। आगे बढ़ जायें।" उसकी बात सुन उसका हृदय शोक से भर गया और वह अश्रुपूर्ण नेत्रों से वहीं खड़ा रहा। दूसरी तीसरी बार कहने पर भी खड़ा ही रहा।

१. विहारों में आधुनिक काल के टिकटों की भांति सलाइयों का उपयोग होता है।

२. वे चार अपराध जिनका अपराधी भिक्षु नहीं रहता, पाराजिका कहलाते हैं।

तब उसके पिता ने माँ को कहा, "जा, पहचान यह तेरा पुत्र है।" वह उठकर गई और पहचानकर पाँव में गिरकर रोने लगी। उसके पिता ने भी वैसे ही किया। बड़ी करुणाजनक स्थिति थी। वह भी माता पिता को देख अपने को संभाले न रख सकने के कारण आंसू बहाने लगा। फिर शोक पर काबू पा उसने माता पिता को आश्वासन दिया, "चिन्ता न करें। मैं पालन-पोषण करूंगा।" फिर उन्हें यवागु[1] पिला, एक ओर बैठा, वह पुनः भिक्षाटन के लिये गया और भिक्षा लाकर उन्हें खिलाई। इसके बाद अपने लिए भीख लाया और उनके पास जाकर, दुबारा भोजन के लिये पूछकर, अपना भोजन समाप्त होने पर उन्हें एक ओर बिठाया।

वह इस प्रकार माता-पिता की सेवा करता। उसे जो पाक्षिक-भात आदि मिलता वह भी उन्हें ही दे देता। अपने भिक्षाटन के लिये जाता, मिलने पर खाता। वर्षा-काल का वस्त्र और भी जो कुछ मिलता, उन्हें ही दे देता। उनके पहने हुए चीथड़ों में थेगली लगाकर, रंगकर उन्हें स्वयं पहनता। भिक्षाटन के लिये जाने के दिनों में ऐसे बहुत से दिन थे जब उसे भिक्षा नहीं मिलती थी। उसका ओढ़ना-बिछाना बहुत रूखा था। वह माता पिता की सेवा में लगा ही रहा। आगे चलकर कृष हो गया, पीला पड़ गया। उसके मित्रों ने पूछा, "आयुष्मान्! पहले तेरा शरीर-वर्ण सुन्दर था। अब पीला पड़ गया है। क्या तुझे कोई रोग हो गया है?" उसने, "आयुष्मानो! मुझे रोग तो नहीं है, किन्तु बाधा अवश्य है," कह, वह बात बताई।

"आयुष्मान्! शास्ता श्रद्धापूर्वक दी हुई वस्तु को नष्ट नहीं करने देते। तू श्रद्धापूर्वक दी हुई चीज़ गृहस्थों को दे देता है, यह अनुचित करता है।"

उनकी बात सुन उसने लज्जा से सिर झुका लिया। वे इतना कहकर भी सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने जाकर शास्ता से शिकायत की, "भन्ते! अमुक भिक्षु श्रद्धा पूर्वक दी हुई वस्तु का नाशकर गृहस्थों का पालन-पोषण करता है।" शास्ता ने उस कुल-पुत्र को बुलवाकर पूछा—

१. बहुत पतली खिचड़ी

"भिक्षु ! क्या तू सचमुच श्रद्धापूर्वक दी हुई चीजें लेकर उनसे गृहस्थों का पालन-पोषण करता है ?"

"भन्ते ! सचमुच।"

शास्ता ने उसके सुकृत्य की प्रशंसा करने तथा अपने पूर्व-कृत्य का वर्णन करने के उद्देश्य से फिर पूछा—"भिक्षु ! गृहस्थों का पालन-पोषण करता हुआ किनका पालन-पोषण करता है ?"

"भन्ते ! माता-पिता का।"

तब शास्ता ने उसे उत्साहित करने के लिये, तीन बार 'साधु, साधु' कहा और कहा, "तू मेरे मार्ग पर ही स्थित है। मैंने पूर्व-जन्म में माता-पिता की सेवा की है।" वह भिक्षु उत्साहित हुआ। शास्ता ने उस पूर्व-चर्य्या को प्रकट करने के लिये, भिक्षुओं के प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी से थोड़ी ही दूर पर, नदी के इस किनारे पर एक निषाद-ग्राम था। दूसरे किनारे पर दूसरा। एक एक गाँव में पाँच पांच सौ कुल थे। दोनों गाँवों के दोनों निषाद-मुखिया मित्र थे। उन्होंने तरुणाई के समय ही परस्पर तै किया था—यदि हममें से एक को पुत्र हो और दूसरे को पुत्री तो दोनों का परस्पर विवाह हो। इस किनारे रहने वाले निषाद-मुखिया के यहां पुत्र हुआ। पैदा होने के समय ही दोनों कुलों से ग्रहीत होने के कारण उसका नाम दुकूलक रखा गया। दूसरे के घर लड़की पैदा हुई। परले तीर पर पैदा होने के कारण उसका नाम पारिका रखा गया।

वे दोनों सुन्दर थे, स्वर्ण-वर्ण। निषाद-कुल में पैदा होने के बावजूद प्राणातिपात नहीं करते थे। आगे चलकर सोलह वर्ष के दुकूल कुमार के माता-पिता ने कहा—"पुत्र ! तेरे लिये कुमारी लाते हैं।" ब्रह्म-लोक से आया हुआ शुद्ध-प्राणी होने से उसने दोनों कानों पर हाथ रखे और बोला, "मुझे गृहस्थी नहीं चाहिये। ऐसा न कहें।" तीन बार पूछे जाने पर भी उसने इच्छा नहीं ही की। पारिका कुमारी को भी जब यह कहा गया कि 'हमारे मित्र का पुत्र सुन्दर है, स्वर्ण वर्ण है,

तुझे उसे देंगे' तो उसने भी कानों पर हाथ रखे। वह भी ब्रह्म-लोक से ही आई थी। दुकूल कुमार ने उसके पास गुप्त-सन्देश भिजवाया—'यदि मैथुन-धर्म की इच्छा है, तो दूसरे घर जाये। मेरी तनिक इच्छा नहीं है।' उसने भी वैसा ही सन्देश भेजा। उनकी अनिच्छा के बावजूद उनका विवाह कर दिया गया। वे दोनों रागार्णव में बिना उतरे दो ब्रह्माओं की तरह इकट्ठे रहे। दुकूल-कुमार मत्स्य या माँस नहीं मारता था, यहाँ तक कि लाया हुआ मांस भी नहीं बेचता था।

उसके माता पिता ने उसे कहा, "तात! निषाद-कुल में जन्म लेकर भी न गृहस्थी चाहता है और न प्राणि-वध ही करता है। तू क्या करेगा?" "माँ! पिताजी! आपकी अनुज्ञा हो तो आज ही निकलकर प्रव्रजित हो जाऊंगा।" 'तो जाओ' कह दोनों को विदा किया गया। वे माता पिता को प्रणाम कर, निकलकर, गङ्गा-तट पर हिमालय में प्रविष्ट हुए। जिस जगह मिग नामक नदी हिमालय से उतर गङ्गा में मिलती है, वहाँ पहुँच, गङ्गा नदी को छोड़ मिग नदी के ऊपर की ओर बढ़े। उस समय शक्र-भवन गर्म हुआ प्रतीत हुआ।

शक्र को उस बात का पता लगा तो शक्र ने विश्वकर्मा को बुलाकर कहा, "तात! विश्वकर्म! दो महा-पुरुष गृह त्यागकर हिमालय में प्रविष्ट हुए हैं। इन्हें निवास-स्थान मिलना चाहिये। मिग नदी के आधे कोस के अन्दर इनके लिये पर्णशाला तथा प्रव्रजितों की दूसरी सभी आवश्यकतायें बनाकर आ।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और मूगपक्ख जातक[1] में आये वर्णन के अनुसार ही सब कुछ तैयार कर, बुरी बुरी आवाजें लगानेवाले पशुओं को भगा और पगडण्डी बना अपने निवास स्थान को ही लौट आया। वे भी वह मार्ग देख उस आश्रम जा पहुंचे। दुकूल-पण्डित ने पर्णशाला में प्रवेशकर जब प्रव्रजितों की आवश्यकतायें देखीं तो समझ लिया कि वे शक्र द्वारा देखे गये हैं और वे सामान शक्र द्वारा ही दिये गये हैं। उसने कपड़ा उतारा और लाल रंग का वल्कल-चीर धारण कर, पहन, अजिन-चर्म कंधे पर रखा। फिर जटायें बाँध, ऋषी-वेश बनाया और पारिका को भी प्रव्रज्या दी। दोनों कामावचर-लोक में मैत्री भावना करते हुए वहाँ रहने लगे।

१. मूगपक्ख जातक (५३८)

उनकी मैत्री के प्रताप से सभी पशु-पक्षी परस्पर मैत्री-चित्त युक्त हो गये। कोई किसी को कष्ट नहीं देता था। पारिका पानी लाती, आश्रम में झाड़ू लगाती तथा अन्य सब कृत्य करती। दोनों फलाफल लाकर, खाकर, अपनी अपनी पर्ण-कुटी में जा, श्रमण-धर्म करते हुए रहने लगे। शक्र कभी कभी उनकी सेवा में आता था। उसने एक दिन देखते हुए विचार किया कि इनकी आंखें जाती रहेंगी। यह विघ्न देख वह दुकूल पंडित के पास गया और प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। बोला—

"भंते! भविष्य में तुम्हारे लिये विघ्न दिखाई देता है। सेवा करनेवाला पुत्र होना चाहिए। लोक धर्म सेवन करें।"

"शक्र! यह क्या कहता है! हमने घर में रहते हुए भी इस लोक-धर्म को छोड़ इससे कीड़ों के गू की तरह घृणा की। अब अरण्य में प्रवेश कर ऋषि प्रव्रज्या ले ऐसा कैसे करें?"

"भंते! यदि ऐसा नहीं कर सकते तो ऋतुनी होने पर पारी तपस्विनी की नाभि हाथ से छू दें।"

बोधिसत्व ने 'यह किया जा सकता है।' कह स्वीकार किया। शक्र उसे प्रणाम कर अपने भवन को चला गया। बोधिसत्व ने भी यह बात पारी को कह उसके ऋतुनी होने पर उसकी नाभि का स्पर्श किया।

तब बोधिसत्व ने देव लोक से च्युत हो उसकी कोख में जन्म ग्रहण किया। दस मास बीतने पर उसने स्वर्ण वर्ण पुत्र को जन्म दिया। इसीलिए उसका नाम स्वर्णसाम रखा गया। पारी के लिये भी पर्वत में रहने वाली किन्नरियों ने दायी का काम किया। वे दोनों बोधिसत्व को नहलाकर पर्णशाला में लिटा फलाफल के लिये जाते। उस समय किन्नर लोग कुमार को कन्दरा आदि में ले जाकर नहलाते, फिर पर्वत के शिखर पर चढ़ नाना प्रकार के फूलों से अलंकृत करके और हरे पीले लेप का तिलक लगा, लाकर पर्णशाला में लिटा देते। पारी आकर पुत्र को स्तन पान कराती। आगे चलकर बड़े होने पर सोलह वर्ष की आयु होने पर भी माता पिता उसके संरक्षण की दृष्टि से पर्णशाला में लिटा, स्वयं ही बन में फलाफल के लिये जाते।

बोधिसत्व, जिस रास्ते से वह जाते उस रास्ते पर नजर लगाए रहता कि कहीं कोई आपत्ति न आ जाय।

एक दिन जब वे वन से फलाफल लिये सन्ध्या समय लौट रहे थे और आश्रम से थोड़ी ही दूर पर थे तो जोर का बादल आया। वे एक वृक्ष के नीचे बाँबी के पास खड़े हो गये। उसके अन्दर जहरीला साँप था। उनके शरीर से पसीने की दुर्गन्ध मिला हुआ पानी चूकर उसके नथनों पर जा गिरा। उसने क्रोधित होकर फुँकार मारी। दोनों अन्धे हो गये और एक दूसरे को न देख सके। दुकूल पण्डित ने पारी को सम्बोधित कर, "पारी ! मेरी आँखें जातीं रहीं, मैं तुझे नहीं देखता हूँ।" वह भी वैसे ही बोली। वे 'अब हम जीते नहीं रह सकते' कह मार्ग दिखाई न देने के कारण रोते-पीटते भटकने लगे।

उनका पूर्व-कर्म क्या था ? वे पूर्व-जन्म में वैद्य थे। उसने वैद्य होकर एक बड़े धनी की आँखों की बीमारी की चिकित्सा की थी। उसने उसे कुछ नहीं दिलवाया। वैद्य ने क्रुद्ध होकर अपनी भार्य्या से पूछा—"क्या करूं ?" उसने भी गुस्से में कहा—"हमें उसका धन नहीं चाहिये। दवाई के बहाने उसे कुछ देकर आँखों से अन्धा कर दो।" उसने 'अच्छा' कह उसका कहना स्वीकार कर वैसा ही किया। वे दोनों इस (पूर्व-) कर्म के कारण चक्षु-विहीन हो गये।

तब बोधिसत्व ने सोचा, "मेरे माता-पिता और दिन इस समय तक आ जाते थे। अब उनका कुछ पता नहीं। मैं अगवानी के लिये जाता हूँ।" उसने आगे जाकर आवाज की। उन्होंने उसकी आवाज पहचान ली और प्रति-शब्द करके पुत्र-स्नेह के कारण कहा "तात साम ! यहाँ खतरा है। मत आ।" तब उसने उन्हें एक लम्बी लकड़ी दी—"तो इसे लेकर आओ।" वे लाठी का सिरा ले उसके पास गये। उसने उन्हें पूछा, "आँखें जाती रहने का कारण क्या है ?", "तात ! वर्षा के समय हम वृक्ष के नीचे बाँबी के पास खड़े हो गये थे।" वह सुनते ही जान गया कि वहाँ विषैला सर्प होगा। उसने क्रुद्ध हो फुँकार मारी होगी। वह माता-पिता को देखकर पहले रोया और फिर हँसा। उन्होंने उससे पूछा—"तात ! क्यों रोया ? और क्यों हंसा ?" "मां और पिताजी ! तरुणाई में ही आपकी आँखें जाती रहीं' सोच रोया, और 'अब सेवा करने को मिलेगा' सोच, हंसा। "चिन्ता न करें। मैं सेवा करूंगा।"

वह माता पिता को आश्रम पर ले आया। उसने उनकी रात की जगह, दिन की जगह, घूमने की जगह, पर्णशाला में, शौच की जगह और पेशाब करने की जगह सभी जगहों पर रस्सी बांध दी। उसके बाद से वह उन्हें आश्रम में छोड़ वन के फल-मूल लाता। प्रातःकाल ही उनके रहने की जगह को साफ करता। मिग नाम की नदी पर जाकर पानी लाता और पीने का पानी रखता। दातुन, मुख धोने का पानी आदि देकर मधुर फलाफल देता। उनके मुह धो चुकने पर स्वयं खाकर माता पिता को प्रणाम कर, मृगों से घिरा हुआ, फलाफल के लिये जंगल में जाता। पर्वतों के बीच किन्नरों से घिरा हुआ वह फलाफल लेकर शाम को लौटता, फिर घड़े में पानी ला, गरम कर, गरम पानी से जैसी उनकी इच्छा होती नहाना, वा पैर धोना कर, अंगीठी ले, उनके ताप चुकने पर उन्हें फलाफल देता। फिर स्वयं भी खाकर, जो बचता उसे रख देता। इस प्रकार वह माता-पिता की सेवा करता था।

उस समय वाराणसी में पिलीयक्ख नाम का राजा राज्य करता था। मृग मांस के लोभ से उसने माता को राज्य सौंपा ओर पांचों आयुध ले हिमालय में प्रवेश किया। वहां वह मृगों को मार मांस खाता हुआ मिग नामक नदी पर आ पहुंचा। क्रमशः वह वहां आया, जहां से साम पानी ले जाता था। उसने उसे मृग चिन्ह समझा। वह मणिवर्ण शाखाओं की ओटकर धनुष ले, विषबुझा तीर चढ़ा वहां छिप रहा। बोधिसत्व भी शाम को फलाफल ला, आश्रम में रख, माता पिता को प्रणाम कर 'नहाकर, पानी लेकर आता हूँ' कह घड़ा ले विदा हुआ। मृगों के बीच चलते हुए उसने दो मृगों को इकट्ठा कर उनकी पीठ पर पानी का घड़ा रखा और उन्हें हाथ से पकड़े ले चलकर नदी किनारे पहुंचा।

ओट में खड़े राजा ने उसे आते देख, सोचा, "इतने दिनों से इस प्रकार घूमते हुए मैंने मनुष्य नहीं देखा। यह देव होगा अथवा नाग होगा? यदि मैं इसके पास जाकर पूछूंगा तो यदि देव होगा तो आकाश को चला जाएगा और नाग होगा तो भूमि में प्रविष्ट हो जायगा। मैं सदैव हिमालय में ही नहीं रहूँगा। बाराणसी भी जाऊंगा ही। वहाँ मुझे अमात्य पूछेंगे, "महाराज हिमालय में रहते समय कोई आश्चर्यकर बात भी देखी?' उस समय यदि मैं उन्हें कहूंगा कि मैंने ऐसा प्राणी

देखा है, तो वे पूछेंगे, 'उसका क्या नाम है ?' यदि कहूंगा कि नहीं जानता हूँ तो वे मेरी निन्दा करेंगे इसलिये इसे बींधकर दुर्बल करके पूछूंगा ।"

जिस समय मृग पहले ही उतरकर, पानी पीकर ऊपर आ गये थे, बोधिसत्व ने अभ्यस्त महास्थविर की तरह धीरे धीरे पानी में उतर, गरमी शान्त होने पर ऊपर आ, वल्कल वस्त्र पहन, अजिन-चर्म कन्धे पर रख, पानी के घड़े को उठाकर, पानी पोंछ, उसे बायें कन्धे पर रखा। उसी समय को बींधने के लिये उपयुक्त समय समझ, राजा ने विष-बुझा तीर छोड़कर उसे दाहिनी ओर बींध दिया। तीर बाईं ओर से निकल गया। मृगों को जब पता लगा कि वह बिंध गया तो वे डर के मारे भाग गये।

यद्यपि स्वर्ण-साम-पण्डित तीर से बिंध गया था, तो भी उसने पानी के घड़े को जैसे-तैसे गिरने न देकर, होश संभाले रख, धीरे से उतारा और बालू को हटाकर भूमि पर रखा। फिर दिशा का विचार कर माता-पिता के रहने की दिशा में सिर कर रजत-वस्त्र के समान बालू पर स्वर्ण-मूर्ति की तरह लेट रहा। फिर चित्त ठिकाने रख, 'इस हिमालय प्रदेश में मेरा कोई वैरी नहीं है, मेरे मन में भी किसी के प्रति वैर नहीं है' कह, मुंह से रक्त गिराते हुए, राजा को बिना देखे ही यह गाथा कही—

को नु मं उसुना विज्झि पमत्तं उदहारकं,
खत्तियो ब्राह्मणो वेस्सो को मं विद्धो निलीयसि ॥१॥

[मुझे (इस क्षण पर मैत्री-भावना-रहित) प्रमत्त को पानी ले जाते समय किसने तीर से बींधा है ? कौन क्षत्रिय, ब्राह्मण वा वैश्य है, जो मुझे बींधकर छिप रहा है ? ॥१॥]

इतना कहकर, फिर यह प्रकट करने के लिये कि उसके शरीर का मांस अभक्ष्य है, उसने गाथा कही—

न मे मंसानि खज्जानि चम्मेनत्थो न विज्जति,
अथ केन नु वण्णेन विद्धेय्यं मं अमञ्ञथ ॥२॥

[मेरा मांस भी खाद्य नहीं है, मेरा मांस भी निष्प्रयोजन है। मुझे किस कारण से बध्य माना गया है ? ॥२॥]

फिर दूसरी गाथा के द्वारा उसका नाम आदि जानना चाहा—

को वा त्वं कस्स वा पुत्तो (पुरत्ता ?) कथं जानेमु तं मयं
पुट्ठो मे सम्म अक्खाहि किं मं विद्धा निलीयसि ॥३॥

[तू कौन है अथवा किसका पुत्र है, और हम तुझे कैसे जानें ? हे मित्र ! बता कि मुझे तीर से बींधकर छिपा क्यों है ? ॥३॥]

यह सुन राजा ने सोचा कि यह विष-बुझे तीर से मेरे द्वारा गिराया जाने पर भी न मुझे गाली देता है, न अपशब्द कहता है। हृदय को मलते हुए जैसे शब्दों से सम्बोधन करता है। मैं इसके पास जाता हूं। वह वहाँ जा, उसके पास खड़ा हो, कहने लगा—

राजा हमस्मि कासीनं पिलियक्खोति मं विदू,
लोभा रट्ठं पहत्वान मिगमेसञ्चरामहं ॥४॥
इस्सत्थे चस्मि कुसलो दळहधम्मोति विस्सुतो,
नागोपि मे न मुच्चेय्य आगतो उसु पातनं ॥५॥

[मैं काशी (के लोगों) का राजा हूं। मुझे पिलियक्ख करके जानते हैं। मैं तीर चलाने में कुशल हूँ, बहुत दृढ़ हूँ—यह बात प्रसिद्ध है। मेरे तीर के सामने आया हुआ हाथी भी नहीं बच सकता ॥५॥]

इस प्रकार अपने बल का बखान कर, उसका नाम-गोत्र जानने के लिये बोला—

त्वञ्च कस्स वा पुत्तोसि कथं जानेमुतं मयं,
पितुनो अत्तनो वापि नामगोत्तं पवेदय ॥६॥

[तू किसका पुत्र है ? हम तुझे कैसे जानें ? अपना और अपने पिता का नाम-गोत्र कह ॥६॥]

यह सुन बोधिसत्व ने 'यदि मैं अपने आपको देव, नाग, किन्नर आदि अथवा क्षत्रिय आदि कुछ कहूँ, तो भी यह विश्वास कर ही लेगा, किन्तु मुझे सत्य बोलना चाहिये' सोच, कहा—

नेसादपुत्तो भद्दंते सामो इति मं ञातयो,
आमन्तयिंसु जीवन्तं स्वाज्जवाहं गतो सये ॥७॥
विद्धोस्मि पुथु सल्लेन सविसेन यथा मिगो,
सकम्हि लोहिते राज पस्स सेमि परिप्लुतो ॥८॥

पटिचम्म गतं सल्लं पस्स विहामि लोहितं,
आतुरो त्यानु पुच्छामि किं मं विद्धा निलीयसि ॥९॥
अजिनम्हि हञ्ञते दोपि नागो दन्तेहि हञ्ञते,
अथ केन नु वण्णेन विद्धेय्यं मं अमञ्ञथ ॥१०॥

[मैं निषाद-पुत्र हूँ; तेरा भला हो, मेरे रिश्तेदार मुझे जीते जी 'साम' कहकर बुलाते रहे हैं। सो आज या कल में मृत्यु को प्राप्त हो जाऊंगा ॥७॥ हे राजन्! मैं मृग की भांति विष-बुझे भारी तीर से बींधा गया हूँ। देख, मैं अपने ही रक्त में लथ-पथ पड़ा हूँ ॥८॥ तीर चमड़ी में से आरपार हो गया है। देख, मैं रक्त थूकता हूँ। मैं रुग्ण अवस्था में पूछ रहा हूँ कि मुझे बींधकर तू छिपा क्यों है? ॥९॥ व्याघ्र चमड़े के लिये मारा जाता है हाथी हाथी-दांत के लिये मारा जाता है। तूने मुझे किस कारण से बध्य समझा? ॥१०॥]

राजा ने उसकी बात सुन यथार्थ बात न कह, झूठी बात कही—

मिगो उपट्ठितो आसि आगतो उसुपातनं,
तं दिस्वा उब्बिज्जि साम तेन कोधो मं आविसि ॥११॥

[मेरे तीर के सामने मृग आया था, वह तुझे देखकर डर गया। इसलिये मुझे क्रोध आ गया ॥११॥]

तब बोधिसत्व ने 'महाराज! क्या कहते हैं, इस हिमालय प्रदेश में मुझे देखकर भागनेवाला मृग नहीं है' कह गाथायें कहीं—

यतो सरामि अत्तानं यतो पत्तोस्मि विञ्ञुतं,
न मं मिगा उत्तसन्ति अरञ्ञे सापदानिपि ॥१२॥
यतो निधिं परिहरिं यतो पत्तोस्मि योब्बनं,
न मं मिगा उत्तसन्ति अरञ्ञे सापदानिपि ॥१३॥
भीरु किम्पुरिसा राज पब्बते गन्धमादने,
सम्मोदमाना गच्छाम पब्बतानि वनानि च,
अथ केन नु वण्णेन उत्रसे सो मिगो मम ॥१४॥

[जब से मुझे अपनी याद है, जबसे मैंने होश संभाला है, तबसे मुझसे मृग नहीं डरते हैं—शिकार किये जानेवाले भी ॥१२॥ जब से मैंने वल्कल चीर धारण

किया, जब से मैं तरुण हुआ, तब से मुझसे मृग नहीं डरते है—शिकार किये जाने वाले भी ।।१३।। राजन् ! गन्धमादन पर्वत में किन्नर (लोग) रहते हैं । वे अत्यन्त भीरू स्वभाव के हैं । उनके साथ भी हम पर्वतों और वनों में आनन्दपूर्वक विचरते हैं । तब वह मृग मुझसे कैसे भयभीत हो सकता है ? ।।१४।।]

तब राजा ने 'मैंने इस निरपराध को मारकर झूठ बोला, सच कहूँगा' सोचा और कहा ।

न तद्दसा मिगो साम किन्ताहं अलिकं भणे,
कोधलोभाभिभूतोहं उसुं ते तं अवस्सजिं ।।१५।।

[साम ! मैंने मृग को नहीं देखा, किन्तु झूठ बोला । मैंने क्रोध और लोभ के वशीभूत होकर ही तुझपर बाण छोड़ा ।।१५।।]

यह कह फिर यह सोच कि 'यह स्वर्ण-साम इस जंगल में अकेला ही नहीं रहता होगा; इसके रिश्तेदार भी होंगे, मैं इसे पूछूंगा' उसने दूसरी गाथा कही—

कुतो नु सम्म आगम्म कस्स वा पहितो तुवं,
उदहारो नदिं गच्छ आगतो मिगसम्मतं ।।१६।।

[मित्र ! तू कहां से आया है ? अथवा किसका भेजा हुआ तू पानी लेने के लिये मिग-नामक नदी पर आया है ? ।।१६।।]

उसने उसकी बात सुन तीव्र वेदना को सहन करते हुए, मुंह से लहू छोड़ते हुए गाथा कही—

अन्धा माता पिता मय्हं ते हरामि ब्रहावने,
तेसाहं उदहारको आगतो मिग सम्मतं ।।१७।।

[मेरे अन्धे माता-पिता हैं । मैं उनके लिये फल-मूल लाकर भयानकवन में उनका पोषण करता हूँ ।उन्हीं के लिये पानी लेने को मैं मिग-नदी पर आया ।।१७।।]

यह कह माता पिता की याद कर विलाप करता हुआ बोला—

अत्थि नेसं उसामत्तं अथ साहस्स जीवितं,
उदकस्स च अलाभेन मञ्ञे अन्धा मरिस्सरे ।।१८।।

न मे इदं तथा दुक्खं लब्भा हि पुमुना इदं,
यञ्च अम्मं न पस्सामि तं मे दुक्खतरं इतो ॥१९॥
न मे इदं तथा दुक्खं लब्भा हि पुमूना इदं,
यञ्च तातं न पस्सामि तं मे दुक्ख तरं इतो ॥२०॥
सा नून कपणा अम्मा चिर रत्ताय रुच्छति,
अडढरत्तेव रत्तेवा नदीव अवसुच्छति ॥२१॥
सो नून कपणो तातो चिर रत्ताय रुच्छति,
अउठरत्तेयव रत्तेवा नदीव अवसुच्छति ॥२२॥
उट्ठानपारिचरियाय पादसम्बाहनस्सच,
साम तातात विलपन्ता हिण्डिस्सन्ति ब्रह्मवने ॥२३॥
इदं दुतियकं सल्लं कम्पेति हृदयं मम,
यञ्च अन्धे न पस्सामि यञ्च हेस्सामि जीवितं ॥२४॥

[उनके पास भोजन मात्र है—सप्ताह भर का जीवन । लेकिन लगता है कि पानी के न मिलने से अन्धे मर जायेंगे ॥१८॥ यह (मरण) मेरे लिये वैसा दुःख नहीं है, यह तो आदमी को होता ही रहता है, जैसा यह कि मैं माता को नहीं देख सकूंगा ॥१९॥ यह (मरण) मेरे लिये वैसा दुःख नहीं है, यह तो आदमी को होता ही रहता है, जैसा यह कि मैं पिता को नहीं देख सकूंगा ॥२०॥ वह बिचारी अम्मा निश्चय से देर तक रोती रहेगी । फिर आधी रात को अथवा उसकी समाप्ति पर नदी की तरह सूख जायगी । ॥२१॥ वह बिचारा पिता निश्चय से देर तक रोता रहेगा । फिर आधी रात को अथवा उसकी समाप्ति पर नदी की तरह सूख जायगा ॥२२॥ मैं आलस्य-रहित होकर उनकी सेवा करता था, पैर दबाना आदि करता था । मेरे माता-पिता "साम तात !" कहते हुए घोर जंगल में भटकेंगे ॥२३॥ यह दूसरा शल्य है जो मेरे हृदय को कंपाता है कि मैं अपने अन्धे-माता-पिता को न देख सकूंगा और मैं प्राणों का त्याग कर दूंगा ॥२४॥]

राजा ने उसका विलाप सुना तो सोचने लगा, 'यह एकनिष्ठ ब्रह्मचारी है । धर्म में स्थित है । माता-पिता का पोषण करता है । अब इस दुःख में भी उन्हीं की याद करके विलाप करता है । ऐसे गुणवान् के प्रति मैंने अपराध किया । अब मैं

इसे कैसे आश्वस्त करूं ?' फिर 'मेरे नरक में जाने के समय राज्य क्या करेगा ? जिस तरह यह माता-पिता की सेवा करता रहा है, उसी तरह मैं भी उनकी सेवा करूं ! इससे इसका मरना न मरने जैसा होगा।' यह निश्चय करके बोला—

मा बाळहं परिदेवेसि साम कल्याणदस्सन
अहं कम्मकरो हुत्वा भरिस्सं ते ब्रह्मवने ॥२५॥
इस्सत्थेवस्मि कुसलो दळहधम्मोति विस्सुतो,
अहं कम्मकरो हुत्वा भरिस्सं ते ब्रह्मवने ॥२६॥
मिगानं विघासमन्वेसं वनमूलफलानि च,
अहं कम्मकरो हुत्वा भरिससं ते ब्रहावने ॥२७॥
कतमं तं वनं साम यत्थ माता पिता तव
अहं ते तथा भरिस्सं यथा ने अभरी तुवं ॥२८॥

[हे कल्याण-दर्शन साम ! अधिक विलाप मत कर। मैं सेवक बनकर घोर जंगल में उनकी सेवा करूंगा ॥२५॥ मैं तीर चलाने में कुशल हूँ और यह प्रसिद्ध है कि उसमें दृढ़ हूँ। मैं सेवक बनकर घोर जंगल में उनकी सेवा करूंगा ॥२६॥ मृगों का आहार खोजता हुआ तथा वन के फल-फूल खोजता हुआ, मैं सेवक बनकर घोर-जंगल में उनकी सेवा करूंगा ॥२७॥ हे साम ! वह कौन-सा जंगल है, जहाँ तेरे माता-पिता हैं। मैं उनका वैसे ही पालन-पोषण करूंगा जैसे तू करता रहा है। ॥२८॥]

तब बोधिसत्व ने "महाराज ! अच्छा, माता-पिता का पोषण करें" कह, उसे मार्ग बताते हुए गाथा कही—

अयं एकपदी राज यो यं उस्सीसके मम
इतो गन्त्वा अड्ढकोसं तत्थ तेसं अगारकं,
तत्थ माता पिता मय्हं ते भरस्सु इतो गतो ॥२९॥

[राजन् ! यह मेरे सिर की ओर जो पग-डण्डी है उससे आधे-कोस जाने पर उनका निवास-स्थान है। वहाँ मेरे माता-पिता रहते हैं। यहाँ से जाने पर उनका पोषण कर ॥२९॥]

इस प्रकार उसे रास्ता बता, माता पिता के प्रति अत्यन्त स्नेह होने के कारण उसने वैसी वेदना को सहन करते हुए भी उनकी सेवा करने के लिये हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए फिर कहा—

नमो ते कासिराजत्थु नमो ते कासिवद्धन,
अन्धा माता पिता मय्हं ते भरस्सु ब्रहावने ॥३०॥
अञ्जलिं ते पग्गण्हामि कासिराज नमत्थुते,
मातरं पितरं मय्हं वुत्तो वज्जासि वन्दनं ॥३१॥

[हे काशीराज नमस्कार है। हे काशी-वर्धन ! तुझे नमस्कार है। घोर-जंगल में मेरे अन्धे माता पिता की सेवा कर ॥३०॥ हे काशीराज ! तुझे नमस्कार है! मैं हाथ जोड़ता हूँ। मेरे माता-पिता को मेरा प्रणाम कहना ॥३१॥]

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। बोधिसत्व भी माता-पिता को प्रणाम भेज, बेहोश हो गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

दं वत्वान सो सामो युवा कल्याणदस्सनो,
मुच्छितो विसवेगेन विसञ्ञी समपज्जथ ॥३२॥

[यह कहकर 'साम' नामका वह कल्याण-दर्शन तरुण विष-वेग से मूर्छित हो गया, उसे होश नहीं रहा ॥३२॥]

उसने ऊपर की जितनी बातचीत की वह हापते हुए (?) की। लेकिन अब विष के जोर से उसकी चित्त-सन्तति हृदय की ओर प्रवाहित हुई। बातचीत छीज गई। मुँह बंद हो गया। आँखें मुंद गईं। हाथ-पाँव कड़े पड़ गये। सारा शरीर रक्त से भीग गया। राजा ने सोचा, 'अभी तो यह मुझसे बातचीत कर रहा था, क्या हुआ ?'। उसने उसकी साँस देखी। साँस नहीं आ रही थी। शरीर कड़ा पड़ गया था। यह समझ कि साम की मृत्यु हो गई, वह शोक को सहन नहीं कर सका और दोनों हाथों को सिर पर रख जोर जोर से रोने लगा। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

स राजा परिदेवेसि बहुं कारुञ्ञसंहितं,
अजरामरो वहं आसिं अज्जेतञ्ञासि नो पुरे,
सामं कालकतं दिस्वा नत्थि मच्चुस्सनागमो ॥३३॥
दस्सु मं पतिभन्तेति सविसेन समप्पितो,
स्वाज्जेवं गते काले न किञ्चिमभिभासति ॥३४॥
निरयं नून गच्छामि एत्थ मे नत्थि संसयो,
तदा हि पकतं पापं चिररत्ताय किब्बिसं ॥३५॥
भवन्ति तस्स वत्तारो गामे किब्बिसकारको,
अरञ्ञे निम्मनुस्सम्हि कोमं वत्तुमरहति ॥३६॥
सारयन्ति हि कम्मानि गामे संगच्छ माणवा,
अरञ्ञे निम्मनुस्सम्हि को नु मं सारयिस्सति ॥३७॥

[वह राजा अत्यन्त करुणार्द्र होकर विलाप करने लगा—मैं अपने आपको अजर-अमर समझता था। आज साम को मरा देखकर समझ सका हूँ कि मृत्यु का आगमन होता ही है। इससे पहले नहीं समझा था ॥३३॥ विष बुझे बाण से बिंधा होने पर भी जो मुझसे बातचीत कर रहा था, वह अब समय बीतने पर एक शब्द भी नहीं बोलता ॥३४॥ निस्सन्देह मैं नरक ही जाऊंगा। यह किया पाप चिर-काल तक पीड़ा पहुंचायेगा ॥३५॥ बस्ती में 'दारुण-कर्म करनेवाला' कहकर निन्दा करनेवाले रहते हैं। आदमी-रहित इस जंगल में मुझे कौन कहनेवाला है ॥३६॥ बस्ती में आदमी इकट्ठे होकर पाप-कर्मों की याद दिलाते हैं। आदमी-रहित जंगल में मुझे कौन याद दिलायेगा ॥३७॥]

उस समय गन्धमादन में रहनेवाली बहुसोदरी नाम की देव-कन्या थी। वह बोधिसत्व के सातवें पूर्व-जन्म में उसकी माता थी। उसी पूर्व स्नेह के कारण वह नित्य बोधिसत्व का चिन्तन करती थी। उस दिन उसने दिव्य सम्पत्ति का भोग करने में लगे रहने के कारण उसकी याद नहीं की। यह भी कहते ही हैं कि देव-सम्मेलन में गई रहने के कारण (याद नहीं की)। उसके बेहोश हो जाने पर उसे ध्यान आया कि मेरे पुत्र का क्या हाल है? उसने देखा, "पिलियक्ख राजा ने मेरे पुत्र को विष बुझे बाण से बींध दिया है। अब उसे मिग नदी के किनारे बालू पर लिटाकर जोर जोर से

रो रहा है।" उसने सोचा, "यदि मैं नहीं जाऊंगी तो मेरा पुत्र स्वर्ण-साम वहीं नष्ट हो जायगा। राजा का भी हृदय फट जायगा। साम के माता पिता भी निराहार रहकर पानी भी न मिलने के कारण सूखकर मर जायेंगे। मेरे जाने पर राजा पानी का घड़ा ले उसके माता पिता के पास जायगा। उनकी बात सुन वह उन्हें पुत्र के पास लायेगा। तब वे और मैं मिलकर सत्य-क्रिया करेंगे। साम का विष उतर जायेगा। इस प्रकार मेरा पुत्र जीवन लाभ करेगा। माता पिता की आँख खुल जायगी। राजा साम की धर्मदेशना सुन, जाकर महादान दे स्वर्ग-गामी होगा। इसलिये मैं वहाँ जाती हूं।" वह वहां पहुची और मिग नदी के किनारे अदृश्य रहकर, आकाश में ठहर, राजा से बोली।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सा देवता अन्तरहिता पब्बते गन्धमादने,
रञ्ञोव अनुकम्पाय इमा गाथा अभासथ ॥३८॥
आगुं करि महाराज अकरा कम्म दुक्कटं,
अदूसका पिता पुत्ता तयो एकूसना हता ॥३९॥
एहि तं अनुसिक्खामि यथा ते सुगती सिया,
धम्मेनन्धे वने पोस मञ्ञेहं सुगती तया ॥४०॥

[गन्धमादन पर्वत में अन्तर्धान रह उस देवी ने राजा पर अनुकम्पा करने के लिये ये गाथायें कहीं ॥३८॥ महाराज! तुमने बड़ा पाप किया है। तुमने दुष्कृत किया है। तूमने निर्दोष और उसके माता-पिता तीनों को एक बाण से मार डाला ॥३९॥ आ, तुम्हें सीख दूं, जिससे तुम्हें सुगति मिले। तू धर्मानुसार वन में अन्धों की सेवा कर। मैं मानती हूँ कि इससे तेरी सुगति होगी ॥४०॥]

उसने देवी की बात सुन सोचा, "मैं इसके माता-पिता का पोषण कर स्वर्ग जाऊंगा।" इस पर श्रद्धाकर उसने निश्चय किया, 'मुझे राज्य से क्या? उन्हीं का पोषण करूंगा।' इस पर दृढ़ निश्चय कर, जोर जोर से रो-पीटकर, शोक कुछ हलका कर और यह सोच कि स्वर्ण-साम मर गया होगा उसने नाना पुष्पों से उसके शरीर की पूजा की। फिर पानी से अभिषेक कर, तीन बार प्रदक्षिणा कर, चार जगह वन्दना

की। फिर उसका भरा हुआ पानी का घड़ा ले, भारी मन से दक्षिण दिशा की ओर गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

स राजा परिदेवित्वा बहुं कारुञ्ञसंहितं,
उदककुम्भमादाय पक्कामि दक्खिणामुखो ॥४१॥

[रो पीटकर, बहुत कारुणिक स्थिति में वह राजा पानी का घड़ा लेकर दक्षिणाभिमुख गया ॥४१॥]

स्वभाव से भी राजा बलवान था। पानी का घड़ा लिये वह आश्रम-भूमि को कूटता हुआ, दुकूल पण्डित की पर्ण-कुटी के द्वार पर पहुंचा। पण्डित ने अन्दर बैठे ही बैठे उसकी पदध्वनि सुन जान लिया कि यह साम की पदध्वनि नहीं है। 'यह किसकी पदध्वनि है?' पूछते हुए उसने दो गाथायें कहीं—

कस्स नु एसो पदसद्दो मनुस्सस्सेव आगतो,
नेसो सामस्स निग्घोसो को नु त्वमसि मारिस ॥४२॥
सन्तं हि सामो वजति सन्तं पदानि अत्तति,
नेसो सामस्स निग्घोसो को नु त्वमसि मारिस ॥४३॥

[यह किस आनेवाले मनुष्य की पदध्वनि है? यह साम की आवाज नहीं है। मित्र! तू कौन है? ॥४२॥ साम शान्त होकर चलता है, साम शान्ति से पैर रखता है। यह साम की आवाज नहीं है। मित्र! तू कौन है? ॥४३॥]

यह सुन राजा ने सोचा, 'यदि मैं विना अपने राजा होने की बात कहे, इन्हें कहूँ कि मैंने तुम्हारा पुत्र मार डाला है, तो यह क्रुद्ध होकर मुझसे कठोर वचन बोलेंगे। इससे मेरे मन में भी इनके प्रति क्रोध पैदा हो जायगा। तब मैं इनको कष्ट दे सकता हूँ। यह मेरे लिये अकुशल-कर्म होगा। 'राजा' कहने पर सभी को डर लगता है। इसलिये 'अभी' 'राजा' होने की बात कहता हूँ।' उसने पानी रखने की जगह पर पानी का घड़ा रख दिया और पर्णशाला के द्वार पर खड़े होकर कहा—

राजाहमस्मि कासीनं पिलियक्खोति मं विदू
लोभा रट्ठं पहत्वान मिगमेसञ्चरामहं ॥४४॥

इस्सत्थे चस्मि कुसलो दळ्हधम्मोति विस्सुतो,
नागोपि मे न मुच्चेय्य आगतो उसुपातनं ॥४७॥

[मैं काशी (के लोगों) का राजा हूँ। मुझे पिलियक्ख करके जानते हैं। मैं तीर चलाने में कुशल हूँ, बहुत दृढ़ हूँ; यह बात प्रसिद्ध है। मेरे तीर के सामने आया हुआ हाथी भी नहीं बच सकता ॥४४-४५॥]

पण्डित ने भी उसका कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा—

स्वागतन्ते महाराज अथो ते अदुरागतं
इस्सरोपि अनुप्पत्तो यं इधत्थि पवेदय ॥४६॥
तिन्दुकानि पियालानि मधुके कासुमारियो
फलानि खुद्दकप्पानि भुञ्ज राज वरं वरं ॥४७॥
इदम्पि पाणीयं सीतं आभतं गिरिगव्भरा,
ततो पिव महाराज सचे त्वं अभिकंखसि ॥४८॥

इसका अर्थ सत्तिगुम्ब जातक[1] में आ गया है। यहाँ गिरिगब्भरा से मिग नदी ही ग्रहण करना चाहिये। वह गिरिगह्वर से निकलने के कारण गिरि-गह्वर ही हो गई।

इस प्रकार स्वागत किये जाने पर राजा ने सोचा, 'मैंने तुम्हारे पुत्र को मार डाला, यह पहले ही कहना योग्य नहीं है। अजानकार की तरह बातचीत आरम्भ करके कहूंगा।' यह सोच, बोला—

नालं अन्धा वने दट्ठुं कोनुमे फलमाहरि,
अनन्धस्सेवयं सम्मा निवापो मय्हं खायति ॥४९॥

[अन्धा तो वनों में देखने में समर्थ नहीं हो सकता। इन फलों को कौन लाया है? मुझे लगता है कि यह (खाद्य-सामग्री का) संग्रह किसी आँखवाले का ही किया हुआ है? ॥४६॥]

यह सुन पण्डित ने यह प्रकट करने के लिये कि 'महाराजा हम यह फलाफल नहीं लाते, हमारा पुत्र लाता है' प्रकट करने के लिये दो गाथायें कहीं—

१. सत्तिगुम्ब जातक (५०३—१२-१३,१४)।

वहरो युवा नाति ब्रह्म सामो कल्याणदस्सनो,
दीघस्स केसा असिता अथो सूनग्गवेल्लिता ॥५०॥
सो हवे फलमाहत्वा इतो आदा कमण्डुलं,
नदिं गतो उदहारो मञ्ञे न दूरमागतो ॥५१॥

[तरुण है, जवान है, न अति लम्बा है और न अति छोटा है; उसका नाम साम है; वह कल्याण-दर्शन है। उसके बाल लम्बे हैं, काले हैं और मुड़े हुए हैं ॥५०॥ वह फल लाकर, यहाँ से कमण्डलू लेकर पानी लाने के लिये नदी गया है। मैं समझता हूँ कि वह दूर नहीं होगा, वह आता ही होगा ॥५१॥]

यह सुन राजा ने कहा—

अहं तं अवधिं सामं यो तुय्हं परिचारको,
यं कुमारं पवेदेथे सामं कल्याणदस्सनं ॥५२॥
दीघस्स केसा असिता अथो सूनग्गवेल्लिता,
तेसु लोहितलित्तेसु सेति सामो मया हतो ॥५३॥

[जो तुम्हारी सेवा करता था, जिस कल्याण-दर्शन साम कुमार की बात करते हो उसे मैंने मार दिया ॥५२॥ उसके बाल लम्बे हैं, काले हैं और मुड़े हैं। उन रक्त लगे हुए बालों में वह मेरे द्वारा आहत होकर पड़ा है ॥५३॥]

पण्डित के थोड़ी ही दूर पर पारिका की पर्णशाला थी। वह वहाँ बैठी राजा की बात सुन, वह बात जानने की इच्छा से वहाँ से निकली और रस्सी के सहारे से दुकूल पण्डित के पास आकर बोली—

केन दुकूल मन्तेसि हतो सामोति वादिना,
हतो सामोति सुत्वान हदयं मे पवेधति ॥५४॥
अस्सत्थस्सेव तरुणं पवालं मालुतेरितं,
हतो सामोति सुत्वान हदयं मे पवेधति ॥५५॥

[साम मारा गया कहनेवाले किससे हे दुकूल तू बात कर रहा है? 'साम मर गया' सुनने से मेरा हृदय काँपता है ॥५४॥ जैसे पीपल के नये पत्ते को हवा ने चंचल कर दिया हो, उसी प्रकार 'साम मर गया' सुनकर मेरा हृदय कांपता है ॥५५॥]

पण्डित ने उसे उपदेश देते हुए कहा—

पारिके कासिराजायं सो सामं मिगसम्मते,

कोधसा उसुना विज्झि तस्स मा पापमिच्छिम ॥५६॥

[हे पारिके ! यह काशीराज हैं। इसने स्वयं मिग नदी के तट पर क्रोध के वशीभूत हो उसे बींध डाला है। हम इसका बुरा न सोचें ॥५६॥]

पारिक बोली—

किच्छा लद्धो पियो पुत्तो यो अन्धे अभरी वने,

तं एकं पुत्तं घातिम्हि कथं चित्तं न कोपये ॥५७॥

[बड़ी कठिनाई से प्रिय-पुत्र मिला, जो वन में अन्धे माता पिता की सेवा करता था। उस एक पुत्र को मारने वाले के प्रति क्रोध कैसे न पैदा हो ? ॥५७॥]

दुकूल-पण्डित ने कहा—

किच्छा लद्धो पियो पुत्तो यो अन्धे अभरी वने,

तं एक पुत्तं घातिम्हि अक्कोधं आहु पण्डिता ॥५८॥

[बड़ी कठिनाई से प्रिय-पुत्र मिला, जो अन्धे माता-पिता की सेवा करता था। पण्डितों ने कहा है कि ऐसे एक पुत्र को मारनेवाले के प्रति भी क्रोध नहीं करना चाहिये ॥५८॥]

यह कह वे दोनों ही हाथों से छाती मलते हुए, बोधिसत्व के गुणों को याद करते हुए बहुत रोये।

राजा ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—

मा बाळहं परिदेवेथ हतो सामोति वादिना,

अहं कम्मकरो हुत्वा भरिस्सामि ब्रहावने ॥५९॥

इस्सत्थेचस्मि कुसलो दळहधम्मोति विस्सुतो,

अहं कम्मकरो हुत्वा भरिस्सामि ब्रहावने ॥६०॥

मिगानं विघासमन्वेसं वनमूल फलानि च,

अहं कम्मकरो हुत्वा भरिस्सामि ब्रहावने ॥६१॥

['साम मारा गया' कहने वाले द्वारा 'साम मारा गया,' सोच बहुत विलाप न करो। मैं भारी जंगल में तुम्हारा सेवक बनकर तुम्हारा पालन करूंगा ॥५९॥

में तीर चलाने में कुशल हूँ, दृढ़ हूँ—यह प्रसिद्ध है। मैं भारी जंगल में तुम्हारा सेवक बनकर तुम्हारा पोषण करूँगा ।।६०।। मृगों का मांस तथा जंगल के फल-मूल खोजता हुआ मैं तुम्हारा सेवक बनकर तुम्हारा पालन करूंगा ।।६१।।]

इस प्रकार राजा ने 'तुम चिन्ता न करो। मुझे राज्य की अपेक्षा नहीं। मैं जीवन भर तुम्हारी सेवा करूंगा' कह उन्हें आश्वासन दिया। उन्होंने उसके साथ बात-चीत करते हुए कहा—

नेस धम्मो महाराज नेतं अम्हेसु कप्पति,
राजा त्वमसि अम्हाकं पादे वन्दाम ते मयं ।।६२।।

[महाराज ! यह धर्म नहीं है। यह हमें शोभा नहीं देता है। तू हमारा राजा है। हम तेरे पाँव की वन्दना करते हैं ।।६२।।]

यह सुन राजा बहुत प्रसन्न हुआ। ओह ! आश्चर्य है ! मैं इतना दोषी हूँ, तो भी मेरे प्रति कठोर वचन तक नहीं ! मुझे (ऊपर ही) उठाते हैं। उसने गाथा कही—

धम्मं नेसादा भणथ कता अपचिती तया,
पिता त्वमसि अस्माकं माता त्वमसि पारिके ।।६३।।

[हे निषाद ! धर्म की बात करते हो ! तुमने मेरा आदर किया है। तू हमारा पिता है और हे पारिक ! तू माता है ।।६३।।]

उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "महाराज ! तेरे हमारी सेवा करने की आवश्यकता नहीं है। हमारी लाठी का सिरा पकड़कर हमें वहाँ ले जाकर साम को दिखा।" यह प्रार्थना करते हुए उन्होंने दो गाथायें कहीं—

नमो ते कासिराजत्थु नमोते कासिवद्धन,
अञ्जलिं ते पग्गण्हाम याव सामानुपापय ।।६४।।
तस्स पादे पमज्जन्ता मुखञ्च भुज दस्सनं,
संसुम्भमाना अत्तानं कालमागमयामसे ।।६५।।

[हे काशीराज ! तुझे नमस्कार है। हे काशी-वर्धन ! तुझे नमस्कार है। हम तुझे हाथ जोड़ते हैं। जहाँ साम है, वहाँ हमें पहुंचा दे ।।६४।। उसके पाँव

तथा सुन्दर मुंह को पोंछते हुए और लोटते हुए हम अपने मरने के समय की प्रतीक्षा करेंगे ।।६५।।]

उनके ऐसा कहते समय ही सूर्यास्त हो गया । 'यदि मैं इन्हें अभी वहाँ ले जाऊंगा, तो उसे देखकर ही इनका हृदय फट जायगा । इन तीनों के मर जाने पर मेरा नरक जाना निश्चित ही है । इसलिये वहाँ जाने नहीं दूंगा ।' यह सोच राजा ने चार गाथायें कहीं—

अहा वाळमिगाकिण्णं आकासंतं पदिस्सति,
यत्थ सामो हतो सेति चन्दोव पतितो छमा ।।६६।।
अहा वाळमिगाकिण्णं आकासंतं पदिस्सति,
यत्थ सामो हतो सेति सुरियोव पतितो छमा ।।६७।।
अहा वाळमिगाकिण्णं आकासंतं पदिस्सति,
यत्थ सामो हतो सेति पंसुना पतिकुण्ठितो ।।६७।।
अहा वाळमिगाकिण्णं आकासंतं पदिस्सति,
यत्थ सामो हतो सेति इधेव वसथ अस्समे ।।६८।।

[जिस वन में साम आहत होकर उसी प्रकार पड़ा है जैसे चन्द्रमा पृथ्वी पर पड़ा हो वह मृगों से घिरा हुआ महावन आकाश के अन्त में दिखाई देता है ।।६६।। जिस वन में साम आहत होकर उसी प्रकार पड़ा है जैसे सूर्य्य पृथ्वी पर पड़ा हो वह मृगों से घिरा हुआ महावन आकाश के अन्त में दिखाई देता है ।।६७।। जिस वन में साम बालू से ढका हुआ, आहत होकर पड़ा है वह मृगों से घिरा हुआ महावन आकाश के अन्त में दिखाई देता है ।।६८।। जिस वन में साम आहत पड़ा है, वह मृगों से आकीर्ण वन आकाश के अन्त में दिखाई देता है । इसलिये यहीं आश्रम में ही रहें ।।६९।।]

तब उन्होंने (बाल-) मृग आदि से अपनी निर्भयता प्रदर्शित करते हुए गाथा कही—

यदि तत्थ सहस्सानि सतानि बहुतानि च,
नेवम्हाकं भयं कोचि वने वाळेसु विज्जति ।।६९।।

[यदि वहाँ सौ, हजार, अगणित (बाल-) मृग भी हों, तो भी हमें वन में उनसे कुछ भय नहीं है ।।६९।।]

राजा ने जब देखा कि वह उन्हें नहीं रोक सकता तो वह उन्हें पकड़कर वहाँ ले गया। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

ततो अन्धानमादाय कासीराजा ब्रहावने,
हत्थे गहेत्वा पक्कामि यत्थ सामो हतो अहू ।।७०।।

[तब राजा उस बड़े वन में अन्धों को हाथ से लेकर वहाँ पहुँचा, जहाँ साम आहत पड़ा था। ।।७०।।]

उन्हें उसके पास ले जाकर उनसे कहा, यह पुत्र है। तब उसके पिता ने सिर और माँ ने पाँव जांघों में रखकर, बैठकर विलाप किया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

दिस्वान पतितं सामं पुत्तकं पंसुकुण्ठितं,
अपविद्धं ब्रहारञ्ञे चन्दंव पतितं छमा ।।७१।।
दिस्वान पतितं सामं पुत्तकं पंसुकुण्ठितं,
अपविद्धं ब्रहारञ्ञे सुरियं व पतितं छमा ।।७२।।
दिस्वान पतितं सामं पुत्तकं पंसुकुण्ठितं,
अपविद्धं ब्रहारञ्ञे करुणं परिदेवयुं ।।७३।।
दिस्वान पतितं सामं पुत्तकं पंसुकुण्ठितं,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं अधम्मो किर भो इति ।।७४।।

[साम पुत्र को धूल में लिपटे, बिंधे, बड़े वन में वैसे ही पड़े देख जैसे पृथ्वी पर चन्द्रमा पड़ा हो, ... जैसे पृथ्वी पर सूर्य्य पड़ा हो . . . . वे करुणार्द्र हो रोये ।।७३।। साम पुत्र को धूल में लिपटा पड़ा देख वे बाँहें उठाकर रोये कि 'ओह ! अधर्म हुआ'। ।।७४।।]

बाळहं खोसि तुवं सुत्तो साम कल्याणदस्सन
यो अज्जेवं गते काले न किञ्चिमभिभाससि ।।७५।।
बाळहं खोसि तुवं मत्तो साम कल्याणदस्सन,
यो अज्जेवं गते काले न किञ्चिमभिभाससि ।।७६।।
बाळहं खोसि तुवं पमत्तो साम कल्याणदस्सन,
यो अज्जेवं गते काले न किञ्चिमभिभाससि ।।७७।।

बाळहं खोसि तुवं कुद्धो साम कल्याणदस्सन,
यो अज्जेवं गते काले न किञ्चिमभिभाससि ॥८०॥
बाळहं खोसि तुवं दित्तो साम कल्याणदस्सन,
यो अज्जेवं गते काले न किञ्चिमभिभाससि ॥८१॥
बाळहं खोसि तुवं विमनो साम कल्याणदस्सन,
यो अज्जेवं गते काले न किञ्चिमभिभाससि ॥८२॥

(हे कल्याणदर्शन साम ! तू बहुत सोया है। इतना समय बीत जाने पर भी कुछ नहीं बोलता है ! ॥७५॥ हे कल्याणदर्शन साम ! तू बहुत मत्त हो गया है। इतना समय बीत जाने पर भी कुछ नहीं बोलता है ! ॥७६॥ हे कल्याण-दर्शन साम ! तू बहुत प्रमत्त हो गया है. . . . तू बहुत क्रुद्ध हो गया है. . . . तू बहुत अभिमानी हो गया है. . . . तू बहुत रुष्ठ हो गया है, जो इतना समय बीत जाने पर भी कुछ नहीं बोलता है ॥७७-८२॥)

जटं वलितं पंकगतं कोदानि सण्ठपेस्सति,
सामो अयं कालकतो अन्धानं परिचारको ॥८३॥
को वे सम्मज्जनादाय सम्मज्जिस्सति अस्समं,
सामो अयं कालकतो अन्धानं परिचारको ॥८४॥
कोदानि नहापयिस्सति सीतेनुण्होदकेन च,
सामो अयं कालकतो अन्धानं परिचारको ॥८५॥

[हमारी जटायें उलझ गई है, कीचड़ से लथ-पथ हो गई हैं। इन्हें अब कौन ठीक करेगा ? अन्धों की सेवा करनेवाला यह साम अब नहीं रहा ॥८३॥ कौन अब झाड़ू लेकर आश्रम को साफ करेगा ? अन्धों की सेवा करनेवाला यह साम अब नहीं रहा ॥८४॥ कौन अब ठण्डे और गर्म जल से स्नान करायेगा ? अन्धों की सेवा करनेवाला साम अब नहीं रहा ॥८५॥]

को दानि भोजयिस्सति वन मूल फलानि च,
सामो अयं कालकतो अन्धानं परिचारको ॥८६॥

[कौन अब वन के फल-मूल खिलायेगा ? अन्धों की सेवा करनेवाला साम अब नहीं रहा ॥८६॥]

उसकी मां ने बहुत विलाप करने के बाद पुत्र की छाती पर हाथ रखकर गरमी देखी। जब उसने देखा कि गरमी तो अभी है ही तो सोचा कि जहर के जोर से बेहोश हो गया होगा। उसने निश्चय किया कि उसका जहर उतारने के लिये सत्य-क्रिया करेगी। उसने सत्य-क्रिया की।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

दिस्वान पतितं सामं पुत्तकं पंसुकुण्ठितं,
अट्टिता पुत्तसोकेन माता सच्चमभासथ ॥८७॥
येन सच्चेनयं सामो धम्मचारी पुरे अहु,
एतेन सच्चवज्जेन विसं सामस्स हञ्ञतु ॥८८॥
येन सच्चेनयं सामो ब्रह्मचारी पुरे अहु,
एतेन सच्चवज्जेन विसं सामस्स हञ्ञतु ॥८९॥
येन सच्चेनयं सामो सच्चवादी पुरे अहु,
एतेन सच्चवज्जेन विसं सामस्स हञ्ञतु ॥९०॥
येन सच्चेनयं सामो मातापेत्तिभरो अहु,
एतेन सच्चवज्जेन विसं सामास्स हञ्ञतु ॥९१॥
येन सच्चनयं सामो कुले जेट्ठापचायिको,
एतेन सच्चवज्जेन विसं सामस्स हञ्ञतु ॥९२॥
येन सच्चेनयं सामो पाणा पियतरो मम,
एतेन सच्चवज्जेन विसं सामस्स हञ्ञतु ॥९३॥
यं किञ्चत्थि कतं पुञ्ञं मय्हं चेव पितुच्च ते,
सच्चेन तेन कुसलेन विसं सामस्स हञ्ञतु ॥९४॥

[धूल में लिपटे पुत्र साम को गिरा देख, पुत्र शोक से दुःखी हो माता ने सत्य कहा ॥८७॥ जिस सत्य से यह साम पहले धर्मचारी था,....पहले ब्रह्मचारी था....सत्यवादी था....माता पिता की सेवा करनेवाला था....बड़ों का आदर करनेवाला था....मुझे प्राण से भी अधिक प्रिय था, उस सत्य के प्रताप से इसके विष का नाश हो जाय ॥८८-९३॥ मैंने अथवा इसके पिता ने जो कुछ भी पुण्य किया है, उस कुशल-कर्म के प्रताप से साम का विष नष्ट हो जाय ॥९४॥]

इस प्रकार मां के सात गाथाओं द्वारा सत्य-क्रिया करने पर साम ने करवट ली। तब उसके पिता ने "मेरा पुत्र जीता है, मैं भी सत्य-क्रिया करूंगा"[1] सोच ठीक उन्हीं शब्दों में सत्य-क्रिया की।

उसके सत्य-क्रिया करने पर बोधिसत्व पलटकर दूसरी करवट लेटा। तब उस देवी ने तीसरी सत्य-क्रिया की। उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सा देवता अन्तरहिता पब्बते गन्धमादने,
सामस्स अनुकम्पाय इयं सच्चमभासथ ॥॥१०३॥
पब्बत्याहं गन्धमादने चिररत्तनि वासिनी,
न मे पियतरो कोचि अञ्ञो सामा न विज्जति,
एतेन सच्चवज्जेन विसं सामस्स हञ्ञतु ॥१०४॥
सब्बे वना गन्धमया पब्बते गन्धमादने,
एतेन सच्चवज्जेन विसं सामस्स हञ्ञतु ॥१०५॥
तेसं लालप्पमानानं बहुं कारुञ्ञसंहितं,
खिप्पं सामो समुट्ठासि युवा कल्याणदस्सनो ॥१०६॥

[गन्धमादन पर्वत में अन्तर्धान रहकर उस देवी ने साम पर अनुकम्पा करने के लिये यह सत्य कहा ॥१०३॥ मैं चिरकाल से गन्धमादन पर्वत पर निवास कर रही हूँ। साम से बढ़कर दूसरा कोई मेरा प्रिय नहीं है। इस सत्य के प्रताप से साम का विष नष्ट हो जाय ॥१०४॥ गन्धमादन पर्वत पर सभी वन सुगन्धित हैं। इस सत्य के प्रताप से साम का विष नष्ट हो जाय ॥१०५॥ उनके अत्यन्त करुणार्द्र स्वर में कहते समय कल्याण-दर्शन तरुण साम शीघ्रता से उठ खड़ा हुआ ॥१०६॥]

इस प्रकार बोधिसत्व का निरोग होना, माता-पिता को आँख मिलना, अरुणोदय, देवी के प्रताप से उन चारों का आश्रम पहुंच जाना, यह सब एक ही क्षण में हुआ। माता-पिता आँख मिल जाने से और साम के निरोग हो जाने से बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें साम पण्डित ने गाथा कही—

१. गाथा (९५-१०२)

सामोहमस्मि भद्दं वो सोत्थिनम्हि समुट्ठितो,
मा बालहं परिदेवेथ मञ्जुनाभिवदेथ मं ॥१०७॥

[तुम्हारा भला हो, मैं साम हूँ, सकुशल उठ खड़ा हूँ। अधिक विलाप मत करो। मुझसे सुन्दर वाणी बोलो ॥१०७॥]

तब बोधिसत्व ने राजा को देख उसका स्वागत करते हुए कहा—

सागतं ते महाराज अथो ते अदुरागतं,
इस्सरोसि अनुप्पत्तो यं इधत्थिपवेदय ॥१०८॥
तिण्डुकानि पियालानि मधुके कासुमारियो,
फलानि खुद्दकप्पानि भुञ्ज राज वरं वरं ॥१०९॥
अत्थि मे पाणीयं सीतं आभतं गिरिगब्भरा,
ततो पिव महाराज सचेत्वं अभिकंखसि ॥११०॥

[अर्थ पहले आ गया है। गाथा : ४६, ४७, ४८,]

राजा ने उस आश्चर्य को देखकर कहा—

सम्मुय्ह यामि पमुय्हयामि सब्बा मुय्हन्ति मेदिसा,
पेतं ते साम अद्दक्खिं कोनु त्वं साम जीवसि ॥१११॥

[मुझे मोह होता है, प्रमोह होता है, सभी दिशाएं मुझे मूढ़ बनाती हैं। हे साम ! मैंने तेरी लाश देखी थी तुझे किसने जिलाया। ॥१११॥]

साम ने यह सोच कि यह राजा उसे मृत समझता रहा है अपने जीवित रहने की बात प्रकाशित करते हुए गाथा कही—

अपिजीवं महाराज पुरिसं गालहवेदनं,
उपनीतमनसंकप्पं जीवन्तं मञ्ञते मतं ॥११२॥
अपिजीवं महाराज पुरिसं गालहवेदनं,
तं निरोधगतं सन्तं जीवन्तं मञ्ञते मतं ॥११३॥

[महाराज ! अत्यन्त वेदनाग्रस्त प्राणी भी भवंग अवस्था में जीता हुआ भी मृत समझ लिया जाता है। ॥११२॥ महाराज ! अत्यन्त वेदनाग्रस्त प्राणी भी निद्रित अवस्था में जीता हुआ भी मृत समझ लिया जाता है ॥११३॥]

इस प्रकार लोक मुझे जीते जी ही मृत मान रहे थे, कह राजा को सदर्थ में लगाने की इच्छा से धर्मोपदेश देते हुए दो गाथायें कहीं—

यो मातरं वा पितरं वा मच्चो धम्मेन पोसति,
देवापि नं तिकिच्छन्ति माता पेत्ति भरं जनं ॥११४॥
यो मातरं वा पितरं वा मच्चो धम्मेन पोसति,
इध चेव नं पसंसन्ति पेच्च सग्गे च मोदति ॥११५॥

[जो मनुष्य माता अथवा पिता की धर्मानुसार सेवा करता है, देवता भी उस माता-पिता की सेवा करनेवाले की चिकित्सा करते हैं ॥११४॥ जो मनुष्य माता अथवा पिता की धर्मानुसार सेवा करता है, उसकी यहाँ भी प्रशंसा होती है और वह परलोक जाने पर स्वर्ग में भी आनन्द मनाता है ॥११५॥]

यह सुन राजा सोचने लगा, 'भो ! आश्चर्य है। माता पिता की सेवा करनेवाले के रोग की देवता भी चिकित्सा करते हैं ! यह साम अत्यन्त सुशोभित होता है।' वह हाथ जोड़कर बोला—

एस भीयो मुय्हामि सब्बा मुय्हन्ति मे दिसा,
सरणं तं साम गच्छामि त्वञ्च मे सरणं भव ॥११५॥

[मैं और भी मोह को प्राप्त हो गया हूँ। सभी दिशायें मुझे मूढ़ बनाती हैं। हे साम ! मैं तेरी शरण जाता हूँ। तू मेरी प्रतिष्ठा बन ॥११५॥]

तब बोधिसत्व ने 'महाराज ! यदि देवलोक जाने की इच्छा है, महान् दिव्य-सम्पत्ति भोगने की इच्छा है, तो इन दस धर्म-चर्य्याओं का पालन कर।' उसने दस धर्म-चर्य्या गाथायें कहीं।

धम्मञ्चर महाराज मातापितुसु खत्तिय,
इध धम्मं चरित्वान राज सग्गं गमिस्ससि ॥११६॥
धम्मञ्चर महाराज पुत्तदारेसु खत्तिय
इध......................... ॥११७॥
धम्मञ्चर महाराज मित्तामच्चेसु खत्तिय,
इध......................... ॥११८॥

धम्मञ्चर महाराज वाहनेसु बलेसु च,
इध धम्मं चरित्वान राज सग्गं गमिस्ससि ॥११९॥
धम्मञ्चर महाराज गामेसु च निगमेसु च
इध........................ ॥१२०॥
धम्मञ्चर महाराज रट्ठे जनपदेसु च
इध........................ ॥१२१॥
धम्मञ्चर महाराज समणब्राह्मणेसु च
इध........................ ॥१२२॥
धम्मञ्चर महाराज मिगपक्खीसु खत्तिय
इध........................ ॥१२३॥
धम्ञ्चर महाराज धम्मो चिण्णो सुखावहो,
इध........................ ॥१२४॥
धम्मञ्चर महाराज धम्मो चिण्णो सुखावहो,
इध धम्मं चरित्वान स इन्दा देवा सब्रह्मका,
सुचिण्णेन दिवं पत्ता मा धम्मं राज पमादो ॥१२५॥

[अर्थ पहले (दे० तेसकुण जातक ५२१) आ ही चुका है ।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने दस राजधर्मों का उपदेश दे, और और भी उपदेश दे उसे पंचशील दिये । उसने उस उपदेश को सिर से स्वीकार किया और वाराणसी जा, दानादि पुण्य कर परिषद सहित स्वर्ग-गामी हुआ । बोधिसत्व भी मातापिता के साथ अभिञ्ञा और समापत्तियाँ लाभ कर ब्रह्मलोकगामी हुआ ।

शास्ता ने यह धर्मदेशनाला 'भिक्षुओ, माता पिता की सेवा करना पण्डितों की वंश-परम्परा है' कह सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों की समाप्ति पर उस भिक्षु ने स्रोतापत्ति फल प्राप्त किया । उस समय राजा आनन्द था । देव-कन्या उत्पल वर्णा । शक्र अनुरुद्ध था । पिता काश्यप था । माता भद्र कपिला थी । स्वर्ण साम-पण्डित तो मैं ही था ।

५४१. निमि जातक

"अच्छेरं वत लोकास्मि. . . ." यह शास्ता ने मिथिला के आश्रम मखादेव-म्बवन में विहार करते समय मुस्कराने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन शाम के समय जब अनेक भिक्षुओं के साथ शास्ता उस आम्रवन में चारिका कर रहे थे, तो शास्ता एक सुन्दर भूमि-प्रदेश देखकर अपना पूर्व-चरित्र करने की इच्छा से मुस्कराये। आयुष्मान आनन्द स्थविर ने मुस्कराहट का कारण पूछा। 'आनन्द! मखादेव राजा के रूप में पैदा होने के समय मैं इस प्रदेश में ध्यान-क्रीड़ा करता हुआ रहा हूँ।' उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने बिछे आसन पर बैठ पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय म, विदेह राष्ट्र में, मिथिला नगर में, मखादेव नाम का राजा था। उसने चौरासी हजार वर्ष कुमार-क्रीड़ा में बिताये और चौरासी हजार वर्ष तक उप-राज्य किया। चौरासी हजार वर्ष राज्य करते हुए उसने नाई को कहा, "मित्र नाई! जब मेरे सिर में सफेद बाल देखे, तब मुझे कहना" आगे चलकर जब नाई को सफेद बाल दिखाई दिये तब उसने कहा। राजा ने उन्हें उखड़वाकर हथेली पर रखवाया। उन बालों को देखकर राजा को ऐसा लगा मानो मृत्यु सिर पर ही आ गई है। उसने सोचा, अब यह मेरा प्रव्रजित होने का समय है। इसलिये उसने नाई को श्रेष्ठ गाँव दे, ज्येष्ठ पुत्र को बुलाकर कहा—"तात! राज्य संभाल। मैं प्रव्रजित होऊंगा।" उसके यह पूछने पर कि देव! क्यों? उत्तर दिया—

उत्तमंगरूहा मय्हं इमे जाता वयोहरा,
पातुभूता देवदूता पब्बज्जा समयो मम ॥१॥

[मेरी आयु का हरण करनेवाले ये मेरे सिर के (सफेद) बाल पैदा हो गये हैं। ये देव-दूत प्रादुर्भूत हुए हैं। यह मेरी प्रव्रज्या का समय है ॥१॥]

यह कह और उसे राज्याभिषिक्त कर तथा उसे भी यह उपदेश दे कि तू भी ऐसा ही करना, वह नगर से निकला और भिक्षुओं के प्रव्रज्या-क्रम के अनुसार प्रव्रजित हुआ। उसने चौरासी हजार वर्ष तक चारों ब्रह्म-विहारों की भावना कर ब्रह्म-लोक में जन्म ग्रहण किया। इसी प्रकार उसका पुत्र भी प्रव्रजित हो ब्रह्मलोक-गामी हुआ। फिर उसका पुत्र और उसका पुत्र, इस प्रकार दो कम चौरासी हजार क्षत्रिय सिर में सफेद बाल देखकर ही उस आम्रवन में प्रव्रजित हुए। वे भी चारों ब्रह्म-विहारों की भावनाकर ब्रह्मलोक में पैदा हुए। उनमें सर्व-प्रथम-उत्पन्न मखादेव राजा ने ब्रह्म-लोक में रहते समय अपने वंश की ओर देखा तो उसे दो कम चौरासी हजार क्षत्रिय प्रव्रजित दिखाई दिये। उसने प्रसन्न हो विचार किया कि इससे आगे वंश चलेगा अथवा नहीं चलेगा? उसे दिखाई दिया कि नहीं चलेगा। तब उसने सोचा कि अपने वंश को मैं ही चालू करूंगा। वह वहाँ से च्युत हुआ और उसने मिथिला नगर में राजा की पटरानी की कोख में जन्म ग्रहण किया। उसके नामकरण के दिन लक्षणज्ञों ने लक्षण देखकर कहा, "महाराज! यह राजकुमार तुम्हारे वंश को समाप्त करने के लिये उत्पन्न हुआ है। तुम्हारा वंश ही प्रव्रज्या-वश है। इससे आगे न चलेगा।"

यह सुन राजा ने 'यह रथ-चक्र की नेमि की तरह मेरे वंश को चालू रखने के लिये पैदा हुआ है' सोच उसका नाम नेमि-कुमार ही रख दिया। बचपन से ही उसकी दान, शील और उपोसथ-कर्म में रुचि थी। उसका पिता पूर्व की भाँति ही, सफेद बाल देख, नाई को गाँव दे, पुत्र को राज्य सौंप, आम्रवन में प्रव्रजित हो, ब्रह्म-लोकगामी हुआ। निमि-राजा ने दान देने की इच्छा से चारों नगर-द्वारों पर और नगर के बीच, इस प्रकार पाँच-दानशालायें बनवाईं और महादान दिया। एक एक दान-शाला में लाख के हिसाब से प्रतिदिन पाँच पाँच लाख कार्षापणों का त्याग किया। प्रति-दिन पाँच शीलों की रक्षा की। पक्ष के दिनों में उपोसथ-व्रत ग्रहण कर जनता

को भी दानादि पुण्य-कर्मों में प्रेरित किया। स्वर्ग मार्ग बताकर और नरक का भय दिखाकर धर्मोपदेश दिया। उसके उपदेशानुसार चल, पुण्यादि करने वाले, मर-मरकर देव लोक में उत्पन्न होते थे। देव-लोक भर गया। नरक खाली-सा हो गया।

तब त्र्योतिश-भवन में देवता सुधर्मा देव-सभा में इकट्ठे हुए और यह कहकर बोधिसत्व का गुणानुवाद करने लगे कि ओह! हमारा आचार्य निमि-राजा। उसी के कारण हम यह बुद्ध-ज्ञान द्वारा भी अपरिमेय दिव्य-सम्पत्ति का अनुभव करते हैं। महासमुद्र के ऊपर छिड़के गये तेल की तरह मनुष्य-लोक में भी इसकी प्रशंसा फैल गई। शास्ता ने वह बात प्रकटकर उसे भिक्षु-संघ को कहते हुए कहा—

अच्छेरं वत लोकस्मि उप्पज्जन्ति विचक्खणा,
यदा अहू निमिराजा पण्डितो कुसलत्थिको ॥१॥
राजा सब्बविदेहानं अदा दानं अरिन्दमो,
तस्स तं ददतो दानं संकप्पो उदपज्जथ,
दानं वा ब्रह्मचरियं वा कतमं सु महप्फलं ॥२॥

[आश्चर्य का विषय है कि लोक में बुद्धिमान लोग पैदा होते रहते हैं। जब कुशलार्थी पण्डित निमि राजा पैदा हुआ, तो उस अरिमर्दन, सब विदेहों के राजा ने दान दिया। दान देते समय उसके मन में संकल्प पैदा हुआ—दान और ब्रह्मचर्य में से किसका अधिक फल है? ॥१२॥]

उस समय इन्द्र-भवन गरम हो गया। शक्र ने उसके कारण पर विचार किया तो उसे उस प्रकार विचार करते देख उसने सोचा कि मैं इसके सन्देह का निवारण करूंगा। वह अकेला ही शीघ्र आया और सारे घर को प्रकाशित कर शयनागार में प्रवेश किया। फिर प्रकाश फैलाकर, आकाश में खड़े हो, उसके पूछने पर उत्तर दिया। उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तस्स संकप्पमञ्ञाय मघवा देवकुञ्जरो,
सहस्सनेत्तो पातुरहु वण्णेन निहनं तमं ॥३॥
स लोमहट्ठो मनुजिन्दो वासवं अवचा निमि,
देवतानुसि गन्धब्बो आदु सक्को पुरिन्ददो,
न च मे तादिसो वण्णो दिट्ठो वा यदि वा सुतो ॥४॥

स लोमहट्ठं त्वान वासवो अवचा निमिं,
सक्को हमस्मि देविन्दो आगतोस्मि तवन्तिके,
अलोमहट्ठो मनुजिन्द पुच्छ पञ्हं यदिच्छसि ॥५॥
सो च तेन कतोकासो वासवं अवचा निमि,
पुच्छामि तं महाबाहु सब्बा भूतानमिस्सर,
दानं वा ब्रह्मचरियं वा कतमं सु महप्फलं ॥६॥
सो पुट्ठो नरदेवेन वासवो अवचा निमिं,
विपाकं ब्रह्मचरियस्स जानं अकरवास जानतो ॥७॥
हीनेन ब्रह्मचरियेन खत्तिये उपपज्जति,
मज्झिमेन च देवत्तं उत्तमेन विसुज्झति ॥८॥
न हेते सुलभा याचयोगेन केनचि,
ये काये उपपज्जन्ति अनागारा तपस्सिनो ॥९॥

[देवेन्द्र शक्र को जब उसके संकल्प का पता लगा तो वह सहस्र-नेत्र अपने प्रकाश से अन्धकार का नाश करता हुआ प्रकट हुआ ॥३॥ उस लोम-हर्षित मनुजेन्द्र निमि ने वासव को कहा : "तू देव है ! गन्धर्व है अथवा पुरेन्द्र शक्र है ? मैंने ऐसा वर्ण न देखा है और न सुना है " ॥४॥ वासव ने निमि को लोमहर्षित देख कहा, "हे देवेन्द्र ! मैं शक्र हूँ । मैं तेरे पास आया हूँ । हे मनुजेन्द्र ! विना रोमांचित हुए जो प्रश्न चाहें पूछें ॥५॥ उसके अनुज्ञा देने पर, निमि ने शक्र से कहा, "हे सर्व भूतेश्वर महाबाहु ! मैं तुझसे पूछता हूँ कि दान ओर ब्रह्मचर्य्य मे से किसका फल अधिक है ?" ॥६॥ नरेन्द्र द्वारा पूछे गये शक्र ने जानते हुए उस अजानकार को ब्रह्मचर्य का फल कहा—निम्न-स्तर के ब्रह्मचर्य्य से क्षत्रिय होकर उत्पन्न होता है, मध्यम-स्तर के ब्रह्मचर्य से देवता होकर उत्पन्न होता है ओर श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य से विशुद्ध होता है ॥७॥ ये जन्म किसी भी अन्य यज्ञादि से सुलभ नही है । इनमें अनागरिक तपस्वी ही जन्म ग्रहण करते हैं ॥८॥]

दुदीपो सागरो सेलो मुचलिन्दो भगीरसो,
उसीतरो अट्ठको च अस्सको च पुथुज्जनो ॥९॥

एते चञ्ञे च राजानो खत्तिया ब्राह्मणा बहू,
पुथुयञ्ञं यजित्वान पेतं ते नातिवत्तिसुं ॥१०॥

[दुदीप, सागर, सेल, मुचलिन्द, भगीरथ, उसीनर, अट्ठक और अस्सक, जितने भी पृथक-जन हुए तथा और भी जो बहुत से क्षत्रिय-ब्राह्मण राजा हुए उन्होंने बहुत से यज्ञ किये, किन्तु वे (कामावचर) प्रेत-योनि से आगे नहीं बढ़ सके ॥१०॥]

अद्धा इमे अवत्तिसु अनागारा तपस्सिनो,
सत्तिसयो यामहनु सोमयागो मनोजवो ॥११॥
समुद्दो माघों भरतो च इसिकालिक रक्खियो,
अंगीरसो कस्सपो च किसवच्छो अकित्ति च ॥१२॥

[ये अनागारिक तपस्वी—सात ऋषि; यामहनु, सोमयाग, मनोजव, समुद्र, माघ, भरत और इसिकालिक रक्खिय तथा अङ्गीरस, काश्यप, किसवच्छ और अकीर्ति—निश्चय से (कामावचर प्रेत—योनि) लांघ गये ॥११-१२॥]

इस प्रकार पहले अनु-श्रुति के अनुसार ब्रह्म-चरिय के महान फल का वर्णन कर अब अपने अनुभव के अनुसार कहा—

उत्तरेन नदी सीदा गम्भीरा दुरतिक्कमा,
नलग्गिवण्णा जोतन्ति सदा कञ्चन पब्बता ॥१३॥
परूळहकच्छा तगरा रूळहकच्छा वना नगा,
तत्रासु दस सहस्सानि पोराणा इसयो पुरे ॥१४॥
अहं सेट्ठोस्मि दानेन संयमेन दमेन च,
अनुत्तरं वतं कत्वा पकिरचारी समाहिते ॥१५॥
जातिवन्तं अजच्चञ्च अहमुज्जुगतं नरं,
अतिवेलं नमस्सिस्सं कम्मबन्धू हि मातिया ॥१६॥
सब्बे वण्णा अधम्मट्ठा पतन्ति निरयं अधो,
सब्बे वण्णा निरुज्झन्ति चरित्वा धम्ममुत्तमं ॥१७॥

[उत्तर-हिमालय मे सीदा नामकी नदी है, जो गम्भीर है, जो दुरतिक्रमण है। वहाँ कांचन पर्वत सरकण्डों से निकलने वाली आग के समान चमकते हैं ॥१३॥

उस नदी के तट पर तगर (-सुगन्धी) है, और पर्वतों में वन हैं। वहाँ पूर्वकाल में दस हजार ऋषी थे ॥१४॥ मैंने दान में श्रेष्ठ-पद लाभ किया, उन संयमी, इन्द्रिय-दमन-युक्त, अनुत्तर व्रत करने वाले, एकान्तवासी एकाग्रचित्त ऋषियों को (दान देकर) ॥१५॥ मैंने उनकी जाति आदि की चिन्ता न कर, उनकी ऋजु-चर्य्या के कारण उन्हें नमस्कार किया, क्योंकि कर्म ही मनुष्यों का बन्धु है ॥१६॥ अधर्म-मार्ग पर चलनेवाले सभी वर्ण नरक में जाते हैं। श्रेष्ठ-धर्म का आचरण कर सभी वर्ण (दुःख के) निरोध को प्राप्त होते हैं ॥१७॥]

यह कह 'यद्यपि महाराज दान से ब्रह्मचर्य्य ही श्रेष्ठफलदायी है, तो भी ये दोनों ही महापुरुषों के वितर्क हैं, इसलिये इन दोनों बातों में अप्रमादी हो, दान दें और शील की रक्षा करें' उपदेश दिया और अपने निवास स्थान को ही चला गया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इदं वत्वान मघवा देवराजा सुजम्पति,
वेदेहं अनुसासित्वा सग्गकायं अपक्कमि ॥१८॥

[इतना कह देवेन्द्र, सुजम्पति, शक्र विदेह (राज) को अनुशासित कर स्वर्ग-लोक चला गया ॥१८॥]

तब देव-गण ने पूछा—"महाराज ! दिखाई नहीं दिये। कहाँ गये थे ?"

'मित्रों ! मिथिला में निमि राजा के मन में एक सन्देह उत्पन्न हो गया था। उसके प्रश्न का समाधान कर उसे सन्देह-रहित करने गया था।' यह कह, फिर उसी बात को गाथा द्वारा कहने के लिये कहा—

इमं भोन्तो निसामेथ यावन्तेत्थ समागता,
धम्मिकानं मनुस्सानं वण्णं उच्चावचं बहुं ॥१९॥
यथा अयं निमि राजा पण्डितो कुसलत्थिको,
राजा सब्बविदेहानं अदा दानं अरिन्दमो ॥२०॥
तस्स तं ददतो दानं संकप्पो उदपज्जथ,
दानं वा ब्रह्मचरियं वा कतमंसु महप्फलं ॥२१॥

[आप जितने लोग यहाँ आये हैं, सब सुनें। धार्मिक मनुष्यों का तर-तम बहुत है ॥१९॥ जैसे यह पण्डित, कुशलार्थी, सभी विदेहों का राजा निमि है।

इस शत्रुओं का दमन करने वाले राजा ने दान दिया ।।२०।। दान देते हुए उसके मन में यह संकल्प पैदा हो गया—दान और ब्रह्मचर्य्य में किसका फल अधिक है ? ।।२१।।]

इस प्रकार उसने बिना कोई बात छोड़े, राजा का गुणानुवाद किया। यह सब सुन देवताओं की इच्छा हुई कि राजा को देखें। वे बोले, "महाराज। निमि राजा हमारा आचार्य्य है। उसके उपदेशानुसार चलकर ही हमें दिव्य-सम्पत्ति प्राप्त हुई। हम उसे देखने की इच्छा रखते हैं। उसे बुलाकर, महाराज ! हमें दर्शन करायें।" शक्र ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और मातलि को बुलाकर कहा, "मातलि ! वेजयन्त रथ जोतो। मिथिला जाकर निमि राजा को दिव्य-यान पर बिठाकर लाओ।" वह 'अच्छा' कह, स्वीकार कर रथ जोतकर चल दिया। जितनी देर शक्र देवताओं से बातचीत करता रहा और मातलि को आज्ञा दे रथ जुतवाता रहा, उतनी देर में मनुष्य-गणना के हिसाब से एक महीना बीत गया।

जिस समय पूर्णिमा की रात को उपोसथ-व्रत धारण किये निमि राजा खिड़की खोलकर अमात्यों के बीच घिरा बैठा शील का मनन कर रहा था, पूर्व दिशा से उगते हुए चन्द्रमा के साथ ही वह रथ भी प्रकट हुआ। शाम का भोजन समाप्त कर सुख-पूर्वक घर के द्वारों पर बैठे हुए मनुष्य कहने लगे, "आज दो चाँद उगे।" उनके वार्तालाप करते समय ही रथ प्रकट हुआ। जनता ने जब यह देखा कि यह चन्द्रमा नहीं और शनैः शनैः जब लोगों ने मातलि द्वारा हांके जाते हुए, रथ में जुते हुए हजार घोड़े देखे तो लोग सोचने लगे "यह दिव्य-यान किसके लिये आता है ?" फिर सोचा, और किसके लिये होगा ? हमारा राजा धार्मिक है। उसी के लिये शक्र ने वैजयन्त रथ भेजा होगा। हमारा राजा ही इसके योग्य है, सोच, प्रसन्न हो गाथा कहने लगे—

अब्भुतो वत लोकस्मि उप्पज्जि लोमहंसनो,
दिब्बो रथो पातुरहु वेदेहस्स यसस्सिनो ।।२२।।

[लोक में अद्भुत लोम-हर्षक बात हुई है। यशस्वी विदेह के लिये दिव्य-रथ आया है ।।२२।।]

जिस समय लोग बातचीत कर रहे थे उसी समय वायु-वेग से मातलि आ पहुंचा। उसने रथ को रोका और उसे खिड़की की देहली से पिछली ओर सटाकर, चढ़ाने

की तैयारी कर, राजा को आवाहन किया । उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

> **देवपुत्तो महिद्धिको मातली देवसारथी,**
> **निमन्तयित्थ राजानं वेदेहं मिथिलग्गहं ॥२३॥**
> **एहि मं रथमारुय्ह राजसेट्ठ दिसम्पति,**
> **देवा दस्सनकामा ते तावतिंसा सइन्दका**
> **सरमाना हि ते देवा सुधम्मायं समच्छरे ॥२४॥**

[महान् ऋद्धिवान्, देव-पुत्र, देव-सारथी मातलि ने मिथिलेश विदेह राजा को निमंत्रण दिया ॥२३॥ उसने कहा—"हे राजश्रेष्ठ ! हे दिशाओं के पति ! आयें और रथपर चढ़ें । इन्द्र सहित त्रयत्रिंश देवता तेरे दर्शन की इच्छा करते हैं । देवतागण, सुधर्मा में बैठे तुम्हें याद कर रहे हैं "॥२४॥]

राजा ने सोचा"इससे पहले नहीं देखा । देव-लोक देख सकूंगा । और मैं मातलि का भी संग्रह कर सकूंगा । मैं जाऊंगा ।" उसने अन्तःपुर के लोगों को तथा जनता को बुलाकर कहा, "मैं शीघ्र ही लौट आऊंगा । तुम अप्रमादी होकर दान आदि पुण्य करना ।" यह कह रथ पर चढ़ गया । इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

> **ततो च राजा तरमानो वेदेहो मिथिलग्गहो,**
> **आसना वुट्ठहित्वान पमुखो रथमारुहि ॥२५॥**
> **अभिरूळ्हं रथं दिब्बं मातली एतब्रवी,**
> **केन तं नेमि मग्गेन राजसेट्ठ दिसम्पति,**
> **येन वा पापकम्मन्ता पुञ्ञकम्मा च ये नरा ॥२६॥**

[तब मिथिलेश, विदेह, प्रमुख राजा ने शीघ्रता की और आसन से उठ रथ पर आ बैठा ॥२५॥ दिव्य रथ पर चढ़े हुए राजा से मातलि ने पूछा—हे राजश्रेष्ठ ! हे दिशाओं के पति ! मैं तुझे किस मार्ग से ले चलूं ? जिससे पापी लोग जाते हैं अथवा जिससे पुण्यवान् लोग जाते हैं ? ॥२६॥]

शक्र से वैसी आज्ञा न मिली रहने पर भी उसने अपनी विशेषता प्रकट करने

के लिये वैसा कहा। राजा ने सोचा, मैंने दोनों में से एक भी स्थान नहीं देखा। उसने दोनों को देखने की इच्छा से कहा—

उभयेनेव मं नेहि मातलि देवसारथि,
येन या पापकम्मन्ता पुञ्ञकम्मा च ये नरा ॥२७॥

[हे देव-सारथि ! हे मातलि ! मुझे दोनों रास्तों से ले चल।—पापियों के रास्ते से भी और पुण्य-कर्मों के रास्ते से भी ॥२७॥]

तब मातलि ने 'दोनों रास्तों से एक साथ नहीं जाया जा सकता' सोच फिर प्रश्न किया—

केन नं पठमं नेमि राजसेट्ठ दिसम्पति,
येन वा पापकम्मन्ता पुञ्ञकम्मा च ये नरा ॥२८॥

[हे राजश्रेष्ठ ! हे दिशाओं के पति ! मैं पहले तुझे किस रास्ते ले चलूं ? जिस रास्ते पापी लोग गये है, अथवा जिस रास्ते पुण्यवान् लोग गये हैं ? ॥२८॥]

तब राजा ने सोचा, 'देव-लोक तो मैं जाऊंगा ही, अभी नरक देख लूं।' उसने उत्तर दिया।—

निरये ताव पस्सामि आवासे पापकम्मिनं,
ठानानि लुद्दकम्मानं दुस्सीलानञ्च या गति ॥२९॥

[मैं पहले पापियों के निवासस्थान, लोभियों के निवास-स्थान तथा दुश्शीलों की क्या दुर्गति होती है, वह नरक ही देखूंगा ॥२९॥]

उसे वेतरणी दिखाई गई। उस अर्थ को शास्ता ने प्रकाशित किया—

दस्सेसि मातली रञ्ञो दुग्गं वेतरणिं नदिं,
कुथन्तिं खारसंयुत्तं तत्तं अग्गिसिखूपमं ॥३०॥

[मातलि ने राजा को बड़ी कठिनाई से पार की जा सकनेवाली नदीं दिखाई, जो उबल रही थी, जिसमें कांटे थे, जो अग्नि-शिखा के समान तप्त थी ॥३०॥]

राजा ने वेतरणी में लोगों को नाना प्रकार के दुःख से पीड़ित होते देख, सोचा, "मातलि ! इन प्राणियों ने क्या पाप-कर्म किये हैं ? ।" उसने उत्तर दिया। इस अर्थ को शास्ता ने प्रकाशित किया—

निमी हवे मातलिं अज्झभासथ
दिस्वा जनं पतमानं विदुग्गे,
भयं हि मं विन्दत्ति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किमकंसु पापं
ये मे जना वेतरणिं पतन्ति ॥३१॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खासजानतो ॥३२॥
ये दुब्बले बलवन्तो जीवलोके
हिंसेन्ति रोसेन्ति सुपापधम्मा,
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पापं
ते वे जना वेतरणिं पतन्ति ॥३३॥

[आदमियों को कष्ट में गिरते देखकर निमि ने मातलि को कहा, "हे सारथि ! इन्हें देखकर मुझे भय लगता है। हे देव सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ, इन लोगों ने क्या पाप-कर्म किया है, जिससे यह वेतरणी में आ पड़े ॥३१॥ तब उस जानकार देव-सारथि मातलि ने उस अजानकार को पाप-कर्मों का फल कहा ॥३२॥ जीव-लोक में जो पापी बलवान दुर्बलों को कष्ट देते हैं, तकलीफ देते हैं वे रौद्र-कर्म करने-वाले पाप-कर्म के पकने पर वेतरणी नदी में आकर गिरते हैं ॥३३॥]

इस प्रकार मातलि ने उसका समाधान किया। जब राजा ने वेतरणी देख ली तो वहाँ से अन्तर्धान हो रथ को आगे बढ़ा उसे कुत्तों आदि से खाई जानेवाली जगह दिखाई। भयभीत राजा के प्रश्न करने पर उसने समाधान किया। उस अर्थ को शास्ता ने प्रकाशित किया—

सामा च सोणा सबला च गिज्झा,
काकोळसंघा च अदेन्ति भेरवा,
भयं हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देव सारथि ॥३४॥

इमे नु मच्चा किमकंसु पापं
ययिमं जनं काकोळा अदेन्ति ॥३५॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथी,
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खास जानतो ॥३६॥
ये केचिमे मच्छरिनो कदरिया
परिभासका समणब्राह्मणानं,
हिंसेन्ति रोसेन्ति सुपापधम्मा
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पापं
तयिमं जनं काकोळा अदेन्ति ॥३७॥

[लाल-वर्ण तथा चितकबरे कुत्ते, गीध और भयानक कुत्ते (आदमियों को) खा रहे हैं। हे सारथि! इन्हें देखकर मुझे भय लगता है। हे देव-सारथि! मैं तुझे पूछता हूँ, इन लोगों ने क्या पाप-कर्म किया है जिससे ये कौवे इन्हें खा रहे हैं ॥३५॥ तब उस जानकार देव-सारथि मातलि ने उस अजानकार को पाप-कर्म का फल कहा ॥३६॥ जो भी कंजूस, बुरी नियत वाले, पापी, श्रमण-ब्राह्मणों का मजाक करते हैं, उन्हें कष्ट देते हैं, वे रौद्र-कर्म करने वाले पाप-कर्म के पकने पर इसी प्रकार कुत्तों द्वारा खाये जाते हैं ॥३७॥]

अगले प्रश्नों का समाधान भी इसी प्रकार है—

सजोतिभूता पठविं कमन्ति
तत्तेहि खन्धेहि च पोथयन्ति,
भयं हि मं विन्दति सुत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देव सारथि
इमे नु मच्चा किमकंसु पापं
ये मे जना खन्धहता सयन्ति ॥३८॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खास जानतो ॥३९॥
ये जीवलोकस्मि सुपापधम्मिनो
नरञ्च नारिञ्च अपापधम्मं,

हिंसन्ति रोसेन्ति सुपापधम्मा
ते लुद्दकम्मा पसवेत्व पापं
ते मे जना खन्धहता सयन्ति ॥४०॥

[जलते हुए शरीर से (तप्त) पृथ्वी पर चलते हैं और जलते तनों से पीटे जाते हैं। हे सारथि ! इन्हें देखकर मुझे भय लगता है। हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ, इन लोगों ने क्या पाप-कर्म किया है, जिससे यह जलते हुए तनों से पीटे गये पड़े हैं ॥३८॥ तब उस जानकार देव-सारथि मातलि ने उस अजानकार को पाप-कर्म का फल कहा ॥३९॥ जीव लोक में जो पापी सदाचारी पुरुष अथवा स्त्री को कष्ट देते हैं, वे रौद्र-कर्म करनेवाले (ये) पाप-कर्म के पकने पर जलते हुए तनों से पीटे गये (गिर) पड़े हैं ॥४०॥]

अङ्गारकासुं अपरे थुनन्ति
नरा रुदन्ता परिदड्ढगत्ता,
भयं हि मं विन्दति सूत दिस्वा,
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किमकंसु पापं
ये मे जना अंगारं थुनन्ति ॥४१॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देव सारथि,
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खास जानतो ॥४२॥
ये केचि पूगायतनस्स हेतु
सक्खिं करित्वा इणं जापयन्ति,
ते जापयित्वा जनतं जनिन्द
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पापं,
ते ये जना अंगारकासुं थुनन्ति ॥४३॥

[ये दूसरे आदमी अङ्गारों के गढ़ों में पड़े हुए, जलते शरीरों के कारण रोते हुए तड़पते हैं। हे सारथि ! इन्हें देखकर मुझे भय लगता है। हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूं, इन लोगों ने क्या पाप-कर्म किया है, जिससे ये अङ्गारों में पड़े तड़-

पते हैं ।।४१।। तब उस जानकार देव-सारथि मातलि ने उस अजानकार को पाप-कर्म का फल कहा ।।४२।। जो पूग के धन को (झूठे) साक्षी की मदद से नष्टकर डालते हैं, हे जनिन्द ! वे जनता को धोखा देते हैं । वे (ऐसे) रौद्रकर्म करने वाले पाप-कर्म के पकने पर अङ्गार के गढ़ों में तड़पते हैं ।।४३।।]

सजोतिभूता जलिता पदित्त।
पदिस्सति महती लोहकुम्भी,
भयं हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देव सारथि
इमे तु मच्चा किमकंसु पापं
ये मे जना अवंसिरा लोह कुम्भिं पतन्ति ।।४४।।
तस्स पुटठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खास जानतो ।।४५।।
ये सीलवं समणं ब्राह्मणं वा
हिंसन्ति रोसेन्ति सुपापधम्मिनो,
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पापं
ते मे जना अवंसिरा लोहकुम्भिं पतन्ति ।।४६।।

[जलती हुई, प्रदीप्त, लोहे की बड़ी कुम्भी दिखाई देती है । हे सारथि ! इन्हें. . . .है । हे देवसारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ. . . .सिर नीचे पैर ऊपर लोह-कुम्भी में तड़पते हैं ।।४४।। तब उस जानकार देव-सारथि मातलिने उस अजानकार को पाप-कर्म का फल कहा ।।४५।। जो पापी किसी सदाचारी श्रमण अथवा ब्राह्मण को कष्ट देते हैं, तकलीफ देते हैं, वे रौद्र-कर्म करनेवाले पाप-कर्म के पकने पर सिर नीचे, पैर ऊपर हो लोह-कुम्भी नरक में गिरते हैं ।।४६।।]

लुञ्चेन्ति गीवं अथ वेठयित्वा
उण्होदकस्मिं पकिलेदयित्वा,
भयं हि यं विन्दति सूत दिस्वा,
पुच्छामि तं मातलि देव सारथि

इमे नु मच्चा किमकंसु पापं
ये मे जना लुत्तसिरा सयन्ति ।।४७।।
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खास जानतो ।।४८।।
ये जीवलोकस्मिं सुपापधम्मिनो
पक्खी गहेत्वान विहेठयन्ति
ते हेठयित्वा जनतं जनिन्द
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पापं
ते मे जना लुत्तसिरा सयन्ति ।।४९।।

[ऊष्ण रक्त में भिगोकर, गरदन को मरोड़कर नोचते हैं । हे सारथि ! इन्हें ....है । हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ....सिर कटे पड़े हैं ।।४७।। तब उस जानकार....फल कहा ।।४८।। जीव लोक में जो पापी पक्षियों को पकड़कर मरोड़ते हैं, वे हे राजन् ! जनता को कष्ट देते हैं । वे रौद्र-कर्मकरनेवाले पाप-कर्म के पकने पर सिर कटकर पड़े रहते हैं ।।४९।।]

पहूत तोया अनिखातकूला
नदी अयं सन्दति सूपतित्था,
घम्माभितत्ता मनुजा पिवन्ति
पिवतञ्च तेसं भुसं होति पाणि ।।५०।।
भयं हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किम कंसु पापं
पिवतञ्च तेसं भुसं होति पाणि ।।५१।।
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खास जानतो ।।५२।।
ये सुद्ध धञ्ञं पलापेन मिस्सं
असुद्धकम्मा कयिनो ददन्ति,

घम्माभितत्तातं पिपासितानं
पिवतञ्च तेसं भुसं होति पाणि ॥५३॥

[यह भरपूर जलवली, बिना गहरे किनारोंवाली, सुन्दर तीर्थवाली नदी बहती है। घाम से तप्त आदमी पानी पीते हैं। पीने से उनकी प्यास और भी बढ़ जाती है ॥५०॥ हे सारथि ! इन्हें....है। हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ....प्यास और भी बढ़ जाती है ॥५१॥ तब उस जानकार....फल कहा ॥५२॥ जो पापी धान में भुस मिलाकर ग्राहकों को देते हैं, वे घाम से अभितप्त होकर प्यास के मारे पानी पीते हैं। पीने से उनकी प्यास और भी बढ़ जाती है ॥५३॥]

उसूहि सत्तीहि च तोमरेहि
ऊभयानि पस्सानि तुदन्ति कन्दतं,
भयं हि मं विन्दति सुत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि
इमे नु मच्चा किमकंसु पापं
ये मे जना सत्तिहता 'सयन्ति ॥५४॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातलो देवसारथि
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खास जानतो ॥५५॥
ये जीवलोकस्मिं असाधुकम्मिनो
अदिन्नमादाय करोन्ति जीविकं,
धञ्ञं धनं रजतं जातरूपं
अजेलकं चापि पसुं महीसं
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पापं
ते मे जना सत्तिहता सयन्ति ॥५६॥

[बाणों से, शक्ति से तथा भालों से दोनों ओर छेदे जाते हुए क्रन्दन करते हैं। हे सारथि ! इन्हें....। हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इन लोगों ने क्या पाप-कर्म किया है कि ये शक्ति के मारे पड़े हैं ॥५४॥ तब उस जानकार....फल कहा ॥५५॥ इस जीव लोक में जो पापी धान्य, धन, चान्दी,

सोना, बकरी, भेड़ और भैंस आदि की चोरी अथवा ठगी से अपनी जीविका चलाते हैं, उन रौद्र-कर्म करनेवालों का जब पाप-कर्म पकता है तो वे शक्ति के मारे (गिर) पड़ते हैं ।।५६।।]

गोवाय बद्धा किस्स इमे पुनेके
अञ्ञे विकता बिलकता पुनेके,
भयं हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि
इमे नु मच्चा किमकंसु पापं
ये मे जना बिलकता सयन्ति ।।५७।।
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातलो देव-सारथि,
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खासजानतो ।।५८।।
ओरब्भिका सूकरिका च मच्छिका
पसुं महिसञ्च अजेलकञ्च,
हन्त्वान सूनेसु पसारयिंसु
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पापं
तेमे जना विलकता सयन्ति ।।५७।।

[ये कुछ लोग किस कारण से गरदन से बंधे हैं, दूसरे क्यों टुकड़े-टुकड़े हुए पड़े हैं और ये कुछ क्यों ढेरी हुए पड़े हैं ? हे सारथि ! इन्हें. . . .है। हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इन लोगों ने क्या पाप-कर्म किया है कि ये ढेरी हुए पड़े हैं ? ।।५७।। तब उस जानकार. . . .फल कहा ।।५८।। भेड़ मारनेवाले, सूअर मारनेवाले, मछली मारनेवाले, बकरी-भेड़ और भैंस मारनेवाले जब इन पशुओं को मारकर उनका माँस बेचने के लिये दुकानों पर फैलाते हैं, तो इन रुद्र-कर्म करनेवालों के पाप-कर्म पकने पर वे ढेर होकर गिर पड़ते हैं ।।५९।।]

रहदो अयं मुत्तकरीस पूरो
दुग्गन्धरूपो असुचि पूति वायति,
खुधापरेता मनुजा अदेन्ति
भयं हि मं विन्दति सूत दिस्वा

पुच्छामि तं मातलि देवसारथि
इमे नु मच्चा किमकंसु पापं
ये मे जना मुत्तकरीसभक्खा ॥६०॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देव-सारथि,
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खास जानतो ॥६१॥
ये केचिमे कारणिका विरोसका
परेसं हिंसाय सदा निविट्ठा
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पापं
मित्तद्दुनो मीळहमदेन्ति बाला ॥६२॥

[यह पेशाब-पाखाने से भरा तालाब है, दुर्गन्ध पूर्ण है, खराब गन्ध आती है। इसे भूख से पीड़ित मनुष्य खाते हैं। हे सारथि ! इन्हें....है। हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इन लोगों ने क्या पाप-कर्म किया है कि यह पेशाब-पाखाना खाते हैं ॥६३॥ तब उस जानकार....फल कहा ॥६४॥ ये जो शिकारी (?) विरोधी हैं, सदा दूसरों की हिंसा करने में ही रत हैं, वे रौद्र-कर्म करनेवाले, मित्र-द्रोही पाप के पकने पर गन्दगी खाते हैं ॥६५॥]

रहदो अयं लोहितपुब्बपूरो
दुग्गन्धरूपो असुचि पूति वायति,
घम्माभितत्ता मनुजा पिवन्ति
भयं हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देव-सारथि
इमे नु मच्चा किमकंसु पापं
ये मे जना लोहितपुब्बभक्खा ॥६६॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देव-सारथि
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खास जानतो ॥६७॥
ये मातरं पितरं वा जीव लोके
पाराजिका अरहन्ते हनन्ति,

ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पापं
ते मे जना लोहितपुब्बभक्खा ॥६८॥

[यह रक्त और पीप से भरा हुआ तालाब है, दुर्गन्ध-पूर्ण है, खराब गन्ध आती है। इसे घाम से तपे हुए आदमी पीते हैं। हे सारथि ! इन्हें. . . .है। हे देवसारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इन लोगों ने क्या पाप-कर्म किया है कि ये रक्त और पीप खाते हैं ॥६६॥ तब उस जानकार. . . .फल कहा ॥६७॥ इस जीव-लोक में जो माता पिता अथवा अरहतों को मारकर पाराजिका को प्राप्त होते हैं, वे रौद्र-कर्म करनेवाले पाप के पकने पर रक्त-पीप पीनेवाले होते हैं ॥६८॥]

दूसरे उस्सद नरक में भी नरकपाल नारकियों की ताड़ जितने बड़े जलते हुए लोहे के हुक से जिह्वा छेद, खेंच, उठ प्राणियों को जलती हुई लोहे की पृथ्वी पर गिरा, बैल के चमड़े की तरफ फैला सौ जंजीरों से पीटते हैं। वे स्थल पर पड़ी मछली की तरह तड़पते हैं। उस दुःख को न सह सकने के कारण मुख से फेन गिराते हैं। मातलि ने जब यह दिखाया, तो राजा बोला—

जिव्हञ्च पस्स बलिसेन विद्धं
विहतं यथा संकुसतेन चम्मं,
फन्दन्ति मच्छाव थलम्हि खित्ता
मुञ्चन्ति खेलं रुदमाना किमेते ॥६९॥
भयं हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किमकंसु पापं
ये मे जना वंकधस्ता सयन्ति ॥७०॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देव सारथि
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खासि जानतो ॥७१॥
ये केचि सन्थानगता मनुस्सा
अग्घेन अग्घं कयं हापयन्ति,
कूटेन कूटं धन लोभहेतु
छन्नं यथा वारिचरं वधाय ॥७२॥

न हि कुटकारिस्स भवन्ति ताणा
सकेहि कम्मेहि पुरक्खतस्स,
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पापं
ते मे जना वंकघस्ता सयन्ति ।।७३।।

[हुक से छिदी जिह्वा और सौ जंजीरों से पीटा गया जैसा चमड़ा देखा और स्थल पर फेंकी हुई मछलियों के समान तड़पते तथा रोते हुए मुँह से फेन फेंकते देखा। हे सारथि! इन्हें....हैं। हे देवसारथि! मैं तुझे पूछता हूँ कि इन लोगों ने क्या पाप-कर्म किया है कि ये हुक से छेदे गये हैं? ।।७०।। तब उस जानकार....फल कहा ।।७१।। लोग क्रय-विक्रय के स्थान पर जाकर, कीमत दर कीमत से क्रय करने वालों को हानि पहुंचाते हैं, धन के लोभ से तराजू की डण्डी मारना आदि कूट-कर्म करते हैं और उसे वैसे छिपाते हैं जैसे मछली मारनेवाले मछली पकड़ने के कांटे को। कूट-कर्म करनेवाले को त्राण नहीं मिलता। वह अपने कर्म से ही पुरस्कृत होता है। वे रौद्र-कर्म करनेवाले लोग पाप-कर्म के पकनेपर हुक से छेदे जाते हैं।।७२-७३।।

नरिया इमा सम्परिभिन्नगत्ता
पग्गय्ह कन्दन्ति भुजो दुजच्चा,
सम्मक्खिता लोहितपुब्बलित्ता
गावो यथा आघातने विकत्ता,
ता भूमि भागस्मि सदा निखाता
खन्धातिवत्तन्ति सजोतिभुता ।।७४।।
भयं हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातली देवसारथि,
इमा नु नरियो किमकंसु पायं
या भूमिभागस्मिसदा निखाता
खन्धातिवत्तन्ति सजोतिभूता ।।७४।।
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खासजानतो ।।७५।।

कोलिनियायो इध जीवलोके
असुद्धकम्मा असतं अचारुं
ता दित्तरूपा पतिविप्पहाय
अञ्ञं अचारुं रतिखिड्डहेतु
ता जीवलोकस्मिं रमापयित्वा
खन्धातिवत्तन्ति सजोतिभूता ॥७६॥

[ये भली प्रकार ढकी घृणित स्त्रियाँ बाहें उठाकर रोती हैं—चारों ओर से रक्त और पीप से ढकी हुई, वध-स्थल पर कटी हुई गौओं के समान। उस प्रदेश में गड़ी हुई वे ज्वलन्त पर्वतों द्वारा पीसी जाती हैं ॥७४॥ हे सारथि। इन्हें....है। हे देव-सारथि! मैं तुझे पूछता हूँ कि इन नारियों ने क्या पाप-कर्म किया है कि ये इस प्रदेश में गड़ी हुई हैं और ज्वलन्त पर्वतों द्वारा पीसी जाती हैं ॥७४॥ तब उस जानकार....फल कहा ॥७५॥ इस जीवलोक में जो कुलाङ्गनायें असंयत-कर्म करती हैं, शठ-रूपा रति-क्रीड़ा के लिये अपने पति को छोड़ दूसरे के पास जाती हैं, वे पर-पुरुष के साथ अपने चित्त को रमाकर, ज्वलन्त पर्वतों द्वारा पीसी जाती हैं ॥७६॥]

पादे गहेत्वा किस्स इमे पुनुके
अवंसिरा नरके पातयन्ति,
भयं हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथी,
इमे नु मच्चा किमकंसु पापं
ये मे जना अवंसिरा नरके पातयन्ति ॥७७॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खासजानतो ॥७८॥
यं जीवलोकस्मिं असाधुकम्मिनो
परस्सदारानि अतिक्कमन्ति,
ते तादिसा उत्तमभण्डथेना
ते मे जना अवंसिरा नरके पातयन्ति ॥७९॥

ते वस्सपूगानि बहूनि तत्थ
निरये दुक्खं वेदनं वेदयन्ति,
न हि पापकारिस्स भवन्ति ताणा,
सकेहि कम्मेहि पुरक्खतस्स
ते लुद्दकम्मा पसवेत्वा पापं
तेमे जना अवंसिरा नरके पातयन्ति ॥८०॥

[ये नरकपाल किनके पाँवों को पकड़कर सिर नीचे पैर ऊपर करके गिराते हैं। हे सारथि ! इन्हें. . . .है । हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इन्होंने क्या पाप-कर्म किया है कि इन्हे (नरक-पाल) सिर नीचे, पैर ऊपर करके गिराते हैं ॥७७॥ तब उस जानकार. . . .फल कहा ॥७८॥ इस जीव-लोक में जो असत्पुरुष दूसरों की स्त्रियों का अतिक्रमण करते हैं, वे दूसरों की प्रिय-वस्तु चुरानेवाले नरक में गिराये जाते हैं ॥७९॥ वे अनेक वर्ष तक वहाँ नरक मे दुःख भोगते हैं। पाप-कर्म करनेवाले को त्राण नहीं मिलता। वह अपने कर्म से ही पुरस्कृत होता है। वे रौद्र-कर्म करनेवाले लोग पाप-कर्म के पकने पर सिर नीचे, पैर ऊपर करके नरक में गिराये जाते हैं। ॥८०॥]

यह कह सर्व-संग्राहक मातली ने उस नरक को भी लोपकर, रथ को आगे ले जा मिथ्या-दृष्टियों के जलने का नरक दिखाया—

उच्चावचा मे विविधा उपक्कमा
निरयेसु दिस्सन्ति सुघोररूपा,
भयं हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किमकंसु पापं
येमे जना अधिमत्ता दुक्खा तिब्बा
खरा कटुका वेदना वेदियन्ति ॥८१॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पापकम्मानं जानं अक्खास जानतो ॥८२॥

ये जीवलोकस्मिं सुपापदिट्ठिनो
विस्सासकम्मानि करोन्ति मोहा,
परंच दिट्ठिसु समादपेन्ति
ते पापदिट्ठि पसवेत्वा पापं
तेमे जना अधिमत्ता दुक्खा तिब्बा
खरा कटुका वेदना वेदियन्ति ॥८३॥

[नरक मे मुझे छोटे बड़े नाना प्रकार के भयानक उपक्रम दिखाई देते हैं। हे सारथि ! . . . . इन्हें है। हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इन्होंने क्या पाप-कर्म किया है कि ये लोग इतनी अधिक मात्रा में तीव्र, कठोर, कटु वेदनाओं का अनुभव करते हैं ? ॥८१॥ तब उस जानकार. . . . फल कहा ॥८२॥ इस जीव लोक में जो मिथ्या-दृष्टिवाले, उस दृष्टि में विश्वास के कारण, मोहग्रस्त होने से पाप करते हैं, वे ही जन इतनी अधिक मात्रा मे तीव्र, कठोर, कटु वेदनाओं का अनुभव करते है ॥८३॥]

मातली ने राजा को मिथ्या-दृष्टियों के पकने का नरक दिखाया। देवलोक में भी देवता राजा के आने की प्रतीक्षा करते हुए सुधर्मा में इकट्ठे हुए। शक्र सोचने लगा कि मातली देर क्यों कर रहा है ? उसने जाना कि मातली अपनी विशेषता प्रकट करने के लिये 'महाराज ! अमुक काम करके आदमी अमुक नरक में जलता है' दिखाता घूम रहा है। उसने सोचा कि निमि राजा की आयु ही समाप्त हो जा सकती है और नरकों का अन्त नहीं हो सकता। तब उसने एक शीघ्रगामी दूत को बुलाकर कहा कि मातली को जाकर कहो कि राजा को शीघ्र लेकर आये। मातली ने उसकी बात सुन सोचा, अब देर नहीं की जा सकती। उसने एक ही बार में राजा को चारों ओर के बहुत से नरक दिखाकर गाथा कही—

विदितानि ते महाराज आवासं पापकम्मिनं,
ठानानि लुद्दकम्मानं दुस्सीलानञ्च या गति;
उय्याहिदानि राजिसि देवराजस्स सन्तिके ॥८४॥

[महाराज ! आपने पापियों के निवास-स्थान जान लिये और रौद्र-कर्म करने

वालों के स्थान भी तथा दुश्शीलों की जो दुर्गति होती है, वह भी जान ली। हे राजन्! अब देव-राज के पास चलें ।।८४।।)

नरक-काण्ड समाप्त

यह कह मातलि ने देव-लोक की ओर रथ का मुंह मोड़ा। राजा ने देव-लोक जाते समय बीरणि नामकी देव-कन्या का आकाश-स्थित विमान देखा, जो बारह योजन का था, जिसके स्तम्भ मणिमय-कंचन निर्मित थे, जो सब अलंकारों से मण्डित था, जो उद्यान तथा पुष्करिणियों से युक्त था तथा जो कल्प-वृक्षों से घिरा था। उसने उस देव-कन्या को भी देखा जो कूटागार के भीतर शैया पर सहस्रों अप्सराओं से घिरी बैठी थी और मणिमय-झरोखे को खोलकर बाहर झांक रही थी। उसने मातलि से प्रश्न करते हुए गाथा कही—

पञ्चथूपं दिस्सतिदं विमानं
मालापिलन्धा सयनस्स मज्झे,
तत्थच्छति नारी महानुभावा
उच्चावचं इद्धि विकुब्बमाना ।।८५।।
वित्ति हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
अयं नु नारी किमकासि साधुं
या मोदति सग्गपत्ता विमाने ।।८६।।
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पुञ्ञकम्मानं जानं अक्खासजानतो ।।८७।।
यदि ते सुता बीरणी जीवलोके
आमाय दासी अहु ब्राह्मणस्स,
सा पत्तकालं अतिथिं विदित्वा
माताव पुत्तं सकिमाभिनन्दि ।।८८।।
संयमा संविभागा च,
सा विमानस्मिं मोदति ।।८९।।

[यहाँ यह विमान दिखाई देता है, जिसके पाँच शिखर हैं, जो मालाओं से अलंकृत है और जहां शैय्या पर वह महाप्रतापी नारी नाना प्रकार की देव-नारियों को प्रकट करती हुई बैठी है ।।८५।। हे सारथी ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है। हे देवसारथी ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इस नारी ने क्या पुण्य-कर्म किया है, जो स्वर्ग में विमान-सुख भोग रही है ।।८६।। तब उस जानकार देव-सारथी मातलि ने उस अजानकार को पुण्य-कर्मों का फल कहा ।।८७।। इस जीव-लोक में यदि तुमने सुना हो, तो ब्राह्मण की वीरणी (?) नामकी गृह-दासी थी । उसने अतिथियों का आगमन-समय जान उनका वैसे ही आदर किया, जैसे माता पुत्र का करती है । अपने संयम और त्याग के प्रताप से ही वह विमान में आनन्द मनाती है ।।८६।।]

यह कह मातली ने रथ को आगेकर सोण-दिन्न देव-पुत्र के सात स्वर्ण-विमान दिखाये । उसने उन्हें और उसकी श्री-सम्पत्ति देख, उसके द्वारा किये गये कर्म के बारे में पूछा । मातलि ने उत्तर दिया—

दद्दल्लमाना आभेन्ति विमाना सत्तनिम्मिका
तत्थ यक्खो महिद्धिको सब्बाभरणभूसितो
समन्ता अनुपरियाति नारीगणपुरक्खतो ।।८८।।
वित्ति हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि त मातलि देवसारथि,
अयं नु मच्चो किमकासि साधुं
यो मोदति सग्गपत्तो विमाने ।।८९।।
तस्स पुटठो वियाकासि मातली देवसारथी,
विपाकं पुञ्ञकम्मानं जानं अक्खास जानतो ।।९०।।
सोणदिन्नो गहपति एसदानपति अहू
एस पब्बजितुद्दिस्स विहारे सत्त कारयि ।।९१।।
सक्कच्चं ते उपट्ठासि भिक्खवो तत्थ वासिके,
अच्छादनञ्च भत्तञ्च सेनासनपदीपियं
अदासि उजुभूतेसु विप्पसन्नेन चेतसा ।।९२।।

चातुद्दसिं पञ्चदसिं यव पक्खस्स अट्ठमिं,
पाटिहारियपक्खञ्च अट्ठंगसुसमागतं ॥९३॥
उपोसथञ्च उपवसो सदा सीलेसु संवुतो
संयमो संविभागो च सो विमानस्मि मोदति ॥९४॥

[प्रज्वलित चमकते हुए सात विमान हैं। वहाँ सभी आभरणों से विभूषित महाप्रतापी यक्ष, नारी-समूह के साथ चारों ओर घूमता है ॥८८॥ हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द होता है। हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इस आदमी ने क्या पुण्य-कर्म किया है, जो यह स्वर्ग में विमान-सुख भोग रहा है ? ॥८९॥ तब उस जानकार....फल कहा ॥९०॥ यह सोण-दिन्न गृहपति दानी था। इसने प्रव्रजितों के लिये सात विहार बनवाये। इसने वहाँ रहनेवाले भिक्षुओं की अच्छी तरह सेवा की। इसने प्रसन्न-चित्त से ऋजु-चरित्रों को वस्त्र, भोजन, शयन-आसन तथा प्रदीप-सामग्री का दान दिया चतुर्दशी, पंचदशी और अष्टमी तथा सप्तमी-नवमी आदि को भी अष्टांग उपोसथ-व्रतका पालन किया। इसने शील तथा संयम के साथ सदा उपोसथ-व्रत का पालन किया है। अपने संयम तथा त्याग के प्रताप से ही वह विमान में आनन्द मनाता है ॥९१-९४॥]

इस प्रकार सोण-दिन्न का कर्म कह मातली ने रथ को आगे बढ़ा स्फटिक-विमान दिखाया। वह विमान ऊंचाई में पच्चीस योजन था, अनेक सौ रक्त रत्नमय स्तम्भों से युक्त था, अनेक सौ शिखरों से युक्त था, छोटी छोटी घंटियों के जाल से घिरा था, स्वर्ण-रजतमय ध्वजायें लहलहा रही थीं, नाना प्रकार के पुष्पों, विचित्र उद्यानों तथा वन-भूमि से विभूषित था, रमणीय पुष्करिणियों से युक्त था और वहाँ गीत-वाद्य में यक्ष अप्सरायें भरी पड़ी थी। यह देख राजा ने उन अप्सराओं का पूर्व-कर्म पूछा। मातली ने भी बताया—

पभासति इमं ब्याम्हं फलिकासु सुनिम्मितं,
नारीवरगणाकिण्णं कूटागारवरोचितं,
उपेतं अन्नपाणेहि नच्चगीतेहि चूभयं ॥९५॥
वित्ति हि मं विन्दति सूत दिस्वा

पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
इमा नु नारियो किमकंसु साधुं
या मोदरे सग्गपत्ता विमाने ॥९६॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथी,
विपाकं पुञ्ञकम्मानं जानं अक्खास जानतो ॥९७॥
या काचि नारियो इध जीवलोके
सीलवतियो उपासिका,
दानेरता निच्च पसन्नचित्तो
सच्चे ठिता उपासथे अप्पमत्तो
संयमा संविभागा च ता विमानस्मि मोदरे ॥९८॥

[यह स्फटिक-निर्मित विमान चमकता है, जो नारियों के समूह से आकीर्ण है और शिखरों से सुशोभित है तथा जो अन्नपान और नृत्य-गीतादि मे युक्त है ॥९५॥ हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है । हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इन नारियों ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि जिसके प्रताप से यह स्वर्ग में आनन्द मनाती हैं ॥९६॥ तब उस जानकार. . . .फल कहा ॥९७॥ इस जीवलोक में जितनी भी नारियाँ शीलवान् उपासिकायें हैं, दान में रत हैं, नित्य प्रसन्न रहनेवाली हैं, सत्य में स्थित हैं, उपोसथ-व्रत में अप्रमादी हैं, संयमी हैं तथा त्याग में रुचि रखती हैं—वे सब विमान में आनन्द मना रही हैं ॥९८॥]

उसने रथ को आगे बढ़ा एक मणिमय विमान दिखाया। वह समभूमि पर खड़ा करने पर मणिपर्वत की तरह ऊंचा होता था । दिव्य-गीत-वादित युक्त बहुत से देव-पुत्रों को देख राजा ने उन देव-पुत्रों का किया कर्म पूछा । मातलि ने कहा—

पभासति इदं ब्याम्हं वेलुरियासु सुनिम्मितं,
उपेतं भूमिभागेहि विभत्तं भागसोमितं ॥९९॥
आलम्बरा मुतिगांच नच्चगीता सुवादिता,
दिब्बा सद्दा निच्छरन्ति सवणेय्य मनोरमा ॥१००॥

नाहं एवं गतं जातु एवं सुरुचिरं पुरे
सद्दं समभिजानामि दिट्ठं वा यदि वा सुतं ॥१०१॥
वित्ति हि मं विन्दति सूतदिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किमकंसु साधुं
ये मोदरे सग्गपत्ता विमाने ॥१०२॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाक पुञ्ञकम्मानं जानं अक्खास जानतो ॥१०३॥
ये केचि मच्चा इध जीवलोके सीलवन्तो उपासका,
आरामउदपाने च पपा संकमनानि च ॥१०४॥
अरहन्ते सीतिभूते सक्कच्चं पटिपादयुं,
चीवरं पिण्डपातञ्च पच्चयं सयनासनं,
अदंसु उजुभूतेसु विप्पसन्नेन चेतसा ॥१०५॥
चातुद्दसिं पञ्चदसिं याव पक्खस्स अट्ठमिं,
पाटिहारियपक्खञ्च अट्ठंगसुसमागतं ॥१०६॥
उपोसथं उपवसुं सदासीलेसु संवुता,
सञ्ञमा संविभागा च ते विमानस्मिं मोदरे ॥१०७॥

[यह बिल्लौर का बना विमान चमक रहा है, यह रमणीय भूमि से युक्त है और भलि प्रकार विभक्त है ॥९९॥ आलम्बर तथा मृदङ्ग का शब्द, सुवादित नृत्य-गीत और सुन्दर सुनने योग्य, दिव्य शब्दों की ध्वनि आती है ॥१००॥ मैं निश्चय से नहीं जानता कि मैंने कभी इस प्रकार के सुन्दर नगर में इस प्रकार का मनोरम शब्द सुना हो ॥१०१॥ हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है । हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इन आदमियों ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि ये स्वर्ग के विमान में आनन्द मनाते हैं ॥१०२॥ तब उस जानकर. . . .फल कहा ॥१०३॥ इस जीवलोक में जिन शीलवान् उपासकों ने शान्त-चित्त अरहतों की भलि प्रकार सेवा की, जिन्होंने उनके लिए आराम, जलाशय, प्याऊ और चंक्रमण-स्थान बनवाये,जिन्होंने प्रसन्न-चित्त हो चीवर, पिण्डपात, रोगी-प्रत्यय तथा शयना-

सन दिये, जो चतुर्दशी, पूर्णिमा, पक्ष की अष्टमी और त्रयोदशी आदि को अष्टांगशील ग्रहण करके उपोसथ-व्रत करते रहे, वे अपने संयम तथा त्याग के कारण विमान में आनन्द मना रहे हैं ।।१०४-१०७।।]

इस प्रकार उनका कर्म कह, रथ को आगे बढ़ा दूसरा स्फटिक विमान भी दिखाया। अनेक शिखरों से मण्डित, नाना प्रकार के पुष्पों से लदे हुए श्रेष्ठ वृक्षों से अलंकृत तटवाली, नाना प्रकार के पक्षियों के निनाद से गूँजती हुई, निर्मल जलवाली नदी से घिरा हुआ, अप्सराओं से घिरा हुआ, किसी पुण्यवान का वह निवास-स्थान देखकर राजा ने उसका कर्म पूछा। मातली ने भी कहा—

पभासति इदं व्यम्हं फलिकासु सुनिम्मितं,
नारीवरगणाकिण्णं कूटागारवरोचितं ।।१०८।।
उपेतं अन्नपाणेहि नच्चगीतेहि चूभयं,
नज्जो च अनुपरियाति नानापुप्फदमायुता ।।१०९।।
वित्ति हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
अयं नु मच्चो किमकासि साधुं
यो मोदति सग्गपत्तो विमाने ।।११०।।
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पुञ्ञकम्मानं जानं अक्खासजानतो ।।१११।।
किम्बिलायं गहपति एस दानपती अहू,
आरामे उदपाने च पपा संकमनानि च ।।११२।।
अरहन्ते सीतिभूते सकच्चं पटिपादयी,
चीवरं पिण्डपातञ्च पच्चयं सयनासनं,
अदासि उजुभतेसु विप्पसन्नेन चेतसा ।।११३।।
चातुद्दसिं पञ्चदसिं याव पक्खस्स अट्ठमिं,
पाटिहारिय पक्खञ्च अट्ठंगसुसमागतं ।।११४।।
उपोसथञ्चुपवसि सदा सीलेसु संवुतो,
संयमो संविभागो च सो विमानस्मि मोदति ।।११५।।

[यह स्फटिक का बना विमान चमक रहा है, नारिगण से घिरा हुआ शिखरों से सजा हुआ तथा, अन्न-पान से युक्त और नृत्य तथा गीत से भी समन्वित । नाना प्रकार के पुष्प-द्रुमोंवाली नदियाँ भी बहती हैं ।।१०८-१०९।। हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है । हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इस आदमी ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि यह स्वर्ग के विमान में आनन्द मना रहा है ।।११०।। तब उस जानकार.....फल कहा ।।१११।। यह गृहस्थ किम्बिल नगरी में दानपति था । इसने प्रसन्न-चित्त से शान्त-चित्त अरहतों की भलि प्रकार सेवा की । इसने उनके लिये आराम, जलाशय, प्याऊ तथा चन्द्रमण-स्थान बनवाए । इसने, चीवर, पिण्ड-पात, रोगी- प्रत्यय तथा शयनासन दिये । इसने चतुदर्शी, पूर्णिमा, पक्ष की अष्टमी और त्र्योदशी आदि को अष्टांग शील ग्रहण करके उपोसथ-व्रत किये । यह अपने संयम तथा त्याग के कारण विमान में आनन्द मना रहा है ।।११२-११५।।]

इस प्रकार उसका किया पुण्य-कर्म प्रकट कर रथ को आगे बढ़ा और भी स्फटिक विमान दिखाया । पहले विमान की भी अपेक्षा उस विमान में विशेषता देख, नाना प्रकार के फूल-फलों से युक्त वृक्षोंवाले उस विमान को देख राजा ने उस सम्पत्तिवान देव-पुत्र का कर्म पूछा ।

दूसरे ने भी उसे कहा—

पभासति इदं ब्याम्हं फलिकासु सुनिम्मितं,
नारीवरगणाकिण्णं कूटागारवरोचितं ।।११८।।
उपेतं अन्नपाणेहि नच्चगीतेहि चूभयं,
नज्जो च अनुपरियाति नाना पुप्फदुमावुता ।।११९।।
राजायतना कपित्था अम्बा साला च जम्बुयो,
तिन्दुका च पियाला च दुमा निच्चफला बहू ।।१२०।।
वित्ति हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
अयं नु मच्चो किमकासि साधुं
यो मोदति सग्गपत्तो विमाने ।।१२१।।

तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पुञ्ञकम्मानं नानं अक्खासजानतो ॥१२२॥
मिथिलायं गहपति एस दानपती अहू,
आरामे उदपाने च पपा संकमनानिच ॥१२३॥
अरहन्ते सोतभूते सकच्चं पटिपादयि,
चीवरं पिण्डपातञ्ञ पच्चयं सयनासनं.
अदासि उजुभूतेसु विप्पसन्नेन चेतसा ॥१२४॥
चातुद्दसिं पञ्चदसिं यावपक्खस्स अट्ठमिं,
पाटिहारिय पक्खञ्च अट्ठंगसुसमागतं ॥१२५॥
उपोसथञ्चुपवसि सीलेसु संवुतो
संयमो संविभागो च सो विमानास्मि मोदति ॥१२६॥

[यह स्फटिक का बना विमान चमक रहा है, नारि-गण से घिरा हुआ, शिखरों से सजा हुआ तथा अन्न-पान से युक्त और नृत्य तथा गीत से भी समन्वित। नाना प्रकार पुष्प-द्रुमों वाली नदियाँ भी बहती है ॥११८-११९॥ राजायतन, कैथ, आम्र, शाल, जामुन, तिन्दुक (?) पियाल तथा और भी नित्य फल देनेवाले बहुत से वृक्ष हैं ॥१२०॥ हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है। हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इस आदमी ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि यह स्वर्ग के विमान में आनन्द मना रहा है ॥१२१॥ तब उस जानकार. . . .फल कहा ॥१२२॥ यह गृहस्थ मिथिला नगरी में दानपति था। इसने प्रसन्न-चित्त से शान्त चित्त अरहतों की भलि प्रकार सेवा की, इसने उनके लिये आराम, जलाशय, प्याऊ तथा चन्क्रमण-स्थान बनवाये, इसने चीवर, पिण्ड-पात, रोगी-प्रत्यय तथा शयनासन दिये, इसने चतुर्दशी, पूर्णिमा, पक्ष की अष्टमी और त्रयोदशी आदि को अष्टांग-शील ग्रहण करके उपोसथ-व्रत किये। यह अपने संयम तथा त्याग के कारण विमान में आनन्द मना रहा है ॥१२३-१२६॥]

इस प्रकार उसका भी कर्म कह रथ को आगे बढ़ाया। फिर पहले जैसा ही एक दूसरा स्फटिक विमान दिखाया। राजा ने उस विमान के देव-पुत्र का कर्म पूछा। मातली ने कहा—

पभासति इदं ब्याम्हं वेलुरियासु निम्मितं,
उपेतं भूमिभागेहि विभत्तं भागसोमितं ॥१२७॥
आलम्बरा मुतिङ्गा च नच्चगीता सुवादिता,
दिब्बा सद्दा निच्छरन्ति सवणेय्या मनोरमा ॥१२८॥
नाहं एवं गतं जातु एवं सुरुचिरं पुरे,
सद्दं समभिजानामि दिट्ठं वा यदि वा सुतं ॥१२९॥
वित्ति हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि
अयं नु मच्चो किमकासि साधुं
यो मोदति सग्गपत्तो विमाने ॥१३०॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पुञ्ञकम्मानं जानं अक्खासजानतो ॥१३१॥
वाराणसियं गहपति एस दानपती अहू,
आरामे उदपाने च पपा संकमनानि च ॥१३२॥
अरहन्ते सोतिभूते सकच्चं पटिपादयि,
चीवरं पिण्डपातञ्च पच्चयं सयनासनं,
अदासि उजुभूतेसु विप्पसन्नेन चेतसा ॥१३३॥
चातुद्दसिं पञ्चदसिं याव पक्खस्स अट्ठमिं,
पाटिहारियपक्खञ्च अट्ठंगसुसमागतं ॥१३४॥
उपोसथं उपवसी सदा सीलेसु संवुतो,
संयमो संविभागो च सो विमानस्मिं मोदति ॥१३५॥

[यह बिल्लौर का बना विमान चमक रहा है, यह रमणीय भूमि से युक्त है और भलि प्रकार विभक्त है ॥१२७॥ आलम्बर तथा मृदङ्ग का शब्द, सुवादित नृत्य-गीत और सुन्दर सुनने योग्य दिव्य शब्दों की ध्वनि आती है ॥१२८॥ मैं निश्चय से नहीं जानता कि मैंने कभी इस प्रकार के सुन्दर नगर में इस प्रकार का मनोरम शब्द सुना हो ॥१२९॥ हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है। हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इस आदमी ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि यह

स्वर्ग के विमान में आनन्द ले रहा है ॥१३०॥ तब उस जानकार....फल कहा ॥१३१॥ यह गृहस्थ वाराणसी में दानपति था। इसने प्रसन्न-चित्त से शान्त-चित्त अरहतों की भलि प्रकार सेवा की, इसने उनके लिये आराम, जलाशय, प्याऊ, तथा चन्क्रमण-स्थान बनवाये। इसने चीवर, पिण्डपात, रोगी-प्रत्यय तथा शयनासन दिये। इसने चतुर्दशी, पूर्णिमा, पक्ष की अष्टमी और त्रयोदशी आदि को अष्टांग-शील ग्रहण करके उपोसथ-व्रत किये। यह अपने संयम तथा त्याग के कारण विमान में आनन्द मना रहा है ॥१३२-१३५॥]

तब रथ को आगे बढ़ा बाल-सूर्य के समान चमकनेवाले स्वर्ण-विमान को दिखाकर, वहाँ रहनेवाले देव-पुत्र की सम्पत्ति (के बारे में) पूछने पर कहा—

यथा उदयमादिच्चो होति लोहितको महा,
तथूपमं इदं ब्यम्हं जातरूपस्स निम्मितं ॥१३६॥
वित्ति हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
अयं नु मच्चो किमकासि साधु
यो मोदति सग्गपत्तो विमाने ॥१३७॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पुञ्जकम्मानं जानं अक्खासजानतो ॥१३८॥
सावत्थियं गहपति एस दानपतो अहू,
आरामे उदपाने च पपा संकमनानिच ॥१३९॥
अरहन्ते सीतिभूते सकच्चं पटिपादयि,
चीवरं पिण्डपातञ्च पच्चयं सयनासनं,
अदासि उजुभूतेसु विप्पसन्नेन चेतसा ॥१४०॥
चातुद्दसिं पञ्चदसिं यावपक्खस्स अट्ठमिं,
पाटिहारिय पक्खञ्च अट्ठंगसुसमागतं ॥१४१॥
उपोसथं उपवसी सदा सीलेसु संवुतो,
संयमो संविभागो च यो विमानस्मि मोदति ॥१४२॥

[जिस प्रकार बाल-सूर्य्य अति रक्त-वर्ण होता है, उसी प्रकार का यह स्वर्ग-निर्मित विमान है ।।१३६।। हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है । हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इस आदमी ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि यह स्वर्ग के विमान में आनन्द ले रहा है ।।१३७।। तब उस जानकार . . . . फल कहा ।।१३८।। यह गृहस्थ श्रावस्ती में दानपति था । इसने प्रसन्न-चित्त से शान्त-चित्त अरहतों की भलि प्रकार सेवा की, इसने उनके लिये आराम, जलाशय, प्याऊ तथा चन्क्रमण-स्थान बनवाये, इसने चीवर, पिण्डपात, रोगी-प्रत्यय तथा शयनासन दिये, इसने चतुर्दशी, पूर्णिमा, पक्ष की अष्टमी और त्रयोदशी आदि को अष्टांग-शील ग्रहण करके उपोसथ-व्रत किये । यह अपने संयम तथा त्याग के कारण विमान में आनन्द मना रहा है ।।१३९-१४२।।]

इस प्रकार जब उसने आठ विमानों का वर्णन किया, तो देवेन्द्र शक्र को लगा कि मातली बहुत विलम्ब कर रहा है । उसने एक दूसरा शीघ्रगामी देव-पुत्र भेजा । उसने उसकी बात सुनी तो समझा कि अब अधिक विलंब नहीं किया जा सकता । उसने एक बार ही बहुत से विमान दिखाये । जो वहाँ की सम्पत्ति का आनन्द ले रहे थे, उनके बारे में राजा द्वारा पूछे जाने पर कहा—

वेहासयामे बहुका जातरूपस्स निम्मिता,
दद्दल्लमाना आभेन्ति विज्जुवब्भघनन्तरे ।।१४३।।
वित्ति हि मं विन्दति सूत दिस्वा,
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
इमे नु मच्चा किमकंसु साधुं
ये मोदरे सग्गपत्ता विमाने ।।१४४।।
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देसवारथि,
विपाकं पुञ्ञकम्मानं जानं अक्खासजानतो।।१४५।।
सद्धाय सुनिविट्ठाय सद्धम्मे सुप्पवेदिते,
अकंसु सत्थु वचनं सम्मासम्बुद्धसासनं
तेसं एतानि ठानानि यानि त्वं राज पस्ससि ।।१४६।।

[ये बहुत से आकाश-स्थित विमान हैं, जो स्वर्ण-निर्मित हैं और जो बादलों में चमकने वाली बिजली के समान चमक रहे हैं ।।१४३।। हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है । हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इस आदमी ने क्या पुण्य-कर्म किया है कि यह स्वर्ण-विमान में आनन्द ले रहा है ।।१४४।। तब उस जानकार. . . .फल कहा ।।१४५।। हे राजन् ये स्थान जो तुम देखते हो उन लोगों के हैं जिन्होंने भलि प्रकार स्पष्ट किये गये बुद्ध धर्म में स्थिर श्रद्धा रखकर सम्यक-सम्बुद्ध शास्ता के वचन का पालन किया है ।।१४६।।]

इस प्रकार उसे आकाश-स्थित विमान दिखाकर शक्र के पास चलने के लिये उत्साहित करते हुए कहा—

विदितानि ते महाराज आवासं पापकम्मिनं,
अथो कल्यानं कम्मानं ठानानि विदितानि ते;
उप्याहदानि राजिसि देवराजस्स सन्तिके ।।१४७।।

[हे महाराज ! तूने पापियों के निवास देख लिये हैं, और तूने शुभ-कर्म करने वालों के भी निवास-स्थान देख लिये हैं । हे राजर्षि ! अब तू देवेन्द्र के पास चल ।।१४७।।]

यह कह रथ को आगे वढ़ा सिनेरु-पर्वत के गिर्द खड़े सात पर्वत दिखाये । उन्हें देख राजा ने मातली से प्रश्न किया । इस बात को स्पष्ट करते हुए शास्ता ने कहा—

सहस्सयुत्तं हयवाहि दिब्बं यानं अधिट्ठितो,
यायमानो महाराज अद्दा सीदन्तरे नगे,
दिस्वानामन्तयी सूतं इमे के नाम पब्बता ।।१४८।।

[सहस्र घोड़े जुते दिव्य-यान में बैठे राजा ने जाते हुए, महासमुद्रों के बीच में पर्वतों को देखा । उसने देख कर सूत को संबोधित किया—ये कौन से पर्वत हैं ? ।।१४८।।]

इस प्रकार (राजा) निमि द्वारा प्रश्न किये जाने पर मातली ने कहा ।

सुदस्सनो करवीको ईसधरो युगन्धरो,
नेमिन्धरो विनतको अस्सकण्णो गिरि ब्रहा

एते सीदन्तरे नगा अनुपुब्ब समुग्गता,
महाराजानमा वासा यानि त्वं राज पस्ससि ॥१४९॥

[सुदस्सन, करवीक, ईसधर, युगन्धर, नेमिन्धर, विनतक तथा अस्सकण्ण पर्वत। हे राजन् ! जिन को तुम देखते हो वे ये महाराजाओं के निवास स्थान हैं। इनके बीच में एक एक के बाद महासमुद्र हैं ॥१४९॥]

इस प्रकार उसे चातुमहाराजिक देव-लोक दिखा, रथ को आगे भेज, त्रयोत्रिंश भवन के चित्रकूट द्वार-कोष्ठ के गिर्द स्थित इन्द्र-प्रतिमा दिखाईं। उन्हें देख राजा ने प्रश्न किया। मातली ने उत्तर दिया—

अनेक रूपं रुचिरं नानाचित्रं पकासति,
आकिण्णं इन्दसदिसेहि व्यग्घेहेव सुरक्खितं ॥१५०॥
वित्ति हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
इमं नु द्वारं किमभिञ्ञमाहु ॥१५१॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देव-सारथि,
विपाकं पुञ्ञकम्मानं जानं अक्खासजानतो ॥१५२॥
चित्तकूटोति यं आहु देवराज पवेसनं,
सुदस्सनस्स गिरिनो द्वारं हेतं पकासति ॥१५३॥
अनेकरूपं रुचिरं नानाचित्रं पकासति,
आकिण्णं इन्दसदिसेहि व्यग्घेहेव सुरक्खितं
पविसेतेन राजिसि अरजं भूमिमक्कम ॥१५४॥

[यह क्या है जो अनेक रूप, सुन्दर, नाना प्रकार से चित्रित, व्याघ्रों से वन के समान इन्द्र-समान प्रतिमाओं से घिरा दिखाई देता है ? ॥१५०॥ हे सारथि ! यह देख कर मुझे आनन्द आता है। हे देव-सारथि ! इस द्वार का क्या नाम है ? ॥१५१॥ तब उस जानकार....फल कहा ॥१५२॥ यह चित्र-कूट नामका देवेन्द्र का प्रवेश-द्वार है। यह सुदर्शन पर्वत का द्वार ही दिखाई देता है ॥१५३॥ यह अनेक रूप, सुन्दर, नाना प्रकार से चित्रित, व्याघ्रों के वन के समान इन्द्र-समान प्रतिमाओं से घिरा है। हे राजर्षि ! इस अरज भूमि में प्रवेश करें ॥१५४॥]

यह कह मातली ने राजा को देव-नगर में दाखिल किया। इसी से कहा गया—

सहस्सयुत्तं हयवाहिं दिब्बं यानं अधिट्ठितो,
यायमानो महाराजा अद्दा देवसभं इदं ॥१५५॥

[सहस्र घोड़े जुते दिव्य-यान में बैठे महाराजा ने, जाते समय इस देव-सभा को देखा ॥१५५॥]

उसने दिव्य-यान में बैठे ही बैठे, जाते हुए सुधर्मा देव-सभा को देख मातली से पूछा। उसने भी उसे कहा—

यथा सरदे आकासो नीलोव पतिदिस्सति,
तथूपमं इमं व्यम्हं वेळुरियासु निम्मितं ॥१५६॥
वित्ति हि मं विन्दति सूत दिस्वा
पुच्छामि तं मातलि देवसारथि,
इमं हि व्यम्हं किमभिञ्ञमाहू ॥१५७॥
तस्स पुट्ठो वियाकासि मातली देवसारथि,
विपाकं पुञ्ञकम्मानं जानं अक्खासजानतो ॥१५८॥
सुधम्मं इति यमाहु पस्सेसा दिस्सते सभा,
वेळुरिया रुचिरा चित्रा धारयन्ति सुनिम्मिता ॥१५९॥
अट्ठंसा सुकता थम्भा सब्बे वेळुरिया मया,
यत्थ देवा तावतिंसा सब्बे इन्दपुरोहिता ॥१६०॥
अत्थं देवमनुस्सानं चिन्तयन्ता समच्छरे,
पविसेतेन राजिसि देवानं अनुमोदनं ॥१६१॥

[शरद् ऋतु में आकाश जैसा नीला दिखाई देता है, वैसा ही यह बिल्लौर-निर्मित विमान है ॥१५६॥ हे सारथि ! यह देखकर मुझे आनन्द आता है। हे देव-सारथि ! मैं तुझे पूछता हूँ कि इस विमान का क्या नाम है ? ॥१५७॥ उस जानकार. . . .फल कहा ॥१५८॥ जिसे सुधर्मा कहते हैं, उस इस सभा को देखो। यह बिल्लौर-निर्मित है, सुन्दर है, चित्रित है और इसे बिल्लौर-निर्मित अष्ट-कोणवाले स्तम्भ धारण किये हैं। यहाँ इन्द्र-प्रमुख सभी त्रयोत्रिंश देवता

रहते हैं। ये देव-मनुष्यों का हित सोचते रहते हैं। हे राजर्षि ! जहाँ देवता परस्पर अनुमोदन करते हैं, वहाँ प्रवेश करो ॥१५६-१६१॥]

देवतागण भी बैठे उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने जब सुना कि राजा आया है तो हाथों में दिव्य-गन्ध-पुष्प ले चित्र-कूट द्वार कोष्ठक तक अगवानी कर, गन्धादि से बोधिसत्व की पूजा कर उसे सुधर्म-सभा में ले आये। राजा ने रथ से उतर धर्म-सभा में प्रवेश किया। वहाँ देवताओं ने उसे आसन पेश किया। इन्द्र ने आसन तथा काम-भोग। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा।

तं देवा पटिनन्दिंसु दिस्वा राजानमागतं,
स्वागतं ते महाराज अथो ते अदुरागतं ॥१६२॥
निसीददानि राजिसि देवराजस्स सन्तिके,
सक्कोपि पटिनन्दित्थ वेदेहं मिथिलग्गहं ॥१६३॥
निमन्तयि च कामेहि आसनेन च वासवो,
साधुखोसि अनुप्पत्तो आवासं वसवत्तिनं ॥१६४॥
वस देवेसु राजिसि सब्बकामसमिद्धिसु,
तावतिंसेसु देवेसु भुञ्ज कामे अमानुसे ॥१६५॥

[राजा को आया देख देवताओं ने उसका अभिनन्दन किया—"महाराज ! तेरा स्वागत है।" वे बोले—'हे राजर्षि ! अब देवराज के पास बैठें।" शक्र ने भी विदेह मिथिलेश का अभिनन्दन किया। इन्द्र ने उसे काम-भोगों का निमंत्रण दिया और कहा—"वशवर्तियों के निवास-स्थान पर तुम्हारा आगमन शुभ है।" (उसने यह भी कहा)—"हे राजर्षि ! सभी स्मृद्धियो से युक्त देव-लोक में निवास करें और त्र्योत्रिंश देव-लोक में दिव्य-काम-भोगों का सेवन करें।" ॥१६२-१६५॥]

इस प्रकार शक्र द्वारा कामभोगों का निमंत्रण मिलने पर राजा ने उनका निषेध करते हुए कहा।

यथा याचितकं यानं यथा याचितकं धनं,
एवं सम्पदमेवेतं यं परतो दानपच्चया ॥१६६॥
न चाहं एतं इच्छामि यं परतो दानपच्चया,
सयं कतानि पुञ्ञानि तं मे आवेणियं धनं ॥१६७॥

सोहं गन्त्वा मनुस्सेसु काहामि कुसलं बहुं,
दानेन समचरियाय संयमेन दमेन च
यं कत्वा सुखितो होति न च पच्छानुतप्पति ॥१६८॥

[जो दूसरे के दान के परिणाम-स्वरूप प्राप्त हो वह भिखारी के वाहन अथवा भिखारी के धन के समान है। मैं दूसरे के दान के परिणाम-स्वरूप प्राप्त होनेवाले काम-भोगों की इच्छा नहीं करता हूँ। अपने किये पुण्य-कर्म ही मेरा परम्परागत धन हैं ॥१६६-१६७॥ इसलिये मैं मनुष्य-लोक में जाकर बहुत कुशल-कर्म करूंगा। मैं दान दूंगा, मैं विषम-चर्य्या का त्याग करूंगा, मैं संयत रहूंगा। यह करने से आदमी सुखी रहता है और उसे अनुताप नहीं होता ॥१६८॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने देवताओं को मधुर-स्वर से धर्मोपदेश दिया। मनुष्यों की गणना के हिसाब से सात दिन तक वहाँ ठहर, धर्मोपदेश देते रहकर, देवताओं को प्रसन्नकर, देवताओं के बीच में खड़े ही खड़े मातलि का गुण कहते हुए कहा।

बहूपकारो नो भवं मातली देवसारथि,
यो मे कल्याणकम्मानं पापानि पटिदस्सयि ॥१६९॥

[देव सारथी मातली ने मुझे कुशल-कर्म तथा अकुशल-कर्म करनेवालों के स्थान दिखाकर मेरा बड़ा उपकार किया है ॥१६९॥]

तब राजा ने शक्र को सम्बोधन करके कहा, "महाराज ! मैं मनुष्य-लोक जाना चाहत हूँ।"

शक्र ने आज्ञा दी, "तो मातली ! निमि राजा को उसी प्रकार मिथिला पहुंचाओ।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और रथ को ले आकर प्रस्तुत किया। राजा ने देव-गण से विदा ली और वह उन्हें रोक रथ पर चढ़ा। मातली रथ को लिये पूर्व की ओर से मिथिला पहुंचा। जनता दिव्य-रथ देख आनन्दित हुई—"हमारा राजा आ रहा है।" मातली ने मिथिला की प्रदक्षिणा की और राजा को उसी झरोखे में उतार राजा से विदा मांगी—'महाराज ! हम जाते हैं।" इतना कह वह अपने निवास-स्थान ही चला गया।

जनता ने भी राजा को घेरकर पूछा—"देव ! देवलोक कैसा है !" राजा ने देवताओं की और देवेन्द्र शक्र की सम्पत्ति का वर्णन कर धर्मोपदेश

दिया—"तुम दानादि पुण्य कर्म करो। ऐसा करने से तुम भी देव-लोक में जन्म-ग्रहण करोगे।"

आगे चलकर जब नाई ने सफेद बाल उग आने की बात कही, और बाल लेकर उसकी हथेली पर रखा तो उसने नाई को श्रेष्ठ गाँव दे, प्रव्रजित होने की इच्छा से पुत्र को राज्य सौंप दिया। जब पूछा कि देव! किसलिये प्रव्रजित होते हैं तो उसने "उत्तमङ्गरूहा मय्हं. . . ." गाथा कही और पूर्व के राजाओं की तरह ही प्रव्रजित हो, उसी आम्रवन में विहार करते हुए, चारों ब्रह्म विहारों की भावना कर ब्रह्मलोक गामी हुआ। उसके इस प्रकार प्रव्रजित होने की बात स्पष्ट करते हुए शास्ता ने अन्तिम गाथा कही।

इदं वत्वा निमिराजा वेदेहो मिथिलग्गहो,
पुथु यञ्ञं यजित्वान सञ्ञमं अज्झुपागमि ॥१७०॥

[यह कह विदेश मिथिलेश निमि राजा ने बहुत (दान-) यज्ञ कर संयम ग्रहण किया ॥१७०॥]

उसका पुत्र कळार जनक नाम था। वह उस वंश परम्परा का उच्छेद कर प्रव्रजित हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, "भिक्षुओ, न केवल अभी, तथागत ने पहले भी अभिनिष्क्रमण किया ही है' कह जातक का मेल बैठाया। उस समय शक्र अनुरुद्ध था। मातली आनन्द था। चौरासी हजार राजा बुद्ध-परिषद। निमि राजा तो मैं ही था।

५४२. खण्डहाल जातक

"राजासि लुद्दकम्मो........"यह शास्ता ने गृध्र-कूट में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह कथा सङ्घ भेदक स्कन्ध में आई ही है। उसकी प्रव्रज्या से लेकर बिम्बसार राजा के मरने तक की कथा वहाँ आये क्रम से ही जाननी चाहिए। उसे मरवाकर देवदत्त ने अजातशत्रु के पास जाकर कहा "महाराज! आपका मनोरथ पूरा हुआ। मेरा मनोरथ अभी पूरा नहीं हुआ।"

"भन्ते! आपका मनोरथ क्या है?"

"दसबल को मरवाकर बुद्ध बनने की इच्छा है।"

"हम इस सम्बन्ध में क्या करें?"

"धनुर्धारियों का एकत्र करना योग्य है।"

'भन्ते, अच्छा' कह राजाने पांचसौ अक्षण-वेधी धनुर्धारियों को इकट्ठा कराया और उनमें से एक सौ तीस जनों को चुनकर देवदत्त के पास भेजा, "स्थविर का कहना करो।" उसने उनके मुखिया को बुलाकर कहा, "आयुष्मान्! श्रमण गौतम गृद्ध-कूट में विहार करता है। अमुक-समय दिन में रहने की जगह चन्क्रमण करता है। तुम वहां जाकर उसे विष-बुझे तीर से बींधकर जान से मार डालना और अमुक मार्ग से चले आना।" उसने उस मार्ग पर दो धनुर्धारी खड़े किये और उन्हें आज्ञा दी "तुम्हारे रास्ते से एक पुरुष आयेगा, तुम उसे जान से मार कर अमुक रास्ते से आना।" उस मार्ग पर चार जनों को खड़ा किया,"तुम्हारे मार्ग से दो आदमी आयेंगे,

उन्हें जान से मारकर अमुक रास्ते से आना।" उस मार्ग पर आठ जनों को खड़ा किया। " तुम्हारे मार्ग से चार आदमी आयेंगे, तुम उन्हें जान से मार कर अमुक मार्ग से आना।" उस मार्ग पर सोलह जनों को खड़ा किया, "तुम्हारे मार्ग से आठ आदमी आयेंगे। तुम उन्हें जान से मारकर अमुक मार्ग से आना।" उसने ऐसा क्यों किया? अपने कर्म को छिपाने के लिए। तब वह धनुर्धारियों का मुखिया बाईं ओर तलवार बाँध और पीठ पर तरकश कस, मेढे के सींग का महा धनुष ले तथागत के पास पहुंचा। उसने तथागत को बींधने के लिए धनुष पर तीर चढ़ाकर उसे खींचा, किन्तु वह तीर छोड़ न सका। उसका सारा शरीर जड़ हो गया, मानों यन्त्र में कसा गया हो। वह मृत्यु भय के मारे डर गया।

शास्ता ने उसे देख मधुर वाणी से सम्बोधन किया, "डर मत। यहाँ आ"। उसने उसी समय शस्त्र त्यागे और भगवान के चरणों पर सिर रख क्षमा मांगी, "भन्ते! मेरे अपराध को क्षमा करें, जैसे एक मूर्ख के अपराध को, जैसे एक मूढ़ के अपराध को और जैसे एक पापी के अपराध को। मैं तुम्हारे गुणों से अपरिचित होने के कारण उस अन्धे, मूर्ख देवदत्त के कहने में आकर तुम्हारी जान लेने के लिये आया। मुझे क्षमा करें।" इस प्रकार क्षमा मांग वह एक ओर बैठा। शास्ता ने सत्यों का प्रकाशन कर उसे स्रोतापत्ति मार्ग पर प्रतिष्ठित किया और कहा, " आयुष्मान्! देवदत्त के बतायें मार्ग से न जा, दूसरे मार्ग से जा।" इस प्रकार उसे विदाकर तथागत चन्क्रमण करना छोड़ एक वृक्ष के नीचे बैठे। उस धनुर्धारी को न आता देख दूसरे दो धनुर्धारियों ने सोचा कि उसे देर क्यों हो रही है? वह उल्टे-पांव लौट पड़े। रास्ते में जब उन्होंने तथागत को देखा तो पास आकर एक ओर बैठ गये। शास्ता ने उन्हें भी सत्य प्रकाशित किये और स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित कर यह कह कर विदा किया कि आयुष्मानों देवदत्त के बताये मार्ग से न जाकर, इस मार्ग से जाओ। इसी प्रकार दूसरे भी जब आकर इसी प्रकार पास बैठे तो उन्हें भी स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित कर दूसरे ही मार्ग से भेजा।

तब उस पहले आये धनुर्धारी ने देवदत्त के पास पहुंचकर कहा, "भन्ते! देवदत्त! ! मैं सम्यक सम्बुद्ध को जान से नहीं मार सका। वह भगवान् बड़े ऋद्धिवान् हैं बड़े ही प्रतापवान् हैं।" वे सभी यह समझ कि सम्यक् सम्बुद्ध के ही कारण उनके

प्राण बचे, सम्यक् सम्बुद्ध के पास प्रव्रजित होकर अर्हत हुए। यह बात भिक्षुसंघ में प्रकट हो गई। भिक्षुओं ने धर्म सभा में यह बात चलाई।"आयुष्मानो! देवदत्त ने तथागत के प्रति वैर बांध अनेक आदमियों की जान लेने का प्रयत्न किया। शास्ता के ही कारण उन सब की जान बची।" शास्ता ने आकर पूछा,"भिक्षुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ, न केवल अभी, देवदत्त ने पहले भी मुझ अकेले से वैर बांध बहुत जनो की जान लेने की कोशिश की ही थी" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी का नाम पुप्पवती था। वहां वशवर्ती राजा का एकराजा नाम का पुत्र राज्य करता था। उसका चन्द्र कुमार नाम का पुत्र उपराजा था। खण्डहाल नाम का ब्राह्मण पुरोहित था। वह राजा का अर्थ-धर्मानुशासक था। राजा ने उसे पण्डित मान न्यायाधीश के पद पर बैठा दिया। वह घूस-खोर होकर घूस खाता और अस्वामियों को स्वामी बना देता तथा स्वामियों को अस्वामी। एक दिन मुकद्दमे में हारा हुआ एक आदमी न्यायालय को कोसता हुआ जा रहा था। उसने राजा की सेवा में जाते हुए चन्द्र कुमार को देखा। वह उसके पाँव में गिर पड़ा। चन्द्र कुमार ने पूछा,"हे आदमी! क्या बात है?" "स्वामी! खण्डहाल ने न्यायाधीश पद पर बैठ लूट मचा रखी है। उसने रिशवत लेकर मेरे विरुद्ध फैसला दे दिया।" कुमार ने उसे कहा "डर मत" और न्यायालय ले जाकर स्वामी को ही स्वामी बनवाया। जनता ने उच्च-स्वर से साधुवाद दिया। राजा ने सुनकर पूछा," यह क्या आवाज है?" "खण्डाल के गलत निर्णय को चन्द्र कुमार ने ठीक कर दिया, उसी का यह साधुवाद है।" राजा ने यह सुना तो जब कुमार आकर प्रणाम करके खड़ा हुआ तो प्रश्न किया, "तात! तूने एक मुकद्दमे का निर्णय किया?"

"देव! हाँ।"

'तात! तो अबसे तू ही न्याय किया कर,' कह उसे न्यायाधीश बना दिया। खण्डहाल की आय जाती रही। उसी समय से वह चन्द्र कुमार का वैरी बन अवसर ढूंढ़ने लगा। राजा मूढ़-श्रद्धावान था। एक दिन उसने ब्राह्म महूर्त में स्वप्न में

त्रयो-त्रिंश-भवन देखा, जहाँ के द्वार-कोष्ठ अलंकृत थे, जहाँ की चार दीवारी सप्त रत्न-मय थी, जहाँ का साठ योजन का दर्शनीय बाजार था, जो हजार योजन ऊंचे वैजयन्त प्रासाद से सुशोभित था, जो नन्दन बन आदि से रमणीय बना था, जो नन्दा पुष्परिणी आदि पुष्करिणियों से रमणीय था, और जहाँ देवता ही देवता थे। उसे देख उसकी वहाँ जाने की इच्छा हुई। उसने सोचा कि आचार्य्य खण्डहाल के आने पर उससे देवलोक जाने का मार्ग पूछ, उसी के वताये मार्ग से देवलोक जाऊंगा। खण्ड हाल ने भी प्रातः काल ही राजभवन पहुंच राजा से सुख पूर्वक सोये रहने की बात पूछी। राजा ने उसे आसन दिलवा कर उससे प्रश्न किया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा।

राजासि लुद्दकम्मो एकराजाति पुप्फवतिया,
सो पुच्छि ब्रह्म बन्धुं खण्डहालं पुरोहितं मूळहं ॥१॥
सग्गमग्गाचिक्ख त्वंसि ब्राह्मण धम्मविनय कुसलो,
यथा इतो वजन्ति सुगतिं नरा पुञ्ञानि कत्वान ॥२॥

[वह राजा था। रौद्र-कर्मी। उसका नाम एकराजा था। वह पुष्प-वती का राजा था। उसने मूढ़ ब्रह्म-बन्धु खण्डहाल नाम के पुरोहित से प्रश्न किया—"हे ब्राह्मण ! तू धर्म-विनय का कुशल ज्ञाता है। तू बता कि किस प्रकार मनुष्य यहाँ पुण्य कर्म करके स्वर्ग-गामी होते है?," ॥ १-२ ॥]

यह प्रश्न सर्वज्ञ बुद्ध अथवा उसके श्रावक और उन दोनों के न होने पर बोधिसत्व से पूछना योग्य है। किन्तु जैसे कोई सप्ताह भर से रास्ता भटकने वाला आदमी महीने भर से रास्ता भटकने वाले से पूछे उसी प्रकार खण्डहाल से प्रश्न किया। उसने भी सोचा, अब यह शत्रु से बदला लेने का समय है। अब चन्द्र कुमार का प्राणान्त करवा अपना मनोरथ पूरा करूंगा। उसने राजा को सम्बोधन कर तीसरी गाथा कही।

अतिदानं ददित्वान अवज्झे देव घातेत्वा,
एवं वजन्ति सुगतिं नरा पुञ्ञानि कत्वान ॥३॥

[हे देव ! अति-दान देकर और अबध्यों का बध करके पुण्यवान नर स्वर्ग को जाते हैं ॥३ ॥]

राजा ने उसका स्पष्टार्थ पूछा——

किं पन तं अतिदानं कोच अवज्झा इमस्मि लोकस्मि,
एतञ्च नो अक्खाहि यजिस्साम ददाम दानानि ॥४॥

[वह अति-दान क्या है ? और इस लोक में अवध्य कौन है ? हमें यह बतायें। हम यज्ञ करेंगे और दान देंगे ॥४॥]

उसने स्पष्ट किया——

पुत्तेहि देव यजितब्बं महेसीहि नेगमेहि उसभेहि,
आजानीयेहि चतुहि सब्बचतुक्केन देव यजितब्बं ॥५॥

हे देव ! पुत्रों का बध करके यज्ञ करना चाहिए, भार्य्याओं का, निगम-वासियों (=सेठों) का, बृषभों का, श्रेष्ठ अश्वों का—इस प्रकार सभी चार-चार होने चाहिए ॥ ५॥

इस प्रकार उसने यह सोच कि यदि अकेले चन्द्र कुमार का नाम लूंगा तो समझेंगे कि वैर-चित्त से कहता है, इसलिए उसने उसे बहुतों के बीच में डाल दिया। लेकिन उन्हें इस प्रकार बोलते सुन रनिवास के लोग डर के मारे एक बार ही चिल्ला उठे। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने गाथा कही——

तं सुत्वा अन्ते पुरे
कुमारा च महेसियो च हञ्अन्तु,
एको अहोसि निग्घोसो
भेस्मा अच्चुगतो सद्दो ॥६॥

[अन्तःपुर में जब यह सुना गया कि कुमार तथा भार्य्यायें मारी जायें तो एक भयानक हल्ला हुआ, बहुत ही ऊंची आवाज ॥६ ॥]

ब्राह्मण ने भी राजा से पूछा,"महाराज। यज्ञ कर सकेंगे अथवा नहीं कर सकेंगे ?"

"आचार्य्य ! क्या कहते हैं, यज्ञ करके देवलोक जायेंगे।"

"महाराज ! डरपोक, दुर्बल-संकल्प वाले यज्ञ नहीं कर सकते। आप यहाँ सभी को इकट्ठा करें। मैं यज्ञ-कुण्ड बनाने का काम करूंगा।"

उसने अपने साथ पर्य्याप्त आदमी लिये और नगर से निकल यज्ञ-कुण्ड को समतल करा उसके चारों ओर बाड़ बना दी। धार्मिक श्रमण अथवा ब्राह्मण आकर बाधा न डालें इसलिये पुराने ब्राह्मणों ने यह नियम बना दिया कि यज्ञ-कुण्ड के चारों ओर बाड़ रहे। राजा ने भी आदमियों को बुलाकर आज्ञा दी, "तात ! मैं अपने बेटा-बेटी तथा भार्य्याओं को मारकर, यज्ञ करके देव-लोक जाऊंगा। जाओ उन्हें कहकर सभी को ले आओ।" पुत्रों को लाने के लिये कहा—

गच्छथ वदेथ कुमारे
चन्दं सुरियञ्च भद्दसेनञ्च,
सूरञ्च वामगोत्तं
पसुरा किर होथ यञ्ञत्थाय ॥७॥

[जाओ, सूर्य्य, चन्द्र, भद्रसेन तथा वैमानिक सूर—सभी को कहो कि यज्ञ के लिये एक स्थान में एकत्रित हों ॥७॥]

वे सर्व प्रथम चन्द्रकुमार के पास पहुंचे और बोले, "कुमार ! तुम्हें मारकर तुम्हारा पिता देव-लोक जाना चाहता है। उसने हमें तुम्हे पकड़ने के लिये भेजा है।"

"किस के कहने से मुझे पकड़वा रहा है ?"

"देव ! खण्डहाल के कहने से।"

"क्या वह मुझे ही पकड़वा रहा है, अथवा औरों को भी ?"

"औरों को भी पकड़वा रहा है। वह सभी के चार चार लेकर यज्ञ कराना चाहता है।"

उसने सोचा, "उसका और किसी से बैर नहीं है। न्यायाधीश होकर लूटना नहीं मिलता है, सोच मेरे प्रति वैर बांध लेने के कारण बहुतों को मरवा रहा है। पिता से भेंट होने पर इन सभी को मुक्त कराने की मेरी जिम्मेदारी है।" यह सोच उसने उन्हें कहा, "तो पिता का कहना करो।" उन्होंने उसे ले जाकर राजाङ्गण में एक ओर खड़ा किया तथा और तीनों जनों को भी लाकर उसी के पास खड़ा कर राजा को सूचना दी—"देव ! तुम्हारे पुत्रों को ले आये।" उसने उनकी बात सुन, आज्ञा दी, "तात ! तो अब मेरी पुत्रियों को भी लाकर उन्हीं के पास बिठाओ।" उसने यह गाथा कही।

कुमारियोपि वदेथ उपसेनिं कोकिलं मुदितं,
नन्दञ्चापि कुमारिं पसुरा किर होथ यञ्ञत्थाय ॥८॥

[उपसेनि, कोकिला, मुदिता तथा नन्दा कुमारियों को भी कहो कि यज्ञ के लिये एक जगह इकट्ठी हों ॥८॥]

उन्होंने 'ऐसा ही करेंगे' कह उनके पास जा उन्हें रोती पीटती हुई को ला भाइयों के पास ही कर दिया। तब राजा ने अपनी प्यारी भार्य्याओं को पकड़ लाने के लिये दूसरी गाथा कही।

विजयम्पि मय्हं महेसिं एरावतिं केसिनिं सुनन्दञ्च,
लक्खणवरूपपन्ना पसुरा किर होथ यञ्ञत्थाय ॥९॥

[मेरी विजय, एरावति, केसिनि तथा सुनन्दा नाम की रूप सम्पन्न भार्य्याओं को भी कहो कि यज्ञ के लिये एकत्र हों ॥९॥]

उन्होंने उन्हें भी रोती पीटती हुईयों को ला कुमारों के पास किया। तब राजा ने चारों सेठों को लाने के लिये दूसरी गाथा कही।

गहपतयोपि वदेथ पुण्णमुखं भद्दियं सिगालञ्च,
वद्धञ्चापि गहपतिं पसुरा किर होथ यञ्ञत्थाय ॥१०॥

[गृहपतियों को भी कहो—पूर्ण मुख, भद्रिय, सिगाल तथा बद्ध गृहपति को—वे भी यज्ञ के लिये एक जगह आयें ॥१०॥]

राजपुरुष जाकर उन्हें ले आये। राजा के स्त्री-बच्चों को ले जाते समय सारा नगर कुछ नहीं बोला। सेठों के कुल के तो बहुत सम्बन्ध थे। इसलिये उनके पकड़ने के समय सारा नगर क्षुब्ध हो गया—हम सेठों को मारकर राजा को यज्ञ करने न देंगे। सेठ अपने ज्ञाति-वर्ग के साथ ही राज-कुल पहुंचे। रिश्तेदारों से घिरे सेठों ने राजा से अपने प्राणों की भिक्षा मांगी।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा।

ते तत्थ गहपतयो
अवोचिसु समागता पुत्तदारपरिकिण्णा,
सब्बसिखिनो देव करोहि
अथवा नो दासे सावेहि ॥११॥

[पुत्र-दारा सहित आये उन गृहपतियों ने राजा से कहा—देव ! हम सबके सिर पर चोटी मात्र रखवा अपना चाकर बना लें अथवा दास बना लें ।।११।।]

इस प्रकार प्रार्थना करने पर भी उन्हें जीवनदान नहीं मिला । राज-पुरुषों ने और सबको वापिस कर उन्हीं को पकड़ कुमारों के पास ले जाकर बिठा दिया । तब राजाने हाथी आदि के बारे में आज्ञा दी ।

अभयंकरंपि हत्थिं नालागिरिं अच्चुत्तं वरुणदन्तं,
आनेथ पन खो खिप्पं यञ्ञत्थाय भविस्सन्ति ।।१२।।
अस्सरतनम्पि केसिं सुरामुखं पुण्णकं विनतकञ्च,
आनेथ खो ने खिप्पं यञ्ञत्थाय भविस्सन्ति ।।१३।।
उसभम्पि युथपति अनोजं
निसभं गवम्पतिं तेपि मरहं आनेथ,
समुपाकरोन्तु सब्बं
यजिस्साम ददाम दानानि ।।१४।।
सब्बं पटियादेथ यञ्ञं पन उग्गतम्पि सुरियम्हि,
आणापेथ कुमारे अभिरमन्तु इमं रत्तिं ।।१५।।
सब्बं उपट्ठपेथ यञ्ञं पन उग्गतम्हि सुरियम्हि,
वदेथदानि कुमारे अज्ज वो पच्छिमा रत्ति ।।१६।।

[अभयङ्कर, नालागिरि, अच्युत तथा वरुणदन्त हाथी को शीघ्र लाओ, यज्ञ के लिये होंगे ।।१२।। केसी, सुरामुख, पुण्णक तथा विनतक अश्व-रत्नों को भी शीघ्र लाओ, यज्ञ के लिये होंगे ।।१३।। यूथपति, अनोज, निसभ तथा गवम्पति वृषभों को भी लाओ । और भी सब (पक्षियों आदि) को इकट्ठा करो । हम यज्ञ करेंगे और दान देंगे ।।१४।। सभी कुछ ले आओ । सूर्य्योदय के साथ ही यज्ञ आरम्भ होगा । कुमारों को कह दो कि आज की रात मौज कर लें ।।१५।। सभी कुछ लाकर उपस्थित करो । सूर्य्योदय के साथ ही यज्ञ होगा । अब कुमारों को कह दो कि आज उनकी अन्तिम रात्रि है ।।१६।।]

उस समय राजा के माता पिता जीवित ही थे । अमात्यों ने जाकर माता को सूचना दी—"आर्य्ये तुम्हारा पुत्र स्त्री-बच्चों को मारकर यज्ञ करना चाहता है ।"

वह 'तात ! क्या कहते हो ?' करके हृदय पर हाथ रक्खे रोती-पीटती आई और पूछा—"पुत्र ! क्या सचमुच तेरा यज्ञ ऐसा होगा ?"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा ।

तं तं माता अवचा रोदन्ती आगता विमानतो,
यञ्ञे किर ते पुत्त भविस्सति चतुहि पुत्तेहि ।।१७।।

[माता अपने निवासस्थान से रोती हुई आई और पूछा—"पुत्र ! क्या तेरा यज्ञ चार पुत्रों के घात से होगा ? ।।१७।।]

राजा बोला—

सब्बेपि मटहं पुत्ता चत्ता
चन्दस्मि हञ्ञमानस्मि,
पुत्तेहि यञ्ञं यजित्वान
सुगति सग्गं गमिस्सामि ।।१७।।

[चन्द्र-कुमार के मारे जाते हुए मैंने सभी पुत्रों का त्याग कर दिया है । पुत्रों की हत्या करके, यज्ञ करके मैं स्वर्ग-गामी होऊंगा ।।१७।।]

माता बोली—

मा पुत्त सद्दहेसि
सुगति किर होति पुत्तयञ्ञेन,
निरयानेसो मग्गो
नेसो मग्गो सग्गानं ।।१८।।
दानानि देहि कोण्डञ्ञ
अहिंसा सब्ब भूतभब्यानं,
एसमग्गो सुगतिया
न च मग्गो पुत्तयञ्ञेन ।।१९।।

[पुत्र इस बात में विश्वास मत कर कि पुत्र की बलि देने से स्वर्ग-लाभ होता है । यह नरक का मार्ग है, स्वर्ग का नहीं ।।१८।। हे कोण्डञ्ञा ! दान दे । सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा का व्यवहार कर । यह सुगति का रास्ता है, पुत्रों की बलि देना नहीं ।।१९।।]

राजा बोला—

आचरियानं वचना
घातेस्सं चन्दञ्च सुरियञ्च
पुत्तेहि यजित्वान दुच्चजेहि
सुगतिं सग्गं गमिस्सामि ॥२०॥

[मैं आचार्य्यों का कहना मान चन्द्र-कुमार तथा सूर्य्य-कुमार पुत्रों को मरवा रहा हूँ। जिनका त्याग दुष्कर है, ऐसे पुत्रों की बलि देकर मैं स्वर्ग-गामी बनूंगा ॥२०॥ ॥२०॥]

जब माता ने देखा कि वह अपना कहना नहीं मनवा सकती, वह चली गई। पिता ने यह समाचार सुना, तो उसने आकर पूछा। इस अर्थ को भी शास्ता ने प्रकाशित किया।

तं तं पितापि अवच वसवत्ती ओरसं सकं पुत्तं,
यञ्ञो किर ते पुत्त भविस्सति चतुहि पुत्तेहि ॥२१॥

[वशवर्ती नामक पिता ने भी अपने ओरस-पुत्र को पूछा—पुत्र ! क्या चारों पुत्रों की बलि देने से तेरा यज्ञ होगा ? ॥२१॥]

राजा बोला—

सब्बेपि मटहं पुत्ता चत्ता चन्दस्मि हञ्ञमानस्मि,
पुत्तेहि यञ्ञं यजित्वान सुगतिं सग्गं गमिस्सामि ॥२२॥

[अर्थ ऊपर आ गया है—देखो गाथा सं० १७॥]

तब पिता बोला—

मा पुत्त सद्दहेसि
सुगति किर होति पुत्तयञ्ञेन,
निरयानेसो मग्गो
नेसो मग्गो सग्गानं ॥२३॥
दानानि देहि कोण्डञ्ञ
अहिंसा सब्बभूत भव्ययानं,

एसमग्गो सुगतिया
न च मग्गो पुत्तयञ्ञेन ॥२४॥

[अर्थ ऊपर आ गया है। देखो गाथा, १८, १६ ॥]

राजा बोला—

आचरियानं वचना
घातेस्सं चन्दञ्च सुरियञ्च,
पुत्तेहि यजित्वा दुच्चजेहि
सुगतिं सग्गं गमिस्सामि ॥२५॥

[अर्थ ऊपर आ गया है। देखो गाथा, २०॥]

तब पिता बोला—

दानानि देहि कोण्डञ्ञ
अहिंसा सब्बा भूत भव्यानं,
पुत्तपरिवुतो तुवं
रट्ठं जनपदं पालेहि ॥२६॥

[कोण्डञ्ञ! दानादि दे। सब प्राणियों के प्रति अहिंसा का व्यवहार कर। पुत्रों-सहित राष्ट्र और जनपद का पालन कर ॥२६॥]

वह भी उसे अपनी बात न मनवा सका। तब चन्द्रकुमार ने सोचा, "केवल मेरे कारण इतने जन विपत्ति में पड़ गये। पिता से प्रार्थना कर इतने जनों को मृत्यु-दुःख से मुक्त करूंगा।" उसने पिता से बातचीत करते हुए कहा।

मा नो देव अवधि
दासे नो देहि खण्डहालस्स,
अपि निगलबन्धकापि
हत्थी अस्से च पालेम ॥२७॥
मा नो देव अवधि
दासे नो देहि खण्डहालस्स,
पि निगलबन्धकापि
हत्थिच्छकणानि उज्झेम ॥२८॥

मा नो देव अवधि
दासे नो देहि खण्डहालस्स,
अपि निगळबन्धकापि
अस्सच्छकणानि उज्झेम ॥२९॥
मा नो देव अवधि
दासे नो देहि यस्स होन्ति तव कामा,
अपि रट्ठा पब्बजिता
भिक्खाचरियं चरिस्साम ॥३०॥

[देव ! हमारा बध न करें। हमें 'दास' बनाकर खण्डहाल को दे दें। पैरों में बेड़ी पड़ी रहने पर भी हम हाथी घोड़ो का पालन करेंगे। देव ! हमारा बध न करें। हमें..........हम हाथियों की लीद बटोरेंगे। देव ! हमारा वध न करें। हमें.......हम घोड़ों की लीद बटोरेंगे। देव ! हमारा बध न करें। हमें जिसे चाहें 'दास' बनाकर दे दें। हम राष्ट्र से बाहर निकाल दिये जाने पर भी भिखारी बनकर जियेंगे ॥२७-३० ॥]

उसका नाना प्रकार का विलाप सुन मानो राजा का चित्त फटने लगा। वह आँखों में आँसू भरकर बोला, "मेरे पुत्रों को कोई न मार सकेगा। मुझे देवलोक की आवश्यकता नहीं है।" उसने उन सभी को छुड़ा देने के लिए कहा।

दुक्खं खो मे जनयथ
विलपन्ता जीविकस्स कामा हि,
मुञ्चथदानि कुमारे
अलम्पि मे होतु पुत्तयञ्ञेन ॥३१॥

[जीने की इच्छा से विलाप करते हुए मेरे मन में दुख पैदा करते हैं। अब कुमारों को छोड़ दो। मुझे पुत्रो की बलि वाला यज्ञ नहीं चाहिए ॥३१ ॥]

राजा की बात सुनी तो राज-पुरुषों से आरम्भ करके पक्षियों तक सभी प्राणियों को मुक्त कर दिया गया। खण्ड-हाल यज्ञ-कुण्ड का काम कराने में लगा हुआ था। एक आदमी बोला : अरे दुष्ट खण्ड-हाल ! राजा ने पुत्रों को छुड़वा दिया। तू

अपने पुत्रों को मारकर उनके गले के खून से यज्ञ कर।" वह 'राजा ने क्या किया' सोच दौड़ा दौड़ा आया और बोला—

पुब्बेव खोसि वुत्तो दुक्करं दुरभिसम्भवञ्चेतं,
अथ नो उपक्खटस्स यञ्ञस्स करोसि विक्खेपं ॥३२॥
सब्बे वजन्ति सुगतिं ये यजन्ति येपि चेव याजेन्ति,
ये चापि अनुमोदन्ति यजन्तानं एदिसं महायञ्ञं ॥३३॥

[तुझे पहले ही कहा था कि यह दुष्कर कृत्य है। अब तू उस तैयार यज्ञ में बाधा डाल रहा है। जो यज्ञ करते हैं, जो कराते हैं और जो इस प्रकार के महान् यज्ञ का अनुमोदन करते हैं, वे सभी स्वर्ग-लोक को प्राप्त होते हैं ॥३२-३३॥]

उस क्रोधाभिभूत (ब्राह्मण) की बात सुन उस अन्धे-मूर्ख राजा के मन में फिर "धर्म"—भावना जाग्रत हो गई। उसने फिर कुमारों को पकड़वा लिया। तब चन्द्रकुमार ने पिता की आँखें खोलने के लिये कहा।

अथ किस्स च नो पुब्बे
सोत्थानं ब्राह्मणो अवाचेसि,
अथ नो अकारणस्मा
यञ्ञथाय देव घातेसि ॥३४॥
पुब्बेव नो दहरके समाने
न हनेसि न घातयेसि,
दहरम्हा योब्बनं पत्ता
अदूसका तात हञ्ञाम ॥३५॥
हत्थिगते अस्सगते
सन्नद्धे पस्स नो महाराज
युद्धेव युज्झमाने
नहि मा दिसा सूरा होन्ति यञ्ञत्थाय ॥३६॥
पच्चन्ते वा कुपिते
अटविसु वा मादिसे नियोजेन्ति,

अथ नो अकारणस्मा
अभूमियं तात हञ्ञाम ॥३७॥
यापि हि ता सकुणियो
वसन्ति तिणघरानि कत्वान,
तासम्पि पिया पुत्ता
अथ नो त्वं देव घातेसि ॥३८॥
मा तस्स सद्दहेसि
न मं खण्डहालो घातये,
ममं हि सो घातेत्वा
अनन्तरं देव तम्पि घातेय्य ॥३९॥
गामवंर निगमवरं ददन्ति भोगम्पिस्स महाराज,
अथ अग्गपिण्डिकापि कुले कुलेहेते भुञ्जन्ति ॥४०॥
तेसम्पि तादिसानं इच्छन्ति दुब्भितुं महाराज,
येभुय्येन एते अकतञ्ञुनो ब्राह्मणा देव ॥४१॥
मा नो देव अवधि दासे नो देहि खण्डहालस्स,
अपि निगळबन्धकापि हत्थि अस्से च पालेम ॥४२॥
मा नो देव अवधि दासे नो देहि खण्डहालस्स,
अपि निगळबन्धकापि हत्थिच्छकणानि उज्झेम ॥४३॥
मा नो देव अवधि दासे नो देहि खण्डहालस्स,
अपि निगळबन्धकापि अस्सच्छकणानि उज्झेम ॥४४॥
मानो देव अवधि दासे नो देहि यस्स होन्ति तव कामा,
अपि रट्ठा पब्बजिता भिक्खाचरियं चरिस्साम ॥४५॥

[इस ब्राह्मण ने पहले (हमारे जन्म के समय) स्वस्थि-पाठ क्यों किया था ? हे देव ! अब यह अकारण ही यज्ञ के लिये हमारा घात करवा रहा है ॥३४॥ हे देव ! जब हम बच्चे थे, तभी तूने हमें क्यों नहीं मार डाला अथवा मरवा डाला । अब हम बालक से तरुण हो जाने पर बिना अपराध मरवाये जा रहे हैं । ॥३५॥ महाराज ! हम सबको आप हाथियों पर, घोड़ों पर युद्ध के लिये तैयार बैठे देखें ।

मेरे जैसे शूर यज्ञ में बलि देने के लिये नहीं होते ।।३६।। प्रत्यन्त-देश के विद्रोह करने पर अथवा जंगलों की देख-भाल करने के लिये मेरे जैसों को भेजा जाता है। तात ! हम यहाँ बिना कारण अस्थाने मारे जा रहे हैं ।।३७।। हे देव ! तिनकोंके घोंसले बनाकर जो पक्षी रहते हैं, उन्हें भी अपने पुत्र प्रिय होते हैं। और हे देव तुम हमारी हत्या करा रहे हो ! ।।३८।। उसका विश्वास न करें। खण्डहाल मुझे न मारे। वह मुझे मारकर देव ! पीछे तुम्हें भी मरवा सकता है ।।३९।। महाराज ! इस ब्राह्मण को श्रेष्ठ ग्राम, श्रेष्ठ निगम तथा श्रेष्ठ भोग सामग्री भी दी जाती है, और ये कुल में अग्र-पिण्ड होकर ही भोजन भी करते हैं ।।४०।। महाराज ! ये श्रेष्ठ-ग्राम आदि देनेवालों का भी बुरा सोचते हैं। देव ! ब्राह्मण प्राय: अकृतज्ञ ही होते हैं ।।४१।। देव ! हमारा वध न करें। हमें 'दास' बनाकर खण्डहाल को दे दें। पैरों में बेड़ी पड़ी रहने पर भी हम हाथी घोड़ों का पालन करेंगे। देव ! हमारा वध न करें। हमें....हम हाथियों की लीद बटोरेंगे। देव ! हमारा बध न करें। हमें....हम घोड़ों की लीद बटोरेंगे। देव ! हमारा बध न करें। हमें जिसे चाहें 'दास' बनाकर दे दें। हम राष्ट्र से बाहर निकाल दिये जाने पर भी भिखारी बनकर जियेंगे ।।४२-४५।।]

राजा ने कुमार का विलाप सुन यह गाथा कह, उसे फिर छोड़ दिया।

दुक्खं खो मे जनयथ
विलपन्ता जीवितस्स कामा हि,
मुञ्चथदानि कुमारे
अलम्पि मे होतु पुत्तयञ्ञेन ।।४६।।

[जीने की इच्छा से विलाप करते हुए मेरे मन में दुःख पैदा करते हैं। अब कुमारों को छोड़ दो। मुझे पुत्रों की बलि वाला यज्ञ नहीं चाहिये ।।४६।।]

खण्डहाल फिर आकर कहने लगा—

पुब्बेपि खोसि वुत्तो
दुक्करं दुरभिसम्भवञ्चेतं,
अथ नो उपक्खटस्स
यञ्ञस्स करोति विक्खेपं ।।४७।।

सब्बे वजन्ति सुगतिं
ये यजन्ति येपि चेव याजेन्ति,
ये चापि अनुमोदन्ति
यजन्तानं एदिसं महायञ्ञं ॥४८॥

[अर्थ ऊपर आ गया है। देखो गाथा ३२-३३॥]

उसने कुमारों को फिर पकड़वा दिया। कुमार ने राजा की मिन्नत करने के लिये कहा।

यदि किर यजित्वा पुत्तेहि
देवलोकं इतो चुता यन्ति,
ब्राह्मणो ताव यजतु
पच्छापि यजसि तुवं राज॥४९॥
यदि किर यजित्वा पुत्तेहि
देवलोकं इतो चुता यन्ति,
एसो च खण्डहालो
यजतु सकेहि पुत्तेहि॥५०॥
एवं जानं वो खण्डहालो
किं पुत्तके न घातेसि,
सब्बञ्च ञातिजनं
अत्तानञ्च न घातेसि॥५१॥
सब्बे वजन्ति निरयं
ये यजन्ति येपि चेव याजेन्ति
ये चापि अनुमोदन्ति
यजन्तानं एदिसं महायञ्ञं ॥५२॥

[यदि पुत्रों की बलि चढ़ाकर यज्ञ करनेवाले यहाँ से मरने पर देव-लोक जाते हैं, तो पहले ब्राह्मण यज्ञ करे। देव ! आप पीछे यज्ञ करें ॥४९॥ यदि पुत्रों की बलि चढ़ाकर यज्ञ करनेवाले यहाँ से मरने पर देव-लोक जाते हैं, तो यह ब्राह्मण

अपने पुत्रों को बलि चढ़ाकर यज्ञ करे ।।५०।। इस प्रकार का ज्ञान रखनेवाला खण्ड-हाल अपने पुत्रों की हत्या क्यों नहीं करता ? अपने सभी रिश्तेदारों को क्यों नहीं मारता ? और अपने आपको क्यों नहीं मारता ? ।।५१।। जो यज्ञ करते हैं, जो कराते हैं और जो इस प्रकार के महायज्ञ का अनुमोदन करते हैं, वे सभी नरक को जाते हैं ।।५२।।]

इतना कहकर भी कुमार जब राजा से अपनी बात नहीं मनवा सका तो उसने राजा को घेरकर खड़ी परिषद को सम्बोधन करके कहा ।

कथञ्च किर पुत्तकामायो
गहपतयो घरणियो च
नगरम्हि न उपरवन्ति राजानं
मा घातयि ओरसं पुत्तं ।।५३।।
कथञ्च किर पुत्तकामायो
गहपतयो घरणियो च,
नगरम्हि न उपरवन्ति राजानं
मा घातयि अत्रजं पुत्तं ।।५४।।
रञ्ञोम्हि अत्थकामो
हितो च सब्बदा जनपदस्स,
न कोचि अस्स पटिघं मया
जनपदो न पवेदेति ।।५५।।

[पुत्र की कामनावाली गृहणियाँ तथा गृहपति भी नगर में चिल्लाकर राजा को क्यों नहीं कहते हैं कि अपने औरस पुत्र को न मारे ।।५३।। पुत्र की कामनावाली गृहणियाँ तथा गृहपति भी नगर में चिल्लाकर राजा को क्यों नहीं कहते हैं कि अपने अत्रज पुत्र को न मारे ।।५४।। मैं राजा का शुभचिन्तक रहा हूँ और जनपद का सदा हितैषी रहा हूँ । कोई यह नहीं कह सकता कि इसका मुझ से वैर है । तो भी कोई जानपद राजा को नहीं कहता ? ।।५५।।]

इतना कहने पर भी किसीने भी कुछ भी नहीं कहा । तब राजकुमार ने अपनी भार्याओं को राजा से प्रार्थना करने की प्रेरणा देने के लिये कहा ।

गच्छथ वो घरणियो
तातञ्च वदेथ खण्डहालञ्च,
मा घातेथ कुमारे
अदूसके सहिसंकासे ॥५६॥
गच्छथ वो घरणियो
तातञ्च वदेथ खण्डहालञ्च,
मा घातेथ कुमारे
अपेक्खिते सब्बलोकस्स ॥५७॥

[हे गृहणियों ! जाओ और तात को तथा खण्डहाल को कहो कि सिंह समान कुमारों की हत्या न करायें ॥५६॥ हे गृहणियो ! जाओ और तात को तथा खण्डहाल को कहो कि सब लोगो द्वारा इच्छित कुमारों की हत्या न करायें ॥५७॥]

उन्होंने जाकर याचना की। राजा ने ध्यान नहीं दिया। तब कुमार ने अनाथ हो विलाप किया।

यं नुनाहं जायेय्यं
रथकारकुले वा पुक्कुसकुले वा,
वेणेसु वा जायेय्यं
नहज्ज मं राजा यञ्ञत्थाय घातेय्य ॥५८॥

[यदि मैं रथ-कार कुल में पैदा हुआ होता, यदि भंगी के कुल में पैदा हुआ होता और यदि बंस-फोड़ के घर पैदा हुआ होता तो राजा निश्चय से आज यज्ञ के लिये मेरा घात न करता ॥५८॥]

और फिर उन्हें ही प्रेरित करने के लिये कहा—

सब्बा सीमन्तिनियो
गच्छथ अय्यस्स खण्डहालस्स,
पादेसु निपतथ
अपराधाहं न पस्सामि ॥५९॥

सब्बा सीमन्तिनियो
गच्छथ अय्यस्स खण्डहालस्स,
पादेसु निपतथ
किं ते भन्ते मयं अदूसेम ॥६०॥

[सभी स्त्रियाँ आर्य्य खण्डहाल के पास जाकर उसके पैरों पड़ो। मैं नहीं समझता कि मैंने उसका कोई अहित किया हो ॥५६॥ सभी स्त्रियाँ आर्य्य खण्डहाल के पास जाकर उसके पैरों पड़ो और कहो कि भन्ते! हमने तुम्हारा क्या अपराध किया है? ॥६०॥]

चन्द्रकुमार की छोटी बहन शैलकुमारी शोक को न सह सकने के कारण पिता के चरणों पर गिरकर रोने लगी। उस अर्थ को शास्ता ने प्रकाशित किया।

कपणं विलपति सेला
दिस्वान भातरो उपनीतत्ते,
यञ्ञो किर मे उक्खिपितो
तातेन सग्गकामेन ॥६१॥

[भाई को (बलि के लिये) लाया देखकर विचारी शैल-कुमारी विलाप करती है—स्वर्ग-कामी तात ने यज्ञ करने की तैयारी की है ॥६१॥]

राजा ने उसका कहना भी नहीं सुना। तब चन्द्रकुमार के वासुल नामक पुत्र ने पिता को दुखी देख सोचा, 'मैं पितामह से याचनाकर अपने पिता के प्राणों की रक्षा करूंगा।" वह राजा के पाँव में गिर विलाप करने लगा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा।

आवत्ती च परिवत्ति च
वासुलो सम्मुखा रञ्ञो,
मा नो पितरं अवधि
दहरम्हा अयोब्बनं पत्ता ॥६२॥

[वासुल राजा के सामने लोट-पोट होकर कहने लगा—हमारे पिता का वध न करें। अभी हम बालक हैं। हम जवान नहीं हुए हैं ॥६२॥]

राजा ने उसका विलाप सुना तो उसका हृदय फट-सा गया। उसने आँखों में आँसु भर कुमार का आलिंगन किया और कहा, "तात! निश्चिन्त हो। तेरे पिता को छोड़ता हूँ।" उसने गाथा कही।

एसो ते वासुल पिता समेहि पितरं
दुक्खं खो मे जनयसि विलपन्तो अन्तरपुरस्मिं,
मुञ्चथदानि कुमारे अलम्पि मे होतु पुत्त यञ्ञेन ॥६३॥

[वासुल! यह तेरे पिता हैं। पिता से भेंट कर। अन्तःपुर का विलाप सुन मुझे दुःख होता है। अब कुमारों को छोड़ दो। मुझे पुत्र की बलि वाले यज्ञ की अपेक्षा नहीं ॥६३॥]

फिर खण्डहाल आकर बोला—

पुब्बेव खोसि वुत्तो
दुक्करं दुरभिसम्भवञ्चेतं,
अथ नो उपक्खटस्स
यञ्ञस्स करोसि विक्खेपं ॥६४॥
सब्बे वजन्ति सुगतिं
ये यजन्ति येपि चेव याजेन्ति,
ये चापि अनुमोदन्ति
यजन्तानं एदिसं महायञ्ञं ॥६५॥

[अर्थ ऊपर आ गया है—देखो गाथा ३२-३३॥]

राजा भी अन्धा मूर्ख ही था। फिर उसके कहने में आकर पुत्रों को पकड़वा लिया। तब खण्डहाल सोचने लगा—"यह राजा कोमल-हृदय है। कभी पकड़वाता है, कभी छोड़ता है। फिर भी बच्चों की बात सुन पुत्रों को छुड़ा दे सकता है। इसे यज्ञ-कुण्ड पर ही ले चलूं।"

उसने उसे ले चलने के लिये गाथा कही।

सब्ब रतनस्स यञ्ञो
उपक्खटो एकराज तव पटियत्तो,

अभिनिक्खमस्सु देव

सग्गं गतो त्वं पमोदिस्ससि ॥६६॥

[हे एकराज ! तेरा सर्वरत्नमय यज्ञ तैयार हो गया है । हे देव ! अब चलें । स्वर्ग पहुंचने पर तुम्हें आनन्द होगा ॥६६॥]

बोधिसत्व को यज्ञ-कुण्ड ले चलने के समय उसका सारा रनिवास इकट्ठा हो निकल पड़ा । इस अर्थ को प्रकाशित करते समय शास्ता ने कहा ।

दहरा सत्तसता
एता पन चन्दकस्स भरियायो
केसे परिकिरित्वान
रोदन्तियो मग्गमनुयन्ति ॥६४॥
अपरा पन सोकेन
निक्खन्ता नन्दने विय देवा
केसे परिकिरित्वान
रोदन्तियो मग्गमनुयन्ति ॥६५॥

[चन्द्र-कुमार की सात सौ तरुण भार्यायें बालों को बिखेरकर रास्ते पर निकल पड़ीं ॥६४॥ जिस प्रकार नन्दन-वन में देव-कन्यायें उसी प्रकार दूसरी (स्त्रियाँ) बालों को बिखेर रास्ते पर निकल पड़ीं ॥६५॥]

इसके आगे उनका विलाप है—

कासिकसुचिवत्थधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
नीयन्ति चन्द सुरिया
यञ्ञत्थाय एकराजस्स ॥६६॥
कासिक सुचिवत्थधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
नीयन्ति चन्दसुरिया
मातु कत्वा हदयसोकं ॥६७॥

कासिकसुचिवत्थधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
नीयन्ति चन्दसुरिया
जनस्स कत्वा हृदयसोकं ॥६८॥

मंसरसभोजिनो नहापक सुनहापिता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
नीयन्ति चन्दसुरिया
यञ्ञत्थाय एकराजस्स ॥६९॥

मंसरसभोजिनो नहापक सुनहापिता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
नीयन्ति चन्दसुरिया
मातु कत्वा हृदयसोकं ॥७०॥

मंसरसभोजिनो नहापक सुनहापिता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता
नीयन्ति चन्दसुरिया
जनस्स कत्वा हृदय सोकं ॥७१॥

यस्स पुब्बे हत्थीवर धुरगते
हत्थीहि अनुवजन्ति,
त्यज्ज चन्दसुरिया
उभोव पत्तिका यन्ति ॥७२॥

यस्स पुब्बे अस्सवर धुरगते
अस्सेहि अनुवजन्ति,
त्यज्ज चन्दसुरिया
उभोव पत्तिका यन्ति ॥७३॥

यस्सु पुब्बे रथवर धुरगते
रथेहि अनुवजन्ति,

त्यञ्ज चन्दसुरिया
उभोव पत्तिका यन्ति ।।७४।।

ये हिस्सु पुब्बे निय्यंसु
तपनीय कप्पनेहि तुरंगेहि,
त्यञ्ज चन्दसुरिया
उभोव पत्तिका यन्ति ।।७५।।

[काशी के शुद्ध वस्त्र धारण किये, कुण्डल पहने हुए, अगरु-चन्दन लगाये चन्द्र-सूर्य्य कुमारों को एकराज के यज्ञ के लिये लिये जा रहे हैं। ।।६६।। काशी के शुद्ध वस्त्र धारण किये, कुण्डल पहने हुए, अगरु चन्दन लगाये चन्द्र-सूर्य्य कुमारों को मां के हृदय में शोक उत्पन्न करके लिये जा रहे हैं ।।६७।। काशी के. . . .कुमारों को जनता के हृदय में शोक उत्पन्न करके लिये जा रहे हैं ।।६८।। मांस-रस का भोजन किये, स्नान करानेवालों द्वारा भली प्रकार स्नान कराये गये, कुण्डल पहने हुए, अगरू चन्दन लगाये, चन्द्र-सूर्य्य कुमारों को एकराज के यज्ञके लिये लिये जा रहे हैं ।।६९।। मांस-रस का भोजन किये. . . .कुमारों को मां के हृदय में शोक-उत्पन्न करने के लिये लिये जा रहे हैं ।।७०।। मांस-रस का भोजन किये. . . .कुमारों को जनता के हृदय में शोक उत्पन्न करने के लिये लिये जा रहे हैं ।।७१।। जो पहले श्रेष्ठ हाथियों के कन्धों पर सवार होते थे और जिनका हाथी ही अनुगमन करते थे वे दोनों चन्द्र-सूर्य्य आज पैदल चले जा रहे हैं। ।।७५।। जो पहले श्रेष्ठ घोड़ों पर . . . .घोड़े ही. . . .आज पैदल चले जा रहे हैं ।।७३।। जो पहले श्रेष्ठ रथो पर. . . .रथ ही. . . .आज पैदल चले जा रहे हैं ।।७४।। जो पहले चमकदार काठी वाले घोड़ों पर बैठकर बाहर निकलते थे, वे दोनों चन्द्र-सूर्य्य आज पैदल चले जा रहे हैं ।।७५।।]

इस प्रकार वे विलाप करती रहीं और बोधिसत्व को नगर से ले गये। सारा नगर क्षुब्ध होकर निकल पड़ा। जनता को निकलने के लिये दरवाजे कम पड़ रहे थे। ब्राह्मण ने बहुत लोगों को निकलते देख सोचा—कौन जाने क्या हो? उसने दरवाजे बन्द करवा दिये। जनता को बाहर निकलना नहीं मिला तो नगर-द्वार के समीप एक उद्यान में इकट्ठे हो लोग जोर जोर से चिल्लाने लगे। उनकी आवाज से

क्षुब्ध हो पक्षी आकाश में उड़ने लगे। जनता उस उस पक्षी को सम्बोधन कर विलाप करती हुई कहने लगी।

यदि सकुणि मंसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो चतुहि पुत्तेहि ॥७६॥
यदि सकुणि मंसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो चतुहि कञ्ञाहि ॥७७॥
यदि सकुणि मंसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो चतुहि महेसीहि ॥७८॥
यदि सकुणि मंसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो चतुहि गहपतीहि ॥७९॥
यदि सकुणि मंसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो चतुहि हत्थीहि ॥८०॥
यदि सकुणि मंसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो चतुहि अस्सेहि ॥८१॥

यदि सकुणि मंसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो चतुहि उसभेहि ॥८२॥

यदि सकुणि मंसमिच्छसि
दयस्सु पुब्बेन पुप्फवतिया,
यजतेत्थ एकराजा
सम्मूळहो सब्ब चतुक्केन ॥८३॥

[हे पंछी ! यदि मांस की कामना है तो पुष्पवती की पूर्व-दिशा में उड़। वहाँ मूर्ख एकराज चारों पुत्रों की बलि देकर यज्ञ करने जा रहा है ॥७६॥ हे पंछी ! यदि....चारों कन्याओं की बलि देकर यज्ञ करने जा रहा है ॥७७॥ हे पंछी ! यदि....चारों भार्य्याओं की बलि देकर यज्ञ करने जा रहा है ॥७८॥ हे पंछी ! यदि....चारों गृहपतियों की बलि देकर यज्ञ करने जा रहा है ॥७९॥ हे पंछी ! यदि....चारों हाथियों की बलि देकर यज्ञ करने जा रहा है ॥८०॥ हे पंछी ! यदि....चारों घोड़ों की बलि देकर यज्ञ करने जा रहा है ॥८१॥ हे पंछी ! यदि....चारों वृषभों की बलि देकर यज्ञ करने जा रहा है ॥८२॥ हे पंछी ! यदि मांस की कामना है तो पुष्प-वती की पूर्व-दिशा में उड़। वहाँ मूर्ख एक-राजा सभी चार चार प्रकार के पदार्थों से यज्ञ करने जा रहा है ॥८३॥]

इस प्रकार जनता वहाँ से पीटकर बोधिसत्व के निवास-स्थान पर पहुंची और प्रासाद की प्रदक्षिणा कर अन्तःपुर, कूटागार, उद्यानादि को देख देख गाथाओं द्वारा विलाप करने लगी।

अयमस्स पासादो इदं अन्तेपुरं सुरमणीयं,
ते दानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥८४॥
इदमस्स कूटागारं सोवण्णं पुप्फमल्यवीतिकिण्णं
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥८५॥
इदमस्स उय्यानं सुपुप्फितं सब्बकालिकं रम्मं
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥८६॥

इदमस्स असोकवनं सुपुप्फितं सब्बकालिकं रम्मं,
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥८७॥
इदमस्स कणिकारवनं सुपुप्फितं सब्बकालिकं रम्मं,
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥८८॥
इदस्स पाटलीवनं सुपुप्फितं सब्बकालिकं रम्मं,
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥८९॥
इदमस्स अम्बवनं सुपुप्फितं सब्बकालिकं रम्मं,
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥९०॥
अयमस्स पोक्खरणी सञ्छन्ना पदुमपुण्डरीकेहि सुरमणीया,
नावाच सोवण्ण निकता पुप्फावलिया विचित्ता
ते दानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥९१॥

[यह उसका प्रासाद है, यह रमणीय अन्तःपुर है। अब वे चारों आर्य-पुत्र बध करने के लिये ले जाये गये हैं ॥८४॥ यह उसका पुष्पमालाओं से विकीर्ण स्वर्णिम कूटागार है। अब वे चारों आर्यपुत्र बध के लिये ले जाये गये हैं ॥८५॥ यह उसका सर्व-कालिक रमणीय सुपुष्पित उद्यान है। अब वे....ले जाये गये हैं ॥८६॥ यह उसका....अशोक बन है। अब वे....ले जाये गये हैं ॥८७॥ यह उसका ....कर्णिकार वन है। अब वे....ले जाये गये हैं ॥८८॥ यह उसका.... पाटलिवन है। अब वे....ले जाये गये हैं ॥८९॥ यह उसका....आम्रवन है। अब वे....ले जाये गये हैं ॥९०॥ यह उसकी पुष्करिणी है, जो पद्मों तथा पुण्डरीकों से आच्छादित है; जहाँ स्वर्ण-खचित, पुष्पोंवाली, सुन्दर तथा रमणीय नौकायें हैं। अब वे चारों आर्य-पुत्र बध के लिये ले जाये गये हैं ॥९१॥]

इतनी जगहों पर विलाप कर फिर हस्ति-शाला आदि के पास पहुंच कहने लगे।

इदमस्स हत्थिरतनं एरावणो गजो वरुणदन्तो,
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥९२॥
इदमस्स अस्सरतनं एकखुरो अस्सो,
तेदानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥९३॥

अयमस्स अस्सरथो सालियनिग्घोसो सुभो रतनचित्तो
यत्थस्सु अय्यपुत्ता सोभिंसु नन्दने विय देवा,
ते दानि अय्यपुत्ता चत्तारो वधाय निन्नीता ॥९४॥
कथं नाम साम सम सुन्दरेहि चन्दनमरकतगत्तेहि,
राजा यजिस्सते यञ्ञं सम्मूळ्हो चतुहि पुत्तेहि ॥९५॥
कथं नाम साम सम सुन्दराहि चन्दनमरकतगत्ताहि,
राजा यजिस्सते यञ्ञं सम्मूळ्हो चतुहि कञ्ञाहि ॥९६॥
कथं नाम साम सम सुन्दराहि चन्दनमरकतगत्ताहि,
राजा यजिस्सते यञ्ञं सम्मूळ्हो चतुहि महेसीहि ॥९७॥
कथं नाम साम सम सुन्दरेहि चन्दनमरकतगत्तेहि,
राजा यजिस्सते यञ्ञं सम्मूळ्हो चतुहि गहपतीहि ॥९८॥
यथा होन्ति गाम निगमा सुञ्ञा अमनुस्सका ब्रहारञ्ञा,
तथा हेस्सति पुप्फवतिया यिट्ठेसु चन्दसुरियेसु ॥९९॥

[यह उसका हस्ति-रतन है, एरावण वरुण दन्ती गज। अब वे चारों आर्य-पुत्र बध के लिए ले जाये गये हैं ॥९२॥ यह उसका अश्व रतन है, एक खुर अश्व। अब वे........ले जाये गये हैं ॥९३॥ यह उसका अश्व-रथ है, मैना के समान आवाज करने वाला, शुभ रतनों से चित्रित, जिसमें आर्य-पुत्र उसी प्रकार शोभा देते थे, जैसे नन्दन बन में देवता। अब वे......ले जाये गये हैं ॥९४॥ स्वर्ण के समान सुन्दर और रक्त-वर्ण चन्दन से लिप्त चारों पुत्रों को मूर्ख राजा यज्ञ में कैसे बलि देगा ॥९५॥ स्वर्ण के समान सुन्दर और रक्त-वर्ण चन्दन से लिप्त चारों कन्याओं को मूर्ख राजा यज्ञ में कैसे बलि देगा ॥९६॥ स्वर्ण के समान सुन्दर और रक्त वर्ण चन्दन से लिप्त चारों भार्य्याओं को मूर्ख राजा यज्ञ में कैसे बलि देगा? ॥९७॥ स्वर्ण के समान सुन्दर और रक्त-वर्ण चन्दन से लिप्त चारों गृहपतियों को मूर्ख राजा यज्ञ में कैसे बलि देगा? ॥९८॥ चन्द्र-सूर्य्य की बलि चढ़ जाने पर पुष्पवती का वही हाल हो जायगा जो शून्य, मनुष्य-रहित, बड़े जंगलों का होता है? ॥९९॥]

बोधिसत्व यज्ञ कुण्ड के पास ले जाया गया। उसकी माता गौतमी देवी राजा

के पैरों पर गिरकर लोटपोट होती हुई बोली, "मेरे पुत्रों को जीवन दान दे।" उसने गाथा कही।

उम्मत्तिका भविस्सामि
भुनहता पंसुना च परिकिण्णा,
सचे चन्दवरं हन्ति
पाणा मे देव निरुज्झन्ति॥१००॥
उम्मत्तिका भविस्सामि
भुनहता पंसुना च परिकिण्णा,
सचे सुरियवरं हन्ति
पाणा मे देव निरुज्झन्ति॥१०१॥

[मैं पगली हो जाऊंगी। भ्रूण-हता और धूलि परिकीर्णा। यदि चन्द्रकुमार की हत्या होती है तो हे देव! मेरे प्राण नही रहेंगे॥१००॥ मैं पगली हो जाऊंगी। भ्रूण-हता और धूलि परिकीर्णा। यदि सूर्य-कुमार की हत्या होती है तो हे देव! मेरे प्राण नहीं रहेंगे॥१०१॥]

जब इस प्रकार रो पीटकर भी वह राजा का कुछ भी ध्यान न आकर्षित कर सकी तो वह कुमार की चारों भार्य्याओं को गले से लगाकर रोती हुई बोली—"मेरा पुत्र तुमसे रूठकर गया होगा। तुमने क्यों नहीं रोका?" उसने गाथा कही।

किन्नुमा न रमयेय्युं
अञ्ञमञ्ञं पियंवदा,
घट्टिया ओपरक्खीच
पोक्खरक्खीच नायिका
चन्दसुरियेसु नच्चन्तियो
समो तासं न विज्जति॥१०२॥

[इन परस्पर प्रियभाषिनी घट्टिया, ओपरक्खी, पोक्खरक्खी तथा नायिका ने उसे क्यों नहीं रोका। चन्द्र-सूर्य के सामने नाचने पर इनकी समानता करने वाला कोई नहीं॥१०२॥]

अपनी बहुओं के साथ रो पीटकर और किसी को न पा उसने खण्डहाल को कोसते हुए आठ गाथायें कहीं।

इमं मय्हं हदयसोकं
पटिमुच्चतु खण्डहाल तव माता,
यो मय्हं हदयसोको
चन्दस्मिं वधाय निन्नीते ॥१०३॥

इमं मय्हं हदयसोकं
पटिमुच्चतु खण्डहाल तव माता,
यो मय्हं हदयसोको
सुरियस्मिं वधाय निन्नीते ॥१०४॥

इमं मय्हं हदयसोकं
पटिमुच्चतु खण्डहाल तव जाया,
यो मय्हं हदयसोको
चन्दस्मिं वधाय निन्नीते ॥१०५॥

इमं मय्हं हदयसोकं
पटिमुच्चतु खण्डहाल तव जाया,
यो मय्हं हदयसोको
सुरियस्मिं वधाय निन्नीत ॥१०६॥

मा पुत्ते मा च पतिं
अदक्खि खण्डहाल तव माता,
यो घातेसि कुमारे
अदूसके सीहसंकासे ॥१०७॥

मा पुत्ते मा च पतिं
अद्दक्खि खण्डहाल तव माता,
यो घातेसि कुमारे
अपेक्खिते सब्बलोकस्स ॥१०८॥

मा पुत्ते मा च पतिं
अद्दक्खि खण्डहाल तव जाया,
यो घातेसि कुमारे
अदूसके सीहसंकासे ॥१०९॥
मा पुत्ते मा च पतिं
अदक्खि खण्डहाल तव जाया
यो घातेसि कुमारे
अपेक्खिते सब्बलोकस्स ॥११०॥

[हे खण्डहाल ! चन्द्रकुमार की हत्या करने के लिए ले जाये जाने पर मुझे जो हृदय-शोक हुआ है वह हृदय-शोक तेरी मां पर पड़े ॥१०३॥ हे खण्डहाल ! सूर्य्य-कुमार की ....मां पर पड़े ॥१०४॥ हे खण्डहाल ! चन्द्र कुमार की हत्या करने के लिए ले जाये जाते समय मुझे जो हृदय-शोक हुआ है वह तेरी भार्य्या पर पड़े ॥१०५॥ हे खण्डहाल ! सूर्य कुमार की ......भार्या पर पड़े ॥१०६॥ हे खण्डहाल ! तूने निर्दोष, सिंह-समान कुमारों को मरवाया, तेरी मां को पुत्र अथवा पति कोई भी देखना न मिले ॥१०७॥ हे खण्डहाल ! तूने सब लोगों के सामने कुमारों को मरवाया, तेरी मां को पुत्र अथवा पति कोई भी देखना न मिले ॥१०८॥ हे खण्डहाल ! तूने निर्दोष सिंह-समान कुमारों को मरवाया, तेरी भार्या को पुत्र अथवा पति कोई भी देखना न मिले ॥१०९॥ हे खण्डहाल ! तूने सब लोगों के सामने कुमारों को मरवाया, तेरी भार्य्या को पुत्र अथवा पति कोई भी देखना न मिले ॥११०॥]

बोधिसत्व ने यज्ञ-कुण्ड के पास पिता से प्रार्थना की।

मा नो देव अवधि
दासे नोदेहि खण्डहालस्स,
अपि निगळबन्धकापि
हत्थी अस्से च पालेम ॥१११॥
मा नो देव अवधि
दासे नो देहि खण्डहालस्स,

अपि निगळबन्धकापि
हत्थिच्छकणानि उज्झेम ॥११२॥
मा नो देव अवधि
दासे नो देहि खण्डहालस्स,
अपि निगळबन्धकापि
अस्सच्छकणानि उज्झेम ॥११३॥
मा नो देव अवधि
दासे नो देहि यस्स होन्ति तव कामा,
अपि रट्ठा पब्बजिता
भिक्खाचरियं चरिस्साम ॥११४॥

[अर्थ ऊपर आ गया है। देखें ४२-४५ ॥]

दिब्बं उपयाचन्ति
पुत्तत्थिका दळिद्दापि नारियो,
पटिभाणानि पि हित्वा
पुत्ते नहि लभन्ति एकच्चा ॥११५॥
अस्सासकानि करोन्ति
पुत्ता नो जायन्तु ततो पुत्ता,
अथ नो अकारणस्मा
यञ्ञत्थाय देव घातेसि ॥११६॥
उपयाचितकेन पुत्तं
लभन्ति मा तात नो अघातेसि,
मा किच्छालद्धकेहि
पुत्तेहि यजित्थो इमं यञ्ञं ॥११७॥
उपयाचितकेन पुत्तं
लभन्ति मा तात नो अघातेसि,
मा कपणलद्धकेहि
पुत्तेहि अम्माय नो विप्पवासेहि ॥११८॥

[पुत्र-कामना वाली दरिद्र नारियां भी दिव्य वस्तुओं की इच्छा करती हैं। दोहदों को छोड़कर भी किसी किसी के पुत्र नहीं भी होते ॥११५॥ प्राणी कामना करते हैं कि पुत्र पैदा हों और पुत्रों के भी पुत्र पैदा हों। देव! हमारी अकारण यज्ञ के लिये हत्या न करायें ॥११६॥ मिन्नत करने पर पुत्र मिलते हैं। हे तात! हमारी हत्या न करायें। कठिनाई से प्राप्त होनेवाले पुत्रों की यज्ञ में बलि न दें ॥११७॥ मिन्नत करने से पुत्र मिलते हैं। हे तात! हमारी हत्या न करायें। जैसे-तैसे प्राप्त हुए पुत्रों का उनकी माता से वियोग न करायें ॥११८॥]

उसके इतना कहने पर भी जब पिता ने कुछ ध्यान न दिया तो वह माता के चरणों में गिरकर विलाप करता हुआ कहने लगा।

बहुदुक्खपोसिया चन्दं
अम्म तुवं जीय्यसे पुत्तं,
वन्दामि खो ते पादे
लभतं तातो परलोकं ॥११९॥

हन्द च मं उपगुह
पादे ते अम्म वन्दितुं देहि,
गच्छामि दानि पवासं
यञ्ञत्थाय एकराजस्स ॥१२०॥

हन्द च मं उपगुह
पादे ते अम्म वन्दितुं देहि,
गच्छामि दानि पवासं
मातुकत्वा हदयसोकं ॥१२१॥

हन्द च मं उपगुह
पादे ते अम्म वन्दितुं देहि,
गच्छामि दानि पवासं
जनस्स कत्वा हदयसोकं ॥१२२॥

[माँ! बहुत कष्ट से पाला हुआ तेरा पुत्र चन्द्र अब तुझसे छूट रहा है। मैं तेरे चरणों की बन्दना करता हूँ। तात पर-लोक प्राप्त करे ॥११९॥ माँ मेरे!

शिर को सूंघ और मुझे अपने चरणों को वन्दना करने दे। मैं अब एकराज के यज्ञ के निमित्त प्रवास कर रहा हूँ ॥१२०॥ माँ ! मेरे सिर को सूंघ और मुझे अपने चरणों की बन्दना करने दे। मैं माता को शोकाकुल करके प्रवास कर रहा हूँ ॥१२१॥ माँ ! मेरे सिर को सूंघ और मुझे अपने चरणों को बन्दना करने दे। मैं जनता को शोकाकुल करके प्रवास कर रहा हूँ ॥१२२॥]

माता ने विलाप करते हुए चार गाथायें कही।

हन्द च पदुमपत्तानं
मोळि बन्धस्सु गोतमी पुत्त,
चम्पकदलि वीतिमिस्सायो
एसा ते पोराणिया पकति ॥१२३॥
हन्द च विलेपनन्ते
पच्छिमकं चन्दनं विलिम्पस्सु
येहि च सुविलित्तो
सोभसि राजपरिसाय ॥१२४॥
हन्द च मुदुकानि वत्थानि
पच्छिमकं कासिकं वासेहि,
येहि च सुनिवत्थो
सोभसि राजपरिसाय ॥१२५॥
मुत्ता मणिकनकविभूसितानि
गणहस्सु हत्थाभरणानि
सोभसि राजपरिसाय ॥१२६॥

[हन्त ! हे गोतमी-पुत्र ! हे चन्द्र-कुमार ! पदुम-पत्र नाम के अलंकार से अपने सिर के जूड़े को अलंकृत कर। चम्प-कदली आदि नाना प्रकार के पुष्पों को धारण कर। यही तेरा अभ्यास रहा है ॥१२३॥ हन्त ! तू अपना अन्तिम चन्दन का लेप कर ले, जिससे विलिप्त होकर तू राज-परिषद में शोभा देता है ॥१२४॥ हन्त ! काशी के कोमल वस्त्रों को अन्तिम बार पहन ले, जिन्हें धारण कर, तू राज-परिषद में शोभा

देता है ।।१२५ ।। मोती, माणिक्य और स्वर्णभूषित हाथ के आभरणों को धारण कर जिनसे तू राज-परिषद में शोभा देता है ।।१२६ ।।]

तब उसकी चन्दा नामक पटरानी ने चरणों में गिरकर विलाप किया।

नहनूनायं रट्ठपालो
भूमिपति जनपदस्स दायादो
लोकिस्सरो महन्ता
पुत्तेसु सिनेहं जनयति ।।१२७।।

[निश्चय से इस राष्ट्रपाल को, इस भूमिपति को इस जनपद के उत्तराधिकारी को, इस लोकेश्वर को, इस महान व्यक्ति को पुत्रों के प्रति स्नेह नहीं है ।।१२७ ।।]

यह सुन राजा बोला—

मय्हं पिया पुत्ता
अत्तापि पियो तुम्हे च भरियायो,
सग्गञ्च पत्थयानो
तेन महं घातयिस्सामि ।।१२८।।

[मुझे पुत्र प्रिय है, अपना आप भी प्रिय है और तुम (सभी) भार्यायें भी प्रिय हैं किन्तु मैं स्वर्ग की कामना करता हूँ, इसी लिए इनकी हत्या करवा रहा हूँ ।।१२८।।]

चन्दा बोली—

मं पठमं घातेहि
मा मे हदयं दुक्खं अफालेसि,
अलंकतो सुंदरको
पुत्तो तव देव सुखुमालो ।।१२९।।
हन्दय्य मं हनस्सु
सलोकं चन्दियेन हेस्सामि,
पुञ्ञं करस्सु विपुलं
विचराय उभोव परलोके ।।१३०।।

[पहले मेरी हत्या कर दो। दुःख मेरे हृदय के टुकड़े टुकड़े न करे। हे देव! तेरा पुत्र अलंकृत है सुन्दर है तथा सुकुमार हैं ॥१२९॥ हन्त! आर्य मेरी हत्या कर दें। मैं चन्द्र-कुमार के साथ समान लोक वाली हो जाऊंगी। आप बहुत पुण्य करें। हम परलोक में इकट्ठे विचरेंगे ॥१३०॥]

राजा बोला—

मा त्वं चन्दे रुच्चि
बहुका तव देवरा विसालक्खि,
ते तं रमयिस्सन्ति
यिट्ठस्मिं गोतमीपुत्ते ॥१३१॥

[हे चन्द्रे! तुझे यह अच्छा न लगे। हे विशालाक्षी! तेरे बहुत से देवर हैं। गोतमी पुत्र के बलि चढ़ जाने पर वे तेरे साथ रमण करेंगे ॥१३१॥]

तब शास्ता ने आधी गाथा कही—

एवं वुत्ते चन्दा
अत्तानं हन्ति तत्थ तलकेहि,

[ऐसा कहे जाने पर चन्द्रा ने अपने आप को हाथों मे पीट लिया।]

इससे आगे उसी का विलाप है—

अलमत्थु जीवितेन
पायामि विसं मरिस्सामि ॥१३२॥
नहनूनिमस्स रञ्ञो
मित्ता मच्चा च विज्जरे सुहदा,
येन वदन्ति राजानं
मा घातयि ओरसे पुत्ते ॥१३३॥
नहनूनिमस्स रञ्ञो
ञाती मित्ताच विज्जरे सुहदा,
येन वदन्ति राजानं
मा घातयि अत्रजे पुत्ते ॥१३४॥

इमे तेपि मय्हं पुत्ता
गुणिनो कायुरधारिनो राज,
तेहिपि यजस्सु यञ्ञं
अथ मुञ्चतु गोतमी पुत्ते ॥१३५॥
बिलसतं मं कत्वा
यजस्सु सत्तधा महाराज,
मा जेट्ठपुत्तमवधि
अदूसकं सीहसंकासं ॥१३६॥
बिलसतं मं कत्वा
यजस्सु सत्तधा महाराज,
मा जेट्ठपुत्तमवधि
अपेक्खितं सब्बलोकस्स ॥१३७॥

[मुझे जीने की इच्छा नहीं है। मैं विष-पान कर के मर जाऊंगी ॥१३२॥ निश्चय से उस राजा के कोई मित्र, अमात्य वा सुहृद नहीं हैं जो इसे कहते कि ओरस पुत्रों की हत्या न करे ॥१३३॥ निश्चय से इस राजा के कोई रिश्तेदार, मित्र अथवा सुहृद नहीं हैं जो इसे कहते कि अत्रज पुत्रों की हत्या न करे ॥१३४॥ हे राजन! ये मेरे पुत्र हैं—मालाधारी तथा बाजुबन्दधारी। आप गोतमी-पुत्र को छोड़कर इनसे यज्ञ कर लें ॥१३५॥ महाराज मेरे टुकड़े टुकड़े करके सात बार यज्ञ कर लें। निर्दोश सिंह समान ज्येष्ठ -पुत्र का बध न करें ॥१३६॥ महाराज मेरे टुकड़े टुकड़े करके सात बार यज्ञ कर लें। सारे लोक के देखते ज्येष्ठ पुत्र का बध न करें ॥१३७॥]

इस प्रकार उसने इन गाथाओं द्वारा राजा के सामने विलाप किया। जब उसे आश्वासन न मिला, तो वह बोधिसत्व के ही पास जा खड़ी खड़ी विलाप करने लगी। उसने उसे कहा, "चन्द्रे! अपने जीवन-काल में जब-जब तूने कोई अच्छी बात कही, मैंने तुझे बड़े-छोटे मणि-मुक्तादि बहुत से आभरण दिये। आज तुझे यह अपने शरीर के आभरण अन्तिम रूप से देता हूँ। ग्रहण कर।"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

बहुका तव दिन्ना आभरणा
उच्चावचा सुभणितम्हि,
मुत्ता मणिवेळुरिया
इदं ते पच्छिमकं दानं ।।१३८।।

[तेरे कोई अच्छी बात कहने पर तुझे बहुत से छोटे-बड़े मोती, माणिक्य तथा बिल्लौर के आभरण दिये। यह तुझे अन्तिम देना है ।।१३८।।]

यह सुन चन्द्रा देवी ने नौ गाथाओं से विलाप किया—

येसं पुब्बे खन्धेसु
फुल्लमाला गुणा विवत्तिसु,
ते सज्ज पीतनिसितो
नेत्तिसो विवत्तिस्सति खन्धेसु ।।१३९।।
येसं पुब्बे खन्धेसु
चित्रमालागुणा विवत्तिसु,
तेसज्ज पीतनिसितो
नेत्तिसो विवत्तिस्सति खन्धेसु ।।१४०।।
अचिरा वत नेत्तिसो
विवत्तिस्सति राजपुत्तानं खन्धेसु,
अथ मम हृदयं न फलति
ताव दळहबन्धनञ्च मे आसि ।।१४१।।
कासिकसुचिवत्थधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दन विलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
यञ्ञत्थाय एकराजस्स ।।१४२।।
कासिकसुचिवत्थधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
मातु कत्वा हृदय सोकं ।।१४३।।

कासिक सुचिवत्थधरा
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्द सुरिया
जनस्स कत्वा हृदयसोकं ॥१४४॥
मंसरस भोजिनो नहापक सुनहाता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
यञ्ञत्थाय एकराजस्स ॥१४५॥
मंसरसभोजिनो नहापक सुनहाता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
मातु कत्वा हृदयसोकं ॥१४६॥
मंसरसभोजिनो नहापक सुनहाता
कुण्डलिनो अगलुचन्दनविलित्ता,
निय्याथ चन्दसुरिया
जनस्स कत्वा हृदयसोकं ॥१४७॥

[जिनके गलों में पहले फूलों की माला पड़ती थी, उनके गलों पर आज पीली (?) तेज तलवार पड़ेगी ॥१३९॥ जिनके गलो में पहले विभिन्न मालायें पड़तीं थीं, उनके गलों पर आज पीली (?) तेज तलवार पड़ेगी ॥१४०॥ अचिर काल में ही राजपुत्रों की गरदन पर तलवार गिरेगी। अभी भी मेरा हृदय नहीं फटता। वह इतना कठोर है ॥१४१॥ काशी के शुद्ध वस्त्र धारण किये, कुण्डल पहने हुए, अगरू चन्दन लगाये चन्द्र-सूर्य्य कुमारो एकराजा के यज्ञ के लिये जाओ ॥१४२॥ काशी के शुद्ध वस्त्र धारण किये, कुण्डल पहने हुए, अगरू चन्दन लगाये चन्द्र-सूर्य्य कुमारो मां के हृदय में शोक उत्पन्न करने के लिये जाओ ॥१४३॥ काशी के . . . चन्द्र-सूर्य्य कुमारो जनता के हृदय में शोक उत्पन्न करने के लिये जाओ ॥१४४॥ मांस-रस का भोजन किये स्नान कराने वालों द्वारा भलि प्रकार स्नान कराये गये, कुण्डल पहने हुए, अगरू चन्दन लगाये चन्द्र-सूर्य्य कुमारो एकराजा के यज्ञ के लिए

जाओ ।।१४५।। मांस-रस का भोजन किये.......चन्द्र-सूर्य्य कुमार मां के हृदय में शोक उत्पन्न करने के लिये जाओ।।१४६।। मांस-रस का भोजन किये ....चन्द्र-सूर्य्य कुमार जनता के हृदय में शोक उत्पन्न करने के लिये जाओ।।१४७।।]

इस प्रकार जब वह रोती पीटती रही, तभी यज्ञ-कुण्ड की सारी तैयारी पूरी हो गई। राजपुत्र को गरदन झुकाकर बिठाया गया। खण्डहाल स्वर्ण-थाल मंगवाये हाथ में खड्ग लिये खड़ा था कि उसकी गरदन काटूंगा। यह देख चन्द्रा देवी ने सोचा कि अब कोई दूसरा उपाय नहीं है। मैं अपने सत्य के बल से स्वामी का मंगल करूंगी। उसने हाथ-जोड़ परिषद में विचरते हुए सत्य-क्रिया की। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा।

सब्बस्मिं उपक्खटस्मिं
निसोदिते चन्दियस्मिं यञ्ञत्थाय,
पञ्चालराजधीता
पञ्जलिका सब्ब परिसमनुपिरयासि।।१४८।।
येन सच्चेन खण्डहालो
पापकम्मं करोति दुम्मेधो,
एतेन सच्चवज्जेन
समंगिनी सामिकेन होमि।।१४९।।
येचत्थि अमनुस्सा
यानि च यक्ख भूत भब्यानि
करोन्तु मे वेय्यावटिकं
समंगिनी सामिकेन होमि।।१५०।।
या देवता इधागता
यानि च यक्ख भूत भब्यामि,
सरणेसिनिं अनाथं
तायथ मं याचामहं पतिमाहं अजिय्यं।।१५१।।

[यज्ञ की सारी तैयारी हो जाने पर, चन्द्र कुमार के बलि दिये जाने के लिये बैठ जाने पर, पञ्चालराजधीता हाथ जोड़े सारी परिषद में घूमने लगी ।।१४८ ।। मूर्ख खण्ड-हाल जिस "सत्य" से पाप-कर्म करता है, उसी सत्य के प्रताप से मैं स्वामी की संगिनी बनूं ।।१४६ ।। यहाँ जितने अमनुष्य हैं, जितने यक्ष हैं और जितने हुए अथवा होनेवाले प्राणी हैं वे सब मेरी सेवा करें, मैं स्वामी की संगिनी बनूं ।।१५० ।। यहाँ जितने देवता आये हैं, जितने यक्ष तथा हुए और होनेवाले प्राणी हैं, वे सब मुझ शरणागत अनाथ का त्राण करें। मैं याचना करती हूँ कि मैं अपने पति को न गँवाऊं ।।१५१ ।।]

देवेन्द्र शक्र ने उसका विलाप सुना और जब वह समाचार जाना तो वह गर्म लोहा लेकर पहुंचा और राजा को डराकर सभी को मुक्त कर दिया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तं सुत्वा अमनुस्सो
अयोकूटं परिब्भमेत्वान,
भयमस्स जनयन्तो
राजानं इदमवोच ।।१५२।।

बुज्झस्सु खो राजकलि
माताहं मत्थकं निताळेमि,
मा जेट्ठपुत्तमवधि
अदूसकं सीहसंकासं ।।१५३।।

को ते दिट्ठा राजकलि
पुत्त भरियायो हञ्ञमाना
सेट्ठी च गहपतयो
अदूसका सग्गकामा हि ।।१५४।।

तं सुत्वा खण्डहालो
राजा च अब्भुतमिदं दिस्वान,
सब्बेसं बन्धनानि मोचेसुं
यथा तं अपापानं ।।१५५।।

सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये तत्थ समागता तदा आसुं,
सब्बे एकेकलेड्डुकमदंसु
एस वधो खण्ड हालस्स ॥१५६॥

[यह सुन शक्र ने वज्र (अयकूट) घुमाते हुए, राजा के मन मे भय सञ्चार करके कहा ॥१५२॥ हे पापी-राजा ! समझ ! कहीं मैं तेरा मस्तक न फोड़ दूं। निर्दोष सिंह-समान ज्येष्ठ पुत्र का वध मत कर ॥१५३॥ हे पापी-राजा ! स्वर्ग की कामना से निर्दोष पुत्रों, भार्य्याओं तथा श्रेष्ठी गृहपतियों की हत्या करने वाले तूने कहाँ देखे हैं ॥१५४॥ यह सुन और यह अद्भुत दृश्य देख खण्डहाल तथा राजा ने सभी निर्दोष जनों के बन्धन खोल दिये ॥१५५॥ सब के मुक्त होने पर वहाँ जितने लोग इकट्ठे हुए थे उन सब ने खण्डहाल पर एक-एक ढेला फेंका। यहीं खण्डहाल का मरण हुआ ॥१५६॥]

उसकी जान ले जनता राजा की जान लेने लगी। बोधिसत्व ने पिता का आलिङ्गन कर उसे मारने नहीं दिया। जनता बोली—"इस पापी-राजा का प्राण नहीं लेंगे, किन्तु अब हम इसे न राज-छत्र देंगे और न नगर में रहने देंगे। चण्डाल बनाकर नगर के बाहर बसायेंगे।" उन्होंने उसकी राजकीय पोषाक उतारी, काषाय वस्त्र पहनाया तथा पीले रंग के चीथड़ों से सिर लपेट, चण्डाल बना चण्डालों की वस्ती में ही भेज दिया। जिन्होंने पशु-घात वाला यज्ञ किया, कराया अथवा अनुमोदन किया वे सब नरकगामी ही हुए।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सब्बे पतिंसु निरयं
यथा तं पापकं करित्वान,
नहि पापकम्मं कत्वा
लब्भा सुगतिं इतो गन्तुं ॥१५७॥

[उस पाप-कर्म को करके सभी नरक में पड़े। पाप करके यहाँ से जाने पर किसी को भी सुगति नहीं मिलती ॥१५७॥]

उस जनता ने भी दो मनहूसों को छोड़ वहीं अभिषेक का मामान मंगवा चन्द्रकुमार का अभिषेक किया। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसुं,
चन्दं अभिसिञ्चिसुं,
समागत राजपरिसा च ॥१५८॥
सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसुं,
चन्दं अभिसिञ्चिसुं
समागता राजकञ्ञायो ॥१५९॥
सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसुं,
चन्दं अभिसिञ्चिसुं
समागता देवपरिसा च ॥१६०॥
सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसुं,
चन्दं अभिसिञ्चिसुं
समागता देवकञ्ञायो ॥१६१॥
सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसुं
वेळुक्खेपमकरूं
समागता राजपीरस च ॥१६२॥
सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसुं

समागता राजकञ्ञायो ॥१६३॥

सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसुं,
वेळुक्खेपमकरुं
समागता देव पीरसा च ॥१६४॥
सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
ये च तत्थ समागता तदा आसुं,
वेळुक्खेपमकरुं
समागता राजकञ्ञायो ॥१६५॥
सब्बेसु विप्पमुत्तेसु
बहु आनन्दतो अहु वंसो,
नन्दिप्पवेसि नगरं
बन्धना मोक्खो अघोसित्थ ॥१६६।'

[सभी के मुक्त होने के समय राजपरिषद के साथ और जो सब आये थे, उन्होंने चन्द्र-कुमार का अभिषेक किया ॥१५०॥ सभी के .....राज कन्याओं के ....अभिषेक किया ॥१५९॥ सभी के ....देव परिषद के ....अभिषेक किया ॥१६०॥ सभी के........देवकन्याओं के ....अभिषेक किया ॥१६१॥ सभी के मुक्त होने के समय राज परिषद के साथ और जो सब आये थे, उन्होंने आकाश में वस्त्र उछाले ॥१६२॥ सभी के ......राज कन्याओं के........आकाश में वस्त्र उछाले ॥१६३॥ सभी के ......देव परिषद के ....आकाश में वस्त्र उछाले ॥१६४॥ सभी के........... देव कन्याओं के ....आकाश में वस्त्र उछाले ॥१६५॥। सभी के मुक्त होने पर बहुत आनन्द हुआ, नगर में आनन्द-भेरी बजा और घोषणा की गई कि सभी मुक्त हुए ।॥१६६॥]

बोधिसत्व ने पिता के गिर्द चार-दीवारी (?) बनवा दी। किन्तु वह नगर के भीतर नहीं ही आ सकता था। जब खर्चा नहीं रहता तो बोधिसत्व के उद्यान क्रीड़ा आदि के लिये जाते समय 'पिता होने के कारण' प्रणाम नहीं करता। किन्तु

हाथ जोड़कर 'स्वामी, चिरकाल तक जीवें' कहता। क्या आवश्यकता है? पूछने पर कहता। वह खर्चा दिलवा देता।

बोधिसत्व धर्मानुसार राज्य कर आयु की समाप्ति पर देव-लोक गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'भिक्षुओ, न केवल अभी पहले भी देवदत्त ने अकेले मेरे कारण बहुतों को मारने का प्रयत्न किया' कह जातक का मेल बैठाया। उस समय खण्ड-हाल देवदत्त था। गोतमी देवी महामाया। चन्द्रा राहुल माता। वामुल राहुल। सेला उप्पलवण्णा। सूर वाम गोत्त कस्सप। चन्द्र सेन मोग्गलान। मुरिय कुमारो सारिपुत्त। चन्द्र राजा तो मैं ही था।

५४३. भूरिदत्त जातक

'यं किञ्चि रतनं अत्थि....' यह शास्ता ने श्रावस्ती में विहार करते समय उपोसथ-व्रत करने वाले उपासकों के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वे उपोसथ-व्रत रखने के दिन प्रातः काल ही व्रत का अधिष्ठान कर, दान दे, भोजनान्तर हाथ में गन्ध माला आदि ले, जेतवन जा, धर्म-श्रवण के समय एक ओर बैठे। शास्ता ने धर्म सभा में आ, अलंकृत बुद्धासन पर बैठ, भिक्षु संघ की ओर देखा। भिक्षु आदि जिनके बारे में भी बात चीत पैदा होने को होती है, उन्हीं से तथागत वार्तालाप करते हैं। इस लिए यह जान कर कि आज उपासकों के बारे में पूर्व-चर्य्या सम्बन्धी धर्म-कथा चलेगी, शास्ता ने उपासकों से बातचीत करते समय पूछा—"उपासको! क्या उपोसथ-व्रतधारण किया है?" उनके "भन्ते! हाँ" कहने पर कहा, "उपासको! अच्छा किया। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है कि यदि तुमने मेरे समान बुद्ध उपदेष्टा आचार्य को पाकर उपोसथ-व्रत धारण किया है, पुराने पण्डितों ने आचार्य-हीन होने पर भी

बड़ी सम्पत्ति को छोड़ उपोसथ-व्रत किया।" शास्ता ने उनके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त ने राज्य करने के समय पुत्र को (उप?) राज्य दिया। जब उसने पुत्र का वैभव देखा तो उसे शंका हुई कि कहीं राज्य भी न ले ले। वह बोला,"तात! तू यहाँ से निकल, जहाँ इच्छा हो वहाँ जाकर रह और मेरे मरने पर आकर कुलागत राज्य ग्रहण करना।" उसने 'अच्छा' कह पिता को प्रणाम किया और निकल कर क्रमशः यमुना के तट पर पहुंचा, यमुना, समुद्र तथा पर्वत के बीच में पर्ण-शाला बना जंगल के फल-मूल खाकर रहने लगा।

उस समय समुद्र तटवर्ती नाग-भवन में एक ऐसी नाग-तरुणी रहती थी, जिसका पति मर गया था। उसने दूसरी स्वामी-वालियों का वैभव देखा तो राग के वशीभूत हो नाग-भवन से निकल समुद्र-तट पर विचरने लगी। वहाँ उसने राजपुत्र के पद-चिह्न देखे। वह उनका अनुसरण करती हुई पर्णशाला पहुंची। उस समय राज-पुत्र फल-मूल चुगने गया था। पर्णशाला में प्रवेश करने पर काठ की चौकी तथा अन्य चीजों को देखकर उसने सोचा कि यह किसी प्रव्रजित का निवास स्थान होगा। उसने तै किया कि वह परीक्षा करेगी कि वह श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित हुआ है वा नहीं? यदि श्रद्धा से प्रव्रजित हुआ होगा तो नैष्क्रमय की रुचि होने के कारण मेरे द्वारा अलंकृत शयनासन अङ्गीकार नहीं करेगा। यदि रागी होगा और श्रद्धा से प्रव्रजित नहीं हुआ होगा तो मेरे द्वारा तैयार की गई शैय्या पर ही लेट जायगा। तब इसे लेकर अपना स्वामी बना कर यहीं रहूँगी।

वह नागभवन गई और वहाँ से दिव्य-पुष्प तथा दिव्य सुगंधियाँ लेकर आई। फिर उसकी पुष्प-शैया सजा, पर्णशाला को पुष्प-मय बना, सुगंधित चूर्ण बिखेर, पर्णशाला को अलंकृत कर नागभवन ही गई। राजपुत्र शाम को लौटा तो पर्णशाला में प्रविष्ट होने पर जब उसने वह क्रिया देखी तो सोचने लगा कि यह शैया किसने तैयार की? फल-मूल खा चुकने पर उसे हुआ कि ओह फूलों की सुगंधी! शैय्या अच्छी तरह बिछाई गई है। श्रद्धा से प्रव्रजित न हुआ होने के कारण उसे

आनन्द आया। वह पुष्प शैय्या पर लेट गया और सो गया। दूसरे दिन सूर्योदय होने पर उठा और शाला को बिना ही झाड़-बुहारे फल-मूल के लिए चला गया।

नाग-कन्या ने आकर पुष्पों को कुम्हलाया हुआ देखा। सोचा—'यह रागी है। श्रद्धा से प्रव्रजित नहीं हुआ है। मैं इसे फंसा सकती हूं।' उसने पुराने फूल हटा दिये और दूसरे फूल लाकर शैया तैय्यार की, पर्णशाला सजाई और टहलने की जगह फूल बिखेर कर नाग-भवन ही चली गई। वह उस दिन भी पुष्प-शैय्या पर ही सोया। दूसरे दिन सोचने लगा—"इस पर्णशाला को कौन सजाती है?' वह फल-मूल के लिये न जाकर पर्णशाला से थोड़ी ही दूर पर छिप कर खड़ा रहा। वह भी बहुत-सी सुगंधियाँ तथा पुष्प ले आश्रम आई।।

राजपुत्र सुन्दर नाग-तरुणी को देखते ही उस पर आसक्त हो गया। उसने बिना अपने आप को प्रकट किये, उसके पर्णशाला में दाखिल होकर शैय्या तैयार करने पर पूछा—"तू कौन है?"

"स्वामी नाग-तरुणी।"

"तेरा स्वामी है! अथवा नहीं है?"

"मेरा स्वामी नहीं है। मैं विधवा हूँ। आप कहाँ रहते हैं?"

"मैं वाराणसी नरेश का पुत्र हूं। मेरा नाम ब्रह्मदत्त कुमार है। तू नाग-भवन छोड़कर क्यों घूम रही है?"

"मैं स्वामी वाली नाग-तरुणियों का वैभव देख राग के कारण उत्कण्ठित हूँ। वहाँ से निकल स्वामी की खोज में भटक रही हूँ।"

"मैं भी श्रद्धा से प्रव्रजित नहीं हुआ हूँ। पिता द्वारा निकाल दिया गया हूँ। यहाँ आकर रहता हूँ। तू चिन्ता न कर। मैं तेरा स्वामी हो जाऊंगा। दोनों यहाँ इकट्ठे रहेंगे।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

इसके बाद वे दोनों जने वहाँ इकट्ठे रहने लगे। उसने अपने प्रताप से अत्यन्त मूल्यवान घर बनवाया और अत्यन्त मूल्यवान पलंग मंगवाकर उस पर बिछावन बिछवाया। उसके बाद से फल-मूल का खाना बन्द हो गया। दिव्य खाना-पीना

ही होने लगा। आगे चलकर नाग-तरुणी ने पुत्र को जन्म दिया। उसका साग
ब्रह्मदत्त नाम रखा गया। उसके पांवों से चलने लगने पर नाग-तरुणी ने पुत्री को
जन्म दिया। समुद्र तट पर जन्म होने से उसका नाम समुद्र-जन्मा रखा गया।

एक वाराणसी निवासी बनचर वहाँ आ पहुंचा। उसका स्वागत-सत्कार किया गया। उसने राज-पुत्र को पहचान लिया और कुछ दिन वहाँ रहकर "देव! मैं आपके यहाँ रहने की बात राज-कुल को सूचित करूंगा" कह, निकल कर, वाराणसी गया। उस समय राजा मर गया था। अमात्य उसका शारीरिक कृत्य समाप्त कर सातवें दिन इकट्ठे हुए और सोचने लगे, "बिना राजा के राज्य नहीं रहता। राज-पुत्र कहाँ है और है भी अथवा नहीं है, पता नहीं? पुष्प-रथ विसर्जित करके राजा का निर्णय करेंगे।" उसी समय बनचर ने नगर में प्रवेश कर वह बात सुन, अमात्यों के पास जाकर कहा, "मैं राज-पुत्र के पास तीन-चार दिन रह कर आया हूँ।"

यह सुन अमात्यों ने उसका सत्कार किया और उसे मार्ग-दर्शक बना वहाँ पहुँचे। वहाँ उनका स्वागत सत्कार हुआ। उन्होंने राजा के मर जाने की बात कह निवेदन किया, "देव! राज्य संभालें।" वह नाग-कन्या के मन की बात जानने के लिये उसके पास गया। बोला—"भद्रे! मेरे पिता का देहान्त हो गया। आमात्य मुझे छत्र धारण कराने के लिये आये हैं। भद्रे चलें। दोनों मिलकर बारह योजन की वाराणसी पर राज्य करेंगे। तू सोलह हजार स्त्रियों की पटरानी होगी।"

"स्वामी! हम नहीं जा सकते।"

"किस कारण?"

"हम घोर विषैली हैं, शीघ्र क्रोध आता है, थोड़ी बात पर भी गुस्सा हो जाती हैं। सपत्नि का क्रोध भयानक होता है। यदि मैंने कुछ देख-सुनकर क्रोध की आँख से देखा तो वह भुस की मुट्ठी की तरह बिखर जायेंगी। इस कारण से मैं नहीं जा सकती।"

राजपुत्र ने अगले दिन भी आग्रह किया। वह बोली—"मैं किसी भी तरह नहीं जा सकती। हाँ यह मेरे पुत्र नाग-कुमार हैं। यह तेरे सम्बन्ध से पैदा हुए हैं। ये मनुष्य-जाति के हैं। यदि तेरा मेरे प्रति स्नेह है तो इनके सम्बन्ध में

अप्रमादी रहना। ये पानी के जीव हैं, सुकुमार हैं। रास्ते चलते धूप-हवा के कष्ट से मर भी जा सकते हैं। एक नौका उत्कीर्ण करवाकर, पानी से भर, उसमें इन्हें जल-क्रीड़ा करते हुए ले जाना। नगर में भी भूमि के अन्दर ही पुष्पकरिणी बनवाना। इस प्रकार इन्हें कष्ट न होगा।"

यह कह राजपुत्र को प्रणामकर और उसकी प्रदक्षिणा कर पुत्रों का आलिंगन किया। फिर उन्हें स्तनों के बीच लिटा उनका मुँह चूमकर उन्हें राजपुत्र को सौंपा। तब रो-पीटकर वहीं अन्तर्धान हो नाग-भवन ही गई। राज-पुत्र खिन्न मन से अश्रु-पूर्ण नेत्रों सहित निवास-स्थान से निकला और आँखों के आँसू पोंछ कर अमात्यों के पास आया। उन्होंने वहीं उसका अभिषेक किया और बोले—"देव! अपने नगर चलें।" तो शीघ्र ही नौका उत्कीर्ण कर उसे गाड़ी पर चढ़ाओ और उसमें पानी भरकर पानी पर नाना वर्ण तथा गन्ध के फूल विखेर दो। मेरे पुत्रों का मूल पानी में है। वे उसमें क्रीड़ा करते हुए सुख पूर्वक जायेंगे।" अमात्यो ने वैसा ही किया। राजा ने वाराणसी पहुंच, अलंकृत नगर में प्रवेश किया और सोलह हजार नर्तकियो तथा अमात्य आदि के बीच बैठ सप्ताह भर तक महापान पिया और पुत्रों के लिए पुष्करिणी बनवाई। वे लगातार वहीं क्रीड़ा करते रहे।

एक दिन जब पुष्करिणी में पानी छोड़ा जा रहा था एक कछुआ आ गया। जब उसे निकलने की जगह नहीं मिली तो वह पुष्करिणी की तह में पड़ रहा। बच्चों के खेलने के समय पानी से सिर बाहर निकाला, किन्तु उन्हें देख फिर पानी में नीचे चला गया। वे उसे देख डरे और पिता के पास जाकर कहा, "तात! पुष्करिणी में एक यक्ष हमें त्रास देता है।" राजा ने आदमियों को आज्ञा दी, "जाओ उसे पकड़ो।" उन्होंने जाल फेंककर कछुवे को पकड़ लिया और लेजाकर राजा को दिखाया। कुमार उसे देख चिल्लाये। "तात! यह पिशाच है।" राजा को पुत्र-स्नेह के कारण कछुवे पर क्रोध आया। उसने आज्ञा दी—"जाओ इसे दण्ड दो।" वहाँ कुछ का प्रस्ताव था कि यह राज-वैरी है, इसे ऊखल में डालकर मूसलो से कूटकर चूर्ण-विचूर्ण कर देना चाहिए। कुछ का प्रस्ताव था कि तीन बार पकाकर खाना चाहिये। कुछ का प्रस्ताव था कि अङ्गारों पर सेकना चाहिये। कुछ का प्रस्ताव था कि इसे कड़ाही में ही पकाना चाहिये। किन्तु एक जल-भीरु

अमात्य ने प्रस्ताव किया कि—'इसे यमुना में गढ़े में डालना चाहिये।' वहाँ यह महान-विनाश को प्राप्त होगा। इससे बढ़कर इसे दण्ड नहीं दिया जा सकता।" कछुए ने उसकी बात सुनी तो सिर निकाल कर कहा—"भो! मेरा क्या अपराध है, जिससे मुझे ऐसा दण्ड दिया जा रहा है। मैं दूसरे दण्ड सह सकता हूँ किन्तु यह अत्यन्त कठोर है। ऐसा मत सोचें।" यह सुना तो राजा ने कहा "नहीं, यही दण्ड दिया जाना चाहिए।" उसने उसे यमुना में गढ़े में फिकवा दिया। वह एक नाग-भवन-गामी प्रवाह में पड़कर नाग-भवन जा पहुंचा।

उस बाढ़ में धृतराष्ट्र नाग-नरेश के पुत्र खेल रहे थे। उन्होंने उसे देखा तो बोले, "इस दास को पकड़ो।" वह सोचने लगा—"मैं वाराणी-नरेश के हाथ से मुक्त हो कर इन दारुण नागों के हाथ आ फंसा। अब इनसे किस उपाय से मुक्त होऊं?" उसे सूझा, एक उपाय है। वह झूठ बोला, और कहा, "तुम धृतराष्ट्र नाग-नरेश की संतान होकर ऐसी बात क्यों करते हो। मैं चित्त-चूल नाम का कछुआ हूं। वाराणसी-नरेश का दूत हूँ। धृतराष्ट्र के पास आया हूँ। हमारा राजा धृतराष्ट्र को अपनी कन्या देना चाहता है। उसने मुझे भेजा है। मेरी उससे भेंट कराओ।"

वे प्रसन्न हुए और उसे राजा के पास लेजाकर वह बात कही। राजा ने उसे बुलवाया, कहा,"लाओ दिखाओ।" उसे देखते ही वह असन्तुष्ट हुआ। बोला "क्या इस प्रकार के निकृष्ट शरीर वाले दूत-कर्म कर सकते हैं?" यह बात सुनी तो कछुआ बोला—"क्या राजा के राज-दूत को ताड़ जैसा बड़ा होना चाहिए? यह गौण बात है कि शरीर छोटा है वा बड़ा है। असली बात जहाँ जाय वहाँ का कार्य ही है। महाराज! हमारे राजा के पास बहुत से दूत हैं। स्थल पर कोई काम हो तो आदमी करते हैं। आकाश में पक्षिगण- और जल में मैं। मेरा नाम चित्त-चूल है। मैं पदाधिकारी हूँ। राजा का प्रिय हूं। मेरा परिहास न करें।" इस प्रकार उसने अपने गुणों का वर्णन किया।

उसे धृतराष्ट्र ने पूछा। राजा ने तुझे किस उद्देश्य से भेजा है? "महाराज, मुझे राजा ने यह कहा कि मैंने सारे जम्बुद्वीप के राजाओं के साथ मैत्री-धर्म स्थापित किया है। अब मैं धृतराष्ट्र राजा के साथ मैत्री करने के लिए अपनी समुद्र-जा नाम की कन्या दूंगा—यह कह मुझे भेजा है। आप विलम्ब न कर मेरे साथ ही परि

षद भेज, दिन निश्चित कर कुमारी को ग्रहण करें।" उसने सन्तुष्ट हो, सत्कार कर उसके साथ चार नाग-तरुण भेजे, "जाओ, राजा की बात सुन, दिन निश्चित कर के आओ।"

उन्होंने 'अच्छा' कहा और कछुवे को ले नाग-भवन से निकले। यमुना तथा वाराणसी के बीच में एक कमल-तालाब देखकर किसी उपाय से कछुवे की भाग निकलने की इच्छा हुई। इसलिये वह बोला—"भो नाग-तरुणो! हमारा राजा और उसके पुत्र तथा पत्नी जब मुझे पानी में से होकर राज-भवन आया देखते हैं तो कहते हैं—हमें कँवल दो। हमें भिसें दो। मैं उनके लिये ये लेता हूँ। तुम मुझे छोड़कर, मेरे बिना ही पहले से राजा के पास जाओ। मैं तुम्हें वहीं मिलूँगा।" उन्होंने उसका विश्वास कर उसे छोड़ दिया। वह वहाँ एक ओर जा छिपा नाग-तरुणों ने भी जब उसे न देखा तो समझा कि वह राजा के पास चला गया होगा। वे ब्रह्मचारी का रूप धारण कर राजा के पास पहुंचे।

राजा ने स्वागत-सत्कारकर पूछा—"कहाँ से आये?"

"महाराज, धृतराष्ट्र के पास से।"

"किस कारण से?"

"महाराज! हम उसके दूत हैं। धृतराष्ट्र ने आपका कुशल-समाचार पूछा है। आप जो चाहे, सो वह आपको देने को तैयार हैं। अपनी समुद्र-जा नामकी कन्या को हमारे राजा की चरण-सेविका बना दें।" यह अर्थ प्रकाशित करने के लिये पहली गाथा कही—

यं किञ्चि रतनं अत्थि धतरट्ठनिवेसने,
सब्बानि ते उपायन्तु धीतरं देहि राजिनो ॥१॥

[धृतराष्ट्र के घर में जितने भी रतन हैं, वे तुझे मिलें। तू (हमारे) राजा को (अपनी) लड़की दे ॥१॥]

यह सुन राजा ने दूसरी गाथा कही—

न नो विवाहो नागेहि कतपुब्बो कुदाचनं,
तं विवाहं असंयुत्तं कथं अम्हे करोमसे ॥२॥

[नागों के साथ कभी हमने पहले विवाह नहीं किया। यह अयोग्य विवाह हम कैसे करेंगे ? ॥२॥]

यह सुना तो नाग-तरुणों ने क्रोधित हो राजा को धमकाया, "यदि धृतराष्ट्र के साथ सम्बन्ध करना अयोग्य है तो अपने चित्तसूल नाम के सेवक को "समुद्रजा धीता दूंगा" कहकर हमारे राजा के पास क्यों भेजा ? इस प्रकार भेजकर अब हमारे राजा का अपमान करता है ! हम देखेंगे कि ऐसा करनेवाले के साथ हमें क्या व्यवहार करना चाहिये? हमारा नाम नाग है।" उन्होंने दो गाथायें कहीं—

जीवितं नून ते चत्तं रट्ठं वा मनुजाधिप,
नहि नागे कुपितम्हि चिरं जीवन्ति तादिसा ॥३॥
यो त्वं देव मनुस्सेसु इद्धिमंतं अनिद्धिमा,
वरुणस्स नियं पुत्तं यामुनं अतिमञ्ञसि ॥४॥

[हे राजन् ! तूने निश्चय से जीवन अथवा राष्ट्र का त्याग कर दिया है। नाग के कुपित हो जाने पर तुम्हारे जैसे अधिक काल तक जीते नहीं रहते ॥३॥ हे देव ! तू मनुष्यों में ऋद्धि-रहित होकर ऋद्धिमान, यमुनोत्पन्न, वरुण के अपने पुत्र का अपमान करता है ॥३ ॥]

तब राजा ने दो गाथायें कहीं—

नातिमञ्ञामि राजानं धतरट्ठं यसस्सिनं,
धतरट्ठोहि नागानं बहुन्नम्पि इस्सरो ॥४॥
अहि महानुभावो पि न मे धीतरमारहो,
खत्तियोव विदेहानं अभिजाता समुद्दजा ॥५॥

[मैं यशस्वी धृतराष्ट्र का अपमान नहीं कर रहा हूँ। धृतराष्ट्र बहुत से नागों का 'ईश्वर' है। वह सांप निस्सन्देह वड़े प्रपातवाला है, किन्तु वह मेरी लड़की के योग्य नहीं है। मेरी समुद्रजा कन्या के लिये विदेहों का क्षत्रिय ही योग्य है ॥५ ॥]

नाग-तरुणों की इच्छा हुई कि उसे वहीं फुँकार से मार डालें। किन्तु, उन्होंने सोचा कि हम दिन निश्चय करने के लिये भेजे गये हैं, हमारे लिये ऐसा करना योग्य नहीं। हम जाकर राजा को कहेंगे और तब अपना कर्त्तव्य जानेंगे। यह सोच वे वहीं अन्तर्धान हो गये। राजा ने पूछा, "तात ! क्या लड़की मिली ?" उन्होंने

क्रोधित हो उत्तर दिया, "देव ! हमें बिना मतलब ही आप जहाँ-तहाँ भेजते हैं ? यदि हमारा मरण चाहते हैं, तो यहीं मार डालें। वह तुम्हें गालियाँ देता है, परिहास करता है। जात्याभिमान के कारण अपनी लड़की को ऊंचा उठाता है।" राजा ने जो कहा था और जो नहीं कहा था, वह सब कह उन्होंने उसका क्रोध जाग्रत किया। उसने अपनी परिषद को इकट्ठा होने की आज्ञा देते हुए कहा—

कम्बलस्सतरा उट्ठेन्तु,
सब्बे नागे निवेदय,
बाराणसिं पवज्जन्तु
माचकिञ्चि विहेठयुं ॥६॥

[कम्बलस्सतरा नाग उठकर तैयार हों। सभी नागों को कहें कि वाराणसी चलें। हाँ किसी को कष्ट न दें ॥६॥]

तब उन नागों ने सोचा, "यदि किसी मनुष्य को कष्ट नहीं देना है, तो हम जाकर क्या करेंगे ?" उन्होंने "यह करो, मैं भी यह करूंगा" कहते हुए दो गाथायें कही —

निवेसनेसु सोब्भेसु रथिया चच्चरेसुच,
रुक्खग्गेसु च लम्बन्तु वितता तोरणेसु च ॥७॥
अहम्पि सब्बसेतेन महता सुमहं पुरं,
परिक्खिपिस्सं भोगेहि कासीनं जनयं भयं ॥८॥

[घरों में, पुष्करणियों में, रास्तों के चौराहों पर, पेड़ों पर और दरवाजों पर फैल-फैल कर लटक जाओ ॥७॥ मैं भी अपने सर्व-श्वेत बड़े शरीर को लेकर फनों से काशी के लोगों को भयभीत करता हुआ बड़े काशी-नगर को घेर लूंगा ॥८॥]

नागों ने वैसा ही किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तस्स तं वचनं सुत्वा उरगानेकवण्णिनो,
बाराणसिं पवज्जिंसु न च किञ्चि विहेठयुं ॥९॥
निवेसनेसु सोब्भेसु रथिया चच्चरेसु च,
रुक्खग्गेसु च लम्बिंसु वितता तोरणेसु च ॥१०॥

ते दिस्वान लम्बन्ते पुथु कंदिंसु नारियो,
नागे सोण्डिकते दिस्वा पस्ससन्ते मुहुं मुहुं ॥११॥
बाराणसी पव्यधीता अतुरा समपज्जथ,
बाहा पग्गट्ह पक्कन्दुं धीतरं देहि राजिनो ॥१२॥

[उसका यह कहना सुनकर अनेक वर्ण के नागों ने वाराणसी में प्रवेश किया। उन्होंने किसी को कष्ट नहीं दिया॥ ९॥ वे घरों में, पुष्करणियों में, रास्तों के चौराहों पर, पेड़ों पर और दरवाजों पर फैल-फैल कर लटक गये॥१०॥ उन सर्पों को बार बार फन फैलाकर देखते तथा लटकते हुए जब नारियों ने देखा तो वे बहुत चिल्लाने लगीं॥११॥ वे सभी वाराणसी (नरेश के पास) आई और बाहों को पीट-पीट कर कहने लगीं कि धृतराष्ट्र को लड़की दो॥१२॥]

उसने जब लेटे ही लेटे नगर-वासियों तथा अपनी भार्याओं का विलाप सुना और जब उसे चारों नाग-तरुणों ने धमकाया तो उसने मृत्यु-भय के मारे तीन बार कहा, "मैं अपनी समुद्र-जायी कन्या धृतराष्ट्र को देता हूँ।" यह सुन सभी नाग राज गव्यूति-मात्र पीछे हट गये और एक देव-नगर का निर्माण कर भेंट भिजवाई कि लड़की को भेजे। राजा ने उनकी भेंट ली और उन्हें यह कह कर बिदा किया कि तुम जाओ, मैं लड़की अमात्यों के साथ भेजूंगा। उन्हें बिदा कर चुकने पर वह लड़की को ऊपर महल पर ले गया और झरोखा खोलकर बोला, "देख यह अलंकृत नगर है। तू इसके राजा की पटरानी होगी। नगर दूर नहीं है। मन न लगने पर यहाँ आ सकेगी। तुझे इस नगर में जाना है।" इस प्रकार उसे समझा कर, सिर से स्नान करवा, सभी अलंकारों से अलंकृत कर, पर्देदार रथ पर चढ़ा, अमात्यों के साथ भेजा। नागराजाओं ने अगवानी कर बहुत सत्कार किया। अमात्य नगर में गये, उसे लड़की सौंपी और बहुत सा धन लेकर वापिस लौटे। राज-कन्या को ऊपर महल पर ले जाया गया और अलंकृत दिव्य शैया पर लिटाया गया। उसी समय नाग-तरुणियों ने छोटा रूप धारण कर मानवी-सेविकाओं की तरह उसे घेर लिया।

दिव्य शैय्या पर लेटते ही उसे दिव्य-स्पर्श के कारण नींद आ गई। धृतराष्ट्र नाग-परिषद सहित उसे ले वहाँ से अन्तर्धान हो नाग-भवन में ही जाकर प्रकट हुआ।

राज-कन्या की आँख खुली तो उसने अलंकृत शयनासन, अन्य स्वर्णमय तथा मणिमय प्रासाद आदि, उद्यान, पुष्करणियाँ ठीक देव-नगर की भान्ति देखीं। इस नाग-भवन को देखकर उसने कुबड़ी आदि सेविकाओं को पूछा, "यह नगर अत्यन्त अलंकृत है। यह हमारे नगर जैसा नहीं है। यह किसका नगर है?"

"देवी! यह तेरे स्वामी का नगर है। अल्प-पुण्यों को यह सम्पत्ति नहीं मिलती तुझे महा-पुण्यवान् होने से मिली है।"

धृतराष्ट्र ने भी पाँच सौ योजन के नाग-भवन में मुनादी करा दी, "जो समुद्र-जायी को सर्प रूप दिखायेगा उसे राज-दण्ड मिलेगा।" इसलिये कोई एक भी उस पर अपना सर्प-रूप प्रकट न कर सका। वह उसे मनुष्य-लोक ही समझ, उसके साथ प्रसन्नता-पूर्वक प्रेमपूर्वक रही।

नगर काण्ड समाप्त

आगे चलकर धृतराष्ट्र से उसने गर्भ धारण किया और पुत्र को जन्म दिया। प्रिय-दर्शन होने से उसका नाम सुदर्शन रखा गया। फिर दूसरे पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम दत्त रखा गया। वह बोधिसत्व था। फिर एक को जन्म दिया। उसका सुभग नाम रखा गया। और भी एक को जन्म दिया। उसका नाम अरिट्ठ रखा गया। इस प्रकार चार पुत्रों को जन्म देकर भी वह यह न जान सकी कि वह नाग-भवन में है।

एक दिन अरिट्ठ को बताया गया, तेरी मां मानुषी है, नागिन नहीं। अरिट्ठ ने सोचा, मैं इसकी जाँच करूंगा। एक दिन स्तन-पान करते समय ही उसने सांप की शक्ल बना माता की पीठ पर पूंछ का प्रहार दिया। उसने उसका सर्प-शरीर देखा तो डर के मारे चिल्लायी और उसे जमीन पर फेंकते समय नाखून से उसकी आँख फोड़ दी। उसमें से रक्त बहने लगा। राजा ने उसका स्वर सुना तो पूछा, "यह क्यों रोती है?" उत्तर मिला, "अरिट्ठ की करतूत देखकर।" वह उसे धमकाता हुआ आया, "इस दास को पकड़ो और जान से मार डालो।" राज-कन्या ने जब देखा कि वह क्रोधित हो गया है तो पुत्र-स्नेह के कारण बोली, 'देव! मेरे पुत्र की आंख जाती रही है। इसे क्षमा कर दें।" जब यह ऐसा कहती है तो क्या किया जा सकता

है, सोच राजा ने उसे क्षमा कर दिया। उस दिन उसे पता लगा कि यह नाग-भवन है। तब से अरिट्ठ का नाम काणा-अरिट्ठ हो गया। चारों पुत्र बड़े हो गये।

उनके पिता ने उन्हें सौ सौ योजन का राज्य दे दिया। बड़ा ठाट-बाट रहा। सोलह सोलह हजार नाग-कन्यायें गिर्द हो गई। पिता के पास सौ योजन भर का ही राज्य रह गया। तीनों पुत्र महीने-महीने माता-पिता को देखने आते। बोधिसत्व प्रत्येक पन्द्रहवें दिन आता। नाग-भवन में यदि कोई प्रश्न पैदा होता तो वही उसका हल करता। वह उसके साथ गरुड़ महाराज की भी सेवा में जाता। वहाँ भी यदि कोई प्रश्न पैदा होता तो वही उसका समाधान करता।

एक दिन जब नाग-परिषद के साथ गरुड़ त्रयोत्रिंशपुर में शक्र के गिर्द बैठा था तो देवताओं के बीच में प्रश्न पैदा हुआ। कोई उसका उत्तर नहीं दे सका। आसन पर पालथी मारे बैठे बोधिसत्व ने ही शंका समाधान किया। देवराजा ने उसकी दिव्य गंध-पुष्पों से पूजा की और कहा, "देव! तू पृथ्वी समान विपुल प्रज्ञा से युक्त है। अब से तेरा नाम भूरि-दत्त हो गया।" उसने उसका नाम भूरिदत्त ही कर दिया।

इसके बाद से जब वह शक्र की सेवा में जाता तो अलंकृत वैजयन्त प्रासाद, देवप्सरायें तथा अतिमनोहर शक्र सम्पत्ति देखता। उसे देव-लोक अच्छा लगने लगा और उसने सोचा, "यह मेण्डक-भक्षक बने रहने में क्या है! नाग-भवन जाकर उपोसथ-व्रत ग्रहण कर इस देवलोक में उत्पन्न होने का कारण करूंगा।" यह सोच वह नाग-भवन गया और माता-पिता से अनुज्ञा माँगी—"माताजी, पिताजी, उपोसथ व्रत करूंगा।" "अच्छा तात कर। किन्तु बाहर न जाकर यहीं किसी एकान्त विमान में कर। बाहर जाने पर नागों का बहुत भय है।"

उसने अच्छा कह स्वीकार किया और वहीं शून्य विमान में आराम-उद्यानों में उपोसथ-व्रती होकर रहने लगा।

उसे नाना वाद्य हाथ में लिये नाग-कन्यायें घेर लेती। उसने सोचा, यहाँ मेरा उपोसथ-व्रत पूरा नहीं होगा। मैं मनुष्यों में जाकर व्रत पूरा करूंगा। उसे भय हुआ कि कहीं माता-पिता रोक न दें। इसलिये उसने उन्हें सूचना नहीं दी। उसने अपनी भार्या को बुलाकर कहा, "भद्रे मैं मनुष्यों में जाता हूँ। वहाँ यमुना तट पर

महान्यग्रोध-वृक्ष है। उससे थोड़ी ही दूर पर वाम्वी के ऊपर फन रखकर चतुरङ्ग सम्पूर्ण व्रत का अधिष्ठान कर वहीं पड़े रहकर उपोसथ-व्रत करूंगा। सारी रात पड़े रहकर उपोसथ-व्रत कर चुकने पर, अरुणोदय के समय तुममें से दस दस जनी बारी बारी से हाथ में बाजा ले, मेरे पास आकर और पुष्पों तथा सुगन्धी से मेरी पूजा कर, गा-नाचकर मुझे नाग-भवन लिवा जाना।" इतना कह कर वह वहाँ पहुंचा और वाम्वी के उपर फन को रख संकल्प किया कि जो कोई मेरी चमड़ी, नसें, हड्डी अथवा रक्त चाहे ले जाये। इस प्रकार चारों अङ्गों वाले उपोसथ-व्रत का अधिष्ठान कर, हलकी मूठ जितना शरीर बना, वहाँ पड़े रहकर उपोसथ-व्रत किया। अरुणोदय होते ही नाग-कन्यायें जाकर आज्ञा के अनुसार आचरण कर उसे नाग-भवन ले आतीं।

इस प्रकार उसे उपोसथ-व्रत करते-करते बहुत समय बीत गया। उस समय वाराणसी-द्वार ग्रामवासी एक ब्राह्मण सोमदत्त नाम के पुत्र के साथ जंगल जाता था और काँटा, यंत्र, फंदा तथा जाल फैलाकर, मृगों को मार, वैहंगी पर मांस रख, वेचकर जीविका चलाता था।

एक दिन जब उसे गोह-बच्चे तक का मांस नहीं मिला तो उसने कहा—"तात! सोमदत्त यदि खाली हाथ जायेंगे तो तेरी माता क्रुद्ध होगी। कुछ न कुछ लेकर ही जायें।" जिधर बोधिसत्व पड़ा था वह उस बाम्बी की ओर गया और वहाँ उसने पानी पीने के लिये गये मृगों के पद-चिन्ह देखे। उन्हें देख वह बोला, "तात! मृग मार्ग दिखाई देता है। तू रुक! मैं पानी के लिये आने वाले मृग को बींधूंगा।" वह धनुष लेकर मृगों को अघोरता हुआ एक वृक्ष के नीचे खड़ा हुआ।

संध्या समय एक मृग पानी पीने के लिये आया। उसने उसे बींध दिया। मृग वहाँ गिरा नहीं। बाण-वेग से भयभीत हो लहु चुआता हुआ भागा। पिता-पुत्र ने उसका पीछा किया। जहाँ वह गिरा था, वहां से उसका मांस ले, आरण्य से निकल सूर्यास्त के समय उस न्यग्रोध-वृक्ष के नीचे पहुंचे। उन्होंने सोचा, "अब असमय हो गया। जा नहीं सकते। यहीं रहेंगे।" इसलिये मांस को एक ओर रख वे वृक्ष पर चढ़ गये और शाखाओं में पड़ रहे। ब्राह्मण बहुत सवेरे उठा और उसने मृगों की आवाज सुनने के लिये कान लगाया। उस समय नाग-कन्याओं ने

आकर बोधिसत्व के लिये आसन बिछाया। उसने नाग-शरीर का लोप कर दिया और सभी अलंकारो से सुसज्जित दिव्य शरीर का निर्माण कर शक्र की तरह पुष्पासन पर बैठा। नाग-तरुणियों ने भी गन्ध मालादि से उसका पूजन किया और बाजे बजा नृत्य-गीत का प्रदर्शन किया।

ब्राह्मण ने आवाज सुनी तो उसकी इच्छा हुई कि पता लगाये कि यह कौन है? उसने 'हे पुत्र' कह कर पुत्र को जगाना चाहा। जब नहीं जगा सका तो सोचा, 'थका होगा, सोता रहे, मैं ही जाता हूँ।' वह पेड़ से उतर उसके पास गया। नाग-तरुणियाँ उसे देख बाजों सहित अन्तर्धान हो नाग-भवन जा पहुंची। अकेला बोधिसत्व ही रह गया। ब्राह्मण ने उसके पास खड़े हो, पूछते हुए दो गाथायें कहीं—

पुप्फाभिहारस्स वनस्स मज्झे
को लोहितक्खो विहतंतरंसो,
का कम्बुकायूरधरा सुवत्था
तिट्ठन्ति नरियो दस वन्दमाना॥१॥
को त्वं ब्रहाबाहु वनस्स मज्झे
विरोचसी घतसित्तोव आग्गि,
महेसक्खो अञ्ञतरोसि यक्खो
उदाहु नागोसि महानुभावो॥२॥

[इस वन में फूलों से लदा हुआ, लाल-लाल आँखों वाला चारों ओर प्रकाश फैलाता हुआ तू कौन है? और ये स्वर्णाभरणों से अलंकृत, सुवस्त्रधारिणी कौन दस नारियाँ हैं जो हाथ जोड़े खड़ी हैं॥१॥ हे विशालबाहु! तू कौन है जो घी पड़ी हुई आग की तरह वन में प्रकाशमान है। क्या तू कोई महान् यक्ष है अथवा कोई बड़े प्रतापवाला नाग? ॥२॥]

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा, "यदि मैं शक्र आदि में से कोई एक हूँ', कहूँ तो भी यह ब्राह्मण विश्वास कर ही लेगा; किन्तु आज मुझे सत्य ही बोलना चाहिये।" उसने अपने नाग-राज होने की बात प्रकट करने के लिये कहा—

नागोहमस्मि इद्धिमा तेजसी दुरतिक्कमो,
डसेटयं तेजसा कुद्धो फीतं जनपदं अपि॥३॥

समुद्दजा हि मे माता धतरट्ठो च मे पिता,
सुदस्सनकणिट्ठोस्मि भूरिदत्तोति मं विदु॥४॥

[मैं ऋद्धिवान्, तेजस्वी, दुर्दमनीय नाग हूं। क्रुद्ध होने पर मैं अपने तेज से स्मृद्ध जनपद को भी डस लेता हूँ॥३॥ मेरी माता समुद्रजा और पिता का नाम है धृतराष्ट्र। मैं सुदर्शन का छोटा भाई हूँ और मेरा नाम भूरिदत्त है॥४॥]

यह कह बोधिसत्व ने सोचा, "यह ब्राह्मण चण्डाल है, कठोर है, सपेरे को सूचना देकर मेरे उपोसथ-व्रत में बाधा भी डाल सकता है। क्यों न मैं इसे नाग-भवन ले जा, बहुत सा ऐश्वर्य दे अपने उपोसथ-कर्म को चिर-स्थायी करूं?" वह बोला, "ब्राह्मण! तुझे बहुत ऐश्वर्य दूंगा। आ सुन्दर नाग-भवन चलें।" "स्वामी! मेरा पुत्र है। उसके आने पर आऊंगा।" तब बोधिसत्व ने 'ब्राह्मण, जा, उसे लेकर आ' कहते हुए अपने निवास-स्थान का पता बताते हुए कहा—

यं गम्भीरं सदावट्टं रहदं भेस्मं अवेक्खसि,
एस दिब्यो ममावासो अनेकसतपोरिसो॥५॥
मयूरकोञ्चाभिरुदं नीलोदं वनमज्झतो,
यमुनं पविस मा भीतो खेमं वत्तवतं सिवं॥६॥

[जो तुझे यह भयानक, गहरा, बड़ा भारी तालाब दिखाई देता है, यह सैकड़ों पुरुषा तालाब ही मेरा दिव्य निवास स्थान है। इसके तट पर मोर और क्रौंच पक्षी नाद करते हैं, इसका जल नीला है, यह वन के बीच से बहती है। हे ब्राह्मण! तू निर्भय होकर व्रतियों की निवास-स्थान, इस कल्याणकर नदी में प्रवेश कर॥५६॥]

ब्राह्मण गया और पुत्र को यह बात कह उसे ले आया। बोधिसत्व उन दोनों को लेकर यमुना-तट पर पहुंचा और कहा—

तत्थ पत्तो सानुचरो सहपुत्तेन ब्राह्मण,
पूजितो मटहं कामेहि सुखं ब्राह्मण वच्छसि॥७॥

[हे ब्राह्मण! वहाँ अनुचर पुत्र के साथ पहुंचने पर, मेरे द्वारा काम-भोग की सामग्री से पूजित होकर तू सुख-पूर्वक रहेगा॥७॥]

यह कह बोधिसत्व उन दोनों पिता-पुत्र को नाग-भवन ले गया। वहाँ उनका दिव्य जन्म हुआ। बोधिसत्व ने उन्हें दिव्य-सम्पत्ति दे चार चार सौ नाग-कन्यायें

दीं। उन्होंने महान् सम्पत्ति का उपभोग किया। बोधिसत्व भी अप्रमादी हो उपोसथ-व्रत करने लगे। हर आधे महीने पर माता-पिता की सेवा में जा, धर्म-कथा कह, वहीं से ब्राह्मण के पास जा, उसका कुशल-समाचार जान और उसे यह कह कि जिस चीज की आवश्यकता हो कहे तथा अनुद्विग्न हो रहे, वह सोमदत्त का कुशल-समाचार पूछ अपने निवासस्थान जाता।

पुण्य की कमी से ब्राह्मण वर्ष भर ही नाग भवन में रह उद्विग्न हो गया। उसने मनुष्य-लोक जाने की इच्छा की। उसे नाग-भवन नरक लगने लगा, अलंकृत प्रासाद कारागार और नाग-कन्यायें यक्षिणी प्रतीत होने लगीं। उसने सोचा, "मैं तो उद्विग्न हूँ। सोमदत्त के भी चित्त की बात जानूंगा।" वह उसके पास गया और बोला, "तात ! क्या उद्विग्न नहीं होता ?"

"उद्विग्न क्यों होऊं ? उद्विग्न नहीं हूं।"

"तात ! क्या तू उद्विग्न है ?"

ब्राह्मण बोला, "हाँ ! तात।"

"किस वजह से ?"

"तेरी माता तथा भाई-बहन का देखना न मिलने से। आ तात सोमदत्त चलें।"

उसने पहले तो कहा, 'नहीं जाता हूँ', किन्तु पिता के बार-बार कहने पर स्वीकार कर लिया। ब्राह्मण ने सोचा, "पुत्र के मन का तो पता लग गया। लेकिन यदि मैं भूरिदत्त से जाने की बात कहूँगा तो वह मुझे और भी ऐश्वर्य्य देगा। इस प्रकार मेरा जाना न हो सकेगा। इसलिये एक ढंग से उसके ऐश्वर्य्य की प्रशंसा कर उससे पूछूंगा कि "तू इस प्रकार की सम्पत्ति छोड़, मनुष्य-लोक जाकर उपोसथ-व्रत क्यों करता है ?" उसके "स्वर्ग के लिये" कहने पर उसे संकेत करूंगा कि जब तू इस प्रकार की सम्पत्ति छोड़ उपोसथ-व्रत करता है, तो हमारा क्या जो दूसरों का वध करके जीविका चलाते हैं ! मैं भी मनुष्य-लोक जा, रिश्तेदारों को देख, प्रव्रजित हो श्रमण-धर्म करूंगा।" उसने सोचा, 'इस प्रकार वह मुझे जाने की आज्ञा दे देगा।" एक दिन जब उसने जाकर पूछा, "ब्राह्मण ! क्या उद्विग्न तो नहीं है ?" तो 'तुम्हारे पास किसी चीज की कमी नहीं है' जैसी गमन-सम्बन्धी कोई बात न कह उसने आरम्भ से उसके ऐश्वर्य्य की ही बड़ाई करनी आरम्भ की—

समा समन्ता परितो बहुत तगरा मही,
इन्दगोपकसञ्छन्ना सोभति हरितुत्तमा ॥८॥
रम्मानि वनचेत्यानि रम्मा हंसूपकूजिता,
ओपुप्फपदमा तिट्ठन्ति पोक्खरञ्ञो सुनिम्मितो ॥९॥
अटंठसा सुकतत्थम्मा सब्बे वेलुरियामया,
सहस्स थम्भ पासादा पूरा कञ्ञाहि जोतरे ॥१०॥
विमानं उपपन्नोसि दिब्बं पुञ्ञेहि अत्तनो,
असम्बाधं सिवं रम्मं अच्चन्तसुखसंहितं ॥११॥
पञ्ञे सहस्सनेत्तस्स विमानं नाभिकंखसि,
इद्धि हि त्यायं विपुला सक्कस्सेव जुतीमतो ॥१२॥

[यह पृथ्वी चारों ओर से समतल है, इन्द्रगोपों से ढकी है और हरे-वर्ण से सुशोभित है ॥८॥ रमणीक वन हैं, हंसों के कूजन के कारण भी रमणीक हैं, सुनिर्मित पुष्करिणियां सुपुष्पित पद्मों से ढकी हैं ॥९॥ अठकोण सुनिर्मित स्तम्भ हैं, सभी विल्लौरमय हैं। हजारों स्तम्भोंवाले प्रासाद (नाग-) कन्याओं से देदिप्यमान हैं ॥१०॥ अपने पुण्य-कर्मों के कारण दिव्य विमान में उत्पन्न हुआ है, जो बाधा रहित है, जो कल्याणकर है, जो रमणीय है तथा जो अत्यन्त सुखदायक है ॥११॥ लगता है कि तू सहस्र-नेत्र इन्द्र के विमान की भी कामना नहीं करता है। तेरी ऋद्धि देदिप्यमान शक्र के समान ही विशाल है ॥१२॥]

यह सुन बोधिसत्व ने कहा, "ब्राह्मण ! ऐसी बात मत कह। शक्र के ऐश्वर्य के मुकाबले में हमारा ऐश्वर्य सुमेरु पर्वत के मुकाबले में सरसों के दाने के समान है। हम उसके परिचारक होने के भी योग्य नहीं हैं।" उसने गाथा कही—

मनसापि न पत्तब्बा आनुभावो जुतीमतो,
परिचारयमानानं सइन्दानं वसवत्तिनं ॥१३॥

[उस द्युतिमान का प्रताप मन से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता; उसके परिचारक वशवर्ती चारों महाराजाओं का भी ॥१३॥]

इतना कह, 'यह तेरा सहस्रनेत्र के विमान सदृश विमान है' सुनकर मुझे उसकी याद आ गई और अब मैं वैजयन्त की ही इच्छा से उपोसथ-व्रत करता हूँ', कहा और अपनी कामना प्रकट करने के लिये गाथा कही—

तं विमानं अभिज्झाय अमरानं सुखेसिनं,
उपोसथं उपवसन्तो सेमि वम्मिकमुद्धनि ॥१४॥

[सुख की कामना करने वाले उन देवताओं के विमान की कामना से ही मैं बाँबी के मुंह पर पड़ा रहकर उपोसथ-व्रत करता हूँ ॥१४॥]

यह सुन ब्राह्मण ने विचार किया कि अब मेरे लिये सुअवसर है। उसने प्रसन्न हो जाने की अनुज्ञा प्राप्त करने के लिये दो गाथायें कहीं—

अहञ्च मिगमेसानो सपुत्तो पाविसिं वनं,
तं मं मतं वा जीवं वा नाभिवेदेन्ति ञातका ॥१५॥
आमन्तये भूरिदत्तं कासिपुत्तं यसस्सिनं,
तया वो समनुञ्ञाता अपि पस्सेमु ञातके ॥१६॥

[मैं मृग की खोज करता हुआ सपुत्र वन में प्रविष्ट हुआ हूँ। मेरे सम्बन्धी यह भी नहीं जानते कि मैं मरा हूँ अथवा जीवित हूँ। मैं काशीराजकन्या के पुत्र यशस्वी भूरिदत्त को सम्बोधित करता हूँ। यदि तुम्हारी अनुज्ञा हो तो हम रिश्तेदारों से भेंट करें ॥१७-१८॥]

तब बोधिसत्व ने कहा—

एसोहि वत मे छन्दो यं वसेसि ममन्तिके,
नहि एतादिसा कामा सुलभा होन्ति मानुसे ॥१७॥
सचे त्वं न इच्छसे वत्थुं मम कामेहि पूजितो,
मया त्वं समनुञ्ञातो सोत्थिं पस्साहि ञातके ॥१८॥

[मेरी यही इच्छा है कि मेरे पास ही रहे। मनुष्य-लोक में इस प्रकार के काम-भोग सुलभ नहीं हैं ॥१७॥ यदि तू मेरे-द्वारा काम-भोग की सामग्री से पूजित होता हुआ भी इन वस्तुओं की इच्छा नहीं करता, तो तुझे मेरी अनुज्ञा है, तू जाकर अपने सम्बन्धियों से भेंट कर ॥१८॥]

ये दो गाथायें कह वह सोचने लगा, "यह मुझपर आश्रित रहकर सुखपूर्वक रहने की बात किसीसे नहीं कहेगा। मैं इसे सभी कामनाओं की पूर्ति करनेवाली मणि दूंगा।" उसने उसे वह देते हुए कहा—

धारयी मं मणिं दिव्यं पसुं पुत्ते च विन्दति,
अरोगो सुखितो होति गच्छेवादाय ब्राह्मण ॥१९॥

[इस मेरी मणि को धारण कर लेने से पशु तथा पुत्रों को प्राप्त करता है, निरोगी रहता है तथा सुखी रहता है। हे ब्राह्मण! इसे लेकर जा ॥१९॥]

तब ब्राह्मण ने गाथा कही—

कुसलं पटिनन्दामि भूरिदत्त वचो तव,
पब्बजिस्सामि जिण्णोस्मि न कामे अभिपत्थये ॥२०॥

[हे भूरिदत्त! तेरा कथन निर्दोष है। मैं उसका विरोध नहीं करता हूँ। किन्तु मैं अब प्रव्रजित होऊँगा। मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मुझे काम-भोगों की इच्छा नहीं है ॥२०॥]

बोधिसत्व का उत्तर था—

ब्रह्मचरियस्स भंगोहोति भोगोहि कारियं,
अविकम्पमानो एय्यासि बहुं दस्सामि ते धनं ॥२१॥

[ब्रह्मचारिय-व्रत का भङ्ग होने पर काम-भोग की सामग्री अपेक्षित होती है। ऐसा होने पर तू निस्संकोच चला आना। तुझे बहुत धन दूंगा ॥२१॥]

ब्राह्मण बोला—

कुसलं पटिनन्दामि भूरिदत्त वचो तव,
पुनपि आगमिस्सामि सचे अत्थोभविस्सति ॥२२॥

[हे भूरिदत्त! मैं तेरे निर्दोषवचन का अभिनन्दन करता हूँ। आवश्यकता होने पर फिर भी चला आऊगा ॥२२॥]

उसकी वहाँ रहने की अनिच्छा जान बोधिसत्व ने नाग-तरुणों को बुला ब्राह्मण को मनुष्य-लोक भिजवा दिया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इदं वत्वा भूरिदत्तो पेसोसि चतुरो जने,
एथ गच्छथ उट्ठेथ खिप्पं पापेथ ब्राह्मण ॥२३॥
तस्स तं वचनं सुत्वा उट्ठाय चतुरो जना,
पेसिता भूरिदत्तेन खिप्पं पापेसुं ब्राह्मणं ॥२४॥

[यह कह भूरिदत्त ने चारों जनों को भेजा—आओ, जाओ, उठो और ब्राह्मण को जल्दी पहुंचाओ ॥२३॥ उसका कहना सुन चारों जने उठे और भूरिदत्त द्वारा भेजे गये उन चारों जनों ने ब्राह्मण को (वाराणसी के रास्ते पर) पहुँचा दिया ॥२४॥]

ब्राह्मण ने भी "तात सोमदत्त ! यहाँ मृग को बींधा, यहाँ सूअर को बींधा" कहते हुए, रास्ते में एक पुष्करिणी देखकर पुत्र से कहा—"तात सोमदत्त ! स्नान करेंगे।"

"तात ! अच्छा" सोमदत्त का उत्तर था।

दोनों ने दिव्य वस्त्र तथा दिव्य गहने उतारे, उनकी गठड़ी बांधी और उसे पुष्करिणी-तट पर रख पानी में उतरे तथा स्नान किया। उस समय वे गहने-कपड़े अन्तर्धान होकर नाग-भवन ही जा पहुंचे। जो मटमैले चीथड़े वे पहले पहने थे वे ही उनके शरीर पर आ रहे। धनुप-बाण-शक्ति आदि शस्त्र भी पूर्ववत् हो गये। सोमदत्त 'तात ! तूने हमें नष्ट कर दिया' कह रोने लगा।

पिता ने उसे आश्वस्त किया, "चिन्ता मत कर। जब तक मृग हैं, जँगल में मृगों का बध कर जीविका चलायेंगे।" सोमदत्त की माताने उनके आगमन की बात सुनी तो वह अगवानी करके उन्हें घर ले गई और खाना-पीना दिया। ब्राह्मण खाकर सो रहा। ब्राह्मणी ने पुत्र से पूछा—"तात ! इतना समय कहाँ रहे ?"

"मां, भूरिदत्त नागराजा हमें नाग-भवन ले गया था। वहाँ मन नहीं लगा। इसलिये अब आये हैं।"

"कुछ रतन लाये ?"

"मां, नहीं लाये।"

"क्या उसने तुम्हें कुछ नहीं दिया ?"

"मां, भूरिदत्त ने पिताजी को सभी कामनाओं की पूर्ति करनेवाली मणि दी थी, किन्तु उन्होंने ली नहीं।"

"क्यों नहीं ली ?"

"प्रव्रजित होने के इरादे से।"

उसे क्रोध आया, इतने समय तक बच्चों का भार मुझपर छोड़, नाग-भवन में रह, अब प्रव्रजित होने की बात करता है। उसने धान-भूनने की कड़छी उसकी पीठ पर मारी और उसे धमकाया, "दुष्ट ब्राह्मण ! प्रव्रजित होने के इरादे से मणि नहीं ली। तो अब बिना प्रव्रजित हुए क्यों आया ? शीघ्र घर से निकल।" वह बोला "क्रोध मत कर। जब तक जंगल में मृग हैं, मैं अपना, तेरा और बच्चों का पालन-पोषण करूंगा।" वह अगले दिन पुत्र को साथ ले जंगल गया और पहले की तरह से ही जीविका चलाने लगा।

वन प्रवेश कांड समाप्त

उस समय दक्षिण महासमुद्र के प्रदेश में, हिमालय में एक सिम्बलीवासी गरुड़ ने पंखों की हवा से समुद्र के पानी को सुखा दिया और नाग-भवन में उतर एक नाग-राज को सिर से पकड़ लिया। उस समय गरुड़ नागों के पकड़ने की विधि नहीं जानते थे। यह उन्होंने पण्डर-जातक[1] के समय जानी। वह उसे सिर से पकड़, बिना पानी में फिसले ही, उठाकर, लटकते हुए को ही लेकर हिमालय के ऊपर से गया।

उस समय काशी-राष्ट्रवासी एक ब्राह्मण ऋषियों के क्रम से प्रव्रजित हो, हिमालय- प्रदेश में एक पर्णशाला बनाकर रहता था। उसकी चंक्रमण-भूमि के सिरे पर न्यग्रोध का एक बड़ा पेड़ था। वह दिन में उसके नीचे रहता था। गरुड़ न्यग्रोध के ऊपर से नाग को लिये जा रहा था। नाग लटकते रहने के कारण, गरुड से मुक्त होने के लिये, पूंछ से न्यग्रोध की शाखा को लिपट गया। गरुड़ को उसका पता नहीं लगा। वह महाबलशाली होने से आकाश में उड़ता ही चला गया। न्यग्रोध वृक्ष जड़ से उखड़ गया। गरुड़ ने नाग को देखा और उसे सिम्बली वन ले जाकर चोंच

---

१. पाण्डर जातक (५१८)

से उसका पेट फाड़ डाला ओर नाग-चर्बी खाकर उसकी लाश समुद्र में फेंक दी। न्यग्रोध-वृक्ष गिरा तो बहुत आवाज हुई। गरुड़ सोचने लगा कि यह किसकी आवाज है? नीचे देखने पर उसे न्यग्रोध वृक्ष दिखाई दिया। वह सोचने लगा कि मैंने यह कहाँ से उखाड़ लिया? उसे यथार्थ बात ज्ञात हुई कि यह तपस्वी की चन्क्रमण-भूमि के सिरे पर लगा हुआ न्यग्रोध-वृक्ष था और उसके लिये बहुत उपयोगी था। उसे विचार आया कि मैं उस तपस्वी से ही पूछकर इस बात का पता लगाऊंगा कि मुझसे पाप हुआ है अथवा नहीं? वह 'ब्रह्मचारी' का वेष बना उसके पास पहुंचा। उस समय तपस्वी उस स्थान को बराबर कर रहा था।

गरुड़-राज ने तपस्वी को नमस्कार किया और एक ओर बैठकर अजानकार की तरह पूछा, "भन्ते! यह किसका स्थान है?"

"एक गरुड़ नागको खाने के लिये ले जा रहा था। नागने उससे छूटने के लिये न्यग्रोध-वृक्ष की शाखा को अपनी पूंछ से लपेट लिया। गरुड़ बलवान होने से उड़कर चला गया। यह वृक्ष जड़ से उखड़ गया। यह उस उखड़े पेड़ की जगह है।"

"भन्ते! क्या उस गरुड़ ने पाप किया?"

"यदि वह नहीं जानता था, तो अजानकार को पाप नहीं लगता।"

"भन्ते! नाग के बारे में क्या है?"

"उसने भी इसे उखाड़ने के लिये नहीं पकड़ा था। उसने भी अपने छूटने के लिये ही पकड़ा था। इसलिये उसे भी पाप नहीं लगेगा।"

गरुड़ तपस्वी पर प्रसन्न हुआ और बोला, "भन्ते! मैं वह गरुड़-राज हूँ। आपके शंका-समाधान से सन्तुष्ट हुआ हूँ। आप वन में ही रहें। मैं एक आलम्बायन मन्त्र जानता हूँ। वह बहुत मूल्यवान् मन्त्र है। मैं आपको अपना आचार्य्य मानकर वह मन्त्र देता हूँ। उसे स्वीकार करें।"

"मुझे मन्त्र नहीं चाहिये। तुम जाओ।"

उसने बार-बार आग्रहकर उसे राजी कर लिया और मन्त्र दे तथा औषधी बता चला गया।

उस समय वाराणसी में एक दरिद्र ब्राह्मण ने बहुत ऋण ले लिया था। जब ऋण-दाताओं ने बहुत हैरान किया तो उसने सोचा यहाँ रहने से तो बन में जाकर

मरना अच्छा है। वह निकल पड़ा और क्रमशः उस आश्रम में पहुंच उसने तपस्वी को अपनी सेवा से प्रसन्न किया। तपस्वी ने सोचा, "इस ब्राह्मण ने मेरा बड़ा उपकार किया है। गरुड़-राज का दिया हुआ मन्त्र इसे दूंगा" वह बोला, "ब्राह्मण! मै आलम्बायन-मन्त्र जानता हूँ। वह तुझे देता हूँ। उसे ग्रहण कर।"

"भन्ते! मुझे मन्त्र नही चाहिये।"

उसने बार बार आग्रह कर, उसे राजी कर मन्त्र दे ही दिया। उस मन्त्र के अनुकूल ओषधियाँ और मन्त्र का उपचार आदि सब बता दिया।

ब्राह्मण ने सोचा कि अब मुझे जीविका का साधन मिल गया। उसने कुछ दिन रहकर बहाना किया कि मुझे बादी का कष्ट है और तपस्वी से विदा ले, प्रणाम कर, और क्षमा याचना कर जंगल मे निकला। वह क्रमशः यमुना तट पर पहुंच उस मन्त्र का पाठ करता हुआ, महा-मार्ग मे जा रहा था। उसी समय भूरिदत्त की हजार परिचारिकायें नाग-कुमारियाँ सब कामनाओं की पूर्ति करनेवाली मणि लेकर, नाग-भवन से निकल, उसे यमुना तट पर, बालू के ढेर पर रख, उसके प्रकाश में सारी रात जल-क्रीड़ा करती रहकर, अरुणोदय होने पर अपने आपको सभी अलंकारों से अलंकृत कर, मणि-रतन को घेर सुशोभित हो बैठी थी। ब्राह्मण भी मन्त्र पाठ करता करता वहाँ आ पहुंचा। उन्होंने जैसे ही मन्त्र-शब्द सुना वैसे ही सोचा कि यह गरूड़ होगा। वे डर के मारे बिना मणि-रतन लिये ही पृथ्वी में प्रवेश कर नाग-भवन जा पहुँची।

ब्राह्मण ने मणि-रतन को देखा तो सोचा मेरे मन्त्र ने अभी फल दे दिया है। वह प्रसन्न हुआ और मणि-रतन को लेकर चल दिया। उस समय वह शिकारी ब्राह्मण सोमदत्त के साथ हिरण का शिकार करने के लिये जंगल में प्रविष्ट हुआ था। उसने उस ब्राह्मण के हाथ में वह मणि-रतन देखकर पुत्र से कहा "क्या यह वही मणि नहीं है जो हमें भूरिदत्त ने दी थी?"

"हाँ, तात यह वही है!"

"तो इसके दोष कहकर, इस ब्राह्मण को ठगकर इससे यह मणि लें।"

"तात! पहले जब भूरिदत्त तुझे दे रहा था, तब तूने नहीं ली। अब यह ब्राह्मण तुझे ही ठग लेगा। चुप रह।"

"हो। तात! तू इसका अथवा मेरा ठगा जाना देखेगा?"

उसने आलम्बायन से बातचीत करते हुए की तरह कहा—

मणिं पग्गय्ह मंगल्यं साधुवित्तं मनोरमं
सेलं ब्यञ्जनसम्पन्नं को इमं मणिमज्झगा ॥२५॥

[इस सुन्दर, मनोरम, व्यञ्जन-युक्त मणि-शिला को कहाँ से प्राप्त किया है? ॥२५॥]

तब आलम्बायन ने गाथा कही—

लोहितक्खसहस्साहि समन्ता परिवारितं,
अज्ज कालं पथं गच्छं अज्झगाहं मणिं इमं ॥२६॥

[रक्त-वर्ण आँखों वाली हज़ारों नागनों से घिरी हुई इस मणि को मैंने आज ही प्रातःकाल महामार्ग पर जाते हुए प्राप्त किया ॥२६॥]

शिकारी-पुत्र ने उसे ठगने की नीयत से, मणि के दोष कह उसे स्वयं लेने के इरादे से तीन गाथायें कहीं—

सूपचिण्णो अयं सेलो अच्चितो महितो सदा,
सुधारितो सुनिक्खित्तो सब्बत्थमभिसाधये ॥
उपचारविपन्नस्स निक्खेपे धारणाय वा
अलं सेलो विनासाय परिचिण्णो अयोनिसो ॥
न इमं अकुसलं दिब्बं मणिं धारेतुमारहो
पटिपज्ज सतं निक्खं देहि मं रतनं मम ॥२७-२९॥

[अच्छी प्रकार उपचार किये जाने पर, अच्छी प्रकार अर्चा किये जाने पर, अच्छी प्रकार ममत्व दिखाये जाने पर, अच्छी प्रकार धारण किये जाने पर और अच्छी प्रकार रखे जाने पर ही यह सभी अर्थों को सिद्ध करनेवाली है ॥२७॥ जो कोई इसके रखने वा धारण करने में गलती करेगा, उस गलती करनेवाले के विनाश के लिये यह पर्य्याप्त है ॥२८॥ कोई अकुशल जन इस मणि को नहीं रख सकता। मुझसे यह सौ निकष ले और मुझे यह मणि (रत्न) दे दे ॥२९॥]

तब आलम्बायन ने गाथा कही—

न वा म्यायं मणि केय्यो गोहि वा रतनेन वा
सेलो व्यञ्जनसम्पन्नो नेव केय्यो मणि मम ॥३०॥

[गौ अथवा रतन द्वारा कोई भी इस मणि को मुझसे क्रय नहीं कर सकता। मेरी यह मणि लक्षणों से युक्त है। इस मणि को कोई नहीं खरीद सकता ॥३०॥]

ब्राह्मण बोला—

नोचे तया मणि केय्यो गोहि वा रतनेन वा
अथ केन मणि केय्यो तं मम अक्खाहि पुच्छितो ॥३१॥

[यदि तेरी इस मणि को कोई गौ अथवा रतन से नहीं खरीद सकता, तो मैं तुझसे पूछता हूँ और तू बता कि और किस वस्तु से तेरी मणि क्रय की जा सकती है ॥३१॥]

आलम्बायन बोला—

यो मे संसे महानागं तेजसिं दुरतिक्कमं,
तस्स दज्जं इमं सेलं जलन्तरिव तेजसा ॥३२॥

[जो दुर्दमनीय तेजस्वी महानाग को मेरे आधीन कर देगा, उसे मैं आग से प्रदीप्त जैसी यह मणि दे दूंगा ॥३२॥]

ब्राह्मण बोला—

को नु ब्राह्मण वण्णेन सुपण्णो पततं वरो,
नागं जिगिंसमन्वेति अन्वेसं भक्खमत्तनो ॥३३॥

[यह कौन है जो पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड़ ब्राह्मण रूप में अपने भोजन नाग को खोजता फिरता है? ॥३३॥]

आलम्बायन बोला—

किन्नु तुय्हं बलं अत्थि किं सिप्पं विज्जते तव,
किस्मिं वात्वं परत्थद्धो उरगं नापचायसि ॥३४॥

[तुझमें कौनसा ऐसा बल है, ऐसी कौन सी विद्या है अथवा तुझे किसका सहारा है, जो तू सर्प का आदर नहीं करता है? ॥३४॥]

उसने अपना बल प्रकाशित करते हुए कहा—

आरञ्ञकस्स इसिनो चिररत्ततपस्सिनो,
सुपण्णो कोसियस्सक्खा विसविज्जं अनुत्तरं ॥३५॥
तं भावितत्तञ्ञतरं सम्मन्तं पब्बन्तरे,
सक्कच्चं तं उपट्ठासिं रत्ति दिवमतन्दितो ॥३६॥
सो तदा परिचिण्णो मे वतवा ब्रह्मचरियवा,
दिब्बं पातुकरी मन्तं कामसा भगवा ममं ॥३७॥
त्याहं मन्ते परत्थद्धो नाहं भायामि भोगिनं,
आचरियो विस घातानं अलम्बानो ति मं विदू ॥३८॥

[गरुड़ ने कोसिय-गोत्री आरण्यक दीर्घ-काल-तपस्वी ऋषी को श्रेष्ठ विष-विद्या बताई ॥३५॥ मैंने उस अभ्यासी, पर्वतों के बीच रहने वाले ऋषी की, रात-दिन आलस्य-रहित होकर सेवा की ॥३६॥ उस व्रती, ब्रह्मचारी भगवान् ने मेरी सेवा से प्रसन्न हो स्वेच्छा से मुझे दिव्य-मन्त्र दिया ॥३७॥ मैं उन मन्त्रों का वल होने से नागों से नहीं डरता। मुझे विष-वैद्यों का आचार्य्य आलम्बन जान ॥३८॥]

यह सुन नेसाद ब्राह्मण ने सोचा, यह आलम्बायन है। जो इसे नाग दिखायेगा, उसे मणि-रतन देगा। इसे भूरिदत्त दिखाकर, इससे मणि लेंगे।

तब उसने पुत्र से मन्त्रणा करते हुए गाथा कही—

गण्हामसे मणिं तात सोमदत्त विजानहि
मा दण्डेन सिरिं पत्तं कामसा पजहिम्हसे ॥३९॥

[तात सोमदत्त! यह जान कि हम मणि लेंगे। दण्ड से प्राप्त (?) श्री को हम स्वेच्छा से न छोड़ें ॥३९॥]

सोमदत्त बोला—

सकं निवेसनं पत्तं सो तं ब्राह्मण पूजयी,
एवं कल्याणकारिस्स किं मोहा दुभिमिच्छसि ॥४०॥

[अपने घर आने पर उस ब्राह्मण ने तेरी पूजाकी। मोह के कारण क्या इस प्रकार के कल्याणकारी के साथ द्रोह करना चाहता है? ॥४०॥]

सचे हि धनकामोसि भूरिदत्तो पदस्सति,
तमेव गन्त्वा याचस्सु बहुं दस्सति ते धनं ॥४१॥

[यदि धन की इच्छा है तो भूरिदत्त देगा। उसीसे जाकर मांगो, वह तुझे बहुत धन देगा ॥४१॥]

ब्राह्मण बोला—

हत्थगतं पत्तगतं निक्किण्णं खादितुं वरं,
मा नो सन्दिट्ठिको अत्थो सोमदत्त उपच्चगा ॥४२॥

[जो हाथ में हो, जो पात्र में हो और जो सामने रखा हो उसका खाना ही अच्छा है। हे सोमदत्त ! हमारे प्राप्त अर्थ को न जाने दो ॥४२॥]

सोमदत्त बोला—

पच्चति निरये घोरे महिस्समवदीयति
मित्त दूभी हितच्चागी जीवरे चापि सुस्सरे ॥४३॥
सचे हि धनकामोसि भूरिदत्तो पदस्सति
मञ्ञे अत्तकतं वरं नचिरं वेदयिस्सति ॥४४॥

[जो मित्र के साथ द्रोह करता है, जो अपने हितचिंतक का त्याग करता है वह जीते जी भी सूखता है और घोर नरक में पकता है तथा उसको पृथ्वी निगल जाती है ॥४३॥ यदि तुझे धन की इच्छा है तो भूरिदत्त देगा। ऐसा लगता है कि अपने किये वैर का फल तू शीघ्र ही भोगेगा ॥४४॥]

ब्राह्मण बोला—

महायञ्ञं यजित्वान एवं सुज्झन्ति ब्राह्मणा
महायञ्ञं यजिस्साम एवं मोक्खाम पापका ॥४५॥

[ब्राह्मण महान् यज्ञ करके शुद्ध हो जाते हैं। मैं भी महान् यज्ञ करके पाप से मुक्त हो जाऊंगा ॥४५॥]

सोमदत्त बोला—

हन्ददानि अपायामि नाहं अज्ज तया सह,
पदम्पेकं न गच्छेय्यं एवं किब्बिसकारिना ॥४६॥

[मैं अब जाता हूँ। ऐसे पापी के साथ अब मैं एक कदम भी और नहीं चलूंगा ॥४६॥]

यह कह वह पण्डित-ब्रह्मचारी पिता को अपनी बात मनवा सकने में असमर्थ रहने के कारण, 'इस प्रकार के पापी के साथ न जाऊंगा' घोषणा से देवता को कंपाकर, पिता के देखते ही देखते भागकर हिमालय में चला गया। वहाँ प्रव्रजित हो अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, ध्यान-लाभी हो ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हुआ।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इदं वत्वान पितरं सोमदत्तो बहुस्सुतो,
उज्झापेत्वान भूतानि तम्हा ठाना अपक्कमि ॥४७॥

[पिता को यह कह बहुश्रुत सोमदत्त भूतों (देवताओं) को कंपाता हुआ उस स्थान से चल दिया ॥४७॥]

नेसाद ब्राह्मणने सोचा कि सोमदत्त अपना घर छोड़कर कहाँ जायेगा ? उसने-आलम्बायन को थोड़ा असन्तुष्ट देख कहा, "आलम्बायन ! चिन्ता मत कर। मैं तुझे भूरिदत्त दिखाऊंगा।" वह उसे लेकर वहाँ पहुंचा जहाँ नागराज उपोसथ कर्म करता था। वाम्बी पर फन फैलाये पड़े नागराज को देख उसने थोड़ी ही दूर पर खड़े हो, हाथ पसारकर दो गाथायें कहीं—

गण्हाहेतं महानागं आहरेतं मणिं मम,
इन्दगोपकवण्णाभो यस्स लोहितको सिरो ॥४८॥
कप्पास पिचुरासीव एसो कायस्स दिस्सति,
वम्मिकग्गगतो सेति तं त्वं गण्हाहि ब्राह्मण ॥४९॥

[जिसका इन्द्र-गोप के समान लाल सिर है, उस महानाग को पकड़ लो और मुझे मणि दो ॥४८॥ यह रुई के फोहों की ढेर की तरह दिखाई देता है। यह वाम्बी पर पड़ा सोता है। हे ब्राह्मण ! तुम इसे ग्रहण करो ॥४९॥]

बोधिसत्व ने आंखें खोलीं तो शिकारी को देखकर सोचा कि यह मेरे उपोसथ-व्रत में बाधा डालेगा, सोच इसे नाग-भवन ले जाकर महान् सम्पत्ति सौंपी। इसने मेरी दी हुई मणि लेने की इच्छा नहीं की। अब यह सपेरे को लेकर आया है। यदि मैं इस मित्र-द्रोही के प्रति क्रोध करता हूँ तो मेरा शील खण्डित होता है। मैंने पहले ही चार अङ्गों वाला व्रत धारण किया है। वह वैसा ही रहे। चाहे आलम्बायन मुझे काटकर पकाये चाहे कांटों से काटे, मैं इसके प्रति क्रोध नहीं करूंगा। यदि मैं

इसे देखूंगा, तो मेरा उपोसथ-व्रत टूट जायेगा। उसने आँखें बन्द की और अधिष्ठान-पारमिता को आगे कर, फनके भीतर सिर दे निश्चिन्त पड़ा रहा।

नेसाद ब्राह्मण भी बोला—"आलम्बायन ! इस नाग को पकड़ और मुझे मणि दे। आलम्बायन नाग को देखने से ही प्रसन्न हुआ। उसने मणि की कुछ भी क़दर न कर कहा, "ब्राह्मण ! ले।" उसने मणि उसके हाथ में फेंक दी। वह उसके हाथ से छूटकर पृथ्वी पर गिरी। गिरते ही वह पृथ्वी में घुस नाग-भवन ही पहुंची। ब्राह्मण ने मणि-रतन से, भूरिदत्त की मैत्री से तथा पुत्र से —तीनों से हाथ धोये। वह 'मैं' निराधार हो गया। मैंने पुत्र का कहना न माना' कहता हुआ घर गया।

आलम्बायन ने भी अपने शरीर पर दिव्य औषध मली, कुछ खाई और शरीर के अन्दर भी पहुंचा वह दिव्य मन्त्र का जाप करता हुआ बोधिसत्व के पास पहुंचा। उसने उसे पूंछ से पकड़ा, खींचा और मुंह को दृढ़ता से पकड़कर खोला। उसने उसे औषध खिलाकर उसके मुंह में थूक दिया। शुचि-स्वभाव होने पर नागराज ने शील के खण्डन के डर से, बिना क्रोध के आँखें खोलकर बन्द तक नहीं कीं। उसने उसे औषधी से बेहोश किया। फिर पूंछ से पकड़, सिर नीचा कर, हिलाकर, गृहीत-स्थान छुड़वाकर जमीन पर लम्बा करके लिटाया और तकिये को मलने की तरह हाथ से मलने लगा। हड्डियाँ चूर्ण-विचूर्ण सी हो गई। फिर पूंछ से पकड़ धुस्से को पीटने की तरह पीटा। इस प्रकार का दुख अनुभव करते भी बोधिसत्व ने क्रोध नहीं किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

अथोसधेहि दिब्बेहि जपं मन्तपदानि च

एवं तं असक्खि सट्ठुं कत्वा परित्तमत्तनो ॥५०॥

[इस प्रकार दिव्य औषध तथा मन्त्र जाप से अपने आपको सुरक्षित करके वह उसे पकड़ सका ॥५०॥]

इस प्रकार उसने बोधिसत्व को दुर्बल बना, लताओं से टोकरी बना बोधिसत्व को उसमें डाला। शरीर बड़ा होने से वह उसमें नहीं आता था। तब उसे एड़ी की ठोकर मार, टोकरी में धकेल, टोकरी लेकर एक गाँव पहुंचा और गाँव के बीच में उतार आवाज़ लगाई कि जो साँप का नाच देखना चाहें, वे आयें। सारे ग्रामवासी

इकट्ठे हुए। उस समय आलम्बायन ने कहा—"महानाग। निकल।" बोधिसत्व ने सोचा, "आज मुझे ऐसा खेल दिखाना चाहिये कि परिषद सन्तुष्ट हो जाय। इस प्रकार आलम्बायन को बहुत धन मिल जायगा तो वह मुझे छोड़ देगा। जो जो यह मुझसे करायेगा, वह वह करूंगा।"

तब उसने उसे टोकरी से निकालकर कहा—"बड़ा बन।" वह बड़ा बन गया। छोटा, गोल, चौड़ा, एक फनवाला, दो फनवाला, तीन फनवाला, पाँच-सात आठ-नो-दस-बीस-तीस-चालीस-पचास- फनवाला, सौ फन वाला, ऊंचा, नीचा, साकार निराकार, आधा साकार-आधा निराकार, नीला. पीला, लाल, सफेद तथा मजीठे रंग का हो, ज्वाला निकाल, पानी तथा धुआँ निकाल। इन तरीकों से भी, जैसे जैसे उसने कहा अपने रूप बनाकर उसने नाच दिखाया। यह देख कोई भी आँसू न रोक सका। आदमियों ने बहुत सा हिरण्य, सोना, वस्त्र तथा अलंकार दिये। इस प्रकार उसी गाँव में ही एक लाख मिले। यद्यपि उसने बोधिसत्व को पकड़ते समय सोचा था कि लाख मिलने पर इसे छोड़ दूंगा, किन्तु अब उसके मन में लोभ पैदा हो गया, वह सोचने लगा कि गाँव से इतना मिला है, नगर से कितना अधिक मिलेगा! उसने उसे नहीं छोड़ा। उसने उस गाँव में परिवार को रखा और रतन की टोकरी बनवा, उसमें बोधिसत्व को डाला। फिर आराम की सवारी में बैठ, बड़े ठाट-बाट के साथ निकल ग्राम-निगम आदि में उसका खेल दिखाते हुए वह वाराणसी पहुंचा। वह नागराज को मोठी-खील खाने को देता था। मेण्डक मारकर देता था। वह कुछ नहीं खाता था। उसे डर था यदि खाऊंगा तो यह मुझे छोड़ेगा नहीं। उसके निराहार रहने पर भी उसने चारों द्वार-ग्रामों से आरम्भ करके जहां तहाँ महीना भर उससे तमाशा कराया। पूर्णिमा-उपोसथ के दिन उसने राजा को कहलवाया कि आज तुम्हें तमाशा दिखाऊंगा। राजा ने मुनादी करा जनता इकट्ठा कर ली। राजाङ्गन में मञ्चों पर मञ्च बन्ध गये।

क्रीड़ा-कांड समाप्त

जिस दिन आलम्बायन ने बोधिसत्व को पकड़ा उसी दिन बोधिसत्व की माता ने स्वप्न में देखा कि एक लाल-आँखों वाले काले आदमी ने तलवार से उसकी बाँह काट डाली है और उसमें से रक्त बह रहा है तथा वह उसे लिये जा रहा है। वह

भयभीत हो उठी और दाहिनी बाँह का स्पर्श करके उसने जाना कि यह स्वप्न था। उसके मन में हुआ कि मैंने कठोर बुरा स्वप्न देखा है। या तो मेरे चारों पुत्रों के लिये या धृतराष्ट्र राजा के लिये या मेरे ही लिये यह अच्छा नहीं होगा। किन्तु वह अधिकतर बोधिसत्व के ही बारे में सोचने लगी। क्यों? शेष तो अपने नाग-भवन में रहते थे। वह सदाचार के विचार से मनुष्य-लोक में जाकर उपोसथ-व्रत करता था। इसलिये वह उसी के बारे में अधिक चिन्ता करती थी कि मेरे पुत्र को कोई सपेरा वा गरुड़ न पकड़ ले। उसके बाद आधा महीना बीतने पर वह यह सोचकर दुखी हुई कि मेरा पुत्र आधे महीने से अधिक मुझसे पृथक् नहीं रह सकता था, निश्चय से उसे कोई खतरा हो गया होगा। महीना बीत जाने पर तो उसकी आँख से सदा ही आंसू बहते रहते। हृदय सूख गया, आँखें फूल आईं। वह बैठी-बैठी उसकी प्रतीक्षा ही करती रहती कि अब आता होगा, अब आता होगा।

महीना बीतने पर उसका बड़ा लड़का सुदर्शन बहुत से अनुयाइयों के साथ माता-पिता के दर्शनार्थ आया। परिषद को बाहर छोड़, महल पर चढ़ उसने माता को नमस्कार किया और एक ओर खड़ा हुआ। उसे भूरिदत्त की ही चिन्ता लगी थी। इसलिये उसने उससे कुछ बातचीत नहीं की। वह सोचने लगा, "पहले मेरे आगमन पर मेरी मां प्रसन्न होती थी। कुशल-समाचार पूछती थी। क्या कारण है कि आज वह दुखी है?" उसने उसे पूछा—

ममं दिस्वान आयन्तं सब्बकामसमिद्धिनं
इन्द्रियानि अहट्ठानि सावं जातं मुखं तव ॥५१॥
पदुमं यथा हत्थगतं पाणिना परिमद्दितं,
सावं जातं मुखं तुय्हं ममं दिस्वान एदिसं ॥५२॥

[सब कामनाओं के पूरी करनेवाले मुझे आया देखकर तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न नहीं हैं और चेहरा काला पड़ गया है ॥५१॥ जैसे हाथ में लिया हुआ कँवल हाथ से मल दिया जाय, मुझे इस प्रकार आया देख तेरा चेहरा वैसा ही काला पड़ गया है ॥५२॥]

उसके ऐसा कहने पर भी वह कुछ नहीं बोली। सुदर्शन सोचने लगा—किसीने गाली दी होगी वा उपहास किया होगा। उसने उसे पूछते हुए दूसरी गाथा कही—

कच्चि नु ते नाभिसयि कच्चि ते अत्थि वेदना,

येन सावं मुखं तुरहं मम विस्वान आगतं ॥५३॥

[क्या तुझे किसीने कोई कष्ट दिया है ? क्या तुझे कोई पीड़ा है ? मुझे आया देखकर तू (क्यों) काली पड़ गई है ? ॥५३॥]

उसने उसे उत्तर दिया—

सुपिनं तात अद्दक्खि इतो मासं अधोगतं,

दक्खिणं विय मे बाहुं छेत्वा रुहिरमक्खितं,

पुरिसो आदाय पक्कामि मम रोदन्तिया सति ॥५४॥

यतो तं सुपिनद्दक्खि सुदस्सन विजानहि,

ततो दिवा वा रत्तिं वा सुखं मे न उपलब्भति ॥५५॥

[अब से एक महीना पहले तात ! मैंने एक स्वप्न देखा। ऐसा लगा कि मेरी दाहिनी बाँह को छेदकर, रक्त बहाते हुए और मेरे रोते हुए मुझे एक आदमी पकड़कर ले जा रहा है ॥५४॥ हे सुदर्शन ! यह जान कि जब से वह स्वप्न देखा है तब से न मुझे दिन को चैन है और न रात को चैन है ॥५५॥]

इतना कह वह रोती हुई बोली—"तात ! तेरा छोटा भाई मेरा प्रिय-पुत्र नहीं दिखाई देता। उसे कोई न कोई खतरा हुआ होगा।" वह कहने लगी—

यं पुब्बे परिचारिंसु कञ्ञा रुचिरविग्गहा,

हेमजालपटिच्छन्ना भूरिदत्तो न दिस्सति ॥५६॥

यं पुब्बे परिचारिंसु नेत्तिसंवरधारिनो

कणिकाराविय सम्फुल्ला भूरिदत्तो न दिस्सति ॥५७॥

हन्ददानि गमिस्साम भूरिदत्त निवेसनं,

धम्मट्ठं सीलसम्पन्नं पस्साम तव भातरं ॥५८॥

[स्वर्णजालाच्छादित सुन्दर शरीरधारिणी कन्यायें जिसकी पहले परिचर्य्या करती थीं, वह भूरिदत्त दिखाई नहीं देता ॥५६॥ कर्णिकार पुष्प की तरह पुष्पित, श्रेष्ठ खड्ग के धारण करनेवाले पहले जिसकी परिचर्य्या करते थे, वह भूरिदत्त अब दिखाई नहीं देता ॥५७॥ अब हम भूरिदत्त के निवास-स्थान को चलें, और तेरे धर्म-स्थित सदाचारी भाई को देखें ॥५८॥]

इतना कह उसकी और अपनी परिषद् को साथ ले वहाँ गई। भूरिदत्त की भार्य्याओं ने जब उसे बाम्बी पर नहीं देखा तो वे यह समझ कि मां के पास गया होगा, निश्चिन्त रहीं। लेकिन जब उन्होंने सुना कि सास पुत्र के न दिखाई देने के कारण चली आ रही है, तो वे अगवानी करके पहुंची और उसके पांव में गिर यह कहकर महाविलाप करने लगीं कि 'आर्ये आज एक महीने से वह दिखाई नहीं देता।'

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तञ्च दिस्वान आयन्ति भूरिदत्तस्स मातरं,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं भूरिदत्तस्स नारियो ॥५९॥
पुत्तं तेय्ये न जानाम इतो मासं अधोगतं,
मतं वा यदि वा जीवं भूरिदत्तं यसस्सिनं ॥६०॥

[भूरिदत्त की माता को आता देखकर भूरिदत्त की नारियाँ बाहें पीटकर विलाप करने लगीं—हे आर्ये! एक महीने से हम तेरे पुत्र के बारे में कुछ नहीं जानतीं, हम नहीं जानतीं कि यशस्वी भूरिदत्त मृत है वा जीवित है ॥५९-६०॥]

भूरिदत्त की मां अपनी पुत्र-वधुओं के साथ गलियों में रो-पीटकर, उनके साथ उसके महल पर चढ़, पुत्र की शैय्या देख रोती-पीटती हुई कहने लगी—

सकुणी हतपुत्ताव सुञ्ञं दिस्वा कुलावकं,
चिरं दुक्खेन झायिस्सं भूरिदत्तं अपस्सति ॥६१॥
सकुणी हतपुत्ताव सुञ्ञं दिस्वा कुलावकं,
तेन तेन पधाविस्सं पियपुत्तं अपस्सति ॥६२॥
कुररी हतछापाव सुञ्ञं दिस्वा कुलावकं,
चिरं दुक्खेन झायिस्सं भूरिदत्तं अपस्सति ॥६३॥
सा नून चक्कवाकीव पल्ललस्मिं अनूदके,
चिरं दुक्खेन झायिस्सं भूरिदत्तं अपस्सति ॥६४॥
कम्मारानं यथा उक्का अन्तो झायति नो बहि,
एवं झायामि सोकेन भूरिदत्तं अपस्सति ॥६५॥

[जिस प्रकार मृत-पुत्र चिड़िया घोंसले को शून्य देखकर (रोती है) उसी प्रकार भूरिदत्त को न देखने के कारण मैं चिरकाल से दुखी होकर सोचती हूँ ॥६१॥ जिस

प्रकार मृत-पुत्र चिड़िया घोंसले को शून्य देखकर (रोती है) उसी प्रकार मैं भी प्रिय-पुत्र को न देखने के कारण जहाँ तहाँ दौड़ती हूँ ।।६२।। जिस प्रकार मृत-सन्तान कुररी घोंसले को सूना देखकर (दुखी होती है) उसी प्रकार भूरिदत्त को न देखने के कारण मैं चिरकाल से दुखी होकर सोचती हूँ ।।६३।। जिस प्रकार जल-रहित तालाब में चकवी दुखी रहती है, उसी प्रकार भूरिदत्त को न देखने के कारण मैं चिरकाल से दुखी होकर सोचती हूँ ।।६४।। जैसे सुनारों की आग अन्दर से जलाती है, बाहर से नहीं, इसी प्रकार मैं भूरिदत्त को न देखने से शोक से (अन्दर-अन्दर) जलती हूँ ।।६५।।]

इस प्रकार भूरिदत्त माता के विलाप करने के समय भूरिदत्त भवन में समुद्र-तल की तरह शोर हो उठा। कोई भी होश संभाले न रह सका। सारा भवन युगान्त-वायु से चालित शाल-वन के समान हो गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा —

सालाव सम्पमथिता मालुतेन पमद्दिता,
सेन्ति पुत्ताव दारा च भूरिदत्त निवेसने ।।६६।।

[भूरिदत्त के भवन में उसके स्त्री-पुत्र ऐसे पड़े थे जैसे वायु से ताड़ित शाल-वृक्ष ।।६६।।]

अरिट्ठ और सुभग भाइयों ने माता-पिता की सेवा में जाते समय वह आवाज सुन भूरिदत्त-भवन में प्रवेश कर माता को आश्वस्त किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इदं सुत्वान निग्घोसं भूरिदत्त निवेसने,
अरिट्ठो च सुभगो च उपधाविसु अनन्तरा ।।६७।।
अम्म अस्सास मा सोचि एवं धम्मा हि पाणिनो,
चवन्ति उपपज्जन्ति एसस्स परिणमिता ।।६८।।

[भूरिदत्त भवन में यह शब्द सुनकर अरिट्ठ और सुभग अविलम्ब वहाँ गये ।।६७।। उन्होंने आश्वासन दिया—माँ, आश्वस्त हो। सोच मत कर। प्राणियों

का यह स्वभाव-धर्म ही है। यह मरते हैं, उत्पन्न होते हैं—यही इनकी परिणाम-शीलता है ॥६८॥]

समुद्र-कन्या बोली—

अहम्पि तात जानामि एवं धम्मा हि पाणिनो,
सोकेन च परेतस्मि भूरिदत्तं अपस्सति॥६९॥
अज्ज चे मे इमं रत्तिं सुदस्सन विजानहि,
भूरिदत्तं अपस्सन्ती मञ्ञे हेस्साम जीवितं॥७०॥

[तात ! मैं भी यह जानती हूँ कि यह प्राणियों का स्वभाव-धर्म है। किन्तु भूरिदत्त को न देखने के कारण मैं शोक से अभिभूत हूँ ॥६९॥ हे सुदर्शन ! यह जान ले कि यदि आज रात मुझे भूरि-दत्त देखना न मिला तो ऐसा लगता है कि मैं प्राण ही छोड़ दूंगी ॥७०॥]

पुत्र बोले—

अम्म अस्सास मा सोचि आनयिस्साम भातरं,
दिसोदिसं गमिस्साम भातुपरियेसनं चरं॥७१॥
पब्बते गिरिदुग्गेसु गामेसु निगमेसु च,
ओरेन दसरत्तस्स भातरं पस्स आगतं॥७२॥

[माँ, सोच मत कर। हम भाई को लायेंगे। हम भाई को खोजने के लिये चारों दिशाओं में जायेंगे ॥७१॥ हम पर्वतों में, गिरि-गुफाओं में, गाँवों में तथा निगमों में खोजेंगे। तू दस दिन के भीतर ही भाई को आया हुआ देखेगी ॥७२॥]

तब सुदर्शन ने सोचा, "यदि तीनों एक ही दिशा में जायेंगे तो प्रपञ्च होगा। तीनों को तीन दिशाओं में जाना चाहिये। एक को देवलोक। एक को हिमाचल-प्रदेश में। एक को मनुष्य-लोक में। यदि काणा अरिट्ठ मनुष्य-लोक जायेगा तो जहाँ भूरिदत्त को देखेगा, उस गाँव या निगम को जला आयेगा। यह कठोर है। परुष स्वभाव का है। इसे वहाँ नहीं भेज सकता।" यह सब विचार कर वह बोला, "तात अरिट्ठ ! तू देवलोक जा। यदि धर्मोपदेश सुनने के इच्छुक देवतागण भूरिदत्त को देव-लोक ले गये हों तो वहाँ से तू ले आ।" इस प्रकार उसने अरिट्ठ को देवलोक भेजा। सुभग को उसने हिमाचल प्रदेश में भेजा, "तात ! तू हिमाचल-प्रदेश में जा,

पांचों महानदियों में भूरिदत्त को देखकर आ।" स्वयं मनुष्य-लोक में जाने की इच्छा से विचार किया, "यदि मैं ब्रह्मचारी के वेष में जाऊंगा तो लोग शक करेंगे। मुझे तपस्वी के वेश में जाना चाहिये। मनुष्यों को प्रव्रजित प्रिय लगते हैं, अच्छे लगते हैं।" उसने तपस्वी का भेष बनाया और माता को प्रणामकर निकल पड़ा। बोधिसत्व की एक विमाता-बहन थी। नाम था अर्ची-मुखी। उसका बोधिसत्व से अत्यन्त प्रेम था। उसने सुदर्शन को जाते देख सोचा, "भाई, बहुत कष्ट उठाता है। मै भी तेरे साथ आऊंगी।"

"तू नहीं आ सकती। मैं प्रव्रजित वेष में जाऊंगा।"

"मैं छोटी मेण्डकी होकर तेरी जटाओं में छिपकर जाऊंगी।"

"तो आ।"

वह मेण्डक-बच्ची होकर उसकी जटाओं में जा रमी। सुदर्शन ने सोचा कि मैं शुरू से ही खोजता जाऊंगा। उसने बोधिसत्व की भार्य्याओं से उसका उपोसथ-व्रत का स्थान पूछा। वहाँ गया। वहाँ उसने जिस जगह आलम्बायन ने बोधिसत्व को देखा था उस जगह रक्त, और लताओं से जहाँ टोकरी बनाई गई थी वह स्थान देखा। उसे पता लगा कि भूरिदत्त को सँपेरा ले गया। शोक के मारे उसकी आँखों में आंसू आ गये। वह आलम्बायन के मार्ग से ही उस गाँव पहुंचा जहाँ उसने पहले प्रहल बोधिसत्व का तमाशा दिखाया था। उसने लोगों से पूछा "क्या किसी संपेरे ने ऐसे सांप का तमाशा दिखाया?"।

"हाँ, आलम्बायन ने अब से एक महीना हुआ तमाशा दिखाया।"

"उसे कुछ मिला?"

"हां यहीं एक लाख मिला।"

"अब वह कहाँ गया?"

"अमुक ग्राम।"

उसके बाद वह पूछते-पूछते राज-द्वार जा पहुंचा।

उसी समय आलम्बायन भी अच्छी प्रकार नहाकर, लेपकर, रेशमी वस्त्र पहन, रतन की टोकरी लिवा राज-द्वार ही गया था। जनता इकट्ठी थी। राजा का आसन बिछा था। उसने अपने निवास-स्थान के भीतर खड़े ही खड़े कहलाया कि नागराज

का तमाशा दिखाया जाय, मैं आता हूँ। आलम्बायन ने सुन्दर बिछावन पर रतन-टोकरी रखी और खोलकर इशारा किया कि महानागराज आ। उस समय सुदर्शन भी परिषद के आखीर में खड़ा था। बोधिसत्व ने सिर निकालकर उस सारी परिषद को देखा। नाग दो ही कारणों से परिषद् को देखते हैं, शत्रु गरुड़ को देखने के लिये अथवा अपने सम्बन्धियों को देखने के लिये।

वे गरुड़ को देखकर डर से नहीं नाचते। रिश्तेदारों को देखकर लज्जा से नहीं नाचते। बोधिसत्व ने देखा तो उसे परिषद् के अन्त में खड़ा हुआ भाई दिखाई दिया। वह आँखों में आँसू भर, टोकरी से निकल भाई की ओर दौड़ा। जनता उसे आता देख डर के मारे पीछे हटी। केवल सुदर्शन ही खड़ा रहा। वह जाकर उसके पैरों में सिर रखकर रोया। सुदर्शन भी रोया। बोधिसत्व रो चुकने पर टोकरी में चला गया। आलम्बायन ने सोचा कि इस नाग ने तपस्वी को डंक मारा होगा। मैं इसे आश्वस्त करूंगा। वह पास जाकर बोला—

हत्था पमुत्तो उरगो पादे ते निपती भुसं,
कच्चि तं नु डसी तात मा भायि सुखितोभव ॥७३॥

[साँप हाथ से छूटते ही तुम्हारे पाँव पर जा पड़ा। तात! कहीं तुम्हें डसा तो नहीं? डरें नहीं। सुखी रहे ॥७३॥]

सुदर्शन ने उसके साथ वार्तालाप करने की इच्छा से उत्तर दिया—

नेव मय्हं अयं नागो अलं दुक्खाय कायचि,
यावतत्थि अहिग्गाहा मया भीयो न विज्जति ॥७४॥

[यह नाग मुझे किसी भी प्रकार का दुख नहीं पहुंचा सकता। जितने भी सँपेरे हैं, मुझसे बढ़कर कोई नहीं ॥७४॥]

आलम्बायन ने बिना यह जाने कि इसका अमुक नाम है क्रोधित हो कहा—

कोनु ब्राह्मणवण्णेन दत्तो परिसमागमा,
अव्हयन्तु सुयुद्धेन सुणातु परिसा मम ॥७५॥

[परिषद् मेरी बात सुने—यह कौन मूर्ख है जो ब्राह्मण के वेष में मुझे युद्ध के लिये ललकार रहा है ॥७५॥]

उसे सुदर्शन ने गाथा द्वारा उत्तर दिया—

त्वं मं नागेन आलम्ब अहं मण्डूक छापिया,
होतु नो अब्भुतं तत्थ आसहस्सेहि पञ्चहि ॥७६॥

[तू मुझ सांप से लड़, मैं मेण्डकी की बच्ची लेकर लड़ूंगा। हमारी तुम्हारी लड़ाई का तमाशा हो। उसमें पाँच हजार की शर्त रहे ॥७६॥]

आलम्बायन बोला—

अहं हि वसुमा अड्ढो त्वं दलिद्दोसि माणव,
कोनु ते पटिभोगत्थि उपजूतञ्च किं सिया ॥७७॥
उपजूतञ्च मे अस्स पटिभोगो च तादिसो,
होतु नो अब्भुतं तत्थ आसहस्सेहि पञ्चहि ॥७८॥

[हे ब्रह्मचारी! मैं तो सम्पत्तिशाली हूँ, धनाढ्य हूँ। तू दरिद्र है। तेरा कौन जिम्मेदार है और तेरा शर्त का धन कहाँ है? ॥७७॥ यदि तेरे पास मुझे देने के लिये शर्त का धन है और तेरा कोई जिम्मेवार भी है तो पांच हजार की शर्त रखकर मेरा तेरा मुकाबला हो ॥७८॥]

सुदर्शन ने जब उसकी बात सुनी कि पाँच हजार से मुकाबला हो तो बिना डरे राज-भवन पर चढ़ गया मामा-राजा के पास खड़े हो गाथा कही—

सुणोहि मे महाराज वचनं भद्दमत्थु ते,
पञ्चन्नं मे सहस्सानं पटिभोगोहि कित्तिमा ॥७९॥

[हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। मेरी बात सुनें। हे कीर्तिमान! मेरी पांच हजार की जिम्मेवारी लें ॥७९॥]

राजा सोचने लगा, यह तपस्वी मुझ से अत्यधिक धन चाहता है। क्या कारण है? उसने गाथा कही—

पेत्तिकं वा इणं होति यं वा होति सयं कतं,
किं त्वं एवं बहुं मय्हं धनं याचसि ब्राह्मण ॥८०॥

[हे ब्राह्मण! या तो पिता का लिया हुआ ऋण होता है, या अपना लिया हुआ ऋण होता है। हे ब्राह्मण! तू मुझसे इतना धन क्यों चाहता है? ॥८०॥]

तब सुदर्शन ने दो गाथायें कहीं—

आलम्बानो हि नागेन ममं अभिजिगिंसति,
अहं मण्डूकछापिया डंसयिस्सामि ब्राह्मणं ॥८१॥
तं त्वं दट्ठुं महाराज अज्ज रट्ठाभिवड्ढन,
खत्तसंघ परिब्यूलहो निय्याहि अभिदस्सनं ॥८२॥

[आलम्बायन मुझे नाग की सहायता से जीतना चाहता है। मैं ब्राह्मण को मेण्डकी-बच्ची से डसवाऊंगा ॥८१॥ हे राष्ट्र-भिवर्धन ! हे महाराज ! आप क्षत्रियों के संघ सहित यह मुकाबला देखने के लिये आयें ॥८२॥]

'तो चलें' कह राजा तपस्वी के साथ ही निकला। उसे देखा तो आलम्बायन ने सोचा, यह तपस्वी राजा को लिये आता है, यह राज-विश्वस्त होगा। उसे डर लगा। तब उसका अनुकरण करते हुए उसने गाथा कही—

नेव तं अतिमञ्ञामि सिप्पवादेन माणव,
अति मत्तोसि सिप्पेन उरगं नापचायसि ॥८३॥

[हे माणव ! मैं अपने शिल्प-ज्ञान के कारण तेरा अपमान नहीं करता। किन्तु तू अपने शिल्प के अभिमान में नाग का आदर नहीं करता है ॥८३॥]

तब सुदर्शन ने दो गाथायें कहीं—

मयम्पि नातिमञ्ञाम सिप्पवादेन ब्राह्मणं,
अविसेन च नागेन भुसं वञ्चयसे जनं ॥८४॥
एवं चेतं जनो जञ्ञा यथा जानामि तं अहं,
न त्वं लभसि आलम्ब सत्तुमुट्ठिं कुतो धनं ॥८५॥

[हम भी शिल्प के कारण ब्राह्मण का अपमान नहीं करते। लेकिन तू विष-रहित सर्प से जनता को बहुत ठगता है। यदि जैसे मैं तुझे जानता हूँ, उसी प्रकार लोग भी तुझे जान जायें तो हे आलम्ब ! तुझे सत्तू की मुट्ठी भी नहीं मिलेगी, धन की तो बात ही क्या ! ॥८४-८५॥]

तब आलम्बायन क्रोधित होकर बोला—

खराजिनो जटी दम्मी दत्तो परिसमागतो,
सो त्वं एवं गतं नागं अविसो अतिमञ्ञसि ॥८६॥

आसज्ज खो नं जञ्जासि पुण्णं उग्गस्स तेजसा,
मञ्ञे तं भस्म रासिंव खिप्पमेसो कीरस्सति ॥८७॥

[भद्दे मृग चर्मवाला, जटाओं वाला, मैला तथा मूर्ख तू सभा में आकर ऐसे नाग को विष-रहित कहकर उसका अपमान करता है ॥८६॥ जब तू उस उग्र-तेज से पूर्ण नाग के पास पहुंचेगा, तब तुझे पता लगेगा। मुझे लगता है कि वह तुझे शीघ्र ही राख की ढेर बना देगा ॥८७॥]

उसके साथ मजाक करते हुए सुदर्शन ने गाथा कही—

सिया विसं सिलुत्तस्स देड्डभस्स सिलाभुनो,
नेव लोहितसीसस्स विसं नागस्स विज्जति ॥८८॥

[यह तो सम्भव है कि गृह-सर्प विषैला हो, यह भी सम्भव है कि पानी का साँप विषैला हो और यह भी सम्भव है कि हरे रंग का सर्प विषैला हो, किन्तु यह रक्त-वर्ण-सिरवाला नाग तो विषैला नहीं है ॥८८॥]

तब आलम्बन ने उसे दो गाथायें कहीं—

सुतं मेतं अरहतं सञ्ञतानं तपस्सिनं,
इध दानानि दत्वान सग्गं गच्छन्ति दायका,
जीवन्तो देहि दानानि यदि ते अत्थि दातवे ॥८९॥
अयं नागो महिद्धिको तेजसी दुरतिक्कमो,
तेन तं डंसयिस्सामि सो तं भस्मं कीरिस्सति ॥९०॥

[मैंने यह अरहतों से संयत-पुरुषों से तथा तपस्वियों से सुना है कि यहाँ दान देने से दाता स्वर्ग को जाते हैं। यदि तुझे किसी को दान देना है तो जीते जी दान दे ले ॥८९॥ यह महाऋद्धिमान, दुर्दमनीय, तेजस्वी नाग है। मैं इस नाग से तुझे डसाऊंगा। यह तुझे भस्म कर देगा ॥९०॥]

सुदर्शन का उत्तर था—

मया पेतं सुतं सम्म सञ्ञतानं तपस्सिनं,
इध दानानि दत्वान सग्गं गच्छन्ति दायका,
त्वमेव देहि जीवन्तो यदि ते अत्थि दातवे ॥९१॥

अयं अच्चीमुखी नाम पुण्णा उग्गस्स तेजसा,

ताय तं डंसयिस्सामि सा तं भस्मं करिस्सति ॥९२॥

[मित्र ! मैंने भी यह संयत-पुरुषों से तथा तपस्वियों से सुना है कि यहाँ दान देने से दाता स्वर्ग को जाते हैं। यदि किसी को दान देना है तो तू ही जीते जी दान दे ले ॥९१॥ यह उग्र तेज से भरी हुई है। नाम है अर्ची-मुख। मैं इससे तुझे डसाऊंगा और यह तुझे भस्म कर देगी ॥९२॥]

या धीता धतरट्ठस्स वेमाता भगिणी मम,

सा दिस्सतु अच्चिमुखी पुण्णा उग्गस्स तेजसा ॥९३॥

[जो धृतराष्ट्र की कन्या है तथा मेरी विमाता-बहन है, वह उग्र तेज से पूर्ण अर्चिमुखी प्रकट होवे ॥९३॥]

इतना कह उसने जनता के बीच में ही हाथ फैलाया और बहन को आवाज दी—"हे अर्चिमुखी ! मेरी जटाओं में से निकल हाथ पर प्रतिष्ठित हो।' उसने उसकी आवाज सुन जटा में रहते ही तीन बार मेण्डकी की आवाज की। फिर निकल कर उसके कंधे पर बैठी और वहाँ से कूदकर उसकी हथेली पर विष की तीन बूंदें गिरा फिर जटा में जा छिपी।

सुदर्शन विष लिये खड़ा था। उसने तीन बार कहा—"यह जनपद नष्ट हो जायगा। यह जनपद नष्ट हो गया।" उसके उस शब्द ने बारह योजन की वाराणसी को ढक लिया। राजा ने पूछा—"जनपद क्यों नष्ट हो जायगा ?"

"महाराज ! मैं कोई ऐसी जगह नहीं देखता जहाँ इस विष को गिरा सकूं।"

"तात ! यह पृथ्वी बहुत बड़ी है। पृथ्वी पर गिरा दे।"

उसने "महाराज ! नहीं गिरा सकता" कह निषेध करते हुए गाथायें कहीं—

छमायं चे निसिञ्चिस्सं ब्रह्मदत्त विजानहि,

तिण लतानि ओसध्यो उस्सुस्सेय्युं असंसयं ॥९४॥

उद्धं चे पातयिस्सामि ब्रह्मदत्त विजानहि

सत्तवस्सानयं देवो न वस्से न हिमं पते ॥९५॥

उदकं चे निसिञ्चिस्सं ब्रह्मदत्त विजानहि,

यावता ओदका पाणा मरेय्युं मच्छकच्छप ॥९६॥

[हे ब्रह्मदत्त ! तू यह बात जान ले कि यदि मैं इसे पृथ्वी पर गिराऊं तो जितने तृण, लतायें तथा औषधियाँ हैं, वे सब निश्चय से नष्ट हो जायेंगी ।।९४।। हे ब्रह्म-दत्त ! यह बात जान ले कि यदि मैं इसे ऊपर फेकूंगा तो सौ वर्ष तक न देव बरसेगा और न हिमपात होगा ।।९५।। हे ह्मदब्रत्त ! यह बात भी जान ले कि यदि मैं इसे पानी में गिरा दूं तो जितने भी मच्छ-कच्छप आदि जल के प्राणी हैं, वे सभी मर जायेंगे ।।९६।।]

तब राजा बोला—"तात ! हम कुछ नहीं जानते । जैसे हमारा राष्ट्र नष्ट न हो सो उपाय तुम ही जानो ।"

"तो महाराज ! इसी जगह क्रम से तीन गढ़े खुदवायें ।"

राजा ने खुदवाये । सुदर्शन ने बीच का गढ़ा नाना प्रकार की दवाइयों से भर-वाया । दूसरा गोबर से । तीसरा दिव्य औषधियों से । तब बीच के गढ़े में विष की बूंदें गिराई । उसी क्षण धुआँ देकर ज्वाला उठी । उसने जाकर गोबर वाले गढ़े को धर लिया । वहाँ से भी ज्वाला उठी और दूसरे दिव्य औषधियों से भरे गढे की सभी औषधियों को जलाकर बुझी । आलम्बायन उस गढ़े से थोड़ी ही दूर खड़ा था । उसे विष की गरमी छू गई । शरीर की चमड़ी उतर गई । उसे श्वेत-कुष्ठ हो गया । वह डर गया और तीन बार चिल्लाया कि नागराजाको छोड़ता ~ · ~ सुन बोधि-सत्व रतन-टोकरी से निकल, सभी अलंकारों से अलंकृत अपना रूप बना देवराज शक्र की भान्ति खड़ा हुआ । सुदर्शन और अर्चिमुखी भी वैसे ही खड़े हुए । तब सुदर्शन ने राजा से कहा—"महाराज ! हमें पहचानते हैं कि हम किसके पुत्र हैं ?"

"नहीं पहचानता हूँ ।"

"हमें नहीं पहचानेगा । क्या याद है कि काशीराज की समुद्रजा नाम की कन्या धृतराष्ट्र को दी गई थी ?"

"हाँ जानता हूँ । वह मेरी छोटी बहन है ।"

"हम उसके पुत्र हैं । तू हमारा मामा है ।"

यह सुन राजा ने उनका आलिङ्गन किया, सिर को चूमा, रोया और उन्हें प्रासाद पर चढ़ा बड़ा आदर-सत्कार करके भूरि-दत्त से कुशल-क्षेम पूछते हुए प्रश्न किया—

"तात ! तेरे सदृश उग्र-तेज को आलम्बायन ने कैसे पकड़ा ?"

उसने सब विस्तारपूर्वक बताया और फिर मामा को धर्मोपदेश दिया कि राजा को इस प्रकार राज्य करना चाहिये।

तब सुदर्शन बोला—"मामा ! मेरी मां भूरिदत्त को बिना देखे कष्ट पाती है। हम बाहर विलम्ब नहीं कर सकते।"

"अच्छा तात ! तुम जाओ। किन्तु मैं अपनी बहन को देखना चाहता हूं। कैसे देख सकूंगा।"

"मामा ! आर्य काशी-राजा कहाँ हैं ?"

"तात ! मेरी बहन के बिना (अकेले) न रह सकने के कारण राज्य छोड़, प्रव्रजित हो अमुक वन-खण्ड में रहते हैं।"

"मामा ! मेरी मां तुम्हें और आर्य को देखना चाहती है। तुम अमुक दिन आर्य के पास जाओ। हम मां को लेकर आर्य के आश्रम आयेंगे। वहां तुम भी उसे देखोगे।"

इस प्रकार वे मामा के साथ दिन पक्का करके राजभवन से उतरे। राजा भानजों को विदा कर, रोकर रुका। वे भी पृथ्वी में प्रविष्ट हो नाग-भवन पहुंचे।

नगर-प्रवेश काण्ड समाप्त

बोधिसत्व के आने पर सारा नगर मिलकर रोने-पीटने लगा। वह भी महीने भर टोकरी में पड़ा रहने के कारण रोगी-शैय्या पर जा लेटा। उसके पास आनेवाले नागों की सीमा नहीं थी। उसे उनके साथ बातचीत करने में कष्ट होता था। काणा अरिट्ठ देव लोक जाकर वहाँ बोधिसत्व को न पा पहले ही लौट आया था। यह समझ कि यह प्रचण्ड, कठोर स्वभाव का है और यह आनेवाले नागों को रोक सकेगा, उसे बोधिसत्व के लेटने की जगह द्वारपाल बना दिया।

सुभग भी सारे हिमालय में खोजकर, वहाँ से महासमुद्र तथा शेष नदियाँ देख यमुना को देखता चला आता था। नेसाद ब्राह्मण भी आलम्बायन को कोढ़ी देख सोचने लगा, "यह भूरिदत्त को कष्ट देने के कारण कोढ़ी हो गया। मैंने मणि के लोभ से अपने उस ऐसे उपकारी को आलम्बायन को दिखाया, मुझे उस पाप का फल मिले

मिलेगा। जब तक उसका फल मिलना आरम्भ नहीं होता तब तक यमुना जाकर पाप-प्रक्षालन-तीर्थ पर पाप-मोचन करूंगा।" वह वहाँ पहुंचा और यह कहता हुआ यमुना में उतरा कि मैंने भूरिदत्त के प्रति मित्र-द्रोह कर्म किया, उस पाप का प्रक्षालन करता हूँ।

उसी समय सुभग वहाँ पहुंचा। उसकी वह बात सुनी तो उसने सोचा, "इस पापी ने इतनी सम्पत्ति देने वाले मेरे भाई को केवल मणि के लोभ से आलम्बायन को दिखाया। इसे जीता नहीं छोड़ूंगा। उसने उसके पाँवों को पूंछ से लपेटा और खेंचकर पानी में डुबा दिया। जब उसका सांस रुकने लगा तब थोड़ा ढीला किया। उसने सिर उठाया। उसने फिर उसे खेंचकर, डुबाकर सांस रुकने पर थोड़ा ढीला किया। उसने सिर उठाया। इस प्रकार उसने बार बार उसे खेंचा और डुबाया। उससे बहुत क्लेश पाने पर नेसाद ब्राह्मण ने सिर उठाकर गाथा कही—

लोक्यं सजन्तं उदकं पयागस्मि पतिट्ठितं,
को मं अज्झोहरी भूतो ओगाकहं यमुनं नदिं ॥९७॥

[प्रयाग में पाप-नाशक जल से स्नान करते हुए मुझे किसने गहरी यमुना नदी में खेंचा? ॥९७॥]

सुभग ने उसे गाथा से उत्तर दिया—

यदेस लोकाधिपती यसस्सी
बाराणसिम्पकिरहरी समन्ततो,
तस्साहं पुत्तो उरगुसभस्स
सुभगोतिमं ब्राह्मण वेदयन्ति ॥९८॥

[जो यह यशस्वी लोकाधिपति है, जिसने चारों ओर से वाराणसी घेर रखी है, मैं उस सर्प-राज का पुत्र हूँ। हे ब्राह्मण! मुझे सुभग नाम से जानते हैं ॥९८॥]

'यह भूरिदत्त का भाई है, यह मुझे जीता नहीं छोड़ेगा। मैं इसकी और इसके माता पिता की प्रशंसा कर, इसके चित्त को कुछ मृदु बना इससे अपनी प्राण-भिक्षा मांगूं' सोच ब्राह्मण ने गाथा कही—

सचेहि पुत्तो उरगुसभस्स
कंसस्स रञ्ञो अमराधिपस्स,

मच्चेसु माता पन ते अतुल्या,
न तादिसो अरहति ब्राह्मणस्स
दासम्पि ओहातुं महानुभावो ॥९९॥

[यदि तू अमर-पति कंस राजा सर्प-राज का पुत्र है तो तेरी माता लोक में असमान है। तेरे जैसे महानुभाव के लिये ब्राह्मण के दास को भी डुवाना योग्य नहीं ॥९९॥]

तब सुभग ने 'दुष्ट ब्राह्मण ! तू सोचता है कि तू मुझे ठगकर जान बचा लेगा। मैं तुझे जीता न छोड़ूंगा' कहा और उसके पाप-कर्म को प्रकाशित किया—

रुक्खं निस्साय विज्झित्थो एणेय्यं पातुमागतं,
सो विद्धो दूरमसरा सरवेगेन सेखवा ॥१००॥
तं त्वं पतितमद्दक्खि अरञ्ञस्मि ब्रहावने,
समंसकाजमादाय सायं निग्रोधुपागमि ॥१०१॥
सुवसालिय संघुट्ठं पिंगियं सन्थतायुतं,
को सिलाभिरुदं रम्मं धुवं हरित सद्दलं ॥१०२॥
तत्थ ते सो पातुरहु इद्धिया यससा जलं,
महानुभावो भाता मे कञ्ञाहि परिवारितो ॥१०३॥
सो तेन परिचिण्णो त्वं सब्बकामेहि तप्पितो,
अदूभस्स तुवं दूभि तं ते वेरं इधागतं ॥१०४॥
खिप्पं गीवं पसारेहि न ते दस्सामि जीवितं,
भातु परिसरं वेरं छेदयिस्सामि ते सिरं ॥१०५॥

[पानी पीने के लिये आये मृग को वृक्ष के नीचे खड़े होकर बींधा। बाण-वेग से वह बिधा हुआ मृग शीघ्र दूर तक गया ॥१००॥ तूने उसे घोर जंगल में गिरा देखा। वहाँ से उसे बँहंगी में उठाकर शामको न्यग्रोध-वृक्ष पहुंचा॥१०१॥ तोते-मैना के स्वर से गुंजायमान, पिङ्गल-वर्ण शाखाओं से घिरा हुआ, कोकिलों के स्वर से युक्त, तथा जहाँ नित्य हरियाली थी—वहाँ कन्याओं से घिरा हुआ, ऋद्धि तथा यश से जाज्वल्यमान मेरा बड़ा भाई तुझे मिला॥१०२-१०३॥ उसने तुझे अपने भवन ले जाकर तेरी सब कामनायें पूरी कीं। उस अद्रोही के साथ तूने द्रोह किया। अब तेरा वह वैर-कर्म तेरे सामने आ गया है ॥१०४॥ जल्दी से अपनी गरदन निकाल।

मैं तुझे जीता नहीं छोडूंगा । भाई के साथ किया गया वैर पीछे-पीछे आया है। मैं तेरा सिर काटूंगा ।।१०५।।]

तब ब्राह्मण ने सोचा यह मुझे जीता नहीं छोड़ेगा । तो भी जैसे भी हो जीवित बने रहने के लिये प्रयत्न करना ही चाहिये । उसने गाथा कही—

अज्झापको याचयोगो आहुतग्गीच ब्राह्मणो,

एतेहि तीहि ठानेहि अवज्झो भवति ब्राह्मणो ।।१०६।।

[(वेद-) पाठी होने से, याज्ञिक होने से, तथा अग्नि-पूजक होने से ब्राह्मण अबध्य होता है ।।१०६।।]

यह सुन सुभग के मन में सन्देह पैदा हो गया। उसने तै किया कि इसे नाग-भवन ले जाकर भाई से पूछकर जानूंगा । उसने दो गाथायें कहीं—

यं पुरं धतरट्ठस्स ओगाळ्हं यमुनं नदिं,

जोतते सब्ब सोवण्णं गिरिं आहच्च यामुनं ।।१०७।।

तत्थ ते पुरिसब्यग्घा सोदरिया मम भातरो,

यथा ते तत्थ वक्खन्ति तथा हेस्सास ब्राह्मण ।।१०८।।

[यमुना नदी में स्थित जो धृतराष्ट्र का नगर है, जहाँ यमुना से समीप ही सर्व स्वर्णमय गिरि सुशोभित है, वहां हे पुरुष-व्याघ्र ! मेरे सहोदर भाई रहते हैं। हे ब्राह्मण । जैसा वे कहेंगे वैसा होगा ।। १०७-१०८।।

यह कह उसे गर्दन से पकड़, उठा, गाली देता हुआ ओर बे-इज्जती करता हुआ बोधिसत्व के महल के द्वार पर पहुंचा।

सुभग-काण्ड समाप्त

इस प्रकार द्वारपाल बनकर बैठे काने अरिट्ठ ने जब उस तरह कष्ट दिये जाकर लाये गये ब्राह्मण को देखा तो उसका स्वागत करते हुए, कहा, "सुभग, इसे कष्ट मत दे । ब्राह्मण महाब्रह्मा के पुत्र होते हैं । यदि महाब्रह्मा जानेगा कि मेरे पुत्रों को पीड़ा देते हैं, तो क्रुद्ध हो हमारे सारे नाग-भवन को नष्ट कर देगा । लोक में ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं, महाप्रतापी होते हैं । तू उनका प्रताप नहीं जानता । मैं जानता हूं ।" काना अरिट्ठ ठीक पिछले जन्म में एक याज्ञिक ब्राह्मण था । इसीसे ऐसा बोला ।

उसने ऐसा कहा और तब यज्ञ करने की ओर झुक, सुभग और नाग-परिषद को सम्बोधन कर बोला—"आओ, मैं यज्ञ करनेवालों ब्राह्मणों का गुण कहूंगा।" उसने यज्ञों का गुणानुवाद करते हुए कहा—

अनित्तरा इत्तरसम्पयुत्ता
यञ्ञा च वेदा च सुभोग लोके,
तदग्गरय्हं हि विनिन्दमानो
जहाति वित्तञ्च सतञ्च धम्मं॥१०९॥

[हे सुभग ! लोक में यज्ञ और वेद श्रेष्ठ हैं। उन यज्ञों तथा वेदों से युक्त ब्राह्मणों भी श्रेष्ठ हैं। इन अनिन्दनीयों की निन्दा करनेवाला धन और सत्पुरुषों के धर्म को छोड़ता है॥१०९॥]

उसने यह इसलिये कहा कि यह यह न कह सके कि इसने भूरिदत्त के प्रति मित्र-द्रोह-कर्म किया है। उसने पूछा—'सुभग ! जानता है कि इस संसार को किसने बनाया है ?"

"नहीं जानता हूँ।"

"ब्राह्मणों के पितामह ब्रह्मा ने बनाया है" बताने के लिये यह गाथा कही—

अज्झेनमरिया पठविं जनिन्दा
वेस्सा कसिं परिचरियं च सुद्दा
उपागु पच्चेकं यथा पदेसं
कताहु एते वसिनाति आहु॥११०॥

[उस महाब्रह्मा ने इन्हें बनाया और ब्राह्मणों के लिये अध्ययन, क्षत्रियों के लिये राज्य जीतना, वैश्यों के लिये कृषि तथा शूद्रों के लिये (तीनों वर्णों की) सेवा का विधान बनाया। ये नियमानुसार अपने अपने कर्म को प्राप्त हुए॥११०॥]

'इस प्रकार ये ब्राह्मण महागुणवान् हैं। जो इनमें श्रद्धा रखकर दान देता है, उसका फिर अन्यत्र जन्म नहीं होता। वह देव-लोक ही जाता है' कह गाथा कही—

धाता विधाता वरुणो कुवेरो
सोमो यमो चन्दिमा वायु सुरियो,

एते हि यञ्ञं पुथुसो यजित्वा

अज्झायकानं अथ सब्बकामे ॥१११॥

विकासितानि चापसतानि पञ्च

यो अज्जुनो बलवा भीमसेनो

सहस्सबाहु असमो पठब्या

सोपि तदा आदहि जातवेदं ॥११२॥

[धाता-विधाता, वरुण, कुबेर, सोम, याम, चन्द्रिमा, वायु तथा सूर्य्य आदि ने बहुत से यज्ञ करके देव-गति प्राप्त की ॥१११॥ जिस सहस्र-बाहु, भीम-सेन, बलवान अर्जुन ने पाँच सौ धनुष चढाये उस पृथ्वी-भर मे अनुलनीय वीर ने भी अग्नि-पूजा की ॥११२॥]

उसने आगे भी ब्राह्मण-प्रशसा मे ही गाथा कही—

यो ब्राह्मणे भोजयि दीघरत्तं

अन्नेन पाणेन यथानुभावं,

पसन्नचित्तो अनुमोदमानो

सुभोग देवञ्ञतरो अहोसि ॥११३॥

[जिसने प्रसन्न-चित्त हो, अनुमोद करते हुए यथा सामर्थ्य, दीर्घ-काल तक अन्न-पान मे ब्राह्मण की सेवा की, हे सुभग! वह देव-योनि मे उत्पन्न हुआ ॥११३॥]

ब्राह्मण अग्र-दक्षिणा देने योग्य है—इसीके समर्थन मे और भी गाथा कही—

महासनं देवमनोमवण्णि

यो सप्पिना असक्खि जेतुमग्गिं,

सो यञ्ञतन्तं वरतो यजित्वा

दिब्बं गतिं मुचलिन्दज्झगच्छि ॥११४॥

[जो मुचलिन्द (राजा) श्रेष्ठ-वर्ण, महान् भक्षी अग्नि-देवता को घी से सन्तुष्ट कर सका, वह यज्ञ के विधान के अनुसार यज्ञ करके दिव्य-गति को प्राप्त हुआ ॥११४॥]

उसने यह भी गाथा कही—

महानुभावो वस्ससहस्सजीवी
यो पब्बजि वस्सनेय्यो उलारो,
हित्वा अपरियन्तरथं ससेनं
राजा दुद्दीपोपि जगाम सग्गं ॥११५॥

[जो महाप्रतापी राजा हजार वर्ष तक जीता रहा, जिस उदार, दर्शनीय राजा ने सेनासहित असीमरथ को छोड़ प्रव्रज्या ग्रहण की, वह दुर्दीप राजा भी (यज्ञ करके स्वर्ग गया ॥११५॥)]

और भी उदाहरण देते हुए कहा—

सो सागरन्तं सागरो विजित्वा
यूपं सुभं सोण्णमयं उलारं,
उस्सेसि वेस्सानरमादहानो
सुभोग देवञ्ञतरो अहोसि ॥११६॥
यस्सानुभावेन सुभोग गंगा
पवत्तथ दधिसन्नं समुद्दं,
स लोमपादो परिचरियमग्गिं
अंगो सहस्सक्ख पुरज्झगच्छि ॥११७॥

[जिस सागर (सगर) राजा ने सागर पर्य्यन्त पृथ्वी जीती, उसने भी विश्वानर अग्नि की पूजा करते हुए बड़ा, स्वर्णमय यूप खड़ा किया। हे सुभोग! उसने देवगति प्राप्त की ॥११६॥ हे सुभग! जिस अङ्ग लोमपाद (राजा) के प्रताप से गङ्गा तथा समुद्र अस्तित्व में आये, उसने भी अग्नि-परिचर्य्या कर इन्द्र-लोक को गमन किया ॥११७॥]

उसे यह पूर्व की बात कह, यह गाथा कही—

महिद्धिको देववरो यसस्सी
सेनापती तिदिवे वासवस्स,
स सोमयागेन मलं विहन्त्वा
सुभोग देवञ्ञतरो अहोसि ॥११८॥

[इन्द्र का महाप्रतापी, श्रेष्ठ-देव, यशस्वी सेनापति भी सोमयज्ञ के द्वारा अपने को निर्मल कर देव-गति को प्राप्त हुआ ॥११८॥]

और भी उदाहरण देते हुए कहा—

अकारि यो लोकमिमं परञ्च
भागीरसिं हिमवन्तञ्च गिज्झं,
यो इद्धिमा देववरो यसस्सी
सोपि तदा अवहीं जातवेदं ॥११९॥
मालागिरि हिमवा योच गिज्झो
सुदस्सनो निसभो काकनेरू,
एतेच अञ्ञे च नगा महन्ता
चित्या कता यञ्ञकरेहिमाहु ॥१२०॥

[जिसने इस लोक तथा परलोक की रचना की, गङ्गा और हिमालय तथा गृध्र (कूट) पर्वतों की रचना की, उस ऋद्धिमान, श्रेष्ठ-देव, यशस्वी महाब्रह्म ने भी (लोकों की रचना करने से पहले) अग्नि की पूजा की ॥११६॥ कहा जाता है कि मालागिरि, हिमालय. गृध्र-कूट, सुदर्शन, निसभ तथा काकनेरू आदि जितने पर्वत हैं वे सब याज्ञिकों के लिये चुनकर बनाये गये आसनों से ही बढ़कर पर्वत हो गये हैं ॥१२०॥]

फिर कहा—"सुभोग भाई! जानता है कि यह समुद्र किस कारण से लवण रस तथा अपेय हो गया है?" "अरिट्ठ! नहीं जानता हूँ।" "तो तू ब्राह्मणों को मारना ही जानता है, ले सुन" कह अगली गाथा कही—

अज्झायकं मन्तगुणूपपन्नं,
तपस्सिनं याचयोगोतिचाहु,
तीरे समुद्दस्सुदकं सजन्तं
तं सागरज्झोहरि तेन पेय्यो ॥१२१॥

[यह सागर एक अध्यापक, वेद (मन्त्र) पाठी, तपस्वी, याज्ञिक ब्राह्मण को जब वह किनारे पर खड़ा अपने शरीर पर से पानी बहा रहा था, बहा ले गया (उसी से क्रुद्ध हो, महाब्रह्मा ने शाप दे दिया, और यह समुद्र) लवण-रस तथा अपेय हो गया ॥१२१॥]

और भी कहा—

आयाग वत्थूनि पुथु पथव्या
सं विज्जन्ति ब्राह्मणा वासवस्स,
पुरिमं दिसं पच्छिमं दक्खिणुत्तरं
संविज्जमाना जनयन्ति वेदं ॥१२२॥

[पृथ्वी में बहुत से ब्राह्मण देवेन्द्र शक्र के पुण्य-क्षेत्र हैं, वे पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर दिशा में रहकर इन्द्र के मन में प्रसन्नता पैदा करते हैं ॥१२२॥]

इस प्रकार अरिट्ठ ने चौदह गाथाओं से ब्राह्मणों की, यज्ञों की तथा वेदों की प्रशंसा की। उसका यह कहना सुन, बोधिसत्व की रोगी सुश्रुषा के लिये आये हुए बहुत से नाग 'यह सत्य ही कहता है' मान उसके मिथ्या-विश्वासी से हो गये। बोधिसत्व ने रोगी-शैय्या पर पड़े ही पड़े वह सब सुना। नागों ने भी उसे कहा। बोधिसत्व ने सोचा, "यह अरिट्ठ मिथ्या-मत की प्रशंसा कर रहा है। इसके मत का खण्डन कर जनता को सत्य-मतानुयायी बनाऊंगा।" उसने उठकर स्नान किया और सब अलंकारों से अलंकृत हो धर्मासन पर बैठ, सारी नाग-परिषद को एकत्र कर, अरिट्ठ को बुलाकर कहा: "अरिट्ठ! तू मिथ्या बात कहकर वेदों और यज्ञ की प्रशंसा कर रहा है। वेद-विधि के अनुसार जो ब्राह्मण का यज्ञ करना है वह अनिष्टकर है, स्वर्ग ले जाने वाला नहीं है। अपने मत की असत्यता देख।" उसने यज्ञों का खण्डन करते हुए कहा—

कलिं हि धीरानं कटं मगानं
भवन्ति वेदज्झगता नरिट्ठ,
मरीचिधम्मं असमेक्खितत्ता
मायागुणा नातिवहन्ति पञ्ञं ॥१२३॥

वेदा न ताणाय भवन्तिरस्स
मित्तद्दुनो भूनहुनो नरस्स,
न तायते परिचिण्णोच अग्गि
दोसन्तरं मच्चं अनरियकम्मं ॥१२४॥

सब्बे च मच्चा सधना सभोगा
आदीपितं दारु तिणेन मिस्सं,

वहं न तप्पे असमत्थतेजो
को तं सुभिक्खं विरसञ्ञ कुरिया ॥१२५॥

यथापि खीरं विपरिणाम धम्मं
दधि भवित्वा नवनीतम्पि होति,
एवम्पि अग्गी विपरिणामधम्मो
तेजो समोरोहति योगयुत्तो ॥१२६॥

न विस्सते अग्गिमनुप्पविट्ठो
सुक्खेसु कट्ठेसु नवेसु चापि,
नामन्थमानो अरणी नरेन
नाकम्मना जायति जातवेदो ॥१२७॥

सचेहि अग्गि अन्तरतो वसेय्य
सुक्खेसु कट्ठेसु नवेसु चापि,
सब्बानि सुस्सेय्युं वनानि लोके
सुक्खानि कट्ठानि च पज्जलेय्युं ॥१२८॥

करोति चे दारु तिणेन पुञ्ञं
भोजं नरो धूमसिखिं पतापवं,
अंगारिका लोणकरा च सूदा,
सरीरदाहापि करेय्युं पुञ्ञं ॥१२९॥

अथ चेहि एते न करोन्ति पुञ्ञं
अज्झेन मग्गिं इध तप्पयित्वा,
न कोचि लोकस्मिं करोति पुञ्ञं
भोजं नरो धूमसिखिं पतापवं ॥१३०॥

कथं हि लोकापचितो समानो
अमनुञ्ञगन्धं बहुन्नं अकन्तं,
यदेव मच्चा परिवज्जयन्ति
तदप्पसत्थं विरसञ्ञ भुञ्जे ॥१३१॥

सिखिं हि देवेसु वदन्तहेके
आपं मिलक्खा पन देवमाहु

सब्बेव एते वितथं भणन्ति
अग्गि न देवञ्ञतरो न चापो ॥१३२॥
निरिन्द्रियं सन्तं असञ्ञकायं
वेस्सानरं कम्मकरं पजानं,
परिचरियमग्गिं सुगतिं कथं वजे
पापानि कम्मानि पकुब्बमानो ॥१३३॥
सब्बाभिभूताहुध जीविकत्था
अग्गिस्स ब्रह्मा परिचारकोति
सब्बानु भावी च वसी किमत्थं
अनिम्मितो निम्मितं वन्दितस्स ॥१३४॥
हस्सं अनिज्झान खमं अतच्छं
सक्कारहेतु पकिरिंसु पुब्बे,
ते लाभसक्कारे अपातु भोन्ते
सन्थम्भिता जन्तुहि सन्तिधम्मं ॥१३५॥
अज्झेनमरिया पठविं जनिन्दा
वेस्सा कसिं परिचरियञ्च सुद्दा
उपागु पच्चेक यथा पदेसं
कताहु एते वसिनाति आहु ॥१३६॥
एतञ्च सच्चं वचनं भवेय्य
यथा इदं भासितं ब्राह्मणेहि
नाखत्तियो जातु लभेथ रज्जं
नाब्राह्मणो मन्तपदानि सिक्खे
नाञ्ञत्र वेस्सेहि कसिं करेय्य
सुद्दो न मुञ्चे परपेस्सिताय ॥१३७॥
यस्मा च एतं वचनं अभूतं
मुसाचिमे ओदरिया भणन्ति
तदप्पपञ्ञा अभिसद्दहन्ति
पस्सन्ति तं पण्डिता अत्तभावं ॥१३८॥

खत्त्या न वेस्सा न बलिं हरन्ति
आदाय सत्थानि चरन्ति ब्राह्मणा
तं तादिसं संखुभितं विभिन्नं
कस्मा ब्रह्मा नुज्जुकरोति लोकं ॥१३९॥
सचे हि सो इस्सरो सब्ब लोके
ब्रह्मा बहू भूतपती पजानं
माया मुसावज्जमदेन चापि
लोकं अधम्मेन किमत्थकासि ॥१४०॥
सचे हि यो इस्सरो सब्ब लोके
ब्रह्मा बहू भूतपती पजानं
अधम्मियो भूतपती अरिट्ठ
धम्मे सति यो विदही अधम्मं ॥१४१॥
कीटा पतंगा उरगा च भेका
हन्त्वा किमिं सुज्झति मक्खिकाच,
एते हि धम्मा अनरियरूपा
कम्बोजकामं वितथा बहुन्नं ॥१४२॥

[हे अरिट्ठ ! वेदाध्ययन धैर्य्यवान् पुरुषों का दुर्भाग्य है, और मूर्खो का सौभाग्य है। यह (वेदत्रय) मृगमरीचिका के समान हैं। सत्यासत्य का विवेक न करने से मूर्ख इन्हें सत्य मान लेते हैं। ये मायावी (वेद) प्रज्ञावान को धोखा नहीं दे सकते ॥१२३॥ मित्र-द्रोही और जीवनाशक (-भ्रूण-हत्यारे ?) को वेद नहीं बचा सकते। द्वेषी, अनार्यकर्मी आदमी को अग्नि-परिचर्य्या भी नहीं बचा सकती ॥१२४॥ यदि आदमी अपने सारे धन और सारे भोगों को लकड़ी और घास से मिलाकर जला डालें तो भी इस आग की तृप्ति नहीं होती। हेद्वि (?) रसज्ञ ! इस आग को कौन पर्य्याप्त भोजन दे सकता है ? ॥१२५॥ जिस प्रकार दूध परिवर्तनशील है, दही होकर मक्खन भी हो जाता है, उसी प्रकार अग्नि भी परिवर्तनशील है। वह दो अरणियों के संघर्ष से उत्पन्न हो जाती है ॥१२६॥ जब तक आग सूखी वा नई लकड़ी में ऊपर से न डाली गई हो, तब तक कहीं नहीं दिखाई देती। जब तक आदमी ने अरणियों को न रगड़ा हो तब भी नहीं दिखाई देती। जब तक

कोई ऐसा आदमी जिसके पास आग हो, आग पैदा करने का कर्म न करे तब तक आग पैदा नहीं होती ॥१२७॥ यदि नई या सूखी लकड़ी के अन्दर ही आग हो, तो संसार के सारे जंगल सूख जायें और सूखी लकड़ी में आग लग जाये ॥१२८॥ यदि आदमी प्रतापी आग को लकड़ी-घास खिलाने से 'पुण्य' करता हो, तो कोयले बनानेवाले, नमक बनानेवाले, भोजन बनाने वाले और श्मशान में मृत-शरीर जलानेवाले, सभी 'पुण्य' ही करते हैं ॥१२९॥ यदि ये 'पुण्य' नहीं करते तो फिर संसार में कोई भी आदमी वेद-मन्त्रों से आग को भोजन करानेवाला 'पुण्य' नहीं करता ॥१३०॥ हे द्विरसज्ञ ! यह कैसे है कि जिसे तुम संसार में 'पूज्य' कहते हो, वह ऐसी अप्रिय, असुन्दर वस्तुओं का भोजन करे, जिन्हें सामान्य प्राणी त्याग देते हैं ॥१३१॥ कुछ कहते हैं कि अग्नि 'देवता' है, कुछ म्लेच्छ (मिलक्ख ?) कहते हैं कि 'पानी' देवता है। यह सभी अयथार्थ कहते हैं। न अग्नि 'देवता' है और न पानी 'देवता' है। ॥१३२॥ जो इन्द्रिय-रहित है, जो चेतना रहित है, जो लोगों का खाना पकाना आदि काम करती है, उस अग्नि की परिचर्य्या करने से कोई भी पापी किस प्रकार स्वर्ग जा सकता है ? ॥१३३॥ अपनी जीविका चलाने के लिये (ब्राह्मणों ने पहले तो) कहा कि ब्रह्मा सबको अभिभूत करनेवाला है (तथा सारे लोक का निर्माता है) और फिर यह भी कहा कि ब्रह्मा भी 'अग्नि' की पूजा करता है। जब वह सर्व-श्रेष्ठ है और सब उसीके वश में हैं तो वह स्वयं किसीके द्वारा अनिर्मित होता हुआ भी अपनी ही निर्मित अग्नि की क्यों पूजा करता है ? ॥१३४॥ यह हंसी का विषय है, यह गम्भीरतापूर्वक विचार करने योग्य नही है, यह असत्य है। पूर्व समय में (ब्राह्मणों ने) सत्कार-प्राप्ति के हेतु ही इन बातों का प्रचार किया है। जब उन्हें पर्य्याप्त लाभ-सत्कार न मिला तो उन्होंने उस (कथन) में पशुओं को भी सम्मिलित करके (अर्थात् पशुबलि का प्रतिपादन कर) अपने शान्ति-धर्म को जड़ बना दिया ॥१३५॥ और यह जो कहा—उस महाब्रह्मा ने इन्हें बनाया और ब्राह्मणों के लिये अध्ययन, क्षत्रियों के लिये राज्य जीतना, वैश्यों के लिये कृषि तथा शूद्रों के लिये (तीनों वर्णों की) सेवा का विधान बनाया। ये नियमानुसार अपने-अपने कर्म को प्राप्त हुए ॥१३६॥ यदि इन ब्राह्मणों का यह कहना सत्य हो तो किसी अक्षत्रिय को कभी राज्य प्राप्त न हो, कोई अब्राह्मण कभी (वेद) मन्त्र न सीखे और वैश्यों

के अतिरिक्त कभी कोई खेती न करे और शूद्र कभी दूसरों की सेवा करने से मुक्त न हों ॥१३७॥ इनका यह कथन ठीक नहीं है और पेट के लिये यह झूठ बोलते हैं। मूर्ख लोग इनके कहने का विश्वास कर लेते हैं, लेकिन जो पण्डित हैं वे स्वयं देख लेते हैं कि यह कथन कितना सदोष है ॥१३८॥ क्षत्रिय और वैश्य 'बलि' नहीं देते हैं और ब्राह्मण शस्त्र लिये घूमते हैं। इस प्रकार "गड़-बड़" लोक को ब्रह्मा क्यों नहीं ठीक करता है? ॥१३९॥ यदि वह ब्रह्मा सब लोगों का "ईश्वर" है और सब प्राणियों का स्वामी है तो उसने लोक में यह माया, झूठ, दोष और मद क्यों पैदा किये हैं? ॥१४०॥ यदि वह ब्रह्मा सब लोगों का "ईश्वर" है और सब प्राणियों का स्वामी है तो हे अरिट्ठ! वह स्वयं अधार्मिक है, क्योंकि उसने "धर्म" के रहते "अधर्म" उत्पन्न किया ॥१४१॥ कीट, पतंग, साँप, मेण्डक तथा कीड़े और मक्खी मारने से प्राणी शुद्ध होते हैं। ये अनार्य-धर्म अधिकतया काम्बोजों में प्रचलित हैं ॥१४२॥]

इन्हीं का मिथ्यापन स्पष्ट करते हुए आगे कहा—

सचे हि सो सुज्झति यो हनाति
हतो पि सो सग्गमुपेति ठानं,
भोवादि भोवादिनमारभेय्युं
येवापि तेसं अभिसद्दहेय्युं ॥१४३॥
नेव मिगा न प्पसू नोपि गावो
आयाचन्ति अत्तवधाय केचि,
विप्फन्दमानं इध जीवकत्था
यञ्ञेसु पाणे पसुमाहरन्ति ॥१४४॥
यूपस्स ते पसुबन्धे च बाला
चित्तेहि वण्णेहि मुखं नयन्ति,
अयं ते यूपो कामदुहो परत्थ
भविस्सति सस्सतो सम्परायं ॥१४५॥
सचे च यूपे मणि संखमुत्तं
धञ्ञं धनं रजतं जातरूपं,
सुक्खेसु कट्ठेसु नवेसु चापि
सचे दुहे तिदिवे सब्बकामे;

तेविज्जसंघा च पुथू यजेय्युं
न ब्राह्मणा कञ्चि तं याजयेय्युं ॥१४६॥
कुतो च यूपे मणि संखमुत्तं
धञ्ञं धनं रजतं जातरूपं,
सुक्खेसु कट्ठेसु नवेसु चापि
कुतो दुहे तिदिवे सब्बकामे ॥१४७॥
सठा च लुद्दा उपलद्धबाला
चित्तेहि वण्णेहि मुखं नयन्ति,
आदाय अग्गिं मम देहि वित्तं
ततो सुखी होहिसि सब्बकामे ॥१४८॥
तमग्गिहुत्तं सरणं पविस्स
चित्रेहि वण्णेहि मुखं नयन्ति
ओरोपयित्वा केसमस्सुं नखञ्च
वेदेहि वित्तं अतिगालयन्ति ॥१४९॥
काका उलूकं च रहो लभित्वा
एकं समानं बहुका समेच्च,
अन्नानि भुत्वा कुहका कुहित्वा
मुण्डं कत्वा यञ्ञपथोस्सजन्ति ॥१५०॥
एवं हि सो वञ्चितो ब्राह्मणेहि
एको समानो बहुही समेच्च
ते योगयोगेन विलुम्पमाना
दिट्ठं अदिट्ठेन धनं हरन्ति ॥१५१॥
अकासिया राजूहि वानुसिट्ठा
तदस्स आदाय धनं हरन्ति,
ते तादिसा चोरसमा असन्ता
वज्झा न हञ्ञन्ति अरिट्ठ लोके ॥१५२॥
इन्दस्स बाहार सिदक्खिणाति
यञ्ञेसु छिन्दन्ति पलासयट्ठिं

तं चेपि सच्चं मघवा छिन्नबाहु
केनस्स इन्दो असुरे जिनाति ॥१५३॥

तञ्चेव तुच्छं मघवा समंगी
हन्ता अवज्झो परमो सदेवो
मन्ता इमे ब्राह्मणा तुच्छरूपा
सन्दिट्ठिका वञ्चना एस लोके ॥१५४॥

माला गिरि हिमवा यो च गिज्झो
सुदस्सनो निसभो काकनेरु,
एतेच अञ्ञेच नगा महन्ता
चित्या कता यञ्ञकरेहि माहु ॥१५५॥

यथप्पकारानिहि इट्ठकानि
चित्या कता यञ्ञकरेहि माहु,
न पब्बता होन्ति तथप्पकारा
अञ्ञादिसा अचला तिट्ठसेला ॥१५६॥

न इट्ठका होन्ति सिला चिरेनपि
न तत्थ सञ्ञायति अयो न लोहं
यञ्ञे च एतं परिवण्णयन्ता
चित्या कता यञ्ञकरेहि माहु ॥१५७॥

अज्झायकं मन्तगुणूपपन्नं
तपस्सिनं याचयोगोतिमाहु,
तीरे समुद्दस्सुदकं यजन्तं
तं सागरज्झोहरि तेनपेय्यो ॥१५८॥

परोसहस्सम्पि समन्तवेदे
मन्तुपपन्ने नदियो वहन्ति,
न तेन ब्यापन्न रसूदकानं
कस्मा समुद्दो अतुलो अपेय्यो ॥१५९॥

ये केचि कूपा इध जीवलोके
लोणूदका कूपखणेहि खाता,

न ब्राह्मणञ्ञोहरणेन तेसु
आपो अपेय्यो दिरसञ्ञ राहु ॥१६०॥
पुरे पुरत्था का कस्स भरिया
मनो मनुस्सं अजनेसि पुब्बे,
तेनापि धम्मेन न कोचि हीनो
एवम्पि वो सग्ग विभाग माहु ॥१६१॥
चण्डालपुत्तो पि अधिच्च वेदे
भासेय्य मन्ते कुसलो मुतीमा,
न तस्स मुद्धा विफलेय्य सत्तधा
मन्ता इमे अत्तवधाय कता ॥१६२॥
वाचाकता गिद्धिकता गहीता
दुम्मोचया कव्यपथानुपन्ना,
बालान चित्तं विसमे निविट्ठं
तदप्पपञ्ञा अभिसद्दहन्ति ॥१६३॥
सीहस्स ब्यग्घस्स च दीपिनो च
न विज्जति पोरिसियं बलेन,
मनुस्सभावो च गवंव पेक्खो
जाति हि तेसं असमा समाना ॥१६४॥
सचे च राजा पठविं विजित्वा
सजीव वा अस्सवो पारिसज्जो,
सयमेव सो सत्तुसंघं विजेय्य
तस्स पजा निच्चसुखी भवेय्य ॥१६५॥
खत्तियमन्ता च तयो च वेदा
अत्थेन एते समका भवन्ति,
तेसञ्च अत्थं अविनिच्छिनित्वा
न बुज्झति ओघपथंव छन्नं ॥१६६॥
खत्तियमन्ता च तयो च वेदा
अत्थेन एते समका भवन्ति,

लाभो अलाभो अयसो यसो च
सब्बे ते सब्बेसं चतुन्नं धम्मा ॥१६७॥
यथापि इब्भा धनधञ्ञहेतु
कम्मानि कारेन्ति पुथू पथब्या,
तेविज्जसंघापि तथेव अज्ज
कम्मानि कारेन्ति पुथु पथब्या ॥१६८॥
इब्भेहि एते समका भवन्ति
निच्चुस्सुका कामगुणेसु युत्ता,
कम्मानि कारेन्ति पुथु पथब्यां
तदप्पपञ्ञा दिरसञ्ञ राते ॥१६९॥

[यदि हत्या करानेवाला स्वर्ग जाता है और जिसकी हत्या होती है वह भी स्वर्ग जाता है, तो फिर ब्राह्मणों को ब्राह्मणों की हत्या करानी चाहिये और उन्हे उनका विश्वास करना चाहिये ॥१४३॥ न मृग, न पशु और न गौवें ही आत्म-बध की याचना करती हैं। जीविका के लिये ही यज्ञों में तड़पते हुए प्राणियों की हत्या की जाती है ॥१४४॥ वे मूर्ख विचित्र-विचित्र बातें बनाकर यजमान को ठगते हैं। कहते हैं—तूने 'यूप' के साथ पशुओं को बांधा है। यह यूप पर लोक में तेरी सब कामनायें पूरी करनेवाला होगा ॥१४५॥ यदि 'यूपों' में मणि, शङ्ख, मुक्ता हो, धान्य, धन, सोना-चान्दी हो, अथवा सूखे या नये काष्ठ में ही ये सब हों और स्वर्ग में सब कामनाओं की पूर्ति होती हो तो त्रिवेदज्ञ-ब्राह्मण पृथक होकर यज्ञ करें, वे दूसरे ब्राह्मणों से यज्ञ न करायें ॥१४६॥ कहाँ यूपों में मणि, शङ्ख और मुक्ता रखा है ! कहाँ धान्य, धन तथा चान्दी-सोना रखा है ? कहाँ सूखे अथवा नये काठ में ही रखा है ? और कहाँ पर-लोक में सब कामनाओं की पूर्ति रखी है ? ॥१४७॥ ये शठ, लोभी और मूर्ख ब्राह्मण सीधे-सादे लोगों को पाकर तरह-तरह की बातों से उन्हें ठगते हैं। कहते हैं—"तू आग ले और हमें धन दे। तू सुखी होगा ॥१४८॥ वे उन्हें अग्नि-शाला में प्रविष्ट करा नाना प्रकार की बातों से ठगते हैं। उनकी दाढ़ी, बाल और नख कटवाकर 'वेद' के नाम पर उनका बहुत धन ले लेते हैं ॥१४९॥ जिस प्रकार बहुत से कौवे एक अकेले उल्लू को अकेला पाकर (नोच डालते हैं), उसी प्रकार यह ब्राह्मण अन्न खाकर, यज्ञों की झूठ-मूठ प्रशंसा करके,

(यजमान को) लूटकर, यज्ञ-मण्डप छोड़ देते हैं ॥१५०॥ इसी प्रकार वह अकेला बहुत से एकत्र हुए ब्राह्मणों द्वारा ठगा जाता है। वे (ब्राह्मण) उसे नाना उपायों से ठगकर 'अदृष्ट' का लालच देकर उसका साक्षात धन लूट लेते हैं ॥१५१॥ जिस प्रकार राजाज्ञा से टैक्स लेनेवाले 'अकासी' नामक राज-कर्मचारी धन ले जाते हैं, उसी प्रकार ये (ब्राह्मण) भी धन ले जाते हैं। ये ऐसे असंयमी हैं, चोरों के समान हैं, वध करने योग्य हैं, (किन्तु आश्चर्य है) लोक में इन्हें मारा नहीं जाता ॥१५२॥ फिर ये ब्राह्मण, 'यह इन्द्र की दाहिनी बाँह है' कहकर पलास की लकड़ी तोड़ते हैं। यदि यह बात सत्य है तो छिन्न-बाहु इन्द्र असुरों को किस प्रकार जीतता है? ॥१५३॥ यदि इनका उक्त कथन असत्य है और सदेव इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है, (दूसरों को) मारने वाला है, अबध्य है, तो इन ब्राह्मणों के मन्त्र निस्सार हैं। यह तो दुनियाँ में साक्षात ठगी है ॥१५४॥ और यह जो कहा जाता है कि मालागिरि, हिमालय, गृध्रकूट, सुदर्शन, निसभ तथा काकनेरू आदि जितने पर्वत हैं वे याज्ञिकों के लिये चुनकर बनाये गये आसनों से ही बढ़कर पर्वत हो गये हैं ॥१५५॥ जिस प्रकार की ईटों से याज्ञिकों द्वारा चितायें बनाई जाती हैं, उस प्रकार के पर्वत नही होते। स्थिर-शैल पर्वत दूसरी ही तरह के होते हैं ॥१५६॥ चिरकाल में भी ईटें शिलायें नहीं बनतीं, अयस (तांबा) लोहा नहीं बनता। किन्तु यह यज्ञों की प्रशंसा करनेवाले कहते हैं कि ये (पर्वत) याज्ञिको के लिये चुने गये आसनों से बने हैं ॥१५७॥ फिर कहते हैं—यह सागर एक अध्यापक, वेद(-मन्त्र) पाठी, तपस्वी, याज्ञिक ब्राह्मण को जब वह किनारे पर खड़ा अपने शरीर पर से पानी बहा रहा था, वहा ले गया। (उसी से क्रुद्ध हो महाब्रह्मा ने शाप दे दिया और) यह समुद्र लवण-रस तथा अपेय हो गया ॥१५८॥ सवेद, मन्त्रधारी हजारों ब्राह्मणों को नदियाँ वहा ले जाती हैं। उससे नदियों का पानी खारा नहीं होता। तो महान् समुद्र ही अपेय क्यों हो गया? ॥१५९॥ दुनिया में कुए खननेवालों ने जितने खारे कुए खोदे हैं, हे द्विरसज्ञ! यह नहीं कहा जाता कि ब्राह्मण को बहा ले जाने के कारण ही उनका पानी खारा है ॥१६०॥ सृष्टि के आरम्भ में कौन किसकी भार्य्या थी? उस अत्यन्त आरम्भिक काल में मनुष्यों की मनोमय उत्पत्ति थी। इस बात का विचार करें तो भी कोई हीन नहीं है। ये विभाग अपने अपने कर्मानुसार ही हैं ।१६१॥ यदि कोई बुद्धिमान चण्डाल-

पुत्रो भी वेदों को पढ़कर उनका पाठ करता है तो उसका सिर सात टुकड़े नहीं हो जाता है। ब्राह्मणों के ये मन्त्र उन्हें झूठा सिद्ध कर उन्हीं का वध करते हैं ॥१६२॥ ये मन्त्र मिथ्या-चिंतन का परिणाम हैं। ये लोभी ब्राह्मणों द्वारा गृहीत हैं। ये (मछली के कांटे के समान) निकलते नहीं। ये कवि-ब्राह्मणों के मुंह से निकले हैं। इनसे मूर्खों का मन कुमार्ग में जाता है। इनमें अल्प-प्रज्ञा लोग ही विश्वास करते हैं ॥१६३॥ इन ब्राह्मणों का शरीर-बल सिंह, व्याघ्र तथा चीते के समान नहीं है। ये मनुष्य हैं, किन्तु इन्हें बैल के समान समझना चाहिये, क्योंकि इनकी जाति ही 'असम' है ॥१६४॥ यदि ब्राह्मणों के कथनानुसार ब्रह्मा ने ही क्षत्रियों का निर्माण किया हो तो राजा पृथ्वी को जीत ले और अपने अमात्यों तथा परिषद की सहायता के बिना स्वयं ही शत्रुओं को जीत ले और उसकी प्रजा सुखपूर्वक रहे। (किन्तु ऐसा नहीं होता) ? ॥१६५॥ क्षत्रिय-मन्त्र (राजनीति शास्त्र ?) और तीनों वेद अर्थ की दृष्टि से यह समान ही हैं। उनका अर्थ बाढ़ से ढके हुए रास्ते की तरह स्पष्ट नहीं है ॥१६६॥ क्षत्रिय-मन्त्र और तीनों वेद अर्थ की दृष्टि से ये समान ही हैं। लाभ, अलाभ, यश, अयश—ये लोक-धर्म चारो वर्णों के लिये समान हैं ॥१६७॥ जिस प्रकार दूसरे गृहस्थ धन धान्या के लिये दुनिया में नाना प्रकार के कर्म करते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण भी आज लोक में नाना प्रकार के व्यवसाय करते हैं ॥१६८॥ ये (अन्य) गृहस्थों के ही समान हैं, नित्य काम-भोगों के लिये उत्सुक रहते हैं, ये पृथ्वी पर नाना प्रकार के कर्म करते हैं। हे द्विरसज्ञ ! ये अल्प-प्रज्ञ धर्म से दूर हैं ॥१६९॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने उनके मत का खण्डन कर अपने मत की प्रतिष्ठा की। उसकी धर्म-कथा सुन नाग-परिषद प्रसन्न हुई।

यज्ञ-भेद-वाद काण्ड समाप्त

बोधिसत्व ने नेषाद-ब्राह्मण को नाग भवन से निकलवा दिया। उसका मजाक तक नहीं उड़ाया गया। सागर ब्रह्मदत्त भी निश्चित दिन से पूर्व ही चतुरङ्गिनी सेना साथ ले पिता के रहने की जगह गया। बोधिसत्व ने भी मुनादी करा दी कि मामा और आर्य को देखने जाऊंगा और बड़े ठाट-बाट के साथ यमुना पारकर उसी आश्रम की ओर प्रस्थान किया। शेष भाई

और उसके माता-पिता पीछे-पीछे चले। उस समय सागर-ब्रह्मदत्त ने जब बोधिसत्व को बहुत से लोगों सहित आते देखा तो पहचान न सकने के कारण पिता से पूछा—

कस्स भेरी मुतिंगा च संखा पणवदेण्डिमा,
पुरतो पटिपन्नानि हासयन्ता रथेसभं ॥१७०॥
कस्स कञ्चनपट्टेन पुथुना विज्जुवण्णिना,
युवा कलापसन्नद्धो को एति सिरिया जलं ॥१७१॥
ओक्कामुखे पहट्ठंव खदिरंगार सन्निभं,
मुखं चारुरिवाभाति को एति सिरिया जलं ॥१७२॥
कस्स जम्बोनदं छत्तं ससलाकं मनोरमं,
आदिच्चरंसावरणं को एति सिरिया जलं ॥१७३॥
कस्स अंकं परिग्गह्य वाळबीजनिमुत्तमं,
चरते वरपञ्ञस्स मुद्धनि उपरूपरि ॥१७४॥
कस्स पेखुणहत्थानि विचित्रानि मुदुनिच,
सपञ्ञमणिदण्डानि चरन्ति उभतो मुखं ॥१७५॥
खदिरंगारवण्णाभा ओक्कामुखे पहंसिता,
कस्सेते कुण्डला वग्गु सोभन्ति उभतो मुखं ॥१७६॥
कस्स वातेन छुपिता निद्धन्ता मुदुकालकं
सोभयन्ति नलाटन्तं नभाविज्जुरिवुग्गता ॥१७७॥
कस्स एतानि अक्खीनि आयतानि पुथूनि च,
को सोभति विसालक्खो कस्सेतं उण्णजं मुखं ॥१७८॥
कस्सेते लपनजा सुद्धा सुद्ध संखवरूपमा,
भासमानस्स सोभन्ति दन्ता कुप्पिलसादिसा ॥१७९॥
कस्स लाखारससमा हत्थपादा सुखेधिता,
को सो बिम्बोट्ठ सम्पन्नो दिवा सुरियोव भासति ॥१८०॥
हिमच्चये हेमवतो ब्राहासालोव पुप्फितो,
को सो ओदातपा वारो जयं इन्दोव सोभति ॥१८१॥
सुवण्णपिळकाकिण्णं मणि दण्ड विचित्रितं,
को सो परिसमोगय्ह ईसो खग्गंव मुञ्चति ॥१८२॥

सुवण्ण विकता चित्रा सुकता चित्रसिब्बना,
को सो ओमुञ्चते पादा नमो कत्वा महेसिनो ॥१८३॥

[ये राजा को प्रसन्न करनेवाले भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख, ढोल और दण्डिम बाजे किसके आगे-आगे बजते चले आ रहे हैं? ॥१७०॥ बिजली की तरह चमकनेवाले कांचन-वर्ण पट्टे सा किसका मुख-मण्डल चमक रहा है? यह कलाप-बंध कौन सा युवक श्री से सुशोभित चला आ रहा है? ॥१७१॥ सुनार की अंगीठी में डाले हुए, खदिर के अङ्गारों के समान चमकते हुए सुन्दर मुख वाला यह कौन है जो श्री से सुशोभित चला आ रहा है? ॥१७२॥ यह सुन्दर खम्भोंवाला, सुनहरी छत्र किसके सिर पर झूल रहा है? यह सूर्य्य की रश्मि-सदृश आवरणवाला कौन है जो श्री से सुशोभित चला आ रहा है? ॥१७३॥ किस श्रेष्ठ-प्रज्ञा के सिरके ऊपर-ऊपर गोद में लेकर चंवरी झली जा रही है? ॥१७४॥ किसके दोनों ओर विचित्र, मृदु हाथो में मोर-पंख हैं और किसके दोनों ओर स्वर्ण तथा मणि खचित दण्ड लिये चल रहे हैं? ॥१७५॥ सुनार की अंगीठी में डाले हुए खदिर के अङ्गारों की तरह प्रकाशमान ये सुन्दर कुण्डल किसके मुंह के दोनों ओर शोभा दे रहे हैं? ॥१७६॥ यह आकाश से उठी बिजली के समान, वायु-स्पर्श से हिलनेवाले, चिकने काले केश किसके मस्तक पर सुशोभित हैं? ॥१७७॥ ये बड़ी-बड़ी, चौड़ी-चौड़ी किसकी आँखें हैं? यह विशालाक्षी कौन है? और यह शीशे के समान किसका मुंह है? ॥१७८॥ शुद्ध शङ्ख के समान साफ, मुंह में उत्पन्न होनेवाले, मण्दार की कली के समान, बोलने पर शोभा बढ़ानेवाले ये किसके दान्त हैं? ॥१७९॥ ये लाख के रसके समान लाल लाल, सुख में स्मृद्ध किसके हाथ-पाँव हैं? यह कौन है जिसके होंठ बिम्ब के समान लाल हैं और जो दिन में सूर्य्य की तरह चमकता है? ॥१८०॥ हिमालय में हिम-पात के बाद पुष्पित विशाल शाल वृक्ष की तरह यह श्वेत-वस्त्र धारण किये कौन आ रहा है जो विजयी इन्द्र के समान सुशोभित है ॥१८१॥ सोने की मूठवाली और मणियों से खचित तलवार को परिषद में आकर स्वामी की तरह रखने वाला यह कौन है? ॥१८२॥ यह जो महर्षि को प्रणाम करके स्वर्ण-खचित, सुकृत, चित्रित खड़ाओं को पाँव से उतारता है, यह कौन है? ॥१८३॥]

इस प्रकार पुत्र सागर ब्रह्मदत्त के पूछने पर ऋद्धिमान, अभिज्ञा-लाभी तपस्वी न 'तात ! ये धृतराष्ट्र राजा के पुत्र तेरे भानजे नाग हैं' कहते हुए गाथा कही—

धतरट्ठा हि ते नागा इद्धिमन्तो यसस्सिनो,
समुद्दजाय उप्पन्ना नागा एते महिद्धिका ॥१८४॥

[ये ऋद्धिमान यशस्वी धृतराष्ट्र के नाग हैं । ये महा ऋद्धिवान् नाग समुद्र-जा से उत्पन्न हुए हैं ॥१८४॥]

जिस समय वे इस प्रकार कह ही रहे थे नाग-परिषद् ने आकर तपस्वी के चरणों में प्रणाम किया और एक ओर बैठी । समुद्रजा भी पिता को नमस्कार कर, रोकर, नाग-परिषद् के साथ नाग-भवन ही गई । सागर-ब्रह्मदत्त वहीं कुछ दिन रहकर वाराणसी ही गया । समुद्रजा ने नाग-भवन में ही शरीर छोड़ा । बोधिसत्व ने जीवन भर शील की रक्षा कर, उपोसथ-व्रत का पालन कर, आयु की समाप्ति पर, नाग-परिषद् सहित स्वर्ग-लाभ किया ।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्म-उपदेशना ला, 'उपासको ! इस प्रकार पुराने पण्डितों ने बुद्ध के उत्पन्न न हुए रहने पर भी, इस प्रकार की नाग-सम्पत्ति छोड़ उपोसथ-कर्म किया' कह जातक का मेल बैठाया । उस समय के माता-पिता महाराज-परिवार ही था । नेषाद-ब्राह्मण देवदत्त । सोमदत्त आनन्द । अर्ची-मुखी उत्पल वर्णा । सुदर्शन सारिपुत्र । सुभग मौद्गल्यायन । काणारिट्ठ सुनक्खत्त । भूरिदत्त तो मैं ही था ।

५४४. महानारद कश्यप जातक

"अहु राजा विदेहानं...." यह शास्ता ने लट्ठीवन उद्यान में विहार करते समय उरुवेल काश्यप के दमन के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता धर्म चक्र प्रवर्तन कर चुके थे। उरुवेल काश्यप आदि जटिलों का दमन कर चुके थे। वे मगध-नरेश को दिये वचन से मुक्त होने के लिये पूर्व के एक हजार जटिलों को लिये लट्ठि-वन उद्यान गये। उस समय मगध-नरेश बारह नियुत[1] परिषद के साथ आये और दसबल (-धारी) बुद्ध को प्रणाम करके बैठे। मगध-नरेश की परिषद में जो ब्राह्मण और गृहपति थे, उनके मन में वितर्क उत्पन्न हुआ—

"क्यों जी! उरुकाश्यप महाश्रमण के पास ब्रह्मचर्य आचरण करता है, अथवा महाश्रमण उरुवेल काश्यप के पास?"

तब भगवान् ने काश्यप के अपने पास प्रव्रजित होने की बात प्रकट करने के लिये यह गाथा कही—

किमेव दिस्वा उरुवेलवासि
पहासि अग्गिं किसको वदानो,
पुच्छामि तं कस्सप एतमत्थं
कथं पहीनं तव अग्गिहुत्तं ॥१॥

[हे उरुवेलवासि! हे तपः कृश के समर्थक! तूने क्या देखकर (अग्नि-होत्र) करना छोड़ा? हे काश्यप! मैं तुझे यह बात पूछता हूँ, तेरा अग्नि-होत्र कैसे छूटा? ॥१॥]

स्थविर ने भी भगवान् का मतलब समझ उत्तर दिया—

रूपे च सद्दे च अथो रसे च
कामित्थियो चाभिवदन्ति यञ्ञा,

---

१. बारह लाख

एतं मलंति उपधीसु अत्वा
तस्मा न पिट्ठे न हुते अरञ्जिं ॥२॥

[कहते हैं कि यज्ञ से रूप, शब्द, रस तथा काम-भोग का साधन स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं। इन उपाधियों को (चित्तका) मैल समझ लिया। इसलिये अब कामना से किये जाने वाले यज्ञ और अग्नि-होत्र में मन को कुछ आनन्द नहीं मिलता ॥२॥]

यह गाथा कह उरुवेल काश्यप ने अपना शिष्य-भाव प्रकट करने के लिये तथागत के चरणों में सिर रखा और 'भन्ते! भगवान! आप मेरे शास्ता हैं। मैं शिष्य हूँ' कहा। फिर एक ताड़, दो ताड़, तीन ताड़ . . . . सात ताड़ की ऊंचाई तक आकाश में सात बार उठ, तथागत को प्रणाम कर वह एक ओर बैठा। इस आश्चर्य को देख जनता शास्ता की प्रशंसा करने लगी—"ओह! बुद्धों का कितना प्रताप है! इस प्रकार के दृढ़ मत रखने वाले, अपने आपको अरहत समझनेवाले उरुवेल काश्यप के मत का खण्डन कर तथागत ने उसे वश में कर लिया।" तथागत ने कहा—"इसमें कुछ आश्चर्य नहीं यदि मैंने अब सर्वज्ञ होने पर इसका दमन किया है। पहले रागी होने की दशा में भी जब मैं नारद नाम का ब्रह्मा था, इसके मत को छिन्न-भिन्न कर, इसे विनम्र किया था।" इतना कह उस परिषद के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र में मिथिला में अङ्ग नामक राजा धर्मानुसार राज्य करता था। उसकी रुजा नामकी कन्या थी, अभिरूप, सुन्दर, हजार कल्पों से प्रार्थना करती चली आई, महापुण्यवती, अग्रमहेषी की कोख से उत्पन्न। उसकी शेष सोलह हजार रानियाँ बांझ थीं। उसकी लड़की प्रिया थी, मनको अच्छी लगनेवाली। वह उसके लिये नाना प्रकार के पुष्पों के पच्चीस टोकरे और सूक्ष्म वस्त्र रोज-रोज़ भेजता कि इनसे अपने आपको अलंकृत करे। खाने-पीने की चीजों की तो सीमा नहीं थी। प्रति पक्ष दान देने के लिये हजार भेजता। उसके विजय, सुनाम और अलात नाम के तीन अमात्य थे। उसने चातुर्मासिक कौमुदुनी का उत्सव होने पर, नगर तथा अन्तःपुर के देव-नगर की तरह अलंकृत होने पर, अच्छी प्रकार

से स्नान कर, अनुलिप्त हो, सब अलंकारों से अलंकृत हो शाम का भोजन किया। फिर खुले झरोखे, महातल्ले पर, अमात्यों के बीच बैठे-बैठे, साफ आकाश से गुजरते हुए चन्द्र-मण्डल को देख अमात्यों से प्रश्न किया—"हे! चान्दनी रात्रि रमणीय है। आज किसकी संगति करें?"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

अहु राजा विदेहानं अंगाति नाम खत्तियो
पहुत योग्गो धनिमा अनन्तबलपोरिसो ॥३॥
यो च पण्णरसिं रत्तिं पुरिमे यामे अनागते,
चातुमस्स कोमुदिया अमच्चे सन्नि पातयि ॥४॥
पण्डिते सुतसम्पन्ने महितपुब्बे विचक्खणे,
विजयञ्च सुनामञ्च सेनापतिमलातकं ॥५॥
तमनुपुच्छ वेदेहो पच्चेकं ब्रूथ सरुचिं,
चातुमस्सकोमुदज्ज जुण्हं ब्यपगतं तमं,
कायञ्ज रतिया रत्तिं विहरेमु इमं उतुं ॥६॥

[विदेहों का अङ्ग नामका क्षत्रिय राजा था। बहुत हाथी-घोड़े वाला, बहुत ऐश्वर्य्यवाला तथा अनन्त बल और पौरुष से युक्त ॥३॥ उसने अगली रात आने के पूर्व, चातुर्मास की चान्दनी पूर्णिमा को अमात्यों को इकट्ठा किया ॥४॥ (उसने) पण्डित, ज्ञानी, मुस्कराहट के साथ बोलनेवाले विजय, सुनाम, और सेनापति अलात को (इकट्ठा किया) ॥५॥ विदेह-नरेश ने उन सबसे पूछा कि अपनी अपनी रुचि के अनुसार उत्तर दो—"आज चातुर्मास की चाँदनी पूर्णिमा है। अन्धकार विलीन हो गया है। आज रात हम किसकी संगति करें? ॥६॥]

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो सेनापती रञ्ञो अलातो एतदब्रवि,
हट्ठं योग्गं बलं सब्बं सेनं सन्नाहयामसे ॥७॥
निय्याम देव युद्धाय अनन्तबलपोरिसा,
ये ते वसं न आयन्ति वसं उपनयामसे;
एसा मय्हं सका दिट्ठि अजितं ओजिनामसे ॥८॥

[तब सेनापति अलात यह बोला—सारी सेना सन्तुष्ट है, हाथी घोड़े से युक्त है। हम उसे सन्नद्ध करें। हे देव ! अपने अनन्त बल-पौरुष को युद्ध के लिये ले चलें। जो तेरे वश में नहीं आते हैं, उन्हें वश लायेंगे। मेरा अपना मत यह है कि जो प्रदेश अभी तक जीते नहीं गये हैं, हम उन्हें जीतेंगे ॥६-७॥]

अलातस्स वचो सुत्वा सुनामो एतदब्रवि,
सब्बे तुय्हं महाराज अमित्ता वसमागता ॥९॥
निक्खित्त सत्था पच्चत्था निवातमनुवत्तरे,
उत्तमो उस्सवो अज्ज न युद्धं मम रुच्चति ॥१०॥
अन्नं पाणञ्च खज्जञ्च खिप्पं अभिहरन्तु ते,
रमस्सु देव कामेहि नच्चगीते सुवादिते ॥११॥

[अलात की बात सुनकर सुनाम बोला, "हे महाराज ! तुम्हारे सभी शत्रु वशीभूत हो गये हैं। सभी अभिन्न शस्त्र छोड़ शान्त पड़े हैं। आज उत्सव का उत्तम दिन है। मुझे युद्ध अच्छा नहीं लगता। तुम्हारे लिये अन्न-पान तथा खाद्य शीघ्र लाया जाय। हे देव ! आज आप नृत्य-गीतादि काम-भोगों का आनन्द लें ॥९-१०॥]

सुनामस्स वचो सुत्वा विजयो एतदब्रवि,
सब्बे कामा महाराज निच्चं तवमुपट्ठिता ॥१२॥
न हेते दुल्लभा देव तव कामेहि मोदितुं,
सदापि कामा लब्भन्ति नेतं चित्तमतं मम ॥१३॥
समणं ब्राह्मणं वापि उपासेमु बहुस्सुतं,
यो नज्ज विनये कंखं अत्थधम्मविदू इसे ॥१४॥
विजयस्स वचो सुत्वा राजा अंगातिमब्रवि,
यथा विजयो भणति मय्हम्पेतेव रुच्चति ॥१५॥
समणं ब्राह्मणंवापि उपासेमु बहुस्सुतं,
योनस्स विनये कंखं अत्थधम्मविदू इसे ॥१६॥

[सुनाम की बात सुन विजय बोला—महाराज ! तुम्हारे लिये काम-भोग की सभी सामग्री नित्य सदा उपस्थित ही है। हे देव ! काम-भोगों में मौज मनाना

आपके लिये दुर्लभ नहीं हैं। काम-भोग तो सदा ही प्राप्य हैं। इसलिये मेरा यह मत नहीं है। हम किसी ऐसे बहुश्रुत श्रमण-ब्राह्मण की संगति करें जो अर्थ-धर्म का जानकार हो और जो आज हमारे सन्देहों को दूर करे ॥१२-१४॥ विजय की बात सुनी तो राजा अङ्ग बोला—जैसे विजय कहता है, मुझे भी यही अच्छा लगता है ॥१५॥ हम किसी ऐसे बहु-श्रुत श्रमण-ब्राह्मण की संगति करें जो अर्थ-धर्म का जानकार हो और जो आज हमारे सन्देहों को दूर करे ॥१६॥]

सब्बव सन्ता करोथ मतिं कं उपासेमु पण्डितं,
कोनज्ज विनये कंखं अत्थधम्मविदू इसे ॥१७॥
वेदेहस्स वचो सुत्वा अलातो एतदब्रवि,
अत्थायं मिगदायस्मि अचेलो धीरसम्मतो ॥१८॥
गुणो कस्सपगोत्तायं सुतो चित्रकथी गणी,
तं देव पयिरूपासय सो नो कंखं विनेस्सति ॥१९॥
अलातस्स वचो सुत्वा राजा चोदेसि सारथिं,
मिगदायं गमिस्साम युत्तं यानं इधानय ॥२०॥

[सभी इकट्ठे होकर विचार करो कि किस पण्डित की संगति करें। कौन अर्थ-धर्म का जानकार ऋषि आज मेरी शंकाओं का समाधान करेगा? ॥१७॥ विदेह-नरेश की बात सुनकर अलात बोला—मृगदाय में धीर-वान् अचेल (-निर्वस्त्र) है। सुना है कि वह गुणी है। काश्यप-गोत्र का है। विचित्र-कथिक है। गण का नेता है। हे देव! हम उसकी संगति करें। वह हमारी शंकाओं का समाधान करेगा। अलात की बात सुनी तो राजा ने सारथी को प्रेरित किया—हम मृगदाय चलेंगे। रथ को जोड़कर यहाँ लाओ ॥१८-२०॥]

तस्स यानं अयोजेसुं दन्तं रूपिय पक्खरं,
सुक्कमट्ठ परिवारं पण्डरं दोसिता मुखं ॥२१॥
तत्रासुं कुमुदा युत्ता चत्तारो सिन्धवा हया,
अनिलूपमसमुप्पाता सुदन्ता सोण्णमालिनो ॥२२॥
सतं छत्तं सेतरथो सेतस्सा सेतवीजनी,
वेदेहा सह मच्चेहि निय्यं चन्दोव सोभथ ॥२३॥

तमनुयायुं बहवो इन्दखग्गधरा बली,
अस्सपिट्ठिगता धीरा नरा नरवराधिपं ॥२४॥
सो मुहुत्तं व यायित्वा याना ओरुय्ह खत्तियो,
वदेहो सहमच्चेहि पत्ति गुणमुपागमि ॥२५॥
येपि तत्थ तदा आसुं ब्राह्मनिब्भा समागता,
न ते अपनयी राजा अकटं भूमिमागते ॥२६॥

[उसके लिये रथ जोता गया—दन्त-निर्मित, चान्दी के किनारेवाला, शुद्ध, चिकना, श्वेत तथा चन्द्रिका सदृश ॥२१॥ वहाँ चार कुमुद-वर्ण सैन्धव घोड़े जुते थे, जो वेग में वायु के समान थे, सुदान्त थे और जिनके गले में सुनहरी मालायें थीं ॥२२॥ श्वेत-छत्र, श्वेत-रथ, श्वेत-अश्व तथा श्वेत-वीजनी के साथ अमात्यों सहित विदेह राजा चन्द्रमा की तरह शोभा देता था ॥२३॥ बहुत से इन्द्रखड्गधारी, बलवान्, अश्वारोही आदमियों ने उस राजा का अनुगमन किया ॥२४॥ वह कुछ देर चलकर रथ से उतर, अमात्यों सहित विदेह राजा पैदल ही आजीवक के पास पहुंचा ॥२५॥ वहाँ जो भी ब्राह्मण तथा गृहपति पहले से आये हुए थे, राजा ने उन को वहाँ से विदा नहीं किया ॥२६॥]

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो सो मुदुकाभिसिया मुदुचित्तकलन्दके,
मुदुपच्चत्थते राजा एकमन्तं उपाविसी ॥२७॥
निसज्ज राजा सम्मोदि कथं साराणियं ततो,
कच्चि यापनियं भन्ते वातानमविसग्गता ॥२८॥
कच्चि अकसिरा वुत्ति लब्भति पिण्डयापनं,
अप्पाबाधो चसि कच्चि चक्खुं न परिहायति ॥२९॥
तं गुणो पटिसम्मोदि वेदेहं विनये रतं,
यापनीयं महाराज सब्बमेतं तदूभयं ॥३०॥
कच्चि तुय्हम्पि वेदेहे पच्चन्ता न बलीयरे,
कच्चि अरोगं योग्गं ते कच्चि वहति वाहनं
कच्चि ते व्याधयो नत्थि सरीरस्सुपतापिका ॥३१॥

पटिसम्मोदितो राजा ततो पुच्छि अनन्तरा,
अत्थं धम्मञ्च ञायञ्च धम्मकामो रथेसभो ॥३२॥
कथं धम्मं चरे मच्चो मातापितुसु कस्सप,
कथं चरे आचरिये पुत्तदारे कथं चरे ॥३३॥
कथं चरेय्य वद्धेसु कथं समण-ब्राह्मणे
कथञ्च बलकायस्मि कथं जानपदे चरे ॥३४॥
कथं धम्मं चरित्वान पेच्च गच्छति सुग्गतिं ।
कथञ्चेके अधम्मट्ठा पतन्ति निरयं अधो ॥३५॥

[तब वह राजा कोमल गद्दे पर बिछे कोमल-आस्तरण और कोमल-चादर पर एक ओर बैठा ॥२७॥ उसने बैठकर आजीवक का कुशल-समाचार पूछा — "भन्ते ! सुख से तो हैं ? शरीर में वायु आदि की कोई बाधा तो नहीं है ? ॥२८॥ क्या भोजन बिना कठिनाई के मिल जाता है ? शरीर में विशेष रोग तो नहीं है ? दृष्टि तो मन्द नहीं पड़ रही है ? ॥२९॥ तब आजीवक ने उस विनीत विदेह-नरेश का कुशल-क्षेम पूछते हुए उत्तर दिया—"महाराज ! भोजनादि की सब सुविधा है और शरीर भी ठीक है ॥३०॥ हे विदेह ! क्या तुम्हारे जनपद में भी विद्रोह तो नहीं होता है ? क्या तुम्हारे रथ की सवारी तुम्हें अस्वस्थ तो नहीं बनाती है ? क्या शरीर को कष्ट देनेवाला तुम्हें कोई रोग तो नहीं है ? ॥३१॥ इस प्रकार पूछे जाने पर, इसके बाद धर्म-कामी राजा ने अर्थ, धर्म तथा ज्ञान के विषय में प्रश्न पूछा—हे काश्यप ! माता-पिता के प्रति आदमी क्या धर्माचरण करे ? आचार्यों के साथ कैसे बरते ? स्त्री-पुत्र के साथ कैसे बरते ? अपने बड़ों के साथ कैसे बरते ? श्रमण-ब्राह्मणों के साथ कैसे बरते ? सेना के साथ कैसा वरताव करे ? जनपद-वासियों के साथ कैसा व्यवहार करे ? किस तरह धर्माचरण करने से आदमी स्वर्ग लाभ करता है और किस तरह कुछ अधर्माचरण करनेवाले नीचे नरक में जाकर गिरते हैं ? ॥३२-३५॥]

इस प्रकार पूछे जाने पर उसने प्रश्नों का उत्तर न दे, चरते हुए बैल को ठूंग मारने की तरह अथवा भात के बरतन में कूड़ा-करकट फेंकने की तरह, 'महाराज ! 'सुन' कह अपने मिथ्या-मत का वर्णन किया ।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

वेदेहस्स वचो सुत्वा कस्सपो एतदब्रवि,
सुणोहि मे महाराज सच्चं अवितथं पदं ॥३६॥
नत्थि धम्मस्स चिण्णस्स फलं कल्याण पापकं,
नत्थि देव परो लोको को ततोहि इधागतो ॥३७॥
नत्थि देव पितरोव कुतो माता कुतो पिता,
नत्थि आचरियो नाम अदन्तं को दमेस्सति ॥३८॥
समतुल्यानि भूतानि नत्थि जेट्ठापचायिनी,
नत्थि बलं वा विरियं वा कुतो उट्ठानपोरिसं;
नियतानिहि भूतानि यथा गोटविसो तथा ॥३९॥
लद्धेय्यं लभते मच्चो तत्थ दानफलं कुतो,
नत्थि दानफलं देव अवसो देव वीरियो ॥४०॥
बालेहि दानं पञ्ञत्तं पण्डितेहि पटिच्छितं,
अवसा देन्ति धीरानं बाला पण्डितमानिनो ॥४१॥

[वेदेह का कथन सुना तो काश्यप बोला—"महाराज ! यथार्थ सत्य बात सुनें ॥३६॥ धर्माचरण का कुछ अच्छा-बुरा फल नहीं होता । देव ! परलोक नहीं है । वहाँ से यहाँ कौन आया है ? ॥३७॥ देव ! पितर ही नहीं है, तो कहाँ की माता और कहाँ का पिता ? जब आचार्य्य ही नहीं है तो असंयत को संयत कौन बनायेगा ? ॥३८॥ सभी प्राणी बराबर हैं। उनमें कोई छोटा-बड़ा नहीं है न कहीं कोई 'बल' है और न 'वीर्य्य'। तब पुरुष-पुराकम कहाँ से होगा ? जिस प्रकार नौका का पिछला हिस्सा उसके पीछे-पीछे ही चलता है, उसी प्रकार प्राणियों को भी 'नियति' के पीछे पीछे ही चलना पड़ता है ॥३९॥ जो आदमी को मिलना होता है, वह मिलता है; उसमें दान-फल कहाँ से आया ? हे देव ! दान-फल नहीं है दान-देने-वाला मजबूरी से देता है ॥४०॥ मूर्खों ने दान देने की बात कही है। पण्डितों ने दान लेना स्वीकार किया है। अपने आपको पण्डित समझने वाले मूर्ख मजबूरी से धीर-पुरुषों को दान देते हैं ॥४१॥]

इस प्रकार दान की निष्फलता का वर्णन कर अब पाप का फलाभाव वर्णन किया।

सत्तिमे सस्सता काया अच्छेज्जा अविकोपिनो,
तेजो पठविरापो च वायो सुखदुक्खञ्चिमे,
जीवे च सन्तिमे काया येसं छेत्ता न विज्जति ॥४२॥
नत्थि हन्ता वा छेत्ता वा हञ्ञरेवापि कोचिनं,
अन्तरेनेव कायानं सत्थानि वीतिवत्तरे ॥४३॥
योपायं सिरमादाय परेसं निसितासिना,
न सो छिन्दति ते काये तत्थ पापफलं कुतो ॥४४॥
चल्लासीति महाकप्पे सब्बे सुज्झन्ति संसरं,
अनागते तम्हि काले सञ्ञतोपि न सुज्झति ॥४५॥
चरित्वापि बहुं भद्रं नेव सुज्झन्ति नागते,
पापञ्चेपि बहुं कत्वा तं खणं नातिवत्तरे ॥४६॥
अनुपुब्बेन नो सुद्धि कप्पानं चुल्लसीतिया,
नियतिं नातिवत्ताम वेलन्तमिव सागरो ॥४७॥

[अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु, सुख, दुख और जीव—ये सात शास्वत हैं अछेद्य हैं, अविकोप्य हैं, इनको काट सकने वाला कोई नहीं हैं ॥४२॥ न कोई इनका नाश करनेवाला है, न इन्हें काटनेवाला है और न कोई नाश किया जा सकने वाला है। शस्त्र इनके बीच में से ही घूमते रहते हैं ॥४३॥ जो तेज तलवार से दूसरों के सिर काटना है वह भी उन अग्नि, पृथ्वी आदि को नहीं काटता है, तो पाप-फल कहाँ से होगा ? ॥४४॥ चौरासी महाकल्पों तक संसार में संसरण करने से सभी शुद्ध हो जाते हैं। उस समय के आने से पूर्व संयत भी शुद्ध नहीं होता ॥४५॥ बहुत पुण्य कर्म करने पर भी वह समय आने से पूर्व शुद्धि नहीं होती। और बहुत पाप करके भी उस क्षण का उल्लंघन नहीं होता ॥४६॥ चौरासी महाकल्पों के बीतने पर हमारी शुद्धि अनायास हो जाती है। हम 'नियति' को उसी प्रकार नहीं लाँघ सकते जैसे सागर अपने तट को ॥४७॥]

इस प्रकार उसने 'उच्छेदवाद' को अपनी सामर्थ्यानुसार अपना मत बनाकर पृथक करके कहा।

कस्सपस्स वचो सुत्वा अलातो एतदब्रवि,
यथा भदन्तो भणति मय्हम्पेतेव रुच्चति ॥४८॥

अहम्पि पुरिमं जातिं सरे संसरितं ततो,
पिंगलो नामहं आसिं लुद्दो गोघातको पुरे ॥४९॥
बाराणसियं फीताय बहुं पापं कतं मया,
बहू मय्हं हता पाणा महिसा सूकरा अजा ॥५०॥
ततो चुतो इध जातो इद्धे सेनापतिकुले,
नत्थि नून फलं पापे सोहं न निरयं गतो ॥५१॥

[काश्यप की बात सुनी तो अलात (मन्त्री) बोला—"जैसा भदन्त कहते हैं मुझे भी वही ठीक जंचता है ॥४८॥ मुझे भी अपना पूर्व-जन्म स्मरण है। मैं पहले पिङ्गल नामका गोघातक कसाई था ॥४९॥ मैंने समृद्ध वाराणसी में बहुत पाप कर्म किया। मैंने भैंसे, सूअर और बकरियाँ बहुत से प्राणियों का घात किया ॥५०॥ वहाँ से मरकर यहाँ समृद्ध सेनापति कुल में जन्म हुआ। निश्चय से पाप कर्म का बुरा फल नहीं होता। मैं नरकगामी नहीं हीं हुआ ॥५१॥]

अत्थेत्थ बीजको नाम दासो आसि पळच्चरि,
उपोसथं उपवसन्तो गुणसन्तिकमुपागमि ॥५२॥
कस्सपस्स वचो सुत्वा अलातस्स च भासितं,
पस्सन्तो मुहुं उण्हं रुदं अस्सूनि वत्तयि ॥५३॥

[इसी मिथिला नगरी में बीजक नाम का एक दरिद्र दास था। वह उपोसथ-व्रत रखता था और वह उस 'मुनि' के पास आया ॥५२॥ उसने काश्यप का वचन और अलात का कहना सुना तो थोड़ी देर गर्म-सांस लेकर आँखों से आँसू वहाने लगा ॥५३॥]

तमनुपुच्छि वैदेहो किमत्थं सम्म रोदयि,
किं ते सुतं वा दिट्ठं वा किं मे वेदेसि वेदनं ॥५४॥

[उसे विदेह-राज ने पूछा, "अरे! किसलिये रो रहा है? तूने क्या सुना है? अथवा क्या देखा है? और तू मुझसे अपनी क्या पीड़ा व्यक्त कर रहा है? ॥५४॥]

वेदेहस्स वचो सुत्वा बीजको एतदब्रुवि,
नत्थि मे वेदना दुक्खा महाराज सुणोहि मे ॥५५॥

अहम्मि पुरिमं जातिं सरामि सुखमत्तनो,
साकेताहं पुरे आसिं भावसेट्ठी गुणे रतो ॥५६॥
सम्मतो ब्राह्मणिब्भानं संविभागरतो सुची,
न चापि पापकं कम्मं सरामि कतमत्तनो ॥५७॥
ततो चुताहं वेदेह इध जातो दरित्थिया,
गब्भम्हि कुम्भ दासिया यतो जातो सुदुग्गतो ॥५८॥
एवम्पि दुग्गतो सन्तो समचरियं अधिट्ठितो,
उपड्ढभागं भत्तस्स ददामि यो मे इच्छति ॥५९॥
चातुद्दसिं पञ्चदसिं सदा उपवसामहं,
न चापि भूते हिंसामि थेय्यञ्चापि विवज्जयिं ॥६०॥
सब्बमेव हि नूनेतं सुचिण्णं भवति निप्फलं,
निरत्थं मञ्ञिदं सीलं अलातो यथ भासति ॥६१॥
कलिमेव नून गण्हामि असिप्पो धुत्तको यथा,
कटं अलातो गण्हाति कितवा सिक्खितो यथा ॥६२॥
द्वारं ताप्पतिपस्सामि येन गच्छामि सुग्गतिं,
तस्मा राज परोदामि सुत्वा कस्सप भासितं ॥६३॥

[विदेह-राज की बात सुन बीजक इस प्रकार बोला—महाराज ! मेरी बात सुनें। मुझे किसी पीड़ा का दुख नहीं है ॥५५॥ मैं भी अपने पूर्वजन्म के सुख को याद करता हूँ। मैं पहले जन्म में साकेत में रहता था। मेरा नाम भावसेट्ठी था और मैं गुणी था ॥५६॥ मैं ब्राह्मणों तथा गृहपतियों द्वारा सम्मानित था, दानी था, पवित्र जीवन व्यतीत करता था। मुझे स्मरण नहीं कि मैंने कभी कोई पाप-कर्म किया हो ॥५७॥ वहाँ मरकर मैं यहाँ इस पानी लानेवाली दासी के गर्भ से पैदा हुआ जिससे मेरी बहुत बुरी हालत हो गई ॥५८॥ इस दुरवस्था में भी मैं समान व्यवहार का निश्चय कर जो चाहता है उसे अपना आधा भात दे देता हूँ ॥५९॥ मैं चतुर्दशी तथा पूर्णिमा को सदा उपोसथ-व्रत धारण करता हूँ। मैं प्राणियों की हत्या भी नहीं करता और चोरी भी नहीं करता ॥६०॥ यह समस्त सदाचार निष्फल ही है। मैं भी अलात जैसे कहता है वैसे यही समझता हूँ कि यह सब शील निरर्थक है ॥६१॥ जैसे अशिक्षित जुआरी पराजित हो जाता है, वैसे मैं पराजित हो

गया हूँ और जैसे शिक्षित जुआरी विजयी होता है, उसी प्रकार मैं जीत गया हूँ ।।६२।। मैं सुगति को प्राप्त होने का द्वार नहीं देखता । इसीलिये काश्यप की बात सुनकर रोता हूँ ।।६३।।]

बीजकस्स वचो सुत्वा राजा अंगातिमब्रवि,
नत्थि द्वारं सुगतिया नियतिं कंख बीजक ।।६४।।
सुखं वा यदि वा दुक्खं नियतिया किर लब्भति,
संसारसुद्धि सब्बेसं मा तुरित्थो अनागते ।।६५।।
अहम्पि पुब्बे कल्याणो ब्राह्मणिब्भेसु ब्यावटो,
वोहारमनुसासन्तो रतिहीनो तदन्तरा ।।६६।।

[पहले उन दोनों का और बाद में) बीजक का कहना सुनकर अङ्ग नरेश बोला—'बीजक! सुगति का दूसरा मार्ग नहीं है । नियति की प्रतीक्षा कर । ।।६४।। यदि सुख या दुःख 'नियति' से ही मिलता है, तो भविष्य में सभी की शुद्धि होगी ही । तू जल्द-बाजी मत कर ।।६५।। मैं भी आज तक ब्राह्मण तथा गृहपतियों के कृत्यों में ही संलग्न रहा और मुकद्दमों का फैसला करता रहा । इस बीच में मैं काम-रति से विहीन रहा ।।६६।।]

इतना कह उसने विदा मांगते हुए कहा—"भन्ते काश्यप ! इतना समय हमने प्रमाद में ही बिता दिया । किन्तु अब हमें आचार्य्य मिल गया । अब से मैं काम-भोगों में ही अनुरक्त रहूंगा । अब मे तुम्हारा धर्मोपदेश सुनना भी विलम्ब ही करेगा । आप रहें । हम चलेंगे ।।"

पुनापि भन्ते दक्खेयु संगति चे भविस्सति,

(यदि संयोग होगा तो फिर भी भेंट होगी ।)

इदं वत्वान वेदेहो पच्चगा सन्निवेसनं ।।६७।।

(यह कह विदेह-नरेश अपने भवन चला गया ।)

राजा पहले गुण (मुनि) के पास गया और प्रणाम करके प्रश्न पूछा । जाते समय बिना प्रणाम किये ही गया । गुण (मुनि) के अवगुण के कारण उसे नमस्कार भी नहीं मिला । भोजनादि सत्कार क्या मिलता ! राजा ने भी उस रात्रि के बीत

जाने पर अगले दिन अमात्यों को बुला आज्ञा दी—"मेरे लिये काम-भोग के साधन जुटाओ। अब से मैं काम-भोगों में ही अनुरक्त रहूंगा। मुझे और दूसरा कोई कार्य्य न कहा जाय। मुकद्दमों का फैसला अमुक करे।"

इतना कह राजा काम-भोगों में ही अनुरक्त हो गया। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

ततो रत्या विवसने उपट्ठानम्हि अंगति,
अमच्चे सन्निपातेत्वा इदं वचनमब्रवि ॥६८॥
चन्दके मे विमानस्मि सदा कामे विधेन्तु मे,
मामुपगच्छुं अत्थेसु गुय्हप्पाकासियेसु च ॥६९॥
विजयो च सुनामो च सेनापति अलातको,
एते अत्थे निसीदन्तु वोहार कुसला तयो ॥७०॥
इदं वत्वान वेदेहो कामेव बहुमञ्ञथ,
न चापि ब्राह्मणिब्भेसु अत्थे किस्मिञ्चि व्यावटो ॥७१॥

[तब रात्रि के बीतने पर अपनी सेवामें आये हुए अमात्यों को इकट्ठा कर अङ्ग-नरेश यह बोला ॥६८॥ मेरे चन्दक प्रासाद में नित्य काम-भोगों की व्यवस्था रहे। प्रकट अथवा रहस्य कोई भी काम होने पर कोई भी मेरे पास न आये ॥६९॥ बीज, सुनाम और अलात सेनापति—ये तीनों न्याय करने में दक्ष हैं, यही न्याय किया करें ॥७०॥ इतना कह चुकने पर विदेह-नरेश काम भोगों को ही अत्यधिक महत्व देने लगा। वह ब्राह्मणों तथा गृहपतियों का कोई भी कार्य्य नहीं करता था ॥७१॥]

ततो द्वे सत्त रत्तस्स वेदेहस्सत्रजा पिया,
राजकञ्ञा रुजा नाम धाति मातरमब्रवि ॥७२॥
अलंकरोथ मं खिप्पं सखियो च करोन्तु मे,
सुवे पण्णरसो दिब्बो गच्छे इस्सरसन्तिके ॥७३॥
तस्सा माल्यं अभिहरिसु चन्दनञ्च महारहं,
मणिसंखमुत्तारतनं नाना रत्ते च अम्बरे ॥७४॥
तञ्च सोवण्ण ये पीठे निसिन्नं बहुकित्थियो,
परिकिरिय असोभिंसु राजं रुचिरवण्णिनि ॥७५॥

[उसके चौदह दिन बाद रुजा नामकी राजा की प्यारी कन्या ने दाइ को कहा ।।७२।। मुझे शीघ्र अलंकृत करो और मेरी सखियाँ भी करें। कल दिव्य पूर्णिमा है। मैं राजा के पास जाऊंगी ।।७३।। उसके लिये मालायें लाई गई, बहुत मूल्यवान् चन्दन लाया गया। मणि, शङ्ख, मुक्ता तथा रतन लाये गये और नाना रंग के वस्त्र (?) ।।७४।। उस सोने के पीठे पर बैठी हुई सुन्दर रुजा (नामक कन्या) को बहुत सी स्त्रियों ने घेरकर अलंकृत किया ।।७५।।]

साच सखीमज्झगता सब्बाभरणभूसिता,
सतेरता अब्भमिव चन्दकं पाविसी रुजा ।।७६।।
उपसंकमित्वा वेदेहं वन्दित्वा विनयेरतं,
सुवण्ण विकते पीठे एकमन्तं उपाविसि ।।७७।।

[सभी अलंकारों से विभूषित, सखियों सहित रुजा चन्दक प्रासाद में बिजुली की तरह प्रविष्ट हुई ।।७६।। विदेह के पास पहुंच और उस विनयी राजा को प्रणाम कर वह स्वर्ण-खचित पीढे पर एक ओर बैठी ।।७७।।]

तञ्च दिस्वान वेदेहो अच्छरानंव संगमं,
राजं सखीमज्झगतं इदं वचनमब्रवी ।।७८।।
कच्चि रमसि पासादे अन्तोपोक्खरणिं पति,
कच्चि बहुविधं खज्जं सदा अभिहरन्ति ते ।।७९।।
कच्चि बहुविधं माल्यं ओचिनित्वा कुमारियो,
घरके करोथ पच्चेकं खिड्डारतिरता मुहुं ।।८०।।
केन वा विकलं तुय्हं खिप्पं अभिहरन्तु ते,
मनो करस्सु कुड्डमुखी अपि चन्दसमम्हिपि ।।८१।।

[विदेह-नरेश ने जब वह अप्सराओं का समागम सा देखा और उन सखियों के बीच में रुजा को देखा तो वह बोला ।।७८।। क्या प्रासाद में मन लगता है? क्या पुष्करिणी रुचति है? क्या तेरे लिये बहुत प्रकार की खाद्य-सामग्री लाई जाती है? ।।७९।। क्या क्रीड़ा-रत कुमारियाँ नाना प्रकार के फूलों को लेकर प्रत्येक पृथक-पृथक घर बनाती हैं? ।।८०।। तू किस कारण से विकल है? वह शीघ्र दूर हो। हे कली के समान मुंहवाली! जो इच्छा हो उसे व्यक्त कर, चाहे चन्द्रमा सदृश वस्तु भी हो ।।८१।।]

वेदेहस्स वचो सुत्वा रुजा पितरमब्रवि
सब्बमेतं महाराज लब्भतिस्सरसन्तिके ॥८२॥
सुवे पण्णरसो दिब्बो सहस्सं आहरन्तु मे,
यथादिन्नञ्च दस्सामि दानं सब्बवणीसुहं ॥८३॥

[विदेह-नरेश का वचन सुनकर रुजा ने पिता को कहा—महाराज ! आपके पास से यह सब मिलता है ॥८२॥ कल दिव्य पूर्णिमा है, मेरे लिये हजार लाये जायें। जैसे दिया वैसे ही सब याचकों को दान दूंगी ॥८३॥]

रुजाय वचनं सुत्वा राजा अंगातिमब्रवी,
बहुं विनासितं वित्तं निरत्थं अफलं तया ॥८४॥
उपोसथं वसं निच्चं अन्नपाणं न भुञ्जसि,
नियतेतं अभुत्तब्बं नत्थि पुञ्ञं अभुञ्जतो ॥८५॥

[रुजा की बात सुनी तो अङ्ग राजा बोला—"तूने बहुत सा धन निरर्थक नष्ट कर दिया ॥८४॥ तू नित्य उपोसथ-व्रत रखती है और खाना-पाना ग्रहण नहीं करती। तुझे 'नियति' के वश होकर ही भूखा रहना पड़ता है। न खाने में कोई पुण्य नहीं है ॥८५॥]

वीजकोपि हि सुत्वान तदा कस्सपभासितं,
पस्ससन्तो मुहुं उण्हं रुदं अस्सुनि वत्तयि ॥८६॥
याव रुजे जीवसि नो मा भत्तमपनामयि,
नत्थि भद्दे परोलोको किं निरत्थं विहञ्ञसि ॥८७॥

[(और भी कहा:—) उस समय काश्यप का भाषण सुनकर बीजक ने भी गर्म-सांस ली और उसकी आँख से आंसू बहने लगे ॥८६॥ हे रुजा ! जब तक तू जीती है, खाना मत छोड़। भद्रे ! परलोक है ही नहीं, तू अपने आपको व्यर्थ क्यों कष्ट देती है ? ॥८७॥]

वेदेहस्स वचो सुत्वा रुजा रुचिरवण्णिनी,
नजानं पुब्बापरं धम्मं पितरं एतदब्रवी ॥८८॥
सुतमेव मे पुरे आसि सक्खि दिट्ठमिदं मया,
बालूपसेवी यो होति बालोव समपज्जथ ॥८९॥

मूळहो हि मूलहमागम्म भीय्यो मोहं निगच्छति,
पतिरूपं अलातेन बोजकेन च मुय्हितुं ॥९०॥

[विदेह-राजा की बात सुन सुन्दरवर्ण वाली रुजा ने पूर्वापर धर्म की जानकार होने के कारण पिता को यह कहा ॥८८॥ पहले मैंने यह सुना ही था, किन्तु आज साक्षात देख लिया कि मूर्ख की संगति करनेवाला मूर्ख हो जाता है ॥८९॥ मूढ़ की संगति करने से मूढ़ और भी अधिक मूढ़ हो जाता है। (इसलिये) अलात और बीजक का अधिक मूर्ख बन जाना उनके योग्य ही है ॥९०॥]

त्वञ्च देव सप्पञ्ञो धीरो अत्थस्स कोविदो,
कथं बालेहि सदिसं हीनं दिट्ठि उपागमि ॥९१॥
सचे हि संसारपथने सुज्झति
निरत्थियापबज्जा गुणस्स,
कीटोव अग्गि जलितं अपापकं
उपपज्जति मोमुहो नग्गभावं ॥९२॥
संसारसुद्धोति पुरे निविट्ठा
कम्मं विदूसेन्ति बहू अजानं,
पुब्बे कलि दुग्गहितोव अत्था
दुम्मोचया बलिसा अम्बुजोव ॥९३॥

[देव ! आप तो प्रज्ञावान्, हैं अर्थ के जानकार हैं। आपने मूर्खों के समान मिथ्या-मत कैसे ग्रहण कर लिया ॥९१॥ यदि संसार में अनायास ही शुद्धि हो जाती है तो गुण (मुनि) की प्रव्रज्या निरर्थक है। वह मूढ़ जलती आग में पड़नेवाले कीड़े की तरह नग्न-भाव को प्राप्त होता है ॥९२॥ संसार में अनायास ही शुद्धि हो जाती है, पहले से ही इस धारणा वाले बहुत से अज्ञ जन कर्म-फल को दोष देते हैं। वे इस दुर्गृहीत अर्थ के कारण पहले ही पराजित रहते हैं। जिस प्रकार मछली के गले से काँटा निकलना कठिन है, उसी प्रकार इन लोगों का इस मिथ्या-मत से निकलना कठिन है ॥९३॥]

इससे आगे भी उदाहरण देती हुई बोली—

उपमं ते करिस्सामि महाराज तवत्थिया,
उपमायपिधेकच्चे अत्थं जानन्ति पण्डिता ॥९४॥
वाणिजानं यथा नावा अप्पभाफभरा गरु,
अतिभारं समादाय अण्णवे अवसीदति ॥९५॥
एवमेव नरो पापं थोकथो कम्पि आचिनं,
अतिभारं समादाय निरये अवसीदति ॥९६॥
न ताव भारो परिपूरो अलातस्स महीपति,
आचिनाति च तं पापं येन गच्छति दुग्गति ॥९७॥
पुब्बेवस्स कतं पुञ्ञं अलातस्स महीपति,
तस्सेस देव निस्सन्दो यञ्चेसा लभते सुखं ॥९८॥
खीयतेवस्स तं पुञ्ञं तथाहि अगुणे रतो,
उजुमग्गं अपाहाय कुम्मग्गमनुधावति ॥९९॥
तुला यथा पग्गहिता ओहिते तुलमण्डले,
उन्नमेति तुलासीसं भारे ओरोपिते सति ॥१००॥
एवमेव नरो पुञ्ञं थोकथोकाम्पि आचिनं,
सग्गातिमानो दासोव बीजको सातवे रतो ॥१०१॥

[महाराज ! तुम्हारे हित के लिये मैं उपमा देता हूँ । कुछ पण्डित उपमा से भी बात समझ लेते हैं ॥९४॥ जिस प्रकार अति-भारवाली व्यापारियों की नौका अति भारी होने से समुद्र में डूब जाती है ॥९५॥ उसी प्रकार आदमी थोड़ा-थोड़ा पाप-कर्म करता हुआ भी अति-भार हो जाने से नरक में जा गिरता है ॥९६॥ राजन् ! अभी अलात का पाप-भार पूरा नहीं हुआ । वह उस पाप का संग्रह कर रहा है, जिससे आदमी दुर्गति को प्राप्त होता है ॥९७॥ राजन् ! यह अलात का पहले का किया हुआ पुण्य-कर्म ही है जिसके कारण वह सुख भोग रहा है ॥९८॥ उसका वह पुण्य क्षीण हो रहा है । इसीसे वह अवगुण-प्रेमी हो गया है । वह सुमार्ग को छोड़ कुमार्ग पर दौड़ा जा रहा है ॥९९॥ जिस प्रकार तराजू के पलड़े में भार के रख देने पर तराजू की डण्डी झुक जाती है, इसी प्रकार आदमी थोड़ा-थोड़ा भी पुण्य संचय करता है और वह स्वर्ग की कामना करनेवाले 'बीजक' दास की तरह कुशल-कर्म में लगा रहता है ॥१००-१०१॥]

और भी कहा—

यञ्चज्ज बीजको दासो दुक्खं पस्सति अत्तनि,
पुब्बे तस्स कतं पापं तमेसो पटिसेवति ॥१०२॥
खीयते वस्स तं पापं तथाहि विनये रतो,
कस्सपञ्च समापज्ज माहेवुप्पथमागम ॥१०३॥

[यह जो बीजक दास दुक्ख का अनुभव करता है, यह उसका पहले का किया हुआ पाप-कर्म है जिसे वह भोगता है ॥१०२॥ उसका वह पाप-कर्म क्षीण होता जाता है। इसीसे वह सदाचार-रत है। हे पिता! आप काश्यप की संगति के कारण कुमार्ग-गामी न बनें ॥१०३॥]

अब उसे कुसंगति का दोष और सत्संगति का गुण बताया—

यं यं हि राज भजति सतं वा यदि वा असं,
सीलवन्तं विसीलं वा वसं तस्सेव गच्छति ॥१०४॥
यादिसं कुरुते मित्तं यादिसञ्चुपसेवति,
सोपि तादिसको होति सहवासो हि तादिसो ॥१०५॥
सेवमानो सेवमानं सम्फुट्ठो सम्फुसं परं,
सरो दिद्धो कलापं व अलित्तमुपलिम्पति;
उपलेपभया धीरो नेव पापसखा सिया ॥१०६॥
पूतिमच्छं कुसग्गेन यो नरो उपनय्हति,
कुसापि पूतिवायन्ति एवं बालूपसेवना ॥१०७॥
तगरञ्च पलासेन यो नरो उपनय्हति,
पत्तापि सुरभि वायन्ति एवं धीरूपसेवना ॥१०८॥
तस्मा फल पुटस्सेव ञत्वा सम्पाकमत्तनो
असन्ते नोपसेवेय्य सन्तो सेवेय्य पण्डितो,
असन्तो निरयं नेन्ति सन्तो पापेन्ति सुग्गतिं ॥१०९॥

[राजन्! आदमी जैसी भी संगति करता है चाहे अच्छी हो चाहे बुरी हो; चाहे सदाचारी की हो, चाहे दुराचारी की, आदमी उसी के वशीभूत हो जाता है ॥१०४॥ जैसे लोगों से भी मित्रता करता है, जैसी भी संगत करता है, वह आदमी

भी वैसा ही हो जाता है, क्योंकि उसकी संगति भी वैसी ही है ।।१०५।। जिससे स्पर्श होता है वह दूसरे स्पर्श करनेवाले को, और जिसकी संगति की जाती है वह दूसरे संगति करने वाले को ऐसे ही लबेड़ देता है जैसे जहर में बुझा हुआ तीर तूणीर के दूसरे तीरों को। लिब्बड़ने के डर से बुद्धिमान आदमी को चाहिये कि पापी की संगत न करे ।।१०६।। जो आदमी कुशा के सिरे से भी सड़ी हुई मछली को ले जाता है, तो कुशा भी बदबूदार हो जाती है। यही हाल मूर्खों की संगति का है ।।१०७।। जो आदमी तगर की सुगन्धि को पलास से ले जाता है, पलास के पत्ते भी सुगन्धित हो जाते हैं ।।१०८।। इसलिये यह जानकर कि मैं भी पलाश के डूने की तरह पाण्डित्य को प्राप्त हो सकता हूँ, बुद्धिमान् आदमी को चाहिये कि वह असत्पुरुषों की संगति न करे, सत्पुरुषों की संगति करे। असत्पुरुषों की संगति नरक ले जाती है, सत्पुरुषों की संगति स्वर्ग ले जाती है ।।१०९।।]

इस प्रकार राज-कन्या ने छः गाथाओं से पिता को धर्मोपदेश दे, पूर्व में आत्मानुभूत दुःख का वर्णन करते हुए कहा—

अहम्पि जातियो सत्त सरे संसरितत्तनो,
अनागतापि सत्तेव या गमिस्सं इतो चुता ।।११०।।

या मे सा सत्तमी जाति अहु पुब्बे जनाधिप,
कम्मारपुत्तो मगधेसु अहुं राजगहे पुरे ।।१११।।

पापं सहाये आगम्म बहुं पापं कतं मया,
परदारस्स हेठेन्तो चरिम्ह अमरा विया ।।११२।।

तं कम्मं निहितं अट्ठा भस्मच्छन्नोव पावको,
अथ अञ्ञेहि कम्मेहि अजायिं वंसभूमियं ।।११३।।

कोसम्बियं, सेट्ठिकुले इद्धेफीते महद्धने,
एकपुत्तो महाराज निच्चं सक्कतपूजितो ।।११४।।

तत्थ मित्तं असेविस्सं सहायं सातवे रतं,
पण्डितं सुत सम्पन्नं सो मं अत्थे निवेसयि ।।११५।।

चातुद्दसिं पञ्चदसिं बहुं रत्तिमुपावसिं,
तं कम्मं निहितं अट्ठा निधीव उदकन्तिके ।।११६।।

अथ पापानं कम्मानं यमेतं मगधे कतं,
फलं परियागतं पच्छा भुत्वा दुट्ठविसं यथा ।।११७।।

ततो चुताहं वेदेह रोरुवे निरये चिरं,
सकम्मना अपच्चिस्सं तं सरे न सुखं लभे ।।११८।।

बहुवस्सगणे तत्थ खेपयित्वा बहुं दुखं,
भेण्णाकटे अहुंराज छकलो उद्धितप्फलो ।।११९।।

[मुझे भी अपने सात जन्म याद हैं और वे सात जन्म भी याद हैं, जहाँ जहाँ यहाँ से मरकर जन्म ग्रहण करूंगी ।।११०।। हे जनाधिप ! वह जो मेरा सातवाँ जन्म था, उस जन्म में मैंने मगध में राजगृह में सुनार होकर जन्म ग्रहण किया ।।१११।। बुरी संगति के कारण मैंने बहुत पाप किये । मैं देवताओं की तरह पर स्त्री-गमन करता रहा ।।११२।। मेरा वह कर्म राख से ढकी आग की तरह ढका पड़ा रहा । एक दूसरे कर्म के फलस्वरूप मेरा जन्म 'वंस' देश में हुआ ।।११३।। मैं कोसम्बी में स्मृद्ध, महाधनवान् सेठ के कुल में पैदा हुआ । महाराज ! मैं अकेला पुत्र था । मेरा नित्य आदर होता था, पूजा होती थी ।।११४।। वहाँ एक पंडित, ज्ञानी, शुभ कर्मी मित्र की संगति की । उसने मुझे सदर्थ में लगाया ।।११५।। मैंने बहुतसी चतुर्दशियाँ और पूर्णिमाओं को उपोसथ-व्रत किया । मेरा वह कर्म पानी में दबे हुए खजाने की तरह छिपा था ।।११६।। जो पाप-कर्म मैंने मगध में किये थे उनका फल मेरे पीछे आया जैसे खाये हुए खराब-विष का फल ।।११७।। हे विदेह-नरेश ! वहाँ से च्युत होकर मैं अपने कर्म के फलस्वरूप रौरव नरक में पैदा हुई और वहाँ चिरकाल तक रही, उसकी यादकर मुझे सुख नहीं होता ।।११८।। बहुत वर्षों तक वहाँ बहुत दुःख सहन करने के बाद मैं हे राजन् ! भेण्णाकट में भारवाही बकरा हुआ ।।११९।।]

इस अर्थ को प्रकट करती हुई गाथा कहने लगी—

सातपुत्ता मया वूळहा पिट्ठिया च रथेन च,
तस्स कम्मस्स निस्सन्दो परदारगमणस्स मे ।।१२०।।

[मैंने अमात्यों के पुत्रों को पीठ पर और गाड़ी में जुतकर ढोया । यह सब मेरे उसी पर-स्त्री-गमन का फल है ।।१२०।।]

वहाँ से च्युत होकर जंगल में बन्दर की जून में जन्म ग्रहण किया। पैदा होने के दिन ही यूथ-पति (सरदार) को दिखाया गया। उसने 'मेरे पुत्र को लाओ' कहा और वह चिल्लाता ही रहा तथा उसने दान्त से अण्डकोष-उखाड़ दिये।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए कहा—

ततो चुताहं वेदेह कपि आसिं ब्रहावने,
निलिच्छतफलोयेव यूथपेन पगाब्भिना,
तस्स कम्मस्स निस्सन्दो परदारगमनस्समे ॥१२१॥

[हे विदेह-नरेश! वहाँ से च्युत होकर मैं महावन में कपि होकर पैदा हुआ। प्रगल्भ यूथपति ने मेरे अंण्ड-कोष ही उखाड़ डाले। यह परस्त्री-गमन का ही फल था ॥१२१॥]

इससे आगे दूसरे जन्मों को भी प्रकट किया—

ततो चुताहं वेदेह दसण्णेसु पसू अहुं,
निलिच्छितो जवे भद्रो योग्गं मूलहं चिरं मया,
तस्स कम्मस्स निस्सन्दो परदारगमनस्स मे ॥१२२॥
ततो चुताहं वेदेह वज्जीसु कुलमागमा,
नेवित्थी न पुमा आसिं मनुस्सत्ते सुदुल्लभे;
तस्स कम्मस्स निस्सन्दो परदारगमनस्स मे ॥१२३॥
ततो चुताहं वेदेह अजायि नन्दने वने,
भवने तावतिंसाहं अच्छरा कामवण्णिनी ॥१२४॥
विचित्तवत्थाभरणा आमुत्तमणिकुण्डला,
कुसला नच्चगीतस्स सक्कस्स परिचारिका ॥१२५॥
तत्थ ठिताहं वेदेह सरामि जातियो इमा,
अनागतेपि सत्तेव या गमिस्सं इतो चुता ॥१२६॥
परियागतं तं कुसलं यं मे कोसम्बियं कतं,
देवेचेव मनुस्से च सन्धाविस्सं इतोचुता ॥१२७॥
सत्त जच्चो महाराज निच्चं सक्कतपूजिता,
थीभावापि न मुच्चिस्सं छट्ठो निगतियो इमा ॥१२८॥
सतमी च गती देव देवपुत्तो महिद्धिको,
पुमदेवो भविस्सामि देवकायस्मिमुत्तमो ॥१२९॥

अज्जापि सन्तानमयं मालं गन्थेन्ति नन्दने,
देवपुत्तो जवो नाम यो मे मालं पटिच्छति ॥१३०॥
मुहुत्तो विय सो दिब्बो इमानि वस्सानि सोळस,
रत्तिन्दिवो च सो दिब्बो मानुसिं सरदो सतं ॥१३१॥
इति कम्मानि अन्वेन्ति असंखेय्यापि जातियो,
कल्याणं यदि वा पापं नहि कम्मं पनस्सति ॥१३२॥

[वहाँ से च्युत होकर दशार्णव देश में मैं बैल होकर पैदा हुई। मेरे अण्ड-कोष नष्ट कर दिये गये। मैं चलने में अच्छा था। मैंने चिरकाल तक भार ढोया। यह मुझे परस्त्री-गमन का ही फल मिला ॥१२२॥ हे विदेह-नरेश ! वहाँ से च्युत होकर मैंने वज्जी जनपद में एक कुल में जन्म ग्रहण किया। उस दुर्लभ मनुष्य-योनि को पाकर भी न मैं स्त्री था न पुरुष था अर्थात् नपुंसक था। यह मेरे परस्त्री-गमन का ही परिणाम था ॥१२३॥ हे विदेह-नरेश ! वहाँ से च्युत होकर मैंने नन्दन-वन में जन्म ग्रहण किया—त्रयोत्रिंश भवन में, अप्सरा हुई, यथेच्छ रूप धारण कर सकने वाली, विचित्र वस्त्रों तथा आभूषणों वाली, मोतियों तथा मणिकुण्डलों वाली, नृत्य-गीत कर्म में कुशल, और शक्र की सेविका ॥१२४-१२५॥ मैं उस जन्म में स्थित थी, हे विदेह-नरेश ! मुझे उन सात जन्मों का स्मरण था और मैं उन सात जन्मों को भी जानती थी जिन्हें वहाँ से च्युत होकर ग्रहण करनेवाली थी ॥१२६॥ मैंने कोसम्बी में जो कुशल-कर्म किया था अब उसकी फल देने की बारी थी। मैंने जाना कि यहाँ से च्युत होकर मैं देव-योनि तथा मनुष्य-योनि को प्राप्त होऊंगी ॥१२७॥ महाराज ! इन सातों जन्मों में मैं नित्य शक्र द्वारा पूजित रही। इन छः जन्मों में मैं स्त्रीत्व से मुक्त नहीं हुई ॥१२८॥ हे देव ! मेरा सातवाँ जन्म प्रतापी देव-पुत्र का होगा। मैं देव-योनि में पुरुष-देवता होकर उत्पन्न होऊंगी ॥१२९॥ आज से ही नन्दन वन में क्रमिक-माला गूंथी जा रही है। जव नामका देव-पुत्र मुझे माला देगा ॥१३०॥ ये सोलह वर्ष दिव्य-लोक का मुहूर्त-भर हैं और दिव्य-लोक का रात दिन मनुष्य-लोक के सौ वर्ष हैं ॥१३१॥ इस प्रकार असंख्य जन्मों तक भी मनुष्यो के कर्म प्राणी का पीछा करते हैं। अच्छा अथवा बुरा किया गया कर्म नष्ट नहीं होता ॥१३२॥)

इससे आगे धर्मोपदेश देते हुए कहा—

यो इच्छे पुरिसो होतुं जाति जाति पुनप्पुनं,
परदारं विवज्जेय्य धोतपादोव कद्दमं ॥१३३॥

[जो चाहे कि उसे बार-बार पुरुष का ही जन्म मिले उसे परस्त्री-गमन से वैसे ही दूर रहना चाहिये जैसे पाँव-धुला आदमी कीचड़ से ॥१३३॥]

या इच्छे पुरिसो होतुं जाति जाति पुनप्पुनं,
सामिकं अपचायेय्य इन्दं व परिचारिका ॥१३४॥

[जो (स्त्री) चाहे कि उसे बार बार पुरुष का ही जन्म मिले वह स्वामी की वैसे ही सेवा करे जैसे इन्द्र की सेविका (इन्द्र की सेवा करती है) ॥१३४॥]

यो इच्छे दिब्ब भोगञ्च दिब्बं आयुं यसं सुखं
पापानि परिवज्जेत्वा तिविधं धम्ममाचरे ॥१३५॥
कायेन वाचा मनसा अप्पमत्तो विचक्खणो,
अत्तनो होति अत्थाय इत्थी वा यदि वा पुमा ॥१३६॥

[जो कोई दिव्य- भोग, दिव्य-आयु, यश तथा सुख की इच्छा करे उसे चाहिये कि पापों से दूर रहकर त्रिविध कर्म करे ॥१३५॥ जो अप्रमादी, बुद्धिमान, शरीर, मन और वाणी से पुण्य-कर्म करता है वह स्त्री हो अथवा पुरुष अपना हित करता है ॥१३६॥]

ये केचिमे मनुजा जीव लोके
यसस्सिनो सब्बसमन्तभोगा,
असंसयं तेहि पुरे सुचिण्णं
कम्मस्सकासे पुथुसब्बसत्ता ॥१३७॥

[जीव लोक में जितने भी यशस्वी तथा ऐश्वर्यवान् प्राणी हैं, उन्होंने निश्चय से पूर्व-जन्म में अच्छे कर्म किये हैं। सभी प्राणी कर्म के ही आधीन हैं ॥१३७॥]

इंघानुचिन्तेसि सयम्पि देव,
कुतो निदाना ते इमा जनिन्द,
या ते इमा अच्छरा सन्निकासा
अलंकता कञ्चनजालछन्ना ॥१३८॥

[हे देव ! आप भी सोचें कि आपको जो ये अलंकृत, स्वर्ण जाल से आच्छन्न अप्सरायें घेरे हुए हैं ये आपके किस कर्म का परिणाम हैं ? ।।१३८।।]

इस प्रकार उसने पिता को अनुशासित किया। उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इच्चेवं पितरं कञ्ञा रुजा तोसेसि अंगतिं,
मूळहस्स मग्गमाचिक्खि धम्ममक्खासि सुब्बता।।१३९।।

[इस प्रकार रुजा नामकी राज-कन्या ने अङ्ग नामक पिता को सन्तुष्ट किया। उस सुव्रता ने मूढ़ राजा को रास्ता दिखाया और धर्म का उपदेश दिया।।१३९।।]

इस प्रकार वह पूर्वाह्न समय से आरम्भ कर रात भर पिता को उपदेश देती रही—"देव ! उस नग्न मिथ्य-मत वाले का मत न ग्रहण करें। 'यह लोक भी है, परलोक भी है, भले-बुरे कर्म का फल भी है,' कहने वाले मेरे समान कल्याण-मित्र का कहना ग्रहण करें। अतीर्थ में मत उछलें।" ऐसा होने पर भी वह पिता को मिथ्या-दर्शन से मुक्त नहीं कर सकी। वह केवल उसकी मीठी-बोली सुनकर सन्तुष्ट हुआ। माता-पिता को प्रिय सन्तान का बोलना मीठा लगता है। लेकिन उससे वे अपने मिथ्या-मत को नहीं छोड़ देते हैं। सारे नगर में हल्ला हो गया कि राज-कन्या रुजा पिता को धर्मोपदेश दे मिथ्या-मत से मुक्त कर रही है। जनता सन्तुष्ट हुई कि राजकन्या पिता को मिथ्या-दर्शन से मुक्त कर नगरवासियों का कल्याण करेगी। पिता को समझाने में असमर्थ होने पर भी उसने प्रयत्न ढीला न कर निश्चय किया कि मैं जैसे भी होगा पिता का कल्याण करूंगी। उसने सिर पर हाथ जोड़ दसों दिशाओं को नमस्कार करते हुए प्रार्थना की—"इस लोक में लोक-संरक्षक धार्मिक श्रमण-ब्राह्मण हैं, लोकपाल देवता हैं, महाब्रह्मा हैं। वे आकर अपने बल से मेरे पिता को मिथ्या-मत से मुक्त करें। इसके कोई गुण न रहने पर भी, मेरे गुण मेरे बल, मेरे सत्य के कारण आकर इसकी मिथ्या-दृष्टि दूर कर सारे संसार का कल्याण करें।"

उस समय बोधिसत्व नारद नामक महाब्रह्मा थे। बोधिसत्व अपनी मैत्री-भावना के कारण, करुणा के कारण, उदाराशयता के कारण यह देखने के लिये कि कौन से प्राणी अच्छी तरह रह रहे हैं और कौन से अच्छी तरह नहीं रह रहे हैं,

समय समय पर संसार की ओर देखते हैं। उस दिन देखा कि राज-कन्या अपने पिता को मिथ्या-दृष्टि से छुड़ाने के लिये लोक-संरक्षक देवताओं को नमस्कार कर रही है। उन्होंने सोचा—"मुझे छोड़ दूसरा कोई नहीं है जो इस राजा को मिथ्या-दृष्टि से मुक्त कर सके। आज मेरे लिये यह योग्य है कि मैं राजकन्या का संग्रह और परि-जन-सहित राजा का कल्याण करके आऊं।" फिर सोचा, "किस वेष में जाना योग्य है ?" उसे ध्यान आया कि मनुष्यों को प्रव्रजित प्रिय लगते हैं, वे उनका आदर करते हैं तथा उन्हें उनका कहना प्रिय लगता है। इसलिये उसने तै किया कि प्रव्रजित वेष में ही जाऊंगा। तब उसने सुन्दर, स्वर्ण-वर्ण मनुष्य-रूप बनाया, सुन्दर जटायें बांधीं, जटाओं के अन्दर सुनहरी-सुई लगाई, अन्दर लाल वस्त्र और ऊपर लाल रंग का वल्कल-वसन पहन, सोने के तारे जड़ा हुआ, रजतमय अजिन-चर्म कंधे पर रख, मोतियों के छींके पर सुनहरी भिक्षा-पात्र ले, तीन जगहों पर टेढ़ी, सुनहरी बेहंगी कन्धे पर रख, मोतियों के छीके पर ही मूंगे का कमण्डल रखा। इसी ऋषि-वेष से वह आकाश में चमकते हुए चन्द्रमा के समान, आकाश-मार्ग से आ, अलंकृत चन्द्र महाप्रासाद के तल्ले पर प्रविष्ट हो, राज के सामने आकाश में खड़ा हुआ।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

अथ आगमा ब्रह्मलोका नारदो मानुसिं पजं,
जम्बुदीपं अवेक्खन्तो अद्दा राजनमंगतिं ॥१४०॥
ततो पतिट्ठा पासादे वेदेहस्स पुरत्थतो,
तञ्च दिस्वा अनुप्पत्तं रुजा इसिमवन्दथ ॥१४१॥

[ब्रह्मलोक से नारद मुनि ने जम्बुद्वीप की ओर देखते हुए जब अङ्ग नामक नरेश को देखा तो वह ब्रह्म-लोक से मनुष्य-लोक आया ॥१४०॥ वह विदेह-नरेश के सम्मुख प्रासाद में प्रतिष्ठित हुआ। उसे आया देख, रुजा ने उस ऋषि को नमस्कार किया ॥१४१॥]

राजा ने भी उसे देखा तो वह ब्रह्म-तेज के प्रभाव से अपने आसन पर बैठा न रह सका। वह नीचे उतर आया और जमीन पर खड़े होकर उसने आगमन-स्थान तथा नाम और गोत्र पूछा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

अथासनम्हा ओरुह्य राजा ब्यम्हितमानसो,
नारदं परिपुच्छन्तो इदं वचनमब्रवी ॥१४२॥
कुतो नु आगच्छसि देववण्णी
ओभासयं संर्वारं चन्दिमाव,
अक्खाहि मे पुच्छितो नामगोत्तं,
कथं तं जानन्ति मनुस्स लोके ॥१४३॥

[भयभीत राजा आसन से उतरा और नारद मुनि से प्रश्न करते हुए उसने कहा—"हे देव-वर्ण ! आपका आगमन कहाँ से हुआ है ? आप चन्द्रमा की भान्ति रात्रि को प्रकाशित करते हुए आये हैं ? मेरे पूछने पर नाम-गोत्र कहें। आपको मनुष्य लोक में कैसे जानते हैं ॥१४२-१४३॥]

उसने 'यह राजा परलोक को अस्वीकार करता है, इसे परलोक की बात कहूंगा' सोच कहा—

अहं हि देवतो इदानि एमि,
ओभासयं संर्वारं चन्दिमाव,
अक्खाहि ते पुच्छितो नामगोत्तं
जानन्ति मं नारदो कस्सपो च ॥१४४॥

[मैं चन्द्रमा के रात्रि को प्रकाशित करने की तरह इस समय देवलोक से आ रहा हूँ। मैं पूछे जाने पर तुझे नाम-गोत्र बताता हूँ। मुझे नारद और काश्यप करके जानते हैं ॥१४४॥]

राजा ने सोचा, परलोक की बात पीछे भी पूछ लूंगा। पहले इससे ऋद्धि की बात पूछूं। यह सोच गाथा कही—

अच्छरियरूपं वत यादिसञ्च
वेभासयं गच्छसि तिट्ठसी च,
पुच्छामि तं नारद एतमत्थं
अथ केन वण्णेन तवायमिद्धि ॥१४५॥

[जैसा तुम्हारा आश्चर्य्यंकर रूप है और जैसे तुम आकाश में स्थित होते हो

तथा आकाश-मार्ग से जाते हो, हे नारद ! मैं यह बात पूछता हूँ कि तुम्हारी यह ऋद्धि किस प्रकार की है ? ॥१४५॥]

नारद ने उत्तर दिया—

सच्चञ्च धम्मो च दमो च चागो,
गुणा ममेते पकता पुराणा,
तेहेव धम्मेहि सुसेवितेहि
मनोजवो येन कामं गमोस्मि ॥१४६॥

[सत्य, धर्म, संयम तथा त्याग—ये मेरे स्वाभाविक पुराने गुण हैं। इन्हीं धर्मों का अच्छी तरह पालन करने से मैं जहाँ चाहता हूँ वहाँ मनोवेग से चला जाता हूँ ॥१४६॥]

उसके ऐसा कहने पर भी दृढ़ मिथ्या-दृष्टि के कारण तथा परलोक में श्रद्धा न रखने के कारण उसने 'क्या पुण्य कर्मों का फल होता है ?' पूछते हुए गाथा कही—

अच्छरियमाचिक्खसि पुञ्ञसिद्धि,
सचे हि एते त्वं यथा वदेसि,
पुच्छामि तं नारद एतमत्थं,
पुट्ठो च मे साधु वियाकरोहि ॥१४७॥

[यह जो तू पुण्य से सिद्धि की बात करता है, यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। यदि ये ऐसे ही हैं जैसे तू कहता है तो हे नारद ! मैं तुझे यह बात पूछता हूँ। मेरे पूछने पर तू उत्तर दे ॥१४७॥]

नारद ने कहा—

पुच्छस्सु मे राज तवेस अत्थो
यं संसयं कुरुसे भूमिपाल
अहं तं निस्संसयतं गमेमि
नयेहि आयेहि च हेतुभि च ॥१४८॥

[हे राजन् ! जो भी सन्देह हो वह पूछें, मैं तुम्हें सकारण-बात से, ज्ञान से और हेतु से समझाऊंगा ॥१४८॥]

राजा बोला—

पुच्छामि तं नारद एतमत्थं
पुट्ठो च मे नारद मा मुसा भण,
अत्थि नु देवा पितरो नु अत्थि
लोको परो अत्थि जनो यमाहु ॥१४९॥

[हे नारद ! मैं तुझे यह बात पूछता हूँ। मेरे पूछने पर झूठ न कहना। यह जो लोक कहते हैं कि देव हैं, पितर हैं, पर-लोक हैं, तो क्या ये सचमुच हैं ? ॥१४९॥)

नारद ने कहा—

अत्थेव देवा पितरो च अत्थि
लोको परो अत्थि जनो यमाहु,
कामेसु गिद्धा च नरा पमूळ्हा
लोकं परं न विदू मोहयुत्ता ॥१५०॥

[देवता भी हैं और पितर भी हैं और जिसे लोग परलोक कहते हैं, वह भी है। काम-भोगों में आसक्त मूर्ख-जन मोह में ग्रसित होने के कारण नहीं जानते कि परलोक है ॥१५०॥]

यह सुन राजा ने मजाक करते हुए गाथा कही—

अत्थीति चे नारद सद्दहासि
निवेसनं परलोके मतानं,
इधेव मे पञ्चसतानि देहि
दस्सामि ते परलोके सहस्सं ॥१५१॥

[हे नारद ! यदि यह विश्वास है कि मृत जन परलोक में रहते हैं तो मुझे यहीं पांच सौ दे। मैं तुझे परलोक में हजार दूंगा ॥१५१॥]

बोधिसत्व ने परिषद के बीच में ही उसकी निन्दा करते हुए गाथायें कहीं—

दज्जेमु खो पञ्चसतानि भोतो
जञ्ञामु चे सीलवन्तं वदञ्ञुं,
लुद्दं तं भोन्तं निरये वसन्तं,
को चोदये परलोके सहस्सं ॥१५२॥
इधेव यो होति अधम्मसीलो
पापाचारो अलसो लुद्दकम्मो,

न पण्डिता तंस्मि इणं ददन्ति,
न हि आगमो होति तथाविधम्हा॥१५३॥
दक्खञ्च पोसं मनुजा विदित्वा
उट्ठाहकं सीलवन्तं वदञ्ञुं,
सयमेव भोगेहि निमन्तयन्ति
कम्मं करित्वा पुनमाहरेसि॥१५४॥

[हम आपको पांच सौ दे दें, यदि हम जानें कि आप सदाचारी हैं, उदार हैं। जब क्रूर-स्वभाव आप लोभी नरक में रहते होंगे तो वहाँ परलोक में हजार का तकाजा कौन करेगा? ॥१५२॥ जो आदमी अधार्मिक होता है, दुराचारी होता है, आलसी होता है, क्रूर होता है तो पण्डितजन ऐसे आदमी को इस संसार में भी कर्ज नहीं देते हैं, क्योंकि ऐसे आदमी से कर्ज नहीं लौटता है ॥१५३॥ जिसे आदमी दक्ष समझते हैं, उत्साही समझते हैं, सदाचारी समझते हैं, उदार समझते हैं उसे स्वयं ही आवश्यक चीज़ें लेने का निमन्त्रण देते हैं और कहते हैं कि काम करके पीछे ये लौटा देना ॥१५४॥]

इस प्रकार उससे डांटे जाने पर राजा हत-प्रभ हो गया जनता ने प्रसन्न हो सारे नगर में हल्ला कर दिया, 'देव-ऋषी महा प्रतापी है। आज राजा को मिथ्या-दृष्टि से मुक्त करेगा।" बोधिसत्व के प्रताप से उस सात योजन की मिथिला नगरी में एक आदमी भी ऐसा नहीं रहा जिसने उसका धर्मोपदेश न सुना हो। तब बोधिसत्व ने सोचा, "इस राजा ने मिथ्या-दृष्टि को बड़ी दृढ़ता से पकड़ रखा है। इसे नरक का भय दिखा, इसकी मिथ्या-दृष्टि छुड़ा, फिर देव-लोक की बात कह आश्वस्त करूंगा।" यह सोच, "महाराज! यदि मिथ्या-मत का त्याग नहीं करेंगे तो अनन्त-दुख के घर नरक में जायेंगे" कह नरक-कथा स्थापित की—

इतो गतो दक्खसि तत्थ राज
काकोळसंघेहि पि कड्ढमानं,
तं खज्जमानं निरये वसन्तं
काकेहि गिज्झेहि च सेनकेहि,
सञ्छिन्न गत्तं रुहिरं सवन्तं
को चोदये परलोके सहस्सं॥१५५॥

[हे राजन् ! यहाँ से परलोक जाने पर तू देखेगा कि तुझे कौवों की मण्डली नोच रही है। कौओं, गीधों तथा चीलों द्वारा नोचे जाते समय, क्षत-विक्षत शरीर से रक्त बहते समय, नरक में रहते समय तुझसे हजार का तकाजा कौन करेगा ? ।।१५५।।]

इस प्रकार कोकाळ नरक का बखान कर 'यदि कोकाळ नरक में नहीं जायेगा तो लोकन्तर नरक में जायेगा' कह उस नरक का वर्णन करने के लिये गाथा कही—

अन्धन्तमं तत्थ न चन्द सुरिया
निरयो सदा तुमुलो घोररूपो,
सा नेव रत्ति न दिवा पञ्ञायति
तथा विधे को विचरे धनत्थिको ।।१५६।।

[वहाँ घुप अन्धेरा है। वहाँ चान्द-सूर्य्य नहीं हैं। उस नरक में निरन्तर अन्धेरा ही अन्धेरा रहता है। वहाँ न रात दिखाई देती है, न दिन दिखाई देता है। उस प्रकार के नरक में अपना ऋण लेने के लिये कौन जायेगा ? ।।१५६।।]

इस लोकन्तर नरक का भी विस्तारपूर्वक वर्णन कर 'महाराज ! मिथ्या-दृष्टि का त्याग न कर सकने वाले न केवल यही किन्तु और भी दुःख भोगते हैं' कह ये गाथायें कहीं—

सबलो च सामो च दुवे सुपाना
पवद्धकाया बलिनो महन्ता,
खादन्ति दन्तेहि अयोमयेहि
इतो पनुण्णं परलोकपत्तं ।।१५७।।

[यहाँ से परलोक जाने पर चितकबरे और काले रंग के, बड़े बड़े, बलवान् दो कुत्ते अपने लोहमय दान्तों से खाते हैं ।।१५७।।]

तं खज्जमानं निरये वसन्तं
लुद्देहि वाळेहि अधम्मिगेहि च,
सञ्छिन्नगत्तं रुहिरं सवन्तं
को चोदये परलोके सहस्सं ।।१५८।।

[रौद्र, दुष्ट कुत्तों द्वारा खाये जाते समय, क्षत-विक्षत शरीर से रक्त बहते समय, नरक में रहते समय हजार का तकाजा कौन करेगा ? ।।१५८।।]

उसूहि सत्तीहि सुनिस्सिताहि
हनन्ति विज्झन्ति च पच्चमित्ता,
काळूपकाळा निरयम्हि घोरे
पुब्बे नरं दुक्कतकम्मकारिं ॥१५९॥

[कालूपकाल नाम के अमित्र नरक-पाल घोर नरक में दुराचारी मनुष्य को तीरों से तथा तेज शक्ति से मारते हैं तथा बींधते हैं ॥१५९॥]

तं हञ्ञमानं निरये वजन्तं
कुच्छिस्मिं पस्सस्मिं विफालितुदरं,
सञ्छिन्नगत्तं रुहिरं सवन्तं
को चोदये परलोके सहस्सं ॥१६०॥

[इस प्रकार मारे जाते समय, नरक में इधर से उधर भागते समय, कोख तथा बगल के चीर दिये जाते समय, क्षत-विक्षत शरीर से रक्त बहते समय, नरक में हजार का तकाजा कौन करेगा ? ॥१६०॥]

सत्ती उसू तोमर भेण्डिवाला
विविधा वुधं वस्सति तत्थ देवो,
पतन्ति अंगारमिवच्चिमन्तो
सिलासनी वस्सति लुद्दकम्मे ॥१६१॥

[वहाँ नरक में देव वाणों की, भालों की, भेण्डिकी तथा अन्य नाना प्रकार के शस्त्रों की वर्षा करते हैं। जो रौद्र-कर्म करनेवाला है उस पर जलते हुए अङ्गार गिरते हैं और शिलाओं की बिजली पड़ती है ॥१६१॥]

उण्हो च वातो निरयम्हि दुस्सहो
न तम्हि सुखं लब्भति इत्तरम्पि,
तं तं विधावन्तमलेनमातुरं
को चोदये परलोके सहस्सं ॥१६२॥

[नरक में असहनीय गर्म हवा चलती है। वहाँ तनिक भी सुख नहीं है। (नरक में) जहाँ तहाँ दौड़नेवाले से, अशरण से और दुखी से कौन हजार का तकाजा करेगा ॥१६२॥]

सन्धावमानं तं रथेसु युत्तं
सजोतिभूतं पठविं कमन्तं,
पतोदलट्ठीहि सुचोदियन्तं
को चोदये परलोके सहस्सं ॥१६३॥

[जलती हुई जमीन पर चलनेवाले रथों में जुतकर दौड़ते हुए से, चाबुक से पीटे जाते हुए से, परलोक में कौन हजार का तकाजा करेगा ? ॥१६३॥]

तमारुहन्तं खुरसञ्चितं गिरिं
विभिंसनं पज्जलितं भयानकं,
सञ्छिन्नगत्तं रुहिरं सवन्तं
को चोदये पर लोके सहस्सं ॥१६४॥

[महा भयानक, प्रज्वलित, खुर-चिह्नित, गिरी पर चढ़ते समय, क्षत-विक्षत शरीर से रक्त बहते समय, परलोक में हजार का तकाजा कौन करेगा ? ॥१६५॥]

तमारुहन्तं पब्बतसन्निकासं
अंगाररासिं जलितं भयानकं
सन्दड्ढगत्तं कपणं रुदन्तं
को चोदये परलोके सहस्सं ॥१६५॥

[भयानक, ज्वलित, अङ्गारों के ढेरवाले पर्वत के पास की भूमि पर चढ़ते समय, जलते हुए शरीर को लेकर दुखी हो रोते समय, परलोक में हजार का तकाजा कौन करेगा ? ॥१६४॥]

अब्भकूटसमा उच्चा कण्टकापचिता दुमा,
अयोमयेहि तिक्खेहि नरलोहितपायिहि ॥१६६॥
तमारुहन्ति नारियो नरा च परदारगु
चोदिता सत्तिहत्थेहि यमनिद्देसकारिहि ॥१६७॥

[बादलों के शिखर के समान ऊंचे, आदमी का रक्त पीने वाले, लोहे के तेज काण्टों से युक्त पेड़ हैं। स्त्रियाँ तथा पर-स्त्री गमन करने वाले पुरुषों को उन पर चढ़ना होता है और उन्हें यमके आदेश से शस्त्रधारी यमराज सेवक चढ़ने के लिये मजबूर करते हैं ॥१६६-१६७॥)

तमारुहन्तं निरयं सिम्बलिं रुहिरमक्खितं,
विदड्ढकायं वितचं आतुरं गाळ्हवेदनं
पस्ससन्तं मुहुं उण्हं पुब्बकम्मापराधिकं,
दुमग्गविटपग्गहतं को तं याचेय्य तं धनं ॥१६८॥

[नरक में लहु माखे हुए सिम्बली-वृक्ष पर चढ़ते हुए से, बदन जलने वाले से, त्वचा रहित से, दुखी से, तीव्र वेदना अनुभव करनेवाले से, बार बार अपने पूर्व जन्म के महान अपराध को देखने वाले से, वृक्ष की शाखा को पकड़ने वाले तुझसे कौन धन की याचना करेगा ॥१६८॥]

अब्भकूटसमा उच्चा असिपत्ताचिता दुमा,
अयोमयेहि तिक्खेहि नरलोहित पायिहि ॥१६९॥
तमानुपत्तं असिपत्तपादपं
असीहि तिक्खेहि च छिज्जमानं,
सञ्छिन्नगत्तं रुहिरं सवन्तं
को चोदये परलोके सहस्सं ॥१७०॥

[बादलों के शिखर के समान ऊंचे, आदमी का रक्त पीने वाले, तलवार की धार सदृश, लोहे के तेज पत्रों से युक्त पेड़ हैं ॥१६९॥ उस असि-पत्र वृक्ष को प्राप्त हो, तेज तलवार से काटे जाते समय, क्षत-विक्षत शरीर से रक्त बहते समय परलोक में कौन हजार का तकाजा करेगा ? ॥१७०॥]

ततो निक्खन्तमन्तं तं असिपत्त निरया दुमा,
सम्पतितं वेतरणिं को तं याचेय्य तं धनं ॥१७१॥

[उस असि-पत्र-वृक्ष वाले नरक से निकलकर वेतरणि नदी को पहुंचे हुए तुझसे कौन धन की याचना करेगा ? ॥१७१॥]

खरा खारोदिका तत्ता दुग्गा वेतरणी नदी,
अयो पोक्खर सञ्छन्ना तिक्ख पत्तेहि सन्दति ॥१७२॥

[खारी, खारे जलवाली, गर्म, कठिनाई से पार की जा सकने वाली वेतरणी नदी है । यह लोहे के पुष्कर-पत्तों से ढकी हुई होने के कारण तीक्ष्ण-पत्रों से युक्त होकर बहती है ॥१७२॥]

तत्थ सञ्छिन्नगत्तं तं वुह्यन्तं रुहिरमक्खितं,
वेतरञ्ञे अनालम्बे को याचेय्य तं धनं ॥१७३॥

[वहाँ क्षत-विक्षत शरीरवाले, रक्त से माखे हुए तुझसे निराश्रित अवस्था में वैतरणी में बहते समय कौन धन मांगेगा ? ॥१७३॥]

बोधिसत्व की यह नरक-कथा सुनी तो राजा डरा और बोधिसत्व की ही शरण खोजता हुआ बोला—

वेधामि रुक्खो विय छिज्जमानो
दिसं न जानामि पमूळ्ह सञ्ञी,
भयसानुतप्पामि महा च मे भयं
सुत्वान गाथा तव भासिता इसे ॥१७४॥
आदित्ते वारिमज्झंव
दिपं वोघेरिवण्णवे,
अन्धकारेव पज्जोतो
त्वं नोसि सरणं इसे ॥१७५॥
अत्थञ्च धम्मञ्चनुसास मं इसे
अतीतमद्धा अपराधितं मया,
आचिक्ख मे नारद सुद्धिमग्गं
यथा अहं नो निरये पतेय्यं ॥१७६॥

[हे ऋषि ! तेरी कही हुई गाथायें सुनकर मैं कटे वृक्ष की तरह काँप रहा हूँ। मैं बेहोश हो गया हूँ। मुझे दिशायें नहीं सूझती हैं। मैं भय से अनुतप्त हूँ। मुझे बहुत डर लग रहा है ॥१७४॥ जिस प्रकार आग लगने पर पानी का मध्य, समुद्र में बाढ़ आने पर द्वीप अथवा अन्धेरे में प्रकाश, उसी प्रकार तू मुझे शरण में ले ॥१७५॥ हे ऋषी ! मुझे धर्म की अनुशासना कर, मैंने पूर्व समय में बहुत पाप किया है। हे नारद ! मुझे शुद्ध होने का मार्ग बता जिससे मैं नरक में न पडूं ॥१७६॥]

बोधिसत्व ने उसे शुद्धि-मार्ग का उपदेश देते हुए ठीक रास्ते जाने वाले पुराने राजाओं का उदाहरण दिया—

यथा अहु धतरट्ठो
वेस्सामित्तो अट्ठको यामतग्गी,

उसिनकोचापि सिवी च राजा
परिचारका समणब्राह्मणानं ॥१७७॥
एतेचञ्ञे च राजानो ये सक्कविसयं गता
अधम्मं परिवज्जेत्वा धम्मं चर महीपति ॥१७८॥
अन्नहत्था च ते ब्यम्हे घोसयन्तु पुरे तव,
को छातो को च तसितो को मालं को विलेपनं,
नाना रत्तानं वत्थानं को नग्गो परिदहेस्सति ॥१७९॥
को पन्थे छत्तमादेति पादुका च मुदू सुभा,
इति सायञ्च पातो च घोसयन्तु पुरे तव ॥१८०॥
जिण्णं पोसं गवास्सञ्च मास्सु युञ्जि यथा पुरे,
परिहारञ्च दज्जासि अधिकारकतो बलि ॥१८१॥

[जैसे धृतराष्ट्र हुआ, विश्वामित्र हुआ, अट्ठक हुआ, जमदग्नि हुआ, उशीनर हुआ, शिवी हुआ,—सभी श्रमण-ब्राह्मणों के सेवक हुए ॥१७७॥ ये और दूसरे राजा जो शक्रत्व को प्राप्त हुए, उन्हीं की तरह हे राजन्! आप भी अधर्म का त्याग कर धर्माचरण करें ॥१७८॥ तेरे नगर में और तेरे महल में लोग हाथ में अन्न लिये ये घोषणायें करते हुए घूमें—कौन भूखा है? कौन प्यासा है? किसे माला चाहिये? किसे लेप चाहिये? कौन नंगा नाना-वर्ण के वस्त्र धारण करेगा? कौन मार्ग में छत्र धारण करना चाहेगा? किसे अच्छी, मृदु पादुकाओं की आवश्यकता है? इस प्रकार की घोषणायें प्रातः-सायं होनी चाहिये ॥१७९-१८०॥ जो बूढ़े आदमी हों अथवा बूढ़े बैल हों उन्हें पहले की तरह काम पर मत लगा। उन्हें जो-जो मिलता रहा है वह पूर्ववत् मिलना चाहिये। क्योंकि शरीर में सामर्थ्य रहते समय उन्होंने यह अधिकार प्राप्त किया है ॥१८१॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने राजा को दान-कथा तथा सदाचार का उपदेश दे सोचा कि यह राजा रथ के साथ अपनी उपमा दिये जाने से सन्तुष्ट होगा, इसलिये इसे सब कामनाओं की पूर्ति करनेवाले रथ की उपमा देकर धर्मोपदेश दूंगा। उन्होंने कहा—

कायो ते रथसञ्ञातो मनोसारथिको लहु,
अविहिंसा सारितक्खो संविभागपटिच्छदो ॥१८२॥

पादसंयम नेमियो हत्थसञ्ञम पक्खरो,
कुच्छिसञ्ञमनब्भन्तो वाचासञ्ञम कूजनो ॥१८३॥
सच्चवाक्यसमत्तंगो अपेसुञ्ञसुसञ्ञतो,
गिरासखिलनेलंगो मितमाणीसिलेसितो ॥१८४॥
सद्धा लोभ सुसंखारो निवातञ्जलिकुब्बरो,
अत्थद्धतान तीसाखो सीलसंवरनन्धनो ॥१८५॥
अक्कोधनमनुग्धाती धम्मपण्डर छत्तको,
बाहुसच्चमपालम्बो ठितचित्तमुपाधियो ॥१८६॥
कालञ्ञुता चित्तसारो वेसारज्जतिदण्डको,
निवातवुत्ति योत्तको अनतिमान युगो लहु ॥१८७॥
अलीनचित्तसन्थारो वद्धसे वीरजोहतो,
सतिपतोदो धीरस्स धिति योगो च रस्मियो ॥१८८॥
पतोदन्तपथन्वेति समदन्तेहि वाहिभि,
इच्छा लोभो च कुम्मग्गो उजुमग्गो च सञ्ञमो ॥१८९॥
रूपे सद्दे रसे गन्धे वाहनस्स पधावतो,
पञ्ञा आकोटनी राज तत्थ अत्ताव सारथि ॥१९०॥
सचे एतेन यानेन समचरियादळ्हाधिति,
सब्बकामदुहो राज न जातु निरयं वजे ॥१९१॥

[तेरा शरीर रथ के सामन है, मन, हलका-मन सारथि के समान हो, अविहिंसा श्रेष्ठ अक्ष हो और दान देना (रथ का) परदा हो ॥१८२॥ पाँव का संयम नेमि हो, हाथ का संयम किनारी हो, पेट का संयम तेल हो, और वाणी का संयम (रथ का) शब्द-रहितपन हो ॥१८३॥ सत्य-वाणी रूपी (रथों के) अङ्गों की सम्पूर्णता हो, चुगली का अभाव रूपी चिकनापन हो, निर्दोषवाणी रूपी निर्दोषता हो, अल्पभाषण रूपी जोड़ हों ॥१८४॥ श्रद्धा तथा अलोभ रूपी अलंकारों से अलंकृत हो, विनम्रता रूपी बाँस से युक्त हो, कोमलता रूपी थोड़े झुके हुए बाँस से युक्त हो और शील-संयम रूपी रस्सी से बँधा हो ॥१८५॥ अक्रोध-रूपी स्थिरता से युक्त हो, धर्म रूपी श्वेत-छत्र से युक्त हो, बहुश्रुत भाव रूपी पहियों के रोकने के यन्त्र से युक्त हो, स्थिरचित्त भाव रूपी ऊपर के वस्त्र से युक्त हो ॥१८६॥ काल-ज्ञान रूपी चित्त के सारभाव से युक्त हो, वैशारद्य रूपी त्रिदण्डों से युक्त हो,

शान्त-भाव रूपी जोत से युक्त हो, अभिमान के अभाव रूपी हलके जुए से युक्त हो ।।१८७।। चेतनता युक्त चित्त रूपी आस्तरण वाला हो, (ज्ञान-) वृद्ध आदि पुरुषों का सेवा भाव रूपी धूल-नाशक हो, धैर्यवान् की स्मृति रूपी हाँकने की पैणी हो, और धृति-योगरूपी रश्मियाँ हो ।।१८८।। शिक्षित घोड़ों की भान्ति संयत मन सुमार्ग पर जाता है। इच्छा तथा लोभ कुमार्ग हैं और संयम सुमार्ग है ।।१८९।। हे राजन् ! रूप, शब्द, रस तथा गन्ध के पीछे दौड़ने वाले रथ को रोकने वाली प्रज्ञा है और अपना-आप ही रथ का सारथी है ।।१९०।। यदि इस (शरीर रूपी) रथ से सम्यक् आचरण किया जाय और धृति दृढ़ रखी जाय तो यह रथ सभी काम-नाओं का पूर्ण करने वाला होने से, निश्चय से नरक नहीं जाता ।।१९१।।]

इस प्रकार उसे धर्मोपदेश दे, मिथ्या-दृष्टि दूरकर, शील में प्रतिष्ठित कर, 'अबसे कुसंगति छोड़, भलि संगति में रहना, नित्य अप्रमादी होकर रहना' उपदेश दे, राज-कन्या के गुण कह, राज-परिषद तथा राज-रनिवास को उपदेश दे, बड़े प्रताप से उनके देखते ही देखते बोधिसत्व ने ब्रह्म-लोक की यात्रा की।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी मैंने मिथ्या-दृष्टि का जाल छेद उरुवेल काश्यप का दमन किया ही था' कह जातक का मेल बैठाया और अन्त में ये गाथायें कहीं—

अलातो देवदत्तोसि सुनामो आसि भद्दजि,
विजयो सारिपुत्तोसि मोग्गल्लानोसि बीजको ।।१९२।।
सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो गुणो आसि अचेलको,
आनन्दो च रुजा आसि या राजानं पसादयि ।।१९३।।
उरुवेल कस्सपो राजा पापदिट्ठि तदा अहु,
महाब्रह्मा बोधिसत्तो एवं धारेथ जातकं ।।१९४।।

[अलात देवदत्त था, सुनाम भद्दजि था, विजय सारिपुत्र था, मोग्गल्लान बीजक था ।।१९२।। सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र था, गुण अचेलक था, आनन्द रुजा था जिसने राजा को प्रसन्न किया ।।१९३।। उरुवेल काश्यप उस समय राजा था जिस की मिथ्या-दृष्टि हो गई थी और महाब्रह्मा तो बोधिसत्व ही था—इस प्रकार यह जातक समझनी चाहिये ।।१९४।।]

५४५. विधुर जातक

"पण्डुकिसियासि दुब्बला. . . ." यह कथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय प्रज्ञा-पारमिता के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन भिक्षुओं ने धर्म सभा में बातचीत चलाई—"आयुष्मानो, शास्ता महा प्रज्ञावान् हैं, विस्तृत प्रज्ञावाले हैं, प्रसन्न-प्रज्ञावाले हैं, शीघ्र प्रज्ञावाले हैं, तीक्ष्ण प्रज्ञावाले हैं, उनकी प्रज्ञा बींधनेवाली है, दूसरे के मत का खण्डन करने वाले हैं, वे अपने प्रज्ञाबल से क्षत्रिय पण्डितो आदि द्वारा लाये गये सूक्ष्म प्रश्नों का समाधान कर उन्हें विनम्र बना, (त्रि) शरण तथा (पञ्च) शीलों में प्रतिष्ठित कर, निवाण की ओर जानेवाले मार्ग पर आरूढ़ कर देते हैं।' शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, अब बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर 'भिक्षुओ, इसमें क्या आश्चर्य है यदि तथागत परं बुद्धत्व को प्राप्त कर, दूसरों के मत का खण्डन कर, क्षत्रिय आदि को विनीत बनाते हैं, पूर्व-समय में जब अभी बोधि-ज्ञान की खोज में ही लगे थे तब भी तथागत प्रज्ञावान् और दूसरों के मतों का मन्थन करने वाले ही थे। मैंने विधुर-कुमार होने के समय भी साठ योजन ऊंचे काले पर्वत के शिखर पर रहने वाले पुण्णक नाम यक्ष सेनापति को ज्ञान-बल से जीत, विनम्र बना अपने प्राणों की रक्षा की" कहा। फिर पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे कुरु राष्ट्र में इन्द्र-प्रस्थ नगर में धनञ्जय नामका कौरव्य राज्य करता था। विधुर-पण्डित नाम का उसका अमात्य था, अर्थ-धर्मानुशासक। वह मधुर-भाषी था, महान धार्मिक-वक्ता। उसने सारे जम्बुद्वीप के राजाओ को अपने धार्मिक उपदेश से उसी प्रकार लुभा रखा था जैसे हस्तिकान्त वीणा के मधुर-स्वर से हाथी मुग्ध रहते हैं। वह उन्हें अपने राज्यों तक में जाने नहीं देता था। वह बुद्ध-लीला से जनता को धर्मोपदेश देता हुआ बड़ी शान से उस नगर में रहता था।

वाराणसी में ही उसके चार गृहस्थ ब्राह्मण मित्रों ने काम-भोगों में दोष देख, हिमालय में प्रवेश कर, ऋषि प्रव्रज्या ग्रहण की। फिर अभिज्ञा तथा समापत्तिया

प्राप्त कर वन-फूल खाते हुए चिरकाल तक वहीं रहे। फिर नमक-खटाई खाने के लिये, चारिका करते हुए अङ्ग राष्ट्र के काळ चम्पा नगर में पहुंच, राजोद्यान में रह, अगले दिन नगर में भिक्षाटन के लिये प्रवेश किया। वहाँ चार गृहस्थ मित्र उनकी चर्य्या पर प्रसन्न हुए उन्होंने उनके भिक्षा-पात्र लिये और एक-एक को अपने अपने घर ले जा प्रणीत भोजन कराया और उन्हें प्रतिज्ञा-बद्ध कर उद्यान में ही रखा। चारों तपस्वी चारों गृहस्थों के घर भोजन कर चुकने पर दिन में विश्राम करने के लिये चार भिन्न-भिन्न स्थानों पर जाते। एक त्रयोत्रिंश भवन एक नाग-भवन, एक गरुड़ भवन, और एक कोरव्य राजा के मृगोद्यान जाता।

उनमें से जो देवलोक जाकर दिन गुज़ारता वह शक्र का ऐश्वर्य्य देख अपने सेवक से उसी का बखान करता। जो नाग-भवन जाकर दिन गुजारता वह नाग-राज की सम्पत्ति देख अपने सेवक से उसी का वर्णन करता, जो गरुड़-भवन जाकर दिन गुजारता वह गरुड़-राज की विभूति देख अपने सेवक से उसी का वर्णन करता। जो कोरव्य के उद्यान में दिन गुजारता वह धनंजय-राज की श्री-शोभा देख, अपने सेवक से उसी की महिमा गाता। उन चारों जनों ने उस उस देव-स्थान की कामना की। दानादि पुण्य कर, आयु की समाप्ति पर एक शक्र होकर पैदा हुआ, एक पुत्र द्वारा सहित नाग-भवन में पैदा हुआ, एक सिम्बलीदह विमान में गरुड़-राज होकर पैदा हुआ। एक धनंजय राजा की पट-रानी की कोख से पैदा हुआ। वे भी तपस्वी ब्रह्म-लोक में पैदा हुए।

कोरव्य-कुमार बड़ा होने पर, पिता के मरने पर, राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ और धर्मानुसार राज्य करने लगा। हाँ, उसे जुए में आनन्द आता था। वह विधुर पण्डित के उपदेशानुसार चल दान देता, शील की रक्षा करता और उपोसथ-व्रत रखता। एक दिन जब उसने उपोसथ-व्रत रखा था, एकान्त-सेवन की इच्छा से उद्यान में आया और सुन्दर-स्थान पर बैठकर श्रमण-धर्म करने लगा। शक्र ने भी उपोसथ-व्रत रखा था। उसने भी 'देव-लोक विघ्न होता है' सोच, उसी उद्यान में पहुंच, सुन्दर स्थान पर बैठ श्रमण-धर्म करना आरम्भ किया। वरुण नाग-राज ने भी उपोसथ-व्रत रखा और 'नाग-भवन में विघ्न होता है' समझ, वहीं पहुंच एक सुन्दर जगह बैठ श्रमण-धर्म करना आरम्भ किया। गरुड़-राज ने भी उपोसथ-व्रत रखा और 'गरुड़-भवन में विघ्न होता है' समझ, वहीं पहुंच एक जगह बैठ श्रमण-धर्म करना आरम्भ किया।

वे चारों जने शाम को अपने-अपने स्थान से निकले और मङ्गल पुष्करिणी के किनारे इकट्ठे हुए। वे परस्पर एक दूसरे को देखते हुए पूर्व-स्नेह के कारण एक-चित्त तथा प्रमुदित मन हुए और परस्पर मैत्री-भाव स्थापित कर मधुरता के साथ एक दूसरे का कुशल-क्षेम पूछने लगे। शक्र मङ्गल-शिला पर बैठा। दूसरे भी अपने अपने योग्य स्थान पर बैठे। शक्र ने प्रश्न किया—"हम चारों जने राजा हैं। किन्तु हममें से किसका शील बड़ा है?" वरुण नागराज ने उत्तर दिया—"तुम्हारे तीनों जनों के शील मे मेरा शील बड़ा है। इसका कारण क्या है? यह गरुड़-राज हमारे जाति के उत्पन्न और अनुत्पन्न सभी का शत्रु है। मैं अपने ऐसे जीवन-नाशक शत्रु को देखकर भी क्रोध नहीं करता हूँ। इस कारण से मेरा शील बड़ा है—

यो कोपनेय्ये न करोति कोपं
न कुज्झति सप्पुरिसो कदाचि,
कुद्धोपि यो नाविकरोति कोपं
तं वे नरं समणं आहु लोके॥१॥

[जो क्रोध के भाजन पर भी क्रोध नहीं करता है, जिस सत्पुरुष को कभी क्रोध नहीं आता और जो क्रुद्ध होने पर भी क्रोध प्रकट नहीं करता, ऐसे आदमी को लोक में 'श्रमण' कहते हैं ॥१॥]

'मुझमें ये गुण हैं, इसलिए मेरा ही शील बड़ा है।' यह सुन गरुड़-राज ने सोचा, 'यह नाग मेरा अग्र-भोजन है। मैं इस प्रकार के अग्र-भोजन को देखते हुए भी और भूख को सहन करके खाने के लिये पाप नहीं करता हूँ। इसलिये मेरा शील ही बड़ा है।' वह बोला—

ऊनूदरो यो सहते जिघच्छं
दन्तो तपस्सी मितपाण भोजनो,
आहारहेतु न करोति पापं
तं वे नरं समणं आहु लोके॥२॥

[जो दबे पेट वाला भूख सह लेता है, जो संयत, तपस्वी, सीमित भोजन करने वाला भोजन के लिये पाप नहीं करता है, ऐसे आदमी को लोक में 'श्रमण' कहते हैं ॥२॥]

तब शक्र देवेन्द्र ने 'मैं नाना प्रकार की सुखद देव-लोक सम्पत्ति को छोड़कर शील की रक्षा करने के लिये मनुष्य-लोक में आया हूँ, इसलिये मेरा शील बड़ा है' कह गाथा कही—

खिड्डं रतिं विप्पजहेत्व सब्बं
न चालिकं भासति किञ्चि लोके,
विभूसनट्ठाना विरतो मेथुनस्मा
तं वे नरं समणं आहु लोके॥३॥

[सब क्रीड़ा-रति छोड़कर जो दुनिया में कुछ भी झूठ नहीं बोलता और जो भूषणादि से तथा मैथुन से दूर रहता है, ऐसे आदमी को लोक में 'श्रमण' कहते हैं ॥३॥]

यह सुन धनञ्जय-राज ने 'मैं आज महान परिग्रह सोलह हजार नर्तकी स्त्रियों से भरे रनिवास को छोड़कर उद्यान में श्रमण-धर्म करता हूँ, इसलिये मेरा शील बड़ा है' कह यह गाथा कही—

परिग्गहं लोभधम्मञ्च सब्बं
ये व परिञ्ञाय परिच्चजन्ति,
दन्तं ठितत्तं अभयं निरासं
तं वे नरं समणं आहु लोके॥४॥

[सभी परिग्रह तथा लोभ-धर्म को जो जानकर छोड़ देते हैं, जो संयत हैं, स्थिर हैं, ममत्व रहित हैं, आसक्ति-रहित हैं, ऐसे आदमियों को ही लोक में 'श्रमण' कहते हैं ॥४॥]

इस प्रकार उन सबने अपने अपने शील की बड़ाई कर चुकने के अनन्तर धनञ्जय से पूछा—"महाराज ! क्या आपके पास कोई पण्डित है जो इस सन्देह की निवृत्ति करे ?"

"हाँ, महाराजाओ ! मेरा अर्थ-धर्मानुशासक अनूपम विधुर पण्डित है । वह हमारे सन्देह को मिटा देगा । उसके पास चलें ।"

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया । तब सभी उद्यान से निकल धर्म-सभा में जा, (उसे) सजवा, बोधिसत्व को श्रेष्ठ आसन के बीच में बिठा, कुशल-क्षेम

पूछ, एक ओर बैठे और कहा—"पण्डित ! हमारे मन में सन्देह उत्पन्न हो गया है, उसे दूर कर।" उन्होंने गाथा कही—

पुच्छाम कत्तारं अनोमपञ्ञं
गाथासु नो विग्गहो अत्थि जातो,
छिन्दज्ज कंखं विचिकिच्छितानि
तपज्ज कंखं वितरेमु सब्बे ॥५॥

[हम तुझ (कर्तव्य बोध) करानेवाले, महाप्रज्ञ से पूछते हैं। हमारी गाथाओं में विरोध पैदा हो गया है। हमारे सन्देह को, हमारे शक्र को मिटा ताकि हम सब सन्देह के पार हों ॥५॥]

पण्डित ने उनकी बात सुनी तो 'महाराज ! मैं आप लोगों की शील-सम्बन्धी गाथाओं के बारे में कैसे जानूंगा कि कौन सुकथित है और कौन दुकथित है ?' कह, यह गाथा कही—

ये पण्डिता अत्थदस्सा भवन्ति
भासन्ति ते योनिसो तत्थ काले,
कथन्नु गाथानं अभासितानं
अत्थं नयेय्युं कुसला जनिन्द ॥६॥

[जो अर्थ-दर्शी पण्डित होते हैं, वे समय पर विचार कर बोलते हैं। हे जनिन्द ! पण्डित-जन भी बिना बताइ गई गाथाओं के बारे में कैसे कह सकते हैं ? ॥६॥]

फिर पूछा—

कथं हवे भासति नागराजा
कथं पन गरुळो वेनतेय्यो
गन्धब्बराजा पन किं वदेति
कथं पन कुरुनं राजसेट्ठ ॥७॥

[नागराज क्या कहता है ? गरुड़ क्या कहता है ? गन्धर्व राज क्या कहता है और कौरव राज-श्रेष्ठ क्या कहता है ? ॥७॥]

उसे उन्होंने यह गाथा कही—

खन्तिं हवे भासति नागराजा
अप्पाहारं गरुळो वेनतेय्यो,

गन्धब्बराजा रतिविप्पहानं
अकिञ्चनं कुरुनं राजसेट्ठ ॥८॥

[नागराज 'शान्ति' की बात करता है, गरुड़ अल्पाहार की महिमा गाता है, गन्धर्व-राज रति-त्याग की और कौरव राज-श्रेष्ठ अकिञ्चन होने की ॥८॥]

उनकी बात सुन बोधिसत्व ने यह गाथा कही—

सब्बानि एतानि सुभासितानि
न हेत्थ दुब्भासितमत्थि किञ्चि,
यस्मिञ्च एतानि पतिट्ठितानि
ऊराव नाभ्या सुसंमोहितानि
चतुब्भि धम्मेहि समंगिभूतं
तं वे नरं समणं आहु लोके ॥९॥

[ये सभी सुभाषित हैं। इनमें दुभाषित कोई नहीं। जिस प्रकार चक्र की नाभि में उसके डण्डे सुप्रतिष्ठित रहते हैं, उसी प्रकार जिस व्यक्ति में ये चारों बातें हैं अर्थात् जो आदमी इन चारों बातों से युक्त है, उसे लोक में 'श्रमण' कहते हैं ॥९॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने चारों के शील को बराबर ठहराया। यह सुन चारों जने उस पर प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

तुवञ्ञु सेट्ठो त्वमनुत्तरोसि
त्वं धम्मगु धम्मविदू सुमेधो
पञ्ञाय पञ्हं समधिग्गहेत्वा
अच्छेच्छि धीरो विचिकिच्छितानि
अच्छेच्छि कंसं विचिकिच्छितानि
चुन्दो यथा नागदन्तं खरेन ॥१०॥

[तू श्रेष्ठ है। तू अनूपम है। तू धर्मज्ञ है। तू धर्म का जानकार है। तू मेधावी है। तूने प्रज्ञा से प्रश्नों को ग्रहण कर हमारे सन्देह को उसी प्रकार काट दिया जैसे चुन्द (दन्तकार) ने आरी से हाथी के दान्त को ॥१०॥]

इस प्रकार वे चारों जने उसके शंका-समाधान से संतुष्ट हुए। शक्र ने उसकी दिव्य-वस्त्र से पूजा की। गरुड़ ने स्वर्ण-माला से, नागराज वरुण ने मणि से और धनञ्जय-राज ने हजार गौवों आदि से। उन्होंने कहा—

नीलुप्प लामं विमलं अनग्घं
वत्थं इमं धूमसमानवण्णं
पञ्हस्स वेय्याकरणेन तुट्ठो
ददामि ते धम्मपूजाय धीर ॥११॥

[नीलोत्पल जैसी चमकवाला, निर्मल, मूल्यवान, धूम्र के समान वर्ण वाला यह वस्त्र हे धीर पुरुष ! मैं तेरे शंका-समाधान से सन्तुष्ट हो तुझे धर्म-पूजा रूप में देता हूँ ॥११॥]

सुवण्णमालं सतपतफुल्लं
सकेसरं रतनसहस्समण्डितं
पञ्हस्स वेय्याकरणेन तुट्ठो
ददामि ते धम्मपूजाय धीर ॥१२॥

[स्वर्ण-माला जिसमें, कंवल लगे हैं, जो केशर-सहित है, और जिसमें हजार रतन जड़े हैं, हे धीर पुरुष ! मैं तेरे शंका-समाधान से सन्तुष्ट हो तुझे धर्म-पूजा रूप में देता हूँ ॥१२॥]

मणिं अनग्घं रुचिरं पभस्सरं
कण्ठावसत्तं मणिभूसितं मे,
पञ्हस्स.............. ॥१३॥

[मूल्यवान, सुन्दर, चमकदार मणि है, यह कण्ठ से उतारी गई है, यह मेरा भूषण है, हे धीर पुरुष ! मैं तेरे शंका समाधान से संतुष्ट हो तुझे धर्म-पूजा रूप में देता हूँ ॥ ॥१३॥]

गवं सहस्सं उसमञ्च नागं
आजञ्ञ युत्तेच रथे दस इमे
पञ्हस्स................ ॥१४॥

(हजार गौवें, बैल, सभी हाथी और श्रेष्ठ घोड़े जुते ये दस रथ, हे धीर-पुरुष। मैं तेरे शंका-समाधान से संतुष्ट हो तुझे धर्म-पूजा रूप में देता हूँ ॥१४॥]

शक्रादि बोधिसत्व की पूजा कर अपने-अपने घर चले गये।

चतु-उपोसथ काण्ड समाप्त।

उनमें से नागराज की भार्य्या का नाम विमला देवी था। उसने जब उसके गले में मणि नहीं देखी तो प्रश्न किया—

"देव! आपकी मणि कहाँ है?"

"भद्रे! चन्द्र-ब्राह्मण पुत्र विधुर पण्डित की धर्म-कथा सुन, श्रद्धावान हो, मैंने उस मणि से उसकी पूजा की। न केवल मैंने ही पूजा की। शक्र ने भी उसकी दिव्य-वस्त्रों से पूजा की। गरुड़-राज ने स्वर्ण-माला से और धनञ्जय-राज ने हजार गोओं आदि से।"

"देव! वह धार्मिक-वक्ता है!"

"भद्रे! क्या कहना है! जम्बु द्वीप में बुद्धोत्पाद का सा समय है। सारे जम्बु द्वीप के एक सौ राजा उसकी मधुर वाणी से ऐसे बंधे हुए हैं जैसे हस्ति-कान्त वीणा के स्वर से बँधे हुए मस्त हाथी। वे अपने राज्यों को भी नहीं जाते हैं। वह ऐसा मधुरभाषी है।"

उसने विधुर-पण्डित का गुण सुना तो उसके मन में उसका धार्मिक-भाषण सुनने की इच्छा हुई। उसने सोचा—"यदि मैं कहूँगी देव! मैं उसका धर्मोपदेश सुनना चाहती हूँ, उसे यहाँ लायें, तो यह उसे नहीं लायेगा। मैं 'दोहद' उत्पन्न हुआ है, कहकर रोगी होने का बहाना करूंगी।" उसने वैसा ही किया और सेविकाओं को संकेत कर जाकर लेट रही।

नागराजा ने सेवा में आने के समय जब विमला को नहीं देखा तो सेविकाओं से पूछा—

"विमला कहाँ है?"

"देव! रोगिणी है।"

वह उसके पास गया और शैय्या के किनारे बैठ उसका शरीर मलते हुए उसने पहली गाथा कही—

पण्डुकिसियासि दुब्बला
वण्णरूपं न तवेदिसं पुरे,
विमले अक्खाहि पुच्छिता
कीदिसो तुय्हं सरीरवेदना॥१॥

[तू पाण्डु-वर्ण हो रही है, तू दुर्बल हो गई है। तेरा रंग-रूप पहले ऐसा नहीं था। हे विमला! मैं तुझे पूछता हूँ—तू कह। तुझे क्या शरीर-कष्ट है? ॥१॥]

उसने दूसरी गाथा द्वारा उसे उत्तर दिया—

धम्मो मनुजेसु मानिनं
दोहळो नाम जनिन्द वुच्चति,
धम्माहटं नागकुञ्जर
विधुरस्स हदयाभिपत्थये ॥२॥

[मनुष्य-योनि में स्त्रियों का यह स्वभाव है कि हे जनेन्द्र! उन्हें 'दोहद' उत्पन्न होता है। हे नाग-श्रेष्ठ! मैं धर्मानुसार लाये गये विधुर-पण्डित का हृदय चाहती हूँ ॥२॥]

यह सुन नागराजा ने तीसरी गाथा कही—

चन्दं खो त्वं दोहळायसि
सुरियं वा अथवापि मालुतं,
दुल्लभे हि विधुरस्स दस्सने
को विधुरं इधमानयिस्सति ॥३॥

[तेरे मन में 'चन्द्रमा' के लिये 'दोहद' उत्पन्न हुआ है अथवा सूर्य के लिये, अथवा वायु के लिये। जब विधुर का दर्शन ही दुर्लभ है, तो विधुर को यहाँ कौन लायेगा? ॥३॥]

उसने उसकी बात सुनी तो बोली—"नहीं मिलने से मेरा यहीं मरना निश्चित है।" उसने अपनी पीठ फेर ली और वस्त्र के कोने से मुंह पोंछ पड़ रही।

नागराजा अपने भवन में लौटा तो शैय्या पर पड़ा-पड़ा यह समझकर कि विमला विधुर-पंडित का हृदय-मांस चाहती है और यदि हृदय-मांस नहीं मिलेगा तो वह जीती नहीं रहेगी, सोचने लगा—"उसका हृदय-मांस कैसे प्राप्त करूं?" उसकी इरन्दति नामकी नाग-कन्या थी। वह सभी अलंकारों से अलंकृत हो बड़ी सजधज के साथ सेवा में आई और पिता को नमस्कार कर एक ओर खड़ी हो गई। जब उसने उसकी विकृत शकल देखी, तो 'तात! आप बहुत दुखी हैं। क्या कारण है?' पूछते हुए उसने गाथा कही—

किन्नु तात तुवं सन्धायसि
पदुमं हत्थगतंव ते मुखं,
किं दुम्मनरूपोसि इस्सर
मा त्वं सोचि अमित्ततापना ॥४॥

[हे तात ! आप क्या चिन्ता कर रहे हैं। आपका चेहरा हाथ में लिये म्लान कमल के समान है। हे राजन् ! आप का रूप विकृत क्यों है ? हे शत्रुओं को ताप देनेवाले ! आप क्या सोच रहे हैं ? ॥४॥]

लड़की का कहना सुना तो नाग-राज ने उसे प्रत्युत्तर देते हुए कहा—

माता हि तव इरन्दति
विधुरस्स हदयं धनीयति
दुल्लभे हि विधुरस्स दस्सने
को विधुरं इधमानयिस्सति ॥५॥

[हे इरन्दति ! तेरी माता विधुर के हृदय की इच्छा करती है। विधुर का दर्शन ही दुर्लभ है। विधुर को कौन यहाँ लायेगा ? ॥५॥]

वह बोला, "अम्म ! मेरी सामर्थ्य नहीं है कि मैं विधुर को ला सकूं। तू माता को जीवन दे। किसी ऐसे 'पति' की तलाश कर जो विधुर को ला सके।" उसने उसे प्रेरित करते हुए आधी गाथा कही—

भत्तुपरियेसनं चर,
यो विधुरं इधमानयिस्सति।

[ऐसे 'पति' की खोज कर जो विधुर को यहाँ ला सके ॥]

राग के वश में होने से उसने लड़की को न कहने योग्य बात भी कही।

पितुनो च सा सुत्वान वाक्यं,
रत्तिं निक्खम्म अवस्सुतिञ्चरि ॥६॥

[पिता की बात सुन वह रात को ही निकल 'पति' की खोज में विचरने लगी ॥६॥]

विचरते हुए उसने हिमालय में जो वर्ण-गन्ध-रस सम्पन्न पुष्प थे उन्हें लिया और सारे पर्वत को अनर्घ मणि की तरह सजाकर, ऊपर पुष्पों का आसन बना, सुन्दर प्रकार से नाचते हुए, मधुर-गीत गाते हुए सातवी गाथा कही—

के गन्धब्बे च रक्खसे
नागे किम्पुरिसे च मानुसे,
के पण्डिते सब्बकामदे
दीघरत्तं भत्ता मे भविस्सति ॥७॥

[गन्धर्वों, राक्षसों, किम्पुरुषों तथा मनुष्यों में कौन ऐसा पण्डित है जो मेरी सब कामनाओं को पूरा कर दीर्घकाल तक मेरा स्वामी बने ? ॥७॥]

उस समय कुबेर (=वैश्रवण) महाराज का पुण्णक नामका भानजा जो यक्ष सेनापति था, तीन गव्यूति मनोमय-सिन्धु पारकर काळ पर्वत के ऊपर से मनो शिलातल पर होनेवाले यक्ष-सम्मेलन में जा रहा था। उसने उसका गाना सुना। क्योंकि उसने अपने पहले के जन्म में उस स्त्री से सम्बन्ध किया था, इसलिये उसका स्वर उसकी चमड़ी आदि पारकर हड्डी तक जा पहुंचा। आसक्त हो जाने के कारण वह रुका और उसने सिन्धु पर बैठे ही बैठे कहा—"भद्रे ! मैं अपनी प्रज्ञा से न्याय से, शान्ति से विधुर का हृदय ला सकता हूँ। चिन्ता मत कर।"

उसने उसे आश्वस्त करते हुए आठवीं गाथा कही—

अस्सास हेस्सामि ते पति
भत्ता हेस्सामि अनिन्द लोचने,
पञ्ञा हि मम तथा विधा
अस्सास हेस्ससि भरिया मम ॥८॥

[आश्वस्त रह। मैं तेरा पति बनूंगा। हे अनिन्दित-लोचन ! मैं तेरा स्वामी बनूंगा। मेरी प्रज्ञा ही ऐसी है। विश्वस्त रह, तू मेरी भार्या बनेगी ॥८॥]

अथ नं अब्रवि इरन्दती
पुब्बपथानुगतेन चेतसा,
एहि गच्छाम पितु ममन्तिके
एसोव ते एतमत्थं पवक्खति ॥९॥

[तब पूर्व-जन्म की अनुभूति के कारण इरन्दति ने उसे कहा—"आ, मेरे पिता के पास चलें। वहीं तुझे इस विषय में कहेगा ॥९॥]

अलंकता सुवसना मालिनी चन्दनुस्सदा,
यक्खं हत्थे गहेत्वान पितुसन्तिकमुपागमि ॥१०॥

[अलंकृत, सुवस्त्र तथा मालायें पहने हुए, चन्दन-धारिणी वह यक्ष को हाथ से पकड़ पिता के पास ले गई ॥१०॥]

पुण्णक यक्ष भी लौट पड़ा और नागराज के पास पहुंच उसने इरन्दति को पत्नि-रूप में चाहते हुए गाथा कही—

नागवर वचो सुणोहि मे
पतिरूपं पटिपज्ज सुंकियं,
पत्थेमि अहं इरन्दतिं
ताय समंगि करोहि मे तुवं ॥११॥
सतं हत्थी सतं अस्सा सतं अस्सतरी रथा,
सतं वळभियो पुण्णा नाना रतनस्स केवला,
ते नाग पटिपज्जस्सु धीतरं देहि इरन्दतिं ॥१२॥

[हे नाग-श्रेष्ठ ! मेरी बात सुन। मुझसे स्त्री का योग्य मूल्य ले। मैं इरन्दति को चाहता हूँ। तू उसे मेरी संगिनी कर दे ॥११॥ सौ हाथी, सौ घोड़े, सौ खच्चरें, और नाना रत्नों के भरे सौ छतवाले रथ ले ले और मुझे अपनी लड़की इरन्दति दे दे ॥१२॥]

नागराज ने उत्तर दिया—

याव आमन्तये ञाती मित्ते च सुहदं जनं,
अनामन्तकतं कम्मं तं पच्छामनुतप्पति ॥१३॥

[जब तक मैं अपने रिश्तेदारों, मित्रों तथा सुहृदजनों को न पूछ लूं, तब तक प्रतीक्षा करो। सम्बन्धियों को बिना निमन्त्रण दिये यदि कोई कार्य्य किया जाता है तो पीछे पछताना पड़ता है ॥१३॥]

ततो सो वरुणो नागो पविसित्वा निवेसनं,
भरियं आमन्तमित्वान इदं वचनमब्रवि ॥१४॥
अयं सो पुण्णको यक्खो याचतीमं इरन्दतिं
बहुना वित्तलाभेन तस्स देम पियं मम ॥१५॥

[तब वह वरुण नाग घर में गया और अपनी भार्य्या को सम्बोधित कर यह बात कही ॥१४॥ यह पूर्ण यक्ष मुझसे इरन्दति मांगता है। इससे बहुत सा धन लेकर हम इसे अपनी प्रिय कन्या दे दें ? ॥१५॥]

विमला बोली—

> **न धनेन न वित्तेन लब्भा अम्हं इरन्दती,**
> **स चे हि वो हृदयं पण्डितस्स**
> **धम्मेन लद्धा इधमाहरेय्य,**
> **एतेन वित्तेन कुमारि लब्भा**
> **नाञ्ञं धनं उत्तरिं पत्थयाम ॥१६॥**

[हमने धन से अथवा सम्पत्ति से इरन्दति को प्राप्त नहीं किया है। यदि वह न्याय से, शान्ति से पण्डित के हृदय को यहाँ ला सके तो इस धन से उसे कुमारी प्राप्त हो सकती है। इससे अधिक हम और कोई धन नहीं चाहते ॥१६॥]

> **ततो सो वरुणो नागो निक्खमित्वा निवेसनं,**
> **पुण्णकामन्तमित्वान इदं वचनमब्रवि ॥१७॥**
> **न धनेन न वित्तेन लब्भा अम्हं इरन्दती**
> **सचे तुवं हदयं पण्डितस्स**
> **धम्मेन लद्धा इधमाहरेसि**
> **एतेन वित्तेन कुमारि लब्भा**
> **नाञ्ञं धनं उत्तरिं पत्थयाम ॥१८॥**

[तब वह वरुण नाग घर में से निकला और उसने पुण्णक को बुलाकर यह बात कही ॥१७॥ हमें इरन्दति न धन से मिली है और न सम्पत्ति से। यदि तू बिना जोर-जबर्दस्ती किये पण्डित का हृदय यहाँ ला सके तो तुझे इतने धन से कुमारी मिल जायगी। हम इससे अधिक और धन नहीं चाहते ॥१८॥]

पुण्णक बोला—

> **यं पण्डितोत्येके वदन्ति लोके**
> **तमेव बालोति पुनाहु अञ्ञे,**
> **अक्खाहि मे विप्पवदन्ति एत्थ**
> **कं पण्डितं नाग तुवं वदेसि ॥१९॥**

[लोक में जिसे कुछ लोग 'पण्डित' कहते हैं, उसे ही दूसरे 'मूर्ख' कहते हैं। हे नाग! मुझे बता कि तू किसे 'पण्डित' कहता है? ॥१९॥]

नागराजा बोला—

कोरव्यराजस्स धनञ्जयस्स
यदि ते सुतो विधुरो नाम कत्ता,
आनेहि तं पण्डितं धम्मलद्धा
इरन्दती पद्धचरा ते होतु ॥२०॥

[यदि तूने कोरव्य-राज धनञ्जय का विधुर नामक कर्ता सुना हो तो उस पण्डित को विना जवर्दस्ती किये ले आ। इरन्दति तेरी चरण-दासी होगी ॥२०॥]

इदञ्च सुत्वा वरुणस्स वाक्यं
उट्ठाय यक्खो परमप्पतीतो,
तत्थेव सन्तो पुरिसं असंसि
आनेहि आजञ्ञमिधेव युत्तं ॥२१॥

[वरुण की यह वात सुनी तो परंप्रसन्न होकर यक्ष उठा और उसने वहीं अपने आदमी को आज्ञा दी कि श्रेष्ठ अश्व को यहीं ले आओ ॥२१॥]

जातरूपमया कण्णा काचम्ममया खुरा,
जम्बोनदस्स पाकस्स सुवण्णस्स उरच्छदो ॥२२॥

[स्वर्णमय कान, स्फटिकमय खुर और लाल जम्बोनद स्वर्ण का छाती का आवरण ॥२२॥]

वह पुरुष उसी समय उस घोड़े को ले आया। पूण्णक उस पर चढ़ा और आकाश-मार्ग से कुबेर के पास जाकर नाग-भवन की प्रशंसा कर वह बात कही। उसी के प्रकाशनार्थ यह कहा गया है—

देव वाहवहं यानं
अस्समारुय्ह पुण्णको,
अलंकतो कप्पितकेसमस्सु
पक्कामि वेहासयमन्तलिक्खे ॥२३॥
स पुण्णको कामवेगेन गिद्धो
इरन्दतिं नागकञ्ञं जिगिसं,
गन्त्वान तं भूतपतिं यसस्सिं
इच्चब्रवी वेस्सवणं कुबेरं ॥२४॥

भोगवती नाम मन्दिरे
वासा हिरञ्ञवतीति वुच्चति,
नगरे निम्मिते कञ्चनमये
मण्डलस्स उरगस्स निट्ठितं ॥२५॥

अट्टालका ओट्ठगीवियो
लोहितंकस्स मसारगल्लिनो,
पासादेत्थ सिलामया
सोवण्णा रतनेन छादिता ॥२६॥

अम्बा तिलका च जम्बुयो
सत्तपण्णा मुचलिन्दकेतका,
पियका उद्दालका सह
उपरि भद्दका सिन्धुवारका ॥२७॥

चम्पेय्यका नाग मालिका
भगिणीमाला अथमेत्थ कोलिया,
एते दुमा परिनामिता
सोभयन्ति उरगस्समन्दिरं ॥२८॥

खज्जुरेत्थ सिलामया
सोवण्णधुवपुरिफला,
बहू यत्थ वसतोपपातिको
नागराजा वरुणो महिद्धिको ॥२९॥

तस्स कोमारिका भरिया
विमला कञ्चनवेल्लिविग्गहा,
काला तरुणाव उग्गता
पुचिमन्दत्थनी चारुदस्सना ॥३०॥

लाखारसरत्त सुच्छवी
कणिकारोव निवातपुप्फितो,
तिदिवोकचराव अच्छरा
विज्जुतब्भघनाव निस्सटा ॥३१॥

सा दोहलिनी सुचिम्भिता
विधुरस्स हदयं धनीयति,
तं तेसं ददामि इस्सर
तेन ते देन्ति इरन्दतिं मम ॥३२॥

[देवताओं को ले जाने वाले यान अश्व पर चढ़कर, अलंकृत, ठीक-ठाक किया हुआ पूर्णक आकाश-मार्ग से गया ।।२३।। काम-वेग के वशीभूत हुआ हुआ वह पूर्णक, नाग-कन्या इरन्दति की कामना से यशस्वी वैश्रवण कुबेर राजा के पास गया और बोला।।२४।। भोगवती नामके भवन में 'वासा' तथा 'हिरण्य-वती' कहलाने वाला स्थान है। वह स्वर्ण-मय नगर में फनवाले नाग का सम्पूर्ण वना हुआ स्थान है ।।२५।। उसकी अट्टालिकायें ओष्ठ तथा ग्रीवा के आकार की (?) रक्तवर्ण मणि तथा स्फटिक की बनी हैं। यहाँ के प्रासाद शिलामय हैं, जो स्वर्ण नामक रत्न से ढके हैं ।।२६।। आम्र, तिलक, जामुन, शतपर्ण, मुचलिन्द, केतक, पियक, उद्दालक, उपरि-भद्रक, सिन्धवारक, चम्पक, नाग, भगिणी माला तथा कोलिय—ये इतने प्रकार के वृक्ष परस्पर एक दूसरे से सटे हुए, नागराज के भवन की शोभा बढ़ाते हैं ।।२७-२८।। वहाँ खज्जु पेड़ है जो इन्द्र नीलमणिमय हैं और जो नित्य स्वर्ण-वर्ण पुष्पों से पुष्पित रहते हैं। वहाँ वरुण नागराज रहता है, जो महा प्रतापवान् है और जो बिना माता-पिता के उत्पन्न है ।।२९।। उसकी विमला नामकी भार्य्या है जिसका शरीर स्वर्ण-राशी के समान है, जो काललता की तरह ऊंची है, जिसके स्तन निबोली के समान हैं और जो देखने में बड़ी सुन्दर है ।।३०।। उसकी चमड़ी लाख-रस के सदृश रक्त-वर्ण है, वह वायु-रहित स्थान में पुष्पित कर्णिकर के समान है, वह त्रयोत्रिंश (तीस) भवन में विचरने वाली अप्सरा है और वह घने वादलों में से निकली बिजली के समान है ।।३१।। उस पवित्र-वसना (?) को इस समय 'दोहद' उत्पन्न हुआ है। वह विधुर के हृदय को चाहती है। हे राजन्! मैं वह उन्हें दूंगा। इससे वे मुझे 'इर-न्दति' दे देंगे ।।३२।।]

वैश्रवण की आज्ञा के बिना जाने का साहस न करने के कारण उसकी आज्ञा लेने के लिये ही इतनी गाथायें कहीं। उसकी बात की ओर वैश्रवण का ध्यान नहीं था। वह विमान के वारे में दो देव-पुत्रों का झगड़ा निपटा रहा था। पुण्णक ने जब जाना कि उसकी बात सुनी नहीं गई है तो वह छन भर ही पुत्र के पास रहा। वैश्र-वण ने मुकद्दमे का निर्णय कर चुकने पर जो हारा था उसे तो नहीं उठाया, दूसरे को

कहा 'तू जा' अपने विमान में रह। जैसे ही उसके मुँह से 'तू जा' निकला, पुण्णक ने कुछ देव-पुत्रों को साक्षी बना लिया कि आप सब जान लें कि मेरे मामाने मुझे भेजा है। तब वह उक्त प्रकार से ही घोड़ा मंगवा चढ़कर चल दिया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

स पुण्णको भूतपतिं यसस्सिं
आमन्तय वेस्सवणं कुवेरं
तत्थेव सन्तो पुरिसं असंसि
आनेहि आजञ्ञमिधेव युत्तं ॥३३॥
जातरूपमया कण्णा काचम्ममया खुरा,
जम्बोनदस्स पाकस्स सुवणस्स उरच्छदो ॥३४॥
देववाहवहं यानं
अस्समारुय्ह पुण्णको
अलंकतो कप्पितकेसमस्सु
पक्कामि वेहासयमन्तलिक्खे ॥३५॥

[उस पूर्णक ने यशस्वी राजा कुबेर को सम्बोधन किया और वहीं रहते आदमी को आज्ञा दी कि श्रेष्ठ घोड़े को यहीं ले आये ॥३३॥ अर्थ ऊपर आ गया है ॥३४-३५॥]

उसने आकाश-मार्ग से जाते समय ही सोचा, "विधुर पण्डित के बहुत लोग हैं। मैं उसे पकड़ नहीं सकता हूँ। हाँ धनञ्जय कोरव्य को जुए का शौक है। उसे जुए में जीतकर विधुर को लूँगा। इसके घर में बहुत से रतन हैं। यह कम कीमत की चीज़ की शर्त लगाकर जुआ न खेलेगा। मुझे बहुत मूल्यवान् रतन ले चलना चाहिये। दूसरे रतन राजा नहीं लेगा। राजगृह नगर के समीप वैपुल्य पर्वत के भीतर चक्रवर्ती राजा के योग्य बड़ा ही तेजस्वी मणि-रतन है। उसे ले जाकर उससे राजा को लुभाकर, राजा को जीतूँगा।" उसने वैसा ही किया।

इस अर्थ को प्रकट करने के लिये शास्ता ने कहा—

सो आगमा राजगहं सुरम्मं
अंगस्स रञ्ञो नगरं दुरायुतं,
पहूतभक्खं बहुअन्नपाणं
मसक्कसारं विय वासवस्स ॥३६॥

मयूरकोञ्चागणसम्पघुट्ठं
दिजाभिघुट्ठं दिजसंघसेवितं,
नाना सकुन्ताभिरूपं सुभंगणं
पुप्फाभिकिण्णं हिमवंच पब्बतं ॥३७॥
स पुण्णको वेपुल्लमाभिरुच्छि
सिलुच्चयं किम्पुरिसानुचिण्णं,
अन्वेसमानो मणिरतनं उलारं
तमद्दसा पब्बतकूटमज्झे ॥३८॥

[वह अङ्ग नरेश के रमणीक दुर्जय राजगृह नगर में आया। बहुत खाद्य सामग्री वाला तथा बहुत अन्न-पान वाला वह नगर के इन्द्र के मसक्कसार भवन सदृश था ॥३६॥ मयूर-क्रौञ्च आदि पक्षियों से तथा अन्य पक्षियों से घिरा हुआ, नाना प्रकार के पक्षियों की गूंज गुंजारित, सुन्दर अ.ङ्गनवाला तथा हिमालय पर्वत की तरह पुष्पों से आच्छादित ॥३७॥ वह पुण्णक ऊँची शिलाओं वाले, किम्पुरुषों द्वारा रचित वैपुल्य-पर्वत के ऊपर चढ़ा। जब मैं उस अनर्घ मणि-रतन को खोज रहा था, मैंने उसे पर्वत के शिखर के बीच देखा ॥३८॥]

दिस्वा मणिं पभस्सरं जातिवन्तं
धनाहरं मणिरतनं उलारं
दद्दल्लमानं यससा यसस्सिनं
ओभासति विज्जुरिवन्तलिक्खे ॥३९॥
तमग्गही वेलुरियं महग्घं
मनोहरं नाम महानुभावं,
आजञ्ञमारुय्ह अनोमवण्णो
पक्कामि वेहासयमन्तलिक्खे ॥४०॥

[श्रेष्ठ मणि को देख, जो चमकदार थी, जो धन लाने वाली थी, जो बड़ी मणि थी, जो यशस्वियों के यश से चमक रही थी और जो बिजली की भान्ति प्रकाशित थी ॥३९॥ उसने उस महामूल्यवान् मनोहर मणि को ग्रहण किया और वह श्रेष्ठ वर्ण वाला श्रेष्ठ घोड़े पर चढ़ आकाश-मार्ग से चला गया ॥४०॥]

सो आगमा नगरं इन्दपत्तं
ओरुव्ह चागञ्छि सभं कुरूनं,
समागमे एकसतं समग्गे
अव्हेत्थ यक्खो अविकम्पमानो ॥४१॥

[वह इन्द्रप्रस्थ नगर आया ओर घोड़े से उतर कुरुओं की सभा में पहुँचा। वह पुण्णक एक सौ राजाओं की सभा में स्थिर भाव से खड़ा हुआ ॥४१॥]

कोनिध रञ्ञं वरमाभिजेति
कमाभिजेय्याम वरं धनेन,
कमनुत्तरं रतनवरं जिनाम
कोवापि नो जेति वरं धनेन ॥४२॥

[राजाओं में से कोन हमसे श्रेष्ठ (धन) जीतेगा ? अथवा हम किसे धन से जीतेंगे ? हम किस श्रेष्ठ धन को जीतेंगे ? अथवा कौन हमें श्रेष्ठ धन से जीतेगा ? ॥४२॥]

इस प्रकार उसके चारों पद कौरव्य पर ही घटते थे। राजा ने सोचा, इससे पहले मुझे इस प्रकार वीर बनकर बोलनेवाला दिखाई नहीं दिया। यह कौन है ? उसने पूछते हुए गाथा कही—

कुहिं नु रट्ठे तव जातभूमि
न कोरव्यस्सेव वचो तवेदं,
अभिभोसि नो वण्णनिभाय सब्बे
अक्खाहि मे नामञ्च बन्धवे च॥४३॥

[राष्ट्र में तेरी जन्म-भूमि कहाँ है ? यह तेरी वाणी कुरु-देशवासी की वाणी नहीं है। तू अपनी प्रभा से सबको अभिभूत कर रहा है। अपना नाम और बान्धव बता ॥४३॥]

यह सुन उसने सोचा, "यह राजा मेरा नाम पूछता है। 'पुण्णक' नाम दासों का होता है। यदि मैं कहूँगा कि मैं 'पुण्णक' हूँ तो यह मेरी परवाह नहीं करेगा, सोचेगा कि यह दास है, प्रगल्भ होने से इस प्रकार बोलता है। मैं इसे पूर्व-जन्म से पहले का नाम कहूँगा।" यह सोच गाथा कही—

कच्चायनो माणवकोस्मि राज
अनूननामो इतिमव्हयन्ति,
अंगेसु मे ञातयो बन्धवा च
अक्खेन देवस्मि इधानुपत्तो ॥४४॥

[हे राजन् ! मैं कच्चायन माणवक हूँ। मुझे अन्यून (अर्थात् पूर्ण) नाम कहते हैं। अङ्ग जनपद में मेरे रिशतेदार तथा बान्धव हैं। हे देव ! मैं यहाँ जुआ खेलने आया हूँ ॥४४॥]

तब राजा ने उसे पूछा, "माणव ! जीत लेने पर तू क्या देगा ? तेरे पास क्या है ?" उसने गाथा कही——

किं माणवस्स रतनानि अत्थि
ये तं जिनन्तो हरे अक्खधुत्तो
बहूनि रञ्ञो रतनानि अत्थि
ते त्वं दलिद्दो कथमव्हयेसि ॥४५॥

[हे माणवक ! तेरे पास कौन से रतन हैं जिन्हें जीतने पर जुआरी तुझसे ले जा सके। राजा के तो बहुत से रतन हैं। तू दरिद्र राजा को कैसे जुए में ललकारता है ? ॥४५॥]

तब पुण्णक बोला——

मनोहरो नाम मणी ममायं
धनाहरो मणिरतनं उलारं,
इमञ्च आजञ्ञं अमित्ततापनं
एतं मे जेत्वा हरे अक्खधुत्तो ॥४६॥

[मेरे पास यह मनको हरण करनेवाली मणि है। यह धन को लानेवाली बड़ी मणि है। इस मणि को तथा शत्रुओं को अनुतप्त करने वाले इस श्रेष्ठ घोड़े को जुआरी मुझे जीतकर ले जा सकता है ॥४६॥]

यह सुन राजा ने गाथा कही——

एको मणि माणव किं करिस्सति
आजानियेको पन किं करिस्सति,

बहूनि रञ्ञो मणिरतनानि अत्थि
आजानिया वातजवा अनप्पका ॥४७॥

[हे माणवक ! यह एक मणि क्या करेगी ? और यह एक श्रेष्ठ घोड़ा भी क्या करेगा ? राजा के पास बहुत से रतन हैं और हवा से बात करनेवाले बहुत से घोड़े भी हैं ॥४७॥]

दोहद काण्ड समाप्त

उसने राजा की बात सुनी तो कहा—"महाराज ! यह क्या कहते हैं ? एक घोड़ा हजार घोड़ों के मुकाबले पर भी रखा जा सकता है । एक मणि भी हजार मणियों के मुकाबले पर । सभी घोड़े समान नहीं होते । इस घोड़े का वेग देखें ।" यह कह घोड़े पर चढ़ उसे चार-दीवारी पर दोड़ाया । सात योजन का नगर ऐसा हो गया मानो घोड़ों की गरदनों से घिरा हुआ हो । आगे घोड़ा ही दिखाई नहीं दिया । यक्ष भी दिखाई नहीं दिया । पेट पर बंधे हुए कपड़े से ही सारा का सारा घिरा दिखाई देने लगा । उसने घोड़े से उतरकर पूछा—

"महाराज ! घोड़े का वेग देखा ?"

"हाँ, देखा ।"

"महाराज, अब देखें" कह उसने घोड़े को नगर-उद्यान में पानी पर दौड़ाया । वह बिना खुरों को भिगोये कूद गया । उसने उसे कंवल के फूलों में घुमाया । फिर ताली बजाकर हाथ फैलाया । घोड़ा आकर हाथ की हथेली पर खड़ा हो गया । तब कहा—"महाराज ! ऐसे अश्व-रतन की कीमत है न ?"

"माणवक ! है ।"

"महाराज ! अश्व-रतन रहे । अब मणि-रतन की महिमा देखें" कहते हुए गाथायें कहीं—

इदञ्च मे मणिरतनं पस्स त्वं दिपदुत्तम,
इत्थीनं विग्गहाचेत्थ पुरिसानञ्च विग्गहा ॥४८॥
मिगानं विग्गहा चेत्थ सकुणानञ्च विग्गहा
नागराजे सुपण्णे च मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥४९॥

[हे नरोत्तम ! इस मणि-रतन को देखें । यहाँ स्त्रियों की शकल, पुरुषों की

शकल, जानवरों की शकल, पक्षियों की शकल, नागराजा-गण तथा गरुड़ों की शकल देखें। इस मणि में सबकी शकलें बनी हुई हैं ।।४८-४९।।]

और भी—

हत्थानीकं रथानीकं अस्से पत्तिधजानि च,
चतुरंगिनिं इमं सेनं मणिम्हि पस्स निम्मितं ।।५०।।
हत्थारूहे अनीकट्ठे रथिके पत्तिकारिके,
बलग्गानि वियूलहानि मणिम्हि पस्स निम्मितं ।।५१।।
पुरं उद्दापसम्पन्नं बहुपकारतोरणं,
सिंघाटकेसु भूमियो मणिम्हि पस्स निम्मितं ।।५२।।
एसिका परिखायो च पलिखं अग्गलानिच,
अट्टालके च द्वारे च मणिम्हि पस्स निम्मितं ।।५३।।

[हाथियों की सेना, रथों की सेना, घोड़े, पैदल और ध्वजायें—इस प्रकार की मणि में बनी हुई चतुरङ्गिनी सेना को देखें ।।५०।। हस्ति-सवार सेनानी, रथ-सवार, पैदल तथा पंक्तिबद्ध सेनायें—ये सब मणि में बनी देखें ।।५१।। चारदीवारी वाला नगर, ऊँची चारदीवारी वाले दरवाजे, और चौरस्तों पर रमणीय भूमि—ये सब मणि में निर्मित देखें ।।५२।। स्तम्भ, खाइयाँ, दरवाजों मे के डण्डे तथा दरवाजे, अट्टालिकायें तथा द्वार—ये सब मणि में बने देखें ।।५३।।]

पस्स तोरणमग्गेसु नाना दिजगणा बहू,
हंसा कोञ्चा मयूरा च चक्कवाका च कुक्कुहा ।।५४।।
कुणालका बहुचित्रा सिखण्डी जीवजीवका,
नानादिजगणाकिण्णं मणिम्हि पस्स निम्मितं ।।५५।।

[तोरणों के सिरों पर देखें, नाना प्रकार के बहुत से पक्षी। हंस, क्रौञ्च, मयूर, चक्रवाक और मुर्गे (?) ।।५४।। अत्यन्त चित्रित कोयल, मोर, जीव जीवक तथा नाना प्रकार के पक्षियों का समूह—ये सब मणि में बना देखें ।।५५।।]

पस्स नगरं सुपाकारं अब्भुतं लोमहंसनं,
समुस्सितधजं रम्मं सुवण्णवालुकसन्थतं ।।५६।।
पस्स त्वं पण्णसालायो विभत्ता भागसोमिता,
निवेसने निवेसेच सन्धिब्यूहे पथद्धियो ।।५७।।

[अच्छो प्रकारों से युक्त, अद्भुत, लोम-हर्षक, रमणीय नगर को देखें, जहाँ पताकायें लहरा रही हैं और जहाँ स्वर्ण बालू बिछी है ।।५६।। विभागवार विभक्त दुकानों को देखें, घरो और घरों की वस्तुओं को देखें तथा बाजारों और गलियो को देखें ।।५७।।]

पाणागारे च सोण्डे च सुणा ओदनिया घरा,
वेसोच गणिकायो च मणिम्हि पस्स निम्मितं ।।५८।।
मालाकारे च रजके गन्धिके अथ दुस्सिके,
सुवण्णकारे मणिकारे मणिम्हि पस्स निम्पितं ।।५९।।
आलारिये च सूदेच नटनट्टक गायने,
पाणिस्सरे कुम्भथूनिके मणिम्हि पस्स निम्मितं ।।६०।।

[पानागार, शराबी, कुत्ते, पाचनगृह, वैश्यायें तथा गणिकायें—ये सब मणि में बनी देखें ।।५८।। माली, धोबी, गान्धी, कपड़े बेचनेवाले, स्वर्णकार तथा मनियारे—ये सब मणि में बने देखें ।।५९।। रसोइये, नट, नर्तक, गायक, ताली बजाकर गाने वाले तथा घड़े बजाने वाले—ये सब मणि में बने देखें ।।६०।।]

पस्स भेरी मुतिंगा च संखा पणवदेण्डिमा,
सब्बञ्च तालावचरं मणिम्हि पस्स निम्मितं ।।६१।।
सम्मतालञ्च वोणञ्च नच्चगोतं सुवादितं,
तुरियतालित संघुट्ठं मणिम्हि पस्स निम्मितं ।।६२।।
लंघिका मुट्ठिका चेत्थ मायाकाराच सोभिया,
वेतालिके च जल्ले च मणिम्हि पस्स निम्मितं ।।६३।।

[भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख, ढोल, दौंडी तथा अन्य सभी संगीत वाद्य—ये सब मणिमें बने देखें ।।६१।। मंजीरा, वीणा, नृत्यगीत, सुवाद्य, नाना प्रकार के बाजों का आरम्भ, होना और साथ बजना—ये सब मणि में बने देखें ।।६२।। कूदनेवाले, पहलवान जादूगर, नगर के शोभा रूप, वैतालिक तथा नाई—ये सब मणि में बने देखें ।।६३।।]

समज्जा चेत्थ वत्तन्ति आकिण्णा नरनारिहि,
मञ्चातिमञ्चे भूमियो मणिम्हि पस्स निम्मितं ।।६४।।

[नरनारियोसे घिरे हुए यहाँ तमाशे हैं और मञ्चके ऊपर बन्धे भिन्न भिन्न नल्ले हैं—ये सब यहाँ मणि मे बने देखें ।।६४।।]

पस्स मल्ले समज्जस्मिं पोठेन्ते दिगुणं भुजं,
निहते निहतमाने च मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥६५॥

[तमाशे में अपनी भुजाओं को थापी देते हुए मल्लों को देखो और हारे हुए मल्लों को—ये सब यहाँ मणि में बने देखें ॥६५॥]

पस्स पब्बतपादेसु नानामिगगणा बहू
सीहव्यग्घवराहा च अच्छकोकतरच्छयो ॥६६॥
पलसता च गवजा च महिसा रोहिता रुरु
एणेय्या च वराहा च गणिनो निंकसूकरा ॥६७॥
कदलिमिगा बहु चित्रा बिलारा ससकण्णका,
नाना मिगगणाकिण्णं मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥६८॥

[पर्वतों की तलहटी में नाना प्रकार के जानवरों को देखें—सिंह, व्याघ्र, सूअर, भालू और लकड़बग्घे ॥६६॥ गेंडे; (नील-) गाय (?); भैंस; वराह, रुरु, रोहित, गणि तथा निंकसूकर नामक मृग-जातियाँ ॥६७॥ नाना प्रकार के चित्त कदली-मृग, जंगली बिल्ले, तथा कानवाले खरगोश तथा नाना प्रकार के इकट्ठे हुए मृग—ये सब मणि में बने हुए देखें ॥६८॥]

नज्जायो सुपतित्थायो सोण्णवालुकसन्थता,
अच्छा सवन्ति अम्बूनि मच्छगुम्बनिसेविता ॥६९॥
कुम्भीला मकरा चेत्थ सुंसुमारा च कच्छपा,
पाठीना पावुसा मच्छा वलजा मुञ्ज रोहिता ॥७०॥

[सुन्दर तीर्थों वाली नदियाँ, सुनहरी बालुका आस्तरण, मच्छों के समूह को लिये हुए स्वेच्छ जल बहाती हैं ॥६९॥ मगर-मच्छ, मकर, मगर-मच्छ (?) कछुवे, पाठीन, पावु, (मछलियाँ) और मुञ्ज तथा रोहित (मछलियाँ) ॥७०॥]

नाना दुमगणाकिण्णा नानादिजगणायुता
वेलुरियफलक रोदायो मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७१॥

[नाना प्रकार के वृक्षों तथा पक्षियों से घिरी हुई और बिल्लौर के पाषाण से टकराकर आवाज निकालती हुई नदियाँ—ये सब मणिमें बनी देखें ॥७१॥]

पस्सेत्थ पोक्खरणियो सुविभत्ता चतुद्दिसा,
नानादिजगणाकिण्णा पुथुलोमनिसेविता ॥७२॥
समन्तुदकसम्पन्नं महिं सागरकुण्डलं
उपेतं वनराजेहि मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७३॥

[चारों ओर विभक्त पुष्करिणियाँ देखें, जहाँ नाना प्रकार के पक्षी तथा बहुत प्रकार की मछलियाँ हैं ॥७२॥ चारों ओर से पानी से घिरी हुई, सागर-कुण्डलिनी पृथ्वी है जो वनों की पंक्ति से युक्त है ॥७३॥]

पुरतो विदेहे पस्स गोयानिये च पच्छतो
कुरुयो जम्बुदीपञ्च मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७४॥
पस्स चन्दञ्च सुरियञ्च ओभासेन्ते चतुद्दिसा
सिनेरुं अनुपरियन्ते मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७५॥
सिनेरुं हिमवन्तञ्च सागरञ्च महिद्धिकं,
चत्तारोच महाराजे मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७६॥
आरामे वनगुम्बे च पारिये च सिलुच्चये,
रम्मे किम्पुरिसाकिण्णे मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७७॥
फारुसकं चित्तलतं मिस्सकं नन्दनं वनं,
वेजयन्तञ्च पासादं मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७८॥
सुधम्मं तावतिंसञ्च पारिच्छत्तञ्च पुप्फितं
एरावणं नागराजं मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥७९॥
पस्सेत्थ देवकञ्ञायो नभा विज्जुरिवुग्गता,
नन्दने विचरन्तियो मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥८०॥
पस्सेत्थ देवकञ्ञायो देवपुत्तपलोभिनी,
देवपुत्ते चरमाने मणिम्हि पस्स निम्मितं ॥८१॥

[आगे पूर्व-विदेह, पीछे अपरगोयान द्वीप, कुरु-द्वीप तथा जम्बुद्वीप—ये सब मणि में बने देखें ॥७४॥ चारों ओर चमकने वाले तथा सिनेरु (पर्वत) तक पहुंचे हुए चान्द और सूर्य्य को देखें ॥७५॥ सिनेरु (पर्वत) महाप्रतापवान् समुद्र तथा चारों महाराजा—ये सब मणि में बने देखें ॥७६॥ आराम तथा ऊँची शिलाओं और फैले पत्थरों वाले सुन्दर वन, जहाँ किन्नर रहते हैं—ये सब मणि में बने देखें

।।७७।। फारुसक, चित्तलता, मिश्रक, नन्दनवन तथा वेजयन्त प्रासाद—ये सब मणि में बने देखें।।७८।। सुधर्म, त्रयोत्रिंश, सुपुष्पित पारिछत्र, एरावण नागराज—ये सब मणि में बने देखें ।।७९।। आकाश में बिजली के समान यहाँ नन्दन वन में विचरती हुई देव-कन्याओं को देखें—ये सब मणि में बनी देखें ।।८०।। देव-पुत्रों को लुभानेवाली देव-कन्यायें देखें तथा विचरने वाले देव-पुत्र—ये सब मणि में बने देखें ।।८१।।]

परोसहस्स पासादे वेलुरिय फलकत्थते,
पज्जलन्तेन वण्णेन मणिम्हि पस्स निम्मितं।।८२।।
तावतिंसे च यामे च तुसिते चापि निम्मिते,
परनिम्मिताभिरतिनो मणिम्हि पस्स निम्मितं।।८३।।
पस्सेत्थ पोक्खरणियो विप्पसन्नोदिका सुची
मन्दालकेहि सञ्छन्ना पदुमुप्पलकेहि च।।८४।।

[बिल्लोर के फर्शवाले हज़ार से अधिक प्रासाद जो वर्ण से प्रज्वलित हैं—ये सब मणि में बने देखें ।।८२।। त्रयोत्रिंश, याम, तुषित, निर्मित, तथा परनिर्मित—ये सब आनन्द-दायक (देव-लोक) मणि में बने देखें ।।८३।। यहाँ पवित्र, स्वच्छ जलवाली पुष्करिणियाँ देखें, जो मन्दालक तथा पद्म और उत्पल से आच्छादित है ।।८४।।]

दसेत्थ राजियो सेता दस नीला मनोरमा,
छ पिंगला पण्णरसा हलिद्दा च चतुद्दसा।।८५।।
वीसतिं तत्थ सोवण्णा वीसतिं रजतामया,
इन्दगोपकवण्णाभा ताव दिस्सन्ति तिंसति।।८६।।
दसेत्थ कालियो छव मञ्जेट्ठा पण्ण वीसति,
मिस्सा बन्धुक पुप्फेहि नीलुप्पल विचित्तिता।।८७।।
एवं सब्बंगसम्पन्नं अच्चिमंतं पभस्सरं,
ओधिसुंकं महाराज पस्स त्वं दिपदुत्तम ।।८८।।

[इस मणि में दस श्वेत धारियाँ है, दस सुन्दर नील-वर्ण, इक्कीस धारियाँ पिङ्गल-वर्ण हैं और चोदह हलदी के वर्ण की ।।८५।। बीस स्वर्णमय हैं, बीस रजतमय ओर तीस इन्द्र-धनुष के वर्ण की है । ।।८६।। सोलह काली लकीरें, पच्चीस मंजीठे

वर्ण की हैं। ये बन्धुक तथा नीलोत्पल पुष्पों से मिश्रत तथा चित्रित हैं ।।८७।। इस प्रकार हे नरोत्तम ! हे महाराज ! आप इस सर्वांग सम्पूर्ण, तेजस्वी, प्रकाशमान (जुए की) शर्त को देखें ।।८८।।]

मणि-काण्ड समाप्त

यह कह पूर्णक ने कहा—"महाराज ! मैं जुए में जीतने पर यह मणि-रतन दूंगा। तुम क्या दोगे ?"

"तात ! मेरा शरीर और छत्र छोड़कर शेष सब कुछ बाजी पर लगे।"

"देव ! तो देर न करें। मैं दूर से आया हूँ। द्यूत-मण्डल तैयार करायें।"

राजा ने अमात्यों को आज्ञा दी। उन्होंने शीघ्र ही द्यूत-शाला तैयार करा राजा के लिये श्रेष्ठ-वस्त्र (?) का आसन, शेष राजाओं के लिये भी आसन बिछवा तथा पूर्णक के लिये भी योग्य आसन की व्यवस्था कर राजा को समय की सूचना दी।

तब पूर्णक ने राजा को गाथा से सम्बोधित किया—

उपागतं राज उपेहि लक्खं
नेतादिसं मणिरतनं तवत्थि,
धम्मेन जिय्याम असाहसेन
जितो च नो खिप्पमवाकरोहि ।।८९।।

[राजन् द्यूत-शाला तैय्यार है। जुए की शर्त के स्थान पर आओ। तुम्हारे पास ऐसा मणि-रतन नहीं है। हम धर्म से जीतेंगे, जबर्दस्ती नहीं। जीत लिये जाने पर आप तुरन्त बता दें ।।८९।।]

तब राजा ने कहा—"माणवक ! तू मुझे राजा समझकर मत डर। हमारी जीत-हार धर्मानुसार ही होगी, जबर्दस्ती नहीं।" यह सुन माणवक ने राजाओं को साक्षी बनाते हुए कि हमारी जय-पराजय धर्मानुसार ही होगी, गाथा कही—

पञ्चाल पच्चुग्गत सूरसेन
मच्छा च मद्दा सहकेककेहि,
पस्सन्तु नो ते असठेन युद्धं
न नो सभायं न करोति किञ्चि ।।९०।।

[प्रसिद्ध पञ्चाल-राज, शूरसेन, मत्स्य, मद्र तथा केकक के राजागण अशठ भाव से होनेवाला हमारा युद्ध देखें। सभा में किसी को साक्षी बनाया ही जाता है ।।९०।।]

तब सो राजाओं सहित राजाने पुण्णक को साथ ले द्यूत-शाला में प्रवेश किया। सभी योग्य आसनों पर बैठे। चान्दी के फलक पर सोने के पासे रखे गये। पुण्णक शीघ्र ही बोला—"महाराज ! पासों में भाग्यवान् पासे मालिक, सावट, बहुल, शान्ति-भद्र आदि चौबीस गिने गये हैं। उनमें से आप अपने मन का भाग्यवान् पासा लें।" राजा ने अच्छा कहा और 'बहुल' लिये। पुण्णक ने 'सावट'। तब राजा बोला —"तो तात माणवक ! पासा फेंक।" "महाराज ! पहले मेरा फेंकना अच्छा नहीं लगता। आप फेंकें।" राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उसके तीसरे पूर्व-जन्म की उसकी माता ही उसका 'आरक्षक-देवता' थी। उसके प्रताप से राजा जुए में जीतता था। वह पास ही खड़ी थी। राजा ने देवता को स्मरण कर, द्यूत-गान गा, हाथ बढ़ाकर पासों को आकाश में फेंका। पुण्णक के प्रताप से पासे राजा को हराते हुए गिरते। राजा जुए में कुशल था। जब उसने देखा कि पासे उसे ही हराते हुए गिर रहे हैं तो उसने उन्हें वहीं ऊपर ही रोककर फिर ऊपर फेंका। दूसरी बार भी अपने विरुद्ध पड़ते देखकर फिर वैसा ही किया। तब पुण्णक ने सोचा—"यह राजा मेरे जैसे यक्ष के साथ जुआ खेलते समय गिरते पासों को हाथ से पकड़ लेता है, क्या कारण है ?" उसने उसके आरक्षक-देवता का प्रताप जाना, तो आँखें खोल-कर उसे क्रोध की सी नज़र से देखा। वह डर के मारे भागी और चक्रवाल के ऊपर पहुँच काँपती हुई खड़ी हुई। राजा ने तीसरी बार भी पासे फेंके। यह जान लेने पर भी कि पासे उसके विरुद्ध पड़ रहे हैं वह पुण्णक के प्रताप के कारण हाथ बढ़ाकर उन्हें रोक न सका। वे राजा के विरुद्ध गिरे। तब पुण्णक ने पासे फेंके। वे उसे जिताते हुए नीचे गिरे। यह जान कि राजा हार गया है, उसने ताली बजाई और जोर-जोर से तीन बार चिल्लाया—"मैंने जीत लिया, मैंने जीत लिया।" यह बात सारे जम्बुद्वीप में फैल गई। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ते पाविसुं अक्खमदेन मत्ता
राजा कुरूनं पुण्णको चापि यक्खो
राजा कलिं विचिनं अग्गहेसि
कटमग्गही पुण्णको नाम यक्खो ॥९१॥
ते तत्थ जूते उभयो समागते
रञ्ञं सकासे सखिनञ्च मज्झे,

अजेसि यक्खो नरविरियसेट्ठं
तत्थप्पनादो तुमुलो बभूव ॥९२॥

[जुए के मद से मत्त वे दोनों द्यूत-शालामें गये—कुरुओं का राजा तथा पुण्णक यक्ष। राजा ने चुनकर हारने की गोटी ग्रहण की और पुण्णक यक्ष ने जीतने की गोटी ली ॥९१॥ वे दोनों द्यूत-शाला में आकर राजाओं तथा सखियों के बीच में जुआ खेलने लगे। उस यक्ष ने उस नर-वीर्य्य श्रेष्ठ राजा को जीत लिया। इसकी बड़ी घोषणा हुई ॥९२॥]

राजा पराजित होने से असन्तुष्ट हुआ। उसे आश्वस्त करते हुए पुण्णक ने गाथा कही—

जयो महाराज पराजयो च
आयूहतं अञ्ञतरस्स होति,
जनिन्द जिनोसि वरं धनेन
जितो च मे खिप्पमवाकरोहि ॥९३॥

[महाराज! दो युद्ध करते हैं तो एक की जय और एक की पराजय होती ही है। हे जनेन्द्र! मैंने श्रेष्ठ धन जीत लिया। अब तू मुझे शीघ्र जय दे ॥९३॥]

राजा ने उसे "ले" कहते हुए गाथा कही—

हत्थी गवास्सा मणिकुण्डला च
यञ्चापि मय्हं रतनं पथव्या,
गण्हाहि कच्चान वरं धनानं
आदाय येनिच्छसि तेन गच्छ ॥९४॥

[हाथी, बैल, घोड़े, मणि-कुण्डल और भी जो पृथ्वी में मेरा रतन है। हे कात्यायन! धनों में जो श्रेष्ठ है वह ले और लेकर जहाँ इच्छा हो वहाँ जा ॥९४॥]

पुण्णक बोला—

हत्थी गवास्सा मणिकुण्डला च
यञ्चापि तुय्हं रतनं पथव्या,
तेसं वरो विधुरो नाम कत्ता
सो मे जितो तं मे अवाकरोहि ॥९५॥

[हाथी, बैल, घोड़े, मणि-कुण्डल और जो भी पृथ्वी में तेरे रतन हैं, उन सब से श्रेष्ठ विधुर नामक कर्ता हैं। मैंने उसे जीत लिया है। वह मुझे दे ।।९५।।]

राजा बोला—

अत्ता च मे सो सरणं गती च
दीपो च लेणो च परायणो च,
असन्तुलेय्यो मम सो धनेन
पाणेन मे सदिसो एस कत्ता ।।९६।।

[वह मेरा अपना-आप है, वही मेरा शरण-स्थान है, वही मेरी गति है, वही मेरा द्वीप है, वही मेरा आश्रय-स्थान है, उसी के मैं आश्रय हूँ। उसकी मैं किसी धन से तुलना नहीं कर सकता। यह 'कर्ता' मेरे प्राण के समान है ।।९६।।]

पुण्णक बोला—

चिरं विवादो मम तुय्हञ्चस्स
कामञ्च पुच्छाम तमेव गन्त्वा,
एसोव नो विवरतु एतमत्थं
यं वक्खति होतु यथा उभिन्नं ।।९७।

[मेरा और तुम्हारा विवाद दीर्घ-काल से है। हम चलकर उसीसे पूछें। वही हमें यह अर्थ स्पष्ट करेगा। जो कुछ वह कहेगा वही दोनों मानेंगे ।।९७।।]

राजा बोला—

अद्धा हि सच्चं भणसि न च माणव साहसं,
तमेव गन्त्वा पुच्छाम तेन तुस्सामुभो जना ।।९८।।

[हे माणव ! तू निश्चय से सच्ची बात कहता है। यह जबर्दस्ती की बात नहीं है। उसी से चलकर पूछेंगे। उससे दोनों जन सन्तुष्ट होंगे ।।९८।।]

यह कह राजा एक सौ राजाओं तथा माणवक को साथ ले प्रसन्न-मन से शीघ्र ही धर्म-सभा पहुँचा। पण्डित आसन से उठ राजा को नमस्कार कर एक ओर खड़ा हुआ। तब पुण्णक ने महासत्व को सम्बोधित कर कहा—"पण्डित ! तू धर्म में स्थित है। तू प्राण बचाने के लिये भी झूठ नहीं बोलता, यह तेरी कीर्ति लोक-प्रसिद्ध है। मैं आज तेरे धर्म-स्थित होने की परीक्षा करूँगा। उसने गाथा कही—

सच्चं नु देवा विवहू कुरूनं
धम्मे ठितं विधुरं नाम मच्चं,
दासोसि रञ्ञो उदवासि जाति
विधुरोसि संखा कतमासि लोके ॥९९॥

[क्या देवता यह सत्य ही कहते हैं कि कुरु देश मे विधुर नाम का एक मनुष्य धर्म पर स्थित है ? यह जो लोक में 'विधुर' संज्ञा है, वह क्या है ? क्या 'विधुर' राजा का दास है वा सम्बन्धी है ? ॥९९॥]

तब बोधिसत्व ने सोचा, "यह मुझसे इस प्रकार पूछता है । मैं इसे 'राजा का जाति' भी कह सकता हूँ, 'राजा से श्रेष्ठ' भी कह सकता हूँ, 'राजा से कोई सम्बन्ध नहीं' भी कह सकता हूँ । लेकिन इस संसार में सत्य के समान आधार नहीं है । सत्य ही बोलना चाहिये ।" यह सोच उत्तर दिया—"माणवक ! न मैं राजा का रिशतेदार हूँ, न श्रेष्ठ हूँ, मैं चार प्रकार के दासों में ही एक प्रकार का हूँ ।" यह प्रकट करने के लिये गाथा कही—

आमाय दासापि भवन्ति हेके
धनेन कीतापि भवन्ति दासा,
सयम्पि हेके उपयन्ति दासा
भयापणुन्नापि भवन्ति दासा ॥१००॥
एते नरानं चतुरोव दासा
अद्धाहि योनितो अहम्पि जातो,
भवो च रञ्ञो अभवो च रञ्ञो
दासाहं देवस्स परम्पि गन्तवा
धम्मेन मं माणव तुय्हं दज्जा ॥१०१॥

[दासी के पेट से जन्म ग्रहण करने से भी कुछ लोग 'दास' होते हैं । धन से खरीदे जाकर भी 'दास' होते हैं । कुछ स्वयं ही 'दास' हो जाते हैं और भय से मजबूर होकर भी 'दास' हो जाते है ॥१००॥ आदमियों के ये चार प्रकार के 'दास' होते हैं । निश्चय से मैं भी 'दास' योनि में उपन्न हुआ हूँ । चाहे राजा की वृद्धि हो, चाहे अवृद्धि हो (मैं झूठ नहीं बोल सकता) । दूर भी जाकर मैं देव का दास ही रहूँगा । हे माणवक ! राजा मुझे तुझे धर्मानुसार दे सकता है ॥१०१॥]

यह सुन पुण्णक ने प्रसन्न हो फिर तार्ली बजा गाथा कही—

अयं दुतीयो विजयो ममज्ज
पुट्ठो हि कत्ता विवरित्थ पञ्हं,
अधम्मरूपो वत राजसेट्ठो
सुभासितं नानुजानासि मय्हं ॥१०२॥

[यह मेरी आज दूसरी विजय है। 'कर्ता' ने प्रश्न का समाधान कर दिया। किन्तु यह राज-श्रेष्ठ अधार्मिक है। यह मुझे (अभी भी) विधुर पण्डित को नहीं सौंपता ॥१०२॥]

यह सुना तो राजा को बोधिसत्व पर क्रोध आया—'यह मेरे जैसे ऐश्वर्य-दाता की ओर न देख अभी देखे माणवक की ओर झुकता है।' वह बोला—"यदि यह अपने को 'दास' कहता है तो ले जाओ।" उसने गाथा कही—

एवं चे नो सो विवरेत्थ पञ्हं
दासो हमस्मि न च खोस्मि ञाति,
गण्हाहि कच्चान वरं धनानं
आदाय येन इच्छसि तेन गच्छ ॥१०३॥

[यदि यह इसी प्रकार प्रश्न का समाधान करता है और कहता है कि यह सम्बन्धी नहीं है, दास है, तो हे कच्चान यह जो धनों में श्रेष्ठ है इसे जहाँ इच्छा हो वहाँ लेकर जा ॥१०३॥]

अक्ख-कांड समाप्त

यह कह राजा ने सोचा—'माणवक पण्डित को लेकर जहाँ चाहेगा, जायगा। उसके चले जाने के बाद मेरे लिये मधुर-धर्मकथा दुर्लभ होगी। मैं इसे इसके स्थान पर स्थापित कर इससे गृहस्थी के सम्बन्ध में प्रश्न पूछूँ।' वह उससे बोला—'पण्डित! तुम्हारे चले जाने पर मेरे लिये मधुर धर्म-कथा दुर्लभ हो जायगी। अलंकृत धर्मासन पर बैठ अपने स्थान से मुझे गृहस्थी के प्रश्न का उत्तर दें।' उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और अलंकृत धर्मासन पर बैठ, राजा के प्रश्न पूछने पर जो समाधान किया वह समाधान तथा प्रश्न इस प्रस प्रकार है—

विधुर वसमानस्स गहट्ठस्स सकं घरं,
खेमा वुत्ति कथं अस्स कथं नु अस्स संगहो ॥१०४॥

अब्यापज्झं कथं अस्स सच्चवादी च माणवो,
अस्मा लोका परं लोकं कथं पेच्च न सोचति ॥१०५॥

[हे विधुर! अपने घर में रहनेवाले गृहस्थ का कल्याण कैसे होता है? वह (चार) संग्रह (-वस्तुओं) को कैसे प्राप्त होता है? ॥१०४॥ वह कैसे दुःख-रहित होता है, वह कैसे सत्यवादी होता है; और वह क्या करने से इस लोक से पर-लोक जाने पर नहीं सोचता है? ॥१०५॥]

तं तत्थ गतिमा धितिमा मतिमा अत्थदस्सिमा,
संखाता सब्बधम्मानं विधुरो एतदब्रुवि ॥१०६॥

[उस गतिमान्, धृतिमान, मतिमान्, सब धर्मों के ज्ञाता, अर्थ-दर्शी, विधुर ने उसे इस प्रकार उत्तर दिया ॥१०६॥]

न साधारणदारस्स न भुञ्जे सादुमेकतो,
न सेवे लोकायतिकं नेतं पञ्ञाय वड्ढनं ॥१०७॥
सीलवा वत्तसम्पन्नो अप्पमत्तो विचक्खणो,
निवातवुत्ति अत्थद्धो सुरतो सखिलो मुदु ॥१०८॥
संगहेता च मित्तानं संविभागी विधानवा,
तप्पेय्य अन्नपानेन सदा समणब्राह्मणे ॥१०९॥
धम्मकामो सुताधारो भवेय्य परिपुच्छको,
सक्कच्चं पोयरुपासेय्य सीलवन्ते बहुस्सुते ॥११०॥
घरमावसमानस्स गहट्ठस्स सकं घरं,
खेमा वुत्ति सिया एवं एवं नु अस्स संगहो ॥१११॥
अब्यापज्झो सिया एवं सच्चवादी च माणवो,
अस्मा लोका परं लोकं एवं पेच्च न सोचति ॥११२॥

[पराई स्त्रियों के साथ अपनी स्त्री का सा व्यवहार न करे, स्वादिष्ट चीज अकेला न खाये, लोकायतवादी (-भौतिकवादी) की संगति न करे। इससे प्रज्ञा की वृद्धि नहीं होती ॥१०७॥ सदाचारी, गृहस्थी के काम अथवा सरकारी काम करनेवाला, अप्रमादी, बुद्धिमान, विनम्र, मात्सर्य्य-रहित, संयत, प्रेम-भरी मधुर वाणी बोलने वाला हो ॥१०८॥ मित्रों का संग्रह करने वाला, दान-शील, उस उस कार्य्य के समय का जानकार और सदा अन्न-पान से श्रमण-ब्राह्मणों की सेवा करने

वाला हो ॥१०९॥ धर्म की कामना करने वाला हो, सुत (-ज्ञान) का आधार हो, प्रश्न पूछनेवाला हो और सदाचारी बहुश्रुत लोगों की अच्छी तरह उपासना करने वाला हो ॥११०॥ अपने घर में रहनेवाले गृहस्थ का इस प्रकार कल्याण होता है, और इस प्रकार (चार वस्तुओं का) संग्रह होता है ॥१११॥ इस प्रकार आदमी सुखी होता है और इसी प्रकार सत्यवादी होता है। इस लोक से परलोक जाने पर फिर नहीं सोचता है ॥११२॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने राजा को गृहस्थी सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर दे, धर्मासन से उतर, राजा को नमस्कार किया। राजा ने भी उसका बहुत सत्कार किया और सौ राजाओं के साथ अपने राज-भवन ही चला गया।

घरवास-प्रश्न समाप्त

बोधिसत्व रुका। तब पुण्णक बोला—

एहिदानि गमिस्साम दिन्नो नो इस्सरेन मे,
ममेवत्थं पटि पज्ज एस धम्मो सनन्तनो ॥११३॥

[आओ अब चलें। तुम्हें राजा ने मुझे दे दिया है। अब मेरा ही कहना कर, यही परम्परागत धर्म है ॥११३॥]

विधुर पण्डित बोला—

जानामि माणव तयाहमस्मि
दिन्नो हमस्मि तव इस्सरेन,
तीहञ्च तं वासयेमु अगारे
येनद्धुना अनुसासेमु पुत्ते ॥११४॥

[हे माणवक! मैं जानता हूँ कि तूने मुझे प्राप्त किया है। राजा ने मुझे तुझे दिया है। हम तीन दिन तुझे यहाँ घर में रखें, जिस समय में मैं अपने स्त्री-बच्चों को समझा लूं ॥११४॥]

यह सुना तो पुण्णक ने सोचा, "पण्डित ने ठीक कहा है। इसने मेरा बहुत उपकार किया है। सप्ताह या आधा महीना भी कहे तो भी प्रतीक्षा करना ही योग्य है।" वह बोला—

तं मे तथा होतु वसेमु तीहं
कुरुतं भवं अज्ज घरेसु किच्चं,
अनुसासतं पुत्तदारे भवज्ज
यथा तयि पच्छा सुखी भवेय्य ॥११५॥

[यह ऐसा ही हो। हम तीन दिन रहें। आप घर का काम करें। आप स्त्री-बच्चों को जो कहना-सुनना हो कहें, जिससे आपके (चले जाने) पर वे सुखी रहें ॥११६॥)

इतना कह पुण्णक बोधिसत्व के साथ ही उसके घर गया। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

साधूति वत्वान पहूतकामो
पक्कामि यक्खो विधुरेन सद्धिं,
तं कुञ्जराजञ्ञहयानुचिण्णं
पावेक्खि अन्तो पुरमरियसेट्ठो ॥११६॥

['अच्छा' कहकर वह महाऐश्वर्यशाली यक्ष विधुर के साथ (उसके) घर गया। उस आर्य-श्रेष्ठ ने हाथी तथा श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त अन्तःपुर देखा ॥११६॥]

तीन ऋतुओं के लिये बोधिसत्व के तीन प्रासाद थे— एक का नाम था क्रौञ्च-प्रासाद, दूसरे का मयूर-प्रासाद और तीसरा प्रिय-केत नाम। उसके सम्बन्ध में ये गाथायें हैं—

कोञ्चं मयूरञ्च पियञ्च केतं
उपागमी तत्थ सुरम्मरूपं
पहूतभक्खं बहु अन्नपाणं
मसक्कसारं विय वासवस्स ॥११७॥

[वह क्रौञ्च, मयूर और प्रिय-केत प्रासादों में (से जहाँ वह उस समय रहता था) पहुंचा, जो सुन्दर था जहाँ खाना-पीना बहुत था और जो इन्द्र के मसक्कसार के समान था ॥११७॥]

वहाँ पहुंच, उसने अलंकृत प्रासाद के सातवें तल्ले पर शयनागार और आँगन सजवाकर शैय्या बिछवाकर, सब खाने-पीने की व्यवस्था कर, देव-कन्याओं के समान पाँच सौ स्त्रियों को उसकी चरण-सेविका बना और उसे निश्चिन्त होकर रहने के

लिये कह, अपने वास-स्थान को गया। उसके जाने पर उन स्त्रियों ने नाना प्रकार के बाजे आदि ले पुण्णक की परिचर्य्या में नृत्यादि किये।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

तत्थ नच्चन्ति गायन्ति
अव्हयन्ति वरा वरं
अच्छरा विय देवेसु
नारियो समलंकता॥११८॥

[जिस प्रकार अप्सरायें देव-लोक में नाचती-गाती हैं, उसी प्रकार समलंकृत नारियाँ एक से एक बढ़कर नाच-गान करने लगीं॥११८॥]

समंगि कत्वा पमदाहि यक्खं
अन्नेन पाणेन च धम्मपालो,
अत्थत्थमेवानुविचिन्तयन्तो
पावेक्खि भरियाय तदा सकासे॥११९॥

, [यक्ष के पास स्त्रियों को छोड़ और (उसके) खान-पान की व्यवस्था कर सत्यार्थ का ही विचार करता हुआ वह धर्म-पालक अपनी भार्य्या के पास गया॥११९॥]

तं चन्दनगन्धरसानुलित्तं
सुवण्ण जम्बोनद निक्ख सादिसं,
भरियं च एहि सुणोहि भोति
पुत्तानि आमन्तय तम्बनेत्ते॥१२०॥

[उसने उस जम्बुनद स्वर्ण सदृश, चन्दन की सुगन्धि से सुगन्धित भार्य्या को बुलाकर कहा कि हे भगवति! आ सुन और हे रक्त नेत्रे! पुत्रों को भी बुला ले॥१२०॥]

सुत्वान वाक्यं पतिनो अनुज्जा
सुनिसं वच तम्बनखी सुनेत्तं,
आमन्तय वम्मधरानि चेते
पुत्तानि इन्दीवर पुप्फसामे॥१२१॥

[उस अनुज्जा नामवाली ताम्र-नेत्रा ने पति की बात सुन अपने सुनेत्र लड़के को बुलाया—हे चेते ! हे इन्दोवर पुष्प के समान ! आभूषणधारी पुत्रों को बुला ॥१२१॥]

उसने 'अच्छा' कहा और प्रासाद में घूमकर सूचना दी —"पिता उपदेश देने के लिये सब को बुलाते हैं।" उसने यह कहकर कि 'यही उनका अन्तिम दर्शन है' उसके सभी सुहृदों को तथा पुत्र-पुत्रियों को इकट्ठा कर लिया। धर्मपाल-कुमार यह सुनते ही रो पड़ा और अपने छोटे भाई को साथ लिये पिता के पास पहुंचा। पण्डित ने उन्हें देखा तो वह होश संभाले नहीं रह सका। उसने अश्रु-पूर्ण नेत्रों से आलिंगन किया, सिर चूमा, ज्येष्ठ लड़के को थोड़ी देर छाती से लगा, उतारकर शयनागार से निकला और आंगन में आसन पर बैठ हजारों पुत्रों को उपदेश दिया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ते आगते मुद्धनि धम्मपालो
चुम्बित्वा पुत्ते अविकम्पमानो,
आमन्तयित्वा च अवोच वाक्यं
दिन्नाहं रञ्ञा इध माणवस्स ॥१२२॥
तस्सज्जहं अत्तसुखी विधेय्यो
आदाय येनिच्छति तेन गच्छति,
अहञ्च वो सासितुं आगतोस्मि
कथं अहं अपरित्ताय गच्छे ॥१२३॥
सचे वो राजा कुरुक्खेत्तवासो
जनसन्धो पुच्छेय्य पहूतकामो,
किमाभिजानाथ पुरे पुराणं
किं वो पिता अनुसासे पुरत्था ॥१२४॥
समासना होथ मयाव सब्बे
कोनिध रञ्ञो अब्भतिको मनुस्सो,
तमञ्जलिं करिय वदेथ एवं
माहेव देव नहि एस धम्मो,
वियग्घराजस्स निहीनजच्चो
समासनो देव कथं भवेय्य ॥१२५॥

[उनके आने पर धर्म पालने उन्हें सिर पर चूमा और उन्हें सम्बोधित कर दृढ़ता-पूर्वक कहा—राजा ने मुझे इस माणवक को दे दिया ।।१२२।। मैं आज तो आत्म-मुखी हूँ, किन्तु इसके बाद माणवक की आज्ञा में रहना होगा । वह जहाँ चाहेगा, मुझे ले जायेगा । मैं तुम्हें कहने-सुनने के लिये आया हूँ । मैं बिना तुम्हारा त्राण किये कैसे जा सकता हूँ ।।१२३।। यदि कुरुक्षेत्रवासी, जन-सन्ध, ऐश्वर्यवान राजा पूछे—'तुम पुरानी बात क्या जानते हो?" तुम्हारे पिता ने क्या सिखाया है?" और कहे 'तुम सब मेरे साथ बैठो । तुमसे अधिक राजा का कौन प्रिय है? तो तुम उसे हाथ जोड़कर कहना, देव ! ऐसा नहीं । यह धर्म नहीं है । हे देव ! व्याघ्र-राज और हीन जन्मा (गीदड़) कैसे बराबर हो सकते हैं? ।।१२४-१२५।।]

उसका यह कथन सुन, लड़के-लड़की, सम्बन्धी, सुहृद और सारी दास-परिषद सभी अपने ऊपर काबू न रख सकने के कारण जोर से रो पड़े । बोधिसत्व ने उन्हें शान्त किया ।

पेक्खण-कांड समाप्त

तब उसने उन रिश्तेदारों के पास जा और उन्हें चुप देख कहा—"तात चिन्ता न करो । सभी संस्कार अनित्य हैं । ऐश्वर्य के अन्त में विपत्ति आती है । तो भी मैं तुम्हें ऐश्वर्य देनेवाली 'राज्य-सेवा' की बात कहता हूँ । उसे एकाग्र-चित्त होकर सुनो ।" उसने 'बुद्ध-लीला' से राज-कुल में बसने का वर्णन किया ।

यो च मित्ते अमच्चे च ञातयो सुहदं जने,
अलीनमनसंकप्पो विधुरो एतदब्रवी ।।१२६।।
एथय्यो राजवसतिं निसीदित्वा सुणोथ मे,
यथा राजकुलं पत्तो यसं पोसो निगच्छति ।।१२७।।

[सत्य-संकल्प विधुर के जितने भी मित्र थे, अमात्य थे, रिशतेदार थे, सुहृदजन थे उन सबको यह कहा ।।१२६।। यहाँ आओ, और बैठ कर मुझसे राज-कुल में बसने की बात सुनो कि राजकुल में किस प्रकार रहने से आदमी ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है ।।१२७।।]

नहि राजकुलं पत्तो अञ्ञातो लभते यसं,
नासूरो नपि दुम्मेधो नप्पमत्तो कुदाचनं ।।१२८।।

[राजकुल में न तो कभी किसी अप्रसिद्ध आदमी को ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, न किसी अशूर को, और न कभी किसी दुर्बुद्धि को और न कभी किसी प्रमादी को ॥१२८॥]

यदास्स सीलं पञ्ञञ्च सोचेय्यञ्चाधिगच्छति,
अथ विस्ससते त्यम्हि गुय्हञ्चस्स न रक्खति ॥१२९॥

[जब आदमी के शील, प्रज्ञा तथा सखी-भाव की राजा को जानकारी होती है तो वह उसका विश्वास करता है और कोई रहस्य की बात भी छिपाकर नही रखता ॥१२९॥]

तुला यथा पग्गहिता समदण्डा सुधारिता,
अज्झिट्ठो न विकम्पेय्य स राजवसतिं वसे ॥१३०॥
तुला यथा पग्गहिता समदण्डा सुधारिता,
सब्बानि अभिसम्भोन्तो स राज वसतिं वसे ॥१३१॥

[जो आदमी राजा के कुछ आज्ञा देने पर अच्छी प्रकार पकड़ी हुई तराजु की तरह बिना हिले डुले स्थिर रह सके, वही आदमी राजकुल में बसे ॥१३०॥ जो आदमी सभी राज्य-कृत्य कर सके और अच्छी प्रकार पकड़ी गई तराजू की तरह स्थिर रह सके वही राजकुल में बसे ॥१३१॥]

दिवा वा यदि वा रत्तिं राजकिच्चेसु पण्डितो,
अज्झिट्ठो न विकम्पेय्य स राजवसतिं वसे ॥१३२॥
दिवा वा यदि वा रत्तिं राजकिच्चेसु पण्डितो,
सब्बानि अभिसम्भोन्तो स राजवसतिं वसे ॥१३३॥
यो चस्स सुकतो मग्गो रञ्ञो सुप्पटियादितो,
न तेन वुत्तो गच्छेय्य स राजवसतिं वसे ॥१३४॥

[चाहे दिन हो चाहे रात हो जो पण्डित राज-कार्य होने पर उसे स्थिर-भाव से कर सके वही राजकुल में रहे ॥१३२॥ चाहे दिन हो और चाहे रात हो जो पण्डित राज-कार्य होने पर सभी कार्य्यों को कर सके वही राज-कुल में वास करे ॥१३३॥ जो राजा के अपने चलने का तैय्यार किया गया मार्ग हो राजा के कहने पर भी जो उस मार्ग पर न चले, वह राज-कुल में वास करे ॥१३४॥]

न रञ्ञो समकं भुञ्जे कामभोगे कुदाचनं,
सब्बत्थ पच्छतो गच्छे स राजवसतिं वसे ॥१३५॥
न रञ्ञो सदिसं वत्थं न मालं न विलेपनं,
आकप्पं सरकुत्तिं वा न रञ्ञो सदिसमाचरे,
अञ्ञं करेय्य आकप्पं, स राज वसतिं वसे ॥१३६॥

[जो राजा की बरावरी के काम-भोगों का उपभोग न करे, सदैव राजा के पीछे पीछे ही चले—वही राज-कुल में वास करे ॥१३५॥ जो न राजा के समान वस्त्र पहने, न माला और विलेपन धारण करे, न वैसी पोशाक पहने, न वैसा स्वर ही निकाले और जो दूसरा ही व्यवहार रक्खे—वही राज-कुल में वास करे ॥१३६॥]

कोळे राजा अमच्चेहि भरियाहि परिवारितो,
नामच्चो राजभरियासु भावं कुब्बेथ पण्डितो ॥१३७॥
अनुद्धतो अचपलो निपको संवुतिन्द्रियो,
मनो पणिधिसम्पन्नो स राजवसतिं वसे ॥१३८॥

[भले ही राजा अमात्यों की भार्य्याओं से क्रीड़ा करता रहे, किन्तु पण्डित अमात्य को चाहिये कि वह रानियों के प्रति अपना भाव संयत रखे ॥१३७॥ उद्धत्त न हो, चपल न हो, बुद्धिमान हो, संयत हो और शान्त मन वाला हो—वही राजकुल में वास करे ॥१३८॥]

नास्स भरियाहि कीळेय्य न मन्तेय्य रहोगतो,
नास्स कोसा धनं गण्हे स राज वसतिं वसे ॥१३९॥
ननिद्दं बहुं मञ्ञे न मदाय सुरं पिवे,
नास्स दाये मिगं हञ्ञे स राजवसतिं वसे ॥१४०॥
नास्स पीठं न पल्लकं न कोच्छं न नागं रथं,
सम्मतोम्हिति आरूहे स राजवसतिं वसे ॥१४१॥
नातिदूरे भवे रञ्ञो नाच्चासन्ने विचक्खणो,
सम्मुखञ्चस्स तिट्ठेय्य सन्दिस्सन्तो सभत्तुनो ॥१४२॥
न वे राजा सखा होति न राजा होति मेथुनो,
खिप्पं कुज्झन्ति राजानो सूकेनक्खीव घट्टितं ॥१४३॥
न पूजितो मञ्ञमानो मेधावी पण्डितो नरो,
फरुसं पतिमन्तेय्य राजानं परिसं गतं ॥१४४॥

[जो राजा की रानियों के साथ न खेले ओर न उनसे एकान्त में बात-चीत करे ओर न उसके कोष से धन चुराये—वही राज-कुल में वास करे ।।१३९।। जो न बहुत सोये, न नशे के लिये सुरापान करे ओर न राजा के जंगल में हिरणों का शिकार करे—वही राजकुल में वास करे ।।१४०।। जो न उसके पीढ़े पर, न पलंग पर, न कौच (कोच्छ) पर बैठे ओर न उसके हाथी पर अथवा उसके रथ पर अपने आपको आदृत समझकर चढ़े—वही राज-कुल में वास करे ।।१४१।। पण्डित आदमी को चाहिये कि न राजा से बहुत दूर रहे और न उसके बहुत समीप रहे, इतनी दूर रहे जहाँ से राजा की बात सुन सके और उसे दिखाई देता रहे ।।१४२।। राजा न सखा होता है और न वह जोड़ी-दार होता है। जैसे आँख में सलाई लग जाने से वह क्षुब्ध हो जाती है उसी प्रकार राजा भी शीघ्र क्षुब्ध हो जाता है ।।१४३।। मेधावी, पण्डित आदमी को चाहिये कि अपने आपको "पूजित" मानकर राज-सभा में कठोरवाणी का व्यवहार न करे ।।१४४।।]

लद्धद्वारो लभे द्वारं नेव राजुसु विस्ससे,
अग्गीव यतो तिट्ठेय्य स राजवसतिं वसे ।।१४५।।
पुत्तं वा भातरं सं वा सम्पग्गहाति खत्तियो,
गामेहि निगमेहि वा रट्ठे जनपदेहि वा;
तुण्हीभूतो उपेक्खेय्य न भणे छेकपापकं ।।१४६।।

[जाने का अवकाश मिलने पर जाये। राजाओं का विश्वास न करे। जो अग्नि की तरह अप्रमादी रहे—वही राज-कुल में वास करे ।।१४५।। जब राजा ग्राम, निगम, राष्ट्र, जनपद की बात कर पुत्र या अपने भाई की बात करे, उस समय चुप रहकर देखना चाहिये। भला बुरा-कुछ नहीं बोलना चाहिये ।।१४६।।]

हत्थारूहे अनीकट्ठे रथिके पतिकारके
तेसं कम्माव दानेन राजा वड्ढेति वेतनं,
न तेसं अन्तरा गच्छे स राजवसतिं वसे ।।१४७।।
चापावूनूदरो धीरो वंसोवापि पकम्पियो,
पटिलोमं न वत्तेय्य स राजवसतिं वसे ।।१४८।।
चापोवूनूदरो अस्स मच्छोवस्स अजिव्हवा,
अप्पासो निपको सूरो स राजवसतिं वसे ।।१४९।।

[हाथी-सवार, रथ-सवार और पैदल जितने भी सैनिक हैं, राजा उनके काम के अनुसार उनका वेतन बढ़ाता है। जो आदमी बीच में बाधक न हो वही राजकुल में बसे ।।१४७।। जो धनुष की तरह छोटे पेट वाला हो, बाँस की तरह झुक सकने वाला हो और जो प्रतिकूल व्यवहार न करे वही राज-कुल में वास करे ।।१४८।। जिसका पेट धनुष की तरह छोटा हो और जो मछली की तरह जिह्वा-रहित हो (अर्थात् मितभाषी हो) और जो अल्पाहारी हो वही बुद्धिमान शूर पुरुष राज-कुल में वास करे ।।१४९।।]

न बाळ्हं इत्थिं गच्छेय्य सम्पस्सं तेजसंखयं,
कासं सासं दरं बल्यं खीणमेधो निगच्छति ।।१५०।।
नातिवेलं पभासेय्य न तुण्ही सब्बदा सिया,
अविकिण्णं मितं वाचं पत्तेकाले उदीरये ।।१५१।।
अक्कोधनो असंघट्टो सच्चो सण्हो अपेसुणो,
सम्फं गिरं न भासेय्य स राजवसतिं वसे ।।१५२।।

[अपनी तेजस्विता को क्षय का कारण जान पुरुष को चाहिये कि वह बार बार स्त्री के पास न जाय। ऐसा करनेवाला मूर्ख खाँसी, दमा, शरीर-पीड़ा तथा दुर्बलता को प्राप्त होता है ।।१५०।। न बहुत देर तक बोले और न सदैव चुप ही रहे। उचित समय पर सीमित नपी-तुली वाणी बोले।।१५१।। जो अक्रोधी हो, झगड़ालू न हो, सत्यवादी हो, प्रियवादी हो, चुगलखोर न हो और व्यर्थ न बोले वही राज-कुल में वास करे ।।१५२।।]

माता पेत्ति भरो अस्स कुले जेट्ठापचायको,
हिरि ओत्तप्प सम्पन्नो स राजवसतिं वसे ।।१५३।।
विनीतो सिप्पवा दन्तो कतत्तो नियतो मुदु,
अप्पमत्तो सुचि दक्खो स राजवसतिं वसे ।।१५४।।
निवातवुत्ति वद्धेसु सप्पतिस्सो सगारवो,
सूरतो सुखसम्भासो स राजवसतिं वसे ।।१५५।।
आरका परिवज्जेय्य सहितुं पहितं जनं,
भत्तारञ्ञेवुदिक्खेय्य अनञ्ञस्स च राजिनो ।।१५६।।

[माता-पिता की सेवा करनेवाला हो, कुल में बड़े का आदर करनेवाला हो और लज्जा-भय युक्त हो वही राज-कुल में वास करे ।।१५३।। जो विनीत हो,

विद्वान हो, संयत हो, अभ्यासी हो, स्थिर हो, मृदु हो, अप्रमादी हो, पवित्र हो और दक्ष हो वही राज-कुल में वास करे ॥१५४॥ बड़ो के प्रति विनम्र हो, गौरव-भाव युक्त हो, दयावान् हो और जिससे भाषण करने में सुख मिलता हो वही राज-कुल में वास करे ॥१५५॥ गुप्त बात जानने आदि के लिये भेजे गये अन्य राज-पुरुषों से दूर ही दूर रहे, अपने स्वामी की ही ओर देखे, दूसरे किसी राजा की ओर नहीं ॥१५६॥]

समणे ब्राह्मणे चापि सीलवन्ते बहुस्सुते
सक्कच्चं पयिरुपासेय्य स राजवसतिं वसे ॥१५७॥
समणे ब्राह्मणे चापि सीलवन्ते बहुस्सुते
सक्कच्चं अनुवासेय्य स राजवसतिं वसे ॥१५८॥
समणे ब्राह्मणे चापि सीलवन्ते बहुस्सुते,
तप्पेय्य अन्नपाणेन स राजवसतिं वसे ॥१५९॥
समणे ब्राह्मणे चापि सीलवन्ते बहुस्सुते,
आसज्ज पञ्ञे सेवेथ आकंखं बुद्धिमत्तनो ॥१६०॥

[शीलवान्, बहुश्रुत श्रमण-ब्राह्मणों की भली प्रकार संगति करनेवाला, उनका अनुकरण करनेवाला, उनकी अन्न-पान से सेवा करने वाला ही राज-कुल में वास करे ॥१५७-१५९॥ जो अपनी उन्नति चाहता हो वह शीलवान्, बहुश्रुत श्रमण-ब्राह्मणों के पास जाकर प्रज्ञावानों की संगति करे ॥१६०॥]

दिन्नपुब्बं न हापेय्य दानं समणब्राह्मणे,
न च किञ्चि निवारेय्य दानकाले वणिब्बके ॥१६१॥
पञ्ञवा बुद्धिसम्पन्नो विधानविधि कोविदो
कालञ्ञू समयञ्ञू च स राजवसतिं वसे ॥१६२॥
उट्ठाता कम्मधेय्येसु अप्पमत्तो विचक्खणो,
सुसंविहित कम्मन्तो स राजवसतिं वसे ॥१६३॥

[श्रमण-ब्राह्मणों को जो परम्परागत दान दिया जाता रहा हो उसे बन्द न करे और दान देने के समय आये हुए किसी याचक को न रोके ॥१६१॥ जो प्रज्ञावान् है, जो बुद्धि-युक्त है, जो नाना प्रकार के नियमों से परिचित है जो काल और समय का जानकार है वही राज-कुल में वास करे ॥१६२॥ जो अपने कर्तव्यों के प्रति उत्साही

हो, जो अप्रमादी हो, जो बुद्धिमान हो और जिसने अपने कामों को व्यवस्थित कर रखा हो वही राज-कुल में बसे ॥१६३॥]

बलं सालं पसुं खेत्तं गन्ताचस्स अभिक्खणं,
मितं धञ्ञं निधापेय्य मितञ्च पाचये घरे ॥१६४॥
पुत्तं वा भातरं सं वा सीलेसु असमाहितं,
अनंगवा हि ते बाला यथा पेता तथेव ते
चोळञ्च नेसं पिण्डञ्च आसीनानं व दापये ॥१६५॥
दासे कम्मकरे पेस्से सीलेसु सुसमाहिते,
दक्खे उट्ठानसम्पन्ने अधिपच्चस्मिं ठापये ॥१६६॥

[सेना, शाला, पशु-स्थान तथा खेत को बार-बार आकर देखनेवाला हो। नापकर घर में धान्य रखे और नापकर पकाये ॥१६४॥ चाहे पुत्र हो और चाहे भाई हो यदि वह शीलवान् न हो तो वह सम्बन्धी नहीं है। वह प्रेत के ही समान है। उन्हें बैठे बिठाओं को ही भोजन तथा वस्त्र दे दे अर्थात् उन्हें किसी पद पर प्रतिष्ठित न करे ॥१६५॥ चाहे दास हों, चाहे श्रमिक हों, चाहे सन्देसा ले जानेवाले दूत हों, यदि वे दक्ष हों, उत्साही हों तो उन्हें ही किसी पद पर प्रतिष्ठित करे ॥१६६॥]

सीलवा च अलोलो च अनुरत्तोचस्स राजिनो,
आवी रहो हितो तस्स स राजवसतिं वसे ॥१६७॥
छन्दञ्ञू राजिनो अस्स चित्तट्ठोचस्स राजिनो,
असंकुसकवत्तिस्स स राजवसतिं वसे ॥१६८॥
उच्छादये च नहापये धोवे पादे अधोसिरं,
आहतोपि न कुप्पेय्य स राजवसतिं वसे ॥१६९॥

[जो सदाचारी हो, निर्लोभी हो, अपने राजा के प्रति अनुरक्त हो, तथा प्रकट और अप्रकट रूप में सदा ही उसका हितचिन्तक हो, वह राज-कुल में वास करे ॥१६७॥ जो राजा की इच्छा से परिचित हो, जिसके वश में राजा की इच्छा हो, जो उसके अनुकूल बरतने वाला हो, वही राज कुल में वास करे ॥१६८॥ मालिश करे, नहलाये, सिर नीचा करके पैर धोये और आहत होने पर क्रोध न करे, वही राजकुल में वास करे ॥१६९॥]

कुम्भम्पि पञ्जलिं कुरिया वायसं वा पदक्खिणं,
किमेव सब्बकामानं दातारं धीरमुत्तमं ॥१७०॥
यो देति सयनं वत्थं यानं आवसथं घरं
पज्जुन्नोरिव भूतानि भोगेहिमभिवस्सति ॥१७१॥
एसय्यो राजवसति वत्तमानो यथा नरो
आराधयति राजानं पूजं लभति भत्तुसू ॥१७२॥

[जब कुछ न देनेवाले पानीके घड़ों को भी हाथ जोड़ा जाता है और कौवे की भी प्रदक्षिणा की जाती है, तो फिर जो सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाला श्रेष्ठ दाता है उसे क्यों नहीं? ॥१७०॥ जिस प्रकार बादल प्राणियों पर भोग्य-वस्तुओं की वर्षा करता है, उसी प्रकार जो शयनासन, वस्त्र, दान, निवास-स्थान तथा घर देता है, उसे क्यों नहीं? ॥१७१॥ आर्यो! यह वह राज-कुल-वास है जिसका मैंने वर्णन किया है और जिसके अनुसार रहनेवाला आदमी राजा को प्रसन्न करता है और राजा से पूजा प्राप्त करता है ॥१७२॥]

राज-कुल-निवास काण्ड समाप्त

इस प्रकार पुत्र स्त्री मित्रों आदि को उपदेश देते हुए ही तीन दिन समाप्त हो गये। जब उसने जाना कि तीन दिन पूरे हो गये तो वह 'कल प्रातःकाल ही नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन खा, राजा को देख, माणवक के साथ जाऊंगा' सोच सम्बान्धियों के साथ राज-महल में गया और राजा को प्रणाम कर, एक ओर खड़े हो, उस कहने योग्य बात कही।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

एवं समनुसासित्वा ञातिसंघं विचक्खणो,
परिकिण्णो सुहदेहि राजानमुपसंकमि ॥१७३॥
वन्दित्वा सिरसा पादे कत्वा च नं पदक्खिणं,
विधुरो अवच राजानं पग्गहेत्वान अञ्जलिं ॥१७४॥
अयं मं मानवो नेति कत्तुकामो यथामति,
ञातीनत्थं पवक्खामि तं सुणोहि अरिन्दम ॥१७५॥
पुत्ते च मे उदिक्खेसि यञ्च मञ्ञं घरे धनं,
यथा पेच्च न हायेथ ञातिसंघो मयी गते ॥१७६॥

यथेव खलती भुम्या भुमियाव पतिट्ठति,
एवमेतं खलितं मय्हं एवं पस्सामि अच्चयं ॥१७७॥

[इस प्रकार वह बुद्धिमान (विधुर) रिश्तेदारों तथा सम्बन्धियों को समझाकर मित्रों के साथ राजा के पास पहुंचा ॥१७३॥ सिर से पैरों में नमस्कार कर, प्रदक्षिणा कर और हाथ जोड़कर विधुर राजा से बोला ॥१७४॥ ये माणवक मुझे जो इसकी इच्छा हो उस काम के लिये ले जा रहा है। हे राजन्! मैं अपने सम्बन्धियों के हित की बात कहता हूँ, वह सुनें ॥१७५॥ मेरे पुत्रों की ओर तथा तेरा और अन्य राजाओं का दिया हुआ जो धन है उसकी ओर देखना ताकि मेरे जाने पर जाति-संघ की अवस्था न बिगड़े ॥१७६॥ जैसे आदमी भूमि पर फिसलता है लेकिन फिर भूमि पर ही प्रतिष्ठित होता है। उसी प्रकार मेरा भी फिसलना हुआ है। मैं अपना दोष स्वीकार करता हूँ ॥१७७॥]

यह सुन राजा ने कहा, "पण्डित! तेरा जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। तू मत जा। मुझे तो यह अच्छा लगता है कि माणवक को न्याय से ही बुलाकर, मारकर छिपा दें।" यह प्रकट करते हुए गाथा कही—

सक्का न गन्तुं इति मय्हं होति
ञात्वा वधित्वा इध कातियानं
इधेव होहि इति मय्हं रुच्चति
मा त्वं अगा उत्तमभूरि पञ्ञ ॥१७८॥

[मेरे मन में तो यही होता है कि तू नहीं जा सकता। यहीं राज-भवन में ही उसे पीठकर मार डालें—यह मुझे अच्छा लगता है। हे बहुप्रज्ञ! तू मत जा ॥१७८॥]

यह सुन बोधिसत्व ने कहा, 'देव! तुम्हारा इस प्रकार का विचार अनुचित है।' वह बोला—

माहेव धम्मेसु मनं पणीदहि
अत्थे च धम्मे च युत्तो भवस्सु,
धिरत्थु कम्मं अकुसलं अनरियं
यं कत्वा पच्छा निरयं वजेय्य ॥१७९॥
नेवेस धम्मो न पुनेतं किच्चं
अयिरो हि दासस्स जनिन्द इस्सरो,

घातेतुं झापेतुं अथोपि हन्तुं
न च मय्हकोधत्थि वजामि चाहं ॥१८०॥

[आप अपने चित्त को अधर्म में मत जाने दें। आप अर्थ और धर्म में युक्त हों। ऐसे अकुशल अकर्म-कर्म को धिक्कार है जिसे करके आदमी बाद में नरक जाये।१७९। न यह धर्म ही है और न यह कृत्य है। हे राजन्! आप 'दास' के मालिक हैं। इसलिये आप मारना, जलाना, जान से मार डालना सब कर सकते हैं। मेरे मन में क्रोध नहीं है। मैं जाता हूँ ॥१८०॥]

यह कह बोधिसत्व ने राजा को नमस्कार किया। फिर राजा की रानियों और उसकी परिषद को उपदेश दे दिया। वे अपने आप पर काबू न रख सकीं; और विलाप करने लगीं। उन्हें उसी दशा में छोड़कर वह राज-भवन से निकल आया। सारे नगर वासी राजाङ्गन में ही इकट्ठे हो गये, "पण्डित माणवक के साथ जा रहा है। आओ उसे देखें।" उसने उन्हें भी उपदेश दिया, "चिन्ता मत करो। सभी संस्कार अनित्य हैं। दानादि के प्रति अप्रमादी रहो।" फिर रुककर अपने घर ही की ओर गया। उसी समय पिता की अगवानी करने के इरादे से भाइयों सहित धर्मपालकुमार ने घर के द्वार पर ही पिता से भेंट की। बोधिसत्व उसे देख शोक को न सह सका। उसने उसे गले से लगाया और छाती से चिपटाकर ही घर में प्रवेश किया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

जेट्ठपुत्तं उपगुय्ह विनेय्य हृदये दरं,
अस्सुपुण्णेहि नेत्तेहि पाविसी सो महाघरं ॥१८१॥

[अपने ज्येष्ठ पुत्र को गले लगा, हृदय की आग शान्त कर, अश्रुपूर्ण नेत्रों से उसने घर में प्रवेश किया ॥१८१॥]

उसके घर में हजार लड़के, हजार लड़कियाँ, हजार पत्नियाँ और सात सौ वर्ण-दासियाँ थीं। उनके और शेष दास, कमकर, सम्बन्धी मित्र आदि के कारण सारा घर ऐसा हो गया मानो युगान्त-वात के प्रहार से शालवन के सारे शाल-वृक्ष गिरते जा रहे हों।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

साला व सम्पमथिता मालुतेन पमद्दिता,
सेन्ति पुत्ता च दारा च विधुरस्स निवेसने ॥१८२॥
इत्थी सहस्सं भरियानं दासी सत्तसतानि च,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं विधुरस्स निवेसने ॥१८३॥

ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं विधुरस्स निवेसने ।।१८४।।
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं विधुरस्स निवेसने ।।१८५।।
समागता जानपदा नेगमा च समागता,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं विधुरस्स निवेसने ।।१८६।।
इत्थी सहस्सानं भरियानं दासीसत्तसतानि च,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं कस्मा नो विजहेस्ससि ।।१८७।।
ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं कस्मा नो विजहेस्ससि ।।१८८।।
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं कस्मा नो विजहेस्ससि ।।१८९।।
समागता जानपदा नेगमा च समागता,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं कस्मा नो विजहेस्ससि ।।१९०।।

[विधुर के घर मे उसके स्त्री-पुत्र ऐसे पडे हं जैसे हवा से ताडित शाल वृक्ष ।।१८२।। हजार पत्नियाँ और सात सौ दासियाँ विधुर के घर मे बाहे पकडकर रोने लगीं ।।१८३।। अन्तःपुर के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण विधुर के घर मे बाहे पकड़कर रोने लगे ।।१८४।। हाथी-सवार, सैनिक, रथ-सवार और पैदल विधुर के घर मे बाहे पकडकर रोने लगे ।।१८५।। जनपद तथा निगम के आये हुए लोग विधुर के घर मे बाहे पकडकर रोने लगे ।।१८६।। हजार पत्नियां और सात सौ दासियाँ हाथ पकड़कर रोने लगी कि हमे क्यों छोडे जा रहा है ? ।।१८७।। अन्तःपुर के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण हाथ पकड़कर रोने लगे कि हमे क्यों छोड़े जा रहा है ? ।।१८८।। हाथी-सवार सैनिक, रथ-सवार और पैदल हाथ पकड़ कर रोने लगे कि हमे क्यों छोडे जा रहा है ? ।।१८९।। जनपद तथा निगम के आये हुए लोग बाहे पकडकर रोने लगे कि हमें क्यों छोड़े जा रहा है ? ।।१९०।।]

बोधिसत्व उस सारी जनता को आश्वस्त कर, शेष कृत्य समापत कर घर के लोगों को उपदेश दे, जो जो कहने योग्य है वह सब कुछ कह पुण्णक के पास पहुँचा और उसे सूचित किया कि सारे कार्य्य समाप्त हो गये।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

कत्वा घरेसु किच्चानि अनुसासित्वा सकंजनं,
मित्तामच्चे च भच्चे च पुत्तदारे च बन्धवे ॥१९१॥
कम्मन्तं संविधेत्वान आचिक्खित्वा घरे धनं,
निधिञ्च इणदानञ्च पुण्णकं एतदब्रवि ॥१९२॥
अवसि तुवं मय्हतीहं अगारे
कतानि किच्चानि घरेसु मय्हं
अनुसासिता पुत्तदारा मया च
करोम किच्चानि यथा मतिं ते ॥१९३॥

[घर के कार्य्य समाप्तकर और मित्र-अमात्य, नौकर, स्त्री पुत्र तथा अपने बन्धुओं को अनुशासित कर, खेती-बाड़ी सदृश कार्य्यों की व्यवस्था कर, घर के धन का पता दे, खजाना तथा ऋण लेने की बात बता वह पुण्णक को इस प्रकार बोला—॥१९१-१९२॥ "तू मेरे घर तीन दिन रहा। मैंने घर के कृत्य कर लिये। मैंने अपने स्त्री-पुत्र को जो कहना था कह लिया। अब मैं तेरी इच्छा के अनुसार करूँगा ॥१९३॥]

पुण्णक बोला—

सचे हि कत्ते अनुसासिता ते
पुत्ता च दारा च अनुजीविनो च,
हन्देहिदानि तरमानरूपो
दीघो हि अद्धापि अयं पुरत्था ॥१९४॥
असम्भीतोव गण्हाति आजानीयस्स वाळधिं,
इदं पच्छिमकं तुय्हं जीवलोकस्स दस्सनं ॥१९५॥

[हे कर्ते! यदि तू अपने पुत्र-दारा को समझा-बुझा चुका तो शीघ्रता से आ। आगे का रास्ता भी लम्बा है ॥१९४॥ निर्भय होकर श्रेष्ठ घोड़े की पूँछ पकड़। अब तू अन्तिम बार जीव-लोक के दर्शन कर रहा है ॥१९५॥]

उसे बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

सोहं किस्सनु भायिस्सं यस्स मे नत्थि दुक्कतं,
कायेन वाचा मनसा येन गच्छेय्य दुग्गतिं ॥१९६॥

[जब मैंने शरीर, वाणी अथवा मन से कोई ऐसा दुष्कर्म नहीं किया जिससे दुर्गति को प्राप्त होऊं तो मैं किस (बात) से डरूँ ? ॥१९६॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने सिंह-नाद कर निर्भय केशरी की तरह भय रहित हो दृढ़-संकल्प किया कि यह वस्त्र बिना मेरी इच्छा के मुझसे न छूटे। फिर उस वस्त्र को दृढ़ता पूर्वक पहन और घोड़े की पूँछ को हटा उसे दोनों हाथों से जोर से पकड़ तथा दोनों पांवों को घोड़े की जांघों में लपेटकर कहा—"माणवक ! मैंने मूँछ पकड़ ली है। अब जैसे इच्छा हो वैसे जा।" तब पुण्णक ने मनोमय सिन्धवघोड़े को इशारा किया। वह पंडित को लेकर आकाश में कूदा।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

सो अस्सराजा विधुरं वहन्तो
पक्कामि वेहासयमन्तलिक्खे,
सारवासु सेलेसु असज्जमानो
काळागिरिं खिप्पमुपागमासि ॥१९७॥

[वह अश्व-राज विधुर को लिये आकाश में, अन्तरिक्ष में गया। बिना किसी शाखा और शैल में टकराये वह शीघ्रता से काला गिरि पर्वत को प्राप्त हुआ ॥१९७॥]

इस प्रकार जब पुण्णक बोधिसत्व को ले गया तो पण्डित (बोधिसत्व) के पुत्रादि पुण्णक के निवास-स्थान पर गये। जब उन्होंने उसे वहाँ नहीं देखा तो प्रपात से गिरे की तरह इधर उधर लोटते हुए जोर जोर से विलाप करने लगे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इत्थिसहस्सं भरियानं दासी सत्तसतानि च,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं यक्खो ब्राह्मणवण्णेनविधुरं आदाय गच्छति ॥१९८॥

[हजार पत्नियाँ और सात सौ दासियाँ हाथ पकड़कर रोने लगीं कि ब्राह्मण-वेषधारी यक्ष विधुर को लिये जा रहा है ॥१९८॥]

समागता जानपदा नेगमा च समागता,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु यक्खो ब्राह्मणवण्णेन विधुरं आदाय गच्छति ॥१९९॥

[जनपद तथा निगम के लोग बाहें पकड़कर रोने लगे कि ब्राह्मण वेषधारी यक्ष विधुर को लिये जा रहा है ॥१९९॥]

इत्थिसहस्सं भरियानं दासी सत्तसतानि च ,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं पण्डितो सो कुहिं गतो ॥२००॥

[हजार पत्नियाँ और सात सौ दासियाँ हाथ पकड़कर रोने लगीं कि पण्डित कहाँ गया ? ॥२००॥]

समागता जानपदा नेगमा च समागता,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं पण्डितो सो कुहिं गतो ॥२०१॥

[जनपद तथा निगम के लोग बाहें पकड़कर रोने लगे कि पण्डित कहाँ गया ? ॥२०१॥]

यह देख कि बोधिसत्व को आकाश-मार्ग से लिये जा रहा है और यह बात सुन वे सब रोये-पीटे। फिर सारे नगर-वासियों के साथ रोते-पीटते वे राज-द्वार पहुँचे। राजा ने रोने-पीटने की बहुत आवाज सुनी तो खिड़की खोलकर पूछा, "क्यों रोते हो ?" लोगों ने उत्तर दिया, "देव ! वह माणवक ब्राह्मण नहीं था। वह ब्राह्मण-वेष में यक्ष था जो आकर पण्डित को ले गया। उसके बिना हमारा जीना नहीं है। यदि आज से सातवें दिन के अन्दर नहीं आता है तो सौ हजार गाड़ियाँ लकड़ी इकट्ठी कर सभी आग में प्रवेश करेंगे।' यह बात कहते हुए यह बात कही—

सचे सो सत्तरत्तेन पण्डितो नागमिस्सति,
सब्बे अग्गिं पवेक्खाम नत्थत्थो जीवितेन नो ॥२०२॥

[यदि सात दिन के अन्दर वह पण्डित नहीं आया तो हम सब आग में प्रवेश कर जायेंगे। हमारे जीने का कोई अर्थ नहीं है ॥२०२॥]

सम्यक सम्बुद्ध के निर्वाण के समय भी 'हम आग में प्रविष्ट हो मरेंगे' कहने वाले नहीं थे। ओह बोधिसत्व कितनी अच्छी तरह नगर में रहा था !

राजा ने उनकी बात सुन उन्हें धीरज दिया—"मधुरभाषी पण्डित माणवक को धर्मकथा से प्रलुब्ध कर, अपने चरणों में गिराता, शीघ्र ही आँखों के आंसुओं को सुखाता हुआ और हंसाता हुआ आयेगा। चिन्ता न करो।" उसने गाथा कही—

पण्डितो च वियत्तो च विभावी च विचक्खणो,
खिप्पं मोचेस्सतत्तानं मा भाथ आगमिस्सति ॥२०३॥

[वह पण्डित है, विचारवान् है, विवेकवान् है तथा दक्ष है। डरो मत। वह शीघ्र ही अपने आपको छुड़ाकर आयेगा ॥२०३॥]

पुण्णक ने भी बोधिसत्व को नाल।गिरि के ऊपर रखा और सोचने लगा, "जब तक यह जीवित है। तब तक मेरी उन्नति नहीं। इसे मार, हृदय-मांस ले, नाग-भवन जा, विमला को दे, इरन्दति ले देव-लोक जाऊंगा।"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

> सो तत्थ गन्त्वान विचिन्तयन्तो
> उच्चावचा चेतनका भवन्ति,
> इमस्स जीवेन नहत्थि किञ्चि
> हन्त्वानिमं हृदयं आदियिस्सं ॥२०४॥

[वह वहाँ जाकर सोचने लगा तो उसे ऊंचे-नीचे विचार सूझने लगे। उसने सोचा कि इसके जीवित रहने से मुझे कुछ लाभ नहीं है। इसे मारकर इसका हृदय ले जाऊंगा ॥२०४॥]

तब फिर सोचा, "मैं इसे हाथ से न मारकर भैरव-रूप दिखाकर जान से मार डालूँगा।" उसने भैरव राक्षस का रूपधारण किया और जाकर आते हुए उसे गिरा अपने बीच में कर खाने का सा ढँग बनाया। बोधिसत्व को रोमांच तक नहीं हुआ। तब सिंह का रूप धारण किया और मस्त महाहाथी का रूप धारण कर दाढ़ से और दान्तों से चीर डालने का सा ढँग बनाया। वह वैसे भी नहीं डरा। तब दोणी जितने वड़े साँप की शकल बनाते फुंकारते हुए आकर उसका सारा शरीर लपेट सिर पर फन धारण किया। उसे संकोच तक नहीं हुआ। तब उसने पर्वतपर खड़े होकर गिराकर चूर्ण-विचूर्ण कर डालने के विचार से जोर की हवा चलाई। उससे उसके बाल का सिरा तक नहीं हिला। तब उसने उसे वहीं पर्वत पर रख पर्वत को उसी प्रकार इधर उधर हिलाया जैसे हाथी खज्जुरी (?) वृक्ष को। ऐसा करने पर भी वह उसे जहाँ वह था उससे बाल भर भी नहीं हटा सका।

तब उसने सोचा कि भयानक आवाज से डराकर इसका हृदय फाड़ इसे मार डालूँगा। वह पर्वत के भीतर घुसा और उसने पृथ्वी तथा आकाश को एक करते हुए जोर की आवाज की। उससे भी उसे तनिक भय उत्पन्न नहीं हुआ। बोधिसत्व जानते थे कि यक्ष, सिंह, हाथी तथा नाग-राज के रूप में आनेवाला भी माणवक ही है, अन्य कोई नहीं; और हवा, वर्षा तथा पर्वत को हिलाने वाला भी माणवक ही

है अन्य कोई नहीं, और पर्वत के अन्दर घुसकर जोर की आवाज करनेवाला भी माणवक ही है, अन्य कोई नहीं है। तब यक्ष ने सोचा। मैं इसे बाह्य उपायों द्वारा नहीं मार सकता हूँ। अपने हाथ से ही इसे मारूँगा। उसने बोधिसत्व को पर्वत-शिखर पर रखा और पर्वत के नीचे जा मणि में पीला धागा डालने की तरह निनाद करते हुए, पर्वत के भीतर से ऊपर आ, बोधिसत्व को मजबूती से पकड़, उल्टाकर उसे निराधार आकाश में फेंक दिया। इसीसे कहा गया है—

सो तत्थ गन्त्वा पब्बतमन्तरस्मिं
अन्तो पविसित्वा पदुट्ठचित्तो,
असंवुतस्मि जगतिप्पदेसे
अधोसिरं धारयि कातियानो॥२०५॥

[वह द्वेषी वहाँ पर्वत के नीचे गया और उसके अन्दर घुसकर उस कात्यायन ने विधुर को निराधार आकाश में सिर नीचा करके लटका दिया ॥२०५॥]

सो लम्बमानो नरके पपाते
महब्भये लोमहंसे विदुग्गे
असन्तसं कुरुनं कत्तसेट्ठो
इच्चब्रवी पुण्णकं नाम यक्खं॥२०६॥
अरियावकासोसि अनरियरूपो
असञ्ञतो सञ्ञतसन्निकासो,
अच्चाहितं कम्मं करोसि लुद्दं
भावे च ते कुसलं नत्थि किञ्चि॥२०७॥
यं मं पपातस्मि पपातुमिच्छसि
को नु तवत्थो मरणेन मय्हं,
अमानुसस्सेव ते अज्ज वण्णो
आचिक्ख मे त्वं कतमासि देवता॥२०८॥

[वह कुरुओं का श्रेष्ठ-कर्ता जब भयानक, रोमहर्षक, कष्टप्रद, नरक-सदृश प्रपात में लटक रहा था तो उसने बिना भय-भीत हुए पुण्णक नामके यक्ष को यह कहा ॥२०६॥ तेरा रूप तो आर्य-समान है, किन्तु तू अनार्य-रूप है; तू असंयत है, किन्तु तेरा ढंग संयत का है। तू अत्यन्त अहितकर रौद्र-कर्म करता है। तेरे चित्त में कुछ भी कुशल नहीं है ॥२०७॥ जो तू मुझे प्रपात में गिराना चाहता है, मेरे मरने से

तेरा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा ? आज तेरा कर्म अमनुष्य का है। मुझे बता कि तू कौन-सा यक्ष है ? ।।२०८।।]

पूणक ने उत्तर दिया—

यदि ते सुतो पुण्णको नाम यक्खो
रञ्ञो कुवेरस्स हि सो सजीवो,
भुमिन्धरो वरुणो नाम नागो
ब्रहा सुची वण्णबलूपपन्नो ।। २०४।।
तस्सानुजं धीतरं कामयामि
इरन्दति नाम सा नागकञ्ञा,
तस्सा सुमज्झाय पियाय हेतु
पतारयिं तुय्ह वधाय धीर ।।१०।।

[यदि तू ने राजा कुबेर के मन्त्री पुणक यक्ष का नाम सुना हो तो वह मैं हूँ। जो महान्, पवित्र, वर्ण-बल से युक्त वर्ण नाम का नाग भूमि-पति है, मैं उस नाग की इरन्दति नाम की कन्या को चाहता हूँ। उस प्रिय, मध्यमाकार की कन्या के लिये ही हे धीर-पुरुष मैंने तुम्हारे वध का निश्चय किया है ।।२०९-२१०।।]

यह बात सुनी तो बोधिसत्व ने सोचा, 'यह लोक नासमझी से ही नष्ट होता है। जो नाग-कन्या को चाहता है उसे मेरे मारने से क्या लाभ ? मैं यथार्थ बात जानूँगा।' उसने गाथा कही—

माहेव त्वं यक्ख अहोसि मूळो
नट्ठा बहू दुग्गहितेन लोका,
किं ते सुमज्झाय पियाय किच्चं
मरणेन मे इंघ सुणोम सब्बं ।। २११।।

[हे यक्ष ! तू मूर्ख मत बन। नासमझी से अनेक लोक नष्ट हो गये। मैं जरा सारी बात तो सुनूँ कि मेरे मरने से तेरी प्रिया, मध्यमाकारा का क्या कृत्य होता है ? ।।२११।।]

तब पुण्णक ने उत्तर दिया—

महानुभावस्स महोरगस्स
धीतुकामो जातिभतोहमस्मि,

तं याचमानं ससुरो अवोच
यथा मं अञ्ञिंसु सुकामनीतं ॥२१२॥
दज्जेमु खो ते सुतनुं सुनेत्तं,
सुचिम्हितं चन्दनलित्तगत्तं
सचे तुवं हदयं पण्डितस्स
धम्मेन लद्धा इधमाहरेसि,
एतेन वित्तेन कुमारि लब्भा,
नाञ्ञं धनं उत्तरिं पत्थयाम ॥२१३॥
एवं न मूळ्होस्मि सुणोहि कत्ते
न चापि मे दुग्गहितत्थि किञ्चि,
हदयेन ते धम्मलद्धेन नागा
इरन्दतिं नागकञ्ञं ददन्ति ॥२१४॥
तस्मा अहं तुय्ह वधाय युत्तो
एवं ममत्थो मरणेन तुय्हं,
इधेव तं नरके पातयित्वा,
हन्त्वान तं हदयं आदियिस्सं ॥२१५॥

[महाप्रतापी नागराज की कन्या की इच्छा करनेवाला मैं सम्बन्धी-पोषक (?) हूँ। उसकी याचना करनेवाले भली भान्ति कामना के वशीभूत हुए, मुझे मेरे (भावी-) श्वसुर ने कहा, "हम तुझे वह सुन्दर शरीरवाली, सुन्दर नेत्रोंवाली, प्रिय मुस्कानवाली तथा चन्दन-लिप्त गात वाली दे देंगे, यदि तू न्याय से पण्डित का हृदय यहाँ ले आयेगा। इसी धन से कुमारी मिल सकती है। इसके अतिरिक्त हम और धन नहीं खोजते ॥२१२, २१३॥ हे कर्ता! इस प्रकार न मैं मूर्ख हूँ और न मैंने किसी बात में नासमझी की है। यदि न्याय से तेरा हृदय मिल जाय तो उसीसे नाग इरन्दति नामक नाग-कन्या देते हैं ॥२१४॥ इसलिये मैं तेरा वध करने में लगा हूँ। यही तेरे मरने से मेरा लाभ है। मैं तुझे यहीं इस नरक-सदृश प्रपात में गिराकर और तुझे मारकर तेरा हृदय ले जाऊँगा ॥२१५॥]

उसकी बात सुन बोधिसत्व ने सोचा, "विमला को मेरे हृदय की आवश्यकता नहीं है। वरुण ने धर्मोपदेश सुन, मणि से पूजाकर, वहाँ जाकर मेरे धर्मोपदेश की प्रशंसा की होगी। उससे विमला के मन में मेरी धर्म-कथा के प्रति 'दोहद' उत्पन्न

हो गया होगा। वरुण ने ठीक से न समझ पुण्णक को आज्ञा दी होगी। इस प्रकार यह अपनी बेसमझी के कारण मुझे मारने के लिये इतना दुःख दे रहा है। स्थान-उत्पत्ति-कारण को समझने में समर्थ मेरा पाण्डित्य इसके मुझे मार डालने पर क्या करेगा? उसने सोचा कि मैं इसे यह कहकर अपने प्राण बचाऊं कि 'मैं सत्पुरुष-धर्म जानता हूँ। जब तक मैं नहीं मरता हूँ तब तक मुझे पर्वत के शिखर पर बिठाकर अच्छी तरह सत्पुरुष-धर्म सुन। पीछे जो इच्छा हो सो करना।' उसने सिर नीचा किये लटके हुए ही गाथा कही—

खिप्पं ममं उद्धर कातियान
हदयेन मे यदि ते अत्थि किच्चं,
ये केचिमे साधुनरस्स धम्मा
सब्बेव ते पातुकरोमि अज्ज ॥२१६॥

[हे कात्यायन! यदि तुझे मेरा हृदय चाहिये तो मुझे जल्दी से सीधा कर। मैं आज जितने भी सत्पुरुषों के धर्म हैं वे सब तेरे सामने स्पष्ट करता हूँ ॥२१६॥]

यह सुन पुण्णक ने सोचा, यह पण्डित जो उपदेश देगा वह इससे पूर्व देव-मनुष्यों द्वारा अकथित धर्म होगा। इसे शीघ्र ही उठा, इससे सत्पुरुषों का धर्म सुनूंगा। उसने बोधिसत्व को उठाकर पर्वत-शिखर पर बिठाया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सपुण्णको कुरुनं कत्तसेट्ठं
नगमुद्धनि खिप्पं पतिट्ठपेत्वा,
अस्सत्थमासीनं समेक्खियान
परिपुच्छि कत्तारं अनोमपञ्ञं ॥२१७॥
समुद्धटो मेसि तुवं पपाता
हदयेन ते अज्ज ममत्थि किच्चं,
ये केचिमे साधुनरस्स धम्मा
सब्बेव मे पातुकरोहि अज्ज ॥२१८॥

[सपुण्णक ने कुरुओं के श्रेष्ठकर्ता (विधुर) को शीघ्र ही पर्वत शिखर पर बिठाया। फिर जब उसे आश्वस्थ हुआ बैठा देखा तो उस बुद्धिमान से पूछा—"तुझे मैंने प्रपात से उठा लिया है। आज मुझे तेरे हृदय की आवश्यकता है। जितने भी सत्पुरुषों के धर्म हैं वे आज मुझे सब स्पष्ट कहो" ॥२१७-२१८॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

समुद्धटो त्यास्मि अहं पपाता
हृदयेन मे यदि ते अत्थि किच्चं,
ये केचिमे साधुनरस्स धम्मा
सब्बेव ते पातुकरोमि अज्ज ॥२१९॥

[तूने प्रपात से मुझे उठा लिया है। यदि तुझे मेरे हृदय की आवश्यकता है तो जितने भी सत्पुरुष के धर्म हैं, वे मैं आज सभी तुझे स्पष्ट करता हूँ ॥२१९॥]

तब बोधिसत्व ने कहा—"शरीर मैला है। मैं स्नान कर लूं।" 'यक्ष ने 'अच्छा' कहा और स्नान करने के लिये पानी लाकर दिया और स्नान कर चुकने पर बोधिसत्व को दिव्य-वस्त्र तथा दिव्य सुगन्धित-मालादि लाकर दिये। जब वह अलंकृत होकर सजधज गया तब उसे दिव्य भोजन दिया। भोजन कर चुकने पर बोधिसत्व ने कालागिरि-शिखर को अलंकृत करवा, आसन बिछवा, अलंकृत आसन पर बैठ, बुद्ध-लीला से सत्पुरुषों का धर्म सुनाते हुए गाथा कही—

यातानुयायी च भवाहि माणव
अद्दञ्च पाणिं परिवज्जयस्सु,
मा चस्सु मित्तेसु कदाचि दूभी
मा च वसं असतीनं निगच्छे ॥२२०॥

[माणवक! चलनेवाले का अनुगमन करनेवाला हो, गीले तिनके को मत जला, कभी मित्र-द्रोह मत कर और असतियों के वशी-भूत न हो ॥२२०॥]

संक्षेप में कहे हुए चारों सत्पुरुष-धर्म समझ न सकने के कारण यक्ष ने विस्तार-पूर्वक प्रश्न किया—

कथन्नु यातं अनुयायी होति
अद्दञ्च पाणिं दहते कथं सो
असती च का को पन मित्तदूभो
अक्खाहि मे पुच्छितो एतमत्थं ॥२२१॥

[चलनेवाला का अनुगमन करनेवाला कैसे होता है, गीले तिनके को कैसे जलाता है असती कौन है और मित्र-द्रोही कौन है—पूछे जाने पर मुझे ये बातें बतायें ॥२२१॥]

बोधिसत्व ने समझाया—

असन्थुतं नोपि च दिट्ठपुब्बं
यो आसनेनापि निमन्तयेय्य
तस्सेव अत्थं पुरिसो करेय्य
यातानुयायीति तमाहु पण्डिता ॥२२२॥

[जिसे न कभी देखा हो और जिसके न कभी साथ रहा हो, ऐसा पुरुष यदि बुला-कर आसन पर बिठाये तो आदमी को चाहिये कि उसका हित करे। ऐसा करने वाले को पण्डितजन 'जानेवाले के पीछे 'जानेवाला' कहते हैं ॥२२२॥]

यस्सेकरत्तिम्पि घरे वसेय्य
यत्थन्नपाणं पुरिसो लभेथ,
न तस्स पापं मनसापि चेतये
अदुब्भपाणि दहते मित्तदुब्भो ॥२२३॥

[जिस घर में एक रात भी रहे और जहाँ आदमी को अन्न-पान मिले, उसका आदमी मन से भी कभी बुरा न सोचे। मित्र-द्रोही अद्रोही को जलाता है ॥२२३॥]

यस्स रुक्खस्स छायाय निसीदेय्य सयेय्य वा
न तस्स साखं भञ्जेय्य मित्तदुब्भोहि पापको ॥२२४॥

[जिस पेड़ की शाखा में बैठे या सोये, उसकी शाखा न तोड़े। मित्र-द्रोह करना पाप है ॥२२४॥]

पुण्णम्पि चेतं पठविं धनेन
दज्जित्थिया पुरिसो सम्मताय
लद्धा खणं अतिमञ्ञेय्य तम्पि
तासं वसं असतीनं न गच्छे ॥२२५॥

[यदि धन से लदी हुई सारी पृथ्वी भी आदमी स्त्री के बारे में विश्वस्त होकर उसे दे दे तो भी वह समय आने पर उसके साथ भी विश्वासघात करती है। इसलिये इन असतियों के वशीभूत न हो ॥२२५॥]

एवं खो यातं अनुयायी होति
अदुब्भ पाणिं दहते पुनेवं,

असतो च सा सो पन मित्तदुब्भो
सो धम्मियो होति जहस्सु अधम्मं ॥२२६॥

[इस प्रकार जानेवाले का अनुगमन करनेवाला होता है, फिर इस प्रकार गीले तिनके को जलाता है, वह असती होती है और वह मित्र-द्रोही होता है। ऐसा करने-वाला अधार्मिक होता है। अधर्म छोड़ना चाहिये ॥२२६॥]

सत्पुरुष धर्म-काण्ड समाप्त

इस प्रकार बोधिसत्व ने यक्ष को चारों सत्पुरुष-धर्म बुद्ध-लीला से बताये।

यह सुनते ही पुण्णक समझ गया कि चारों तरह से पण्डित अपने जीवन की ही याचना करता है। इसने पहले तो मेरे जैसे आदमी का जिसके साथ कभी पहले रहना नहीं हुआ सत्कार किया। मैं इसके घर में तीन दिन बड़े आनन्द से रहा। मै यह पाप-कर्म स्त्री के लिये ही कर रहा हूँ। हर तरह से मैं ही मित्र-द्रोही हूँ। यदि पण्डित के साथ बुराई करता हूँ तो मैं सत्पुरुष-धर्म के अनुसार आचरण नहीं करता हूँ। मुझे नाग-कन्या से क्या? इन्द्रप्रस्थ वासियों के अश्रुपूर्ण-मुखों को प्रफुल्लित करता हुआ मैं इसे जल्दी से ले जाकर धर्म-सभा में ही उतार दूँ। यह सोच उसने कहा—

अवसिं अहं तुय्ह तीहं अगारे
अन्नेन पाणेन उपट्ठितोस्मि,
मित्तो ममासि विसजामहं तं
कामं घरं उत्तमपञ्ञ गच्छ ॥२२७॥
अपि हायतु नागकुलस्स अत्थो
अलम्पि मे नागकञ्ञाय होतु,
सो त्वं सकेनेव सुभासितेन
मुत्तोसि मे अज्ज वधाय पञ्ञा ॥२२८॥

[मैं तीन दिन तेरे घर रहा। तूने अन्न-पान से मेरी सेवा की। तू मेरा मित्र है। मैं तुझे छोड़ता हूँ। हे श्रेष्ठ-प्रज्ञ! तू अपनी इच्छानुसार घर लौट जा ॥२२७॥ नाग-कुल की बात पूरी न हो। नाग-कन्या की ओर से मेरी उपेक्षा है। हे प्रज्ञावान्! तू अपने सुभाषित के कारण ही आज मुझसे मुक्त हो गया ॥२२८॥]

बोधिसत्व बोला, "माणवक ! तू मुझे अभी अपने घर न भेज। नाग-भवन ही ले चल।" यह कहते हुए गाथा कही—

हन्द तुवं यक्ख ममम्पि नेहि
ससुरन्नु ते अत्थं मयी चरस्सु
मयम्पि नागाधिपती विमानं
दक्खेमु नागस्स अदिट्ठपुब्बं ॥२२९॥

[हे यक्ष ! तू मुझे भी ले चल। ससुर का हित मुझसे करा। हम भी नागाधिपति को और उसके अभी तक न देखे विमान को देखें ॥२२९॥]

पुण्णक बोला—

यं चे नरस्स अहिताय अस्स
न तं पञ्ञो अरहति दस्सनाय,
अथ केन वण्णेन अमित्त गामं
तुवमिच्छसि उत्तमपञ्ञ गन्तु ॥२३०॥

[जो नर का बुरा करने वाला हो, बुद्धिमान आदमी के लिये उसका देखना उचित नहीं है। हे उत्तम-प्रज्ञ ! तू किस कारण से अपने शत्रु के निवासस्थान जाना चाहता है ॥२३०॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

अद्धा पजानामि अहम्पि एतं
न तं पञ्ञो अरहति दस्सनाय,
पापञ्च मे नत्थि कतं कुहिञ्चि
तस्मा न संके मरणागमाय ॥२३१॥

[मैं भी यह निश्चय से जानता हूँ कि प्रज्ञावान् को उसका दर्शन योग्य नहीं। किन्तु क्योंकि मैंने कहीं भी कोई पाप-कर्म नही किया है। इसलिये मुझे मरने से डर नही है ॥२३१॥)

"देवराज ! मैंने तेरे जैसे कठोर-हृदय को धर्मोपदेश से प्रभावित कर मृदु बना लिया। अभी कहता है कि 'मुझे नाग-कन्या नहीं चाहिये। अपने घर जा।' नाग-राज को कोमल बनाने में मुझे क्या कठिनाई होगी ! मुझे वहाँ ले ही चल।" यह सुन सुपण्णक ने उसके कहने को 'अच्छा' कह स्वीकार किया—

हन्द च ठानं अतुलानुभावं
मया सहा दक्खसि एहि कत्ते,
यत्थच्छति नच्चगीतेहि नागो
राजा यथा वेस्सवणो नळिञ्ञं ॥२३२॥
तं नागकञ्ञाचरितं गणेन
निकीळितं निच्चमहो च रत्तिं,
पहूतमाल्यं बहुपुप्फछन्नं
ओभासति विज्जुरिवन्तलिक्खे ॥२३३॥
अन्नेन पाणेन उपेतरूपं
नच्चेहि गीतेहि च वादितेहि,
परिपूरं कञ्ञाहि अलंकताहि
उपसोहति वत्थपिळन्धनेन ॥२३४॥

[कर्ते ! आ । मेरे साथ महाप्रभावशाली स्थान को देखेगा, जहाँ राजा वैश्रवण नाग नृत्य-गीतके मध्य अपनी नलिनी नामकी राजधानी मे रहता है ॥२३२॥ वहाँ रात दिन नाग-कन्याओ की सामूहिक नृत्य-गीत की क्रीड़ा, जिसमे मलाओं और पुष्पो की प्रचुरता रहती है, उसी प्रकार सुशोभित होती है जैसे आकाश मे बिजली ॥२३३॥ अन्न-पान से युक्त, नृत्य, गीत तथा बाजो से युक्त, अलकृत कन्याओ से भरपूर तथा वस्त्रों ओर अलंकारो मे युक्त वह राजा शोभा देता है ॥२३४॥]

सो पुण्णको कुरूनं कत्तसेट्ठं
निसीदय पच्छतो आसनस्मि,
आदाय कत्तार अनोमपञ्ञं
उपानयी भवन नागरञ्ञो ॥२३५॥
पत्वान ठानं अतुलानुभावं
अट्ठासि कत्ता पच्छतो पुण्णकस्स,
सामग्गिपेक्खी पन नागराजा
पुब्बेव जामातरमज्झभासथ ॥२३६॥

[उस पुण्णक ने कुरुओं के कर्ता-श्रेष्ठ को पीछे आसन पर बिठाया और उस महाप्रज्ञ कर्ता को वह नागराज के भवन ले आया ॥२३५॥ उस महाप्रतापी स्थान

पर पहुँचकर कर्ता पुण्णकके पीछे खड़ा हुआ। एकता के इच्छुक नागराजा ने ही पहले जामाता को सम्बोधित किया ॥२३६॥]

नागराजा बोला—

यन्नु तुवं अगमा मच्चलोकं
अन्वेसमानो हृदयं पण्डितस्स,
कच्चि समिद्धेन इधानुपत्तो
आदाय कत्तारं अनोमपञ्ञं ॥२३७॥

[क्या तू पण्डित के हृदय को खोजता हुआ मर्त्य-लोक पहुँचा। क्या तू महा-प्रज्ञा कर्त्ता को साथ लेकर अर्थ सिद्ध करके यहाँ आया? ॥२३७॥]

पुण्णक बोला—

अयं हि सो आगतो यं त्वमिच्छसि
धम्मेन लद्धो मम धम्मपालो,
तं पस्सथ सम्मुखा भासमानं
सुखो हवे सप्पुरिसेहि संगमो ॥२३८॥

[जिसकी तू इच्छा करता था, वह यह आ गया है। इस धर्मपाल को मैंने धर्म से प्राप्त किया है। इसे सामने बातचीत करता हुआ देखें। सत्पुरुषों की संगति सुखकर होती है ॥२३८॥]

काळागिरि काण्ड समाप्त

नागराजा ने बोधिसत्व को देख गाथा कही—

अदिट्ठपुब्बं दिस्वाद मच्चो मच्चुभयट्टितो,
ब्यम्हितो नाभिवादेति नयिदं पञ्ञवतामिव ॥२३९॥

[भय के कारण अदृष्ट-पूर्व मनुष्य को जो तू अभिवादन नहीं करता यह बुद्धि-मानों के योग्य नहीं है ॥२३९॥]

इस प्रकार की आशा रखनेवाले नागराज को बोधिसत्व ने बिना यह कहे कि तू मेरा वन्दनीय नहीं है, अपने ज्ञान से तथा उपाय से मैं 'बध्य' होने के कारण तुझे नमस्कार नहीं करता हूँ कह दो गाथायें कहीं—

न चम्हि ब्यम्हितो नाग न च मच्चु भयट्टितो,
न वज्झो अभिवादेय्य वज्झंवा नाभिवादये ॥२४०॥

कथं नो अभिवादेय्य अभिवादापयेथ वे,
यं नरो हन्तुमिच्छेय्य तं कम्मं न उपपज्जति ॥२४१॥

[हे नाग ! मैं मृत्यु से भय-भीत नहीं हूँ। किन्तु जो 'बध्य' है, न तो वह नमस्कार करता है और न उससे कोई नमस्कार कराता है ॥२४०॥ जो नर किसी की हत्या करना चाहता है, उसे कैसे कोई नमस्कार करेगा और वह कैसे किसी से नमस्कार करायेगा—यह कर्म तो ठीक नहीं बैठता ॥२४१॥]

यह सुन नागराज ने बोधिसत्व की प्रशंसा करते हुए दो गाथायें कहीं—

एवमेतं यथा ब्रूसि सच्चं भाससि पण्डित,
न वज्झो अभिवादेय्य वज्झं वा नभिवादये ॥२४२॥
कथं नो अभिवादेय्य अभिवादापयेथ वे
यं नरो हन्तुमिच्छेय्य तं कम्मं न उपपज्जति ॥२४३॥

[हे पण्डित ! जैसा तू सत्य कहता है वैसा ही है। जो 'बध्य' है, न तो वह नमस्कार करता है और न उससे कोई नमस्कार कराता है ॥२४२॥ जो नर किसी की हत्या करना चाहता है, उसे कोई कैसे नमस्कार करेगा और वह कैसे किसी से नमस्कार करायेगा—यह कर्म तो ठीक नहीं बैठता ॥२४३॥]

अब बोधिसत्व ने नागराज का कुशल-क्षेम पूछते हुए बातचीत की—

असस्सतं सस्सतं नो तवयिदं
इद्धिजुतो बलविरियूपपत्ति,
पुच्छामि तं नागराजेतमत्थं
कथं नु ते लद्धमिदं विमानं ॥२४४॥
अधिच्च लद्धं परिणामजं ते
सयं कतं उदाहु देवेहि दिन्नं,
अक्खाहि मे नागराजेतमत्थं
यथेव ते लद्धमिदं विमानं ॥२४५॥

[हे नागराज ! तेरी ऋद्धि, द्युति, बल, वीर्य्य—उपपत्ति सभी अशाश्वत है, शाश्वत नहीं। हे नागराज ! मैं पूछता हूँ कि तुझे यह विमान कैसे प्राप्त हुआ ? ॥२१२॥ यह तुझे यूँ ही मिल गया है अथवा ऋतु-परिवर्तन होने से मिला है, स्वयं

बनाया है अथवा देवताओं ने दिया है। हे नागराज! मुझे यह बता कि तुझे यह विमान कैसे मिला है? ॥२४५॥]

नाधिच्च लद्धं न परिणामजं मे
न सयं कतं नपि देवेहि दिन्नं,
सकेहि कम्मेहि अपापकेहि
पुञ्ञेहि मे लद्धमिदं विमानं ॥२४६॥

[न यूँ ही मिला है, न ऋतु-परिवर्तन का परिणाम है, न स्वयं बनाया है और न देवताओं ने दिया है। अपने ही निष्पाप पुण्य-कर्मों के फलस्वरूप यह मुझे मिला है। ॥२४६॥]

बोधिसत्व ने पूछा—

किं ते वतं किं ते ब्रह्मचरियं
किस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको,
इद्धि जुति बलविरियुपपत्ति
इदञ्च ते नाग महाविमानं ॥२४७॥

[तेरा क्या व्रत है? तेरा क्या ब्रह्मचर्य्य है? यह तेरे किस शुभ-कर्म का परिणाम है—यह जो ऋद्धि है, द्युति है, बल है, वीर्य्य की उत्पति है और हे नाग! यह जो तेरा महान् विमान है? ॥२४७॥]

नागराज बोला—

अहञ्च भरियाच मनुस्सलोके
सद्धा उभो दानपती अहुम्हा,
ओपानभूतं मे घरं तदासि
सन्तप्पिता समणब्राह्मणा च ॥२४८॥
मालञ्च गन्धञ्च विलेपनञ्च
पदीपियं सेय्यमुपस्सयञ्च,
अच्छादनं सयनं अन्नपाणं
सक्कच्च दानानि अदम्ह तत्थ ॥२४९॥
तं मे वतं तं पन ब्रह्मचरियं
तस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको

इद्धिजुती बलविरियुपपत्ति
इदञ्च मे धीर महाविमानं ॥२५०॥

[मैं और भार्य्या, हम दोनों मनुष्य-लोक में श्रद्धावान तथा दानी थे। मेरा घर उस समय 'प्याओ' के समान था। सभी श्रमण-ब्राह्मण संतर्पित थे ॥२४८॥ हमने उस समय माला, गन्ध, विलेप, प्रदीप, शैय्या, उपाश्रय, ओढ़ना, बिस्तर तथा अन्न-पान—सभी वस्तुयें आदरपूर्वक दान दीं ॥२४९॥ हे धीर-पुरुष! यही मेरा व्रत है, यही मेरा ब्रह्मचर्य्य है और यह उस पुण्य-कर्म का ही फल है जो कि यह ऋद्धि है, यह द्युति है, यह बल है, यह वीर्य्य की उत्पत्ति है और यह जो विमान है ॥२५०॥]

बोधिसत्व—

एवं चे ते लद्धमिदं विमानं
जानासि पुञ्ञानं फलूपपत्तिं,
तस्मा हि धम्मं चर अप्पमत्तो
यथा विमानं पुनमावसेसि ॥२५१॥

[यदि तूने इस तरह से यह विमान प्राप्त किया है तो तू पुण्य-कर्मों के फल की बात जानता है। इसलिये अप्रमादी होकर धर्माचरण कर जिससे यह विमान फिर भी मिले ॥२५१॥]

नागराजा—

नयिध सन्ति समणा ब्राह्मणा वा
येसन्नपाणानि ददेमु कत्ते,
अक्खाहि मे पुच्छितो एतमत्थं
यथा विमानं पुनमावसेम ॥२५२॥

[हे कर्ते! यहाँ श्रमण-ब्राह्मण नहीं हैं जिन्हें हम अन्न-पान दे सकें। मेरे पूछने पर मुझे वह विधि बता जिससे मुझे फिर भी विमान प्राप्त हो सके ॥२५२॥]

बोधिसत्व—

भोगी च ते सन्ति इधूपपन्ना
पुत्ता च दारा अनुजीविनो च,
तेसु तुवं वचसा कम्मना च
असम्पदुट्ठोव भवाहि निच्चं ॥२५३॥

एवं तुवं नाग असम्पदोसं
अनुपालयं वचसा कम्मना च,
ठत्वा इध यावतायुं विमाने
उद्धं इतो गच्छसि देवलोकं ॥२५४॥

[हे नाग ! यहाँ तेरे साथ तेरे पुत्र, स्त्री तथा अन्य आश्रित हैं । तू उन सबके प्रति सदैव वाणी और कर्म से मैत्री-युक्त चित्तवाला हो ॥२५३॥ हे नाग ! इस प्रकार तू वाणी और कर्म से मैत्री-भावना का पालन करने से यहाँ आयु भर रहकर, यहाँ से देव-लोक को जायेगा ॥२५४॥]

नागराज ने बोधिसत्व की धर्मकथा सुनी तो सोचा कि पण्डित के साथ बाहर बहुत विलम्ब नहीं किया जा सकता । इसे विमला को दिखाकर, सुभाषित सुनवाकर, उसका 'दोहद' शान्त करा और राजा को संतुष्ट कर, पण्डित को वापिस भेजना ही योग्य है । उसने गाथा कही—

अद्धा हि सो सोचति राजसेट्ठो
तया विना यस्स तुवं सजीवो,
दुक्खूपनीतोपि तया समेच्च
विन्देय्य पोसो सुखमातुरोपि ॥२५५॥

[निश्चय से वह राज-श्रेष्ठ चिन्ता करता होगा जिसका कि तू अमात्य है । तेरे साथ दुखी, रोगी मनुष्य भी सुख का अनुभव करेगा ॥२५५॥]

यह सुन बोधिसत्व ने नाग की स्तुति करते हुए दूसरी गाथा कही—

अद्धा सतं भाससि नाग धम्मं
अनुत्तरं अत्थपदं सुचिण्णं,
एतादिसीयासु हि आपदासु
पञ्ञायते मदिसानं विसेसो ॥२५६॥

[हे नाग ! तू निश्चय से धर्म की बात कह रहा है, सर्वश्रेष्ठ, सार्थक तथा कुशल-धर्म की । ऐसी विपत्तियाँ आने पर ही मेरे जैसों की विशेषता दिखाई देती है ॥२५६॥]

यह सुन नागराजा ने और भी अधिक प्रसन्न हो गाथा कही—

अक्खेहि नो तायं मुधा नु लद्धो
अक्खेहि नो तायं अजेसि जूते,
धम्मेन लद्धो इति तायमाह
कथं तुवं हत्थमिमस्समागतो ॥२५७॥

[हमें बता कि क्या तू मुफ्त में मिला है, अथवा तुझे जुए में जीता है। पुण्णक का कहना है कि इसने तुझे धर्म से पाया। तू किस तरह इसके हाथ आया? ॥२५७॥]

बोधिसत्व—

योमिस्सरो तत्थ अहोसि राजा
तमयमक्खेहि अजेसि जूते,
सो मं जितो राजा इमस्स दासि
धम्मेन लद्धोस्मि असाहसेन ॥२५८॥

[जो वहाँ का स्वामी राजा था, उसे इसने जुए में जीत लिया। मैं जीता गया। राजा ने मुझे इसे दे दिया। मैं धर्मानुसार विना जबर्दस्ती के प्राप्त किया गया हूँ ॥२५८॥]

महोरगो अत्तमनो उदग्गो
सुत्वान धीरस्स सुभासितानि,
हत्थे गहेत्वान अनोमपञ्ञं
पावेक्खि भरियाय तदा सकासे ॥२५९॥
येन त्वं विमले पण्डु येन भत्तं न रुच्चति,
न च मेतादिसो वण्णो अपमेसो तमोनुदो ॥२६०॥
यस्स ते हदयेनत्थो आगतायं पभंकरो,
तस्स वाक्यं निसामेहि दुल्लभं दस्सनं पुनं ॥२६१॥

[धीर-पुरुष के वचन सुन महानाग बहुत प्रसन्न हुआ और उस महाप्रज्ञावान् का हाथ पकड़ उसे भार्य्या के पास ले गया ॥२५९॥ हे विमला! जिसके लिये तू पीली पड़ गई है, जिसके कारण तुझे भोजन नहीं रुचता, वह (तेरे अन्धकार को दूर करनेवाला यह है। ऐसा (सुन्दर) वर्ण किसी (और) का नहीं है ॥२६०॥ तुझे जिसके हृदय की आवश्यकता थी वह प्रभापुञ्ज आ गया है। उसकी वाणी सुन। फिर दर्शन दुर्लभ है ॥२६१॥]

दिस्वान तं विमला भूरि पञ्ञं
दसंगुलिं पञ्जलिं पग्गहेत्वा
हट्ठेन भावेन पतीतरूपा
इच्चब्रवी कुरुनं कत्तसेट्ठं ॥२६२॥

[उस प्रज्ञावान को विमला ने देखा तो प्रसन्न हो दोनों हाथ जोड़ करुओं के उस श्रेष्ठ कर्ता को यूँ कहने लगी ॥२६२॥]

अदिट्ठपुब्बं दिस्वान मच्चो मच्चुभयट्टितो,
ब्यम्हितो नाभिवादेति न इदं पञ्ञवतामिव ॥२६३॥
विधुर—न चम्हि ब्यम्हितो नागि न च मच्चुभयट्टितो,
न वज्झो अभिवादेय्य वज्झं वा नाभिवादये ॥२६४॥
कथं नो अभिवादेय्य अभिवादापयेथ चे,
यं नरो हन्तुमिच्छेय्य तं कम्मं न उपपज्जति ॥२६५॥
नाग-भार्य्या—एवमेतं यथा ब्रुसि सच्चं भाससि पण्डित
न वज्झो अभिवादेय्य वज्झं वा नाभिवादये ॥२६६॥
कथं नो अभिवादेय्य अभिवादापयेथ वे
यं नरो हातुमिच्छेय्य तं कम्मं न उपपज्जति ॥२६७॥
विधुर—असस्सतं सस्सतं नो तवयिदं
इद्धिजूती बलविरियूपपत्तिं,
पुच्छामि तं नाग कञ्ञेतमत्थं
कथन्नु ते लद्धमिदं विमानं ॥२६८॥
अधिच्च लद्धं परिणामजं ते
सयं कतं उदाहु देवेहि दिन्नं,
अक्खाहि मे नागकञ्ञेतमत्थं
यथेव ते लद्धमिदं विमानं ॥२६९॥
नाग-भार्य्या—नाधिच्च लद्धं न परिणामजं मे
न सयं कतं न पि देवेहि दिन्नं,
सकेहि कम्मेहि अपापकेहि
पुञ्ञेहि मे लद्धमिदं विमानं ॥२७०॥

विधुर—किं ते वतं किं पन ब्रह्मचरियं
किस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको,
इद्धी जुती बलविरियूपपत्ति
इदञ्च ते नागि महाविमानं ॥२७१॥

नाग-भार्य्या—अहञ्च खो सामिको चापि मय्हं
सद्धा उभो दानपति अहुम्हा,
ओपानभूतं मे घरं तदासि
सन्तप्पिता समणब्राह्मणा च ॥२७२॥

मालञ्च गन्धञ्च विलेपनञ्च
पदीपियं सेय्यमुपस्सयञ्च,
अच्छादनं सयनम थन्न पाणं
सक्कच्च दानानि अदम्ह तत्थ ॥२७३॥

तं मे वतं तं पन ब्रह्मचरियं
तस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको,
इद्धि जुती बलविरियूपपत्ति
इदञ्च मे धीर महाविमानं ॥२७४॥

विधुर—एवञ्च ते लद्धमिदं विमानं
जानासि पुञ्ञानं फलूपपत्तिं,
तस्माहि धम्मं चर अप्पमत्ता
यथा विमानं पुनमावसेसि ॥२७५॥

नाग-भार्य्या—नयिध सन्ति समणा ब्राह्मणा वा
येसन्नपाणानि ददेमु कत्ते,
अक्खाहि मे पुच्छितो एतमत्थं
यथा विमानं पुनमावसेम ॥२७६॥

विधुर—भोगी हिते सन्ति इधुपपन्ना
पुत्ता च दारा[१] अनुजीविनो च
तेसं तुवं वचसा कम्मना च
असम्पदुट्ठा च भवाहि निच्चं ॥२७७॥

---

[१] 'दारा' के स्थान पर 'सामी' अपेक्षित है।

एवं तुवं नागि असम्पदोसं
अनुपालय वचसा कम्मना च,
ठत्वा इध यावतायुं विमाने
उद्धं इतो गच्छसि देव लोकं ॥२७८॥

नाग-भार्य्या—अद्धा हि सो सोचति राजसेट्ठो
तया विना यस्स तुवं सजीवो,
दुक्खूपनीतोपि तया समेच्च
विन्देय्य पोसो सुखमातुरोपि ॥२७९॥

विधुर—अद्धा सतं भाससि नागि धम्मं
अनुत्तरं अत्थपदं सुचिण्णं,
एतादिसियासु हि आपदासु,
पञ्जायते मादिसानं विसेसो ॥२८०॥

नाग-भार्य्या—अक्खेहि नो तायं मुधानुलद्धो
अक्खेहि नो तायमजेसि जूते
धम्मेन लद्धो इति तायमाह
कथं तुवं हत्थमिमस्समागतो ॥२८१॥

विधुर—यो मिस्सरो तत्थ अहोसि राजा
तमयमक्खेहि अजेसि जूते,
सो मं जितो राजा इमस्सदासि
धम्मेन लद्धोस्मि असाहसेन ॥२८२॥

[इन गाथाओं के अर्थ के लिये देखें गाथा सं० २०७ से २२६ तक]

यदेव वरुणो नागो पञ्हं पुच्छित्थ पण्डितं,
तदेव नागकञ्ञापि पञ्हं पुच्छित्थ पण्डितं ॥२८३॥

[जो प्रश्न वरुण नाग ने पण्डित से पूछे, वही प्रश्न नाग-कन्या ने भी पण्डित से पूछे ॥२८३॥]

यथेव वरुणं नागं धीरो तोसेसि पुच्छितो,
तथेव नागकञ्ञम्पि धीरो तोसेसि पुच्छितो ॥२८४॥

[जिस प्रकार धीर-पुरुष ने नाग को सन्तुष्ट किया। उसी प्रकार धीर-पुरुष ने नाग-कन्या को भी सन्तुष्ट किया ॥२८४॥]

इस प्रकार सन्तुष्ट होने पर—

उभोपि ते अत्तमने विदित्वा
महोरगं नागकञ्ञञ्च धीरो
अच्छम्भी अभीतो अलोमहट्ठो
इच्चब्रवी वरुणं नागराजं ॥२८५॥
मा रोषयि नाग अयाहमस्मि
येन तव अत्थो इदं सरीरं,
हदयेन मंसेन करोति किच्चं
सयं करिस्सामि यथामतिं ते ॥२८६॥

[धीर (-पुरुष) ने नागराज तथा नाग-कन्या दोनों को संतुष्ट जाना तो उसने भय-रहित हो नाग-राज वरुण को यह कहा ॥२८५॥ हे नाग ! संकोच मत कर। यह मैं हूँ। मेरे शरीर से जो भी काम लेना हो ले, यदि हृदय-माँस चाहिये तो ले। यदि (तू मुझे न मार सके) तो तेरी इच्छा के अनुसार जैसा तू कहे वैसा मैं स्वयं करूँ ॥२८६॥)

नागराज बोला—

पञ्ञा हवे हदयं पण्डितानं
तेत्यम्ह पञ्ञाय मयं सुतुट्ठा
अनूननामो लभतज्ज दारं
अज्जेव तं कुरुयो पापयातु ॥२८७॥

[पण्डितों की प्रज्ञा ही उनका हृदय है। हम तेरी प्रज्ञा से सन्तुष्ट हैं। पुण्णक को उसकी भार्य्या मिले। और आज ही तू कुरु देश चला जाय ॥२८७॥]

यह कह वरुण ने अरुन्दति पुण्णक को दी। वह उसे प्राप्त कर प्रसन्न-मन से बोधिसत्व से बातचीत करने लगा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

स पुण्णको अत्तमनो उदग्गो
इरन्दतिं नागकञ्ञं लभित्वा
हट्ठेन भावेन पतीत रूपो
इच्चब्रवी कुरुनं कत्तसेट्ठं ॥२८८॥

भीरयाय मं त्वं अकरी समंगिं
अहञ्च ते विधुर करोमि किच्चं,
इमञ्च ते मणिरतनं ददामि
अज्जेव तं कुरुयो पापयामि ॥२८९॥

[इरन्दति नाग-कन्या को प्राप्त कर, प्रसन्न-चित्त पुण्णक प्रसन्नतापूर्वक कुरुओं के श्रेष्ठ-कर्ता (विधुर) से बोला ॥२८८॥ हे विधुर ! तूने भार्य्या के साथ मुझे मिलाया है, मैं भी तेरा उपकार करता हूँ। मैं तुझे यह मणि-रत्न देता हूँ और आज ही तुझे कुरु-देश पहुँचा देता हूँ ॥२८९॥]

तब बोधिसत्व ने उसकी प्रशंसा करते हुए दूसरी गाथा कही—

अजेय्यमेसा तव होतु मेत्ति
भरियाय कच्चान पियाय सद्धिं,
आनन्दी वित्तो सुमनो पतीतो
दत्वा मणिं मं च नयिन्द पत्तं ॥२९०॥

[हे कात्यायन ! भार्य्या के साथ तेरी मैत्री अजेय हो। तू पहले से भी सुमन, प्रसन्न-चित्त है। तू मुझे मणि दे और इन्द्रप्रस्थ ले चल ॥२९०॥]

स पुण्णको कुरुनं कत्तसेट्ठं
निसीदयि पुरतो आसनस्मिं
आदाय कत्तारं अनोमपञ्ञं
उपानयी नगरे इन्द पत्तं ॥२९१॥
मनो मनुस्सस्स यथापि गच्छे
ततोपि संखिप्पतरं अहोसि,
स पुण्णको कुरुनं कत्तसेट्ठं
उपानयी नगरं इन्दपत्तं ॥२९२॥

[पुण्णक ने कुरुओं के श्रेष्ठकर्ता को आगे आसन पर बिठाया और उस महाप्रज्ञावान् को इन्द्रप्रस्थ नगर ले आया ॥२९१॥ जितनी देर में आदमी का मन कहीं पहुँचे उससे भी थोड़ी देर में पुण्णक कुरुओं के श्रेष्ठकर्ता को इन्द्र-प्रस्थ नगर ले आया। ॥२९२॥]

तब पुण्णक ने कहा—

एतिन्दपत्तं नगरं पविस्सति
रम्मानि च अम्बवनानि भागसो,
अहञ्च भरियाय समंगि भूतो
तुवं च पत्तोसि सकं निकेतं ॥२९३॥

[यह इन्द्र-प्रस्थ नगर दिखाई देता है। बंटे हुए सुन्दर आम्रवन हैं। मैं भार्य्या के साथ एक हो गया हूँ। तू भी अपने घर पहुँच गया है ॥२९३॥]

उस दिन बहुत प्रातःकाल राजा ने स्वप्न देखा। स्वप्न ऐसा था। राजा के महल के द्वार पर एक पेड़ था, जिसका प्रज्ञारूपी स्कन्ध था, जिसकी सदाचार रूपी शाखायें-प्रशाखायें थीं, जिसके पाँच गोरस रूपी फल थे और जिसे अलंकृत हाथी-घोड़े ढके थे। जनता सत्कार कर हाथ जोड़ नमस्कार करती। लाल वस्त्र पहने, लाल फूल कान में पहने, हाथ में शस्त्र लिये एक काला पुरुष आया और जनता के रोते रहते ही उसने उस पेड़ को जड़ से काटा और लेकर चला गया। फिर ले आया और उसके स्वाभाविक स्थान पर लगा गया।

उस स्वप्न के बारे में विचार करने पर राजा को लगा कि विधुर पण्डित के अतिरिक्त दूसरा कोई 'महान् वृक्ष' नहीं है, जनता के रोते रहते जड़ काटकर ले जानेवाला पुरुष, पण्डित को ले जानेवाले माणवक के अतिरिक्त दूसरा नहीं है, और फिर उस वृक्ष को लाकर उसके स्वाभाविक स्थान पर रखने वाले का अर्थ है कि वही माणवक कल ही पण्डित को लाकर धर्मसभा के द्वार पर करके जायेगा। उसे निश्चय हो गया कि आज हम पण्डित को देखेंगे। उसने प्रसन्न हो सारे नगर को अलंकृत करा, धर्मसभा को सज्जित करा, अलंकृत रत्न-मण्डप में धर्मासन बिछवा, सौ राजाओं, अमात्यों, नगरवासियों तथा जनपदवासियों को आश्वस्त किया—"तुम चिन्ता मन करो। आज तुम पण्डित को देखोगे।" वह धर्मसभा में बैठ पण्डित के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। पुण्णक ने भी पण्डित को उतारा और धर्म-सभा द्वार पर परिषद के मध्य में खड़ा किया। तब आज्ञा ले इरन्दति सहित अपने देवनगर को ही चला गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

स पुण्णको कुरुनं कत्तसेट्ठं
ओरोपिय धम्मसभाय मज्झे,

आजञ्ञमारुव्ह अनोमवण्णो
पक्कामि वेहासयमन्त लिक्खे ॥२९४॥
तं दिस्वा राजा परमप्पतीतो
उट्ठाय बाहाहि पलिस्सजित्वा
अविकम्पयं धम्म सभाय मज्झे,
निसीदयी पमुखं आसनस्मिं ॥२९५॥

[उस पुण्णक ने कुरुओं के श्रेष्ठकर्ता को धर्मसभा के बीच उतारा और वह उत्तम-वर्णी श्रेष्ठ घोड़े पर चढ़ आकाश मार्ग से अन्तरिक्ष में चला गया ॥२९४॥ यह देख राजा अति प्रसन्न हुआ। उसने उसे बाहों से आलिंगन कर, स्थिर भाव से, सभा के बीच प्रमुख आसन पर बिठाया ॥२९५॥]

राजा ने उससे बातचीत करते हुए और बड़ी मिठास के साथ उसका कुशल-क्षेम पूछते हुए गाथा कही—

त्वं नो विनेतासि रथंव नद्धं
नन्दन्ति तं कुरुयो दस्सनेन,
अक्खाहि मे पुच्छितो एतमत्थं
कथं पमोक्खो अहु माणवस्स ॥२९६॥

[जिस प्रकार सारथी जुते रथ को चलाता है, उसी प्रकार तू हमें चलानेवाला है। कुरु के लोग तुझे देख प्रसन्न हैं। मेरे पूछने पर तू मुझे यह बता कि माणवक के हाथ से तू कैसे मुक्त हुआ? ॥२९६॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

यं माणवोत्याभिवदी जनिन्द
न सो मनुस्सो नरविरियसेट्ठ
यदि ते सुतो पुण्णको नाम यक्खो
रञ्ञो कुवेरस्स हि सो सजीवो ॥२९७॥
भुमिन्धरो वरुणो नाम नागो
ब्रहा सुचो वण्णबलूपपन्नो,
तस्सानुजं धीतरं कामयानो
इरन्धती नाम सा नागकञ्ञा ॥२९८॥

तस्सा सुमज्झाय पियाय हेतु
पतारयित्थ मरणाय मय्हं,
सोयेव भरियाय समंगि भूतो
अहञ्चनुञ्ञातो मणी च लद्धो ॥२९९॥

[हे राजन् ! जिसने अपने आपको 'माणवक' कहा, हे नरवीर्य्य श्रेष्ठ ! वह मनुष्य नहीं था। यदि तूने 'पुण्णक' यक्ष का नाम सुना हो तो वह वही राजा कुबेर का अमात्य था ॥२९७॥ भूमि को धारण करने वाला 'वरुण' नामका नाग है— महान्, पवित्र तथा वर्ण और बल से युक्त। उस पुण्णक ने उस वरुण की इरन्दती नामकी नाग-कन्या की कामना की ॥२९८॥ उस मध्य आकार की प्रिय नाग-कन्या को प्राप्त करने के लिये ही उसने मेरे मारने का प्रयत्न किया। उसका अपनी भार्य्या से मेल हो गया और उसने मुझे मुक्त कर दिया तथा मणि दी ॥२९९॥]

तब राजा ने अपना प्रातःकाल देखा स्वप्न नगरवासियों को सुनाने की इच्छा से 'नगरवासियो ! आज मेरा देखा स्वप्न सुनो' कह गाथायें कहीं—

रुक्खो हि मय्हं पद्वारेसु जातो
पञ्ञाक्खन्धो सीलमयस्स साखा,
अत्थे च धम्मे च ठितो निपाको
गवप्फलो हत्थिगवस्स छन्नो ॥३००॥
नच्चगीत तुरियाभिनादिते
उच्छिज्जमेनं पुरिसो अहासि,
सो नो अयं आगतो सन्निकेतं
रुक्खस्सिमस्सापचितिं करोथ ॥३०१॥
ये केचि वित्ता मम पच्चयेन
सब्बेव ते पातुकरोन्तु अज्ज,
तिब्बानि कत्वान उपायनानि
रुक्खस्सिमस्सापचितिं करोथ ॥३०२॥
ये केचि बद्धा मम अत्थि रट्ठे
सब्बेव ते बन्धना मोचयन्तु,
यथेवयं बन्धनस्मा पमुत्तो
इमे च ते मुच्चरे बन्धनस्मा ॥३०३॥

उक्कंगला मास मिमं करोन्तु
मंसोदनं ब्राह्मणा भक्खयन्तु
अमज्जपा मज्जरहो पिपन्तु
पुण्णाहि थालाहि पलिस्सु ताहि ॥३०४॥
महापथं निच्च समव्हयन्तु
तिब्बञ्च रक्खं विदहन्तु रट्ठे,
यथञ्ञमञ्ञं न विहेठयेय्युं
रुक्खस्सिमस्सापचितिं करोथ ॥३०५॥

[मेरे दरवाजे पर वृक्ष उगा, जिसका स्कन्ध प्रज्ञा का तथा शाखायें शील की। वह अर्थ तथा धर्म में स्थिर रहकर बढ़ा है। पाँच प्रकार के उसके गोरस-फल हैं आर वह हाथी, बैल तथा घोड़ों से आच्छन्न है ॥३००॥ नृत्य, गीत और बाजा के बजते रहने पर ही एक पुरुष इसे उखाड़कर ले गया। वह अब फिर हमारे पास आ गया। इस वृक्ष की पूजा करो ॥३०१॥ जो भी मेरे निमित्त से संतोष को प्राप्त हुए हों, वे सब आज अपनी प्रसन्नता व्यक्त करें। बड़े बड़े उपाय करके इस वृक्ष की पूजा करें ॥३०२॥ जो भी मेरे राष्ट्र में कैद हैं, वे सभी बन्धन से मुक्त हों। जिस प्रकार यह बन्धन से मुक्त हुआ है उसी प्रकार वे भी बन्धन से मुक्त हों ॥३०३॥ इस महीने भर खेती न हो, ब्राह्मण पलाव खायें। मद्य पायी एकान्त में खूब भरे होने के कारण चूते हुए थालो से मद्य पियें ॥३०४॥)बड़े बाज़ार में इच्छुकों को वेश्याएँ नित्य बुलायें। राष्ट्र में कड़ी व्यवस्था हो ताकि कोई एक दूसरे को कष्ट न दे सके। इस वृक्ष की पूजा करो ॥३०५॥]

ऐसा कहने पर—

ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा
बहुं अन्नञ्च पाणञ्च पण्डितस्साभिहारयुं ॥३०६॥
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
बहुं अन्नञ्च पाणञ्च पण्डितस्साभिहारयुं ॥३०७॥
समागता जानपदा नेगमा च समागता,
बहुं अन्नञ्च पाणञ्च पण्डितस्साभिहारयुं ॥३०८॥
बहुज्जनो पसन्नोसि दिस्वा पण्डितमागते।
पण्डितम्हि अनुप्पत्ते चेलुक्खेपो अवत्तथ ॥३०९॥

[रनिवास के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण सभी पण्डित के लिये बहुत-सा अन्न-पान ले आये ।।३०६।। हाथी-सवार, सैनिक, रथ-सवार और पैदल सभी पण्डित के लिये बहुत-सा अन्न-पान ले आये ।।३०७।। जनपद के लोग और निगमों के लोग आये और सभी पण्डित के लिये बहुत सा अन्न-पान ले आये ।।३०८।। पण्डित को आया देख बहुत लोग प्रसन्न हुए और पण्डित के आने पर वस्त्र उछाले गये ।।३०९।।]

बोधिसत्व ने बुद्ध का ही कार्य्य करते हुए की तरह जनता को धर्मोपदेश दिया तथा राजा का अनुशासन किया। वह आयु-भर जीते रहकर स्वर्गगामी हुए। उसके उपदेश के अनुसार चल राजा से आरम्भ करके सभी कुरु-देश वासी दानादि पुण्य-कर्म कर आयु की समाप्ति पर स्वर्ग-गामी हुए।

'शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'भिक्षुओ, न केवल अभी पहले भी तथागत प्रज्ञा से युक्त थे और उपाय कुशल थे कह जातक का मेल बैठाया। उस समय पण्डित के माता-पिता महाराज-कुल थे। ज्येष्ठ-भार्य्या राहुल माता। ज्येष्ठ-पुत्र राहुल। वरुण नाग-राज सारिपुत्र। गरुड़राज मौद्गल्यायन, शक्र अनुरुद्ध। धनञ्जय राजा आनन्द। पुण्णक छन्न था। परिषद बुद्ध-परिषद् थी। विधुर पण्डित तो मैं ही था।

५४६. महा उम्मग्ग जातक

"पञ्चालो सब्बसेनाय"...."यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय प्रज्ञा-पारमिता के बारे में कहीं।

क. वर्तमान कथा

एक दिन भिक्षु धर्म-सभा में तथागत की प्रज्ञा-पारमिता की प्रशंसा करते हुए कहने लगे, "आयुष्मानो! तथागत महाप्रज्ञावान् हैं, विस्तृत-प्रज्ञावाले हैं, प्रसन्न-प्रज्ञावाले हैं, शीघ्र प्रज्ञावाले हैं, तीक्ष्ण प्रज्ञावाले हैं, उनकी प्रज्ञा बींधनेवाली हैं, दूसरे के मत का खण्डन करने वाली है। उन्होंने अपने प्रज्ञा-बल से ही कूटदन्त आदि

ब्राह्मणों का, सहिय आदि परिव्राजकों का, अङ्गुलिमाल आदि चोरों का, आलवक आदि यक्षों का, शक्र आदि देवताओं का, बक आदि ब्रह्माओं का दमन कर उन्हें विनम्र बनाया। उन्होंने बहुत से लोगों को प्रव्रजित कर महाफल में प्रतिष्ठित किया। आयुष्मानो! शास्ता ऐसे महा प्रज्ञावान् हैं।' वे इस प्रकार बैठे शास्ता का गुण-गान कर रहे थे। शास्ता ने आकर पूछा, "भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर, "भिक्षुओं, न केवल अभी तथागत प्रज्ञावान् हैं। पूर्व समय में ज्ञान के परिपक्व न हुए रहने पर भी, बुद्धत्व-प्राप्ति के लिये प्रयत्न-शील रहने की अवस्था में भी प्रज्ञावान् ही थे।" यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख० अतीत कथा

पूर्व समय में मिथिला में वेदेह नाम के राजा के राज्य करने के समय उसके अर्थधर्मानुशासक चार पण्डित थे—सेनक, पुक्कुस, काविन्द तथा देविन्द।

तब राजा ने बोधिसत्व के गर्भ में आने के दिन प्रातःकाल ऐसा स्वप्न देखा। राजाङ्गण के चारों कोनों में चार अग्नि-स्कन्ध। वे बड़ी चारदीवारी जितने ऊंचे उठकर जल रहे थे। उनके बीच में जुगनू के समान अग्नि पैदा हुई। वह उसी क्षण चारों अग्नि-स्कन्धों को लांघकर ब्रह्मलोक तक जा पहुंची और सारे चक्रवाल को प्रकाशित कर दिया। जमीन पर पड़ा सरसों का दाना तक दिखाई देता था। देव-ताओं सहित सारे लोक माला गन्धादि से पूजते थे। जनता आग में ही घूमती थी। किन्तु किसी का रुआं भी गर्म नहीं होता था।

यह स्वप्न देखा तो राजा को डर लगा। वह सोचने लगा कि क्या होगा और इस चिन्ता में ही उसने बैठे बैठे दिन चढ़ा दिया। चारों पण्डितों ने प्रातःकाल ही आकर पूछा—"देव! क्या सुखपूर्वक सोये?" वह बोला—"आचार्यो! मेरे लिये सुख कहाँ है? मैंने ऐसा स्वप्न देखा है।" सेनक पण्डित बोला—"महाराज! डरें नहीं। यह मङ्गल-स्वप्न है। तुम्हारी उन्नति ही होगी।" पूछा—"ऐसा क्यों कहते हो?" बोला—"महाराज! हम चारों पण्डितों को निष्प्रभ कर दूसरा पचवां पण्डित पैदा होगा। हम चारों जने चारों अग्नि-स्कन्ध के समान हैं। बीच में उत्पन्न अग्नि-स्कन्ध के समान पाँचवां पण्डित होगा। देवताओं सहित लोक में वह सबसे निराला होगा।"

"अब वह कहाँ है?"

"महाराज ! या तो उसने आज गर्भ में प्रवेश किया होगा, अथवा माता के गर्भ से बाहर आया होगा।"

ये सारी बातें अपने विद्या-बल से उसने ऐसे बताई, मानो दिव्य-दृष्टि से देखकर कह रहा हो।

इसके बाद राजा ने यह बात याद रक्खी। मिथिला के चारों द्वारों पर प्राचीन यवमज्झक, दक्खिण यवमज्झक. और उत्तर यव मज्झक (आदि) चार निगम थे। उनमें से प्राचीन यव मज्झक में श्रीवर्धन नामका सेठ था। उसकी सुमनादेवी नाम की भार्य्या थी। बोधिसत्व ने उसी दिन, जिस समय राजा ने स्वप्न देखा था, त्रयोत्रिंश भवन से च्युत हो उसकी कोख में प्रवेश किया। और भी हजार देव-पुत्रों ने त्रयोत्रिंश-भवन से च्युत हो उसी गांव में सेठ-अनुसेठों के कुलों में प्रवेश किया।

सुमना देवी ने दस महीने के बीतने पर स्वर्ण-वर्ण पुत्र को जन्म दिया। उस समय शक्र ने मनुष्य-लोक की ओर देखते हुए जाना कि बोधिसत्व ने माता की कोख से जन्म ग्रहण किया है। उसने सोचा कि इस बुद्धाङ्कुर को देवताओं सहित सारे लोक में प्रकट करना उचित है। वह बोधिसत्व के माता की कोख से निकलने के समय अदृश्य रूप में आया और उसके हाथ पर एक जड़ी-बूटी रखकर अपने स्थान को ही चला गया। बोधिसत्व ने उसे मुट्ठी में दबा लिया। उसके माँ की कोख से बाहर आने पर माँ को थोड़ा भी दुःख नहीं हुआ। जल-पात्र से जल बाहर आने की तरह सुख-पूर्वक ही बाहर आया।

माता ने उसके हाथ में जड़ी देखी तो पूछा, "तात ! क्या मिला है ?" "अम्मा औषध है" कहकर वह दिव्यौषध माता के हाथ पर रख दी, और कहा, "माँ, यह औषध लेकर किसी भी रोग के रोगी को दे।" उसने प्रसन्न हो श्रीवर्धन सेठ से यह बात कही। उसके सिर में सात वर्ष से दर्द था। वह प्रसन्न हुआ और सोचने लगा, यह माता के गर्भ से बाहर आने के समय ही औषध लेकर आया है। पैदाइश के समय ही माँ से बातचीत करता है। इस प्रकार के पुण्यवान् द्वारा दी गई औषध बहुत प्रभाव वाली होगी। उसने वह जड़ी ली और पत्थर पर रगड़कर थोड़ी माथे पर लगा ली। सात वर्ष का सिर दर्द कमल के पत्ते से पानी के उड़ जाने की तरह जाता रहा।

उसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि औषध बड़े प्रताप वाली है। बोधिसत्व के औषध लेकर आने की बात सभी जगह प्रकट हो गई। सभी प्रकार के रोगी सेठ के घर पहुँच औषधियां माँगने लगे। सभी को पत्थर पर घिस, थोड़ी ले, पानी में घोल दी

जाती । दिव्य-ओषधि के शरीर पर लगाते ही सारी बीमारी शान्त हो जाती । वे सुखी मनुष्य ओषधि का गुण-गान करते जाते कि श्री वर्धन के घर में की औषधि बड़ी गुणकारक है ।

बोधिसत्व के नाम ग्रहण के दिन महासेठ ने सोचा, मेरे पुत्र के लिये दादा (आदि की परम्परा) का नाम नहीं चाहिये । यह ओषध-नामक ही हो । उसने उसका महोषधकुमार ही नाम रखा । उसके मन में हुआ, मेरा पुत्र महा प्रज्ञावान् है । वह अकेला ही नहीं उत्पन्न हुआ होगा । इसके साथ और भी बच्चे पैदा हुए होंगे । उसने तलाश कराई तो पता लगा कि हजार बच्चे पैदा हुए । उसने सभी को कुमार-अलंकार भिजवाये तथा दाइयां भिजवाईं । 'ये मेरे पुत्र के सेवक होंगे' सोच उसने बोधिसत्व के ही साथ उनका भी मङ्गल-उत्सव कराया । बच्चों को अलंकृत कर बीच-बीच में बोधिसत्व की सेवा में लाया जाता । उनके साथ खेलते हुए बोधिसत्व बढ़कर सात वर्ष की आयु होने पर स्वर्ण-प्रतिमा के समान सुन्दर हो गया । गांव के बीच उनके साथ खेलते समय कभी-कभी हाथी आदि के आ जाने से उनका क्रीड़ा-मण्डल टूट जाता । हवा-धूप के समय बच्चों को कष्ट होता । एक दिन जब वह खेल रहे थे अकाल-मेघ उठ आया । यह देख हाथी के से बलवाला बोधिसत्व भागकर एक शाला में चला गया । दूसरे लड़के भी पीछे दौड़े तो आपस में लड़खड़ाकर उन्होंने अपने घुटने आदि फुड़वा लिये ।

बोधिसत्व ने सोचा, यहां क्रीड़ा-भवन बनना चाहिये । तब कष्ट न होगा । उसने लड़कों से कहा—"हम यहां, हवा, धूप और वर्षा के समय खड़े होने, बैठने और लेटने योग्य एक शाला बनायेंगे । एक एक कार्षापण लाओ ।" उन हजार लड़कों ने वैसा किया । बोधिसत्व ने बड़े बढ़ई को बुलवाया और हजार देकर कहा, "यहां शाला बनाओ ।" उसने 'अच्छा' कह हजार लिये और भूमि को बराबर करवा, खूंटे गड़वाये और धागा खींचा । वह बोधिसत्व के मन की बात नहीं समझा । बोधिसत्व ने उसे धागा खींचने की विधि बताते हुए कहा—"इस प्रकार धागा न खींचकर अच्छी तरह खींचो ।"

"स्वामी ! मैंने अपने शिल्प के अनुसार धागा खींचा । और दूसरी तरह नहीं जानता ।"

"जब तू इतना भी नहीं जानता तो हमारे मन के अनुसार शाला कैसे बनायेगा ? धागा ला । मैं तुझे खींचकर बताऊंगा ।"

उसने धागा मँगवाकर स्वयं खीचा। ऐसा हुआ जैसे विश्व-कर्मा ने धागा खींचा हो। तब बढ़ई से पूछा—

"ऐसे धागा खींच सकेगा ?"

"स्वामी ! नहीं खींच सकूंगा।"

"मेरे विचार के अनुसार बना सकेगा ?"

"स्वामी ! सकूंगा।"

बोधिसत्व ने उस शाला में बाहर की ओर मुँह करके ये सभी स्थान बनाने के लिये कहा, जैसे एक हिस्से में अनाथों के रहने की जगह, एक हिस्से में अनाथ स्त्रियों का प्रसूतिका-गृह, एक हिस्से में आगन्तुक श्रमण-ब्राह्मणों का निवास-स्थान, एक हिस्से में शेष आगन्तुक मनुष्यों का तथा एक हिस्से में आगन्तुक व्यापारियों के लिये सामान रखने की जगह। उसने वहीं क्रीड़ा-भवन, वहीं न्यायालय तथा वहीं धर्म-सभा का स्थान बनवाया। शाला के कुछ ही दिन में बनकर समाप्त होने पर उसने चित्रकारों को बुलवा, स्वयं विचारकर रमणीय चित्र बनवाये। शाला इन्द्र की सुधर्मा सभा के (भवन के) समान हो गई। तब यह सोच कि इतने से ही शाला की शोभा नहीं है, पुष्करिणी भी बनवानी चाहिये, उसने पुष्करिणी खुदवाई ओर कारीगर को बुलवाकर अपनी ही योजना के अनुसार बनवाई देकर, हजार जगह टेढ़ी और सौ तीर्थोंवाली पुष्करिणी बनवाई। पाँच प्रकार के कमलों से आच्छादित वह पुष्करिणी नन्दन-वन के समान शोभा देती थी। उसके किनारे नाना प्रकार के फूलों और फलों वाले पेड़ लगवाकर नन्दनवन सदृश उद्यान लगवाया। उसी शाला के निमित्त धार्मिक श्रमण-ब्राह्मण ओर आगन्तुक मुसाफिरों आदि के लिये दान-परम्परा चालू की।

उसकी वह करनी सर्वत्र ज्ञात हो गई। बहुत मनुष्य आने लगे। बोधिसत्व शाला में बैठ आनेवालेलोंको उचित-अनुचित योग्य अयोग्य समझाता। झगड़ों का निर्णय देता। बुद्ध के समय जैसा समय हो गया। उस समय विदेह राजाको याद आया कि सात वर्ष पहले चारों पण्डितों ने कहा था कि हमें परास्त कर पाँचवां पण्डित होगा। वह सोचने लगा कि वह इस समय कहां होगा ? उसने चारों द्वारों से चारों पण्डितों को भेजा कि उसके निवासस्थान का पता लगायें। शेष द्वारों से गये पण्डितों को बोधिसत्व दिखाई नहीं दिया। पूर्व-द्वार की ओर से जो पण्डित निकला था उसने शाला आदि को देखकर सोचा कि इस शाला को बनानेवाला अथवा बनवाने

वाला कोई पण्डित होगा। उसने मनुष्यों से पूछा—"यह शाला किस बढ़ई ने बनाई है?" मनुष्यों ने उत्तर दिया, "यह शाला बढ़ई ने अपनी बुद्धि से नहीं बनाई। यह श्रीवर्धन सेठ के महौषध पण्डित नाम के पुत्र के विचारानुसार बनाई गई है।"

"पण्डित कितने वर्ष का है?"

"पूरे सात वर्ष का है।"

अमात्य ने राजा के स्वप्न देखने के दिन से गिनती करके देखा कि राजा के स्वप्न से मेल बैठता है। उसने राजा के पास दूत भेजा—"देव! प्राचीन यवमज्झक ग्राम में श्रीवर्धन सेठ के सात वर्ष का महौषध पण्डित नामका पुत्र ने ऐसी शाला बनवाई है, ऐसी पुष्करिणी बनवाई है और ऐसा उद्यान बनवाया है। इस पण्डित को लेकर आऊँ अथवा न आऊँ?"

राजा ने सुना तो प्रसन्न हुआ। उसने सेनक पण्डित को बुलवा और वह बात बताकर पूछा—"सेनक! क्या पण्डित को मंगवायें?" उसने ईर्षा के वशीभूत हो उत्तर दिया—"महाराज! शाला आँदि बनवाने मात्र से ही पण्डित नहीं होता। जो कोई यह सब बनवाता है, यह बड़ी बात नहीं है।" उसने उसकी बात सुनी तो सोचा, इसमें कुछ न कुछ बात होगी ही, और चुप हो रहा। उसने दूत को अमात्य के पास वापिस भेजा कि वहीं रहकर पण्डित की परीक्षा करे। यह परीक्षा-विधि की गाथा है—

> **मंसं गोणो गण्ठि सुत्तं पुत्तो गोणरथेन च,**
> **दण्डो सीसं अहीचेव कुक्कुटो मणि विजायनं,**
> **ओदनं वालुकञ्चापि तलाकुय्यानं गद्रभो मणि॥१॥**

मांस की बात। एक दिन जब बोधिसत्व क्रीड़ा-मण्डल में जा रहा था एक बाज़ कसाई के तख्ते पर से माँस का टुकड़ा ले आकाश में उड़ गया। यह देख लड़के मांस का टुकड़ा छुड़ाने के लिये बाज़ के पीछे भागे। बाज भी जहाँ-तहाँ भागने लगा। वे ऊपर देख देख उसके पीछे भागते भागते पत्थरों आदि पर लड़खड़ा कर कष्ट पा रहे थे। पण्डित ने कहा—"उसे छुड़ाऊं?" "स्वामी! छुड़ायें।" "तो देखो।" उसने बिना ऊपर देखे ही, वायु-वेग से दौड़, बाज़ की छाया पर पहुँच, जोर की आवाज की। उसके प्रताप से वह आवाज बाज की कोख को बींधकर बाहर आई जैसी हुई। उसने डर के मारे मांस छोड़ दिया। बोधिसत्व को जब यह पता लगा कि बाज ने मांस छोड़ दिया तो छाया की ओर ही देखते हुए उसे जमीन पर गिरने न देकर

आकाश में ही रोक लिया। यह आश्चर्य देख जनता ने तालियाँ पीटते हुए बहुत हल्ला मचाया। अमात्य ने यह समाचार जान राजा के पास संदेशा भेजा—"पण्डित ने इस उपाय से माँस का टुकड़ा छुड़ाया। देव! यह बात जानें!" राजा ने यह बात सुनकर सेवन से पूछा—"सेवन! क्या पण्डित को मंगवायें?" वह सोचने लगा—"उसके यहाँ आने पर तो हम निष्प्रभ हो जायेंगे। राजा यह भी नहीं जानेगा कि हम हैं भी वा नहीं? उसे आने नहीं देना चाहिये।" उसने ईर्षावश कहा—"महाराज! इतने से कोई पण्डित नहीं होता। यह तो मामूली बात है।" राजा ने उपेक्षा-भाव से वापिस संदेस भिजवाया कि वहीं उसकी परीक्षा ली जाय।

बैल की बात। प्राचीन यव-मझक ग्रामवासी एक आदमी 'वर्षा होने पर हल चलाऊंगा' सोच एक दूसरे गाँव से बैल खरीद लाया। रात भर घर में रख अगले दिन चरने के लिये घास के मैदान में ले गया। बैल की पीठ पर बैठे बैठे जब वह थक गया तो उतरकर एक पेड़ की छाया में जा बैठा। उसे बैठे बैठे नींद आ गई। उसी समय एक चोर बैलों को ले भागा। उसकी आँख खुली तो उसने बैलों को नहीं देखा। इधर-उधर ढूँढ़ने पर उसे बैल लेकर भागनेवाला चोर दिखाई दिया। उसने भागकर उसे पकड़ा और पूछा—"मेरे बैलों को कहाँ लिये जा रहा है?" "अपने बैलों को जहाँ मेरी इच्छा है, वहाँ ले जाता हूँ।" उनका विवाद सुन लोग इकट्ठे हो गये। उनके शाला-द्वार के पास से गुजरते समय उनकी आवाज सुन पण्डित ने उन्हें बुलवाया और उनका व्यवहार देखकर ही यह जान लिया कि यह चोर है और यह मालिक है। जानते हुए भी पूछा—"क्यों झगड़ते हो?" बैलों के मालिक ने कहा—"मैं इन्हें अमुक गाँव से अमुक आदमी से खरीदकर लाया और घर में रख-कर घास के मैदान में ले गया। वहाँ मेरा प्रमाद देख यह बैलों को लेकर भागा। मैंने इधर-उधर ढूंढ़ते हुए इसे देख भागकर पकड़ा, अमुक गाँव के लोग जानते हैं कि मैंने इन्हें खरीदा है।" चोर बोला—"ये मेरे घर पैदा हुए हैं। यह झूठ बोलता है।" तब पण्डित ने पूछा—"मैं तुम्हारा न्याय करूंगा। तुम मेरे फैसले को स्वीकार करोगे?" "स्वीकार करेंगे।"

पण्डित ने सोचा कि जनता को भी विश्वास कराना चाहिये, इसलिये उसने पहले चोर से प्रश्न किया—

"तूने इन बैलों को क्या खिलाया, क्या पिलाया?"

"यवागु पिलाया, तिल के लड्डू और उड़द खिलाये।"

तब बैलों के मालिक से पूछा। उसका उत्तर था—

"स्वामी! मुझ गरीब के पास यवागु आदि कहाँ? घास खिलाया है।"

पण्डित ने जनता का ध्यान उनके इस कथन की ओर आकर्षित किया और राई के पत्ते मंगवा, ऊखल में कुटवा, बैलों को पिलाये। बैलों ने तिनके ही बाहर किये। पण्डित ने जनता को कहा, यह देखें और चोर से प्रश्न किया—

"तू चोर है अथवा नहीं है?"

"चोर हूँ।"

"तो अब से ऐसा काम न करना।"

किन्तु बोधिसत्व के आदमियों ने उसे ले जाकर मुक्कों और ठोकरों से मार-पीटकर दुर्बल कर दिया। तब पण्डित ने उसे बुलाकर उपदेश दिया—"इसी जन्म में तुझे यह फल मिला है। परलोक में तो बहुत दुःख भोगेगा। अब से यह काम छोड़ दे।"

उसने उसे पांच शील दिये। अमात्य ने राजा को ज्यों का त्यों वह समाचार भिजवाया। राजा ने सेनक से पूछा। बोला—"महाराज! बैलों का मुकद्दमा कोई भी फैसला कर सकता है। अभी प्रतीक्षा करें।" राजा ने उपेक्षवान् हो, फिर वैसा ही संदेश भिजवाया। (इसी प्रकार सभी विषयों में जानना चाहिये। अब इससे आगे घटना मात्र का वर्णन करेंगे।)

कण्ठी की बात। एक गरीब स्त्री नाना रंगों के धागों को गठियाकर बनी सूत की कण्ठी को गले से उतार, कपड़े के ऊपर रख, पण्डित द्वारा बनवाई पुष्करिणी में स्नान करने के लिये उतरी। एक दूसरी तरुण स्त्री ने उसे देखा तो उसके मन में लोभ आ गया। उसने इसे उठाया और बोली—"अम्मा! यह बहुत ही सुन्दर है। कितने में बनी है? मैं भी अपने लिये ऐसा बनाऊँगी। इसे जरा गर्दन में पहनकर इसका माप लूं?" उस सरल स्त्री ने जवाब दिया—"पहन ले।" वह उसे पहनकर चल दी। दूसरी ने देखा तो जल्दी से निकली और वस्त्र पहन, दौड़कर उसके कपड़े पकड़ लिये—"मेरी कण्ठी लेकर कहां भागी जा रही है?" दूसरी ने उत्तर दिया—"मैंने तेरी कण्ठी नहीं ली। मेरी गरदन में मेरी कण्ठी है।" यह सुन जनता इकट्ठी हो गई। लड़कों के साथ खेलते हुए पण्डित ने झगड़ते हुए शाला-द्वार से जाते हुए उनकी आवाज सुनी। पूछा—"यह क्या आवाज है?" उसे दोनों के झग-

ड़ने की बात मालूम हुई। उसने उन्हें बुलवाया और उनके आकार से ही जान लिया कि उनमें से कौन सी चोरिणी है और कौन सी अचोरिणी। तो भी उसने उनसे झगड़े की बात पूछकर प्रश्न किया कि क्या मेरे फैसले को स्वीकार करोगी? उनका उत्तर था—"स्वामी! हाँ।" तब उसने पहले चोरिणी से पूछा—"तू जब यह कण्ठी पहनती है? तो कौन सी सुगन्धि लगाती है?" "मैं नित्य सर्व-संहारक सुगन्धि लगाती हूँ।" सर्व-संहारक गन्ध कहते हैं सभी सुगन्धियों को मिलाकर बनाई सुगन्धि को। तब दूसरी से प्रश्न किया। उसका उत्तर था—"मुझ गरीब के पास कहाँ सर्व संहारक सुगन्धि। मैं नित्य राई के फूलों की सुगन्धि का ही लेप करती हूँ।" पण्डित ने पानी की थाली मंगवाई और उस कण्ठी को उसमें डलवा दिया और फिर गन्धी को बुलाकर कहा—"इस थाली को सूंघकर पता लगा कि अमुक गन्ध है।" उसने सूंघकर पता लगाया कि यह राई के फूलों की गन्ध है और एकक निपात (?) में आई यह गाथा कही—

सब्बसंहारको नत्थि सुद्धं कंगु पवायति,
अलीकं भासतयं धुत्ती सच्चमाहु महल्लिका ॥२॥

[सर्व संहारक नहीं है। शुद्ध राई है। यह धूर्ती झूठ बोलती है। बुढ़िया सच कहती है ॥२॥]

बोधिसत्व ने जनता को यह बात जताकर उसे पूछा—"तू चोरिणी है अथवा नहीं है।" इस प्रकार उसने उससे चोरिणी होना स्वीकार करवाया। तब से बोधिसत्व का पाण्डित्य सारी जनता में प्रसिद्ध हो गया।

सूत की बात। कपास के खेत की रखवाली करनेवाली एक स्त्री ने खेत की रखवाली करते समय ही, वहीं से साफ कपास ले, बारीक सूत कात, गोला बनाकर अपने पल्ले में रखा। फिर गांव आते समय पण्डित की बनवाई पुष्करिणी में नहाने के लिये वस्त्र के ऊपर सूत का गोला रख नहाने के लिये उतरी। दूसरी स्त्री ने उसे देखा तो उसके मन में लोभ आ गया। उसने उसे लिया और "अम्मा! तूने अच्छा सूत काता है, कह आश्चर्य प्रकट करते हुए उसे पल्ले में डालकर चल दी। इससे आगे की कथा पूर्ववत् ही कही जानी चाहिये। पण्डित ने चोरिणी से पूछा—"तूने गोला बनाते समय अन्दर क्या रखा था? "स्वामी! बिनौला।" उसने दूसरी से पूछा—"स्वामी! तिम्बरू का बीज।" उसने दोनों के कथन की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया और सूत के गोले को उधेड़, तिम्बरू का बीज देख उससे

उसका चोरिणी होना स्वीकार कराया। जनता ने प्रसन्न हो हजारों साधुकार दिये कि मुकद्दमे का ठीक निर्णय हुआ।

पुत्र की बात। एक स्त्री पुत्र को लेकर मुँह धोने के लिये पण्डित की पुष्करिणी पर पहुँची। उसने पुत्र को नहलाया और अपने वस्त्र पर बिठा, मुंह धोकर स्नान करने के लिये उतरी। उसी समय एक यक्षिणी उस बच्चे को देख खाने की इच्छा से स्त्री का वेष बना वहाँ पहुंची और पूछा—"सखी! बच्चा सुन्दर है। यह तेरा बच्चा है?" "अम्मा! हाँ।" "मैं इसे दूध पिलाऊँ?" "पिला", कहने पर उसे ले, थोड़ी देर खिलाकर, लेकर भागने लगी। दूसरी ने यह देखा तो दौड़कर उसे पकड़ा— "मेरे पुत्र को कहाँ ले जाती है?" यक्षिणी बोली—"तेरा पुत्र कहां से आया? यह मेरा पुत्र है।" वे दोनों झगड़ती हुई शाला के सामने से जा रही थीं। पण्डित ने झगड़ा सुना तो उन्हें बुलाकर पूछा—"यह क्या है?" उसे झगड़े का कारण मालूम हुआ। उसने आंखों के न झपकने से और उनके लाल होने से यक्षिणी को यक्षिणी जान लिया। तो भी पूछा—"मेरे फैसले को स्वीकार करोगी?" "हां स्वीकार करेंगी" कहने पर उसने लकीर खींची और बच्चे को लकीर के बीच लिटाकर यक्षिणी को हाथ और मां को पांव पकड़ाकर कहा—"दोनों खींचो। जो खींच-कर ले जायगी, उसी का पुत्र।" उन दोनो ने खींचा। बच्चा खींचे जाने पर तकलीफ के मारे चिल्ला पड़ा। माँ को ऐसा हुआ जैसे कि उसका हृदय फट गया हो। वह बच्चे को छोड़ एक ओर खड़ी हो रोने लगी। पण्डित ने लोगों से पूछा— "बच्चे के प्रति माता का हृदय कोमल होता है अथवा अमाता का?" "पण्डित! माता का हृदय।" "अब क्या जो यह बच्चे को लेकर खड़ी है वह माता है अथवा जिसने बच्चे को छोड़ दिया है, वह माता है?" "पण्डित! जिसने बच्चे को छोड़ दिया।" "इस बच्चे को चुरानेवाली को तुम पहचानते हो?" "पण्डित! हम नहीं पहचानते हैं।" "यह यक्षिणी है, इसने बच्चे को खाने के लिये लिया था।" पण्डित! यह तुमने कैसे जाना?" "इसकी आंखें नहीं झपकतीं, इसकी आंखों लाल हैं, इसकी छाया नहीं है, यह संकोच-रहित है और यह निर्दय है।" "तब उससे पूछा—"तू कौन है?'

"स्वामी! मैं यक्षिणी हूँ।"

"अन्ध बाले! पहले भी पाप करके यक्षिणी हुई। अब फिर भी पाप कर रही है। ओह! तू कितनी मूर्ख है।"

इस प्रकार उसे पांच शीलों में प्रतिष्ठित कर प्रेरित किया। बच्चे की मां, "स्वामी! चिरकाल तक जीये' कह पण्डित की स्तुति कर पुत्र को लेकर गई।

गोलरथ की बात। गोल से और रथ से। कुबड़ा होने से गोल और काला होने से काल, इस प्रकार गोलकाल नामका एक आदमी था। उसने सात वर्ष घर में काम करके भार्य्या प्राप्त की। वह नाम से दीर्घ-ताड़ नाम की थी। एक दिन उसने उसे बुलाकर कहा—"भद्रे! पूए पका। माता-पिता को देखने जायेंगे।" उसने तीन बार मना किया—"तुझे माता पिता से क्या?" उसके मना करने पर भी उसने उसे तीन बार कह, पूए पकवा, पाथेय और भेंट ली और उसे साथ ले रास्ते पर निकल पड़ा। रास्ते में एक छिछली नदी दिखाई दी। वे दोनों जने पानी से डरनेवाले थे। इसलिये उस नदी को पार करने की हिम्मत न कर किनारे पर ही खड़े रहे। तब दीर्घ-पीठ नामका एक मनुष्य नदी के तट पर घूमता-घूमता वहाँ आ पहुंचा। उन्होंने उसे देख पूछा—"मित्र! यह नदी गहरी है अथवा छिछली?" यह समझ कि ये पानी से डरनेवाले हैं उसने उत्तर दिया—"बहुत गहरी। प्रचण्ड मच्छोंवाली।" "मित्र! तू कैसे जायेगा?" "यहां के मगर-मच्छों का हमसे परिचय है। इसलिये हमें कष्ट नहीं देते।" वे बोले—"तो हमें भी ले चल।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उन्होंने उसे खाद्य-भोज्य सामग्री दी। खाना खा चुकने पर उसने पूछा—"मित्र! पहले किसे ले चलूं?"

"अपनी सखी को ले जा। मुझे पीछे ले चलना।"

उसने 'अच्छा' कहा और उसे कन्धे पर बिठाया तथा सारा पाथेय और भेंट भी लेकर नदी में उतरा। थोड़ी दूर चलकर वह उकड़ूँ बैठा और उसी तरह उस पार चला गया। गोलकाल किनारे पर खड़ा ही खड़ा सोचने लगा—'कितनी गहरी है यह नदी! इतने लम्बे आदमी का भी यह हाल है। मेरे लिये तो असह्य होगी।' दूसरे ने भी नदी के बीच पहुंचने पर कहा, "भद्रे! मैं तेरा पालन-पोषण करूंगा। वस्त्र, अलंकार, दास-दासी से घिरी रहेगी। यह बौना तेरे लिये क्या कर सकेगा? मेरा कहना मान।" उसने उसकी बात सुनी तो अपने स्वामी का ममत्व छोड़ उसी समय उसमें आसक्त हो उसकी बात मान ली और बोली—"स्वामी। यदि मुझे नहीं छोड़ोगे तो तुम्हारा कहना करूंगी।" दूसरे तटपर पहुंच वे दोनों ही गोलकाल को छोड़, 'पड़ा रह तू यहीं' कह, उसके देखते हुए ही खाते-पीते चले गये। उसने देखा तो सोचा "मालूम होता है, ये दोनों मिलकर मुझे छोड़कर भागे जा रहे हैं।

वह इधर-उधर भागा, थोड़ा नदी में उतरा और भय के मारे रुका। फिर उसे क्रोध आया। उसने सोचा—चाहे जीऊं, चाहे मरूं और नदी में उतर पड़ा। तब नदी को छिछली पा, वह उस पार गया और जल्दी से भाग कर उसे जा पकड़ा और पूछा—"रे दुष्ट! मेरी भार्य्या को कहां लिये जा रहा है?" दूसरे ने भी उसे गरदन से पकड़ धक्का देते हुए कहा—"अरे दुष्ट बौने! यह तेरी भार्य्या कहाँ से आई? यह मेरी भार्य्या है।" उसने दीर्घ-ताड़ को हाथ से पकड़ा और बोला, "ठहर कहाँ जाती है। सात वर्ष तक घर में काम करके प्राप्त की हुई तू मेरी भार्य्या है।" वह उसके साथ झगड़ते हुए शाला के पास आ पहुँचा। जनता इकट्ठी हो गई। बोधिसत्व ने 'यह क्या हल्ला है?' पूछ, उन दोनों जनों को बुला, उनका उत्तर-प्रत्युत्तर सुन पूछा, "मेरा निर्णय स्वीकार करोगे?" "स्वीकार करेंगे" कहने पर पहले दीर्घ-पीठ को बुलवाकर पूछा—"तेरा क्या नाम है?"

"स्वामी! मेरा नाम दीर्घ-पीठ है।"

"तेरी भार्य्या का क्या नाम है?"

उसे उसका नाम मालूम नहीं था। इसलिये उसने दूसरा नाम बताया। "तेरे माता-पिता का क्या नाम है?"

"अमुक नाम।"

"तेरी भार्य्या के माता-पिता का क्या नाम है?"

उसे उनका नाम मालूम नहीं था, इसलिये दूसरा नाम बताया। उसने उसके कथन की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया और उसे दूर भेज दूसरे को बुलवा पूर्व-प्रकार से ही सभी के नाम पूछे। उसने ठीक-ठीक जानने के कारण ठीक-ठीक बता दिये। उसे भी दूर भेज, दीर्घ-ताड़ को बुलाकर पूछा—

"तेरा क्या नाम है?"

"स्वामी! मेरा नाम दीर्घ-ताड़ है।"

"तेरे स्वामी का क्या नाम है?"

उसने न जानने के कारण कुछ और बता दिया। पूछा—'तेरे माता-पिता का क्या नाम है?" उसने ठीक-ठीक बता दिया। "तेरे स्वामी के माता-पिता का क्या नाम है?" उसने बकवास करते हुए कुछ दूसरे ही नाम बताये। पण्डित ने शेष दोनों को बुलवा जनता में पूछा—'इसका कहना दीर्घ-पीठ के कहने से मेल खाता है अथवा गोलकाल के कथन के साथ?"

"पण्डित ! गोलकाल के कथन के साथ ।"

यह इसका स्वामी है, दूसरा चोर है, कह, उसे पूछ कर उसका चोर होना मनवाया ।

रथ की बात । एक आदमी रथ में बैठकर मुँह धोने के लिये निकला । उस समय शक्र ने विचार करते हुए संकल्प किया कि बुद्धांकुर महोषध पण्डित के प्रज्ञा-प्रताप को प्रकट करूँगा । उसने आदमी का रूप बनाया और रथ का पिछला हिस्सा पकड़ दौड़ने लगा । रथ में बैठे आदमी ने पूछा, "तात ! क्यों आया है ?" "तुम्हारी सेवा करने के लिये" उसने 'अच्छा,' कह स्वीकार किया और रथ से उतर शारीरिक-कृत्य करने के लिये गया । उसी समय शक्र ने रथ में बैठ उसे जोर से हांक दिया । रथ का मालिक शारीरिक-कृत्य समाप्त कर आया तो उसने शक्र को रथ लिये जाता देखा । उसने जल्दी से जा उसे टोका—"रुक रुक । मेरा रथ कहाँ लिये जा रहा है ?"

"तेरा रथ दूसरा होगा । यह तो मेरा रथ है ।"

वह उसके झगड़ते हुए शाला-द्वार पर आ पहुँचा । पण्डित ने 'यह क्या है ?' जानने के लिये उसे बुलवाया । उसे आते देख, उसकी निर्भयता से तथा उसकी आँखों में पलक न होने से वह जान गया कि यह 'शक्र' है और यह रथ-स्वामी है । ऐसा होने पर उसने झगड़े का कारण पूछकर प्रश्न किया—"मेरे निर्णय को स्वीकार करोगे ?" "हां स्वीकार करेंगे" कहने पर कहा—"मैं रथ को हांकता हूँ । तुम दोनों रथ को पीछे से पकड़कर आओ । जो रथ का स्वामी होगा, वह रथ नहीं छोड़ेगा, दूसरा छोड़ेगा ।" यह कह उसने अपने आदमी को आज्ञा दी कि रथ हाँको । उसने वैसा ही किया । दोनों जने पीछे से रथ को पकड़े चले । रथ का मालिक थोड़ी दूर जाकर, दौड़ न सकने के कारण, रथ को छोड़ खड़ा हो गया । शक्र रथ के साथ दौड़ता ही चला गया । पण्डित ने रथ रुकवा आदमियों को कहा—"यह आदमी थोड़ी दूर जाकर रथ को छोड़ खड़ा हो गया । लेकिन यह रथ के साथ दौड़ता हुआ रथ के साथ ही रुका । इसके शरीर में पसीने की बूँद भी नहीं है । न साँस ही चढ़ा है । यह निर्भय है । इसकी पलकें भी नहीं है । यह देवेन्द्र शक्र है ।" तब उसने उसे पूछा—

"क्या तू देव-राजा है ?"

"किसलिये आया ?"

"पण्डित। तेरी ही प्रज्ञा को प्रसिद्ध करने के लिये।"

"तो फिर ऐसा न करना।"

शक्र ने शक्र-प्रताप दिखाया और फिर आकाश में स्थित हो पण्डित की स्तुति की कि मुकद्दमे का ठीक निर्णय किया और अपने निवास-स्थान को चला गया।

तब उस अमात्य ने स्वयं ही राजा के पास जाकर कहा—"महाराज! पण्डित ने इस प्रकार रथ के झगड़े का निर्णय किया। उसने शक्र को भी पराजित कर दिया। आप पुरुष-विशेष का परिचय क्यों नहीं प्राप्त करते ?" राजा ने सेनक से पूछा—"क्यों सेनक पंडित को मंगवायें ?" महाराज इतने से ही पण्डित नहीं होते। अभी सबर करें। परीक्षा करके जानेंगे।"

सात बाल-प्रश्न समाप्त

दण्ड की बात। एक दिन पण्डित की परीक्षा लेने के लिये खदिर की लकड़ी मंगवाई और उसमें से बालिश्त भर काट कर लकड़ी खरादनेवाले से अच्छी तरह खरदवाकर प्राचीन यवमज्झक गांव भेजी।—"यवाज्झग्रामवासी पण्डित हैं। इस लकड़ी की जड़ और सिरे का पता लगायें। यदि नहीं बता सकेंगे तो हज़ार दण्ड देना होगा।" ग्रामवासी इकट्ठे हुए। जब उन्होंने देखा कि वे पता नहीं लगा सकते तो उन्होंने सेठ को कहा—"शायद महौषध पण्डित जान सके। उसे बुलाकर पूछें।" सेठ ने पण्डित को क्रीड़ा-मण्डल में से बुलवाया और वह बात बताकर पूछा—"तात। हम नहीं जान सके। तू बता सकेगा ?" यह बात सुनी तो पण्डित ने सोचा—"राजा को इसके सिरे या जड़ से काम नहीं है। मेरी परीक्षा लेने के लिये ही भेजा होगा।" 'यह सोच कहा— तात लायें। बताऊँगा।' उसने यद्यपि हाथ में लेते ही जान लिया कि यह सिरा है और यह जड़ है, तो भी जनता को विश्वास दिलाने के लिये पानी की थाली मंगवाई। फिर खदिर की लकड़ी को बीच में सूत से बाँधकर, सूत का सिरा हाथ में ले खदिर की लकड़ी को पानी की सतह पर रखा। जड़ भारी होने से जल में पहले डूबी। तब जनता से पूछा—"वृक्ष की जड़ भारी होती है वा सिरा!" "पण्डित! जड़।" "तो इसका पहले डूबा सिरा देखो, यही जड़ है।" इस प्रज्ञा से उसने जड़ और सिरा बता दिया। ग्रामवासियों ने भी राजा को कहला भेजा—'यह सिरा है और यह जड़ है ?' राजा ने सुना तो प्रसन्न हुआ और पूछवाया—

"इसका पता किसने लगाया ?' उत्तर मिला—"श्रीवर्धन सेठ के पुत्र महोषध पण्डित ने।" तब राजा ने सेनक से पूछा—"क्या उसे मंगवायें ?" "देव ! सबर करें। दूसरे ढंग से भी परीक्षा लेंगे।"

सिर की बात। एक दिन एक स्त्री का और दूसरा पुरुष का सिर मंगवाकर दो सिर भेजे गये—पता लगाओ कि कौन सा स्त्री का सिर है. और कौन सा पुरुष का ? पता न लगा सकने पर हज़ार दण्ड। ग्रामवासियों को पता नहीं लगा। उन्होंने बोधिसत्व से पूछा। उसे देखते ही पता लग गया। पुरुष के सिर की सीवन (?) सीधी होती है और स्त्री के सिर की सीवन टेढ़ी घूमकर जाती है। इस ज्ञान से उसने बता दिया कि यह स्त्री का सिर है और यह पुरुष का सिर है। ग्राम-वासियों ने राजा को कहला भेजा। शेष कथा पूर्ववत्।

सर्प की बात। एक दिन सांप और सर्पिनी भिजवाई। बतायें कि कौन सा सांप है और कौन सी सर्पिनी। ग्रामवासियों ने पण्डित से पूछा। उसने देखते ही जान लिया। सांप की पूंछ मोटी होती है, सर्पिनी की पतली। साप का सिर मोटा होता है, सर्पिनी की लम्बी। सांप की आंखें बड़ी बड़ी होती है, सर्पिनी की छोटी और सांप का स्वस्तिक (?) बंधा हुआ होता है, सर्पिनी का बिखरा हुआ। उसने इस ज्ञान से यह सर्प है और यह सर्पिनी है, बता दिया। शेष पूर्वोक्त प्रकार ही।

मुर्गे की बात। एक दिन आज्ञा आई की प्राचीनयवमज्झक ग्रामवासी हमारे पास एक बैल भेजें जो सर्वथा श्वेत हो, जिसके पैरों में सींग हों और जिसके सिर पर कूबड़ हो और जो नियम से तीन बार आवाज लगाता हो। यदि नहीं भेजेंगे तो हजार का दण्ड। जान न सकने के कारण पण्डित से पूछा गया। उसने उत्तर दिया—"राजा सर्वश्वेत मुर्गा मंगवा रहा है। इसके पांव में नाखून होते हैं, इसलिये वह पांव में सींगवाला कहलाता है, सिर पर कलग़ी होने से वह सिर पर कूबड़वाला कहलाता है और तीन बार बांग देने से तीन बार नियम से आवाज लगाने वाला कहलाता हैं। इसलिये ऐसा मुर्गा भेजो।" उन्होंने भेज दिया।

मणी की बात। शक्र द्वारा कुश नरेश को दिया गया मणि-स्कन्ध आठ जगहों से टेढ़ा था। उसका धागा पुराना हो गया था। कोई भी पुराने सूत को निकालकर नया न पुरो सकता था। एक दिन आज्ञा आई—"इस मणि में से पुराना धागा निकाल-कर नया पिरोयें।" ग्रामवासी न पुराना निकाल सके और न नया पिरो सके। अस-मर्थ होने पर पण्डित से कहा। उसका उत्तर था—"चिन्ता न करो। उसने 'मधु-

बिन्दु लाओ' कहकर मधु-बिन्दु मंगवाया। फिर मणि के दोनों किनारों के छेदों पर थोड़ा-थोड़ा मधु लगा, कम्बल का धागा बांट, सिरे पर मधु लगा, थोड़ा सा सिरा छेद में घुमा, चींटियों के निकलने की जगह ले जाकर रखा। चींटियां मधु-गन्ध से खिचकर बिल से बाहर निकलीं, मणि का पुराना धागा खाती हुई गई। उन्होंने कम्बल के धागे का सिरा लिया और उसे खींचती हुई दूसरे सिरे से निकलीं। पण्डित ने जब जाना कि धागा पिरोया गया तो उसने मणि गांव वालों को दी कि राजा को दे दें। उन्होंने राजा के पास भेज दी। राजा ने धागा डालने का उपाय सुना तो प्रसन्न हुआ।

जनने की बात। एक दिन, राजा के मङ्गल वृषभ को बहुत महीनों तक खिला-कर, महोदर करके, उसके सींग धोकर और उनमें तेल लगा, हल्दी से स्नान करा, प्राचीन यवमज्झक ग्रामवासियों के पास भेजा—"तुम लोग पण्डित हो। राजा के इस मङ्गल-वृषभ को गर्भ ठहर गया है। इसको जनवाकर बछड़े सहित भेजो। न भेज सकने पर हजार का दण्ड।" ग्रामवासियों ने पण्डित से पूछा—"यह तो कर नहीं सकते। क्या करें?" उसने सोचा यह प्रत्युत्तर देने की बात होगी और लोगों से पूछा—"क्या आपको कोई ऐसा आदमी मिल सकता है जो चतुर हो और राजा के साथ बातचीत कर सके?"

"पण्डित! यह भारी बात नहीं है।"

"तो उसे बुलवाओ।" उन्होंने उसे बुलवाया। बोधिसत्व ने कहा, "हे आदमी! यहां आ। अपने बालों को पीठपर बखेरकर, नाना प्रकार का विलाप करता हुआ राज द्वार पर जा। औरों के पूछने पर बिना कुछ कहे रोते रहना। जब राजा बुला कर विलाप का कारण पूछे तो कहना, "देव! मेरा पिता जन नहीं सक रहा है। आज सातवां दिन है। मुझे अपनी शरण में लें और ऐसा उपाय बतायें जिससे वह जन सकें।" जब राजा कहे कि क्या बकवास कर रहा है, यह कहीं हो सकता है कि पुरुष जनें, तो कहना—"देव! यदि यह सत्य है तो प्राचीनयवग्रामवासी लोग कैसे बैल को जनायेंगे?" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और वैसा ही किया। राजा ने पूछा—"यह प्रत्युत्तर किसने सोचा?" जब सुना कि महोषध पण्डित ने तो राजा प्रसन्न हुआ।

भात की बात। फिर एक दिन पण्डित की परीक्षा लेने के लिये आज्ञा हुई—प्राचीन यवमज्झक ग्रामवासी हमारे पास आठ अङ्गों से परिपूर्ण आम्ल-भात पकवा

कर भेजें। आठ अङ्ग ये हैं—न चावल हों, न पानी डाला जाय, न ऊखली में कूटे जायें, न चुल्हे पर पकाये जायें, न आग से पकायें जायें, न लकड़ी से पकायें जायें, न स्त्री द्वारा पकाये जायें, न पुरुष द्वारा पकायें जायें और न रास्ते से लाये जायें। न भेजने पर हजार का दण्ड। ग्रामवासियों ने यह बात न समझ सकने के कारण पण्डित से पूछी। उसने कहा—"चिन्ता न करो। "चावल नहीं' का मतलब है कि (चावल की) कणियां हों, 'पानी नहीं' का मतलब है, बरफ लो, 'उखल नहीं' का मतलब है, दूसरा मिट्टी का बरतन लो, 'चूल्हा नहीं' का मतलब ठूंठ खुदवाकर, 'आग नहीं' का मतलब है स्वाभाविक आग छोड़ अरणी-अग्नि मंगवाकर, 'लकड़ी नहीं' का मतलब है पत्ते मंगवाकर अम्ल भात-पकवाकर, नये बरतन में डाल, मुहर लगा, 'न स्त्री और न पुरुष से' का मतलब है कि हिजड़े से उठवाकर, और 'न रास्ते से' का मतलब है कि महा-मार्ग छोड़कर पग-डण्डी से राजा के पास भेजो।" उन्होंने वैसा ही किया। राजा ने पूछा—"यह प्रश्न किसने जाना?" "महोषध पण्डित ने" सुन राजा बहुत प्रसन्न हुआ।

बालु की बात। फिर एक दिन पण्डित की ही परीक्षा लेने के लिए ग्रामवासियों के पास आज्ञा भिजवाई—राजा डोले में झूलना चाहता है। राजकुल की पुरानी बालू की रस्सी सड़ गई। बालू की एक रस्सी बांटकर भेज दें। न भेज सकने पर हजार दण्ड। न जानने के कारण उन्होंने पण्डित से पूछा। पण्डित ने सोचा—यह भी प्रति-प्रश्न पूछने की ही बात होनी चाहिये। उसने ग्रामवासियों को आश्वस्त कर, बातचीत करने में कुशल दो तीन आदमियों को बुलाकर कहा—"जाओ, राजा से कहो, देव! गांव के लोग नहीं जानते कि वह रस्सी कितनी पतली अथवा मोटी है। पुरानी बालू की रस्सी से बालिश्त भर अथवा चार अङ्गुल भर रस्सी का टुकड़ा भेज दें। उसे देख उसी के अंदाज से रस्सी बाँटेंगे। यदि राजा कहे कि हमारे घर में बालू की रस्सी कभी नहीं हुई है तो कहना कि महाराज! यदि वह नहीं बन सकती तो प्राचीन यवमज्झक ग्रामवासी कैसे बालू की रस्सी बँटेंगे?" उन्होंने वैसा ही किया। राजा ने सुना तो पूछा—यह प्रति-प्रश्न किसने सोचा? जब पता लगा कि पण्डित ने, तो राजा प्रसन्न हुआ।

तालाब की बात। फिर एक दिन ग्रामवासियों को आज्ञा हुई—राजा जल-क्रीड़ा करना चाहता है। पांच प्रकार के पद्मों से आच्छादित नई पुष्करिणी भेजें। न भेजने से हजार का दण्ड। उन्होंने पण्डित से कहा। उसने यह सोच कि यह भी

प्रति-प्रश्न पूछने की ही बात होगी, बात चीत करने में कुशल कुछ आदमियों को बुलवाकर कहा—"तुम आओ और पानी में खेल, आंखें लाल कर, गीले केश, गीले वस्त्र, कीचड़ मला बदन करके और हाथ में रस्सी, डण्डा तथा ढेले लेकर राज-द्वार पर जाओ। फिर राज-द्वार पर पहुँचने की सूचना राजा तक भिजवाओ। अनुज्ञा होने पर अन्दर जाकर कहना, "महाराज! आपने प्राचीन यवमज्झक वासियों को पुष्करिणी भेजने के लिये कहा। इसलिये हम आपके योग्य बड़ी सी पुष्करिणी लेकर आये। किन्तु वह अरण्यवासिनी होने से नगर देखने से, चार दीवारी, खाई तथा अट्टालिकादि देखने से डर के मारे रस्सी तुड़ा कर, भागकर आरण्य में ही चली गई। हम ढेलों तथा डले आदि से मारकर उसे रोक नहीं सके। अपनी आरण्य से लाई हुई पुरानी पुष्करिणी दें। उसके साथ जोतकर उसे लायेंगें। यदि राजा कहे कि न हमने कभी आरण्य से कोई पुष्करिणी मंगवाई और न किसी पुष्करिणी को जोतकर लाने के लिये पुष्करिणी भेजी, तो कहना, तब यवमज्झकग्रामवासी कैसे पुष्करिणी भेजेंगे।" उन्होंने वैसा ही किया। राजा ने जब सुना कि यह बात पण्डित ने ही समझी तो वह प्रसन्न हुआ।

उद्यान की बात। फिर एक दिन आज्ञा गई— हमारी उद्यान-क्रीड़ा की इच्छा है। हमारा उद्यान पुराना है। यवमज्झक ग्रामवासी सुपुष्पित वृक्षों से आछन्न नया उद्यान भेजें। पण्डित ने यह समझ कि प्रति-प्रश्न का ही विषय है, लोगों को आश्वस्त कर, आदमियों को भेज पहली तरह ही कहलाया।

तब राजा ने सन्तुष्ट हो सेनक को पूछा—"पण्डित को मंगवायें?" उसने (अभी भी) लाभ के प्रति ईर्ष्या के कारण कहा—"इतने से पण्डित नहीं होता। और प्रतीक्षा करें।" उसकी बात सुन राजा सोचने लगा—"महोषध पण्डित ने बाल-प्रश्नों से मेरा मन जीत लिया, और इस प्रकार की गूढ़ परीक्षाओं तथा प्रति-प्रश्नों में तो इसकी व्याख्या बुद्ध के समान है। सेनक ऐसे पण्डित को आने नहीं देता। मुझे सेनक पण्डित से क्या। उसे लाता हूँ।" वह बड़े ठाट-बाट से गांव की ओर चल दिया। जब वह मङ्गल-अश्व पर चढ़ा जा रहा था घोड़े का पांव फटी भूमि के अन्दर जाकर टूट गया। राजा वहीं से नगर को वापिस लौट आया। तब सेनक ने आकर पूछा—"महाराज! पण्डित को लाने यवमज्झक गांव गये?"

"पण्डित। हां।"

"महाराज,! आप मुझे अपना अहित-चिन्तक समझते हैं। 'अभी सबर करें'

कहने पर भी अति जल्दी करके गये। पहली बार ही मङ्गल घोड़े का पांव टूट गया।" उसकी बात सुनी तो राजा चुप हो रहा। फिर एक दिन उसने सेनक से विचार किया —"सेनक। क्या महौषध पण्डित को ले आयें?" तो देव! स्वयं न जाकर दूत को भेजें और कहलायें कि हम तेरे पास आ रहे थे। हमारे घोड़े का पांव टूट गया। चाहे खच्चर भेजो चाहे श्रेष्ठतर भेजो। यदि खच्चर को भेजेगा तो स्वयं आयेगा और यदि श्रेष्ठतर को भेजेगा तो पिता को भेजेगा। यह भी हमारा एक प्रश्न हो जायेगा। राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और वैसा कहकर दूत भेजा।

पण्डित ने दूत की बात सुनी तो सोचा—राजा मुझे और पिता को देखना चाहता है। वह पिता के पास गया और प्रणाम करके कहने लगा—'तात! राजा आप को ओर मुझे देखना चाहता है। आप पहले हज़ार सेठों के साथ लेकर जाइये। ओर जाते समय खाली हाथ न जा नये घी से भरा चन्दन-पात्र लेकर जायें। राजा आपका कुशल-क्षेम पूछ कहेगा कि अपने योग्य आसन देख बैठ जाओ। आप वैसा आसन देख बैठ जाना। आपके बैठने के समय ही मैं आ जाऊँगा। राजा मेरा भी कुशल-क्षेम पूछ कहेगा—'पण्डित अपने अनुरूप आसन देख बैठ।' तब मैं आपकी ओर देखूंगा। आप उस संकेत को समझ आसन से उठकर कहना—"महौषध पण्डित इस आसन पर बैठ।" आज एक प्रश्न पूरा होगा।

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और जैसे बताया तदनुसार ही जाकर राजा को सूचना भिजवाई कि वह द्वार पर खड़ा है। अन्दर आने की आज्ञा हुई तो अन्दर जाकर राजा को नमस्कार कर एक ओर बैठा। राजा ने उसका कुशल-पूछ प्रश्न किया—"गृहपति! तेरा पुत्र महौषध पण्डित कहां है?" "देव! पीछे आ रहा है।" राजा ने 'आ रहा है' सुना तो प्रसन्न हो बोला, "अपना उचित आसन जानकर बैठो।" वह अपना उचित आसन जान एक ओर बैठा।

बोधिसत्व ने सजधज कर, हजार लड़कों को साथ ले 'अलंकृत रथ में बैठ' नगर में प्रवेश किया। जाते-जाते खाई के बाहर एक गधा देख अपने शक्तिशाली साथियों को आज्ञा दी—"इस गधे का पीछा कर, पकड़, बिना बोलने दिये मुँह बाँध एक कपड़े में लपेट, कंधे पर लेकर आओ।" उन्होंने वैसा ही किया। बोधिसत्व ने भी बड़े ठाट-बाट से नगर में प्रवेश किया। जनता का मन बोधिसत्व को देखने और उसकी

प्रशंसा करने से न भरता था। लोग कहते—"यह श्रीवर्धन सेठ का पुत्र है महौषध पण्डित। पैदा होते समय यह हाथ में औषध लेकर पैदा हुआ। इसने परीक्षा के लिये पूछे गये इतने प्रश्नोंके प्रति-प्रश्न जाने।" उसने राज-द्वार पर पहुँच अपने आगमन की सूचना भिजवाई। राजा सुनते ही बड़ा प्रसन्न हुआ। बोला—"मेरा पुत्र महौषध पण्डित शीघ्र आये।" हजार लड़कों के सहित वह महल पर चढ़ आया ओर राजा को प्रणाम करके एक ओर खड़ा हुआ।

राजा उसे देखते ही प्रसन्न हुआ और बड़ी मिठास से कुशल-क्षेम पूछ बोला—"पण्डित ! अपना योग्य आसन जान उस पर बैठ।" उसने पिता की ओर देखा। पिता देखने के इशारे को समझ उठा और बोला—"पण्डित ! इस आसन पर बैठ।" वह उस पर बैठा। उसे वहाँ बैठा देखते ही सेवक, प्रक्कुस, काविन्द, देविन्द तथा दूसरे अन्धे-मूर्खों ने ताली बजा जोर से हंसते हुए मजाक किया—"इस अन्धे मूर्ख को पण्डित कहते हैं। यह पिता को आसन से उठा कर स्वयं बैठता है। उसे पण्डित कहना अयोग्य है।" राजा का भी चेहरा उतर गया।

बोधिसत्व ने पूछा—"महाराज ! क्या, मन खराब हो गया ?" "हाँ पण्डित ! मन खराब हो गया। तेरे बारे में जो सुना था वही अच्छा था, दर्शन तो खराब रहा।"

"किस कारण से ?" "पिता को उठाकर आसन पर बैठने के कारण से।"

"महाराज ! क्या आप सभी जगह पिता को पुत्र से श्रेष्ठ मानते हैं ?"

"पण्डित ! हाँ।"

"महाराज ! क्या आपने हमारे पास आज्ञा नहीं भेजी की कि खच्चर भेजो अथवा उस से श्रेष्ठतर ?" पूछते हुए उसने उठकर उन लड़कों की ओर देखा और कहा जो गधा तुमने पकड़ा है, उसे ले आओ। उसे मंगवाकर और राजा के चरणों में लिटवाकर पूछा—

"महाराज ! इस गधे का क्या मूल्य है।"

"यदि उपयोगी हो तो आठ कार्षापण।"

"इसके सम्बन्ध से श्रेष्ठ घोड़ी की कोख से पैदा हुए खच्चर की क्या कीमत होती है ?"

"पण्डित ! अमूल्य।"

"देव ! ऐसा क्यों कहते हैं ? क्या अभी आपने नहीं कहा कि सभी जगह पुत्र

की अपेक्षा पिता ही श्रेष्ठतर होता है ? यदि यह सत्य है तो आपके मत के अनुसार खच्चर से गधा ही श्रेष्ठ है। क्या महाराज ! आपके पण्डित इतनी बात भी न जानकर ताली बजाकर हंसते हैं ! ओह ! आपके पण्डितों की प्रज्ञा ! ये कहाँ मिले हैं ?" इस प्रकार उसने चारों पण्डितों का मजाक कर एक-निपात की इस गाथा से राजा को सम्बोधित किया—

हंसि तुवं एवं मञ्ञसि सेय्यो
पुत्तेन पिताति राजसेट्ठ,
हन्दस्सतरस्स ते अयं
अस्सतरस्स हि गद्रभो पिता॥३॥

[हे राज श्रेष्ठ ! यदि आपकी यह मान्यता है कि हर अवस्था में पिता से पुत्र ही श्रेष्ठ होता है तो खच्चर से यह गधा ही श्रेष्ठ है क्योंकि खच्चर का पिता गधा ही है॥ ३ ॥]

यह कह निवेदन किया—"महाराज ! यदि पुत्र से पिता श्रेष्ठ है तो अपने हित-साधन के लिये पिता को लेलें और यदि पिता से पुत्र-श्रेष्ठ है तो मुझे लेलें।"

राजा आनन्दित हुआ। सारी राज्य-परिषद ने यह कहते हुए कि पण्डित ने प्रश्न का ठीक समाधान किया है, साधुकार दिया। लोगों ने अंगुलियाँ चटखाई और हजारों कपड़े उछाले। चारों पण्डितों के चेहरे उतर गये। माता-पिता के उपकारों का जानकर बोधिसत्व के समान दूसरा नहीं है। उसने ऐसा क्यों किया ? पिता का अपमान करने के लिये नहीं। राजा ने 'खच्चर भेजो अथवा श्रेष्ठतर' कहलाया था, उसके प्रश्न का समाधान करने के लिये, अपना पाण्डित्य प्रकट करने के लिये और चारों पण्डितों को निष्प्रभ करने के लिये ही ऐसा किया था।

गद्रभ-प्रश्न समाप्त

राजा ने प्रसन्न हो सुगन्धित जल से भरी सोने की झारी ली और सेठ के हाथ पर पानी गिराकर कहा—"प्राचीनयवमज्झ ग्राम राजा द्वारा दिया गया मान कर उसका उपभोग करें।" और आज्ञा दी कि शेष सेठ इस सेठ के ही सेवक हों। फिर बोधिसत्व की माता के लिये सभी गहने भेजे। राजा गद्रभ-प्रश्न से इतना प्रभावित था कि बोधिसत्व को पुत्र बना लेने की इच्छा से उसने सेठ से कहा—"गृहपति ! इस महोषध पण्डित को मुझे पुत्र बनाकर सौंप दो।"

"देव ! यह अभी बच्चा है। अभी भी इसके मुंह से दूध की गन्ध आती है। बड़े होने पर आप के पास आ जायगा।"

राजा ने उसे चले जाने के लिये प्रेरित किया। कहा—"गृहपति ! अब से तू इसके प्रति अपना ममत्व छोड़ दे। आज से यह मेरा पुत्र हुआ। मैं अपने पुत्र का पोषण कर सकूंगा।"

उसने राजा को प्रणाम किया, पण्डित का आलिगंन किया, उसे छाती से लगा उसका सिर चूमा और उसे उपदेश दिया। उसने भी पिता को प्रणाम कर विदा किया और कहा—"तात ! चिन्ता न करें।"

राजा ने पण्डित से पूछा—"तात ! भात महल के अन्दर खाया करेगा ? अथवा बाहर ?" उसने यह सोच कि मेरे साथी बहुत हैं, मुझे भोजन बाहर ही करना चाहिये, उत्तर दिया कि मैं भोजन बाहर किया करूंगा। राजा ने उसे योग्य घर दिलवा दिया, हजारों-लड़कों के साथ उसके लिये भी खर्च दिलवाया और अन्य सभी सामान दिलवाये। इसके बाद से वह राजा की सेवा में रहने लगा। राजा भी उसकी परीक्षा लेने के लिये उत्सुक था ही।

उस समय नगर के दक्षिण द्वार के समीप पुष्करिणी के किनारे एक ताड़ के पेड़ पर कोवे के घोसलें में मणि रतन था। उसकी छाया पुष्करिणी में दिखाई देती थी। राजा को सूचना दी गई कि पुष्करिणी में मणि है। उसने सेनक को बुलाकर पूछा—"पुष्करिणी में मणि दिखाई देती है। उसे कैसे निकलवायें ?" उत्तर दिया—"पानी निकलवाकर निकालनी चाहिये।" राजाने उसे ही यह कार्य्य सौंपा—"तो ऐसा ही कराओ।" उसने बहुत से आदमी इकट्ठे कराये, पानी और कीचड़ निकलवाया, किन्तु जमीन उखड़वाने पर भी मणि नहीं दिखाई दी। पुष्करिणी के भरने पर फिर मणि की छाया दिखाई दी। उसने दुबारा भी वैसा ही किया। किन्तु मणि दिखाई नहीं दी।

तब राजा ने पण्डित को बुलवाकर पूछा—"पुष्करिणी में एक मणि दिखाई देती है। सेनक ने पानी और कीचड़ निकलवाया तथा जमीन भी उखड़वाई। तो भी मणि नहीं दिखाई दी। पुष्करिणी के भरने पर फिर मणि दिखाई देती है। क्या तू मणि निकलवा सकेगा ?" "महाराज ! यह कुछ बड़ी बात नहीं हैं ? आयें मैं दिखाऊँगा।" राजा प्रसन्न हुआ कि आज पण्डित का ज्ञान-बल देखूंगा। लोगों से घिरा हुआ वह पुष्करिणी के किनारे पहुंचा।

बोधिसत्व ने किनारे खड़े हो, मणि को देखते ही जान लिया कि यह मणि पुष्करिणी में नहीं होगी, यह मणि ताड़ के वृक्ष पर होगी, और इसलिये कहा—

"देव ! पुष्करिणी में मणि नहीं है।"

"क्या पानी में दिखाई नहीं देती ?"

उसने पानी की थाली मंगवाई और कहा—

"देव ! देखें न केवल पुष्करिणी में ही मणि दिखाई देती है, किन्तु इस पानी की थाली में भी दिखाई देती है ?"

"पण्डित ! तो मणि कहाँ होनी चाहिये ?"

"देव ! पुष्करिणी में भी छाया ही दिखाई देती है, मणि नहीं। मणि तो इस ताड़-वृक्ष पर कौए के घोसले में है। आदमी को चढ़ा कर उतरवायें"

राजा ने वैसा करके मणि मंगवा ली। पण्डित ने वह ले राजा के हाथ पर रखी। जनता साधुकार देती हुई तथा सेनक का मजाक उड़ाती हुई बोधिसत्व की प्रशंसा करने लगी—मणि रत्न को ताड़ के वृक्ष पर छोड़ सेनक ने बलवान पुरुषों से पुष्करिणी फुड़वाई। पण्डित हो तो महोषध सदृश होना चाहिये। राजा ने भी उसे अपने गले की मोतियों की माला दी और हजार लड़कों को भी मोतियों की लड़ियाँ दिलवाई। अनुयायियों सहित बोधिसत्व के लिये बिना रोक-टोक सेवा में आने का नियम बना दिया।

उन्नीस-प्रश्न समाप्त

फिर एक दिन राजा पण्डित के साथ उद्यान गया। उस समय तोरण के सिरे पर एक गिरगिट रहता था। उसने राजा को आते देखा तो उतर कर जमीन पर लेट रहा। राजा ने उसकी करनी देख पण्डित से पूछा—"पण्डित ! यह गिरगिट क्या करता है ?"

"महाराज ! आपकी सेवा में है।" "यदि ऐसा है तो हमारी सेवा निष्फल न हो, इसे भोग्य-वस्तुएँ दिलवाओ।"

"देव ! इसे अन्य भोग्य-वस्तुओं की अपेक्षा नहीं, इसके लिये भोजन ही पर्य्याप्त है।"

"यह क्या खाता है ?"

"देव ! माँस।"

"इसे कितना माँस मिलना चाहिये ?"

"देव, कौड़ी के मूल्य भर।"

राजा ने एक आदमी को आज्ञा दी—"राजा से जो मिले वह कौड़ी भर के मूल्य का होना योग्य नहीं, इसे नियम से आधे-मासे के मूल्य का माँस लाकर दिया जाय।" उसने 'अच्छा' कहा और तब से वह ऐसा ही करने लगा। एक दिन जब उसे उपोसथ-दिवस होने के कारण माँस न मिला तो उसी आधे-मासे को बींध, धागा डाल उसके गले में पहना दिया। इससे उसके मन में अभिमान पैदा हो गया। उसी दिन राजा फिर उद्यान गया। उसने राजा को आते देखा तो धन के कारण उत्पन्न हुए अभिमान के वशीभूत हो तोरण से नीचे न उतर वहीं पड़ा सिर हिलाता हुआ राजा से अपने धनकी तुलना करता हुआ सोचने लगा—"हे विदेह ! तेरे पास अधिक धन है अथवा मेरे पास ?" राजा ने उसकी करतूत देख पूछा—"पण्डित ! और दिनों की तरह आज यह नहीं उतरता ?" "क्या कारण है ?" उसने पहली गाथा कही—

नायं पुरे उन्नमति तोरंणग्गे ककण्टको,
महोसध विजानाहि केन थद्धो ककण्टको ॥४॥

[यह गिरगिट आज की तरह पहले तोरण पर ही लटका नही रहता था। हे महोसध ! यह जान कि यह गिरगिट आज जड़ क्यो हो गया है ? ॥४॥]

पण्डित ने यह जानकर कि उपोसथ के कारण राजपुरुष को मांस न मिला होगा, उसने गले में आधा-मासा बांध दिया होगा, और उसीसे अभिमान हो गया होगा, यह गाथा कही—

अलद्धपुब्बं लद्धान अड्ढमासं ककण्टको,
अतिमञ्ञति राजानं वेदेहं मिथिलग्गहं ॥५॥

[आज तक कभी न मिला आधा-मासा मिलने से गिरगिट मिथिलेश विदेह राजा की अवहेलना कर रहा है ॥५॥]

राजा ने उस आदमी को बुलवाकर पूछा। उसने यथार्थ बात कह दी। बिना किसीसे पूछे सर्वज्ञ बुद्ध की तरह पण्डित ने गिरगिट का भाव समझ लिया, सोच राजा बहुत प्रसन्न हुआ और पण्डित को चारों-द्वारों पर मिलनेवाला शुल्क (-टैक्स) दिलवाया। राजा ने गिरगिट पर क्रोधित हो उसका भोजन बन्द कर देना चाहा। पण्डित ने उसे रोका—यह अनुचित है।

ककण्टक-प्रश्न समाप्त

मिथिला में पिङ्गुत्तर नामका एक माणवक था। उसने तक्षशिला पहुंच, प्रसिद्ध आचार्य्य के पास शिल्प सीखते हुए शीघ्र ही सीख लिया। उसने आचार्य्य को निमन्त्रण दे जाने की आज्ञा माँगी। उस कुल की यह परम्परा थी कि यदि आयु-प्राप्त लड़की होती तो वह प्रधानशिष्य को दी जाती थी। उस आचार्य्य की एक लड़की थी। सुन्दर, देवप्सराओं सदृश। उसने उसे कहा—"तात! तुझे लड़की देता हूँ। उसे लेकर जा।" वह तरुण अभागा था, मनहूस। कुँवारी महा-पुण्यवान थी। उसने उसे देखा तो वह अच्छी न लगी। अरुचिकर होते हुए भी उसने आचार्य्य की बात रखने के लिये उसे स्वीकार कर लिया। ब्राह्मण ने उसे लड़की दे दी। रात के समय अलंकृत शयनागार में जब वह शैय्या पर लेटा था और वह शैय्या पर आई तो यह घबराकर शैय्या से उतर जमीन पर जा लेटा। वह भी उतरकर उसके पास गई। वह उठकर फिर शैय्या पर जा लेटा वह भी फिर शैय्या पर आई। वह फिर शय्या से उतर आया। मनहूस का लक्ष्मी के साथ मेल नहीं ही बैठता। कुमारी शैय्या पर ही लेटी। वह जमीन पर ही सोया। इस प्रकार एक सप्ताह बिता उसे ले आचार्य्य को प्रणाम कर निकला। रास्ते में बात-चीत तक नहीं की। अरुचि से ही दोनों मिथिला आ पहुँचे। नगर से थोड़ी ही दूर पर फलों से लदा गूलर का एक पेड़ था। पिङ्गुत्तर ने देखा तो उसे भूख लगी। उसने पेड़पर चढ़ गूलर खाये। उसने भी भूख के कारण पेड़ के पास जाकर कहा—"मेरे लिये भी फल गिरा।" उत्तर दिया—"क्या तेरे हाथ-पांव नहीं हैं। स्वयं चढ़कर खा।" उसने पेड़पर चढ़कर गूलर खाये। उसने उसे ऊपर चढ़ा जाना तो वह स्वयं शीघ्रता से उतरा और पेड़ को काँटों से घेरकर यह कहता हुआ भाग गया कि मुझे मनहूस से छुट्टी मिली। वह उतर न सकने के कारण वहीं बैठ रही।

उद्यान-क्रीड़ा समाप्त कर जब राजा शाम के समय हाथी के कन्धे पर बैठ नगर में प्रवेश कर रहा था तो उसे वहां बैठे देख उस पर आसक्त हो गया। उसने पुछवाया कि उसका मालिक है अथवा नहीं? उसने उत्तर दिया—"कुल से प्रदत्त मेरा स्वामी है, किन्तु वह मुझे यहां बिठाकर छोड़कर भाग गया है।" अमात्य ने आकर यह बात राजा से कही। 'बिना मालिक की चीज़ राजा की होती है' सोच राजा ने इसे उतरवाया, हाथी पर बिठाया और घर लाकर, अभिषेक कर पटरानी बना लिया। वह उसकी प्रिया हुई, मन को अच्छी लगने वाली। उदुम्बर वृक्ष पर दिखाई पड़ने से वह उदुम्बरादेवी नाम से ही प्रसिद्ध हुई।

एक दिन राजा के उद्यान जाने के लिये द्वार ग्राम-वासी लोग रास्ता ठीक कर रहे थे। पिङ्गुत्तर भी मज़दूरी करता हुआ, काछ बाँधे, कुदाल से रास्ता काट रहा था। अभी रास्ता पूरा तैय्यार नही हुआ था तभी राजा उदुम्बरा देवी के साथ रथ में बैठ निकला। उदुम्बरा देवी ने भी उस मनहूस को रास्ता छीलते देखा तो यह सोच हंसी कि यह मनहूस इस प्रकार की लक्ष्मी को सहन न कर सका। राजा ने उसे हंसते देखा तो क्रोधित हो पूछा—"क्यों हंसी ?" "देव ! यह रास्ता छीलने वाला आदमी मेरा पहले का पति है। यह मुझे उदम्बर पेड़ पर चढ़ा कांटों से घेरकर चला गया था। मैं इसे देख और यह सोच कि यह इस प्रकार की लक्ष्मी को न सह सका, हंसी।" राजा ने तलवार उठाई—"तू झूठ बोलती है। और किसी को देखकर हंसी होगी। तुझे मारूंगा।" वह भयभीत हो बोली—"देव ! अपने पण्डितों से पूछ लो।" राजा ने सेनक से पूछा—"तू इसके कहने का विश्वास करता है ?" उत्तर मिला—"देव ! नहीं। इस प्रकार की स्त्री को कौन छोड़कर जायेगा ?" उसने उसकी बात सुनी तो और भी भयभीत हुई। तब राजा ने यह सोच कि सेनक क्या जानता है, पण्डित को पूछता हूँ, गाथा कही—

इत्थी सिया रूपवती सा च सीलवती सिया,
पुरिसो तं न इच्छेय्य सद्दहासि महोसध ॥६॥

[स्त्री सुन्दर भी हो और सदाचारिणी भी हो और तब भी आदमी उसकी इच्छा न करे—हे महोषध ! क्या यह बात विश्वसनीय है ? ॥६॥]

यह सुन पण्डित ने गाथा कही—

सद्दहामि महाराज पुरिसो दुब्भगो सिया,
सिरी च कालकण्णी च न समेन्ति कुदाचनं ॥७॥

[महाराज ! मैं इसमें विश्वास करता हूँ कि आदमी अभागा हो सकता है। लक्ष्मी और मनहूस का कभी मेल नहीं बैठता ॥७॥]

राजा ने उसकी बात सुनी तो उस कारण से उसने क्रोध नहीं किया। उसका हृदय शान्त हो गया। राजा ने प्रसन्न हो एक लाख पण्डित को भेंट किये। कहा—"पण्डित ! यदि तू यहाँ न होता तो मैं मूर्ख सेनक के कहने में आकर इस प्रकार के स्त्री-रत्न को गँवा बैठता। अब तेरे ही कारण मुझे यह मिली है।" तब देवी ने भी राजा को नमस्कार कर कहा—"देव ! पण्डित के ही कारण मेरी जान बची है। मुझे वरदान दें कि मैं इसे अपना छोटा भाई बना सकूँ।"

'अच्छा देवी ! मैं तुझे यह वर देता हूँ। ले ले।"

"देव ! आज से मैं बिना अपने छोटे भाई को दिये कोई मिठाई नहीं खाऊँगी। मुझे वर दें कि अबसे मैं समय-असमय कभी भी दरवाजा खुलवाकर इसे मिठाई भिजवा सकूं।"

"अच्छा भद्रे ! यह भी वरदान ले।"

श्री कालकर्णी-प्रश्न समाप्त

एक और दिन जलपान कर चुकने के बाद दूर तक टहलते हुए राजा ने एक मेढ़े और एक कुत्ते को मैत्री-पूर्वक रहते देखा। वह मेढ़ा हस्ति-शाला में हाथियों के सामने डाली हुई अछूती घास खाता था। हथवानो ने उसे पीटकर निकाल दिया। जब वह चिल्लाता हुआ भागा जा रहा था एक ने दौड़कर उसकी पीठ में एक डण्डा दे मारा। झुकी कमर ले, वेदना से पीड़ित हो वह जाकर राज-भवन की बड़ी दीवार के सहारे पीठ के बल पड़ रहा।

उसी दिन राजा के रसोई-घर में हड्डी-चर्मादि खाकर बढ़े हुए कुत्ते ने जब रसोइया भात पकाकर बाहर खड़ा पसीना सुखा रहा था, मत्स्य-मांस की गन्ध न सह सकने के कारण, रसोई-घर में घुस, ढक्कन गिरा, मांस खा लिया। बरतन की आवाज सुनी तो रसोइये ने अन्दर घुस, कुत्ते को देखा और द्वार बन्द कर उसे ढेलों तथा डण्डे आदि से मारा। खाया माँस वहीं छोड़ वह चिल्लाता हुआ भागा। रसोइये ने भी उसे बाहर भागा जान, पीछा करके, उसकी पीठ पर सीधा डण्डा दे मारा। वह भी पीठ झुका, एक पांव उठा, जहां मेढ़ा था वहीं जा रहा। तब मेढ़े ने पूछा—"मित्र ! मित्र ! तू पीठ झुकाये आ रहा है। क्या तुझे वायु-रोग है ?" कुत्ते ने भी पूछा—"तू भी पीठ झुकाये पड़ा है। क्या तेरे शरीर को भी वायु कष्ट देता है ?" उसने अपना समाचार कहा। तब मेंढ़े ने पूछा—"क्या फिर भी रसोई-घर में जा सकेगा ?" "नहीं जा सकूंगा। गया तो जान नहीं बचेगी। क्या तू हस्ति-शाला में जा सकेगा ?"

"मैं भी वहाँ नहीं जा सकता। गया तो मेरी भी जान नही बचेगी।

वे सोचने लगे कि अब हम कैसे जीयें ? मेढ़े ने कहा, "यदि हम मिलकर रह सकें तो एक उपाय है।" "तो बता।" "मित्र ! आज से तू हस्ति-शाला जाया कर। हथवान तुझ पर यह शंका न करेंगे कि यह घास खाता है। तू मेरे लिये घास ले आया

कर। मैं भी रसोई-घर में जाऊंगा। रसोइया मुझपर भी यह शंका न करेगा कि यह मांस खानेवाला है, मैं तेरे लिये मांस लाऊँगा।" उन दोनों ने यह स्वीकार किया कि हां यह उपाय है। कुत्ता हस्ति-शाला जाता और घास की मुट्ठी मुँह में ले आकर बड़ी दीवार के सहारे रख देता। दूसरा भी रसोई-घर पहुँचता और मुंह भर मांस का टुकड़ा लाकर वहीं रख देता। कुत्ता मांस खाता और मेढ़ा घास। इस उपाय से वे मिल-जुलकर प्रसन्नतापूर्वक-बड़ी दीवार के सहारे रहने लगे। राजा ने उनका मित्र-धर्म देखा तो सोचने लगा—"इससे पहले ऐसी बात नहीं देखी। अब देखता हूं कि ये शत्रु होकर मित्रतापूर्वक रह रहे हैं। यह बात लेकर प्रश्न बनाकर पण्डितों से पूछूंगा। जो इस प्रश्न का उत्तर न दे सकेंगे उन्हें राष्ट्र से निकाल दूंगा। जो उत्तर बता देगा, यह समझ कि ऐसा कोई और पण्डित नहीं है, उसका सत्कार करूँगा। आज तो असमय हो गया है। कल सेवामें आने पर पूछूंगा।" अगले दिन जब पण्डित आकर उसकी सेवा में बैठे तो उसने प्रश्न पूछते हुए यह गाथा कही—

येसं न कदाचि भूतपुब्बं
सक्खिं सत्तपदम्पि इयस्मिं लोके,
जाता अमित्ता दुवे सहाया
पटिसन्धाय चरन्ति किस्स हेतु ॥८॥

[इस दुनिया में जो कभी मैत्री-पूर्वक सात कदम भी नहीं चले वे शत्रु आपस में मित्र हो गये। ये किस कारण से मिलकर रहते हैं? ॥८॥]

यह कह फिर यह कहा—

यदि मे अज्ज पातरासकाले
पञ्हं न सक्कुणेथ वत्तुमेतं,
पब्बाजयिस्सामि वो सब्बे
नहि मत्थो दुप्पञ्ञजातिकेहि ॥९॥

[यदि आज मेरे जलपान के समय मेरे इस प्रश्न का उत्तर न दे सके तो सभी को भगाऊंगा। मुझे मूर्खों की अपेक्षा नहीं है ॥९॥]

सेनक सबसे पहले आसन पर बैठा था, पण्डित सबसे अन्त के आसन पर। उसने उस प्रश्न पर विचार करते हुए तत्त्व की बात खोजते हुए सोचा यह राजा स्वयं तो जड़-बुद्धि है। यह अपनी बुद्धि से सोचकर तो यह प्रश्न नहीं पैदा कर सकता।

इसने कुछ न कुछ देखा होगा। एक दिन का अवकाश मिले तो इस प्रश्न का समाधान करूंगा। सेनक किसी उपाय से आजका दिन अवकाश मांग ले। शेष चारों जने भी अन्धेरे घर में प्रविष्ट हुए सदृश ही थे। उन्हें कुछ नहीं दिखाई देता था। सेनक ने यह जानने के लिये कि बोधिसत्व का क्या हाल है बोधिसत्व की ओर देखा। उसने भी उसकी ओर देखा। सेनक देखने के ढँग से ही उसका भाव समझ गया कि पण्डित को भी नहीं सूझ रहा है, इसलिये एक दिन का अवकाश चाहता है। उसने सोचा, "इसका मनोरथ पूरा करूँगा।" विश्वस्त ढंग से उसने राजा के साथ जोर की हंसी हंसते हुए पूछा—"महाराज। प्रश्न का उत्तर न दे सकने पर क्या हम सभी को देश-निकाला दे देंगे। विचार करें, यह भी एक प्रश्न है। ऐसी बात नहीं है कि हम इस प्रश्न का उत्तर न दे सकते हों लेकिन यह ज़रा गूढ़-प्रश्न है। इसे हम जनता के बीच नहीं कह सकते। एकान्त में विचारकर पीछे आपको ही कहेंगे। हमें अवकाश दें।" उसने बोधिसत्व का ख्यालकर दो गाथायें कहीं—

महाजनसमागम्हि घोरे
जनकोलाहल समागम्हि जाते,
विक्खित्तमना अनेकचित्ता
पञ्हं न सक्कुणोम वत्तुमेतं ॥१०॥
एकग्गचित्ता एकमेका
रहसिगता अत्थं निचिन्तयित्वा,
पविवेके सम्मसित्वान धीरा
अथ वक्खन्ति जनिन्द अत्थमेतं ॥११॥

[जनता की बड़ी भीड़ में, लोगों का बड़ा हल्ला होने पर, मन नाना ओर जाने के कारण भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते ॥१०॥ एकाग्र-चित्त हो एकान्त में इसके अर्थ पर विचार कर हे जनिन्द ! पण्डितजन इसका अर्थ कहेंगें ॥११॥]

राजा उसकी बात सुन अप्रसन्न हुआ तो भी उसने कहा—"अच्छा, सोचकर कहना।" किन्तु उसने साथ ही धमकाया—"न कह सकने पर राष्ट्र से निकाल दूगा।" चारों पण्डित प्रासाद से उतरे। सेनक ने दूसरों से कहा—"तात ! राजा ने सूक्ष्म प्रश्न पूछा है। न कह सकने पर बड़ा खतरा है। तुम अपनी तबियत से मेल खानेवाला भोजन खाकर अच्छी तरह विचार करना।" वे अपने अपने घर गये।

पण्डित भी उठकर उद्धुम्बरा देवी के पास पहुंचा और पूछा—"देवी ! आज या कल राजा अधिक देर तक कहां रहा ?" "तात ! देर तक द्वार-खिड़की में से देखता हुआ चन्क्रमण करता रहा।" तब बोधिसत्व ने सोचा, राजाने इसी ओर से कुछ देखा होगा। वहां जा, बाहर नजर डालते हुए निश्चित रूप से समझ लिया कि मेढ़े ओर कुत्ते की करनी देखकर ही राजा के मन में प्रश्न पैदा हुआ होगा। यह निश्चयकर वह अपने निवास स्थान पर गया। शेष तीन जने भी बिना कुछ देखे, चिन्ता करते हुए सेनक के पास पहुँचे। उसने उन्हें पूछा—"प्रश्न का समाधान सूझा ?" "आचार्य। नहीं सूझा।" यदि ऐसा है तो राजा निकाल बाहर करेगा ? क्या करोगे ?" "आपको सूझा ?" "नहीं मुझे भी नहीं सूझता है।" "जब आपको भी नहीं सूझता तो हमें क्या सूझेगा ? राजा के पास तो हम सिंहनाद कर आये कि सोचकर कहेंगे। उत्तर न दे सकने पर राजा क्रोध करेगा, क्या करें ?"

'हमें इस प्रश्न का उत्तर नहीं सूझ सकता। पण्डित ने सौ गुणा करके सोचा होगा। आओ उसके पास चलें।"

वे चारों बोधिसत्व के गृह-द्वार पर पहुंचे। अपने आगमन की सूचना भिजवाई। अन्दर जा कुशल समाचार पूछ एक ओर खड़े हुए और बोधिसत्व से पूछा—"पण्डित ! क्या तूने प्रश्न का उत्तर सोचा ?" 'मैं नहीं सोचूँगा तो और कौन सोचेगा। हाँ, सोच लिया है।"

"तो हमें भी बता।"

बोधिसत्व ने सोचा, यदि मैं इन्हें नहीं बताऊँगा तो राजा उन्हें तो निकाल बाहर करेगा ओर मेरी सात रत्नों से पूजा करेगा। ये मूर्ख नष्ट न हों, इसलिये इन्हें भी बता देता हूँ। उसने चारों जनों को नीचे आसन पर बिठाया, हाथ जुड़वाये और राजा की देखी बात बिना बताये कहा—"जब राजा पूछे तो ऐसा कहना।" उसने चारों के लिये पालि ही में चार गाथायें बना, उन्हें सिखा, विदा किया। वे दूसरे दिन राजा की सेवा में पहुँच बिछे आसन पर बैठे। राजा ने सेनक से पूछा—सेनक ! तुझे प्रश्न का उत्तर सूझा ?

"महाराज ! मुझे नहीं सूझेगा तो और किसे सूझेगा ?"

"तो कहो।"

"देव ! सुनें।"

उसने जैसे याद की थी, वैसे ही गाथा कह सुनाई—

उग्गपुत्त राजपुत्तियानं
उरब्भमंसं पियं मनापं
न ते सुनखस्स अदेन्ति मंसं
अथ मेण्डस्स सुणेन सख्यमस्स ॥१२॥

[अमात्य पुत्रों तथा राज-पुत्रों को भेड़ का मांस अच्छा लगता है। वे कुत्ते को माँस नहीं देते। इसीलिये मेढ़े और कुत्ते की दोस्ती हो गई ॥१२॥]

गाथा कहकर भी सेनक उसका अर्थ नहीं जानता था। राजा को बात का पता होने से वह समझता था। इसलिये यह समझ कि सेनक जानता है, उसने सोचा कि मैं पुक्कस को पूछूँगा। तब उसने पुक्कस से प्रश्न किया। पुक्कस बोला—"क्या मैं ही अपण्डित हूँ ?" उसने भी जैसे याद की, वैसे ही गाथा कह सुनाई—

चम्मं विहनन्ति एककस्स
अस्स पिट्ठत्थरणसुखस्स हेतु,
न त सुनखस्स अत्थरन्ति
अथ मेण्डस्स सुणेन सख्यमस्स ॥१३॥

[भेढ़े के चमड़े को घोड़े की पीठ पर सुखासन के लिये बिछाते हैं। कुत्ते के लिये नहीं बिछाया जाता। इसीलिये मेढ़े और कुत्ते की मित्रता हो गई ॥१३॥]

इसका भी अर्थ अज्ञात ही था। लेकिन राजा को बात मालूम होने से उसने समझा इसे भी मालूम है। तब उसने कविन्द से प्रश्न किया उसने भी गाथा कही—

आवेल्लित सिंगिको हि मेण्डो
न सुनखस्स विसाणानि अत्थि,
तिणभक्खो मंसभोजनो च
अथ मेण्डस्स सुणेन सख्यमस्स ॥१४॥

[मेढ़े के सींग लिपटे हैं और कुत्ते के सींग नही होते। एक घासाहारी है दूसरा माँसाहारी। इसीलिये भेढ़े और कुत्ते की मित्रता हो गई ॥१४॥]

राजा ने यह समझ कि इसने भी जान लिया देविन्द से प्रश्न किया। उसने भी जैसे याद की थी, वैसे ही गाथा कह सुनाई—

तिणमासि पलासमासि मेण्डो,
न सुनखो तिणमासि नो पलासं

गण्हेय्य सुणो ससं विलारं
अथ मेण्डस्स सुणेन सख्यमस्स ॥१५॥

[भेड़ा घास खाता है, पत्ते खाता हैं। कुत्ता न घास खाता है, न पत्ते खाता है। कुत्ता खरगोश तथा बिल्ली को पकड़ता हैं। इसीलिये मेढ़े और कुत्ते की मित्रता हो गई ॥१५॥]

तब राजा ने पण्डित से पूछा—"तात! तू यह प्रश्न जानता है?"

"महाराज! अवीचि (नाक) से भवाग्र तक मेरे अतिरिक्त और कौन इस प्रश्न को जानेगा?"

"तो कहो।"

"महाराज सुनें" कह यह प्रकट करते हुए कि उसकी कहानी का उसे पता है बोधिसत्व ने ये दो गाथायें कहीं—

अड्ढपादो चतुप्पदस्स
मेण्डो अट्ठनखो अदिस्समानो,
छादियं आहरति अयं इमस्स
मंसं आहरति अयं अमुस्स ॥१६॥
पासादगतो विदेहसेट्ठो
वीतिहारं अञ्ञमञ्ञभोजनानं,
अद्दक्खि किर सक्खि तं जनिन्द
भोयुक्कस्स च पुण्णमुखस्स चेतं ॥१७॥

[चार पांवों तथा आठ अदृश्य नखों वाला मेढ़ा चतुष्पद के लिये। यह इसके लिये घास लाता है और वह उसके लिये मांस लाता है ॥१६॥ प्रासादारूढ़ श्रेष्ठ विदेह नरेश ने परस्पर एक दूसरे का भोजन लाना—कुत्ते का और मेढ़े का—देखा। हे जनिन्द्र! विदेह-नरेश ने साक्षी होकर देखा ॥१७॥]

राजा को यह पता नहीं लगा कि औरों ने बोधिसत्व से ही ज्ञान प्राप्त किया। यह समझ कि पांचों जनों ने अपनी अपनी प्रज्ञा से ही बात का पता लगाया, वह प्रसन्न हुआ और यह गाथा कही—

लाभा वत मे अनप्परूपा
यस्स मे एदिसा पण्डिता कुलम्हि,

गम्भीरगतं निपुणमत्थं
पटिविज्झन्ति सुभासितेन धीर॥१८॥

[यह मेरे लिये बड़ा भारी लाभ है कि मेरे कुल में ऐसे धीर पण्डित हैं जो गम्भीर से गम्भीर विषय को भी जानकर सुभाषित करके कहते हैं ॥१८॥]

उन पर सन्तुष्ट होने से उस सन्तोष की अभिव्यक्ति होनी चाहिये, सोच गाथा कही—

अस्सतरी रथञ्च एकमेकं
फीतं गामवरञ्च एकमेकं,
सब्बं नो दम्मि पण्डितानं
परम पतीतमनो सुभासितेन॥१९॥

[एक एक खच्चर और रथ, एक एक समृद्ध गांव, मैं यह सब पण्डितो के सुभाषित से प्रसन्न होकर उन्हें देता हूँ ॥१९॥]

द्वादश निपात में मेण्डक-प्रश्न समाप्त

उदुम्बरा देवी ने जब जाना कि औरों ने पण्डित से ही जानकर प्रश्न का उत्तर दिया और राजा ने मूंग तथा माशे की दाल में कुछ भी अन्तर न करने की तरह पांचों का समान ही सत्कार किया तो वह सोचने लगी कि क्या मेरे छोटे भाई का विशेष सत्कार नहीं होना चाहिये ? वह राजा के पास गई और पूछा—"देव ! उस प्रश्न का उत्तर किसने दिया !" "भद्रे ? पांचों पण्डितों ने।" "देव ! चारों जनों ने वह प्रश्न किससे पूछकर जाना ?" "भद्रे ! नहीं जानता हूँ।" "महाराज ! वे क्या जानते हैं, वे मूर्ख नष्ट न हों, इसलिये पण्डित ने ही उन्हें उस प्रश्न का उत्तर सिखाया। आपने सभी का समान आदर किया। यह अनुचित है। पण्डित का विशेष होना चाहिये। पण्डित से ही दूसरों ने जाना, यह बात पण्डित ने प्रकट नहीं होने दी जान राजा प्रसन्न हुआ और पण्डित का अतिरिक्त-सत्कार करने की इच्छा से सोचने लगा—'अच्छा ! अपने पुत्र से एक प्रश्न पूछकर उत्तर देने पर बहुत सत्कार करूँगा।" उसने प्रश्न का विचार करते हुए श्रीमन्द प्रश्न सोचा। एक दिन जब पाँचों पण्डित सेवा में आकर सुखपूर्वक बैठे थे, राजा बोला—"सेनक ! प्रश्न पूछता हूँ।" "देव ! पूछें।" राजा ने श्रीमन्द प्रश्न की पहली गाथा कही—

पञ्ञायुपेतं सिरिया विहीनं
यसस्सिनञ्चापि अपेतपञ्ञं,

पुच्छामि तं सेनक एतमत्थं
कमेत्थ सेय्यो कुसला वदन्ति ।।२०।।

[एक आदमी प्रज्ञावान् हो किन्तु लक्ष्मीपति न हो, दूसरा यशस्वी हो किन्तु प्रज्ञारहित हो। हे सेनक ! मैं तुझसे यह प्रश्न पूछता हूँ कि कुशल लोग किसे अधिक अच्छा कहते हैं ? ।।२०।।]

यह प्रश्न सेनक का परंपरागत प्रश्न था। इसलिये उसने तुरन्त उत्तर दिया—

धीरा च बाला च हवे जनिन्द
सिप्पूपपन्ना च असिप्पिनो च,
सुजातिमन्तोपि अजातिमस्स
यसस्सिनो पेस्सकरा भवन्ति,
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ।।२१।।

[हे राजन् ! धैर्य्यवान्, मूर्ख, शिल्प के जानकार, शिल्प के अजानकार सभी श्रेष्ठ जातिवाले भी (हीन-) जन्मा धनी आदमी के नौकर हो जाते हैं। यह बात देखकर भी मैं कहता हूँ कि प्रज्ञावान् तुच्छ है, श्रीमान् ही श्रेष्ठ है ।।२१।।]

राजा ने उसकी बात सुनी तो शेष तीनों को नछ संवपू में नये बनकर बैठे महोषध पण्डित से प्रश्न किया—

तवम्पि पुच्छामि अनोमपञ्ञ
महोसध केवलधम्मदस्सी,
बालं यसस्सिं पण्डितं अप्पभोगं
कमेत्थ सेय्यो कुसला वदन्ति ।।२२।।

[हे बहुप्रज्ञ ! हे केवलधर्मदर्शी महोषध पण्डित ! मैं तुझे भी पूछता हूँ कि मूर्ख श्रीमान और अल्प-धनी पण्डित में से चतुर लोग किसे श्रेष्ठ कहते हैं ? ।।२२।।]

तब बोधिसत्व ने कहा—महाराज ! सुनें।

पापानि कम्मानि करोति बालो
इधमेव सेय्यो इतिमञ्ञमानो,
इध लोकदस्सी परलोकं अदस्सी
उभयत्थ बालो कलिमग्गहेसि;

एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यसस्सि बालो ॥२३॥

[यहीं जो कुछ है श्रेयस्कर है समझने वाला मूर्ख पाप-कर्म करता है। इस लोक को ही देखनेवाला और परलोक को न देखनेवाला मूर्ख दोनों जगह पाप का भागी होता है। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥२३॥]

यह सुन राजा ने सेनक से पूछा— पण्डित तो कहता है कि प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ होता है। "महाराज! महौषध बच्चा है। अभी भी उसके मुँह से दूध की गन्ध आती है। यह क्या जानता है।" उसने यह गाथा कही—

न सिप्पमेतं विदधाति भोगं
न बन्धवा न सरीरावकासो,
पस्सेळमूगं सुखमेधमानं
सिरी हि नं भजते गोरिमन्दं,
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ॥२४॥

[न तो शिल्प (-विद्या से ही धन प्राप्त होता है, न बन्धुओं से और न शरीर-प्रभा से। इस महामूर्ख को सुख भोगते हुए देखो। लक्ष्मी इस गोरिमन्द[1] के पास ही वास करती है। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि प्रज्ञावान् की अपेक्षा लक्ष्मीपति-ही श्रेष्ठ है ॥२४॥]

यह सुन राजा बोला—"महोषध पण्डित! यह क्या कह रहा है!" पण्डित का उत्तर था—"देव! सेनक क्या जानता है! जैसे भात पकाने की जगह कौआ, अथवा दही पीने के लिये तैयार कुत्ता हो, वैसे ही यह केवल धन ही देखता है। इसे सिर पर पड़नेवाला महामुग्दर नहीं दिखाई देता। देव! सुनें।" उसने यह गाथा कही—

लद्धा सुखं मज्जति अप्पपञ्ञो
दुक्खेन फुट्ठोपि पमोहमेति,

१. सेठ-विशेष का नाम।

आगन्तुना सुखदुक्खेन फुट्ठो
पवेधति वारिचरोव घम्मे;
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यसस्सि बालो ॥२५॥

[मूर्ख आदमी थोड़ा सुख मिलने पर प्रमाद करता है, और दुखका स्पर्श होने पर भी मूढ़ हो जाता है। आगन्तुक सुख-दुःख का स्पर्श होने से वैसे ही तड़पता है जैसे धूप में पड़ी हुई मछली। यह बात भी देखकर मै कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥२५॥]

यह सुन राजा बोला—"आचार्य्य ! यह कैसी बात है ?" "देव ! यह क्या जानता है। मनुष्यों की बात रहने दो। आरण्य में उगे पेड़ भी फलों से लदे हों तो तभी पक्षी उनके पास जाते हैं" कह सेनक ने गाथा कही—

दुमं यथा सादुफलं अरञ्ञे
समन्ततो समभिचरन्ति पक्खी,
एवम्पि अड्ढं सधनं सभोगं
बहुज्जनो भजति अत्थहेतु,
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ॥२६॥

जिस प्रकार जंगल में स्वादिष्ट फलों वाले पेड़ को पक्षी चारो ओर से घेर लेते हैं, उसी प्रकार धनवान, सम्पत्तिशाली आदमी को अर्थ की इच्छा से बहुत लोग घेरे रहते हैं। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि प्रज्ञावान की अपेक्षा लक्ष्मीपति ही श्रेष्ठ है ॥२६॥]

यह सुन राजा बोला—"तात ! यह कैसी बात है ?" "यह महोदर क्या जानता है ? देव ! सुनें" कह पण्डित ने यह गाथा कही—

न साधु बलवा बालो साहसं विन्दते धनं,
कन्दन्तमेव दुम्मेधं कड्ढन्ति निरये भुसं
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यसस्सि बालो ॥२७॥

[मूर्ख बलवान् अच्छा नहीं। वह जोर-जबर्दस्ती करके दूसरों के धन का भोग करता है। उस मूर्ख को भी नरक में रोते-पीटते हुए ही खींचकर ले जाते हैं। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ।।२७।।]

राजा के यह कहने पर कि सेनक! यह क्या बात है, सेनक ने फिर यह गाथा कही—

या काचि नज्जो गङ्गमभिस्सवन्ति
सब्बाव ता नामगोत्तं जहन्ति,
गंगा समुद्दं पटिपज्जमाना
न खायते इद्धिपरो हि लोको,
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ।।२८।।

[जितनी भी नदियां समुद्र में जाकर मिलती हैं, वे सभी अपना नाम-गोत्र छोड़ देती हैं। फिर गङ्गा भी समुद्र में जाकर विलीन हो जाती है। दुनिया ऋद्धिवान् की ही ओर झुकती है। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि प्रज्ञावान् की अपेक्षा लक्ष्मीपति ही श्रेष्ठ है ।।२८।।]

फिर राजा ने कहा—"पण्डित! यह क्या है?" "महाराज! सुनें" कह उसने ये दो गाथायें कहीं—

यमेतमक्खा उदधिं महन्तं
सवन्ति नज्जो सब्बकालं असंखं,
सो सागरो निच्चमुळारवेगो
वेलं न अच्चेति महासमुद्दो ।।२९।।
एवम्पि बालस्स पजप्पितानि
पञ्ञं न अच्चेति सिरी कदाचि,
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यसस्सि बालो ।।३०।।

[यह जो महान् समुद्र की बात कही कि उसमें सभी नदियां नाम-रूप खोकर मिल जाती हैं। तो वह वेगवान् महासमुद्र कभी भी अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं करता। इसी प्रकार मूर्ख का बकवास है। लक्ष्मी कभी भी प्रज्ञा से नहीं बढ़ सकती।

यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥२९-३०॥]

यह सुन राजा बोला—"सेनक ! क्या बात है ?" "देव ! सुने" कह उसने यह गाथा कही—

असञ्ञतो चेपि परेसमत्थं
भणाति सन्थानगतो यसस्सी,
तस्सेव तं रूहति ञातिमज्झे
सिरिहीनं कारयते न पञ्ञा,
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरियाव सेय्यो ॥३१॥

[न्यायाधीश के पद पर बैठा हुआ दुराचारी श्रीमान् भी यदि स्वामी को अस्वामी और अस्वामी को स्वामी बना देता है तो जाति-वालों में उसका वह निर्णय ही पक्का हो जाता है। यह कार्य्य लक्ष्मी ही कराती है, प्रज्ञा नहीं ; यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि प्रज्ञावान की अपेक्षा लक्ष्मी-पति ही श्रेष्ठ है ॥३१॥]

फिर जब राजा ने कहा, "तात ! यह क्या बात है ?" "तो देव ! सुनें। मूर्ख सेनक क्या जानता है ?" कह यह गाथा कही—

परस्सवा आत्तनोवापि हेतु
बालो मुसा भासति अप्पपञ्ञो,
सो निन्दितो होति सभाय मज्झे
पेच्चम्पि सो दुग्गतिगामि होति,
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यसस्सि बालो ॥३२॥

[दूसरे के लिये या अपने ही लिये यदि अल्प-प्रज्ञ मूर्ख झूठ बोलता है तो वह सभा में निन्दित ही होता है और परलोक में भी दुर्गति को प्राप्त होता है। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥३२॥]

तब सेनक ने गाथा कही—

अत्थम्पि चे भासति भूरिपञ्ञो
अनाळिहयो अप्पधनो दळिद्दो,

न तस्स तं रूहति जाति मज्झे
सिरी च पञ्ञावतो न होति
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ॥३३॥

[यदि अल्प-धनी, अलक्ष्मी-पति, दरिद्र किन्तु प्रज्ञावान व्यक्ति यथार्थ की बात भी बोलता है तो भी उसकी बात जातिवाले में प्रामाणिक नहीं ठहरती। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि प्रज्ञावान् की अपेक्षा लक्ष्मी-पति ही श्रेष्ठ है ॥३३॥]

फिर राजा के "तात ! क्या बात है ?" कहने पर "सेनक क्या जानता है, इस लोक की ओर ही देखता है, पर लोक की ओर नहीं" कह पण्डित ने यह गाथा कही—

परस्स वा अत्तनो चापि हेतु
न भासति अलीकं भूरिपञ्ञो,
सो पूजितो होति सभाय मज्झे
पेच्चञ्च सो सुग्गतिगामि होति,
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यस्ससि बालो ॥३४॥

[दूसरे के लिये अथवा अपने लिये ही प्रज्ञावान् आदमी झूठ नहीं बोलता। वह सभा के बीच पूजित होता है और परलोक में भी वह सुगति को प्राप्त होता है ॥ यह बात भी देखकर मै कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥३४॥]

तब सेनक ने गाथा कही—

हत्थी गवस्सा मणिकुण्डला च
नरियो च इद्धेसु कुलेसु जाता
सब्बाव ता उपभोगा भवन्ति
इद्धस्स पोसस्स अनिद्धिमन्तो
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ॥३५॥

[हाथी, गौवें, घोड़े, मणि, कुण्डल तथा नारियां—ये सभी धनी कुल में होती हैं। सभी ऐश्वर्य्यहीन प्राणी ऐश्वर्य्यवान की भोग्य वस्तु बनते हैं। यह भी देखकर मैं कहता हूँ कि प्रज्ञावान् की अपेक्षा लक्ष्मी-पति ही श्रेष्ठ है ॥३५॥]

तब पण्डित ने 'यह क्या जानता है' कह, एक बात लाते हुए यह गाथा कही—

असंविहितकम्मन्तं बालं दुम्मन्तमन्तिनं,
सिरी जहति दुम्मेधं जिण्णंव उरगो तचं
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञोव सेय्यो न यसस्सि बालो ॥३६॥

[जिसका कर्मान्त व्यवस्थित नहीं है, जिसके सलाहकार मूर्ख हैं, जो स्वयं मूर्ख है उसे लक्ष्मी उसी प्रकार छोड़कर चली जाती है जैसे सर्प अपनी पुरानी केंचुल को। यह बात भी देखकर मै कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है ॥३६॥]

जब राजा ने फिर कहा, "यह कैसी बात है?" तो "देव! यह बच्चा क्या जानता है। सुनें" कह और यह सोच कि मैं पण्डित को अप्रतिभ करूंगा यह गाथा कही—

पञ्च पण्डिता मयं भदन्ते
सब्बे पञ्जलिका उपट्ठिता
त्वं नो अभिभूय्य इस्सरोसि,
सक्को भूतपतीव देव राजा;
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञो निहीनो सिरिमाव सेय्यो ॥३७॥

[हम पांचों पण्डित भदन्त के सामने हाथ जोड़े खड़े हैं। तू हम सब के ऊपर हमारा 'ईश्वर' है, जैसे भूतपति देवेन्द्र शक्र। यह बात भी देखकर मैं कहता हूँ कि प्रज्ञावान् की अपेक्षा लक्ष्मी-पति ही श्रेष्ठ है ॥३७॥]

यह सुना तो राजा सोचने लगा कि सेनक ने ठीक बात कही है। क्या मेरा पुत्र इसके मत का खण्डन कर दूसरी बात कह सकेगा? यही सोचते हुए उसने कहा—"पण्डित! कैसी बात है?" सेनक ने ऐसी बात कही कि बोधिसत्व के अतिरिक्त

दूसरा कोई उसका खण्डन नहीं कर सकता था। इसलिए बोधिसत्व ने अपने प्रज्ञा-बल से उसके मत का खण्डन करते हुए 'महाराज! सुनें' कह यह गाथा कही—

दासोव पञ्ञास्स यसस्सि बालो
अत्थेसु जातेसु तथा विधेसु
यं पण्डितो निपुणं संविधेति
सम्मोहमापज्जति तत्थ बालो;
एतम्पि दिस्वान अहं वदामि
पञ्ञेव सेय्यो न यसस्सि बालो॥३८॥

[वैसा अवसर आने पर यशस्वी मूर्ख प्रज्ञावान् का दास ही होता है। जिस बात को पण्डित ठीक से समझ लेता है, उस विषय में मूर्ख मूढ़ता को प्राप्त हो जाता है। यह बात भी देखकर में कहता हूँ कि यशस्वी मूर्ख की अपेक्षा प्रज्ञावान् ही श्रेष्ठ है॥३८॥]

जब बोधिसत्व ने इस प्रकार प्रज्ञा का प्रताप प्रदर्शित किया तो राजा बोला— "सेनक! यदि सामर्थ्य हो तो उत्तर दे।" उसे ऐसा हुआ जैसे कोठे में रखा हुआ धन खो गया हो। वह अप्रतिभ हो, सिर नीचा किये बैठकर सोचने लगा। यदि वह कोई और बात कहता तो हजार गाथाओं से भी यह जातक समाप्त न होता। जिस समय वह अप्रतिभ हो बैठा था, बड़ी बाढ़ लाने की तरह, बोधिसत्व ने प्रज्ञा ही की और भी प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

अद्धा हि पञ्ञाव सतं पसत्था
कन्ता सिरी भोगरता, मनुस्सा,
ञाणञ्च बुद्धानमतुल्यरूपं
पञ्ञं न अच्चेति सिरी कदाचि॥३९॥

[निश्चय से सत्पुरुषों ने प्रज्ञा की ही प्रशंसा की है। भोगों में रत मनुष्यों को ही लक्ष्मी प्रिय है। ज्ञान-वृद्धों का ज्ञान ही अतुलनीय है। लक्ष्मी कभी प्रज्ञा से पार नहीं पा सकती॥३९॥]

यह सुन राजा बोधिसत्व की व्याख्या से प्रसन्न हुआ। उसने बादलों की वर्षा के समान धन से बोधिसत्व की पूजा करते हुए गाथा कही—

यं तं अपुच्छिम्ह अकित्तयी नो
महोसध केवलधम्मदस्सि
गवं सहस्सं उसभञ्च नागं
आजञ्ञयुत्ते च रथे दस इमे,
पञ्हस्स वेय्याकरणेन तुट्ठो
ददामि ते गामवरानि सोळस ।।४०।।

[जो जो कुछ पूछा वह सब तूने बताया। हे महोषध ! तू ही केवल धर्मदर्शी है। मैं तेरे प्रश्नों के समाधान से सन्तुष्ट होकर हजार गौवें, बैल, हाथी, श्रेष्ठ घोड़े जुते ये दस रथ और सोलह श्रेष्ठ गांव देता हूँ।।४०।।]

बीसवें निपात में श्रीमन्द प्रश्न समाप्त

इसके बाद से बोधिसत्व का ऐश्वर्य्य बहुत बढ़ गया। इन सब बातों का उदुम्बर देवी ही विचार करती थी। उसकी सोलह वर्ष की आयु होने पर वह सोचने लगी—"मेरा छोटा भाई अब छोटा नहीं रहा। इसका ऐश्वर्य्य भी बहुत बढ़ गया। इसका विवाह करना योग्य है।" उसने यह बात राजासे कही। राजा ने यह बात सुनी तो प्रसन्न हुआ और बोला—"अच्छा ! तू उसे जना दे।" उसने उसे जानकारी कराई। जब उसने स्वीकार किया तो पूछा—"तो तात ! कुमारी ले आयें।" "शायद इनकी लाई हुई मेरे मन को न भाये, मैं स्वयं ही खोजूंगा" सोच बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"देवी ! कुछ दिन राजा को कुछ नहीं कहना। मैं लड़की स्वयं खोजकर अपनी रुचि की बात तुम्हें बता दूंगा।"

"तात ! ऐसा ही कर।"

उसने देवी को नमस्कार किया और अपने घर पहुँच मित्रों को संकेत कर, भेष बदल, धुनिये का सामान ले, अकेला ही उत्तर-द्वार से निकल उत्तर-यव-मज्झ गांव गया।

उस समय वहां का पुराना सेठ-कुल दरिद्र हो गया था। उस कुल की अमरा देवी नाम की कन्या सुन्दरी थी, सभी लक्षणों से युक्त थी और पुण्यवती थी। वह उस दिन प्रातःकाल ही पतली खिचड़ी पका, पिता के खेत पर ले जाने की इच्छा से घर से निकल उस रास्ते पर चली। बोधिसत्व ने उसे आते देख, सोचा—"यह स्त्री लक्षणों से युक्त है। यदि अविवाहिता हो तो मेरी चरण-सेविका होने के योग्य

है।" उसने भी उसे देखते ही सोचा—"यदि ऐसे पुरुष के घर में होऊँ तो मैं कुटुम्ब को पाल सकती हूँ।" बोधिसत्व ने सोचा—"मैं नहीं जानता कि यह विवाहित है अथवा अविवाहित ? हस्त-मुद्रा से मैं प्रश्न करता हूँ। यदि पण्डिता होगी तो समझ जायेगी।" उसने दूर ही खड़े रह मुट्ठी बांधी। उसने यह समझ कि यह मेरे विवाहित होने अथवा न होने की बात पूछता है, हाथ खोल दिया। वह समझ गया और समीप जाकर पूछा—"भद्रे ! तेरा क्या नाम है ?"

"स्वामी ! मेरा नाम वह है जो भूत, भविष्यत् अथवा वर्तमान में नहीं है।"

"भद्रे ! लोक में 'अमर' कोई नहीं है। तेरा नाम अमरा होगा।"

"स्वामी ! हां।"

"भद्रे ! खिचड़ी किसके लिए ले जा रही है ?'

"स्वामी ! पूर्व-देवता के लिए।"

"भद्रे ! माता-पिता ही पूर्व-देवता हैं। मालूम होता है तू पिता के लिये ले जा रही है ?"

"स्वामी ! ऐसा ही है।"

"तेरा पिता क्या करता है ?"

"एक के दो करता है।"

"एक के दो करने का मतलब होता है हल चलाना। मालूम होता है खेती करता है।"

"स्वामी ! हाँ।"

"तेरा पिता किस जगह हल चलाता है ?"

"जहाँ एक बार जाकर नहीं लौटते।"

"एक बार जाकर नहीं लौटने की जगह श्मशान है। भद्रे ! लगता है श्मशान के पास हल चलाता है।"

"स्वामी ! हाँ।"

"भद्रे ! क्या आज ही आयेगी ?"

"यदि आयेगा तो नहीं आऊँगी, नहीं आयेगा तो आऊँगी।"

"भद्रे ! मालूम होता है तेरा पिता नदी के तीर पर हल चलाता है। पानी के आने पर नहीं आयेगी, आने पर आयेगी।"

"स्वामी ! हाँ।"

इतनी बातचीत करके देवी ने पूछा—

"स्वामी ! यवागू पियेंगे ?"

बोधिसत्व ने सोचा, निषेध करना अमङ्गल होगा । बोला—"भद्रे ! पिऊँगा ।"

उसने यवागू का घड़ा उतारा । बोधिसत्व ने सोचा यदि बिना हाथ धोये और बिना हाथ धोने के लिए पानी दिये यवागू देगी तो इसे यहीं छोड़ चला जाऊँगा । उसने थाली में पानी लिया और उसे हाथ धोने को जल दे, खाली थाली हाथ में न दे, जमीन पर रख, घड़े को हिलाकर उसे यवागू से भर दिया ।

उसमें चावल कम (उबले?) थे । बोधिसत्व ने कहा—"भद्रे ! खिचड़ी बहुत गाढ़ी है ?" "स्वामी ! पानी नहीं मिला ।"

"मालूम होता है खेतों को भी पानी नहीं मिला होगा ?"

"स्वामी ! हाँ ।" उसने पिता के लिये यवागू रख बोधिसत्व को दिया । उसने पिया, मुँह धोया और बोला—"भद्रे ! मैं तुम्हारे घर जाऊँगा । मुझे मार्ग बता ।" उसने 'अच्छा' कह मार्ग बताते हुए एक-निपात की यह गाथा कही—

येन सत्तु बिळंगाच
द्विगुणपलासो च पुप्फितो,
येनादामि तेन वदामि
येन नादामि न तेन वदामि;
एस मग्गो यवमज्झकस्स
एतं छन्नपथं विजानहि ॥४१॥

[जहाँ सत्तु और कांजी (की दुकान) है और जहाँ पलास दुगना पुष्पित है, उससे दक्षिण (बाईं ओर नहीं) ओर—यही यवमज्झक का रास्ता है । इस ढके हुए रास्ते को पहचान ॥४१॥]

छन्नपथ प्रश्न समाप्त

वह उसके बताये रास्ते से ही घर पहुँचा । वहाँ अमरा देवी की मां ने देखते ही आसन दिया और पूछा—"स्वामी यवागू तैय्यार करूँ ?" "मां ! मेरी छोटी बहन अमरा देवी ने मुझे यवागू दिया है ।" वह समझ गई कि मेरी लड़की के लिये आया होगा । बोधिसत्व ने यह जानते हुए भी कि ये दरिद्र हैं पूछा—"मां ! मैं दर्जी हूँ । कुछ सीने को है ?" "स्वामी है । किन्तु मूल्य नहीं है ।" "मां ! मूल्य की अपेक्षा

नहीं है। ला सिऊँगा।" उसने पुराने वस्त्र लाकर दिये। जो जो वस्त्र वह लाती बोधिसत्व उन्हें समाप्त करते जाते। पुण्यवानों की करनी सफल होती है। उसने कहा—"मां! गली में बराबर वालों को सूचना दे दो।" उसने सारे गांव में सूचना दे दी। बोधिसत्व ने सिलाई का काम कर एक ही दिन में हजार पैदा कर लिये। बुढ़िया ने भी उसके लिये प्रातःकाल का भात पकाया और दिया। फिर पूछा—"तात! शाम को कितना पकाऊँ?" "मां! जितने इस घर में खाने वाले हैं उनके प्रमाण से।" उसने अनेक प्रकार के सूप-व्यञ्जन तथा बहुत सा भात पकाया। अमरा देवी भी शाम को सिर पर लकड़ियों का ढेर और गोद में पत्ते लिये जंगल से लौटी। उसने दरवाजे के सामने लकड़ियां फेंकी और पिछले द्वार से घर में प्रवेश किया। पिता और अधिक सन्ध्या होने पर घर लौटा। बोधिसत्व ने नाना प्रकार के श्रेष्ठ रसों से युक्त भोजन किया। अमरा देवी ने माता पिता के खा चुकने पर स्वयं खाया और फिर माता-पिता के पांव धोने के बाद बोधिसत्व के पांव धोये। वह उसकी जाँच करते हुए कुछ दिन वहीं रहा।

उसकी परीक्षा लेने के लिये बोधिसत्व ने एक दिन कहा—"भद्रे! आधी नाली भर धान लेकर, उससे मुझे खिचड़ी, पूवे और भात पका कर दे"। उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और वे धान कूट चूरे चावलों से यवागु, बीच के चावलों से भात और कणियों से पूए पकाकर, उनके अनुरूप व्यञ्जन तैयार कर बोधिसत्व को व्यञ्जन सहित यवागू दिया। मुख में रखते ही सारे मुँह को स्वाद का पता लग गया। उसने उसकी परीक्षा लेने के लिये ही 'भद्रे! यदि पकाना नहीं जानती तो मेरे धान क्यों बिगाड़े' कह थूक के साथ यवागू भी जमीन पर गिरा दिया। उसने बिना क्रोधित हुए 'स्वामी! यदि यवागू ठीक नहीं बना तो पूए खायें' कह पूए दिये। उसने उसके साथ भी वैसा ही किया। भात के साथ भी वैसा ही बरताव कर क्रुद्ध की भान्ति कहा—"यदि तू पकाना नहीं जानती तो मेरे तण्डुल क्यों बिगाड़े? अब तीनों को एक साथ मिला सिर से ले कर सारे शरीर पर पोत और दरवाजे पर बैठ।" उसने बिना क्रुद्ध हुए 'स्वामी! अच्छा' कहा और वैसा ही किया। उसने उसकी विनम्रता का परिचय पा कहा—"भद्रे! आ।" वह एक बार कहने से ही चली आई।

बोधिसत्व आते समय पान की थैली में एक वस्त्र के साथ हजार रख लाये थे। उन्होंने वह वस्त्र निकाल उसके हाथ में रखकर कहा—"भद्रे! अपनी सहेलियों के साथ स्नान कर, यह वस्त्र पहन कर आ।" उसने वैसा ही किया।

पण्डित ने पैदा किया हुआ तथा लाया हुआ सारा धन उसके माता-पिता को दिया और उन्हें निश्चिन्त कर उसे साथ ले नगर पहुंचा। वहाँ उसकी परीक्षा लेने के लिए उसने उसे द्वारपाल के घर बिठाया। फिर द्वार-पाल की भार्य्या को कह अपने निवासस्थान पर गया और वहां जाकर आदमियों को बुलाकर हजार देकर भेजा—"मैं अमुक घर में स्त्री को रख कर आया हूँ। यह हजार ले जाकर उसकी परीक्षा करो।" उन्होंने वैसा ही किया। उसने अस्वीकार कर दिये। बोली—"ये मेरे स्वामी के पांव की धूलि के भी समान नहीं हैं।" उन्होंने जाकर पण्डित से कहा। इसके बाद भी उसने तीन बार आदमी भेजे। चौथी बार कहा—"तो उसे हाथ से पकड़ खींच कर लाओ।" उन्होंने वैसा ही किया। बड़े ऐश्वर्य्य के बीच बैठे होने के कारण उसने बोधिसत्व को नहीं पहचाना। देखा तो वह हँसी और रोई। उसने दोनों बातों का कारण पूछा। वह बोली—"स्वामी! मैंने तुम्हारी सम्पत्ति देख सोचा कि यह सम्पत्ति यूं ही नहीं मिली होगी। पूर्व-जन्म में किये गये कुशल-कर्म के फलस्वरूप मिली होगी। ओह! पुण्यों का फल! यही सोच कर हँसी। और रोयी इसलिए कि अब यह पराई वस्तु पर हाथ साफ करने जा रहा है, इसलिए नरक जायेगा। तेरे प्रति करुणा होने से रोयी"। उसने उसकी परीक्षा कर उसकी शुद्धता जान ली और लोगों को कहा—"जाओ इसे वहीं ले जाओ।" फिर दूसरे दिन धुनिये का ही वेष बना, जाकर उसके साथ रात बिताई। फिर अगले दिन प्रातःकाल ही राज-कुल में प्रविष्ट हो उदुम्बरा देवी को सूचना दी।

उसने राजा को कह, अमरा देवी को सब अलंकारों से अलंकृत कर, बड़े भारी रथ में बिठवा, बड़े ठाट-बाट से बोधिसत्व के घर मंगवा मंगल-कार्य किया। राजा ने बोधिसत्व के लिये हजार की भेंट भेजी। द्वारपालों से लेकर सभी नागरिकों ने भेंटें भेजीं। अमरा देवी ने राजा की भेजी हुई भेंट के दो हिस्से कर एक हिस्सा राजा को भेजा। इसी तरह सारे नगरवासियों को भेंट भेज उसने नागरिकों का दिल जीत लिया। इसके बाद से बोधिसत्व उसके साथ एक होकर रहते हुए राजा के अर्थ और धर्म के अनुशासक बने रहे।

अमरा देवी की खोज समाप्त

एक दिन जब शेष तीन जने उसके पास आए हुए थे सेनक ने कहा—"भो! उस गृहपति-पुत्र महोषध से ही पार नहीं पा सकते। अब वह अपनी अपेक्षा भी चतुर एक भार्य्या ले आया है। क्या कहकर उसके और राजा के बीच में भेद पैदा करें?"

"आचार्य्य ! हम क्या जानें ? आप ही जानते हैं।" "अच्छा, चिन्ता न करो। उपाय है। मैं राजा की चूड़ा-मणि चुरा ले आऊँगा। पक्कस तू स्वर्ण माला ले आना। काविन्द तू कम्बल ले आना और देविन्द ! तू स्वर्ण-पादुका ले आना।" वे चारों जने ढंग से वे चीजें ले आये।

तब बिना पता लगने दिये ये चीज़ें महोषध पण्डित के घर भेजने का निश्चय किया। सेनक ने मणि को तक्र के घड़े में डाल दासी के हाथ भेजा और उसे कहा—"यदि कोई और यह तक्र का घड़ा ले तो उसे न देकर यदि महोषध पण्डित के घर में कोई तक्र ले तो उसे घड़े समेत ही देकर आना।" वह पण्डित के गृह-द्वार पर पहुँच इधर उधर घूमती हुई आवाज लगाती थी—"तक्र ले लो।" द्वार पर खड़ी हुई अमरा देवी ने उसकी करतूत देखी तो सोचा कि कोई खास बात होगी। यह अन्यत्र क्यों नहीं जाती है। उसने इशारे से सभी दासियों को घर में जाने को कह स्वयं उस दासी को आवाज़ दी—"अरी आ। तक्र लेंगे।" जब वह आई तो उसने दासियों को आवाज़ दी। उन्हें न आता देख उसने उसी दासी को कहा—"जा दासियों को बुलाकर ला।" फिर घड़े में हाथ डालकर मणि देख ली। जब वह लौटी तो पूछा—

"तू किसके पास है ?"

"मैं सेनक पण्डित की दासी हूँ।"

तब उसका और उसकी मां का नाम पूछकर कहा—"तो तक्र दे" वह बोली—"आप लेती हैं तो आपसे मैं मूल्य लेकर क्या करूँगी ? घड़े के साथ ही ले लें।"

"तो जा।"

उसे विदा कर उसने अपने पास लिख रखा कि सेनकाचार्य्य ने अमुक दासी की अमुक पुत्री के हाथ राजा की चूड़ा-मणि भेंट-स्वरूप भेजी।

कुक्कुस ने चमेली के फूलों को चंगेर में रखकर स्वर्ण-माला भिजवाई। काविन्द ने पत्तों की टोकरी में कम्बल रखकर भिजवाया। देविन्द ने जौ की मुट्ठी के अन्दर लपेट कर स्वर्ण-पादुका भिजवाई। उसने वे सभी चीजें लीं, कागज पर नाम आदि चढ़ा, बोधिसत्व को सूचित कर रख लीं। वे चारों जने भी राजकुल पहुँचे और पूछा—"देव ! क्या आप चूड़ामणि नहीं धारण करते ?" राजा बोला—"लाओ। पहनूंगा" मणि नहीं दिखाई दी। शेष चीज़ें भी नहीं दिखाई

दीं। चारों बोले—"देव ! आपका आभरण महोषध पण्डित के घर में हैं। वह स्वयं उन्हें धारण करता है। महाराज ! वह तुम्हारा शत्रु है।" इस प्रकार उन्होंने राजा का मन खट्टा कर दिया।

उसके दूतों ने पण्डित को सूचना दी। उसने सोचा कि राजा से भेंट करके पता लगाऊँगा, इसलिए राजा की सेवा में पहुँचा। राजा ने क्रोध के मारे कहा—"मैं नहीं जानता कि यहां आकर क्या करेगा ?" उसने उसे अपने पास आने नहीं दिया। पण्डित ने राजा को क्रुद्ध जाना तो वह अपने निवास-स्थान को ही लौट गया। राजाज्ञा हुई—"उसे पकड़ो।" पण्डित को जब अपने दूतों से पता लगा तो उसने चल देने का निश्चय किया। उसने अमरा देवी को संकेत किया और भेष बदल कर नगर से निकल दक्षिणयव मज्झक गांव पहुंच एक कुम्हार के घर में कुम्हार का काम करने लग गया।

सारे नगर में हल्ला हो गया कि पण्डित भाग गया। सेनक आदि चारों जनों ने कहना आरम्भ किया—"चिन्ता न करो। क्या हम अपण्डित हैं।" उन्होंने बिना एक दूसरे को सूचना दिये अमरा देवी के पास भेंट भेजी। उसने चारों द्वारा भिजवाई भेंट ले ली और कहला भेजा कि अमुक अमुक समय आयें। आने पर उसने उनका सिर मुन्डवाया और गूंह के कुएं में फिकवा उन्हें बहुत कष्ट दिया। फिर राजा को सूचना दे, उनके साथ चारों रत्न लिवा राज-भवन पहुँची। वहां राजा को प्रणाम कर खड़ी हुई और बोली—"देव ! महोषध पण्डित चोर नहीं है। चोर ये हैं। इनमें सेनक मणि-चोर है। पुक्कुस स्वर्ण-माला चोर है। काविन्द कम्बल चोर है और देविन्द स्वर्ण पादुका चोर। अमुक महीने, अमुक दिन, अमुक दासी की अमुक दासी-कन्या के हाथ इन्होंने ये भेंटें भेजी। ये पत्र देखें। अपनी चीज़ें लें और चारों चोरों को संभालें।" इस प्रकार उन चारों जनों को महा विपत्ति में डाल, राजा को नमस्कार कर घर गई। राजा ने बोधिसत्व के भाग जाने की आशंका से और दूसरे पण्डित मन्त्री न होने के कारण उन्हें कुछ नहीं कहा। केवल इतना ही कहा—"नहा कर अपने अपने घर जाओ।"

चारों रत्न-चोर समाप्त

उस समय छत्र में रहने वाली देवी को जब बोधिसत्व की धर्म-देशना सुननी नहीं मिली तो उसने उसका कारण जान पण्डित को लाने का उपाय करने की बात सोची। उसने रात के समय छत्र की गोलाई के विवर (?) में खड़े होकर चौथे-

निपात में देवता-प्रश्न में आये हुए चारों प्रश्न पूछे। राजा ने उनका उत्तर न जानने के कारण 'दूसरे पण्डितों से पूछूँगा" कह एक दिन की मोहलत मांगी। फिर उसने पण्डितों को आने के लिए कहला भेजा। वे बोले—'सिर मुण्डा होने के कारण हमें बाजार से गुजरते लज्जा आती है।' राजा ने सिर ढकने के लिए चार वस्त्र भिजवाये—'इन्हें सिर पर रख आयें।' उन्हें सिर के लिए पट्टे मिले तो वे आकर बिछे आसनों पर बैठे। राजा ने पूछा—सेनक! आज रात छत्र में रहने वाली देवी ने आकर मुझसे चार प्रश्न पूछे। मैंने न जानने के कारण कहा है कि मैं पण्डितों से पूछूँगा। अब मुझे इन प्रश्नों के उत्तर कहें—

"हन्ति हत्थेहि पादेहि मुखञ्च परिसुम्भति
स वे राजपियो होति कं तेन अभिपस्ससि ॥४२॥

[हाथ-पांव से पीटता है, मुंह को भी पीटता है। हे राजन्! वह प्रिय होता है। तू ऐसा किसे देखता है? ॥४२॥]

सेनक 'क्या मारता है, क्या मारता है' कहकर प्रलाप करता रहा। उसे न यह सिरा दिखाई दिया और न वह सिरा। शेष भी प्रतिहत हो गये। राजा को अफसोस हुआ। रात को फिर देवी ने पूछा—"प्रश्नों का उत्तर ज्ञात हुआ?" राजा बोला—"चारों पण्डितों से पूछा, वे भी नहीं जानते?" देवी बोली—"वे क्या जानेंगे! महोषध को छोड़ और कोई इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता। यदि उसे बुलवा कर इन प्रश्नों का समाधान नहीं करायेगा तो मैं इस जलते हुए हथौड़े से तेरा सिर फोड़ दूंगी।" इस प्रकार राजा को डराकर उसने यह भी कहा—"महाराज आग की आवश्यकता होने पर जुगनू को जलाना और दूध की आवश्यकता होने पर (किसी जानवर के) सींग को दूहना उचित नहीं।" यह कह पांचवें निपात के इन खद्योत-प्रश्नों का वर्णन किया—

कोनु सन्तम्हि पज्जोते अग्गिपरियेसनं चरं,
अद्दक्खि रत्तिं खज्जोतं जातवेदं अमञ्जथ ॥४३॥
स्वास्स गोमयचुण्णानि अभिमत्थं तिणानि च,
विपरीताय सञ्ञाय नासक्खि सज्जले तवे ॥४४॥
एवम्पि अनुपायेन अत्थं न लभते मगो,
विसाणतो गवं दोहं यत्थ खीरं न विन्दति ॥४५॥

विविधेहि उपायेहि अत्थं पप्पोन्ति माणवा,
निग्गहेन अमित्तानं मित्तानं पग्गहेन च ॥४६॥
सेणिमोक्खोपलाभेन वल्लभानं नयेन च,
जगतिं जगतीपाला आवसन्ति वसुंधरं ॥४७॥

[आग (की आवश्यकता) होने पर कोई आग खोजने निकला। उसने रात को जुगनू देखे और उन्हें आग मान उन पर गोबर का चूर्ण और तिनके रखे। अपनी बेसमझी के कारण वह आग नहीं पैदा कर सका। इसी प्रकार उल्टे उपाय से मूर्ख आदमी का काम नहीं बनता जैसे गौ के दूध-रहित सींग को दोहने से दूध नहीं निकलता। नाना उपायों से आदमी की अर्थ-सिद्धि होती है—शत्रुओं का निग्रह करने से और मित्रों को बढ़ावा देने से। राजा लोग श्रेणी के मुखियों तथा प्रिय अमात्यों के व्यवहार से वसुन्धरा पर स्वामित्व करते हैं ॥४३-४७॥]

खद्योतपनक प्रश्न समाप्त

मृत्यु से भयभीत राजा ने फिर एक दिन चारों अमात्यों को बुलवाया और आज्ञा दी—"तात! तुम चारों, चार रथों में बैठ, चारों नगर-द्वारों से निकल कर जाओ और जहां कहीं भी मेरे पुत्र महोषध पण्डित को देखो, वहीं से सत्कार करके शीघ्र लाओ।" उनमें से तीन जनों ने पण्डित को नहीं देखा। किन्तु जो दक्षिण द्वार से निकला था उसने देखा कि बोधिसत्व मिट्टी लाया है और आचार्य्य का चाक घुमाकर, मिट्टी पुते शरीर से, घास पर बैठा, मुट्ठी-मुट्ठी बांधकर अल्प-सूप वाले जौ-भात को खा रहा है। उसने ऐसा क्यों किया? उसने यही सोचकर ऐसा किया कि राजा पण्डित है। उसे सन्देह हो गया है कि महोषध पण्डित राज्य लेगा। जब वह सुनेगा कि कुम्हार का काम करके जीविका चला रहा है तो वह सन्देह रहित हो जायेगा। उसने जब जाना कि अमात्य उसके पास आया है तो सोचा कि मेरा ऐश्वर्य्य फिर पूर्ववत् हो जायेगा और मैं अमरा देवी के हाथ से तैयार किया गया नाना प्रकार का श्रेष्ठ भोजन ही करूँगा। उसके हाथ में जो भोजन का कौर था, उसे छोड़ जाकर उसने मुंह धो लिया। उसी क्षण वह आ पहुँचा। वह सेनक के पक्ष का ही था। उसने बोधिसत्व को ठेस पहुंचाते हुए 'पण्डित! आचार्य्य सेनक का कहना ही कल्याणकारी है। तेरे ऐश्वर्य्य की हानि होने पर तेरी वैसी प्रज्ञा से कुछ सहारा नहीं मिला। अब मिट्टी पुते शरीर से, घास के आसन पर बैठा ऐसा भोजन कर रहा है' कह दसवें निपात के भूरि-प्रश्न में आई हुई यह पहली गाथा कही—

सच्चं किरत्वम्पि भूरिपञ्ञो
या तादिसी सिरि धिती मुतीच,
न तायते भाववसूपनीतं
यो यवकं भुञ्जसि अप्पसूपं ॥४८॥

[आचार्य्य सेनक ने सत्य ही कहा था। हे महाप्रज्ञ! तेरा वैसा ऐश्वर्य्य, श्री, धृति और बुद्धि भी अभाग्य के समय सहायक नहीं होती। यहां अल्प-सूप जौ खा रहा है ॥४८॥]

तब उसे बोधिसत्व ने 'मूर्ख! मैं अपने प्रज्ञाबल से अपने उस ऐश्वर्य्य को पुनः प्राप्त करने की इच्छा से ऐसा करता हूँ' कह ये दो गाथायें कहीं—

सुखं दुक्खेन परिपाचयन्तो
कालाकालं विचिनं छन्दछन्नो,
अत्थस्स द्वारानि अवापुरन्तो
तेनाहं तुस्सामि यवोदनेन ॥४९॥
कालञ्च ञत्वा अभिजीहनाम
मन्तेहि अत्थं परिपाचयित्वा,
विजम्हिस्सं सीहविजम्हितानि
तायिद्धिया दक्खसि मं पुनरपि ॥५०॥

[दुख द्वारा सुख की प्राप्ति का प्रयत्न करता हुआ, समय असमय का विचार कर स्वेच्छा से छिपा हुआ, अपने ऐश्वर्य्य का द्वार पुनः खोलने की कामना से मैं जौ के भोजन से संतुष्ट होता हूँ ॥४९॥ प्रयत्न करने का उचित समय जानकर अपने ज्ञान-बल से उद्देश्य की पूर्ति कर सिंह के जुम्हाई लेने की तरह जुम्हाई लूंगा। तू फिर भी मुझे उस ऋद्धि से युक्त देखेगा ॥५०॥]

तब उसे अमात्य ने कहा—"पण्डित! छत्र में रहने वाले देवता ने राजा से प्रश्न पूछा। राजा ने चारों पण्डितों से प्रश्न किया। एक भी प्रश्न का उत्तर न दे सका। इसलिए राजा ने मुझे तेरे पास भेजा है।"

"ऐसा होने पर भी तू प्रज्ञा का प्रताप नहीं देखता है। ऐसे समय ऐश्वर्य्य सहायक नहीं होता, प्रज्ञावान का ही सहारा होता है" कह बोधिसत्व ने प्रज्ञा का बखान किया। तब अमात्य ने 'पण्डित जहां दिखाई दे, वहीं से नहला कर, कपड़े पहना

कर लाओ' राजाज्ञा होने के कारण, राजा के दिए हुए हजार और दुशाले का जोड़ा बोधिसत्व के हाथ में रखा। कुम्भकार डरा कि मैं ने महोषध-पण्डित से नौकर का काम लिया। बोधिसत्व ने उसे 'आचार्य ! डरें नहीं। तुम्हारा हम पर बहुत उपकार है' कह, उसे निश्चिन्त कर, हजार दिये और मिट्टी पुते शरीर से ही रथ में बैठ नगर में प्रवेश किया।

अमात्य ने राजा को सूचना भेजी। राजा ने पूछा—"तात ! तूने पण्डित को कहां देखा ?" "देव ! दक्षिणयव मज्झक ग्राम में कुम्हार का काम करके जीवन यापन कर रहा था। यह कहने पर कि आपने बुलाया है, बिना स्नान किये ही, मिट्टी पुते शरीर से ही चला आया है।" राजा ने सोचा,"यदि मेरा शत्रु होता तो ऐश्वर्य्य-शाली ढंग से रहता। यह मेरा शत्रु नहीं है।" उसने कहलाया, "मेरे पुत्र को कहो कि अपने घर जाकर, नहाकर, अलंकृत होकर, जैसे मैंने कहा है वैसे ही होकर आये।" यह बात सुन पण्डित ने वैसा ही किया और आया। प्रविष्ट होने की आज्ञा होने पर राजा को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हुआ। राजा ने उससे कुशल-क्षेम पूछ, पण्डित की परीक्षा करते हुए यह गाथा कही—

सुखी हि एके न करोन्ति पापं
अवण्णसंसग्गभया पुनेके,
पहू समानो विपुलत्थचिन्ती
किं कारणा मे न करोसि दुक्खं ॥५१॥

[कुछ लोग सुख में संतोष पाय मान नहीं करते, कुछ लोग निन्दा के भय से पाप नहीं करते। तू सामर्थ्यवान् और नाना प्रकार से विचारवान् है, तूने मुझे क्यों दुखी नहीं किया ?॥५१॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

न पण्डिता अत्तसुखस्स
पापानि कम्मानि समाचरन्ति,
दुक्खेन फुट्ठा खलितत्तापि सन्ता
दा च दोसा न जहन्ति ॥५२॥

[आत्म-सुख के लिए पण्डित पाप-कर्म नहीं करते। दुखी होने पर और ऐश्वर्य-विहीन हो जाने पर इच्छा तथा द्वेष के वशी-भूत हो धर्म नहीं छोड़ते हैं ॥५२॥]

फिर राजा ने उसकी परीक्षा लेने के लिए 'क्षत्रिय-माया' की बात करते हुए यह गाथा कही—

येन केनचि वण्णेन मुदुना दारुणेन वा,
उद्धरे दीनमत्तानं पच्छा धम्मं समाचरे ।।५३।।

[मृदु अथवा कठोर किसी उपाय से भी हो पहले अपनी दीनता दूर करे। पीछे धर्माचरण करे ।।५३।।]

तब बोधिसत्व ने वृक्ष की उपमा देते हुए यह गाथा कही—

यस्स रुक्खस्स छायाय निसीदेय्य सयेय्य वा,
न तस्स साखं भञ्जेय्य मित्तदुब्भो हि पापको ।।५४।।

[जिस पेड़ की शाखा में बैठे वा लेटे, उस शाखा को न तोड़े। मित्र-द्रोह पाप-कर्म है ।।५४।।]

इतना कह 'महाराज ! यदि जिस पेड़ के नीचे आदमी लेटा या बैठा हो उसकी शाखा तोड़ने से भी मित्र-द्रोह होता है तो आपने तो मेरे पिता को महान् ऐश्वर्य्य पर प्रतिष्ठित किया और मुझ पर भी महान् कृपा की तो तुम्हारे प्रति यदि मैं दुर्व्यवहार करूँ तो मैं कैसे मित्र-द्रोही नहीं होऊँगा' कह हर प्रकार से अपना अमित्र-द्रोही-भाव प्रकट किया। फिर राजा को दोष देते हुए कहा—

यस्सा हि धम्मं मनुजो विजञ्ञा
येचस्स कङ्खं विनयन्ति सन्तो,
तं हिस्स दीपञ्च परायणञ्च
न तेन मित्तं जरयेथ पञ्ञो ।।५५।।

[आदमी जिससे 'धर्म' जाने और जो उसकी सन्देह निवृत्ति करें वे ही उसके शरण-स्थान होते हैं। बुद्धिमान् आदमी को चाहिए कि उससे मैत्री बनाये रखे ।।५५।।]

अब उसे उपदेश देते हुए ये दो गाथायें कहीं—

अलसो गिही कामभोगी न साधु
असञ्ञतो पब्बजितो न साधु
राजा न साधु अनिसम्मकारी
यो पण्डितो कोधनो तं न साधु ।।५६।।

निसम्म खत्तियो कयिरा नानिसम्म दिसम्पति,
निसम्म कारिनो राज यसो कित्तिच वड्ढति ॥५७॥

[कामभोगी आलसी गृहस्थ अच्छा नहीं । असंयमी प्रव्रजित अच्छा नहीं । अविचारपूर्वक कार्य्य करने वाला राजा नहीं । जो पण्डित क्रोधी हो वह अच्छा नहीं ॥५६॥ क्षत्रिय को चाहिए कि विचार पूर्वक काम करे । राजा को चाहिए कि बिना विचारे काम न करे । हे राजन ! विचारपूर्वक कार्य्य करने वाले का ऐश्वर्य्य और कीर्ति बढ़ती है ॥५७॥]

भूरि-प्रश्न समाप्त

ऐसा कहने पर राजा ने बोधिसत्व को उठाये हुए श्वेत-छत्र के नीचे राज-सिंहासन पर बिठाकर स्वयं नीचे आसन पर बैठ कहा—"पण्डित ! श्वेत-छत्र में रहने वाली देवी ने मुझे चार प्रश्न पूछे । मैंने वे प्रश्न पण्डितों से पूछे । चारों पण्डित नहीं बता सके । तात ! प्रश्नों का उत्तर दे ।"

"महाराज ! चाहे छत्र में रहने वाली देवी हो, चाहे चातुर्महाराज आदि देवता हों, जिस किसी का भी पूछा हुआ प्रश्न हो उत्तर दूंगा । महाराज ! देवता का पूछा हुआ प्रश्न कहें ।"

राजा ने जैसे देवी से पूछा था, उसी प्रकार कहते हुए पहली गाथा कही—

हन्ति हत्थेहि पादेहि मुखञ्च परिसुम्भति
स वे राज पियो होति कं तेनमभिपस्ससि ॥५८॥

[हाथ-पाँव से पीटता है, मुँह को भी पीटता है । हे राजन ! वह प्रिय होता है । तू ऐसा किसे देखता है ? ॥५८॥]

गाथा सुनते ही बोधिसत्व को आकाश में चन्द्रमा के प्रकट होने के समान उसका अर्थ प्रकट हो गया । बोधिसत्व ने कहा—"महाराज ! सुनें । जब मां की गोद में लेटा हुआ बच्चा प्रसन्नतापूर्वक खेलता हुआ माता को हाथ-पांव से पीटता है, केसों को नोचता है, मुँह पर मुक्के मारता है, तब मां 'अरे चोर-पुत्र ! ऐसे क्यों मारता है' आदि प्रिय-वचन कहती हुई, प्रेम के आधिक्य से, उसका आलिंगन कर स्तनों के बीच में लिटा चूमती है । ऐसे समय वह बच्चा उसका प्रियतर होता है, उसी प्रकार पिता का ।"

इस प्रकार आकाश में सूर्य्य उगाने की तरह स्पष्ट करके प्रश्नोत्तर दिया ।

यह देख छत्र की गोलाई के विवर में से देवी ने निकल, आधा शरीर बाहर प्रकट कर मधुर-स्वर से साधुकार दिया—"प्रश्नोत्तर ठीक दिया गया।" फिर दिव्य पुष्प-गन्ध से रतन-चङ्गेर भर बोधिसत्व की पूजा की और अन्तर्धान हो गई। राजा ने भी पुष्पादि से बोधिसत्व की पूजा की। फिर दूसरे प्रश्न की बात कर बोधिसत्व के 'महाराज! पूछें' कहने पर दूसरी गाथा कही—

अक्कोसति यथाकामं आगमञ्चस्स न इच्छति,
स वे राज पियो होति कं तेनमभिपस्ससि॥५९॥

[यथेच्छ गाली देती है और उसके आगमन तक की इच्छा नहीं करती। राजन! वही प्रिय होता है। तू ऐसा किसे देखता है?॥५९॥]

तब बोधिसत्व ने समझाया—"महाराज! सात आठ वर्ष की आयु हो जाने पर जब बच्चा संदेश ले जाने योग्य हो जाता है तो माता उसे कहती है—"खेत पर जा। दुकान पर जा।" वह कहता है—"यदि यह खाने को देगी, तो जाऊँगा।" माता 'हन्त! पुत्र' कह खाने को देती है। वह खा चुकने पर बोलता है, 'मां! तू तो ठण्डी छाया में बैठती है, मैं बाहर काम करने जाऊँ' और हाथ मुँह बनाकर नहीं जाता है। मां गुस्सा होकर दण्डा ले उसका पीछा करती है—"तू मेरे पास से खा कर अब खेत में कुछ भी नहीं करना चाहता है!" वह जल्दी से भाग जाता है। वह उसे नहीं पकड़ सकती, तो कहती है—"अरे दरिद्र! जा। चोर तेरे टुकड़े टुकड़े कर दें।" इस प्रकार यथेच्छ गालियां देती हैं। जो मुँह से कहती है, उससे प्रतीत होता है कि वह उसका लौट कर आना तनिक भी पसन्द नहीं करती। वह दिन भर खेलता रहकर शाम को घर आने का साहस न कर सम्बन्धियों के घर चला जाता है। माता भी उसके आने की प्रतीक्षा करती है। जब उसे आता नहीं देखती तो सोचती है कि शायद वह आने में डरता है। वह शोकाकुल हो आंखों में आंसू भर सम्बन्धियों के घर खोजती है। वहां पुत्र को देख, उसका आलिंगन करती है, चूमती है और दोनों हाथों से जोर से पकड़ प्रेम से विह्वल हो कहती है—"पुत्र! मेरे कहने का भी ख्याल करता है!" 'इस प्रकार महाराज! क्रोध के समय मां को पुत्र और भी प्रिय हो उठता है' कह दूसरे प्रश्न का भी समाधान किया। देवी ने उसी प्रकार पूजा की। राजा ने भी पूजा कर तीसरे प्रश्न की बात कह "महाराज! पूछें" कहने पर यह गाथा कही—

अब्भक्खाति अभूतेन अलिकेनमभिसारयं,
स वे राज पियो होति कं तेनमभिपस्ससि ॥६० ॥

[झूठी बात कही जाती है, झूठा दोषारोपण किया जाता है। राजन! वही प्रिय होता है। तू ऐसा किसे देखता है ?॥६०॥]

तब बोधिसत्व ने कहा—"महाराज ! जब लोगों का संकोच कर एकान्त में पति-पत्नि मिलते हैं तब परस्पर खेलते हुए वे एक दूसरे पर मिथ्यारोप करते हैं, 'तेरा मुझसे प्रेम नहीं है, तेरा हृदय अन्यत्र है।' तब वे परस्पर और भी अधिक प्रेम करते हैं। महाराज ! इसी प्रकार इस प्रश्न का समाधान समझें।"

देवता ने वैसे ही पूजा की। राजा ने भी पूजाकर अगले प्रश्न की बात कर 'महाराज ! पूछें' कहने पर चौथी गाथा कही—

हरं अन्नञ्च पानञ्च वत्थसेनासनानि च,
अञ्ञदत्थुहरा सन्ता ते वे राज पिया होन्ति कं तेनमभिपस्ससि ॥६१॥

[अन्न, पान, वस्त्र तथा शयनासन लेजाते हैं। वे निश्चय से ले-जाते हैं। राजन् ! वे प्रिय होते हैं। तू ऐसा किसे देखता है ? ॥६१॥]

तब बोधिसत्व ने समाधान किया—महाराज ! यह प्रश्न धार्मिक श्रमण-ब्राह्मणों से सम्बन्ध रखता है। श्रद्धावान् कुल के लोग इस लोक तथा पर-लोक में श्रद्धावान् हो देते हैं, देने की इच्छा करते हैं। वैसे लोगों से श्रमण-ब्राह्मण जब याचना करते हैं और जो मिलता है उसे ले जाते हैं, खा लेते हैं तो वे उन्हें खाते-ले जाते देख उनसे और भी प्रेम करते हैं कि हमारे ही पास से अन्नादि ग्रहण करते हैं। इस प्रकार वे निश्चय से याचना करने वाले तथा ले जाने वाले प्रिय होते हैं।

इस प्रश्न का उत्तर देने पर तो देवता ने वैसे ही पूजा की और साधुकार दे सात रत्नों से भरी रत्न-चङ्गेर, बोधिसत्व के चरणों में अर्पण की—"पण्डित ! लो" राजा ने भी प्रसन्न हो उसे सेनापति बना दिया। इसके बाद से बोधिसत्व का ऐश्वर्य्य बहुत हो गया।

देवता प्रश्न समाप्त

चारों जने फिर चिन्ता करने लगे—"अब क्या करें ! गृहपति-पुत्र का ऐश्वर्य्य तो और बढ़ गया ?" सेनक बोला—"अच्छा रहो। मुझे उपाय सूझ गया है। हम गृहपति -पुत्र के पास जाकर कहेंगे कि रहस्य की बात किसे कहनी चाहिए ?

वह कहेगा किसी को नहीं। तब राजा को यह कहकर कि देव ! गृहपति पुत्र तुम्हारा शत्रु हो गया है, राजा को उससे फोड़ देंगे।" यह सोच वे चारों जने पण्डित के घर गये और कुशल क्षेम पूछ कहा—"पण्डित ! हम प्रश्न पूछना चाहते हैं।" "पूछो" कहने पर, सेनक ने प्रश्न किया—

"पण्डित ! आदमी को कहाँ प्रतिष्ठित होना चाहिए ?"

"सत्य में।"

"सत्य में प्रतिष्ठित हो क्या करना चाहिए ?"

"धन पैदा करना चाहिए।"

"धन पैदा करके क्या करना चाहिए ?"

"मन्त्र ग्रहण करना चाहिए।"

"मन्त्र ग्रहण करके क्या करना चाहिए।"

"अपना रहस्य दूसरे को नहीं कहना चाहिए।"

वे 'पण्डित ! अच्छा' कह प्रसन्न हुए और सोचा कि अब गृहपति-पुत्र को पराजित करेंगे। वे राजा के पास पहुंचे और कहने लगे कि महाराज ! गृहपति-पुत्र तुम्हारा शत्रु हो गया है।"

"मैं तुम्हारा विश्वास नहीं करता। वह मेरा शत्रु नहीं होगा।"

"महाराज ! यदि विश्वास नहीं करते हैं तो पण्डित से ही पूछें कि पण्डित अपना रहस्य किसे बताना चाहिए ? यदि शत्रु नहीं होगा तो कहेगा कि अमुक को बताना चाहिए, यदि शत्रु होगा तो कहेगा किसी को नहीं बताना चाहिए। मनोरथ पूरा होने पर ही बताना चाहिए। तब हमारी बात पर विश्वास कर सन्देह-रहित होना।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और एक दिन जब सभी आकर बैठे थे तो बीसवें निपात के पञ्च-पण्डित-प्रश्न की पहली गाथा कही—

पञ्च पण्डिता समागता
पञ्हो मे पटिभाति तं सुणाथ;
निन्दियमत्थं पसंसियं वा
कस्सेवाविकरेय्य गुय्हमत्थं ॥६२॥

[पांचों पण्डित इकट्ठे हुए हो। जो प्रश्न मुझे सूझा है वह सुनो। चाहे निन्दनीय हो, चाहे प्रशंसनीय हो, गुह्य-बात किस पर प्रकट करनी चाहिए ? ॥६२॥]

ऐसा कहने पर सेनक ने राजा को भी अपने ही में सम्मिलित करने के विचार से यह गाथा कही—

त्वं नो आविकरोहि भूमिपाल
भत्ता भारसहो तुवं वदेतं,
तव छन्दञ्च रुचिञ्च सम्मसित्वा,
अथ वक्खन्ति जनिन्द पञ्च धीरा ।।६३।।

(हे भूमिपाल ! पहले आप ही इस बात को कहें। आप ही हमारे स्वामी हैं। आप ही हमारा भार वहन करने वाले हैं। आपकी इच्छा और रुचि का विचार करने के बाद हे राजन् ! पाञ्च पण्डित भी कहेंगे ।।६३।।]

राजा ने रागाभिभूत होने के कारण यह गाथा कही—

या सीलवती अनञ्ञाधेय्या
भत्तुच्छन्द वसानुगा मनापा,
निन्दियमत्थं पसंसियं वा
भरियायाविकरेय्य गुय्हमत्थं ।।६४।।

[जो शीलवती हो, पतिव्रता हो, पति की इच्छा के अनुरूप चलने वाली हो तथा प्रिया हो, ऐसी भार्य्या को निन्दित हो अथवा प्रशंसित हो, गुह्य बात प्रकट करे ।।६४।।]

तब सेनक सन्तुष्ट हुआ कि मैंने राजा को भी अपने बीच में शामिल कर लिया। उसने अपनी बात स्पष्ट करते हुए गाथा कही—

यो किच्छगतस्स आतुरस्स
सरणं होति गती परायणञ्च,
निन्दियमत्थं पसंसियं वा
सखिनोवाविकरेय्य गुह्यमत्थं ।।६५।।

[जो दरिद्र, दुखी का शरण-स्थान होता है, गति होता है और आधार होता है, ऐसे सखा को निन्दित हो चाहे प्रशंसित हो सभी रहस्य बताना चाहिए ।।६५।।]

तब राजा ने पुक्कस से पूछा—"हे पुक्कस ! तुझे कैसे दिखाई देता है ? रहस्य किसे बताना चाहिए ?" उसने यह गाथा कही—

जेट्ठो अथ मज्झिमो कणिट्ठो
सो चे सीलसमाहितो ठितत्तो,
निन्दियमत्थं पसंसियं वा
भातुवाविकरेय्य गुय्हमत्थं ॥६६॥

[ज्येष्ठ हो, बराबर का हो अथवा छोटा भाई हो, यदि वह संयत और स्थिर हो तो उसे निन्दित हो अथवा प्रशंसित हो सभी प्रकार का रहस्य बताना चाहिये ॥६६॥]

तब राजा ने काविन्द से पूछा। उसने यह गाथा कही—

यो वे हृदयस्स पद्धगु
अनुजातो पितरं अनोमपञ्ञो,
निन्दियमत्थं पसंसियं वा
पुत्तस्साविकरेय्य गुय्हमत्थं ॥६७॥

[जो आज्ञाकारी हो, जो वंश परम्परा चलाने वाला हो और जो प्रज्ञावान हो ऐसे पुत्र को निन्दित अथवा प्रशंसित गुह्य बात बता देनी चाहिए ॥६७॥]

तब राजा ने देविन्द से पूछा। वह यह गाथा बोला—

माता दिपदा जनिन्द सेट्ठ
यो तं पोसेति छन्दसा पियेन,
निन्दियमत्थं पसंसियं वा
मातुयाविकरेय्य गुह्यमत्थं ॥६८॥

[हे द्विपदों में श्रेष्ठ जनेन्द्र ! जो माता इच्छा और प्रेम से पोषण करती है, उसे निन्दित या प्रशंसित कैसी भी गूढ़ बात हो बताये ॥६८॥]

उन्हें पूछने के बाद राजा ने पण्डित से पूछा—पण्डित ! तुझे कैसे दिखाई देता है ? उसने यह गाथा कही—

गुय्हस्स हि गुय्हमेव साधु
नहि गुह्यस्स पसत्थमाविकम्मं,
अनिप्फादाय सहेय्य धीरो
निप्फन्नत्थो यथासुखं भणेय्य ॥६९॥

[गुप्त बात का गुप्त रहना ही अच्छा है। गुप्त बात का प्रकट होना अच्छा नहीं। धीर पुरुष को चाहिए कि जब तक काम न बन जाय तब तक गूढ बात को मन में रखे। जब काम पूरा हो जाये तब सुखपूर्वक मुँह खोले ।।६६।।]

पण्डित के ऐसा कहने से राजा असन्तुष्ट हो गया। तब सेनक और राजा परस्पर एक दूसरे का मुंह देखने लगे। बोधिसत्व ने उनकी करतूत देखते ही समझ लिया कि इन चारों जनों ने पहले ही राजा का मन खट्टा कर दिया होगा। और अब परीक्षा लेने के लिये यह प्रश्न पूछा गया होगा। उनकी बातचीत होते होते ही सूर्य्यास्त हो गया। दीपक जल गये। पण्डित ने सोचा, "राजाओं के काम महत्वपूर्ण होते हैं। न मालूम क्या काम हो? शीघ्र ही विदा होना चाहिये।" फिर आसन से उठ, राजा को नमस्कार कर बाहर जाते हुए सोचने लगा और निश्चय किया—'इनमें से एक का कहना है कि गुप्त बात मित्र को बता देनी चाहिये। एक का कहना है भाई को, एक का कहना है पुत्र को और एक का कहना है कि मां को बता देनी चाहिये। इन्होंने ऐसा किया ही होगा। मैं सोचता हूँ जैसा देखा है वैसी ही बात यह कह रहे हैं। अच्छा, आज ही इसका पता लगाऊँगा।"

वे चारों जने और दिन राजकुल से निकल राज-भवन के द्वार पर चावलों की एक ढेरी पर बैठ करणीय-कामों का विचार कर घर जाते थे। पण्डित ने सोचा —"मैं ढेरी के नीचे छिपकर इनका रहस्य जान सकता हूँ।" उसने वह ढेरी उठवाई और उसके नीचे बिछावन बिछवा ढेरी के नीचे प्रवेश कर अपने आदमियों को इशारा किया—'तुम चारों पण्डितों के बातचीत कर चले जाने पर आकर मुझे ले जाना।" वे 'अच्छा' कह चले गये।

सेनक ने भी राजा से कहा—"महाराज! आप हमारा विश्वास नहीं करते थे। अब कैसा है?" उसने फोड़ने वालों के कहने का विश्वास कर, बिना विचारे ही भयभीत हो पूछा—"सेनक पण्डित! अब क्या करें?" "महाराज! बिना देर किये, बिना किसी को पता लगने दिये गृहपति-पुत्र को मरवा डालना उचित है।" "सेनक! तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा मेरा हितचिन्तक नहीं है। तुम्हीं अपने विश्वस्त आदमी ले, दरवाजे में खड़े हो, गृहपति-पुत्र के प्रातःकाल सेवा में आते समय ही तलवार से सिर काट डालो।" यह कह उसने अपनी तलवार दी।

उन्होंने 'अच्छा देव! न डरें। हम उसे मार डालेंगे' कह निकले और जाकर धान के ढेर पर यह कहते हुए बैठे कि हमने शत्रु को ले लिया। तब सेनक बोला

"भो ! गृहपति पुत्र पर कौन हाथ उठायेगा ?" दूसरों ने उसी को मार दिया— "आचार्य ! आप ही।" तब सेनक ने पूछा—"तुमने कहा कि गुप्त बात अमुक-अमुक पर प्रकट करनी चाहिये, तुमने ऐसा किया वा देखा वा सुना ?" "आचार्य ! यह बात रहे। तुमने जो कहा कि गुप्त बात मित्र पर प्रकट करनी चाहिये, सो यह कैसे ?" "इससे क्या ?" "आचार्य ! बतायें।" "यदि राजा इस रहस्य को जान जायेगा तो मेरी जान नहीं बचेगी।" "आचार्य ! डरें नहीं। यहाँ आपका रहस्य प्रकट करने वाला कोई नहीं है। आचार्य ! बतायें।" उसने नाखुन से ढेरी को कुरेदते हुए पूछा—"इसके नीचे गृहपति-पुत्र तो नहीं है ?" "आचार्य ! गृहपति-पुत्र अपने ऐश्वर्य्य के कारण ऐसी जगह नहीं घुसता। अब वह मस्त पड़ा होगा। आप कहें।"

सेनक ने अपना रहस्य प्रकट करते हुए कहा—"इसी नगर में अमुक नाम की वेश्या को जानते हो ?" 'आचार्य ! हां।' 'अब वह दिखाई देती है ?' 'आचार्य ! नहीं।' 'मैंने शालवन उद्यान में उसके साथ पुरुष-कर्म किया। फिर उसके गहनों के लोभ से उसे मार डाला। फिर उसी के कपड़े में गठरी बांध, लाकर, अपने घर में अमुक तल्ले पर, अमुक कमरे में, अमुक खूंटीं पर लटका दिये। मैं उन्हें व्यवहार में लाने का साहस नहीं कर सकता। उसके पुराने इतिहास का ख्याल है। राज्य के विरुद्ध इतना बड़ा अपराध करके भी मैंने एक मित्र को बताया। उसने किसी से नहीं कहा। इसी कारण से मैंने कहा कि मित्र को रहस्य बता देना चाहिये।' पण्डित ने अच्छी तरह से उसके 'रहस्य' को मन में बिठा लिया।

पुक्कुस ने भी अपना 'रहस्य' बताया—"मेरी जांघ में कोढ़ है। मेरा छोटा भाई प्रातःकाल ही बिना किसी को पता लगने दिये, उसे धो, उस पर दवाई लगा उसे रुई से बांध देता है। राजा के मन में मेरे प्रति कोमल भाव है। वह मुझे बुला कर कि पुक्कुस आ, प्रायः मेरी जांघ में ही सिर रख सोता है। यदि जान जाये तो मार ही डाले। इस बात को मेरे छोटे भाई के अतिरिक्त कोई दूसरा जानने वाला नहीं। इसी से मैंने कहा कि रहस्य की बात भाई पर प्रकट करनी चाहिये।"

काविन्द ने भी अपना रहस्य बताया—"कृष्ण-पक्ष के उपोसथ दिन नरदेव नामका यक्ष मेरे सिर आता है। उस समय मैं पगले कुत्ते की तरह चिल्लाता हूँ। मैंने यह बात पुत्र को बताई। वह यह जानकर कि मेरे सिर यक्ष आ गया है, मुझे घर में बांध लिटा देता है और दरवाजा बन्द कर मेरी आवाज को ढकने के लिए

दरवाजे पर नाच-गाना कराता है। इसी कारण मैंने कहा कि रहस्य की बात पुत्र को बतानी चाहिये।"

तब तीनों ने देविन्द से पूछा। उसने अपना रहस्य खोला—"जिस समय मैं (राज की) मणि रगड़ कर चमका रहा था, तो मैंने शक्र की कुश-राज को दी हुई श्री-वाली मङ्गल-मणि चुरा ली और माता को दे दी। वह बिना किसी को पता लगने दिये राज-कुल जाने के समय मुझे वह मणि देती है। मैं उस मणि से 'श्री' को आगे कर राज-भवन में जाता हूँ। राजा तुमसे बातचीत न कर, पहले मुझसे बातचीत करता है। प्रति दिन आठ, सोलह, बत्तीस या चौसठ कार्षापण मुझे खर्च के लिये देता है। यदि राजा यह जान ले कि इसके पास 'मणि' छिपी रहती है तो मेरी जान न बचे। इसीलिए मैंने कहा कि रहस्य की बात माता को कह देनी चाहिये।"

बोधिसत्व पर सभी का रहस्य प्रकट हो गया। उन लोगों ने अपना पेट फाड़ कर अन्न को बाहर निकालने की तरह परस्पर एक दूसरे पर अपना अपना रहस्य प्रकट किया और यह कहते हुए आसन से उठकर चले गये कि प्रमाद न करके प्रातःकाल ही चले आना। गृहपति-पुत्र की हत्या करेंगे। उनके चले जाने पर लोग आये और ढेरी को उठा बोधिसत्व को ले गये। उसने स्नान कर, अलंकृत हो, सुन्दर भोजन किया और यह सोच कि आज मेरी बहन उदुम्बरा देवी मुझे कोई संदेश भेजेगी दरवाजे पर एक आदमी को प्रतीक्षा करने के लिए बैठाया और कहा—"राजभवन से आने वाले को शीघ्र मुझ तक पहुँचाना।" यह कह शय्या पर जा लेटा।

उस समय शय्या पर लेटे राजा के मन में भी महोषध पण्डित के गुण सोचने से शोक पैदा हो गया—"वह सात वर्ष तक मेरी सेवा में रहा। उसने कभी कुछ मेरा बुरा नहीं किया। यदि पण्डित न होता तो 'देवता-प्रश्न' के समय मेरी जान ही न बचती। मैंने बहुत अनुचित काम किया कि वैरी-शत्रुओं का विश्वास कर उन्हें तलवार दी कि ऐसे अनूपम पण्डित को मार डालो। अब मैं कल उसे नहीं देख सकूंगा।" उसके शरीर से पसीना बहने लगा। शोकाकुल होने के कारण उसके चित्त की शान्ति जाती रही। उदुम्बरा देवी उसके साथ उसी शय्या पर थी। उसे यह बात मालूम हुई तो उसने 'क्या मुझसे कोई अपराध हुआ है अथवा देव के शोक का कोई दूसरा कारण है?' पूछते हुए यह गाथा कही—

किन्नु त्वं विमनो राजसेटठ्
विपदिन्द वचनं सुणोम नेतं,

किं चिन्त्यमानो दुम्मनोसि
नून देव अपराधो अत्थिमय्हं ॥७०॥

[हे राज श्रेष्ठ ! तुम्हारा मन क्यों खराब हो गया है ? हे द्विपदेन्द्र ! तुम्हारा बोल क्यों सुनाई नहीं देता ? हे देव ! आप किस बात से चिन्तित हैं ? हे देव ! मेरा क्या अपराध है ? ॥७०॥]

तब राजा ने गाथा कही—

पञ्ञो वज्झो महोसधोति
आणत्तो मे वधाय भूरिपञ्ञो,
तं चिन्तयन्तो दुम्मनोस्मि
नहि देवि अपराधो अत्थि तुय्हं ॥७१॥

[हे देवी ! तेरा तो कोई अपराध नहीं है । मैंने प्रज्ञावान्, महान्-प्रज्ञ महोषध पण्डित का वध करने की आज्ञा दे दी है, यही सोचकर मैं दुखी हूँ ॥७१॥]

यह बात सुनते ही उसके मन में बोधिसत्व के बारे में पर्वत जितना बड़ा शोक पैदा हुआ । उसने सोचा—"एक उपाय से राजा को आश्वासन दे, राजा के सो जाने पर अपने छोटे भाई को संदेसा भेजूंगी ।" वह बोली—'महाराज ! आपने ही उस गृहपति-पुत्र को ऐश्वर्य्य दिया और आपने ही उसे सेनापति बनाया । क्या अब वह आपका ही शत्रु हो गया ? शत्रु छोटा नहीं ही होता । उसे (रास्ते से) हटाना ही चाहिये । आप चिन्ता न करें ।' उसका शोक हलका हो जाने से उसे नींद आ गई ।

देवी उठी । कमरे में गई । जाकर पत्र लिखा—'महोषध ! चारों पण्डितों ने फूट डाल दी है । राजा ने क्रोधित हो कल दरवाजे पर तेरे वध की आज्ञा दे दी है । कल राज-कुल मत आना । आना तो नगर को हस्तगत करके तैयारी करके आना ।' फिर उसे लड्डू के अन्दर रख कर,लड्डू को धागेसे बांध, नये बरतनमें रख,सुगन्धित कर, मोहर लगा सेवक स्त्री को दिया—"यह लड्डू ले जाकर मेरे छोटे भाई को दे ।" उसने वैसा किया । यह प्रश्न नहीं पूछा जाना चाहिये कि वह रात को कैसे निकली ? राजा ने पहले ही देवी को वर दिया था । इसीलिए उसे किसी ने नहीं रोका । बोधिसत्व ने भेंट ले विदा किया । उसने जाकर सूचना दी—"दे आई ।" उस समय देवी जाकर राजा के साथ लेट रही । बोधिसत्व ने भी लड्डू फोड़ा, चिट्ठी पढ़ी, बात जानी और जो कुछ करना है उसका विचार कर शय्या पर लेट रहा ।

शेष चारों जन प्रात:काल ही हाथ में तलवार लिये दरवाजे पर आ खड़े हुए। जब उन्हें पण्डित न दिखाई दिया तो दुखी हो राजा के पास गये। राजा ने पूछा—"पण्डितो! क्या गृहपति पुत्र मारा गया?"

"देव! दिखाई नहीं दिया।"

बोधिसत्व भी सूर्य्योदय होते ही नगर को अपने वश में कर, जहाँ तहाँ सैनिक नियुक्त कर, लोगों को साथ लिये, रथ पर चढ़ बड़ी भीड़ के साथ राज-द्वार पर पहुँचे। राजा खिड़की खोले खड़ा देख रहा था। बोधिसत्व ने रथ से उतर उसे प्रणाम किया। राजा ने सोचा—'यदि यह मेरा शत्रु होता तो मुझे नमस्कार न करता।' उसे बुलवा कर राजा शय्या पर बैठा। बोधिसत्व भी जाकर एक ओर बैठा। चारों पण्डित भी वहीं बैठे। राजा ने सर्वथा अजानकार की भांति कहा—"तात! कल के गये तुम इस समय आये। क्या मुझे इसी प्रकार छोड़ दोगे?"

उसने यह गाथा कही—

अभिदोसगतो इदानि एसि
किं सुत्वा किमासंकते मनो ते,
को ते किमवोच भूरिपञ्ञ
इङ्घ तं वचनं सुणोम ब्रूहि मेतं ॥७२॥

[कल रात का गया हुआ अब आया है। क्या बात सुनने से तेरे मन में क्या शंका पैदा हो गई है? हे महाप्रज्ञ! तुझे किसने क्या कहा है? हम तेरी बात सुनें। हमें बता ॥७२॥]

बोधिसत्व ने 'महाराज! आपने चारों पण्डितों के कहने पर विश्वास कर मेरे वध की आज्ञा दी, इसी से नहीं आया' दोषारोपण करते हुए गाथा कही—

पञ्ञो बज्झो महोसधोति
यदि ते मन्तयितं जनिन्द दोसं
भरियाय रहोगतो असंसि
गुय्हं पातुकतं सुतं ममेतं ॥७३॥

[क्योंकि आपने रात के समय कहा कि प्रज्ञावान् महोषध पण्डित बध्य है और आपने अपनी भार्य्या पर एकान्त में यह रहस्य प्रकट किया, वह मैंने सुन लिया ॥७३॥]

राजा ने यह सुनते ही क्रोध से देवी की ओर देखा—'इसी ने उसी समय संदेस भिजवाया होगा।' बोधिसत्व को पता लगा तो राजा को सम्बोधित करके कहा—'देव! क्या देवी पर क्रोध कर रहे हैं? मैं भूत, भविष्यत्, वर्तमान सब जानता हूँ। देव! मान लो कि तुम्हारा रहस्य तो मुझे देवी ने बता दिया हो, आचार्य सेनक तथा पुक्कुसादि का रहस्य मुझे किसने बता दिया? मैं इनका भी रहस्य जानता ही हूँ।" उसने सेनक का रहस्य बताते हुए यह गाथा कही—

यं सालवनस्मि सेनको
पापकम्मं अकासि असब्भिरूपं
सखिनोव रहो गतो असंसि
गुय्हं पातुकतं सुतं ममेतं ॥७४॥

[सेनक ने शालवन में जो असभ्य पाप-कर्म किया, वह इसने एकान्त में अपने मित्र को बताया। इसका प्रकट किया हुआ वह रहस्य भी मैंने सुन लिया ॥७४॥]

राजा ने सेनक की ओर देखकर पूछा—"क्या यह सत्य है?" बोला—"देव! सत्य है।" राजा ने उसे कारागार में डालने की आज्ञा दी। पण्डित ने पुक्कुस का रहस्य प्रकट करते हुए यह गाथा कही—

पुक्कुस पुरिसस्स ते जनिन्द
उप्पन्नो रोगो अराजयुत्तो
भातुच्च रहोगतो असंसि
गुय्हं पातुकतं सुतं ममेतं ॥७५॥

[देव! पुक्कुस के शरीर में कुष्ट रोग उत्पन्न हुआ है। इसने एकान्त में अपने भाई को बताया। इसका प्रकट किया हुआ वह रहस्य भी मैंने सुन लिया ॥७५॥]

राजा ने उसकी ओर भी देखकर पूछा—"क्या यह सत्य है?" देव! हाँ" कहने पर उसे भी कारागार में भिजवा दिया। पण्डित ने काविन्द का भी रहस्य प्रकट करते हुए कहा—

आबाधोयं असब्भिरूपो
काविन्दो नरदेवेन फुट्ठो,
पुतस्स रहोगतो असंसि
गुय्हं पातुकतं सुतं ममेतं ॥७६॥

[यह काविन्द नरदेव नामक यक्ष की आबाधा से युक्त है। इसने एकान्त में पुत्र को बताया। उसका प्रकट किया हुआ वह रहस्य भी मैंने।सुन लिया ।।७६।।]

राजा ने उससे भी पूछा— काविन्द ! क्या सत्य है ? 'हां सत्य है' कहने पर उसे भी कारागार में डलवाया। पण्डित ने देविन्द का रहस्य प्रकट करते हुए यह गाथा कही—

अट्ट वंक मणिरतनं उळारं
सक्को ते अददा पितामहस्स
देविन्दस्स गतं तदज्ज हत्थं
मातुच्च रहोगतो असंसि
गुय्हं पातुकतं सुतं ममेति ।।७७।।

[शक्र ने जो मणिरतन तुम्हारे पितामह को दिया था वह आज देविन्द के पास है। यह बात इसने एकान्त में मां को बताई। इसका प्रकट किया हुआ वह रहस्य भी मैंने सुन लिया ।।७७।।]

राजा ने उससे भी 'क्या यह सत्य है ?' पूछ और उसके 'सत्य है' कहने पर उसे भी कारागार में भेज दिया। इस प्रकार 'बोधिसत्व का बध करेंगे' कहने वाले सभी कारागार में चले गये। बोधिसत्व ने भी 'इसी कारण से मैं कहता था कि अपना रहस्य दूसरे पर नहीं प्रकट करना चाहिये। प्रकट करने वाले 'महाविनाश को प्राप्त हुए' कह आगे धर्मोपदेश देते हुए ये गाथायें कहीं—

गुय्हस्स हि गुय्हमेव साधु
नहि गुय्हस्स पसत्थमाविकम्मं,
अनिप्फादाय सहेय्य धीरो
निप्फन्न त्थो यथासुखं भणेय्य ।।७८।।

[देखो—गाथा सं० ६९।]

न गुय्हमत्थं विवरेय्य
रक्खेय्य नं यथानिधि,
नहि पातुकतो साधु
गुय्हो अत्थो पजानता ।।७९।।

[रहस्य को प्रकट न करे। उसकी खजाने की तरह रक्षा करे। बुद्धिमान् आदमी द्वारा रहस्य प्रकट होना अच्छा नहीं ॥७६॥]

किया गुय्हं न संसेय्य
अमित्तस्स च पण्डितो,
योचामिसेन संहीरो
हृदयत्थेनो च यो नरो ॥८०॥

[पण्डित आदमी को चाहिये कि न तो स्त्री पर रहस्य प्रकट करे, न शत्रु पर रहस्य प्रकट करे, न भौतिक चीज़ें देने वाले पर प्रकट करे और न ऐसे आदमी पर प्रकट करे जो मन की बात पता लगाना चाहता हो ॥८०॥]

गुय्हमत्थंमसम्बुद्धं
सम्बोधयति यो नरो
मन्तभेदभया तस्स
दासभूतो तितिक्खति ॥८१॥

[जो आदमी अज्ञात रहस्य की बात किसी को बता देता है, तब उसके प्रकट न हो जाने के भय से उस आदमी को दूसरे के दास की तरह (कष्ट) सहन करना पड़ता है ॥८१॥]

यावन्तो पुरिसस्सत्थं
गुय्हं जानन्ति मन्तिनं,
तावन्तो तस्स उब्बेगा
तस्मा गुय्हं न विस्सजे ॥८२॥

[जितने लोग पुरुष के गुह्य-अर्थ को जानते हैं, उतना ही उसका उद्वेग होता है। इसलिए रहस्य प्रकट नहीं करना चाहिये ॥८२॥]

विविच्च भासेय्य दिवा रहस्सं
रत्तिं गिरं नातिवेलं पमुञ्चे
उपस्सुतिका हि सुणन्ति मन्तं
तस्मा मन्तो खिप्पमुपेति भेदं ॥८३॥

[दिन में रहस्य-मन्त्रणा करनी हो तो खुली जगह पर मन्त्रणा करे। रात में असमय तक मुंह न खोलता रहे। सुनने वाले मन्त्रणा सुन लेते हैं। इससे मन्त्रणा शीघ्र ही प्रकट हो जाती है ।।८३।।]

राजा ने बोधिसत्व की बात सुनी तो क्रोधित हो आज्ञा दी—"यह स्वयं राज्य-वैरी होकर, पण्डित को मेरा वैरी बनाते हैं। जाओ इन्हें नगर से निकाल कर या तो सूली पर चढ़ा दो या सिर काट डालो।" जब हाथ पीछे बांधकर उन्हें ले जाया जा रहा था और प्रत्येक चौराहे पर खड़े करके सौ-सौ कोड़े लगाये जा रहे थे तो बोधि-सत्व ने राजा से प्रार्थना की—"देव! यह आपके पुराने अमात्य हैं। इनका अपराध क्षमा कर दें।" राजा ने 'अच्छा' कह उन्हें बुलवाया और उसी का दास बनाकर सौंप दिया। उसने उन्हें पूर्ववत् ही स्वतन्त्र कर दिया। तब राजा ने देश से निकल जाने की आज्ञा दी—"तो मेरी सीमा में न बसें।" पण्डित ने 'देव! इन अन्धे मूर्खों का अपराध क्षमा करें' कह उन्हें क्षमा करवा उनके पूर्व-पद उन्हें दिलवाये।

राजा पण्डित से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। सोचने लगा—अपने शत्रुओं के प्रति भी इसकी ऐसी मैत्री है, दूसरों के प्रति कैसी होगी। उसके बाद से वे पण्डित दांत-हीन सांपों की तरह विनम्र हो गये और कुछ नहीं बोल सके।

पञ्च पण्डित प्रश्न समाप्त

इसके बाद से पण्डित ने राजा के अर्थ धर्मानुशासक का कार्य्य किया। उसने सोचा—"मैं राजा के श्वेत-छत्र राज्य का ही विचार करता हूँ। मुझे अप्रमादी होना चाहिये।" उसने नगर में बड़ी चारदीवारी बनवाई। वैसे ही छोटी चारदीवारी के मीनार। अन्दर के मीनार। पानी की खाई। कीचड़ की खाई। सूखी खाई। इस प्रकार तीन खाइयां बनवाई। नगर में पुराने घरों की मरम्मत कराई। बड़ी-बड़ी पुष्करिणियां खुदवा कर उनमें पानी भरवाया। नगर में सब कोठे धान्य से भरवाये। हिमवन्तप्रदेश से विश्वस्त तपस्वियों के हाथों जल-कंवल के बीज मंगवाये। पानी की नालियां साफ करा शहर के बाहर भी मरम्मत कराई। क्यों? भावी खतरे को रोकने के लिए। फिर उसने जहाँ तहाँ से आये हुए व्यापारियों से पूछा—'कहाँ से आये?' 'अमुक अमुक स्थान से।' 'तुम्हारे राजा को क्या प्रिय है?' 'अमुक वस्तु।' उसने उन उनका सम्मान करवा अपने एक सौ योधाओं को बुलवा कर कहा—"मित्रो! मेरी दी हुई भेंटों को लेकर एक सौ राजधानियों में जाओ और वहाँ अपनी रुचि के अनुसार उन उन राजाओं की भेंटकर, उनकी सेवा में रहते हुए उनके कार्यों

तथा उनकी मंत्रणाओं की रिपोर्ट मुझे भेजो। मैं तुम्हारे स्त्री-बच्चों का पोषण करूँगा।" उसने किसी को कुण्डल, किसी को स्वर्ण-पादुका, किसी को खड्ग और किसी को स्वर्ण मालायें दीं जिनमें अक्षर खुदे थे। उसने संकल्प किया कि जब मेरा काम पड़े तभी ये अक्षर प्रकट हों। उन्होंने वहाँ वहाँ जा उन राजाओं को भेंट दे कर कहा—"आपकी सेवा में रहने के लिये आये हैं।" पूछा—"कहाँ से?" आने की जगह छोड़ दूसरे दूसरे स्थानों के ही नाम बताये। जब उन्होंने 'अच्छा' कह उन्हें स्वीकार कर लिया तो वे उनके विश्वस्त बन गये।

एकबल राष्ट्र में सङ्खपाल नाम का राजा आयुध तैयार करवा रहा था और सेना एकत्र कर रहा था। उसके पास जिस आदमी को रखा था उसने संदेस भिजवाया—"यहाँ का यह समाचार है। कह नहीं सकता कि (यह राजा) क्या करेगा! किसी को भेजकर स्वयं यथार्थ बात का पता लगवा लें।" बोधिसत्व ने तोते के बच्चे को बुलाकर कहा—"सौम्य! एकबल राष्ट्र में पहुँच और यह पता लगा कि सङ्खपाल राजा यह करने जा रहा है, सारे जम्बुद्वीप में विचर मेरे लिये समाचार ला।" उसने उसे शहद-खील खिलाई, शरबत पिलाये, हजार बार पके हुए तेल से परों को चुपड़ा, पूर्व की खिड़की में खड़े हो उड़ाया। उसने वहाँ पहुँच, उस आदमी से उस राजा का यथार्थ समाचार जाना और जम्बुद्वीप घूमते हुए कम्पिल राष्ट्र के उत्तर पञ्चाल नगर में पहुँचा।

उस समय वहाँ चूळनी ब्रह्मदत्त राजा राज्य करता था। केवट नाम का ब्राह्मण उसका अर्थधर्मानुशासक था—पण्डित, चतुर। वह प्रातःकाल उठा तो दीपक के प्रकाश में अलंकृत शयनागार में बहुत सा ऐश्वर्य्य देख सोचने लगा—'यह मेरा ऐश्वर्य्य कहाँ से आया? और कहीं से नहीं, चूळनी ब्रह्मदत्त के पास से ही। इस प्रकार के ऐश्वर्य्य के दायक राजा को सारे जम्बुद्वीप में अग्र नरेश बनाना चाहिए। मैं अग्र पुरोहित हो जाऊँगा।"

वह प्रातःकाल ही राजा के पास पहुँचा और पूछा—"सुखपूर्वक सोये?" फिर कहा—"देव! मन्त्रणा करनी है।" "आचार्य! कहें।" "देव! नगर के भीतर एकान्त नहीं हो सकता। उद्योन में चलें।" "आचार्य! अच्छा" कह राजा उसके साथ उद्यान गया। उसने सेना को बाहर छोड़ा, पहरा बिठाया, ब्राह्मण के साथ उद्यान में घुसा और मङ्गल-शिला पर विराजमान हुआ। तोते के बच्चे ने यह क्रिया देखी तो सोचा—"यहाँ पण्डित को बताने योग्य कोई बात अवश्य होगी।

सुनूंगा।" वह उद्यान में घुसा और मङ्गल शाल वृक्ष के पत्तों में छिप कर बैठा। राजा बोला—"आचार्य्य ! बोलें।" "महाराज ! अपने कान इधर करें। चारों कानों में ही मन्त्रणा होगी। यदि महाराज ! मेरे कथनानुसार चलें तो मैं आपको सारे जम्बुद्वीप का राजा बना दूं।"

'वह महान् तृष्णा के आधीन था। उसने उसकी बात सुनी तो प्रसन्न हुआ और बोला—"आचार्य्य ! कहें। आपका कहना करूँगा।" "देव ! हम सेना इकट्ठी कर पहले छोटे नगर को घेरेंगे। मैं छोटे-द्वार से नगर में जाकर राजा से कहूँगा—'महाराज, आपको युद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। केवल हमारी अधीनता स्वीकार कर लें। आपका राज्य आपका ही रहेगा। युद्ध करेंगे तो हमारी सेना बहुत अधिक होने के कारण निश्चय से पराजित होंगे। यदि मेरा कहना मानेंगे तो आपको साथी बना लेंगे, नहीं तो युद्ध करके आपको जान से मार डाल, सेना ले, दूसरा नगर और फिर दूसरा नगर, इस प्रकार सारे जम्बुद्वीप का राज्य ले लेंगे।' इस तरह एक सौ राजाओं को अपने नगर ला, उद्यान में पीने का मण्डप तनवा, वहाँ बैठे राजाओं को विष-मिश्रित सुरा पिला, उन सभी को जान से मार एक सौ राजधानियों का राज्य हस्तगत कर लेंगे। इस प्रकार आप सारे जम्बुद्वीप के राजा बन जाएंगे।'

वह बोला—"आचार्य्य ! अच्छा। ऐसा ही करेंगे।" "महाराज ! यह चार कानों द्वारा ही सुनी गई मन्त्रणा है। इसे कोई दूसरा नहीं जान सकता। इसलिए देरी न कर शीघ्र निकलें।" राजा ने प्रसन्न हो, 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

तोते के बच्चे ने यह बातचीत सुनी तो इसकी समाप्ति पर कोई लटकती हुई वस्तु उतारने की तरह केवट्ट के शरीर पर बीठ गिरा दी। जब वह 'यह क्या है' कहकर आश्चर्य से मुँह खोल ऊपर की ओर देखने लगा तो और उसके मुँह में गिरा दी। फिर 'किरि किरि' आवाज करता हुआ शाखा से उड़ा और कहता गया—'केवट्ट तू समझता है कि तेरी मन्त्रणा चार ही कानों तक सीमित है। अभी छः कानों तक पहुँच गई। आगे आठ कानों तक पहुँच सैकड़ों कानों तक जा पहुँचेगी।" लोग कहते रह गये कि पकड़ो पकड़ो। वह वायु-वेग से मिथिला पहुंच, पण्डित के निवास-स्थान पर जा पहुँचा। उसकी यह मर्यादा थी कि यदि कहीं से लाई हुई सूचना केवल पण्डित को ही सुनानी होती थी तो उसी के कन्धे पर उतरता था, यदि अमरा देवी के भी सुनने योग्य होती तो गोद में उतरता था और यदि जनता के भी

सुनने योग्य होती तो जमीन पर उतरता। वह पण्डित के कंधे पर आकर बैठा। इस संकेत से जनता समझ गई कि रहस्य की बात होगी। लोग चले गये। पण्डित उसे ऊपर के तल्ले पर ले गया और पूछा—"तात! तूने क्या देखा या सुना?"

उसने उत्तर दिया—"देव! मैं सारे जम्बुद्वीप में और किसी भी नरेश से भय नहीं देखता। किन्तु उत्तर-पञ्चाल-नगर में चूळनी ब्रह्मदत्त का केवट्ट नाम का पुरोहित है। उसने राजा को उद्यान में ले जाकर चार कानों की मन्त्रणा की। मैं शाखाओं के बीच बैठ, उसके मुँह में बीठ गिरा कर आया हूँ।" इस प्रकार जो कुछ उसने देखा-सुना था, वह सब पण्डित को कह सुनाया। राजा ने पूछा—"उनका निश्चय हो गया?" उत्तर दिया—"हाँ हो गया?"

पण्डित ने उसका योग्य सत्कार करवा, उसे सोने के पिंजरे में कोमल बिछौने पर लिटवा सोचा, "केवट्ट नहीं जानता कि मैं महोषध हूँ। अब मैं उसकी योजना पूरी होने न दूंगा।" उसने नगर में से दरिद्र कुलों को लेकर उन्हें बाहर बसाया, और राष्ट्र जनपद तथा द्वार पर के ग्रामों से स्मृद्ध बड़े बड़े कुलों को मंगवा कर नगर में बसाया। बहुत सा धन-धान्य इकट्ठा कर लिया।

चूळनी ब्रह्मदत्त ने भी केवट्ट के कहने के अनुसार सेना सहित जाकर एक नगर घेर लिया। केवट्ट ने जैसे ऊपर कहा गया है वहाँ जा उस राजा को समझा अपने साथ मिला लिया। फिर कहा—"देव! सेना एकत्र कर दूसरे राजा को घेरें।' इस प्रकार चूळनी ब्रह्मदत्त ने केवट्ट के उपदेशानुसार चल वेदेह राजाओं के अतिरिक्त शेष जम्बुद्वीप के सारे राजा अपने आधीन कर लिये। बोधिसत्व के नियुक्त पुरुष सूचनायें भेजते—"ब्रह्मदत्त ने आज इतने नगर ले लिये, आज इतने नगर ले लिये। अप्रमादी रहें।" वह भी उन्हें कहला भेजता—"मैं यहाँ होश्यार हूँ। तुम वहां बिना घबराये अप्रमादी होकर रहो।"

सात वर्ष, सात महीने और सात दिन में ब्रह्मदत्त ने विदेह राज्य के अतिरिक्त शेष सारे जम्बुद्वीप पर अधिकार कर केवट्ट से कहा—"आचार्य! मिथिला में विदेह राज्य को लें।" "महाराज महोषध पण्डित के रहने के नगर को न ले सकेंगे। वह ऐसा ही प्रज्ञावान् तथा उपाय कुशल है।" इस प्रकार उसने चन्द्र मण्डल पर आक्रमण करते हुए की तरह उसके गुण कहे। वह स्वयं भी उपाय-कुशल था। इसलिये उसने राजा को ढंग से ही समझा दिया, "देव! मिथिला राज्य छोटा-सा है। हमारे लिये सारे जम्बुद्वीप का राज्य बहुत है। हमें इस एक राज्य से क्या?"

शेष राजा भी कहते थे—"हम मिथिला राज्य लेकर ही जय-पान पियेंगे।" केवट्ट ने उन्हें भी मना किया—"विदेह-राज्य लेकर क्या करेंगे। वह राज्य हमारा ही है। रुको।' इस प्रकार उसने उन्हें भी ढंग से ही समझाया। उसकी बात सुन वे रुक गये। बोधिसत्व के आदमियों ने सूचना भिजवाई —'सौ राजाओं के साथ ब्रह्मदत्त मिथिला आता आता ही रुक कर वापिस अपने नगर चला गया।' उसने भी कहला भेजा—"इसके आगे वह क्या क्या करता है इसकी खबर रखो।"

ब्रह्मदत्त ने भी केवट्ट के साथ मन्त्रणा की कि अब क्या करें ? उत्तर दिया—"हम विजय-पान पियेंगे।" उसने सेवकों को आज्ञा दी—"उद्यान को अलंकृत कर हजार चाटियों में शराब रखो। नाना प्रकार के मत्स्य-मांस आदि भी लाओ।" यह समाचार भी पण्डित के आदमियों ने उस तक पहुँचा दिया। वे यह नहीं जानते थे कि विष मिला कर मार डालने की नीयत है। किन्तु तोते के बच्चे से सुने रहने के कारण बोधिसत्व को पता था। उसने अपने आदमियों को कहलाया कि सुरा-पान के दिन का ठीक ठीक पता लगा कर सूचित करो। उन्होंने वैसा ही किया। यह सुन पण्डित ने सोचा—"मेरे जैसे पण्डित के रहते इतने राजाओं का मरना उचित नहीं है। मैं उनका आधार बनूँगा।" उसने अपने साथ ही जनमे हजार योधाओं को बुलवाया और उन्हें यह सिखा-पढ़ाकर भेजा—"मित्रो! चूळनी ब्रह्मदत्त उद्यान अलंकृत करा, सौ राजाओं के साथ सुरा पीना चाहता है। तुम वहाँ पहुँच कर जब राजाओं के आसन बिछ गये हों और कोई भी न बैठा हो तो यह कहकर कि चूळनी ब्रह्मदत्त राजा के आसन के बाद का आसन हमारे राजा का आसन है उस पर अधिकार कर लेना। यदि उसके आदमी पूछें कि तुम किसके आदमी हो तो उत्तर देना—"विदेह-राज के।" वे यह कहकर कि सात दिन, सात महीने और सात वर्ष तक तुम्हारे साथ युद्ध करके राज्य लेते समय एक दिन भी यह नहीं देखा कि यह कौन सा राज्य है, जाओ अन्तिम आसन ले लो, तुम्हारे साथ झगड़ा करेंगे। तुम झगड़ा बढ़ा देना और कहना कि ब्रह्मदत्त को छोड़ और कोई भी हमारे राजा से बढ़कर नहीं है। और फिर कहना—'हमारे राजा के लिये आसन तक भी नहीं है। अब हम न सुरा पीने देंगें और न मत्स्य-माँस खाने देंगे।" इस प्रकार हल्ला करते हुए, शोर मचाते हुए उन्हें आवाज से ही डरा, एक बड़ा से डण्डा ले सभी चाटियां फोड़, मत्स्य-मांस को बखेर खाने योग्य न रहने देना। फिर वेग से सेना में घुस, देव-नगर में घुसे असुरों की तरह हलचल मचा कहना—'हम मिथिला नगर के महोषध पण्डित के आदमी

हैं। यदि पकड़ सको तो पकड़ो।' इस प्रकार अपने चल देने की सूचना देकर यहाँ चले आना।"

उन्होंने 'अच्छा' कह उसका कहना स्वीकार किया और पांच आयुधों से सज्जित हो निकले और वहाँ पहुँचे। वहाँ नन्दनवन की तरह अलंकृत उद्यान में प्रवेश कर, श्वेत-छत्र के नीचे लगे सौ राज-सिंहासनों का ऐश्वर्य्य देख, जैसे जैसे बोधिसत्व ने बताया था उसी प्रकार सब कुछ कर, जनता में खलबली मचा, मिथिला की ओर लौटे।

राज-पुरुषों ने भी उन राजाओं को वह समाचार दिया। ब्रह्मदत्त को क्रोध आया—इस प्रकार के विष-योग को बिगाड़ दिया। राजा भी क्रोधित हुए—हमें विजय-पान नहीं करने दिया। सेना भी क्रोधित हुई—हमें मुफ्त में शराब नहीं पीने दी। ब्रह्मदत्त ने राजाओं को बुलाकर कहा—"आओ मिथिला चलकर, विदेह राज का सिर तलवार से काट, पैरों से रौंद कर, बैठ कर विजय-पान करेंगे। सेना तैयार कराओ।" फिर एकान्त में केवट्ट को भी वह वृत्तान्त सुनाकर कहा—"हम इस प्रकार की मन्त्रणा में बाधा डालने वाले शत्रु को पकड़ेंगे। सौ राजाओं की अट्ठारह अक्षौहिणी सेना के साथ उस नगर चलेंगे। आचार्य! आयें।"

ब्राह्मण ने अपने पाण्डित्य के कारण सोचा—"महोषध पण्डित को नहीं जीत सकते। हमें भी लज्जित होना पड़ेगा। राजा को रोकूँगा।" वह बोला—"महाराज! यह विदेह राजा की शक्ति नहीं है। यह महोषध पण्डित का संविधान है। उसका बड़ा प्रताप है। वह मिथिला की रक्षा करता है। जिस प्रकार सिंह द्वारा रक्षित गुफा नहीं ली जा सकती, उसी प्रकार हम उसे भी नहीं ले सकते। यह हमारे लिये केवल लज्जा का ही कारण होगा। वहाँ न जायें।" राजा क्षत्रिय-मान तथा ऐश्वर्य्य-मद से मत्त था। बोला—"वह क्या करेगा?" और सौ राजाओं तथा उनकी अठारह अक्षौहिणी सेना के साथ निकल पड़ा।

केवट्ट ने भी जब देखा कि वह अपनी बात नहीं मनवा सकता तो राजा का विरोध मोल लेना अनुचित मान वह भी साथ हो लिया। उन योधाओं ने भी एक ही रात में मिथिला वापिस आ अपनी करनी पण्डित को सुनाई। पहले भेजे गये नियुक्त पुरुषों ने भी समाचार भेजा—"चूळनी ब्रह्मदत्त विदेह राजा को पकड़ने के लिये सौ राजाओं के साथ चला आ रहा है। पण्डित अप्रमादी हों।" नियमपूर्वक यह भी सूचना मिलती ही थी कि आज अमुक स्थान पर और आज अमुक नगर

पहुँच रहे हैं।" यह सुन बोधिसत्व और भी अप्रमादी हो गया। विदेह राजा के कानों तक भी यह बात पहुंच गई कि ब्रह्मदत्त यह नगर लेने आ रहा है।

तब ब्रह्मदत्त ने रात्रि के पहले पहर में ही लाखों मशालों के साथ आकर नगर घेर लिया। फिर उसे हाथियों की चारदीवारी से, रथों की चारदीवारी से, घोड़ों की चारदीवारी से घेर जहाँ तहाँ लगातार सेना खड़ी की। आदमी खड़े आवाजें लगा रहे थे, ताली बजा रहे थे, हल्ला कर रहे थे, नाच रहे थे और गर्ज रहे थे। प्रदीपों तथा अलंकारों की चमक से सात योजन की सारी की सारी मिथिला प्रकाशित हो गई। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल और बाजों आदि की आवाज से पृथ्वी फटती सी जान पड़ी। चारों पण्डितों ने हलचल की आवाज सुनी तो अजानकार होने से राजा के पास पहुँचे और बोले—"महाराज! बड़ा हल्ला-गुल्ला है। पता नहीं क्या है? पता लगाना चाहिये।" यह सुन राजा ने 'ब्रह्मदत्त आ पहुँचा होगा' सोच खिड़की खोली तो उसके आने की बात पक्की निकली। वह उठा कि अब हमारी जान नहीं बचेगी। वह हम सभी को जान से मार डायेगा। वह उनके साथ बैठकर बातचीत करने लगा।

किन्तु जब बोधिसत्व ने उसके आने की बात सुनी तो सिंह के समान बिना भयभीत हुए सारे नगर के संरक्षण की व्यवस्था की। फिर राजा को आश्वस्त करने के लिये राज-भवन पर चढ़, प्रणाम कर एक ओर खड़ा हुआ। राजा ने उसे देखा तो वह आश्वस्त हुआ। उसने सोचा, मेरे पुत्र महोषध पण्डित के अतिरिक्त दूसरा कोई भी मुझे इस दुःख से नहीं छुड़ा सकता। उसके साथ बात-चीत करते हुए राजा ने कहा—

पञ्चालो सब्बसेनाय ब्रह्मदत्तो समागतो
सायं पञ्चालिया सेना अप्पमेय्या महोसध॥८४॥
पिट्ठिमती पत्ति मती सब्बसंगामकोविदा,
ओहारिणी सद्दवती भेरिसंखप्पबोधना॥८५॥
लोहविज्जालंकाराभा धजिनी वामरोहिणी,
सिप्पियेहि सुसम्पन्ना सूरेहि सुप्पतिट्ठिता॥८६॥
दसेत्थ पण्डिता आहु भूरिपञ्जा रहोगमा,
माता एकादसी रञ्ञो पञ्चालियं पसासति॥८७॥

अथेत्थेकसतं खत्या अनुयुत्ता यस स्सिनो,
अच्छिन्नरट्ठा व्यथिता पञ्चालिनं वसंगता ।।८८।।
यं वदा तक्करा रञ्ञो अकामा पिय भाणिनो,
पञ्चालमनुयायन्ति अकामा वसिनो गता ।।८९।।
ताय सेनाय मिथिला तिसन्धि परिवारिता,
राजधानी विदेहानं समन्ता परिखञ्जति ।।९०।।
उद्धं तारक जाताव समन्ता परिवारिता,
महोसध विजानाहि कथं मोक्खो भविस्सति ।।९१।।

[पञ्चाल-नरेश ब्रह्मदत्त सभी सेनाओं के साथ आया है। हे महोषध! यह पञ्चालीय सेना असीम है ।।८४।। पीठ पर भार ढोने वाले, पैदल चलने वाले, सभी योधा हैं। वे चुपके से दूसरों का सिर काट लेने वाले हैं, (दस प्रकार के) झण्डों से युक्त हैं और भेरी-शङ्ख आदि की आवाज सुन जाग्रत हो जाते हैं ।।८५।। युद्ध-विद्या तथा अलंकारों से प्रकाशित हैं, ध्वजाये हैं, हाथी घोड़े हैं, शिल्पियों से युक्त है तथा शूरवीरों से प्रतिष्ठित है ।।८६।। कहते हैं कि इस सेना में दस प्रज्ञावान् पण्डित हैं जो एकान्त में मन्त्रणा करते हैं और राजा की माता ग्यारहवीं है जो पञ्चाली सेना का अनुशासन करती है ।।८७।। यहाँ एक सौ अनुयुक्त, यशस्वी, क्षत्रिय हैं, जिनके राष्ट्र छीन लिये गये हैं, जो व्यथित है और जो पञ्चाली के वशीभूत हैं ।।८८।। जो कहे वह राजा के लिये करने वाले, अनिच्छापूर्वक प्रियभाषी बने हुए वे पञ्चाल के वशीभूत होने के कारण उसका अनुगमन करते हैं ।।८९।। उन सेनाओं द्वारा मिथिला-नगरी तीन सन्धियों में घेर ली गई है। ऐसा लगता है कि विदेह की राजधानी चारों ओर से खनी जा रही है ।।९०।। आकाश के तारों के समान इसने चारों ओर से घेर लिया है। हे महोषध! अब तू जान कि मोक्ष किस प्रकार होगा ।।९१।।]

राजा की यह बात सुनी तो बोधिसत्व ने सोचा—'यह राजा मरने से अत्यन्त भयभीत है। रोगी को वैद्य की शरण चाहिये, भूखे को भोजन चाहिये, प्यासे को पानी चाहिये, इसका भी मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा शरण-दाता नहीं। इसकी घबराहट दूर करता हूं।' तब बोधिसत्व ने मनोशिलातल पर बैठे हुए सिंह की तरह गर्जना की—"महाराज! डरें नहीं। राज्य सुख अनुभव करें। मैं इस अट्ठारह अक्षौहिणी सेना को डण्डे से कौओं को उड़ाने की तरह अथवा कमान से बन्दरों को भगाने की

तरह ऐसा भगाऊँगा कि इन्हें अपनी धोती तक की सुध न रहेगी। उसने यह गाथा कही—

पादे देव पसारेहि भुञ्जकामे रमस्सु च,
हित्वा पञ्चालियं सेनं ब्रह्मदत्तो पलायति ॥९२॥

[देव ! पाँव पसार कर सोयें। काम भोगों में रमण करें। ब्रह्मदत्त पञ्चालिय सना को छोड़कर भाग जायेगा ॥९२॥]

पण्डित ने राजा को आश्वस्त कर, निकल कर नगर में उत्सव-भेरी बजवाई। उसने नागरिकों को भी आश्वस्त किया—"तुम चिन्ता न करो। सप्ताह भर तक माला-गन्ध-विलेपन तथा पान-भोजन आदि तैयार कर उत्सव-क्रीड़ा करो। वहाँ लोग इच्छानुसार पान करें, नाचें, बजायें, चिल्लायें तथा ताली बजायें। इसका खर्च मेरे सिर रहे। मैं महोषध पण्डित हूँ। मेरा प्रभाव देखो।" लोगों ने वैसा ही किया। गाने-बजाने का शब्द नगर के बाहर के लोग सुनते थे। छोटे द्वार से लोग अन्दर आते थे। शत्रु को छोड़ औरों को देखदेखकर आने देते। इससे आना-जाना बन्द नहीं होता था। जो नगर में आते वे लोगों को उत्सव मनाते देखते।

चूळनी ब्रह्मदत्त ने भी नगर में हल्ला सुन अमात्यों से कहा—"हम अठारह अक्षौहिणी सेना के साथ नगर घेरे पड़े हैं। नगर निवासियों को डर, भय कुछ नहीं है। वे आनन्द मना रहे हैं। वे प्रसन्नता के मारे तालियाँ बजा रहे हैं, आवाजें लगा रहे हैं, शोर मिचा रहे हैं और गा रहे हैं। यह क्या है?" उसके नियुक्त गुप्तचरों ने उसे झूठी सूचना दी—"देव ! हम एक काम से छोटे दरवाजे से नगर में गये। वहाँ हमने लोगों को उत्सव मनाते देख पूछा—"भो ! सारे जम्बुद्वीप के राजा तुम्हारा नगर घेरे खड़े हैं। तुम अति प्रमादी हो। यह क्या है?" उनका उत्तर था—"बचपन में हमारे राजा की एक इच्छा थी। सारे जम्बुद्वीप के राजाओं के नगर को घेर लेने पर उत्सव करेंगे। आज उसकी इच्छा पूरी हो गई है। इसलिये उत्सव-भेरी बजवा स्वयं ऊंचे तल्ले पर बैठ सुरा पान करता है।"

राजा ने उनकी बात सुनी तो उसे क्रोध आया। उसने अपनी सेनाके एक अङ्ग को आज्ञा दी—"नगर पर जहाँ तहाँ से आक्रमण करके, खाई तोड़कर, चारदीवारी लाँघ, द्वार की अट्टारियाँ उजाड़ते हुए, नगर में घुस, गाड़ी में मिट्टी के बरतन लाद कर लाने की तरह लोगों के सिर लाओ और विदेह राजा का सिर लाओ।" यह सुन शूर योधा नाना प्रकार के आयुध लेकर द्वार के पास पहुँचे। पण्डित के आदमियों

ने उबला कीचड़ और पत्थर आदि फेंके। वे घबराकर लौट आये। चारदीवारी तोड़ने के लिये खाई लांघ जाने पर भी अटारियों के बीच में खड़े-खड़े बाण, शस्ति, तोमर आदि से महा विनाश को प्राप्त होते। पण्डित के योद्धा ब्रह्मदत्त के योधाओं को हाथों की नकलें बनाकर नाना प्रकार से गालियां देते और डराते। वे शराब के बरतन और मत्स मांस की सीखें आगे बढ़ाते—"तुम्हें नहीं मिलता होगा। थोड़ा पीओ, खाओ।" फिर अपने ही खा जाते। वे चारदीवारी के ऊपर घूमते। दूसरे कुछ न कर सकते। तब वे चूळनी ब्रह्मदत्त के पास गये और बोले—"देव! ऋद्धिमानों के अतिरिक्त और कोई पार नहीं जा सकता।"

चार-पाँच दिन रहकर भी राजा ने जब देखा कि जो (राज्य) लिया जाना चाहिये, वह नहीं लिया जा सकता तो आचार्य्य से कहा—"हम नगर नहीं ले सकते। एक भी वहाँ तक नहीं पहुंच सकता। क्या करना चाहिये?" "महाराज! चिन्ता न करें। पानी नगर से बाहर होता है। पानी का क्षय होने पर (राज्य) लेंगे। आदमी जब पानी के कष्ट से पीड़ित होंगे तो द्वार खोलेंगे।" उसने स्वीकार किया—"हाँ यह उपाय है।" तब से नगर में पानी न जाने देते। पण्डित के नियुक्त आदमियों नें यह बात पत्र में लिख उसे (सर) कण्डे में बांध खबर भेजी। उसने भी पहले ही आज्ञा दे रखी थी—"जो जो सरकण्डे में कागज देखे, वह वह ले आये।' एक पुरुष ने उसे देख पण्डित को दिखाया।

उसने यह समाचार सुना तो बोला—"वे मेरा महोषध पण्डित होना नहीं जानते।" तब उसने साठ हाथ का बाँस बीच में से फाड़कर साफ कराया और फिर एक साथ जोड़ ऊपर से चमड़े से बंधवा दिया। उसके ऊपर मिट्टी पुतवा दी। फिर हिमालय से ऋद्धि-प्राप्त तपस्वियों द्वारा आये गये कर्दम-कुमुद बीजों को पुष्करिणी के तट पर गारे में बोवा दिया और ऊपर बाँस रखकर पानी से भरवा दिया। एक रात में ही बढ़कर फूल बाँस से बाहर रतन-मात्र ऊँचा हो निकला। उसने उसे तुड़वाकर अपने आदमियों को दिया—"इसे ब्रह्मदत्त को दो।" उन्होंने कुमुद की नाल को लपेटा और यह कहकर फेंक दिया कि ब्रह्मदत्त के पाद-सेवक भूख से न मरें। यह लें। कँवल को धारण करें और नाल को पेट भर खायें। वह पण्डित के द्वारा नियुक्त पुरुषों में से ही एक के सेवक के हाथ लगा। वह उसे राजा के पास ले गया—"देव! इस पुष्प की नाल देखें। हमने इससे पहले इतनी बड़ी नाल नहीं

देखी।" राजा बोला—"इसे मापो।" पण्डित के आदमियों ने साठ हाथ की नाल को अस्सी हाथ की नाल करके नापा। तब राजा ने पूछा—"यह कहाँ पैदा हुआ ?" एक ने झूठा उत्तर दिया—"देव ! एक दिन प्यास लगने पर सुरा पीने के लिये छोटे-द्वार से मैं नगर में जा घुसा। वहाँ मैंने नागरिकों के खेलने की बड़ी-बड़ी पुष्करिणियां देखी। जनता नौका में बैठकर फूल तोड़ती है। यह तो किनारे पर उगा हुआ फूल है। गहराई में उगा हुआ फूल तो सौ हाथ का होगा।"

यह सुन राजा ने केवट्ट से कहा—"आचार्य्य ! इस नगर को पानी का त्रास देकर आधीन नहीं किया जा सकता। अपनी मन्त्रणा को वापिस ले।" "देव ! तो धान्य का अभाव करके आधीन करेंगे। धान्य नगर से बाहर होता है।" "आचार्य्य ! ऐसा हो" पण्डित को पूर्वोक्त प्रकार से ही जब जानकारी हुई तो कहा—"केवट्ट ब्राह्मण मेरे पण्डित्य को नहीं जानता !" उसने चारदीवारी के ऊपर गारा बिछवा धान रोप दिये। बोधिसत्वों के अभिप्राय पूरे होते हैं। धान एक ही रात में उगकर चारदीवारी के ऊपर दिखाई देने लग गये। यह भी देख ब्रह्मदत्त ने पूछा—"अरे ! यह क्या चारदीवारी के ऊपर हरा हरा दिखाई दे रहा है ?" पण्डित के नियुक्त आदमियों ने राजा के मुँह से बात छीन लेने की तरह तुरन्त उत्तर दिया—"देव ! गृहपति-पुत्र महोषध ने भावी भय का ख्याल कर राष्ट्र से धान्य इकट्ठा करवा कोठे भरवा लिये हैं। शेष धान्य चारदीवारी के पास डलवा दिया है। धूप में सूखते हुए धानों पर वर्षा पड़ने से वे वहीं उग आये। मैं भी एक दिन किसी काम से छोटे-द्वार से घुसा। चारदीवारी के पास पड़े धान से धान की मुट्ठी ले, उसे गली में छोड़ दिया। लोग मजाक करने लगे—"मालूम होता है भूखा है। धान को पल्ले में बांध, घर ले जाकर पका खा।"

राजा ने यह बात सुनी तो केवट्ट से कहा—"आचार्य्य ! धान्य का अभाव करके भी इस नगर को आधीन नहीं किया जा सकता। यह भी ठीक उपाय नहीं है।" "तो देव ! लकड़ी का अभाव होने पर आधीन करेंगे। लकड़ी नगर से बाहर ही होती है।" ""आचार्य्य ! ऐसा ही हो।" पण्डित ने पूर्वोक्त-विधि से ही इस बात का पता मालूम कर जैसे चारदीवारी के ऊपर से धान दिखाई देता था, उतना ही ऊँचा लकड़ी का ढेर लगवा दिया। आदमी ब्रह्मदत्त के आदमियों का मजाक उड़ाते—"यदि भूख लगी है, यवागु पका कर पियो।" वे बड़ी बड़ी लकड़ियां फेंकते।

राजा ने भी प्रश्न किया—"चारदीवारी के ऊपर से लकड़ियां दिखाई देती

हैं। यह क्या है ?" "गृहपति-पुत्र ने भावी भय देखकर लकड़ियां मंगवाई हैं और उन्हें घरों के पिछवाड़े रखवा दिया है। अतिरिक्त लकड़ियां चारदीवारी के पास रखवाई हैं।" राजा नियुक्त आदमियों के ही मत का हो गया। वह केवट्ट से बोला—"आचार्य्य ! लकड़ी का अभाव पैदा करके भी हम इस नगर को आधीन नहीं कर सकते। इस उपाय को भी वापिस लो।"

"महाराज ! चिन्ता न करें। दूसरा उपाय है।"

"आचार्य्य ! यह कौन-सा उपाय है। मुझे तुम्हारे उपायों का अन्त नहीं दिखाई देता। हम विदेह-राज को अपने आधीन नहीं कर सकते। अपने नगर को वापिस चलें।"

"यह हमारे लिये लज्जा की बात होगी कि चूळनी-ब्रह्मदत्त सौ राजाओं को साथ लेकर भी विदेह-राज को आधीन नहीं कर सका। केवल महोषध ही पण्डित नहीं है। मैं भी पण्डित हूँ। हम एक 'तिकड़म' करेंगे।"

"आचार्य्य ! क्या तिकड़म करेंगे।"

"हम धर्म-युद्ध करेंगे।"

"यह धर्म-युद्ध क्या है ?"

"महाराज ! सेना युद्ध नहीं करेगी। दोनों राजाओं के दोनों पण्डित एक जगह मिलेंगे। उनमें से जो नमस्कार करेगा, उसकी हार मानी जायगी। महोषध यह मन्त्र नहीं जानता है। मैं बड़ा हूँ। वह छोटा है। वह मुझे देखकर नमस्कार करेगा। तब विदेह हार जायेगा। हम विदेह-राज को हराकर अपने घर जायेंगे। इस तरह से हम लज्जित नहीं होंगे। यह धर्म-युद्ध है।"

पण्डित को जब इस बात का भी पता लगा तो उसने सोचा—"मेरा नाम पण्डित नहीं, यदि मैं केवट्ट से हार जाऊं।"

ब्रह्मदत्त ने भी 'आचार्य्य ! यह उपाय सुन्दर है' कह एक पत्र लिखवा छोटे-द्वार से विदेह-राज के पास पेजा—'कल धर्म-युद्ध होगा। दोनों पण्डितों की धर्मानुसार न्याय पूर्वक जय-पराजय होगी। जो धर्म-युद्ध नहीं करेगा वह भी पराजित ही समझा जायेगा।" यह सुन विदेह-राज ने पण्डित को बुलवा वह बात कही। पण्डित का उत्तर था—"देव ! अच्छा है। कहला भेजें कि कल प्रातःकाल ही पश्चिम-द्वार पर धर्म-युद्ध-मण्डल तैय्यार रहेगा, धर्म-युद्ध-मण्डल में आयें।" यह सुन राजा ने जो राज-दूत आया था उसीको पत्र दिलवा दिया। पण्डित ने अगले

दिन केवट्ट को ही पराजित करने के लिये पश्चिम-द्वार पर धर्म-युद्ध-मण्डल तैय्यार कराया। उन सब आदमियों ने भी 'कौन जाने, क्या हो' सोच पण्डित की रक्षा करने के लिये केवट्ट को घेर लिया। वे सौ राजा भी धर्म-युद्ध-मण्डल पहुँचे और खड़े होकर पूर्व दिशा की ओर देखने लगे। उसी प्रकार केवट्ट ब्राह्मण भी। किन्तु बोधिसत्व ने प्रातः काल ही सुगन्धित जल से स्नान किया, लाख के मूल्य का काशी का वस्त्र पहना, सभी अलंकारों से अलंकृत हुआ और नाना प्रकार का श्रेष्ठ भोजन ग्रहण किया। तदनन्तर उसने राज-द्वार पर पहुँच, राजा के यह कहने पर 'मेरा पुत्र आवे' राज-द्वार में प्रविष्ट हो राजा को प्रणाम किया और एक ओर खड़ा हुआ। राजा ने पूछा—"तात महोषध ! क्या बात है ?" "मैं धर्म-युद्ध-मण्डल जाता हूँ।" "मुझे क्या करना चाहिये ?" "देव ! मैं केवट्ट ब्राह्मण को मणि से ठगना चाहता हूँ। आठ स्थानों पर टेढ़ा मणि-रत्न मिलना चाहिये।" "तात ! ले जा।"

वह उसे ले, राजा को प्रणाम कर, (महल से) उतरा। फिर साथ जन्मे हजार योधाओं को साथ ले, नौवे हजार कार्षापण मूल्य के श्वेत घोड़े जुते रथ में चढ़कर प्रातःकाल का जलपान करने के समय द्वार के पास पहुँचा। केवट्ट भी खड़ा उसके आगमन की प्रतिक्षा कर रहा था कि अब आता है, अब आता है। देखते रहने से, लगता था, जैसे उसकी गरदन लम्बी हो गई है। सूर्य्य की गरमी के कारण उसका पसीना छट रहा था। बहुत से अनुयायियों के साथ होने के कारण समुद्र की तरह फैलते हुए, केशरीसिंह की तरह भय-रहित, रोमाञ्चरहित बोधिसत्व ने भी दरवाजा खुलवाया और नगर से निकल, रथ पर चढ़, सिंह की तरह जाग्रत हो चला। सौ राजाओं ने जब उसकी रूप-शोभा देखी तो जाना कि यही श्रीवर्धन सेठ का पुत्र महोषध पण्डित है, जिसके समान प्रज्ञावान् सारे जम्बुद्वीप में दूसरा कोई नहीं है। वे हजार बार चिल्लाये। वह भी देवताओं से घिरे इन्द्र की भाँति, अनूपम श्री वैभव के साथ, हाथ में वह मणिरत्न लिये केवट्ट की ओर बढ़ा।

केवट्ट ने उसे देखा तो अपने आप को संभाले न रख सका। वह उसकी अगवानी करता हुआ बोला—"महोषध ! हम दोनों पण्डित हैं। हम तुम्हारे पास इतने समय से रह रहे हैं, तुमने भेंट तक नहीं भेजी ? ऐसा क्यों किया ?" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"पण्डित ! तुम्हारे योग्य भेंट खोजता रहा। आज यह मणिरत्न मिला है। लें। इस प्रकार का दूसरा मणिरत्न नहीं है।" उसने उसके हाथ में चमकते हुए मणिरत्न को देख सोचा, 'यह देना चाहता होगा।' इसलिये हाथ पसार दिये

और बोला—'दे।' बोधिसत्व ने 'ले' कह फैले हुए हाथ के सिरे पर गिरा दिया। ब्राह्मण भारी मणिरत्न को उगलियों पर संभाल न सका। वह छूटकर बोधिसत्व के पैरों में जा रहा। लोभ के वशीभूत हो ब्राह्मण उसे लेने के लिये उस के पैरों की ओर झुका।

बोधिसत्व ने उसे उठने नहीं दिया। एक हाथ से कन्धा और दूसरे से पीठ पकड़, मुँह से तो यह कहते हुए कि 'आचार्य्य ! उठें, आचार्य्य ! उठें। मैं छोटा हूँ। तुम्हारे नाती के समान हूँ। मुझे प्रणाम न करें' किन्तु हाथ से उसे इधर-उधर कर उसका मुँह और माथा जमीन से रगड़ खून निकाल दिया। फिर 'अन्धे मूर्ख तू मुझसे प्रणाम की आशा करता था' कह गरदन से पकड़ फेंक दिया। वह (उसभ मात्र) दूरी पर गिरा और उठकर भाग गया। मणिरत्न बोधिसत्व के आदमियों ने ही उठा लिया। बोधिसत्व की यह आवाज कि 'उठो उठो, मुझे प्रणाम मत करो' सारी परिषद में छा गई। उसकी परिषद ने भी एक ही बार हल्ला कर दिया कि केवट्ट ब्राह्मण ने पण्डित के चरणों की वन्दना की। ब्रह्मदत्त से लेकर सभी राजाओं ने केवट्ट को बोधिसत्व के चरणों में झुका ही देखा था। 'हमारे पण्डित ने महोषध की वन्दना की है। अब वह हमें जीता नहीं छोड़ेगा' सोच वे अपने अपने घोड़ों पर चढ़ उत्तर पञ्चाल की ओर भागने लगे। उन्हें भागते देख, बोधिसत्व के आदमियों ने फिर हल्ला किया—ब्रह्मदत्त अपने सौ राजाओं सहित भाग रहा है। ये सुन वे राजागण मृत्युभय के मारे और भी तेजी से भागे। उन्होंने सेना छिन्न-भिन्न कर दी। बोधिसत्व की परिषद ने भी शोर मिचाते हुए, हल्ला करते हुए अच्छी तरह से लड़ाई की।

सेना से घिरा हुआ बोधिसत्व नगर को ही लौट आया। ब्रह्मदत्त की सेना तीन योजन जा पहुँची। केवट्ट घोड़े पर चढ़ा और माथे पर से रक्त पोंछता हुआ सेना तक पहुँच, घोड़े की पीठ पर बैठा ही बैठा कहने लगा—"भागो मत। मैंने गृहपति-पुत्र की वन्दना नहीं की है। रुको, रुको।" सेना बिना रुके, बिना उसकी बात सुने, उसे गालियां देते हुए और उसका मजाक उड़ाते हुए चलती रही—"पापी! दुष्ट-ब्राह्मण! 'धर्म-युद्ध करूँगा' कहकर, जाकर उसे नमस्कार किया जो तेरा नाती भी होने के योग्य नहीं। तेरे लिये कुछ भी अकरणीय नहीं है।" वह जल्दी से गया और सेना तक पहुँच, बोला—"अरे! मेरे कहने का विश्वास करो। मैंने उसे नमस्कार नहीं किया। उसने मणि से मुझे ठगा है।" इस प्रकार उसने सभी राजाओं को नाना प्रकार से विश्वास दिलाया और अपनी बात का विश्वास दिला उस छितराई हुई

सेना को विश्वास दिलाया। वह इतनी बड़ी सेना थी। यदि वे लोग बालू की एक एक मुट्ठी अथवा एक एक ढेला भी फेंकते तो खाई भर कर चारदीवारी से भी ऊपर ढेर पहुँच जाता। किन्तु बोधिसत्व के संकल्प पूरे होते हैं। किसी एक ने भी बालू या पत्थर नगर की ओर नहीं फेंका। सभी रुककर अपनी छावनी में ही लौट आये। राजा ने केवट्ट से पूछा—"आचार्य्य! क्या करें?" "देव! किसी को भी छोटे-द्वार से न निकलने देकर आना-जाना रोक देंगे। मनुष्यों को जब बाहर निकलना नहीं मिलेगा तो घबराकर द्वार खोल देंगे। हम शत्रुओं को काबू कर लेंगे।"

बोधिसत्व को पूर्वोक्त प्रकार से ही जब पता लगा तो सोचा कि यदि ये चिर-काल तक यहाँ रहे तो सुख नहीं ही होगा। इन्हें चतुराई से भगाना ही चाहिये। मैं इन्हें मन्त्रणा द्वारा भगाऊँगा। उसने किसी मन्त्रणा-कुशल अमात्य की खोज करते हुए अनुकेवट्ट को देखा और बुलाकर कहा—"आचार्य्य! आपको हमारा एक कार्य्य करना होगा।" "पण्डित! क्या करूँ?" "आप चारदीवारी के ऊपर खड़े हो, हमारे मनुष्यों की असावधानी के समय बीच बीच में ब्रह्मदत्त के मनुष्यों को पूए, मत्स्य-मांसादि फेंक दिया करें और कहें, "अरे! यह और यह खाओ। घबराओ मत। और कुछ दिन टिके रहने का प्रयत्न करो। नगर के लोग पिंजरे में कैद मुर्गों की तरह हैं। घबरा कर शीघ्र ही द्वार खोल देंगे। तुम विदेह-राज को तथा दुष्ट गृहपति-पुत्र को पकड़ लेना।' तब हमारे आदमी यह बात सुन तुम्हें गालियां देंगे और डरायेंगे। और फिर ब्रह्मदत्त के मनुष्यों की नजर के सामने ही तुम्हें हाथ-पाँव से पकड़, बांस की चपटियों से पीटने का ढंग बनायेंगे। फिर सिर की पांचों चोटियां पकड़ उनमें ईंटों की सुर्खी बखेर देंगे और गले में लाल कणेर की माला डाल, कुछ पीट-पाट कर, पीठ में मार की लकीरें उठा देंगे। फिर चारदीवारी पर चढ़ा, टोकरी में फेंक, रस्से से दूसरी ओर उतार देंगे और कहेंगे, "भेद खोल देने वाले चोर जा।" वे तुझे ब्रह्मदत्त के आदमियों को सौंप देंगे। वे तुझे राजा के पास ले जायेंगे। राजा पूछेगा—"तेरा क्या अपराध है?" उसे ऐसा कहना—"महाराज! पहले मैं बहुत ऐश्वर्य्यवान् था। गृहपति पुत्र ने राजा को यह कह कर कि 'यह भेद बता देने वाला है', मेरा सब ऐश्वर्य्य नष्ट कर दिया। 'मैं अपने यश को नष्ट करने वाले गृहपति-पुत्र का सिर कटवाऊँगा' सोच तुम्हारे मनुष्यों को घबराया देख उन्हें खाना-पीना देता था। इतनी बात से पुराना वैर याद कर उसने मेरी यह हालत करा दी। महाराज! आपके आदमी यह सब हाल जानते

हैं।' इस तरह उसे नाना प्रकार से विश्वास दिलाकर कहना, 'महाराज ! मेरे आ मिलने के बाद से अब आप चिन्ता न करें। अब विदेह-राज और गृहपति-पुत्र की जान नहीं बच सकती। मैं जानता हूँ कि इस नगर की चारदीवारी किस जगह पर मजबूत है, और किस जगह पर दुर्बल है, और यह भी जानता हूँ कि खाई में किस जगह पर मगर-मच्छ आदि हैं और किस जगह पर नहीं हैं ? मैं शीघ्र ही नगर पर अधिकार करा दूंगा।' तब वह राजा तुम्हारा विश्वास कर सत्कार करेगा। तुम्हें सेना-सवारी सौंप देगा। तब उसकी सेना को भयानक मगर-मच्छों की जगह पर ही उतारना। उसकी सेना मगरों के डर के मारे नहीं उतरेगी। तब कहना—'देव ! तुम्हारी सेना को गृह-पति-पुत्र ने फोड़ लिया है। आचार्य्य सहित सारे राजाओं में एक भी ऐसा नहीं है, जिसने रिश्वत न ली हो। ये केवल तुम्हारे इर्द-गिर्द ही घूमते हैं। यदि मेरा विश्वास नहीं है तो सभी राजाओं को आज्ञा दें कि अलंकृत होकर आपके पास आयें। तब उन सब के पास गृहपति-पुत्र द्वारा अपना नाम लिखकर दिये गये वस्त्र, अलंकार, खड्ग आदि देखकर विश्वास करें।' वह वैसा कर और वे चीजें देख विश्वास करके भय के मार उन राजाओं को विदाकर देगा और तुमसे ही पूछेगा—'पण्डित ! अब क्या करें ?' उसे तुम ऐसा कहना—'महाराज ! गृहपति पुत्र बहुत मायावी है। यदि और कुछ दिन यहां रहे तो सारी सेना को अपने हाथ में करके आपको पकड़ लेगा। बिना विलम्ब किये आज ही आधी रात के बाद घोड़े पर बैठ भाग चलें। दूसरे के हाथ में पड़ कर हमारा मरना न हो। वह तुम्हारा कहना मान वैसा करेगा। तुम उसके भागने के समय रुककर अपने आदमियों को सूचना देना।"

यह सुन अनुकेवट्ट ब्राह्मण बोला—"अच्छा पण्डित ! तेरा कहना करुँगा।" "तो कुछ प्राहार सहने होंगे।" "पण्डित ! मेरे जीवन और हाथ पैरों को सुरक्षित रहने देकर शेष जो चाहे कर।" उसने उसके घर के मनुष्यों का सत्कार करवा, पूर्वोक्त प्रकार से ही अनुकेवट्ट की दुर्दशा कर, रस्सी से उतार, ब्रह्मदत्त के आदमियों को ही दिलवाया।

राजा ने उसकी परीक्षा कर, उसका विश्वास कर लिया और उसका सत्कार कर उसे सेना सौंप दी। उसने भी सेना को भयानक मगर-मच्छों की जगह ही उतारा। मगर-मच्छों द्वारा खाये जाने से, अटारी पर बैठे आदमियों द्वारा बाण, शक्ति तथा तोमर की वर्षा से बींधे जाने के कारण आदमी विनाश को प्राप्त हुए। अब वे भय

के मारे आगे नहीं बढ़ते थे। अनुकेवट्ट राजा के पास पहुँचा और बोला—"महाराज! तुम्हारी ओर से लड़ने वाला नहीं है। सभी ने रिश्वत ले रखी है। यदि मेरा विश्वास न हो तो राजाओं को बुलवा कर उनके पहने वस्त्रादि पर बने अक्षरों को देखें।" राजा ने वैसा ही किया। जब उसने सभी के वस्त्रों पर अक्षर देखे तो उसे विश्वास हो गया कि सभी ने रिश्वत ली है। उसने पूछा—"आचार्य्य! अब क्या करना उचित है?" "देव! और कुछ करणीय नहीं हैं। यदि देर करेंगे तो गृहपति-पुत्र पकड़ लेगा। महाराज! आचार्य्य केवट्ट भी केवल माथे पर जख्म करके घूमता है। उसने भी रिश्वत ली है। उसने मणिरतन लेकर आपके तीन योजन चले जाने पर भी विश्वास दिलाकर फिर रोक लिया। यह भी फूट डालने वाला ही है। मुझे उसका एक रात भी यहाँ रहना अच्छा नहीं लगता। आज ही आधी रात के बाद भाग जान योग्य है। मेरे अतिरिक्त यहाँ आपका और कोई मित्र नहीं है।"

"आचार्य्य! तो फिर आप ही मेरा घोड़ा तैयार कर सवारी की व्यवस्था कर दें।"

ब्राह्मण को जब पता लगा कि अब यह निश्चय से भाग जायेगा तो उसने उसे आश्वस्त किया—"महाराज! डरें नहीं।" फिर स्वयं बाहर निकल नियुक्त आदमियों को सावधान किया—"आज राजा भागेगा। सोना नहीं।" उसने राजा के घोड़े पर ऐसे ढंग से इतनी अच्छी काठी कसी कि जिसमें वह खूब भाग सके। फिर आधीरात के बाद राजा को सूचना दी—"देव! घोड़ा कस दिया गया है। अब आप समय जानें।" राजा घोड़े पर चढ़ भाग गया। अनुकेवट्ट भी घोड़े पर चढ़ उसके साथ थोड़ी दूर जा रुक गया। ठीक से काठी कसा हुआ घोड़ा खींचे जाने पर भी राजा को लेकर भाग गया।

अनुकेवट्ट ने सेना में घुस हल्ला कर दिया कि चूळनी-ब्रह्मदत्त भागा जा रहा है। नियुक्त आदमियों ने भी अपने आदमियों के साथ मिल कर शोर मचाया। शेष राजाओं ने जब यह सुना तो सोचा कि महोषध पण्डित दरवाजा खोल बाहर आया होगा। अब वह हमें जीवित नहीं रहने देगा। यह सोच, डर के मारे वे अपना माल असबाब सभी कुछ छोड़कर भाग खड़े हुए। मनुष्यों ने अच्छी तरह शोर मचाया कि राजा लोग भागे जा रहे हैं। शेष लोगों ने जब यह सुना तो उन्होंने दरवाजे की अटारियों पर से हल्ला मचाया और तालियां बजाईं। उस समय जैसे पृथ्वी फट गई हो, अथवा समुद्र क्षुब्ध हो उठा हो, सारा नगर अन्दर-बाहर एक

शब्द से गूंज गया। अट्ठारह अक्षौहिणी आदमी यह समझ कि महोषध ने राजा ब्रह्मदत्त के साथ सभी राजाओं को पकड़ लिया है, मृत्यु से डर कर, निराश्रित हो धोती तक छोड़ छोड़कर भाग गये। छावनी खाली हो गई। चुळनी ब्रह्मदत्त सौ राजाओं को ले अपने नगर ही लौट आया।

अगले दिन प्रातःकाल ही नगर-द्वार खोलकर सेना नगर से बाहर निकली और महान् लूट मची देखकर बोधिसत्व को सूचना दी और पूछा—"पण्डित ! क्या करें ?" उसने उत्तर दिया—"इनका छोड़ा हुआ धन हमारा है। सभी राजाओं का सारा धन अपने राजा को दो। सेठों का और केवट्ट ब्राह्मण का धन हमारे यहाँ ले आओ। शेष धन नगरवासी ले जायें।" मूल्यवान् सामान ढोने में ही आधा महीना गुजर गया। शेष सामान लाने में चार महीने लगे। बोधिसत्व ने अनुकेवट्ट को बहुत ऐश्वर्य्य दिया। उस समय से मिथिला वासी बहुत धनी हो गये। उन राजाओं के साथ उत्तर पाञ्चाल में रहते हुए ब्रह्मदत्र को भी एक वर्ष बीत गया।

एक दिन केवट्ट शीशे में मुँह देख रहा था। उसे माथे का जख्म दिखाई दिया। 'यह गृहपति-पुत्र की करतूत है। उसने मुझे इतने राजाओं के बीच लज्जित किया' सोच वह क्रोधित हुआ और सोचने लगा—"मैं कब उससे बदला ले सकूंगा।" उसे सूझा—"एक उपाय है। हमारे राजा की लड़की का नाम है पञ्चाल-चण्डी। उसका रूप सुन्दर है। अप्सराओं के समान। उसे 'विदेह-राज को देंगे' कहकर उसे काम-भोग का लोभ दे, कांटे फँसी मछली के समान महोषध पण्डित के साथ उसे यहाँ बुला, दोनों जनों को मार जय-पान करेंगे।" यह निश्चय कर वह राजा के पास पहुँचा और बोला—"देव ! एक मन्त्रणा है।" "आचार्य्य ! तुम्हारी मन्त्रणा के फलस्वरूप हम अपने वस्त्र तक से विहीन हो गये। अब और क्या करोगे? चुप रहो।" "महाराज ! इस उपाय के समान दूसरा उपाय नहीं है।" "तो कहो।" "महाराज ! हम दो ही जने रहें।" "ऐसा ही हो।" तब ब्राह्मण उसे प्रासाद के ऊपर के तल्ले पर ले गया और बोला—"महाराज ! विदेह-राज को काम-भोग का लोभ दे, यहां ला, गृहपति-पुत्र के साथ मार डालेंगे।" "आचार्य्य ! उपाय तो सुन्दर है। किन्तु उसे लोभ देकर कैसे लायेंगे ?" "महाराज ! आपकी लड़की पञ्चाल चण्डी उत्तम रूप वाली है। उसके सौन्दर्य तथा चातुर्य्य के सम्बन्ध में कवियों से गीत लिखवा कर उन काव्यों को मिथिला में गवायेंगे कि यदि विदेह-राज को इस प्रकार का स्त्री-रत्न प्राप्य नहीं है तो उसके राज्य से क्या लाभ ? जब पता लगेगा कि वह

उसकी प्रशंसा सुनने से उस पर आसक्त हो गया है तो मैं जाकर दिन निश्चित कर आऊँगा। मेरे दिन निश्चित करके लौट आने पर वह काँटे फँसी मछली के समान गृहपति-पुत्र को साथ लेकर आयेगा। तब हम उन्हें मार डालेंगे।"

राजा ने उसकी बात मान ली—"आचार्य्य! यह उपाय सुन्दर है। ऐसा ही करेंगे।" उस मन्त्रणा को चूळनी ब्रह्मदत्त के शयनागार में रहने वाली मैना ने प्रत्यक्ष कर लिया। राजा ने चतुर कवियों को बुलाकर बहुत सा धन दिया और उन्हें लड़की दिखाकर कहा—"तात! इसके सौन्दर्य्य के सम्बन्ध में काव्य रचना करो।" उन्होंने बहुत सुन्दर गीत बना राजा को सुनाये। राजा ने बहुत धन दिया। कवियों से नाटक करने वालों ने सीखकर उन गीतों को (रास) लीलाओं में गाया। इस प्रकार वे गीत फैल गये। जब वे गीत मनुष्यों में फैल गये तो राजा ने गवैय्यों को बुलाकर कहा—"तात! तुम लोग बड़े-बड़े पक्षियों को लेकर रात को पेड़ पर चढ़ कर वहाँ बैठ जाओ। फिर बहुत प्रातःकाल उनकी गर्दन में कांसे की पत्तियां बाँध उन्हें उड़ा कर उतरो।" उसने ऐसा इसलिये करवाया ताकि लोग समझें कि पञ्चाल राज की कन्या की शरीर-शोभा का वर्णन देवता तक करते हैं। राजा ने फिर उन कवियों को बुलवाकर कहा—"तात! अब तुम ऐसे गीत बनाओ जिनमें मिथिला-नरेश के वैभव का और इस कुमारी के सौन्दर्य्य का वर्णन हो और उनका आशय हो कि इस प्रकार की कुमारी मिथिला-नरेश के अतिरिक्त समस्त जम्बुद्वीप में और किसी के भी योग्य नहीं है।" उन्होंने ऐसा कर राजा को सूचना दी। राजा ने उन्हें धन देकर भेजा—"तात! मिथिला में इसी ढंग से गाओ।" उन्होंने उन्हें गाया और क्रमशः मिथिला जाकर लीला में भी गाया। उन गीतों को सुन जनता ने हजारों तालियां बजाईं और उन्हें बहुत धन दिया। रात को वे वृक्षों पर चढ़कर भी गाते और पक्षियों की गरदन में कांसे की पत्तियां बाँध कर उतर आते। आकाश में कांसे के बजने की आवाज सुन सारे नगर में एक हल्ला हो गया कि पञ्चाल-राज की कन्या के सौन्दर्य्य की प्रशंसा देवता तक करते हैं।

राजा ने सुना तो कवियों को बुला अपने घर पर मजलिस लगवाई और यह जान सन्तुष्ट हुआ कि इस प्रकार की सुन्दर कन्या को चूळनी राजा मुझे देना चाहता है। उसने प्रसन्न हो उन्हें बहुत धन दिया। उन्होंने भी आकर ब्रह्मदत्त को सूचना दी। तब केवट्ट बोला—"महाराज! अब मैं दिन तै करने जाता हूँ।" "आचार्य्य! अच्छा। कुछ चाहिये?" "कुछ भेंट," "ले जायें" कहकर भेंट दिलवाई।

भेंट ले वह बड़े ठाट-बाट से विदेह राष्ट्र पहुँचा । उसका आना सुन नगर में हल्ला हो गया—'चूळनी राजा तथा विदेह-राजा मैत्री स्थापित करेंगे । चूळनी अपनी लड़की विदेह-नरेश को देगा । केवट्ट दिन निश्चय करने आ रहा है ।' विदेह राजा ने भी सुना । बोधिसत्व ने भी । किन्तु बोधिसत्व के मन में हुआ—'उसका आगमन मुझे अच्छा नहीं लगता । मैं यथार्थ बात जानूंगा ।' उसने चूळनी के पास नियुक्त अपने आदमियों के पास सन्देश भेजा—इस मन्त्रणा की यथार्थ जानकारी भेजो । उनका उत्तर आया—"हमें भी इसका यथार्थ पता नहीं । राजा और केवट्ट ने शयनागार में बैठकर मन्त्रणा की है । हाँ, राजा के शयनागार में मैना रहती है, वह इस मन्त्रणा को जानती होगी ।"

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा—'यह नगर जो कि ऐसे ढंग से सुविभक्त करके बनाया गया है कि किसी शत्रु को मौका न मिल सके, मैं केवट्ट को देखने न दूँगा ।' उसने नगर-द्वार से राजभवन तक और राजभवन से अपने घर तक दोनों ओर चटाइयों से घेर और ऊपर से भी चटाइयों से ढक रास्ता बनवाया । उसे चित्रित करवाया । पृथ्वी पर फूल बिखेरे गये, पूर्ण घट रखवाये गये, केले बंधवाये गये तथा उन पर झण्डियां बँधवाई गईं । केवट्ट ने उस नगर में प्रवेश किया तो उसे सुविभक्त नगर देखना नहीं मिला । उसने सोचा कि राजा ने मेरे लिये मार्ग सजवाया है । वह यह नहीं समझ सका कि यह नगर को ढकने के लिये किया गया है । वह गया और राजा को देख भेंट दी तथा कुशल-क्षेम पूछ एक ओर बैठा । फिर राजा द्वारा सत्कृत होने पर उसने अपने आने का उद्देश्य कह दो गाथाये कहीं—

राजा सन्थवकामो ते रतनानि पवेच्छति,
आगच्छन्तु ततो दूता मञ्जुका पियभाणिनो ।।९३।।
भासन्तु मुदुका वाचा या वाचा पटिनन्दिता,
पञ्चाला च विदेहा च उभो एका भवन्तु ते ।।९४।।

[राजा तेरे साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है, इसलिये उसने तेरे पास रत्न भेजे हैं । अब वहाँ से (और यहां) प्रिय भाषी दूतों का आना जाना हो । वे आनन्दित करने वाली कोमल वाणी बोलें । पञ्चाल और विदेह के लोग दोनों एक हों ।।९३-९४।।]

इतना कहकर केवट्ट आगे बोला—"महाराज ! हमारा राजा दूसरे महामात्य को भेजने का विचार कर रहा था । फिर उसने मुझे ही भेजा कि दूसरा कोई ठीक से

संदेश न पहुँचा सकेगा।" उसने कहा—'आचार्य्य ! तुम राजा को अच्छी तरह समझा कर ले आओ।' 'महाराज ! चलें। सुन्दर कुमारी मिलेगी और हमारे राजा के साथ मैत्री स्थापित होगी।' उसकी बात सुनते ही वह प्रसन्न हुआ। उसे आसक्ति हो गई कि सुन्दर कुमारी पाऊँगा। बोला—"आचार्य्य ! तुम्हारा और महोषध पण्डित का धर्म-युद्ध में विवाद हो गया था। जायें मेरे पुत्र से मिलें। दोनों पण्डित परस्पर एक दूसरे से क्षमा माँग, मन्त्रणा कर के यहाँ आयें।"

यह सुन केवट्ट पण्डित से भेंट करने के लिये गया। बोधिसत्व ने भी उस दिन प्रातःकाल ही थोड़ा घी पीकर जुलाब ले लिया। सोचा—उस पापी के साथ मेरी बातचीत ही न हो। उसका घर भी घने गीले गोबर से लीपा गया। खम्भों पर तेल मला गया। उसके लेटने का एक पीढ़ा छोड़, शेष सारे मञ्च-पीढ़े हटा दिये गये। उसने मनुष्यों को संकेत कर दिया—"जब ब्राह्मण बातचीत करने लगे तो कहना, 'ब्राह्मण, पण्डित के साथ बातचीत न करें आज उन्होंने घी पिया है' और मैं भी जब मुँह खोलने लगूं तब भी कहना, 'देव, आज घी पिया है, मत बोलें।' यह सोच बोधिसत्व लाल-वस्त्र पहन सातवें तल्ले पर निवार की चारपाई पर लेटा। केवट्ट ने भी उसकी ड्योढ़ी में खड़े होकर पूछा—"पण्डित कहाँ है ?" आदमी बोले, "ब्राह्मण ! जोर से न बोल। यदि आना चाहता है तो चुपचाप आ। आज पण्डित ने घी पिया है। हल्ला करना मना है।" शेष कमरों में भी उसे इसी प्रकार कहा गया। वह सात दरवाजे लांघकर पण्डित के पास पहुँचा। पण्डित ने बोलने जैसा ढंग किया। आदमियों ने उसे भी रोक दिया—"देव ! मुँह न खोलें। तेज़ घी पिया है। इस दुष्ट ब्राह्मण से बातचीत करने से क्या प्रयोजन।" इस प्रकार उसे पण्डित के पास पहुँचने पर न बैठने की जगह मिली और न आश्रय से खड़े होने की ही जगह मिली। वह गीला गोबर लांघकर खड़ा हुआ।

उसे देख एक आदमी ने आँख मारी, एक ने भौं ऊपर उठाई और एक कपाल खुजलाने लगा। वह उनकी क्रिया देख, हत-बुद्धि हो गया। बोला—"पण्डित ! मैं जाता हूँ।' तब एक आदमी ने कहा—'अरे दुष्ट ब्राह्मण ! तुझे कहा कि आवाज मत निकाल। फिर बोलता है। तेरी हड्डियां तोड़ दूंगा।' वह भयभीत हुआ और रुककर देखने लगा। तब तक एक ने पीठ में बांस की खपची लगा दी। दूसरे ने गरदन से पकड़ कर धकेल दिया। तीसरे ने पीठ पर धप्पा मारा। वह शेर के मुँह से मुक्त मृग की तरह भयभीत हुआ राजभवन पहुँचा। राजा भी सोचने लगा—'आज

मेरा पुत्र इस समाचार को सुनकर प्रसन्न होगा। दोनों पण्डितों की महान् धर्म-चर्चा होनी चाहिये। आज दोनों परस्पर क्षमा-याचना करेंगे। यह मेरे लिये बहुत ही अच्छा है।' उसने केवट्ट को देख पण्डित के साथ हुई भेंट का समाचार जानने के लिये पूछा—

कथन्नु केवट्ट महोसधेन
समागमो आसि तदिङ्घ ब्रूहि,
कच्चि ते पटिनिज्झन्तो
कच्चि तुट्ठो महोसधो ॥९५॥

[हे केवट्ट ! यहाँ बता कि महोषध से मुलाकात कैसी रही ? क्या तुम्हारी क्षमा-याचना हो गई ? क्या महोषध सन्तुष्ट हुआ ? ॥९५॥]

ऐसा पूछने पर केवट्ट बोला—"महाराज ! आप उसे पण्डित समझ कर लिये फिरते हैं। उससे बढ़कर तो कोई असत्पुरुष नहीं है।" उसने गाथा कही।

अनरियरूपो पुरिसो जनिन्द
असम्मोदको थद्धो असब्भिरूपो,
यथा मूगोव बधिरोव
न किञ्चत्थं अभासथ ॥९६॥

[हे राजन ! वह तो अनार्य पुरुष है, सीधी बात न करने वाला है, कठोर है और असभ्य है। उसने तो गूंगे-बहरे के समान मुझसे कुछ बातचीत ही नहीं की ॥९६॥]

राजा ने उसकी बात का न समर्थन किया और न खण्डन किया। उसको तथा उसके साथ आये हुओं को खर्चा दिलवा और उनके रहने की व्यवस्था कर कहा—'आचार्य्य ! जायें। विश्राम करें।' इस प्रकार उसे विदाकर सोचने लगा—'मेरा पुत्र पण्डित है। मधुर व्यवहार करने में कुशल है। इसके साथ न कुशल-क्षेम की बात की और न प्रसन्नता प्रकट की। उसने कुछ न कुछ भावी-भय देखा होगा।' यह सोच स्वयं ही गाथा कही—

अद्धा इदं मन्तपदं सुदुद्दसं
अत्थो सुद्धो नरविरियेन दिट्ठो,
तथा हि कायो मम सम्पवेधति
हित्वा सयं को परहत्थमेस्सति ॥९७॥

[निश्चय से यह मन्त्रणा दूसरे द्वारा अच्छी तरह जान ली गई है। वीर-आदमी ने यथार्थ बात जान ली। मेरा शरीर कांपता है। है। अपने देश को छोड़कर कौन दूसरे के हस्तगत हो ॥९७॥]

मेरे पुत्र ने ब्राह्मण के आगमन के दोष को पहचान लिया होगा। यह मैत्री करने के लिए नहीं आया। यह मुझे काम-भोग का प्रलोभन दे, नगर ले जाकर पकड़ने के लिये है—"यह भावी-भय उस पण्डित ने देख लिया होगा। इस प्रकार मन में विचार करता हुआ जब वह डरा हुआ बैठा था, तो उस समय चारों पण्डित आये। उसने सेनक से पूछा—"सेनक! पञ्चाल नगर जा कर चूळनी राज की कन्या ले आना क्या तुझे अच्छा लगता है?" उत्तर दिया—'महाराज! आई लक्ष्मी को भगाना योग्य नहीं। यदि आप वहां जाकर उसे अङ्गीकार करेंगे, तो चूळनी ब्रह्मदत्त के अतिरिक्त सारे जम्बुद्वीप में कोई भी आपकी समानता करने वाला नहीं रहेगा। किसलिये? ज्येष्ठ-नरेश की लड़की ले लेने के कारण। 'शेष सारे राजा तो मेरे (अधीन) आदमी हैं, केवल एक वेदेह ही मेरे समान है' सोच सारे जम्बुद्वीप में सुन्दर कन्या वह आपको देना चाहता है। उसका कहना करें। आपके कारण हमें भी वस्त्र अलंकार प्राप्त होंगे।" राजा ने शेष पण्डितों से भी प्रश्न किया। उन्होंने भी उसी प्रकार उत्तर दिया। जब वह उनके साथ बातचीत कर ही रहा था, केवट्ट ब्राह्मण अपने निवासस्थान से निकल 'राजा की अनुमति लेकर जाऊंगा' सोच आया और बोला—"महाराज! हम विलम्ब नहीं कर सकते। हम जायेंगे।" राजा ने सत्कार कर उसे विदा किया।

बोधिसत्व को जब पता लगा कि वह चला गया तो स्नान कर, अलंकृत हो, राजा की सेवा में आ, नमस्कार कर एक ओर खड़े हुए। राजा सोचने लगा—'मेरा पुत्र महोषध पण्डित महामन्त्री है, मन्त्रणा में पारङ्गत होने के कारण वह भूत, भविष्य, वर्तमान बातें जानता है। पण्डित यह जानता है कि हमें वहां जाना चाहिये अथवा नहीं जाना चाहिये? राग में अनुरक्त और मोह में मूढ़ होने के कारण अपने प्रथम संकल्प पर स्थिर न रह उससे पूछते हुए उसने गाथा कही—

छन्नं हि एकोव मती समेति
ये पण्डिता उत्तमभूरिपत्ता,
यानं अयानं अथवापि ठानं
महोसध त्वम्पि मतिं करोहि ॥९८॥

[हे महोषध ! हम छः प्रज्ञावानों का एक ही विचार है। आप भी अपना विचार कहें कि वहां जाना योग्य है ? न जाना योग्य है ? अथवा यहीं रहना योग्य है ? ॥९८॥]

यह सुन पण्डित ने सोचा—'यह राजा कामुकता में बहुत आसक्त है। अपने अन्धेपन के कारण, अपनी मूर्खता के कारण इनका कहना मानता है। इसे जाने के दोष बता, रोकूंगा।' उसने चार गाथायें कहीं—

जानासि खो राज महानुभावो
महब्बलो चूलनी ब्रह्मदत्तो,
राजा च तं इच्छति कारणत्थं
मिगं यथा ओकचरेन लुद्दो ॥९९॥
यथापि मच्छो बलिसं वंक मंसेन छादितं,
आमगिद्धो न जानाति मच्छो मरणमत्तनो ॥१००॥
एवमेव तुवं राज चूळनीयस्स धीतरं,
काम गिद्धो न जानासि मच्छोव मरणमत्तनो ॥१०१॥
सचे गच्छसि पञ्चालं खिप्पमत्तं जहिस्ससि,
मिगं यथानुपन्नं व महन्तं भयमेस्सति ॥१०२॥

[राजन् ! आप जानते हैं कि चूळनी ब्रह्मदत्त महाबलशाली, महाप्रतापी राजा है। वह राजा आपको मतलब से ही वहां बुलाना चाहता है, जैसे शिकारी पालतू मृगी से लुभा कर मृग को ॥९९॥ जैसे मांस का लोभी मच्छ मांस से ढके हुए कांटे को नहीं जानता है और मरण को प्राप्त होता है, उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी चूळनी की कन्या के वशीभूत हो अपनी मृत्यु को नहीं पहचानता है ॥१००-१०१॥ यदि पञ्चाल जायेगा तो शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होगा, ठीक उसी प्रकार जैसे गांव में आया हुआ मृग बड़े भय को प्राप्त होता है, तू भी बड़े भय को प्राप्त होगा ॥१०२॥]

अति-निन्दा करने से राजा को क्रोध आ गया। सोचने लगा—"यह मुझे अपने दास की तरह समझता है। यह समझता ही नहीं कि मैं 'राजा' हूँ। श्रेष्ठ-राजा ने मेरे पास लड़की देने का समाचार भेजा है सुनकर एक भी मङ्गल-बात मुंह से नहीं निकालता है। मेरे बारे में कहता है कि यह मूर्ख मृग की तरह, कांटा निगल जाने

वाले मच्छ की तरह (मनुष्य–) पथ पर आये हुए मृग की तरह मरण को प्राप्त होगा। उसने क्रोध के वशीभूत हो दूसरी गाथा कही—

मयमेव बालम्हसे एळमूगा
ये उत्तमत्थानि तयी लपिम्ह,
किमेव त्वं नंगलकोटि वद्धो
अत्थानि जानासि यथापि अञ्ञे ॥१०३॥

[हम ही महामूर्ख हैं जो ऐसी उत्तम बातों के बारे में तेरे साथ वार्तालाप करते हैं। हे हलके सिरे को पकड़ कर बड़े हुए बच्चे! तू इन बातों को दूसरों के समान कहाँ समझता है ॥१०३॥]

इस प्रकार उसे अपशब्द कह और उसका मजाक उड़ा और यह सोच कि यह गृहपति-पुत्र मेरे मङ्गल-कृत्य में बाधक होता है, उसे निकलवाने के लिये गाथा कही—

इमं गले गहेत्वान नासेथ विजिता मम,
यो मे रतनलाभस्स अन्तरायाय भासति ॥१०४॥

[यह मेरे (स्त्री) रत्न लाभ में विघ्न डालने की बात करता है, इसे गरदन पकड़ कर मेरे देश से निकाल दो ॥१०४॥]

राजा क्रोधित है, जान बोधिसत्व ने सोचा, 'यदि कोई राजा की बात मान मेरा गला या हाथ पकड़ ले तो फिर यह मेरे लिये जीवन भर लज्जित रहने के लिये पर्य्याप्त होगा। इसलिये स्वयं ही निकलूँगा।' उसने राजा को प्रणाम किया और अपने घर चला गया। राजा भी केवल क्रोधाभिभूत होने के कारण ही ऐसा बोला। बोधिसत्व के प्रति आदर होने से उसने किसी को ऐसा करने के लिये नहीं कहा। बोधिसत्व ने सोचा—'यह राजा मूर्ख है। अपना भला-बुरा नहीं जानता। कामुकता के वशीभूत हो 'उसकी लड़की अवश्य ही लूँगा' सोच, भावी-भय न जानने के कारण, जाने से महाविनाश को प्राप्त होगा। मुझे उसके कहने का ख्याल नहीं करना चाहिये। यह मेरा बड़ा उपकारी है। इसने मुझे बहुत ऐश्वर्य दिया है। मुझे इसका सहायक होना चाहिये। 'पहले तोते के बच्चे को भेज, यथार्थ बातजान, पीछे स्वयं जाऊँगा' सोच उसने तोते के बच्चे को भेजा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो च सो अपक्कम्म वेदेहस्स उपन्तिका,
अथ आमन्तयी दूतं माढरं सुव पण्डितं ॥१०५॥

एहि सम्म हरीपक्ख वेय्यावच्चं करोहि में,
अत्थि पञ्चाल राजस्स साळिका सयन पालिका ॥१०६॥
तं पत्थरेन पुच्छस्सु सा हि सब्बस्स कोविदा,
सा तेसं सब्बं जानाति रञ्ञो च कोसियस्सच ॥१०७॥
आमोति सो पटिस्सुत्वा माठरो सुव पण्डितो,
अगमासि हरीपक्खो साळिकाय उपन्तिकं ॥१०८॥
ततोवखोसो गन्त्वान माठरो सुवपण्डितो
अथ आमन्तयी सुघरं साळिकं मञ्जुभाणिक ॥१०९॥
कच्चि ते सुघरे खमनीयं कच्चि वेस्से अनामयं,
कच्चि ते मधुना लाजा लब्भते सुघरे तव ॥११०॥
कुसलञ्चेव ये सम्म अथो सम्म अनामयं
अथो मे मधुना लाजा लब्भते सुव पण्डित ॥१११॥
कुतो नु सम्म आगम्म कस्स वा पहितो तुवं:
न च मेसि इतो पुब्बे दिट्ठो वा यदि वा सुतो ॥११२॥

[तब वेदेह के पास से जाकर उसने माठर नामक पण्डित-तोते दूत को बुलाया ॥१०५॥ मित्र हरित-पक्ष ! आ मेरा काम कर। पञ्चाल राज के शयनागार में एक मैना रहती है। उससे एकान्त में पूछना। वह सब कुछ जानती है। वह उस राजा और केवट्ट ब्राह्मण की सब बातचीत जानती है ॥१०६-१०७॥ उस माठर तोते-पण्डित ने 'हाँ' यह वचन दिया और वह हरित-पक्ष उस मैना के पास जा पहूँचा ॥१०८॥ उस माठर तोते-पण्डित ने वहाँ पहुँच उस सुघर-वासिनी, मधुरभाषिणी मैना को संबोधित किया ॥१०९॥ हे सुघरवासिनी ! तू सकुशल तो है ? हे वैश्य-वधु ! तू स्वस्थ तो है ? हे सुघरवासिनी ! क्या तुझे मधु और खील मिलती है ? ॥११०॥ मित्र ! मैं सकुशल हूँ और हे मित्र ! यें स्वस्थ हूं। और हे तोते-पण्डित ! मुझे मधुके साथ खील मिलती है ॥१११॥ मित्र ! तू कहाँ से आया है ? अथवा तुझे किसने भेजा है ? इससे पूर्व मैंने तुझे देखा-सुना नहीं ॥११२॥]

उसकी बात सुन उसने सोचा—यदि मैं कहूँगा कि मैं मिथिला से आया हूं तो यह मर जायेगी किन्तु मेरा विश्वास नहीं करेगी। में सिवि राष्ट्र के अरिट्ठपुर नगर होता हुआ आया हूं। इसलिये 'सिवि राजा द्वारा भेजा गया' बन, वहां से आया हूँ, यह मिथ्या बात कह दूँ। वह बोला—

अहोसिं सिविराजस्स पासादे सयनपालको,
ततो सो धम्मिको राजा बद्धं मोचेसि बन्धना ॥११३॥

[मैं सिविराज के प्रसाद में उसके शयनागार में था। उस धार्मिक राजा ने मुझे बन्धन से मुक्त कर दिया ॥११३॥]

तब उस मैना ने उसके अपने लिये सोने की तशतरी में रखी हुई मधु मिश्रित खील और मधुर जल देकर पूछा—"मित्र ! आप दूर से आये हैं ? किस उद्देश्य से आये हैं ?" उसने उसकी बात सुन 'रहस्य' पता लगाने की इच्छा से झूठा उत्तर दिया—

तस्स मेका दुतियासि साळिका मञ्जुभाणिका,
तं तत्थ अवधी सेनो पेक्खतो सुघरे मम ॥११४॥

[मेरी एक प्रिय-भाषिणी भार्य्या मैना थी। हे सुघरवासिनी उसे मेरे देखते-देखते बाज ने मार डाला ॥११४॥]

उसने उसे पूछा—"तेरी भार्य्या को बाज़ ने कैसे मार डाला ?" उसने उत्तर दिया—"भद्रे, सुन। एक दिन हमारे राजा ने जल-क्रीड़ा के लिये जाते समय मुझे भी बुलाया। मैं भार्य्या सहित उसके साथ गया, खेला और सन्ध्या समय उसीके साथ लौट आया। फिर राजा के साथ ही प्रासाद पर चढ़ शरीर सुखाने के लिये, हम दोनों झरोखे से निकल मीनार के गर्भ में बैठे। उसी क्षण एक बाज ने मीनार से निकल कर हम पर झपटा मारा। मैं मृत्यु के भय से तुरन्त भागा। वह उस समय गर्भिणी थी। इसलिये वह जल्दी से न भाग सकी। वह उसे मेरी नजर के सामने ही मार कर ले गया। मुझे शोक से रोता देख हमारे राजा ने पूछा—"क्यों रोता है ?", "अच्छा सौम्य मत रो। दूसरी भार्य्या खोज ले।" "देव ! दूसरी आचार विहीन दुश्शील भार्य्या के लाने से क्या लाभ ! अकेले ही विचरना अच्छा है।"

तब राजा ने मुझे यह कहकर यहाँ भेजा है—"सौम्य ! मैं एक सदाचारिणी मैना को देखता हूँ। वह तेरी भार्य्या जैसी ही है। चूळनीराज के शयनागार में रहने वाली मैना ऐसी ही है। तू वहाँ जाकर उसका मन जान, उसे राजी कर, यदि वह अच्छी लगे तो हमें आकर बता। मैं या देवी वहाँ जाकर बड़े ठाट-बाट से उसे ले आयंगे।" मैं इसीलिये आया हूँ, कह, गाथा कही—

तस्सा कामा हि सम्पत्तो आगतोस्मि तवन्तिके,
सचे करेय्यासि ओकासं उभयोव वसामसे ॥११५॥

[उसी इच्छा से प्रसन्न होकर मैं तेरे पास आया हूँ। यदि तू अनुज्ञा करे तो हम इकट्ठे रहें ॥११५॥]

वह उसकी बात सुन प्रसन्न हुई। किन्तु मन की बात छिपाकर अनिच्छा प्रकट करती हुई सी बोली—

सुवो च सुविं कामेय्य साळिको पन साळिकं,
सुवस्स साळिकाय च संवासो होति कीदिसो ॥११६॥

[तोता तोती को चाहे और मैना (पुं) मैना (स्त्री०) को चाहे, यह तो स्वाभाविक है। किन्तु तोता और मैना का सहवास कैसा होगा? ॥११६॥]

यह बात सुनी तो तोते ने सोचा—'यह इन्कार नहीं करती है। केवल नखरा ही करती है। यह निश्चय से मुझे चाहेगी। मैं इसे नाना प्रकार की उपमाओं से विश्वास दिलाऊँगा' उसने गाथा कही—

यं यं कामी कामयति अपि चण्डालिकामपि,
सब्बेहि दिवसो होति नत्थि कामे असादिसो ॥११७॥

[कामुक जिस जिसकी भी कामना करता है, भले ही वह चण्डालिनी हो, सभी सदृश ही होती हैं। काम-भोग में कहीं कुछ असादृश्य नहीं है ॥११७॥]

यह कह मनुष्यों में नाना जातियों का परस्पर संवास दिखाने के लिये बाद की गाथा कही—

अत्थि जम्बावती नाम माता सिब्बिस्स राजिनो,
सा भरिया वासुदेवस्स कण्हस्स महेसी सिया ॥११८॥

[सिवि राजा की माता जम्बावती नाम की (चण्डालिनी) है। वह कृष्णायन (गोत्र) के (दस भाइयों में बड़े भाई) वासुदेव की प्रिय भार्य्या हुई ॥११८॥]

यह उदाहरण देकर उसने दिखाया कि इस प्रकार के क्षत्रिय ने भी चण्डालिनी से सहवास किया। हम जानवरों के बारे में क्या कहना? परस्पर संवास का अच्छा लगना ही निर्णायक है। और भी उदाहरण देकर कहा—

रथावती किम्पुरिसी सापि वच्छं अकामयि,
मनुस्सो मिगिया सद्धिं नत्थि कामे असादिसो ॥११९॥

[रथावती किन्नरी ने भी वच्छ तपस्वी की कामना की। मनुष्य ने मृगी के साथ भी संवास किया। काम-भोग में असादृश्य नहीं है ।।११९।।]

उसकी बात सुनकर वह बोली—"स्वामी ! चित्त सदैव एक जैसा नहीं रहता। मुझे प्रिय के वियोग से डर लगता है। तोता पण्डित था। स्त्री-माया में कुशल था। उसने उसकी परीक्षा लेते हुए फिर गाथा कही—

हन्द खोहं गमिस्सामि साळिके मञ्जुभाणिके,
पच्चक्खानु पदं हेतं अतिमञ्जसि नूनमं ।।१२०।।

[हे प्रियभाषिणी मैना ! मैं जाता हूँ। तेरा यह इनकार ही है। 'यह मुझ चाहता है' समझ तू बहुत मान कर रही है ।।१२०।।]

ज्यों ही उसने सुना कि 'जाता हूँ', उसका हृदय टूट गया। उसे देखते ही मानो उसके मन में काम-वासना की जलन पैदा हो गई थी। उसने डेढ़ गाथा कही—

न सिरी तरमानस्स माढर सुव पण्डित,
इधेव ताव अच्छस्सु याव राजानं दक्खसि
सोस्ससि सद्दं मुतिंगानं आनुभावञ्च राजिनो ।।१२१।।

[हे माढर तोते-पण्डित ! जल्दबाज को लक्ष्मी नहीं मिलती। जब तक राजा से भेंट नहीं होती, तब तक यहीं रह। यहाँ मृदङ्ग आदि का शब्द सुनने को मिलेगा और राजा का प्रताप देखने को मिलेगा ।।१२१।।]

शाम को दोनों ने मैथुन-धर्म सेवन किया। हर तरह से परस्पर अत्यन्त प्रिय हो गये। तब तोते के बच्चे ने सोचा—"अब यह मुझसे रहस्य नहीं छिपायेगी। अब इससे पूछकर जाना चाहिये।" वह बोला—"मैना !" "स्वामी ! क्या !" "मैं तुझे कुछ कहना चाहता हूँ। कहता हूँ।"

"स्वामी कहें।"

"अच्छा ! आज हमारा मङ्गल-दिवस है। दूसरे दिन सोचूँगा।"

"स्वामी ! यदि मङ्गल-बात है तो कहें, यदि अमाङ्गलिक है तो मत कहें।"

"यह तो मङ्गल-कथा ही है।"

"तो स्वामी ! कहें।"

"यदि सुनना चाहती है तो तुझे कहता हूँ' कह उस रहस्य को पूछने के लिये डेढ़ गाथा कही—

यो नुन्नो यं तिब्बो सद्दो तिरोजनपदे सुतो
धीता पञ्चालराजस्स ओसधी विय वण्णिनी,
तं दस्सति विदेहानं सो विवाहो भविस्सति ।।१२२।।

[दूसरे दूसरे जनपदों में यह जोर का हल्ला सुना जाता है कि ओसधी तारे की तरह प्रकाश-युक्त वर्ण वाली, पञ्चालराज-कन्या विदेहों को दी जायगी और वह विवाह होगा ! ।।२२।।]

उसकी बात सुनी तो वह बोली—"स्वामी ! मङ्गल-दिन अमाङ्गलिक बात क्यों मुँह से निकालते हो ?"

"मैं मङ्गल-बात कहता हूँ। तू अमाङ्गलिक कहती है ! यह क्या बात है ?"

"स्वामी ! शत्रुओं को भी ऐसी मङ्गल-क्रिया न हो।"

"तो भद्रे ! बता।"

"स्वामी ! नहीं कह सकती।"

"भद्रे ! यदि तू मुझसे कोई रहस्य छिपायेगी तो उस दिन से हमारा सहवास नहीं होगा।"

उसके दबाव देने पर वह बोली—"तो स्वामी ! सुनें।' उसने गाथा कही—

ने दिसो ते अमित्तानं विवाहो होतु माढर,
यथा पञ्चालराजस्स वेदेहेन भविस्सति ।।१२३।।

[माढर ! तेरे शत्रुओं का भी ऐसा विवाह न हो जैसा पञ्चालराज तथा वेदेह का होगा ।।१२३।।]

इस गाथा के कहने पर जब उसने पूछा 'भद्रे ! ऐसी बात क्यों कहती है ?' तो उसने 'सुन, दोष बताती हूँ' कह दूसरी गाथा कही—

आनयित्वान वेदेहं पञ्चालानं रथेसभो,
ततो नं घातयिस्सति तस्स सखिल भविस्सति ।।१२४।।

[वेदेह को यहाँ मँगवाकर, पञ्चालों का राजा उसे मरवा डालेगा। उनकी मैत्री नहीं होगी ।।१२४।।]

इस प्रकार उसने तोते-पण्डित को सारा रहस्य बता दिया। यह सुन उसने केवट्ट की प्रशंसा की—'आचार्य केवट्ट उपाय कुशल है। इसमें आश्चर्य नहीं कि वह ऐसे उपाय से राजा को मरवा डाले।' फिर बोला—'इस प्रकार की अमाङ्गलिक-

बात से हमें क्या लेना-देना' और चुप रह सो रहा। यह जान कि उसके आने का उदेश्य पूरा हो गया, वह रात उसके साथ बिता, विदा होने की इच्छा से कहा— "भद्रे ! मैं सिवि राष्ट्र जाकर राजा से कहूँगा कि मुझे श्रेष्ठ भार्य्या मिल गई।" उसने गाथा कही—

हन्द खो मं अनुजानाहि रत्तियो सत्तभत्तियो
यावाहं सिविराज्जस आरोचेमि महेसिनो,
लद्धो च मे आवसथो साळिकाय उपन्तिकं ॥१२५॥

[मुझे सात रात भर के लिये अनुज्ञा दे। मैं जाकर सिवि राज की पटरानी को कह आऊँ कि मुझे मैना के साथ रहना मिल गया है ॥१२५॥]

मैना की इच्छा नहीं थी कि उससे वियोग हो, किन्तु उसकी बात सुन उसका विरोध न कर सकने के कारण उसने आगे की गाथा कही—

हन्द खो तं अनुजानामि रत्तियो सत्तभत्तियो
सचे त्वं सत्तरत्तेन नागच्छसि ममन्तिके,
मञ्ञे ओक्कन्तसत्तं मे मताय आगमिस्ससि ॥१२६॥

[मैं तुझे सात रातभर की छुट्टी देती हूँ। यदि तू सात रात के बाद मेरे पास नहीं आयेगा तो मैं समझती हूँ कि मेरा प्राण निकलने पर मेरे मरने पर आयेगा ॥१२६॥]

उसने दिल में तो सोचा, 'चाहे तू जी और चाहे मर, मुझे इससे क्या' किन्तु वाणी से बोला—'भद्रे ! क्या कहती है। मैं भी यदि आठवें दिन तुझे न देख पाऊँगा तो कैसे जीता रहूँगा।' वह वहाँ से उड़ा और थोड़ी दूर सिवि राष्ट्र की ओर जा, रुक कर मिथिला पहुँचा और पण्डित के कन्धे पर उतरा। बोधिसत्व ने उसे ऊपर महल पर ले जाकर पूछा। उसने सारा समाचार सुना दिया। उसने भी पूर्व प्रकार से उसका सत्कार किया।

उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो च सो गन्त्वान माढरो सुव पण्डितो,
महोसधस्स अक्खासि साळिया वचनं इदं ॥१२७॥

[तब माढर नामक तोते-पण्डित ने जाकर मैना का यह कहना महोषध पण्डित को बता दिया ॥१२७॥]

यह बात सुनी तो बोधिसत्व को विचार आया—'मेरी सम्मति न रहने पर भी राजा जायेगा। जायेगा तो महान् विनाश को प्राप्त होगा। तब मेरी निंदा होगी—'ऐसे ऐश्वर्य्यदाता की बात का ख्याल कर उसकी रक्षा नहीं की।' मेरे जैसे पण्डित के रहते यह क्यों नष्ट होगा। यह मेरी जिम्मेदारी है कि मैं राजा से भी पहले जाऊँ, चूलनी से भेंट करूँ, और भली प्रकार विदेह-नरेश के रहने के लिये नगर का निर्माण करवा, गन्यूति-मात्र चलने योग्य सुरंग और आधे-योजन की बड़ी सुरंग बनवाऊँ, और इस प्रकार चूळनी राजा की कन्या को अपने राजा की चरण-सेविका बनाऊँ, और अट्ठारह अक्षौहिणी सेना तथा सौ राजाओं के घेरकर खड़े रहते हुए भी, अपने राजा को राहु के मुँह से चन्द्रमा को छुड़ा लाने की तरह छुड़ा कर ले आऊँ।' इस प्रकार विचार करते करते उसका मन प्रीति से भर गया। उसने प्रसन्नता के आवेश में प्रीति-वाक्य कहते हुए यह आधी गाथा कही—

यस्सेव घरे भुञ्जेय्य भोगं,
तस्सेव अत्थं पुरिसो चरेय्य॥१२८॥

[आदमी को चाहिये कि जिसके घर में रहकर भोगों का भोग करे, उसी का हित करे॥१२८॥]

उसने स्नान किया और अंलकृत हो बड़े ठाट-बाट से राजकुल जा, राजा को प्रणाम कर एक ओर खड़े हो पूछा—"देव! क्या आप उत्तरपञ्चाल नगर अवश्य ही जायेंगे?" "हाँ तात! यदि मुझे पञ्चाल चण्डी नहीं मिलती तो मुझे राज्य से क्या लाभ? मुझे मत छोड़। मेरे साथ ही चल। वहाँ जाने से हमारे दो प्रयोजन सिद्ध होंगे—स्त्री-रतन प्राप्त होगा और राजा के साथ मैत्री स्थापित होगी।" "तो देव! मैं पहले जाकर आपके लिए निवास-स्थान बनवाऊँगा। जब मैं सूचना भिजवाऊँ, तभी आप आइयेगा", । उसने दो गाथायें कहीं—

हन्दाहं गच्छामि पुरे जनिन्द
पञ्चालराजस्स पुरं सुरम्मं,
निवेसनानि मापेतु वेदेहस्स यसस्सिनो॥१२९॥
निवेसनानि मापेत्वा वेदेहस्स यसस्सिनो,
यदाते पहिणेय्यामि तदा एय्यासि खत्तिय॥१३०॥

[राजन! मैं पाञ्चाल राज्य के सुन्दर नगर को पहले जाता हूँ—यशस्वी विदेह

के लिए निवास-स्थान बनवाने।।१२९।। जब मैं यशस्वी विदेह-नरेश के लिए निवास-स्थान बनवा चुकूँ और सन्देश भिजवाऊं, तो हे क्षत्रिय! आप तब आना ।।१३०।।]

यह सुन राजा यह सोच प्रसन्न हुआ कि पण्डित मुझे छोड़ नहीं रहा है। बोला—"तात! आगे जाते समय तुम्हें किस चीज की आवश्यकता है?"

"देव! सेना।"

"तात! जितनी चाहिए, उतनी ले जा।"

"देव! चारों जेलखानों के द्वार खुलवा, चोरों की हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ कटवा, उन्हें भी मेरे साथ भेजें।""तात! जैसा चाहे वैसा कर।"

बोधिसत्व ने जेलखाने खुलवाये, वहां से शूर योधा और ऐसे आदमी जो जहाँ जायें वहाँ कार्य सुफल करें निकलवाये और उन्हें कहा—'मेरी सेवा में रहो।' फिर उनका सत्कार करवाया। बढ़ई, लोहार, चमार, चित्रकार आदि नाना प्रकार के शिल्पियों की अठारह श्रेणियाँ लीं। बसूला, कुल्हाड़ी, कुदाल, खंती आदि बहुत से औजार लिए। इस प्रकार यह बहुत सी सेना ले नगर से निकला।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो च पायासि पुरे महोसधो
पञ्चाल राजस्स पुरं सुरम्मं
निवेसनानि मापेतुं वेदेहस्स यसस्सिनो ।।१३१।।

[तब यशस्वी विदेह-राज के लिए निवास-स्थान बनवाने को महोषध आगे आगे पञ्चाल राज के सुन्दर नगर गया ।।१३१।।]

बोधिसत्व ने जाते समय योजन योजन की दूरी पर एक गाँव में एक एक अमात्य को बसाकर कहा—'जब राजा पञ्चाल चण्डी को लेकर वापिस लौटे, तो तुम हाथी, घोड़ों तथा रथों को तैयार कर, राजा को ले, शत्रुओं से बच यथा-शीघ्र मिथिला पहुँच जाना।' उसने गङ्गा-तट पहुँच आनन्द-कुमार को बुलवाकर कहा—'आनन्द! तू तीन सौ बढ़इयों को लेकर गङ्गा के ऊपर जा और लकड़ी कटवा, तीन सौ नौकायें बनवा और नगर निर्माण के लिए वहीं शहतीर आदि छिलवा, हलकी लकड़ी से नौकायें भर शीघ्र आ।' किन्तु स्वयं गङ्गा के उस पार जा, जहाँ उतरा था वहाँ से कदमों से ही गिनती कर निश्चय किया कि यह आधी-योजन जगह है, यहाँ बड़ी सुरंग बनेगी। यहाँ हमारे राजा का निवास-नगर बनेगा। यहाँ से राजगृह तक गव्यूति-मात्र चलने-योग्य सुरंग बनेगी। इस प्रकार निर्णय कर उसने नगर में प्रवेश

किया। चूळनी राजा को जब बोधिसत्व के आने की बात पता लगी तो उसने सोचा, अब मेरा मनोरथ सिद्ध होगा। शत्रुओं का विनाश देख सकूँगा। यह आ गया है तो विदेह-राज भी शीघ्र ही आयेगा। उसे यह सोच बड़ा ही आनन्द हुआ कि दोनों को मारकर समस्त जम्बुद्वीप का राजा बनूँगा। सारे नगर में हलचल मच गयी—'यह महोषध पण्डित है। इसने सौ राजाओं को ऐसे ही भगा दिया था जैसे ढेले से कौवे।' नागरिक जब उसके सौन्दर्य्य को निहार रहे थे तभी बोधिसत्व राज-द्वार पहुँचा और रथ से उतर राजा के पास सूचना भिजवाई। जब कहा गया कि आवे तो प्रविष्ट हो राजा को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हुआ।

राजा ने उसका कुशल-क्षेम पूछ प्रश्न किया—"तात! राजा कब आयेगा?"
"देव! जब मैं सूचना भिजवाऊँगा"।

"तू किसलिए आया है?"

"देव! आपने राजा के लिए निवास-स्थान बनवाने को।"

"तात! अच्छा।"

राजा ने उसकी सेना को खर्चा दिलवा, बोधिसत्व का भी बहुत सत्कार करा, निवास-स्थान दिलवा कर कहा—तात! जब तक तुम्हारा राजा आता है, तब तक उत्कण्ठा रहित होकर जो कुछ हमारे हित में हो वह भी करते रहो। उसने राज-भवन में चढ़ते समय ही सीढ़ियों के नीचे खड़े हो निश्चय कर लिया कि इस जगह चलने की सुरंग होगी। उसके मन में विचार आया—'राजा कहता है कि हमारे हित में जो हो सो करो। ऐसा करना चाहिए कि सुरंग खोदते जाते समय यह सीढ़ियों पर न चढ़े।' यह सोच उसने राजा से कहा—"देव! मैंने प्रवेश करते समय ही सीढ़ियों के नीचे खड़े हो इन की बनावट में दोष देखा है। यदि आपको अच्छा लगे और लकड़ियाँ मिलें तो मैं इसे ठीक से बनवा दूँ।"

"तात! अच्छा। बनवा।"

उसने यहाँ सुरंग-द्वार होगा, निश्चय कर उस सीढ़ी को वहाँ से हटा, जहाँ सुरंग-द्वार बनेगा वहाँ बालू न गिरने देने के लिये, पटड़ा लगवा, उसे ऐसा स्थिर कर कि गिरे नहीं, सीढ़ी बनवाई। राजा उस भेद को न समझ सका। उसने यही सोचा कि मेरे स्नेह से करता है। इस प्रकार वह दिन मरम्मत में ही बिता अगले दिन कहा—"देव! यदि यह ज्ञात हो जाय कि हमारा राजा कहाँ रहेगा तो उसे अच्छी तरह ठीक-ठाक कर लें।"

"अच्छा पण्डित! मेरे निवास-स्थान के अतिरिक्त नगर में जो स्थान भी सबसे अच्छा लगे वह स्थान ग्रहण कर।"

"महाराज! हम अतिथि हैं। आपके बहुत से प्रिय योधा हैं। उनके घर लिए जायेंगे तो वे हमारे साथ युद्ध करेंगे। उनके साथ हम कैसे झगड़ेंगें?"

"पण्डित! उनके कहने की चिन्ता न कर। जो स्थान तुझे अच्छा लगे ले।"

"देव! वे बार-बार आकर आपको कहेंगे। उससे आपको चित्त की शान्ति नहीं मिलगी। यदि आप चाहें तो आप ऐसा कर सकते हैं कि ज़ब तक हम घर लें तब तक हमारे ही आदमी द्वारपाल रहें। तब वे प्रवेश न पा लौट जायेंगे। ऐसा होने से आपको भी चित्त-सुख होगा।"

राजा ने 'अच्छा' कहकर स्वीकार कर लिया। बोधिसत्व ने सीढ़ी के नीचे, सीढ़ी के ऊपर, बड़े दरवाजे पर, सभी जगह अपने ही आदमी नियुक्त कर दिये और उन्हें आज्ञा दी—"किसी को भी न आने दो।"

तब पण्डित ने अपने आदमियों को आज्ञा दी।

'राज-माता का घर गिराने का ढंग बनाओ।' उन्होंने ड्योढ़ी और बरामदे से ईटें तथा मिट्टी गिरानी आरम्भ की। राज-माता ने यह समाचार सुना तो पूछा—'तात! मेरा घर क्यों फोड़ रहे हो?"

'महोषध पण्डित इसे गिरवाकर अपने राजा के लिए भवन बनवाना चाहता है।"

"यदि ऐसा है तो यहीं रहो।"

"हमारे राजा की सेना-सवारी बहुत है। यह पर्याप्त नहीं है। दूसरा बनवायेंगे।"

"तुम मुझे नहीं पहचानते! मै राज-माता हूँ। अभी पुत्र के पास जाकर सूचना दूंगी।"

"हम राजा के कहने से ही तुड़वा रहे हैं। यदि रुकवा सके तो रुकवा।"

उसे क्रोध आया। अभी दण्ड की व्यवस्था करती हूँ सोच राज-द्वार गई। उसे रोका गया—'अन्दर प्रवेश मत कर।' 'तात! मैं राज-माता हूँ"'"हम यह जानते हैं। किन्तु हमें राजा की आज्ञा है कि किसी को घुसने न दो। तू जा" जब उसने देखा कि उसे जो चाहिए वह नहीं मिलता तो रुक कर, खड़ी हो अपने घर को देखने लगी। तब एक ने उसे उठाकर, गर्दन से पकड़ जमीन पर गिरा दिया—यहाँ क्या करती है? जाती है या नहीं? उसने सोचा—राजा की ही आज्ञा होगी।

अन्यथा ये ऐसा न कर सकते। मैं पण्डित के ही पास जाऊँगी। जाकर बोली—"तात महोषध! मेरा घर क्यों तुड़वा रहा है?" उसने बातचीत नहीं की। किन्तु पास खड़े हुए आदमी ने पूछा—"देवी, क्या कहती है?"

"तात पण्डित घर क्यों उजड़वा रहा है?"

"विदेह राजा के लिये निवास-स्थान बनवाने को।"

"क्या वह यह मानता है कि इतने बड़े नगर में अन्यत्र स्थान नहीं मिलता है। यह लाख की रिश्वत लेकर अन्यत्र बनवा ले।"

"अच्छा देवी, आपका घर छोड़ देंगे।"

"लेकिन रिश्वत की बात किसी से न कहना, नहीं तो दूसरे लोग भी रिश्वत लेकर अपना घर छुड़ाने की बात करेंगे।"

"तात! मेरे लिये भी यह लज्जा की ही बात है कि राज-माता ने रिश्वत दी। मैं किसी को नहीं कहूँगी।"

उसने 'अच्छा' कहा और उससे लाख की रिश्वत ले केवट्ट के घर पहुँचा। वह राजद्वार पहुँचा। वहाँ बाँस की खपचियों से उसकी चमड़ी उधेड़ दी गई। तब उसने भी इच्छा-पूर्ति होते न देख लाख की रिश्वत ही दी। इस प्रकार सारे नगर के घरों को लेकर उनसे रिश्वत लेने से नौ करोड़ कार्षापण इकट्ठे हो गये। बोधिसत्व सारे नगर में घूम राज-कुल पहुँचा।

तब राजा ने पूछा—"पण्डित! क्या निवास स्थान मिला?" "महाराज! ऐसा कौन है जो न दे। किन्तु घर देने में उन्हें कष्ट होता है। हमारे लिये भी यह योग्य नहीं है कि उनकी प्रिय वस्तु उनसे छुड़ायें। नगर से बाहर गव्यूति भर की दूरी पर गङ्गा और नगर के बीच में अपने राजा का निवास-नगर बनवायेंगे।" यह बात सुन राजा ने सोचा, 'नगर के भीतर युद्ध करने में कठिनाई है। अपनी सेना और पराई सेना का पता नहीं लगता। नगर से बाहर युद्ध करना सहज है। नगर के बाहर ही इन्हें कूट-पीट कर मार डालेंगे।' उसने प्रसन्न हो कहा, "अच्छा तात! जो स्थान तू ने चुना है वहीं बनवा।" "महाराज! मैं तो बनवाऊँगा। लेकिन जिस जगह हमारा काम चल रहा हो वहाँ लकड़ी-पत्तों आदि के लिये तुम्हारे आदमियों को नहीं जाना चाहिये। जायेंगे तो झगड़ा करेंगे। उससे न तुम्हें और न हमें ही चित्त की शान्ति मिलेगी।"

"अच्छा पण्डित! उधर आना जाना बन्द कर दे।"

"देव! हमारे हाथियों को पानी में रहने का बहुत अभ्यास है। वे पानी में ही खेलते हैं। पानी मैला हो जाने पर यदि नागरिक शिकायत करें कि जबसे महोषध आया है तबसे साफ पानी पीने को नहीं मिलता है तो उसे भी सहन करना होगा।" राजा ने 'तुम्हारे हाथी निश्चिन्त होकर खेलें' कह नगर में मुनादी करा दी—'जो यहाँ से निकलकर महोषध पण्डित के नगर-निर्माण की जगह जायेगा उसे हज़ार का दण्ड।'

बोधिसत्व ने राजा को नमस्कार किया और अपने आदमियों को ले, नगर से निकल छिपे स्थान पर नगर निर्माण कार्य्य आरम्भ किया। गङ्गा के पार गग्गली नाम का एक गाँव बसाया। वहाँ हाथी, घोड़े, रथ, गौ तथा बैल रखे और नगर-निर्माण कार्य्य का विचार कर सारा कार्य बाँट दिया—इतना कार्य अमुक लोग करें। फिर सुरंग बनाने के कार्य्य का निश्चय किया। बड़ी सुरंग का द्वार गङ्गा-तीर पर रखा गया। छः हजार योधा बड़ी सुरंग खोदने लगे। बड़ी बड़ी मशकों में मट्टी ले जाकर गङ्गा में गिराते। जितनी मट्टी गिराई जाती उसे हाथी दबा देते। नदी मट-मैली हो गई। नगरवासी कहने लगते कि "महोषध पण्डित के आने के समय से अच्छा पानी पीने को नहीं मिलता। गङ्गा मटमैली ही बहती है। क्या कारण है?" पण्डित के नियुक्त आदमी समाधान करते—"महोषध के हाथी गङ्गा नदी में क्रीड़ा करते हैं। वे पानी में कीचड़ कर देते हैं। इसीसे नदी मट-मैली बहती है।" बोधिसत्वों के उद्देश्य पूरे होते हैं। इसीसे सुरंग में जड़े, पत्थर या कंकड़ सभी जमीन में चले गये। चलने की सुरंग का द्वार उस नगर में रहा। सात सौ आदमी चलने की सुरंग खनने लगे। मशकों आदि से मिट्टी ले जाकर उस नगर में गिराते। जितनी मिट्टी गिराई जाती उसमें पानी मिला मिलाकर चारदीवारी चुनते जाते अथवा दूसरे काम करते। बड़ी सुरंग का प्रवेश-द्वार नगर में था। उसमें अठारह हाथ ऊँचा यन्त्र-द्वार लगा हुआ था। एक आणि के खींच लेने से बन्द हो जाता, एक आणि के खींच लेने से खुल जाता। बड़ी सुरंग के दोनों ओर चुनाई कराकर चूने का पलस्तर करवाया। ऊपर तख्तों की छत बनवा, दिखाई देने के स्थान पर मिट्टी का लेप करवा सफेदी करवाई। कुल मिलाकर अस्सी बड़े दरवाजे और चौंसठ छोटे दरवाजे हुए। सभी यन्त्र-युक्त ही थे। एक आणि के खींचते ही सभी बन्द हो जाते, एक के खींचने से सभी खुल जाते। दोनों तरफ सैंकड़ों दीपों के आले थे। वे भी यन्त्रयुक्त ही थे। एक के खोलने पर सभी खुल जाते, एक के बन्द होने पर सभी

बन्द हो जाते। दोनों ओर एक सौ क्षत्रियों के लिये एक सौ सोने के कमरे थे। एक एक में नाना वर्ण के बिछौने बिछे थे। किसी किसी में श्वेत-छत्र सहित महान् शय्या थी, किसी किसी में सिंहासन सहित महान् शैय्या थी, किसी किसी में भुन्दर स्त्री-मूर्ति थी, बिना हाथ से छुए यह पता ही न लगे कि यह मनुष्य नहीं है। सुरंग की दोनों दीवारों में चतुर चित्रकारों ने नाना प्रकार के चित्र बनाये। उन्होंने शक्र लीला, सिनेरु (पर्वत) परिण्ड-सागर, महासागर चातुर्महाद्वीप, हिमालय, अनोतप्त-मनो शिलातल, चान्द, सूर्य्य, चातुर्महाराजिक देव, छः काम-स्वर्ग आदि सभी चीजें सुरंग में दिखाई। पृथ्वी पर चान्दी-वर्ण बालुका बिखेर उस पर दर्शनीय कमल दिखाये। दोनों ओर नाना प्रकार की दुकानें भी दिखाई। जहाँ तहाँ सुगन्धित मालायें तथा पुष्प मालायें लटका 'सुधर्मा' नामक देवसभा की तरह सुरंग को सजा दिया। उन तीन सौ बढ़इयों ने भी तीन सौ नौकायें बाँध, इमारती सामान से भर, गङ्गा से लाकर पण्डित को सूचना दी। उसने उन्हें नगर के काम में ले, 'जब मैं आज्ञा करूँ तब लाना' कह छिपे स्थान पर रखवाया। नगर में पानी की खाई, अट्ठारह हाथ ऊँची चारदीवारी, गोपुर, अट्टालिका, राजभवन आदि भवन, हस्तिशाला आदि और पुष्करिणियां सभी कुछ बनकर समाप्त हो गया। बड़ी-सुरंग, चलने की सुरंग, नगर—ये सब कुछ चार महीने में बनकर समाप्त हो गया। बोधिसत्व ने चार महीने के बाद राजा के पास आने के लिये दूत भेजा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

निवेसनानि मापेत्वा वेदेहस्स यसस्सिनो,
अथस्स पहिणी दूतं एहिदानि महाराज मापितं ते निवेसनं ॥१३२॥

[यशस्वी विदेह के लिये निवास-स्थान का निर्माण कर दूत भेजा गया कि महाराज। आप आयें। गृह-निर्माण हो चुका ॥१३२॥

दूत का कहना सुन प्रसन्न हो राजा बहुत से अनुयाइयों के साथ विदा हुआ।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने दूसरी गाथा कही—

ततोव राजा पायासि सेनाय चतुरंगिया,
अनन्त वाहनं दट्ठुं फीतं कम्पिलियं पुरं ॥१३३॥

[तब राजा चतुरङ्गिनी सेना को लेकर अनन्त-सेना वाले स्मृद्धिशाली काम्पिल्य नगर को देखने गया ॥१३३॥]

वह क्रमशः गङ्गा के तट पर पहुँचा। बोधिसत्व ने अगवानी की और राजा को नवनिर्मित नगर में लिवा ले गया। उसने वहाँ श्रेष्ठ प्रासाद में रह, नाना प्रकार के

श्रेष्ठ भोजन खा, थोड़ा विश्राम कर, शाम को अपने आगमन की सूचना देने के लिये दूत भेजा।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

ततोव खो सो गन्त्वान ब्रह्मदत्तस्स पाहिणि,
आगतोस्मि महाराज तव पादानि वन्दितुं ॥१३४॥
ददाहि दानि मे भरियं नारिं सब्बंगसोभिनिं,
सुवण्णेन परिच्छन्नं दासीगणप्ररक्खत्तं ॥१३५॥

[तब उसने जाकर ब्रह्मदत्त को सूचना भिजवाई—महाराज! आपके चरणों की वन्दना करने के लिए आ गया हूँ। अब मुझे सर्वाङ्ग सुन्दर नारी भार्य्या के रूप में दें जो स्वर्ण से ढँकी हो और जिसके साथ दासियां हों॥१३४-१३५॥]

दूत की बात सुन चूळनी प्रसन्न हुआ—अब मेरा शत्रु कहाँ जायेगा? दोनों के सिर काटकर जयपान करेंगे। उसने क्रोध से उत्पन्न प्रसन्नता प्रकट करते हुए दूत का सत्कार कर आगे की गाथा कही—

स्वागतं ते वेदेह अथो ते अदुरागतं
नक्खत्तञ्ञेव परिपुच्छ अहं कञ्ञं ददामि ते,
सुवण्णेन पटिच्छन्नं दासीगणपुरक्खतं ॥१३६॥

[हे वेदेह! तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारा आगमन शुभ है। नक्षत्र पूछ। मैं तुझे दासियों सहित, स्वर्णाच्छादित कन्या दूंगा॥१३६॥]

यह सुन दूत ने विदेह-नरेश के पास जा सूचना दी, "देव! मङ्गल-कृत्य के लिये योग्य नक्षत्र जानें। राजा तुम्हें कन्या देंगे।" उसने दुबारा दूत भेजा—'आज ही योग्य नक्षत्र है।'

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो च राजा वेदेहो नक्खत्तं परिपुच्छथ,
नक्खत्तं परिपुच्छित्वा ब्रह्मदत्तस्स पाहिणि ॥१३७॥
ददाहिदानि मे भरियं नारिं सब्बंगसोभिनिं,
सुवण्णेन पटिच्छन्नं दासिगणपुरक्खतं ॥१३८॥

[तब विदेह-नरेश ने नक्षत्र पूछा और नक्षत्र पूछकर चूळनी राज के पास दूत भेजा—मुझे सर्वाङ्ग सुन्दरी, सोने से ढँकी, दासियों सहित नारी भार्य्या रूप में दें॥१३७-१३८॥]

चूळनी राजा ने भी कहलाया—

ददामि दानि ते भरियं नारिं सब्बंगसोभिनिं,
सुवण्णेन पटिच्छन्नं दासीगणपुरक्खतं ॥१३९॥

[मैं अब तुझे सर्वाङ्ग सुन्दरी, स्वर्ण से आच्छादित, दासियों से घिरी नारी भार्य्या रूप में देता हूँ ॥१३९॥]

यह गाथा कह 'अब भेजता हूँ, अब भेजता हूँ' झूठ बोलते हुए एक सौ राजाओं को संकेत किया—अट्ठारह अक्षौहिणी सेना के साथ सभी युद्ध के लिये तैयार हो निकलें। दोनों शत्रुओं के सिर काट कल जय-पान करेंगे। वे सभी निकल पड़े। अपने निकलते समय उसने माता तलताल देवी को, पटरानी नन्दा देवी को, पुत्र पञ्चाल चण्ड को और पुत्री पञ्चालचण्डी को महल पर ही रहने दिया।

बोधिसत्व ने चूळनी नरेश और उसके साथ आई सेना का बड़ा सत्कार किया। कुछ मनुष्य सुरा पान करते थे। कुछ मत्स्य मांस आदि खाते थे। कुछ दूर से चलकर आने के कारण थकावट के मारे सोते थे। विदेह राजा तो सेनकादि पण्डितों को ले, अमात्यगणों से घिरा हुआ अलंकृत महाप्रासाद के ऊपर बैठा था। चूळनी राजा भी अट्ठारह अक्षोहिणी सेना को ले नगर को 'तीन जोड़ों तथा चार संक्षेपों' से घेरकर, सैकड़ों-हज़ारों मशालें लिये सूर्य्योदय करता हुआ सा बड़ी तैय्यारी किये खड़ा था।

यह जान बोधिसत्व ने अपने तीन सौ योधाओं को भेजा—"तुम चलने की सुरंग से जाकर राजा की माँ, पटरानी, पुत्र और पुत्री को चलने की सुरंग से लाकर, यहाँ सुरंग से ले जाकर, सुरंग-द्वार से बाहर न निकाल, जब तक हमारा आगमन न हो, तब तक सुरंग के अन्दर ही उन्हें रखे रह, हमारे आगमन के समय सुरंग से निकाल, सुरंग के दरवाजे पर महान् विशाल तल्ले पर बिठाना। उन्होंने उसका कहना स्वीकार किया और चलने की सुरंग से जा, सीढ़ियों की जड़ में रखे हुए तख्तों को निकाला। फिर सीढ़ियों के नीचे, सीढ़ियों के ऊपर और महान् तल्ले पर पहरा देने वालों के तथा कुवड़े आदि अन्य प्रकार के लोगों के हाथ-पैर बाँध मुँह बन्द कर दिये और उन्हें जहाँ-तहाँ छिपी जगहों में रख दिया। तब राजा के लिये तैय्यार खाद्यसामग्री में से कुछ खा और कुछ चूर्ण-विचूर्ण कर प्रासाद के ऊपर चढ़े।

उस समय तलताल देवी यह सोच कि कौन जाने क्या होगा, नन्दादेवी को, राजपुत्र को तथा राजकन्या को, अपने पास एक ही शैय्या पर सुलाती थी। उन

योद्धाओं ने कमरे के बीच में खड़े होकर आवाज दी। उसने निकल कर पूछा—"तात! क्या है?" "देवी। हमारे राजा ने विदेह-नरेश को तथा महोषध को जान से मार डाला है और अब सारे जम्बुद्वीप का एकछत्र राजा हो गया है। उसने सौ राजाओं के मध्य बैठ बड़े ठाट-बाट से महापान पीते हुए हमें भेजा है कि आप चारों जनों को लेकर आयें। वे महल से उतर सीढ़ियों के नीचे पहुँचे। वे उन्हें ले, चलने की सुरंग में पहुँचे। वे बोले—"हमें यहाँ रहते इतना समय हो गया, हमने यह गली नहीं देखी।" "इस गली में सदैव नहीं उतरा जाता। इसका नाम मङ्गल-गली है। आज मङ्गल-दिवस होने से राजा ने इसी गली से लाने की आज्ञा दी है।" उन्होंने उनका विश्वास कर लिया। कुछ उन चारों जनों को लेकर चले। कुछ रुके और राज-भवन का रतनगृह खोल यथेच्छ मूल्यवान्-धन लेकर आये। दूसरे चारों जनों ने भी जब आगे बड़ी सुरंग को देव-सभा की तरह अलंकृत देखा तो सोचा, राजा के लिये सजाई गई होगी। वे उन्हें महागङ्गा के पास ले गये और सुरंग के अन्दर ही सजे भवन में बिठा कुछ पहरा देने लगे और कुछ उनके ले आने की बोधिसत्व को सूचना देने गये।

उसने उनकी बात सुनी तो प्रसन्न हुआ। सोचा, अब मेरा मनोरथ पूरा होगा। वह राजा के पास जा एक ओर खड़ा हुआ। राजा भी कामुकता के वशीभूत हुआ 'अब वह लड़की भेजता है, अब वह लड़की भेजता है' सोचता हुआ पलंग से उठ खिड़की के पास जा खड़ा हुआ। जब उसने लाखों मशालों से प्रकाशित और भारी सेना से घिरा हुआ नगर देखा तो उसके मन में सन्देह हुआ कि यह क्या है? उसने पण्डित के साथ मन्त्रणा करते हुए गाथा कही—

हत्थी अस्सा रथा पत्ती सेना तिट्ठन्ति वम्मिता,
उक्का पदित्ता झायन्ति किन्नु मञ्ञन्ति पण्डिता ॥१४०॥

[हाथी, घोड़े, रथ और कवच पहने पैदल सेना खड़ी है। प्रज्वलित मशालें जल रही हैं। हे पण्डित! इसका क्या अर्थ है? ॥१४०॥]

यह सुन सेनक बोला—"महाराज! चिन्ता न करें। आज बहुत मशालें दिखाई दे रही हैं। मालूम होता है कि राजा तुम्हें देने के लिये लड़की लिये चला आ रहा है। पुक्कस का कहना था कि तुम्हारा सत्कार करने के लिये सेना लेकर खड़ा होगा। जो जिसे अच्छा लगा वह उसने कहा। राजा को जब यह आवाजें सुनाई देने लगीं कि अमुक स्थान पर सेना खड़ी हो, अमुक स्थान पर पहरेदार हों,

तथा अप्रमादी रहो और उसने कवच पहने सेना देखी तो उसे मरने का डर लगा। उसने बोधिसत्व का मत जानने की कामना से गाथा कही—

हत्थी अस्सा रथा पत्ती सेना तिट्ठन्ति वम्मिता,
उक्का पदित्ता झायन्ति किन्नु काहान्ति पण्डिता ॥१४१॥

[हाथी, घोड़े, रथ तथा कवच पहने पैदल सेना खड़ी है। प्रज्वलित मशाल जलते हैं। पण्डित! (हम) क्या करेंगे? ॥१४१॥]

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा, इस अन्धे मूर्ख को थोड़ा डराकर पीछे अपना बल दिखाकर सान्त्वना दूँगा। उसने गाथा कही—

रक्खति तं महाराज चूळनीयो महब्बलो,
पदुट्ठो ते ब्रह्मदत्तो पातो तं घातयिस्सति ॥१४२॥

[महाराज! बलशाली चूलनीय ने आपको घेर लिया है। दुष्ट ब्रह्मदत्त प्रातःकाल आपका घात कर देगा ॥१४२॥]

यह सुन सभी को मृत्यु-भय लगा। राजा का कंठ सूख गया। मुँह से थूक गिरने लगा। शरीर जलने लगा। उसने मृत्यु से भयभीत हो रोते पीटते दो गाथायें कहीं—

उब्बेधते मे हृदयं मुखञ्च परिसुस्सति,
निब्बुतिं नाधिगच्छामि अग्गिदड्ढोव आतपे ॥१४३॥
कम्मारानं यथा उक्का अन्तो झायति नो बहि
एवम्पि हृदयं मय्हं अन्तो झायति नो बहि ॥१४४॥

[मेरा हृदय कांपता है। मुँह सूखता है। जैसे आग से जले आदमी को धूप में शान्ति नहीं प्राप्त होती उसी प्रकार मुझे चैन नहीं है ॥१४३॥ जैसे सुनारों की आग अन्दर से जलाती है बाहर से नहीं, उसी प्रकार मेरा हृदय भी अन्दर से जल रहा है, बाहर से नहीं ॥१४४॥]

बोधिसत्व ने उसका रोना सुन 'यह मूर्ख और समय मेरी बात नहीं मानता' सोच उसका थोड़ा और निग्रह करने के लिये कहा—

पमत्तो मन्तनातीतो भिन्नमन्तोसि खत्तिय,
इदानि खो तं तायन्तु पण्डिता मन्तिनो जना ॥१४५॥
अकत्वा मच्चस्स वचनं अत्थकामहितेसिनो,
अत्तपीति रतो राज मिगो कुरेव ओहितो ॥१४६॥

यथापि मच्छो बलिसं वंकं मंसेन छादितं,
आमगिद्धो न जानाति मच्छो मरणमत्तनो ॥१४७॥
एवमेव तुवं राज चूळनेय्यस्स धीतरं
कामगिद्धो न जानासि मच्छोव मरणमत्तनो ॥१४८॥
सचे गच्छासि पञ्चालं खिप्पमत्तं जहेस्ससि,
मिगं पथानुपन्नं व महन्तं भयमेस्सति ॥१४९॥
अनरियरूपो पुरिसो जनिन्द
अहीव उच्छंगगतो डसेय्य,
न तेन मेत्तिं कयिराथ धीरो
दुक्खो हवे का पुरिसेन संगमो ॥१५०॥
यन्त्वेव जञ्ञा पुरिसं सीलवायं बहुस्सुतो,
तेनेव मेत्तिं कयिराथ धीरो
सुखो हवे सुप्पुरिसेन संगमो ॥१५१॥

[हे क्षत्रिय ! तू प्रमत्त है, मन्त्रणा के अनुसार चलने वाला नहीं है। भिन्न मन्त्रणा के अनुसार चलने वाला है। अब वे मन्त्रणा देनेवाले पण्डित-जन तेरा त्राण करें ॥१४५॥ हितैषी अमात्य का कहना न मानकर हे राजन ! अपने मजे में मस्त होने के कारण आप जाल में फँसे मृग की भान्ति हो गये ॥१४६॥ जैसे मांस से ढके कांटे को मछली निगल जाती है और मांस के लोभ के कारण अपनी मृत्यु को नहीं देख सकती है, उसी प्रकार हे राजन् ! आप चूळनी राज की कन्या की कामना के कारण अपनी मृत्यु को नहीं देखते हैं ॥१४७-१४८॥ यदि पञ्चाल जायेंगे तो शीघ्र ही अपना आप गँवा देंगे। (मनुष्य–) पथ में आये मृग की तरह बड़े भय को प्राप्त होंगे ॥१४९॥ हे राजन् ! अनार्य पुरुष गोद में बैठे सर्प की तरह डसता है। बुद्धिमान् आदमी को चाहिये कि उससे मैत्री न करे। दुष्ट आदमी की संगति का परिणाम दुःख ही होता है ॥१५०॥ जिसे जाने कि यह सदाचारी है और बहुश्रुत है, बुद्धिमान् आदमी को चाहिये कि उसीसे मैत्री करे। सत्पुरुष की संगति का परिणाम सुख होता है ॥१५१॥]

उसे 'फिर ऐसा तो नहीं करेगा' कह, और अच्छी तरह निग्रह करते हुए राजा की पहले कही हुई बात याद दिलाई—

बालो तुवं एळमूगो सि राज
यो उत्तमत्थानि मयि लपित्थो,
किमेवाहं नंगलकोटिवद्धो
अत्थानि जानिस्सं यथापि अञ्ञे ॥१५२॥
इमं गले गहेत्वान नासेथ विजिता मम,
यो मे रतन लाभस्स अनन्तरायाय भासति ॥१५३॥

[हे राजन् ! आप वज्रमूर्ख हैं कि आपने मुझसे ऐसी ऊँची दर्जे की बातें की। मैं हल की मूठ पकड़ने वाला औरों की तरह ऊँची-ऊँची बातों को कैसे समझ सकता हूं ! ॥१५२॥ इसे गर्दन से पकड़ मेरे देश से निकाल दो जो यह मेरे रतन-लाभ में विघ्न डालने वाली बात कहता है ॥१५३॥]

ये दो गाथायें कह बोधिसत्व ने और भी कहा—"महाराज ! मैं किसान का लड़का हूँ। जैसे तेरे दूसरे सेनक आदि पण्डित बातें समझते हैं वैसे मैं कैसे समझ सकता हूँ। यह मेरा अविषय है। मैं तो गृहस्थ का शिल्प ही जानता हूँ। यह बात सेनकादि ही समझते हैं। वे पण्डित हैं। आज अठारह अक्षौहिणी सेना से घिरे होने की हालत में तुम्हें बचायें। मुझे तो गरदन से पकड़ कर निकालने की आज्ञा दी थी। अब मुझे किसलिये पूछता है ?" इस प्रकार उसका और भी निग्रह किया। यह सुन राजा ने सोचा—"पण्डित मेरा दोष ही कह रहा है। उसने पहले ही भावी-भय देख लिया था। इसीलिये मेरा अत्यन्त निग्रह कर रहा है। किन्तु यह इतने समय तक निकम्मा नहीं रहा होगा। इसने अवश्य ही मेरी सुरक्षा की व्यवस्था की होगी।" उससे अनुरोध करते हुए उसने दो गाथायें कहीं—

महोसध अतीतेन नानुविज्झन्ति पण्डिता,
किं मं अस्सं व सम्बद्धं पतोदेनेव विज्झसि ॥१५४॥
सचेव पस्सासि मोक्खं खेमं वा पन पस्ससि,
तेनेव मं अनुसास किं अतीतेन विज्झसि ॥१५५॥

[हे महोषध ! पण्डितजन भूतकाल की बात को लेकर (वाणी से) नहीं बींधते हैं। घोड़े की तरह बंधे हुए मुझको तू कोड़ों से क्यों पीटता है ? ॥१५४॥ यदि मुक्ति का मार्ग दिखाई देता है, यदि कल्याण दिखाई देता है तो मुझे वहीं बता। पुरानी बात लेकर अब (वाणी से) क्यों बींधता है ? ॥१५५॥)

तब बोधिसत्व ने सोचा—"यह राजा बहुत अन्धा मूर्ख है, पुरुष-विशेष को भी नहीं पहचानता है। इसे थोड़ा तंग करके बाद में इसकी सहायता करूंगा।" तब उसने कहा—

अतीतं मानुसं कम्मं दुक्करं दुरभिसम्भवं,
न तंसक्कोमि मोचेतुं त्वम्पि जानस्सु खत्तिय ॥१५६॥
सन्ति वेहासया नागा इद्धिमन्तो यसस्सिनो,
तेपि आदाय गच्छेय्युं यस्स होन्ति तथा विधा ॥१५७॥
सन्ति वेहासयं अस्सा इद्धिमन्तो पसस्सिनो,
तेपि आदाय गच्छेय्युं यस्स होन्ति तथाविधा ॥१५८॥
सन्ति वेहासया पक्खी इद्धिमन्तो यसस्सिनो
तेपि आदाय गच्छेय्युं यस्स होन्ति तया विधा ॥१५९॥
सन्ति वेहासया यक्खा इद्धिमन्तो यसस्सिनो,
तेपि आदाय गच्छेय्युं यस्स होन्ति तथाविधा ॥१६०॥
अतीतं मानुसं कम्मं दुक्करं दुरभिसम्भवं,
न तं सक्कोमि मोचेतुं अन्तलिक्खेन खत्तिय ॥१६१॥

[मनुष्य का पूर्व-कर्म दुष्कर होता है, दुसह होता है। मैं तुझे उससे मुक्त नहीं कर सकता। हे क्षत्रिय! तू ही जान ॥१५६॥ भृद्धिमान्, यशस्वी नाग हैं जो आकाश मार्ग से ले जाने में समर्थ हैं, यदि किसी के पास वैसे (हाथी) हों तो वे भी उसे आकाश-मार्ग से ले जा सकते हैं ॥१५७॥ बुद्धिमान्, यशस्वी घोड़े हैं जो...ले जा सकते हैं ॥१५८॥ बुद्धिमान् यशस्वी पक्षी हैं जो... ले जा सकते हैं ॥१५९॥ भृद्धिमान् यशस्वी आकाशगामी यक्ष हैं...ले जा सकते हैं ॥१६०॥ मनुष्य का पूर्व-कर्म दुष्कर होता है, दुसह होता है। हे क्षत्रिय! मैं तुझे आकाश-मार्ग से मिथिला नगरी ले जाकर उससे नहीं बचा सकता ॥१६१॥]

राजा यह सुन अप्रतिहत हो गया। तब सेनक ने सोचा—अब राजा के लिए और हमारे लिये भी पण्डित के सिवाय दूसरा कोई सहारा नहीं। राजा तो इसकी बात सुन भयभीत हो गया है। कुछ बोल नहीं सकता। मैं पण्डित से प्रार्थना करता हूँ। उसने दो गाथायें कहीं—

अतीरदस्सी पुरिसो महन्ते उदकण्णवे,
यत्थ सो लभते गाधं तत्थ सो विन्दते सुखं ॥१६२॥
एवं अम्हञ्च रञ्ञोच त्वं पतिट्ठा महोसध,
त्वं नोसि मन्तिनं सेट्ठो अम्हे दुक्खा पमोचय ॥१६३॥

[भारी समुद्र में डूबने वाले आदमी को जब किनारा नहीं दिखाई देता, तो जहाँ कहीं भी उसे शरण-स्थान मिलता है वहीं वह सुख का अनुभव करता है ॥१६२॥ इसी प्रकार हे महोषध अब हमारा और राजा का तू ही शरण-स्थान है। तू ही हम मन्त्रियों में श्रेष्ठ है। हमें दुःख से मुक्त कर ॥१६३॥]

उसका निग्रह करते हुए बोधिसत्व ने गाथा कही—

अतीतं मानुसं कम्मं दुक्करं दुरभिसम्भवं,
न नं सक्कोमि मोचेतुं त्वम्पि जानस्सु सेनक ॥१६४॥

[मनुष्य का पूर्व-कर्म दुष्कर होता है, दुसह होता है, मैं तुझे उससे मुक्त नहीं कर सकता। हे सेनक! तू ही जान ॥१६४॥]

राजा ने इच्छापूर्ति का रास्ता न देख, मृत्यु से भयभीत हो बोधिसत्व से बातचीत करने में अपने आपको असमर्थ पा सोचा—'हो सकता है सेनक ही कोई उपाय जानता हो, उससे पूछता हूँ।' उसने गाथा कही—

सुणोहि मेतं वचनं यस्ससेतं महब्भयं,
सेनकं दानि पुच्छामि किं किच्चं इध मञ्ञसि ॥१६५॥

[मेरा वचन सुन। यह महान् भय दिखाई देता है। हे सेनक! मैं पूछता हूँ कि अब क्या करना योग्य है? ॥१६५॥]

यह सुन सेनक ने सोचा—'राजा उपाय पूछता है। भला हो चाहे बुरा इसे एक उपाय बताता हूँ।' उसने गाथा कही—

अग्गिं द्वारतो देम गण्हामसे विकत्तनं,
अञ्ञामञ्ञं वधित्वान खिप्पं हेस्साम जीवितं ॥
मा नो राजा ब्रह्मदत्तो चिरं दुक्खेन मारयि ॥१६६॥

[हम द्वार बन्द करके आग लगा दें और शस्त्र ले परस्पर एक दूसरे का बध कर शीघ्र ही मर जायें। हमें राजा ब्रह्मदत्त चिरकाल तक दुःख देकर न मारे ॥१६६॥]

यह सुन राजा असन्तुष्ट हुआ। बोला—अपने स्त्री-बच्चों की इस प्रकार चिता बना। उसने पुक्कुस आदि से प्रश्न किया। उन्होंने भी अपनी मूर्खता के अनुरूप ही बात कही। इसीलिये कहा गया है—

सुणोहि एतं वचनं पस्ससेतं महब्भयं,
पुक्कुसं दानि पुच्छामि किं किच्चं इध मञ्ञसि ॥१६७॥

[यह वचन सुन। यह महान भय दिखाई देता है। हे पुक्कस! मैं पूछता हूं कि अब क्या करना चाहिए? ॥१६७॥]

विसं खादित्वा मिय्याम खिप्पं हेस्साम जीवितं,
मा नो राजा ब्रह्मदत्तो चिरं दुक्खेन मारयि ॥१६८॥

[हम जहर खाकर मर जायेंगे। शीघ्र ही जीवन समाप्त कर देगें। हमें राजा ब्रह्मदत्त चिरकाल तक दुःख देकर न मारे ॥१६८॥]

सुणोहि एतं वचनं पस्ससेतं महब्भयं,
काविन्दं दानि पुच्छामि किं किच्चं इध मञ्ञसि ॥१६९॥

[यह वचन सुन। यह महान् भय दिखाई देता है। हे काविन्द! मैं पूछता हूँ कि अब क्या करना चाहिए? ॥१६९॥]

रज्जुया बज्झ मिय्याम पपाता पपतेमसे,
मा नो राजा ब्रह्मदत्तो चिरं दुक्खेन मारयि ॥१७०॥

[हम फांसी लगाकर मर जायेंगे, प्रपात से गिर पड़ेंगे। हमें राजा ब्रह्मदत्त चिरकाल तक दुःख देकर न मारे ॥१७०॥]

सुणोहि एतं वचनं पस्ससेतं महब्भयं,
देविन्दंदानि पुच्छामि किं किच्चं इध मञ्ञसि ॥१७१॥

[यह वचन सून। यह महान भय दिखाई देता है। हे देविन्द! मैं पूछता हूँ कि अब क्या करना चाहिए ? ॥१७१॥]

अग्गिं द्वारतो देम गण्हामसे विकत्तनं,
अञ्ञमञ्ञं वधित्वान खिप्पं हेस्साम जीवितं,
न नो सक्कोति मोचेतुं सुखे नेव महोसधो ॥१७२॥

[हम द्वार बन्द करके आग लगादें, और शस्त्र ले परस्पर एक दूसरे का वध कर शीघ्र ही मर जायें। जब महोषध भी हमें नहीं बचा सकता (तब और क्या करें?) ।।१७२।।]

यह सुन राजा ने बोधिसत्वके प्रति किये गये अपराध का स्मरण कर,उसके साथ वार्तालाप न कर सकने के कारण, उसे सुनाकर विलाप-गाथायें कहीं—

यथा कदलिनो सारं अन्वेसं नाधिगच्छति,
एवं अन्वेसमानानं पञ्हं नाज्झ गमामसे ।।१७३।।
यथा सिम्बलिनो सारं अन्वेसं नाधिगच्छति,
एवं अन्वेसमानानं पञ्हं नाज्झगमामसे ।।१७४।।
अदेसे वत नो वुत्थं कुञ्जरानं वनोदके,
सकासे दुम्मनुस्सानं बालानमविजानतं ।।१७५।।
उब्बेधते मे हदयं मुखञ्च परिसुस्सति,
निब्बुतिं नाधिगच्छामि अग्गिदड्ढोव आतपे ।।१७६।।
कम्मारानं यथा उक्का अन्तो झायति नो बहि,
एवम्पि हदयं मय्हं अन्तो झायति नो बहि ।।१७७।।

[जैसे केले के तने के छिलके उतारने से अन्दर से कोई सार तत्व नहीं निकलता, उसी प्रकार हमारे खोजने पर भी हमें प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता ।।१७३।। जिस प्रकार सिम्बली-बृक्ष में से भी खोजने पर कुछ सार-तत्व नहीं प्राप्त होता, उसी प्रकार हमारे खोजने पर भी हमें प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता ।।१७४।। जैसे हाथी का निर्जल स्थान में निवास हो, उसी प्रकार इन दुष्ट, मूर्ख तथा अजानकार मनुष्यों के बीच हमारा रहना अदेश में रहना है ।।१७५।। मेरा हृदय कांपता है। मुँह सूखता है। जैसे आग से जले आदमी को धूप में शान्ति प्राप्त नहीं होती, उसी प्रकार मुझे चैन नहीं है ।।१७६।। जैसे सुनारों की आग अन्दर से जलाती है, बाहर से नहीं, उसी प्रकार मेरा हृदय भी अन्दर से जल रहा है, बाहर से नहीं ।।१७७।।]

यह सुना तो पण्डित ने सोचा—यह राजा अत्यन्त कष्ट पा रहा है। यदि इसे सान्त्तवना नहीं दूंगा, तो इसका हृदय फट जायगा और यह मर जायगा। उसने उसे सान्त्तवना दी।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

ततो सो पण्डितो धीरो अत्थदस्सी महोसधो,
वेदेहं दुक्खितं दिस्वा इं वचनम ब्रवी ॥१७८॥
मा त्वं भायि महाराज मात्वं भायि रथेसभ,
अहं तं मोचयिस्सामि राहुगहितंव चन्दिमं ॥१७९॥
मा त्वं भायि महाराज मा त्वं भायि रथेसभ,
अहं तं मोचयिस्सामि राहुगहितंव सूरियं ॥१८०॥
मा त्वं भायि महाराज मात्वं भायि रथेसभ,
अहं तं मोचयिस्सामि पङ्के सन्तंव कुञ्जं ॥१८१॥
मा त्वं भायि महाराज मा त्वं भायि रथेसभ,
अहं तं मोचयिस्सामि पेळावध्दंव पन्नगं ॥१८२॥
मा त्वं भायि महाराज मा त्वं भायि रथेसभ,
अहं तं मोचयिस्सामि मच्छे जालगतेरिव ॥१८३॥
मा त्वं भायि महाराज मा त्वं भायि रथेसभ,
अहं तं मोचयिस्सामि सयोग्गबल वाहनं ॥१८४॥
मा त्वं भायि महाराज मा त्वं भायि रथेसभ,
पञ्चालं वाहयिस्सामि काकसेनंव लेड्डुना ॥१८५॥
आदु पञ्जा किमत्थिया अमच्चोवापि तादिसो,
यो तं सब्बाध पक्खन्तं दुक्खा न परिमोचये ॥१८६॥

[तब उस प्रज्ञावान्, अर्थदर्शी, पण्डित महोषध ने विदेह-राज को दुखी देख ये वचन कहे ॥१७८॥ महाराज! आप मत डरें। राजन्! आप मत डरें। मैं आपको राहु के मुख से चन्द्रमा को मुक्त करा लेने की तरह मुक्त करा लूंगा ॥१७९॥ महाराज। आप...मैं आपको राहु के मुख से सूर्य्य को मुक्त करा लेने की तरह मुक्त करा लंगा ॥१८०॥ महाराज! आप...मैं आपको कीचड़ में फसे हाथी की तरह मुक्त करा लूंगा ॥१८१॥ महाराज! आप...मैं आपको पिटारी में से साँप को मुक्त कराने की तरह मुक्त करा लूँगा ॥१८२॥ महाराज! आप... मैं आप को जाल में फँसी हुई मछली की तरह मुक्त करा लूंगा ॥१८३॥ महाराज! आप...मैं आपको रथ, सेना तथा वाहनों सहित मुक्त करा लूंगा ॥१८४॥ महाराज! आप...मैं पञ्चालों को ऐसे भगा दूंगा जैसे ढेले से कौओं

की सेना को ।।१८५।। उस प्रज्ञा से क्या प्रयोजन और वह मन्त्री भी किस काम का जो विपत्तिग्रस्त आपको दुःख से न छुड़ाये ।।१८६।।]

उसकी बात सुनी तो उसे शान्ति मिली। उसे विश्वास हो गया कि अब मेरी जान बच जायगी। जब बोधिसत्व ने सिंहनाद किया तो सभी सन्तुष्ट हुए। तब सेनक ने पूछा—"पण्डित! तू हम सब को कैसे ले जायगा?" "मैं अलङ्कृत सुरंग से ले जाऊँगा। तुम तैय्यार होओ। उसने सुरंग का द्वार खोलने के लिए योधाओं को आज्ञा देते हुए गाथा कही—

एथ मागवा उट्ठेथ मुखं सोधेथ सन्धिनो,
वेदे हो सह मच्चेहि उम्मग्गेन गमिस्सति ।।१८७।।

[तरुणो उठो। सुरंग को और सेंध को खोलो। अमात्यों सहित विदेह-नरेश सुरंग से जायगा ।।१८७।।]

उन्होंने उठकर सुरंग का द्वार खोला। सारी सुरंग अलङ्कृत देव-सभा की तरह प्रकाशित थी।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तस्स तं वचनं सुत्वा पण्डितस्सानुसारिनो,
उम्मग्ग द्वारं विवरिंसु यन्तयुत्ते च अग्गले ।।१८८।।

[उसकी बात सुन पण्डित की आज्ञा मानने वालों ने यन्त्रयुक्त द्वारों को खोल दिया ।।१८८।।]

उन्होंने सुरंग का द्वार खोल बोधिसत्व को सूचना दी। उसने राजा को संकेत किया—देव! यह समय प्रासाद से उतरने का है। राजा उतरा। सेनक ने सिर की पगड़ी उतारी। कपड़ा उतारने लगा। बोधिसत्व ने उसे देख पूछा—'तात! क्या करता है?' "सुरंग में से जाते समय पगड़ी संभाल, काछ कसकर जाना चाहिए।" "सेनक! ऐसा मत सोच कि सुरंग से जाना है तो झुककर घुटनों के बल प्रवेश करना होगा। यदि हाथी से जाना चाहता है तो हाथी पर चढ़। सुरंग अट्ठारह हाथ ऊँची है। विशाल द्वार है। तू जैसे चाहे सज-सजाकर राजा के आगे आगे चल।"

बोधिसत्व ने सेनक को आगे किया, राजा को बीच में और स्वयं पीछे-पीछे हो लिया। क्यों? अलंकृत सुरंग को देखते हुए धीरे धीरे न चलने लगे। सुरंग

में लोगों के लिए खाने-पीने की बहुत सामग्री थी। मनुष्य खाते-पीते सुरंग देखते चल रहे थे। बोधिसत्व भी 'महाराज चलें' कह प्रेरित करते हुए पीछे पीछे आ रहे थे। राजा अलङ्कृत देव-सभा के समान सुरंग को देखता चलता था।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

पुरतो सेनको याति पच्छतो च महोसधो,
मज्झे च राजा वेदेहो अमच्चपरिवारितो ॥१८९॥

[आगे-आगे सेनक जाता था और पीछे महोषध। बीच में अमात्यों से घिरा हुआ राजा चलता था ॥१८९॥]

जब उन्हें पता लगा कि राजा आया है तो वे नौजवान चूळनी राजा की माता, देवी, पुत्र और लड़की को लेकर ऊँचे महल पर जा पहुँचे। राजा भी बोधिसत्व सहित सुरंग से निकला। चूळनी राजा की माता आदि ने जब विदेह-नरेश और पण्डित को देखा तो समझा कि हम निश्चय पराये हाथों में फंस गई हैं। हमें लेकर यहाँ आने वाले पण्डित के ही आदमी होगें। मृत्यु से डरकर उन्होंने चिल्लाना आरम्भ किया। चूळनी राजा भी इस डर से कि कहीं विदेह-नरेश भाग न जाय गङ्गा से गव्यूति मात्र की दूरी पर था। उसने शान्त रात्रि में उनकी आवाज सुनी तो उसकी इच्छा हुई कि कहे कि यह तो नन्दा देवी की सी आवाज है। किन्तु वह कुछ नहीं बोला। उसे डर लगा कि कोई यह मजाक न करे कि नन्दा देवी को यहाँ कहाँ देख रहे हो!

बोधिसत्व ने पञ्चालचण्डी कुमारी को वहाँ रतनों के ढेर पर बिठा, उसका अभिषेक कर कहा—"महाराज! आप इसी के लिए आये हैं। यह आपकी पटरानी हो।" तीन सौ नौकायें लाई गई। राजा महल से उतर अलङ्कृत नौका पर चढ़ा। वे चारों पण्डित भी नौका पर चढ़े।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

उम्मग्गा निक्खमित्वान वेदेहो नावमारुहि,
अभिरूळ्हञ्च तं ञत्वा अनुसासि महोसधो ॥१९०॥
अयं ते ससुरो देव अयं सस्सु जनाधिप,
यथा मातु पटिपत्ति एवं ते होतु सस्सुया ॥१९१॥
यथापि नियको भाता सउदरियो एकमातुको,
एवं पञ्चाल चण्डोते दयितब्बो रथेसभ ॥१९२॥

अयं पञ्चालचण्डी ते राजपुत्ती अभिज्झिता,
कामं करोहि ते ताय भरिया ते रथेसभ ॥१९३॥

[सुरंग से निकल कर विदेह-नरेश नौका पर चढ़ा। जब महोषध ने देखा कि वह नौका पर चढ़ गया है तो उसने उसे यह उपदेश दिया—"देव! यह आपका श्वसुर १ है, और हे राजन्! यह आपकी सास है। जो कुछ माता के प्रति करनीय कर्त्तव्य हैं, वे ही आप सास के प्रति करें ॥१९०-१९१॥" जैसा अपनी एक ही माता से जन्मा सहोदर भाई हो वैसे ही हे राजन्! आपको पञ्चाल-चण्ड को समझना चाहिए। हे राजन्! यह राजपुत्री पञ्चाल-चण्डी है, जिसे आप चाहते थे। अब इसके साथ जो चाहें करें। यह आपकी भार्य्या है ॥१९२-१९३॥]

बड़े भारी दुक्ख से मुक्त हो नौका से जाने के इच्छुक राजा ने बोधिसत्व को 'तात! तू किनारे पर खड़ा ही खड़ा बात कर रहा है' कह गाथा कही—

आरूय्ह नावं तरमानो किन्नु तीरम्हि तिट्ठसि,
किच्छा मुत्तम्ह दुक्खतो यामदानि महोसध ॥१९४॥

[जल्दी से नौका पर चढ़ो। अब किनारे पर क्या खड़े हो। बड़ी कठिनाई से हम दुःख से मुक्त हुए हैं। हे महोषध! अब हम चलें ॥१९४॥]

बोधिसत्व ने 'देव! आप के साथ मेरा जाना योग्य नहीं' कहा—

नेस धम्मो महाराज योहं सेनाय नायको,
सेनङ्ग परिहापेत्वा अत्तानं परिमोचये ॥१९५॥
निवेसनम्हि ते देव सेनङ्ग परिहापितं,
तं दिन्नं ब्रह्मदत्तेन आनयिस्सं रथेसभ ॥१९६॥

[महाराजा यह धर्म नहीं है कि मैं सेना का नायक होकर सेना को छोड़ केवल अपनी जान बचा लूँ ॥१९५॥ 'देव! आपके निवास-स्थान पर सेना छोड़ी है। हे राजन्। मैं उसे ब्रह्मदत्त से लेकर आऊँगा ॥१९६॥]

'उन आदमियों में से कुछ दूर से चलकर आये होने के कारण थके हैं और सोये पड़े हैं। कोई खा-पी रहे हैं। यह भी नहीं जानते कि हम निकल भागे हैं। कई रोगी हैं। मेरे साथ चार महीने तक काम करने वाले मेरे उपकारी मनुष्य

१. चूळनी राजा ने श्वसुर के अभाव में उसके पुत्र को ही श्वसुर कहा।

यहाँ बहुत हैं। मैं किसी एक आदमी को भी छोड़कर नहीं जा सकता। मैं रुककर आपकी उस सारी सेना को ब्रह्मदत्त से सकुशल लेकर आऊँगा। महाराज ! आप कहीं भी बिना विलम्ब किये शीघ्र जायें। मैंने रास्ते में हाथी घोड़े, आदि वाहन रखे हैं, थके-थके वाहनों को छोड़ समर्थ समर्थ वाहन ले शीघ्र मिथिला पहुँचे।

तब राजा ने गाथा कही—

अप्पसेनो महासेनं कथं विग्गय्ह ठस्ससि,
दुब्बलो बलवन्तेन विहञ्ञिस्ससि पण्डित ॥१९७॥

[अल्प सेना वाला होकर तू महान् सेना के सामने कैसे ठहरेगा? हे पण्डित ! दुर्बल बलवान द्वारा मारा जायगा ॥१९७॥]

तब बोधिसत्व ने गाथा कही—

अप्पसेनोपि चे मन्ती महासेनं अमन्तिनं,
जिनाति राजा राजानो अदिच्चोवुदयं तमं ॥१९८॥

[बुद्धिमान् के पास यदि अल्प-सेना भी हो तो भी वह बहुत सेना वाले मूर्ख को जीत लेता है, उसी प्रकार (एक) राजा कई राजाओं को जीत लेता है, जैसे उदय ोने वाला सूर्य्य अन्धकार को ॥१९८॥]

यह कहकर बोधिसत्व ने राजा को बिदा किया—तुम जाओ। उसे शत्रु के हाथ से मुक्त होने की प्रसन्नता थी और चण्ड-कुमारी के मिल जाने से उस का मनोरथ भी पूरा हो गया था। इसलिए वह बोधिसत्व के गुणों का स्मरण कर बहुत आनन्दित हुआ। वह पण्डित के गुण सेनक को कहता हुआ गाथा कहने लगा—

सुसुखं वत संवासो पण्डितेहिति सेनक
पक्खीव पञ्जरे बद्धे मच्छे जालगतेरिव,
अमित्तहत्थत्थ गते मोचयी नो महोसधो ॥१९९॥

[हे सेनक! पण्डितों के साथ रहना बड़ा सुखद है, पिजंरे में बन्द पक्षी के समान और जाल में फंसी मछली के समान हमें महोषध ने शत्रु के हाथ से मुक्त किया ॥ १९९ ॥]

यह सुन सेनक ने भी पण्डित का गुणानुवाद किया—

एवमेतं महाराज पण्डिता हि सुखावहा,
पक्खीव पञ्जरे बद्धे मच्छे जालगतेरिव,
अमित्तहत्थत्थगते मोचयी नो महोसधो ।।२००।।

[महाराज! यह ऐसा ही है। पण्डित सुखदायक होते ही हैं । पिंजरे में बन्द पक्षी के समान और जाल में फंसी मछली के समान हमें महोषध ने शत्रु के हाथ से मुक्त किया है ।।२००।।]

तब विदेह नरेश नदी पारकर योजन भर की दूरी पर बोधिसत्व द्वारा बसाये गये गाँव में पहुँचा। वहाँ बोधिसत्व द्वारा नियुक्त मनुष्यों ने राजा को हाथी-घोड़े आदि वाहन तथा खाना पीना दिया। उसने थके हुए हाथी, घोड़े, रथ छोड़े और दूसरे वाहन ले, उनके साथ अन्य गाँव पहुँचा। इस तरह से सौ योजन का मार्ग तै कर अगले दिन प्रातःकाल ही मिथिला नगरी जा पहुँचा।

बोधिसत्व ने भी सुरंग के द्वार पर पहुँच कर अपनी बांधी हुई तलवार खोली और सुरंग के द्वार पर बालू फैला दी। बालू रख, सुरंग में दाखिल हो, सुरंग से जाकर उस नगर में प्रवेश किया। फिर सुगन्धित जल से स्नान कर, नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन खाये और शय्या पर लेट सोचने लगा कि मेरा मनोरथ पूरा हो गया।

उस रात के बीतने पर चूळनी राजा सेना को व्यवस्थित करता हुआ वहाँ आ पहुँचा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्त ने कहा—

रक्खित्वा कसिणं रत्तिं चूळनीयो महब्बलो,
उदेन्तं अरुणुग्गम्हि उपकारिं उपागमि ।।२०१।।
आरुय्ह पवरं नागं बलवन्तं सट्ठिहायनं,
राजा अवोच पञ्चालो चूळनीयो महब्बलो ।।२०२।।
सन्नद्धो मणिवम्मेन सरमादाय पाणिना,
पेस्सिये अज्झभासित्थ पुथुगुम्बे समागते ।।२०३।।

[सारी रात पहरा देते रहने के बाद, अरुणोदय होने पर महाबलशाली चूलनीय राजा उपकारि (नामक) नगर में पहुँचा ।।२०१।। बलवान्, साठ वर्ष के श्रेष्ठ हाथी पर चढे हुए महाबलशाली पञ्चाल-नरेश चूलनीय राजा ने कहा ।।२० ।। मणि-से कवच से सन्नद्ध, हाथ में वाण लिए हुए राजा ने अपने दूतों तथा आये हुए बहुत शिल्पज्ञों को कहा ।।२०३।।]

उनका स्वरूप प्रकट करने के लिए—

हत्थारूहे अनीकट्ठे रथिके पत्तिकारके,
उपासनम्हि कतहत्थे वाळवेधे समागते ।।२०४।।

[हाथी-सवार थे, सैनिक थे, रथ-सवार थे, पैदल थे, धनुष-विद्या में कुशल थे—वे बाल तक को बींध सकते थे ।।२०४।।]

अब राजा ने विदेह-नरेश को जीते जी पकड़ने की आज्ञा देते हुए कहा—

पेसेथ कुञ्जरे दन्ती बलवन्ते सट्ठिहायने,
मद्दन्तु कुञ्जरा नगरं वेदेहेन सुमापितं ।।२०५।।
वच्छदन्तमुखा सेता तिखिणग्गा अट्ठिवेधिनो,
पनुन्ना धनुवेगेन सम्पतन्तु तरीतरं ।।२०६।।
माणवा चम्मिनो सूरा चित्रदण्डयुता बुधा,
पक्खन्दिनो महानागा हत्थीनं होन्तु सम्मुखा ।।२०७।।
सत्तियो तेलधोतायो अच्चिमन्ती पभस्सरा,
विज्जोतमाना तिट्ठन्तु सतरंसा वियतारका ।।२०८।।
आवुधबलवन्तानं गुणिकायूरधारिनं
एतादिसानं योधानं संगामे अपलायिनं,
वेदेहो कुतो मुच्चिस्सति सच पक्खीव काहति ।।२०९।।
तिसं मे पुरिसनावुत्यो सब्बे वेकेकनिच्छिता,
येसं समं न पस्सामि केवलं महिमं चरं ।।२१०।।
नागा च कप्पिता दन्ती बलवन्तो सट्ठिहायना,
येसं खन्धेसु सोभन्ति कुमारा चारुदस्सना ।।२११।।
पीतालंकारा पीतवसना पीतुत्तरनिवासना,
नागक्खन्धेसु सोभन्ति देवपुत्ताव नन्दने ।।२१२।।
पाठीनवण्णा नेत्तिसा तेलधोता पभस्सरा,
निट्ठिता नरवीरेहि समधारा सुनिस्सिता ।।२१३।।
वेल्लाळिनो वीतमला सिक्कायसमया वळहा,
गहिता बलवन्तेहि सुप्पहारप्पहारिहि ।।२१४।।
सुवण्णथरुसम्पन्ना लोहितकच्छूपधारिता,
विवत्तमाना सोभन्ति विज्जू वब्भघनन्तरे ।।२१५।।

पताका वम्मिनो सूरा असिचम्मस्स कोविदा,
थरूग्गहा सिक्खितारो नागक्खन्धातिपातिनो ।।२१६।।
एदिसेहि परिक्खित्तो नत्थि मोक्खो इतो तव,
पभावं ते न पस्सामि येन त्वं मिथिलं वजे ।।२१७।।

[दान्तों वाले, बलवान, साठ वर्ष के हाथी भेजो ताकि वे विदेह-नरेश का बनवाया हुआ नगर रौंद डालें ।।२०५।। जो बछड़े के दान्त के समान श्वेत हैं, जिनकी नोक तीखी है, जो हड्डियों को भी बींध सकते हैं ऐसे छोड़े हुए तीर, धनुष के जोर से लगातार गिरें ।।२०६।। हाथ में ढाल लिये, बहादुर, विचित्र दण्डयुक्त आयुध धारी तरुण-योधा कूदकर महानाग हाथियों के सम्मुख हों ।।२०७।। तेल से धोई हुई, प्रज्वलित, चमकती हुई शक्तियां औषधी तारे की तरह दीप्त हों ।।२०८।। आयुध तथा बल से युक्त, कवच रूपी बाजूबन्द पहनने वाले, संग्राम से न भागने वाले योधाओं से बचकर विदेह-नरेश चाहे आकाश-मार्ग से भी उड़े, कहाँ जायेगा ? ।।२०९।। मेरे पास उनतालीस हजार चुने हुए योधा है, जिनके समान सारी पृथ्वी पर घूमने पर भी मुझे दिखाई नहीं देते हैं ।।२१०।। बलवान साठ वर्ष के, दान्तों वाले, कसे हुए नाग हैं, जिनके कन्धों पर सुन्दर कुमार शोभा देते हैं ।।२११।। पीत-वर्ण अलंकार, पीतवर्ण वस्त्र तथा पीतवर्ण चादरों वाले कुमार हाथियों के कन्धे पर उसी प्रकार शोभा देते है जैसे नन्दन-वन में देव-पुत्र ।।२१२।। पाठीन (मछली) के वर्ण की, तेल लगी हुई, चमकती हुई, बराबर धार वाली, तेज तलवारें जिन्हें वीर-पुरुषों ने धारण कर रखा है ।।२१३।। मध्याह्न सूर्य्य की तरह चमकदार, जँग-रहित, स्टील की बनी हुई, प्रहार करने मे पटु, बलवान पुरुषों द्वारा धारण की हुई तल-वारें ।।२१४।। सोने की मूठवाली, लाल रंग की म्यान वाली नंगी तलवारें ऐसे ही शोभा देती हैं जैसे घने बादलों के बीच बिजली ।।२१५।। पताकायें और कवच धारण करने वाले, ढाल-तलवार चलाने में पण्डित, (तलवार की) मूठ पकड़ने में शिक्षित तथा हाथी की गरदन गिरा दे सकने वाले योधाओं से घिरे होने के कारण अब तेरी यहां से मुक्ति नहीं है। अब मैं तेरा कोई ऐसा प्रताप नहीं देखता कि तू यहां से बच कर मिथिला पहुँच सके ।।२१६-२१७।।]

बोधिसत्व के नियुक्त आदमियों ने 'कौन जाने क्या हो' सोचा और अपने सेवकों सहित आकर बोधिसत्व के गिर्द हो गये। उस समय बोधिसत्व शैय्या से उठ, प्रातः कृत्य समाप्त कर, जलपान के अनन्तर, सजसजा कर, लाख के मूल्य के

काशी-वस्त्र धारण कर, लाल कंबल एक कंधे पर रख, सात रत्न जड़ित, भेंट में मिला हुआ दण्ड ले, स्वर्ण पादुका पर चढ़, देवप्सरा के समान अलंकृत स्त्री द्वारा पंखा किया जाता हुआ, अलंकृत प्रासाद के झरोखे को खोल, अपने आपको चूळनी राजा को दिखाते हुए, देवेन्द्र शक्र के समान इधर उधर टहलने लगा। चूळनी राजा उसकी शोभा देख चित्त को प्रसन्न न रख सका। 'अब उसे पकड़ूंगा' सोच उसने जल्दी जल्दी हाथी भेजे। पण्डित ने सोचा, 'यह समझता है कि मैंने विदेह-नरेश को काबू कर लिया है और इसलिए जल्दी जल्दी चला आ रहा है। यह नहीं जानता कि हमारा राजा इसके बाल-बच्चे लेकर चला गया है। अपना सोने के आइने जैसा मुँह इसे दिखाकर इसके साथ बातचीत करता हूँ।' उसने झरोखे में बैठे ही बैठे मुँह से मधुर-वाणी निकाल कहा—

किन्नु सन्तरमानोव नागं पेसेसि कुञ्जरं,
पहट्ठरूपो आपतसि लद्धत्थोस्मिति मञ्जसि ॥२१८॥
ओहरेतं धनुं चापं खुरप्पं पटिसंहर,
ओहरेतं सुभं वम्मं वेळुरियमणिसन्थतं ॥२१९॥

[क्या जल्दी जल्दी हाथी को आगे बढ़ा रहा है! यह समझ कर कि मेरा मनोरथ पूरा हो गया, बड़ा प्रसन्न प्रसन्न चला आता है ॥२१८॥ इस धनुष को और इन बाणों को समेट लो और बिल्लौर तथा मणि जड़े इस कवच को भी उतार दो ॥२१९॥]

उसने उसका कहना सुना तो सोचा कि गृहपति-पुत्र मेरा मजाक उड़ा रहा है। 'आज बताऊँगा तेरा क्या करना है' कह उसे धमकी देते हुए उसने गाथा कही—

पसन्नमुखवण्णोसि मिहितपुब्बञ्च भाससि,
होति खो मरणकाले तादिसी वण्णसम्पदा ॥२२०॥

[तेरे चेहरे पर प्रसन्नता है। तू मुस्कराहट के साथ बोलता है। मरने के समय आदमी के मुँह पर ऐसी ही रौनक आ जाती है ॥२२०॥]

जिस समय वह उसके साथ इस प्रकार बातचीत कर रहा था, बड़ी भारी सेना ने बोधिसत्व की रूप-श्री देख सोचा—'हमारा राजा महोषध पण्डित के साथ मन्त्रणा कर रहा है। सुनें तो कि क्या बातचीत कर रहे हैं।' वह राजा के समीप जा पहुँची। पण्डित ने भी उसकी बात सुनी तो सोचा, 'यह नहीं जानता कि मैं

महोषध पण्डित हूँ। मैं इसे अपने-आपको मारने नहीं दूंगा' उसने। 'तुम्हारा षड़यन्त्र खुल गया। तुमने और केवट्ट ने जो मन में सोचा था, वह नहीं हुआ। जो मुँह से कहा था, वही हुआ' प्रकट करते हुए गाथा कही—

> **मोघं ते गज्जितं राज भिन्नमन्तोसि खत्तिय,**
> **दुग्गण्हो हि तया राजा खलुँकेनेव सिन्धवो ॥२२१॥**
> **तिण्णो ह्यिय्यो राजा गंगं सामच्चो सपरिज्जनो,**
> **हंसराजं यथा धंको अनुज्जवं पपतिस्ससि ॥२२२॥**

[राजन्! तेरी गर्जना व्यर्थ है। हे क्षत्रिय! तेरे षड़यन्त्र का पता लग गया। जिस प्रकार खलुंक (घोड़ा) सिन्धव (घोड़े) को नहीं पा सकता उसी प्रकार तू अब हमारे राजा को नहीं पा सकता ॥२२१॥ हमारा राजा कल ही अपने अमात्यों तथा परिजनों सहित गङ्गा पार कर गया। यदि तू पीछा करेगा तो जैसे हंस-राज का पीछा करने वाला कौआ गिर पड़ता है, वैसे ही तू भी रास्ते में ही गिर पड़ेगा ॥२२२॥]

अब निर्भय सिंह की तरह उदाहरण देते हुए कहा—

> **सिगाला रत्तिभागेन फुल्लं दिस्वान किंसुकं,**
> **मंसपेसीति मञ्ञान्ता परिब्बूळहा मिगाधमा ॥२२३॥**
> **वीतिवत्तासु रत्तीसु उग्गतास्मि दिवाकरे,**
> **किंसुकं फुल्लितं दिस्वा आसच्छिन्ना मिगाधमा ॥२२४॥**
> **एवमेव तुवं राज वेदेहं परिवारिय,**
> **आसच्छिन्नो गमिस्ससि सिगाला किंसुकं यथा ॥२२५॥**

[रात के समय गीदड़ किंसुक फूल को फूला देखते हैं। वे अधम उसे मांस-पेशी मान घेर कर खड़े हो जाते हैं। रात्रि के बीतने पर जब सूर्य्योदय होता है, तो फूले हुए किंसुक को देखकर वे अधम निराश हो जाते हैं। इसी तरह गीदड़ों के किंसुक फूल को छोड़कर चले जाने की तरह हे राजन्! तू भी निराश होकर जायेगा ॥२२३-२२५॥]

राजा ने उसकी निर्भय वाणी सुनी तो सोचा—"यह गृहपति-पुत्र बहुत बढ़ बढ़ कर बात करता है। निश्चय से उसने विदेह-नरेश को भगा दिया होगा।' उसे बहुत अधिक क्रोध आया। सोचने लगा—'पहले इस गृहपति-पुत्र के कारण ही

हम निर्वस्त्र तक हो गये। अब इसने हमारे हाथ में आया हुआ शत्रु भगा दिया। इसने हमारा बहुत अनर्थ किया है। दोनों को दिया जाने वाला दण्ड इसे ही दूंगा।' उसने उसे दण्ड देने की आज्ञा देते हुए कहा—

इमस्स हत्थपादेच कण्णनासञ्च छिन्दथ
यो मे अमित्तं हत्थगतं वेदेहं परिमोचयि ॥२२६॥
इमं मंसंव पातब्बं सूले कत्वा पचन्तु तं,
यो मे अमित्तं हत्थगतं वेदेहं परिमोचयि ॥२२७॥
यथापि आसभं चम्मं पथव्या वितनिय्यति,
सीहस्स अथो व्यग्घस्स होति संकसमाहतं,
एवं तं वितनित्वान वेधमिस्साम सत्तिया,
यो मे अमित्तं हत्थगतं वेदेहं परिमोचयि ॥२२८॥

[जिसने मेरे हाथ आये शत्रु विदेह-नरेश को भगा दिया उसके हाथ-पांव तथा कान-नाक काट डालो ॥२२६॥ जिसने मेरे हाथ आये शत्रु को भगा दिया इसे पकाने योग्य माँस की तरह सीख पर चढ़ाकर पकाओ ॥२२७॥जैसे पृथ्वी पर बैल का चमड़ा फैलाया जाता है और जैसे सिंह या व्याघ्र का चमड़ा सीख पर चढ़ाया जाता है, उसी प्रकार जिसने हाथ में आये हुए शत्रु को भगा दिया हम उसे शक्ति से फैला कर काटेंगे ॥२२८॥]

यह सुन बोधिसत्व मुस्कारया। यह राजा नहीं जानता कि मैंने इसकी देवी और इसके परिवार को मिथिला पहुँचा दिया है। इसीलिए मुझे दण्ड देने की बात सोचता है। क्रोध के वशीभूत हो यह मुझे शूल से बींध भी सकता है, अथवा और जो इसे अच्छा लगे कर सकता है। 'इस शोकातुर को कष्ट दे हाथी की पीठ पर बैठें ही बैठे बेहोश बना देने वाली बात कहता हूँ' सोच कहा—

सचे मे हत्थे च पादे च कण्णनासञ्च छेच्छसि,
एवं पञ्चालचण्डस्स वेदेहो छेदयिस्सति ॥२२९॥
सचे मे हत्थे च पादे च कण्ण नासञ्च छेच्छसि,
एवं पञ्चालचण्डिया वेदेहो छेदयिस्सति ॥२३०॥
सचे मे हत्थेच पादेच कण्णनासञ्च छेच्छसि,
एवंनन्दाय देविया वेदेहो छेदयिस्सति ॥२३१॥

सचे मे हत्थेच पादेच कण्णनासञ्च छेच्छसि,
एवं ते पुत्तदारस्स वेदेहो छेदयिस्सति ॥२३२॥
सचे मंसं व पातब्बं सूले कत्वा पचिस्ससि,
एवं पञ्चाल चण्डस्स वेदेहो पाचयिस्सति ॥२३३॥
सचे मंसं व पातब्बं सूले कत्वा पचिस्ससि,
एवं पञ्चालचण्डिया वेदेहो पाचयिस्सति ॥२३४॥
सचे मंसंव पातब्बं सूले कत्वा पचिस्ससि,
एवं नन्दा देविया वेदेहो पाचयिस्सति ॥२३५॥
सचे मंसं व पातब्बं सूले कत्वा पचिस्ससि,
एवं ते पुत्तदारस्स वेदेहो पाचयिस्सति ॥२३६॥
सचे मं वितनित्वान वेधयिस्ससि सत्तिया,
एवं पञ्चालचण्डस्स वेदेहो वेधयिस्सति ॥२३७॥
सचे मं वितनित्वान वेधयिस्ससि सत्तिया,
एवं पञ्चालचण्डिया वेदेहो वेधयिस्सति ॥२३८॥
सचे मं वितनित्वान वेधयिस्ससि सत्तिया,
एवं नन्दाय देविया वेदेहो वेधयिस्सति ॥२३९॥
सचे मं वितनित्वान वेधयिस्ससि सत्तिया,
एवं ते पुत्तदारस्स वेदेहो वेधयिस्सति,
एवं नो मन्तितं रहो वेदेहेन मया सह ॥२४०॥
यथा पलसतं चम्मं कोन्तिमन्तो सुनिट्ठितं,
उपेति तनुताणाय सरानं पटि हन्तवे ॥२४१॥
सुखावहो दुक्खनुदो वेदेहस्स यसस्सिनो,
मतिं ते पटिहञ्ञामि उसुं पलसतेन वा ॥२४२॥

[यदि मेरे हाथ-पांव तथा नाक-कान कटवायेगा तो उसी प्रकार विदेह-नरेश पञ्चाल-चण्ड के हाथ-पाँव तथा नाक-कान कटवा देगा ॥२२९॥ यदि मेरे...... विदेह-नरेश पञ्चाल-चण्डी के......देगा ॥२३०॥ यदि मेरे......विदेह-नरेश नन्दा देवी के......देगा ॥२३१॥ यदि मेरे......विदेह-नरेश तेरी माता के......देगा ॥२३२॥ यदि पकाने योग्य माँस की तरह मुझे सीख पर चढ़ा कर पकायेगा तो उसी प्रकार विदेह-नरेश पञ्चाल-चण्ड को पकवायेगा ॥२३३॥

यदि......विदेह-नरेश पञ्चाल-चण्डी को पकायेगा ।।२३४।। यदि...... विदेह-नरेश नन्दा-देवी को पकवायेगा ।।२३५।। यदि......विदेह-नरेश तेरे स्त्री-पुत्र को पकवायेगा ।।२३६।। यदि मुझे फैलाकर शक्ति से विंधवायेगा तो उसी प्रकार विदेह-नरेश पञ्चाल-चण्ड को विंधवायेगा ।।२३७।। यदि......विदेह-नरेश पञ्चाल-चण्डी को विंधवायेगा ।।२३८।। यदि......विदेह-नरेश नन्दा देवी को विंधवायेगा ।।२३९।। यदि......विदेह-नरेश तेरे स्त्री-पुत्र को विंधवायेगा। इसी प्रकार मैंने और विदेह-नरेश ने एकान्त में मन्त्रणा की थी ।।२४०।। जैसे चर्मकारों की कान्ती से कमाया हुआ बालिश्त भर चमड़ा तीरों को रोककर शरीर की रक्षा का कारण बन जाता है, उसी प्रकार मैं भी यशस्वी विदेह को सुख देनें वाला हूँ और उसके दुख को मिटाने वाला हूँ ? जैसे बालिश्त भर चमड़ा तीरों को रोकता है वैसे मैं तेरी बुद्धि को कुण्ठित करता हूँ ।।२४१-२४२।।]

यह सुना तो राजा सोचने लगा—"गृहपति-पुत्र ! क्या बोलता है। जैसे मैं इसे दण्ड दूंगा, वैसे ही विदेह-नरेश मेरे स्त्री-बच्चों को दण्ड देगा। यह नहीं जानता कि मेरे स्त्री-बच्चे पहरे में कितने सुरक्षित है। 'अब मारा जाऊँगा' सोच मृत्यु-भय के कारण विलाप करता है।" उसने उसके कहने का विश्वास नहीं किया। बोधिसत्व ने यह सोच कि यह समझता है कि मैं भय के कारण ऐसा कह रहा हूँ, यह गाथा कही—

इंघ पस्स महाराज सुञ्ञं अन्तेपुरं तव
ओरोधो च कुमारा च तव माता च खत्तिय,
उम्मग्गा नीहरित्वान वेदेहस्सुपनामिता ।।२४३।।

[महाराज ! अपने अन्तःपुर को देखें। वह शून्य है। हे क्षत्रिय ! तेरा रनिवास, कुमार और तेरी माता सुरंग से निकाल कर विदेह-नरेश को सौंप दी गई हे।२४३।।]

यह सुन राजा सोचने लगा—'पण्डित बड़े विश्वास के साथ बोल रहा है। मैंने रात के समय गङ्गा के पास नन्दा देवी का शब्द भी सुना था। यह पण्डित महा प्रज्ञावान् है। कहीं सच ही न हो।' उसे भयानक शोक उत्पन्न हुआ। लेकिन उसने धैर्य रख, चिन्ता न करते हुए की तरह, एक अमात्य को बुला, पता लगाने के लिये भेजते हुए दूसरी गाथा कही—

इंघ अन्तेपुरं मय्हं गन्त्वान विचिनाथ नं,
यथा इमस्स वचनं सच्चं वा यदि वा मुसा ।।२४४।।

[मेरे अन्तःपुर में जाकर पता लगाओ कि जो कुछ यह कह रहा है वह सत्य है अथवा झूठ है ? ॥२४४॥]

वह आदमियों को लेकर राजभवन पहुँचा। वहाँ उसने द्वार खोल, अन्दर जा देखा कि हाँथ-पाँव बंधे, मुँह ढँके अन्तःपुर के पहरेदार खूंटियों से लटक रहे हैं, इसी प्रकार कुबड़े ठिगने आदि भी हैं, टूटे फूटे बरतन और खाना-पीना जहाँ तहाँ बिखरा पड़ा है, रतन-घर-द्वार खोलकर रतन लूट लिये गये हैं, खुले-द्वार शयन-गृह की खिड़कियों से भीतर जाकर कौवे घूम रहे हैं और वह छोड़े हुए गाँव की तरह अथवा श्मशान-भूमि की तरह श्री-हीन है। उसने राजा को कहा—

एवमेतं महाराज यथा आह महोसधो,
सुञ्ञं अन्तेपुरं सब्बं काक पट्टनकं यथा ॥२४५॥

[महाराज ! जैसे यह महोषध ने कहा, वैसा ही है। सारा अन्तःपुर कौओं के पत्तन के समान शून्य है ॥२४५॥]

राजा चारों जनों के सम्भव-वियोग के शोक से कांपने लगा। उसे हुआ कि इस सारे दुःख का मूल कारण गृहपति पुत्र है। वह डण्डा खाये जहरीले सांप की तरह बोधिसत्व के प्रति अति क्रोधित हो गया। बोधिसत्व ने उसका ढंग देखा तो सोचा —'यह राजा बहुत ऐश्वर्यशाली है। कहीं क्रोध में आकर यह सोचे कि मुझे उनसे क्या और मुझे मरवा न डाले। क्यों न मैं नन्दा देवी के शरीर सौन्दर्य की प्रशंसा करूँ, जैसे इसने उसे कभी देखा न हो ? तब सम्भव है कि यह उसे याद कर यह सोचे कि यदि मैं महोषध को मारूँगा तो ऐसे स्त्री-रत्न को फिर न पा सकूँगा। और यह अपनी भार्य्या के साथ स्नेह होने के कारण मेरे साथ कुछ न करेगा।' यह सोच उसने आत्मरक्षार्थ प्रासाद पर खड़े ही खड़े, लाल वस्त्र के भीतर से स्वर्ण-वर्ण बाँह निकाल कर उसके जाने के मार्ग का वर्णन करते हुए कहा—

इतो गता महाराज नारी सब्बङ्गसोभना,
कोसुम्भफलक सुस्सोणी हंसगग्गरभाणिनी ॥२४६॥
इतो नीता महाराज नारी सब्बंगसोभना,
कोसेय्यवसना सामा जातरूपसुमेखला ॥२४७॥
सुरत्तपादा कल्याणी सुवण्णमणीमेखला,
परिवतक्खी सुतनु बिम्बोट्ठा तनुमज्झिमा ॥२४८॥

सुजाता भुजगलट्ठीव वेल्लीवतनुमज्झिमा,
दीघस्सा केसा असिता ईसकग्गपवेल्लिता ॥२४९॥
सुजाता मिगछापोव हेमन्ताग्गिसिखारिव,
नदीव गिरिदुग्गेसु सञ्छन्ना खुद्दवेळुहि ॥२५०॥
नागनासूरु कल्याणी पठमा तिम्बरुत्थनी,
नातिदीघा नातिरस्सा नालोमा नातिलोमसा ॥२५१॥

[महाराज ! सर्वाङ्ग सुन्दरी, जिसकी श्रोणी स्वर्ण-फलक के समान है और जो हंसों के समान मधुर भाषिणी है, इस रास्ते से गई है ॥२४६॥ महाराज ! सर्वाङ्ग सुन्दरी नारी, जो कोषेय्य-वस्त्र धारण किये थी, जो स्वर्ण-वर्ण थी तथा जिसकी सुनहरी मेखला थी, यहां से ले जाई गई है ॥२४७॥ जिसके पांव रक्त-वर्ण हैं, जो कल्याणी है, जिसकी मणि-मेखला स्वर्ण-वर्ण है, जिसकी आंखें कबूतर के समान हैं, जिसका सुन्दर शरीर है, जिसके ओंठ बिम्ब (फल) के समान हैं और जो मध्य-माकार की है ॥२४८॥ भुजङ्ग-लता की तरह सुजात, स्वर्णवेदिका की तरह मँझली, लम्बे काले केश जो कि आगे से थोड़े घुंघराले ॥२४९॥ व्याघ्र की बच्ची के समान सुजात, हेमन्त-ऋतु की अग्नि-शिखा के समान प्रकाशवती, छोटे श्रोतों द्वारा गिरि-दुर्गों में शोभायमान नदी की तरह सुशोभित ॥२५०॥ हाथी की सूंड़ जैसी जाँघ वाली, सुन्दरी, तिम्बरु स्तन वालियों में प्रथम, न बहुत ऊंची, न बहुत नीची और बाल-शून्य और न अति बालों वाली ॥२५१॥]

जब बोधिसत्व इस प्रकार उसके रूप-सौन्दर्य का वर्णन कर रहा था वह उसके लिये ऐसी हो गई जैसे पहले कभी न देखी हो। उसके मन में बहुत स्नेह पैदा हुआ। बोधिसत्व ने यह जान कि उसके मन में स्नेह पैदा हो गया है, अगली गाथा कही—

नन्दाय नून मरणे नन्दसि सिरिवाहन,
अहञ्च नून नन्दाच गच्छाय यमसाधनं ॥२५२॥

[हे श्रीवर्धन ! तू नन्दा की मृत्यु से प्रसन्न होता है। मैं और नन्दा दोनों इकट्ठे यम के पास जायेंगे ॥२५२॥]

बोधिसत्व ने अब तक नन्दा की ही प्रशंसा की है, औरों की नहीं। ऐसा क्यों है ? प्राणी सब से अधिक प्रिय भार्य्या से ही आसक्त रहते हैं। फिर माता की याद आने से बेटे-बेटी की भी याद आ सकती है। इसीलिये उसने उसी का वर्णन किया। राजमाता का तो बूढी होने के कारण ही वर्णन नहीं किया। ज्ञानी बोधिसत्व के

मधुर स्वर से वर्णन करते करते ही राजा को ऐसा लगने लगा मानो नन्दा देवी आकर सामने खड़ी हो गई हो।

तब राजा सोचने लगा—'महोषध के अतिरिक्त और कोई मेरी भार्य्या लाकर नहीं दे सकता।' उसकी याद आने से उसके मन में शोक उत्पन्न हुआ। तब बोधिसत्व ने राजा को सान्त्वना दी—'महाराज! चिन्ता न करें। तुम्हारी देवी, पुत्र और माता तीनों आ जायेंगे। मेरे यहां से जाने की देर है। राजन्! आप धीरज धारण करें।' तब राजा सोचने लगा—मैंने अपने नगर को सुरक्षित करवा, इसके 'उपकारी' नगर को इतनी सेना से घेर कर रखा। इसने इस प्रकार सुरक्षित नगर में से भी मेरी देवी, पुत्र और माता को मंगवा कर विदेह को दिलवा दिया। हमें और घेरकर खड़े हुए इतने लोगों को बिना पता लगने दिये सेना-सहित विदेह-नरेश को भगा दिया। क्या यह दिव्य-माया जानता है अथवा नजर-बन्दी? उसने उसे पूछते हुए कहा—

दिब्बं अधीयसे मायं अकासि चक्खुमोहनं,
यो मे अमित्तं हत्थगतं वेदेहं परिमोचयि ॥२५३॥

[हाथ में आए मेरे शत्रु विदेह को निकाल भगाया, क्या तू दिव्य-माया पढ़ा है अथवा नजरबन्द करना जानता है? ॥२५३॥]

यह सुन बोधिसत्व ने 'महाराज! मैं दिव्य माया जानता हूं। पण्डित-जन दिव्य-माया जान कर खतरा आने पर अपने को तथा दूसरों को भय से मुक्त करते हैं' कह, गाथा कही—

अधीयन्ति महाराज दिब्बमायिध पण्डिता,
ते मोचयन्ति अत्तानं पण्डिता मन्तिनो जना ॥२५४॥
सन्ति माणवपुत्तामे कुसला सन्धिछेदका
येसं कतेन मग्गेन वेदेहो मिथिलं गतो ॥२५५॥

[महाराज! पण्डित-जन दिव्य-माया सीखते हैं। वे पण्डित मन्त्री-जन अपने आपको छुड़ा लेते हैं ॥२५४॥ मेरे पास सेन्ध लगाने में कुशल जवान हैं, जिनके बनाये हुए मार्ग से ही विदेह-नरेश मिथिला गया ॥२५५॥]

यह सुन कि 'अलंकृत सुरंग से गया' राजा की इच्छा हुई कि देखे वह सुरंग कैसी है? उसका इशारा समझ, बोधिसत्व ने 'राजा सुरंग देखना चाहता है, इसे सुरंग दिखाऊंगा' सोच 'यह सुरंग है' दिखाते हुए कहा—

इध पस्स महाराज उम्मग्गं साधुमापितं,
हत्थीनं अथ अस्सानं रथानं अथ पत्तिनं,
आलोकभूतं तिट्ठन्तं उम्मग्गं साधुनिट्ठितं ॥२५६॥

[महाराज! इस सुरंग को देखें। इसमें हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सभी चित्रित हैं और उन सब से प्रकाशित होकर यह अच्छी तरह निर्मित है ॥२५६॥]

इतना कह 'महाराज! मेरी प्रज्ञा रूपी चन्द्रमा और ज्ञान रुपी सूर्य्य के उदय होने के स्थान पर अलंकृत सुरंग में अस्सी महाद्वार और चौसठ छोटे दरवाजे, एक सौ शयनागार तथा सैकड़ों प्रकाश-कोठे देखें। मेरे साथ प्रसन्न चित्त होकर अपनी सेना सहित 'उपकारी' नगर में प्रवेश करें।' इतना कह उसने नगर-द्वार खुलवाया। सौ जनों को साथ ले राजा नगर में घुसा। बोधिसत्व प्रासाद से उतर राजा को प्रणाम कर अनुचरों सहित सुरंग में घुसा। राजा ने सुरंग को अलंकृत देव-नगर के समान पा बोधिमत्व की प्रशंसा करते हुए कहा—

लाभा वत विदेहानं यस्स मे एदिसा पण्डिता,
घरे वसन्ति विजिते यथा त्वंसि महोसध ॥२५७॥

[विदेह-राष्ट्र के नागरिक बड़े भाग्यवान् हैं जिनके घर अथवा देश में ऐसे पण्डित रहते हैं, जैसा महोषध तू है ॥२५७॥]

तब बोधिसत्व ने उसे सौ शयनागार दिखाये। एक का दरवाजा खोलने पर सब का दरवाजा खुल जाता। एक का बन्द करने पर सब का बन्द हो जाता। राजा सुरंग देखता हुआ आगे आगे चला जा रहा था। पण्डित पीछे-पीछे। सारी सेना सुरंग के भीतर चली गई। राजा सुरंग से निकल आया। पण्डित ने जब जाना कि वह बाहर निकल आया तो स्वयं निकल कर बिना दूसरों को निकलने दिये सुरंग का द्वार बन्द करने के लिये अर्गल खींच दी। अस्सी महाद्वार, चौसठ छोटे द्वार, सौ शयनागार, सैकड़ों प्रकाश-कोठों के द्वार एक ही बार में बन्द हो गये। सारी सुरंग में लोकन्तरिक नरक जैसा अन्धकार छा गया। लोग डर गये। बोधिसत्व ने कल सुरंग में प्रवेश करते समय जो खड्ग रखी थी वह ली और जमीन से अठारह हाथ ऊँचे उछल चढ़कर, राजा को हाथ से पकड़ तलवार उगली। फिर राजा को धमकाते हुए पूछा—"महाराज! सारे जम्बुद्वीप में राज्य किसका है?" उसने डरकर कहा "पण्डित तेरा" और 'अभय' की याचना की। उसने तलवार राजा को दे दी और कहा—"महाराज! डरें नहीं। मैंने आपको मारने के लिए तलवार हाथ में नहीं

ली। अपनी प्रज्ञा दिखाने के लिये ही। महाराज! यदि आप मुझे मारना चाहते हैं तो इसी तलवार से मार डालें और यदि अभय देना चाहते हैं तो अभय दे दें।" 'पण्डित! तू चिन्ता मत कर। मैंने तुझे पहले ही 'अभय' दे रखी है।" दोनों ने तलवार को छूकर परस्पर द्वेष-रहित रहने की शपथ खाई।

तब राजा ने बोधिसत्व से पूछा—"पण्डित! इतना प्रज्ञावान् होकर भी तू राज्य क्यों नहीं लेता?" "महाराज! यदि मैं इच्छा करूँ तो आज सारे जम्बुद्वीप के राजाओं को मारकर राज्य ले सकता हूँ। किन्तु दूसरों को मारकर ऐश्वर्य प्राप्त करना पण्डितों द्वारा प्रशंसित कार्य नहीं है।" "पण्डित! लोगों को बाहर निकलने को द्वार नहीं मिल रहा है, इसलिये चिल्ला रहे हैं। सुरंग का द्वार खोल लोगों के प्राण बचा।" उसने दरवाजा खोल दिया। सारी सुरंग प्रकाशित हो गई। लोगों को सान्त्वना हुई। सभी राजा अपनी अपनी सेना के साथ बाहर आये और पण्डित के पास पहुँचे। वह राजा के साथ ऊँची मंजिल पर था। वे राजागण बोले—"पण्डित! तेरे कारण हमें जीवन दान मिला है। यदि मुहूर्त पर सुरंग का द्वार न खोलता तो हम सभी का वहीं मरना हो जाता।" "महाराजो! न केवल अभी पहले भी मेरे ही कारण तुम्हारे प्राण बचे हैं।" "पण्डित! कब?" "याद है कि एक हमारा नगर छोड़ सारे जम्बुद्वीप का राज्य ले पञ्चाल नरेश ने जय-पान पीने के लिये सुरा तैयार की थी?" "पण्डित! हाँ।" "तब इस राजा ने केवट्ट के साथ कुमन्त्रणा कर शराब और मत्स्य-माँस में विष मिलाकर तुम्हें मारने का आयोजन किया था। तब मैंने यह सोच कि मेरे देखते देखते ये इतने जने अनाथ की तरह न मरें अपने आदमी भेज, सभी बरतन तुड़वा, इनकी मन्त्रणा बिगाड़ तुम्हें जीवन दान दिया।" वे सभी उद्विग्न-चित्त हुए और चूळनी राजा से पूछा—"महाराज! क्या यह सच है?" "हाँ पण्डित सत्य ही कहता है। मैंने केवट्ट की बात मान ऐसा किया था।" उन सभी ने बोधिसत्व का आलिंगन किया—"पण्डित! तू ही हम सब का शरण-स्थान हुआ। तेरे ही कारण हमारे प्राण बचे।" उन सभी ने अलंकारों से बोधिसत्व की पूजा की। पण्डित ने राजा से कहा—"महाराज! आप चिन्ता न करें। यह कुसंगति का परिणाम है। आप इन राजाओं से क्षमा याचना करें।" राजा ने क्षमा याचना की—"दुष्ट पुरुष की संगति के कारण मैंने ऐसा किया। यह मेरा दोष है। क्षमा करें। फिर ऐसा न करूँगा।" वे परस्पर अपना अपना दोष स्वीकार कर मिल गये। तब राजा ने बहुत सी खाने-पीने की सामग्री मँगवाई और उन सब

के साथ सप्ताह भर सुरंग में ही खेलते रहकर, नगर में प्रवेश कर बोधिसत्व का बहुत सत्कार किया। फिर सौ राजाओं के बीच ऊँची-मंजिल पर बैठकर पण्डित को अपने ही पास रखने की इच्छा से राजा ने कहा—

वुत्तिञ्च परिहारञ्च दिगुणं भत्तवेतनं
ददामि विपुलं भोगं भुञ्ज कामे रमस्सु च,
मा विदेहं पच्चगमा किं विदेहो करिस्सति ॥२५८॥

[मैं तुझे दुगुना ऐश्वर्य्य, ग्राम-निगमादि, खाना-पीना तथा वेतन दूंगा। यहीं रहकर विपुल काम-भोगों में रमण कर। अब विदेह मत जा। विदेह-नरेश (और तेरे लिये) क्या करेगा? ॥२५८॥]

पण्डित ने इसका निषेध करते हुए कहा—

यो चजेय महाराज भत्तारं धनकारणा
उभिन्नं होति गारय्हो अत्तनो च परस्स च,
याव जीवेय्य वेदेहो नाञ्ञस्स पुरिसो सिया ॥२५९॥

[महाराज! जो कोई धन के लोभ से अपने स्वामी को छोड़ देता है, उसका अपना-आप भी उसकी निन्दा करता है और दूसरे भी उसकी निन्दा करते हैं। जब तक विदेह जीता है तब तक मैं दूसरे का आदमी नहीं होऊँगा ॥२५९॥]

यो चजेथ महाराज भत्तारं धनकारणा
उभिन्नं होति गारय्हो अत्तनं च परस्स च
याव जीवेय्य वेदेहो नाञ्ञस्स विजिते वसे ॥२६०॥

[महाराज! जो कोई..........तब तक मैं दूसरे के राज्य में नहीं रहूँगा ॥२६०॥]

तब राजा बोला—"पण्डित! तो वचन दो कि जब तुम्हारा राजा दिवंगत हो जायेगा तब यहाँ आकर रहोगे।" "महाराज! जीता रहूँगा तो आऊँगा।"

राजा ने सप्ताह भर बहुत सत्कार करके, सप्ताह की समाप्ति पर अनुज्ञा लेने के समय 'पण्डित! मैं तुझे यह यह देता हूँ' कह गाथा कही—

दम्मि निक्खसहस्सं गामासीतिञ्च कासिसु,
दासि सतानि चत्तारि दम्मि भरिया सतञ्च ते,
सब्बं सेनंगमादाय सोत्थिं गच्छ महोसध ॥२६१॥

[मैं तुझे हजार निकष देता हूँ, काशी -जनपद के अस्सी गाँव देता हूँ, चार सौ दासियाँ देता हूँ और सौ स्त्रियां देता हूँ। हे महोषध ! सारी सेना लेकर सकुशल आ ।।२६१।।]

उसने भी राजा को कहा—"महाराज ! तुम अपने सम्बन्धियों के लिये चिन्तित न हो। मैंने अपने राजा को जाते समय ही कह दिया था कि महाराज! नन्दा देवी को माता के स्थान पर रखें, पञ्चाल चण्ड को छोटे (भाई) के स्थान पर समझें। हाँ, तुम्हारी लड़की का भी अभिषेक करके उसे राजा के साथ विदा कर दिया था। तुम्हारी माता, देवी और पुत्र को शीघ्र ही भेज दूँगा।" 'राजा ने 'पण्डित, अच्छा' कहकर अपनी लड़की को देने के लिये दासी, दास, वस्त्र, अलंकार, हिरण्य, स्वर्ण, अलंकृत हाथी, अश्व, रथादि उसे सौंपकर कहा कि ये उसे दे देना। फिर सेना-वाहन आदि के सम्बन्ध में जो करना उचित है, वह बताया—

यावं ददन्तु हत्थीनं अस्सानं द्विगुणं विधं,
तप्पेन्तु अन्नपाणेन रथिके पत्तिकारके ।।२६२।।

[घोड़ों को दुगना तथा हाथियों को जितना लगे उतना चारा दो और रथी तथा पैदल जाने वालों को अन्न-पान से सन्तुष्ट करो ।।२६२।।]

ऐसा कह पण्डित को विदा करते हुए कहा—

हत्थी अस्से रथे पत्ती गच्छेवादाय पण्डित,
पस्सतु तं महाराजा वेदेहो मिथिलं गतं ।।२६३।।

[पण्डित ! हाथी, घोड़े, रथ और पैदल लेकर जाओ। मिथिला पहुँचने पर तुम्हें महाराजा विदेह देखें ।।२६३।।]

इस प्रकार उसने पण्डित का महान् सत्कार कर उसे विदा किया। उन सौ राजाओं ने भी बहुत सत्कार किया और बहुत भेंट दी। उनके पास नियुक्त पुरुष पण्डित के ही साथ हो लिये। वह बहुत से अनुयाइयों के साथ मार्गारूढ़ हुआ और रास्ते में चूळनी राजा द्वारा दिये गये गावों से कर वसूल करने के लिये आदमियों को भेजता हुआ विदेह-राष्ट्र पहुँचा। सेनक (पण्डित) ने भी रास्ते में आदमी को नियुक्त कर रखा था ताकि देखें कि चूळनी राजा फिर आता है अथवा नहीं आता है? और उसे आदेश था कि कोई भी आये उसे सूचना दी जाय। उसने तीन योजन की दूरी से ही आकर सूचना दी कि बहुत से अनुयाइयों के साथ पण्डित चला आ रहा

है। यह सुन वह राज-भवन पहुँचा। राजा ने भी महल पर चढ़, झरोखे से बड़ी भारी सेना देख सोचा—'यह महोषध की सेना तो थोड़ी सी थी, यह तो बहुत ज्यादा है। कहीं चूळनी तो नहीं आ गया है?" उसने भयभीत हो यह बात जाननी चाही—

> हत्थी अस्सा रथा पत्ती सेना पदिस्सते महा,
> चतुरंगिनी भिंसरूपा किन्नु मञ्ञन्ति पण्डित ॥२६४॥

[हाथी, घोड़े, रथ, पैदल—बड़ी भारी सेना दिखाई दे रही है। इस चतुरङ्गिनी सेना का रूप भयानक है—तुम क्या मानते हो? ॥२६४॥]

तब सेनक ने यह बात बताते हुए कहा—

> आनन्दो ते महाराज उत्तमो पतिदिस्सति,
> सब्बं सेनंगमादाय सोत्थिं पत्तो महोसधो ॥२६५॥

[महाराज! आपके लिये बड़े आनन्द का विषय दिखाई दे रहा है। सारी सेना सहित महोषध सकुशल चला आ रहा है ॥२६५॥]

यह सुन राजा बोला—'सेनक! पण्डित की सेना तो थोड़ी-सी है, यह तो बहुत बड़ी सेना है?' 'महाराज! उसने राजा को प्रसन्न कर लिया होगा और उसी ने यह इतनी बड़ी सेना दी होगी।' राजा ने नगर में मुनादी करा दी—'नगर को अलंकृत कर पण्डित का स्वागत किया जाय।' नागरिकों ने वैसा ही किया। पण्डित ने नगर में प्रवेश कर, राजकुल जा, राजा को नमस्कार किया। राजा ने उसका आलिंगन किया और श्रेष्ठ-आसन पर बैठ, कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा—

> यथापेतं सुसानास्मिं छड्डेत्वा चतुरोजना,
> एवं कम्पिल्लिये त्यम्ह छड्डयित्वा इधागता ॥२६६॥
> अथ त्वं केन वण्णेन केन वा पन हेतुना,
> केन वा अत्थ जातेन अत्तानं परिमोचयि ॥२६७॥

[जैसे चारों जने मुर्दे को श्मशान में छोड़कर चले आयें, उसी प्रकार हम तुझे कम्पिल्ल राष्ट्र में छोड़कर चले आये। तूने किस तरह, किस हेतु से अथवा किस ढंग से अपने आपको मुक्त कराया? ॥२६६–२६७॥]

तब बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

> अत्थं अत्थेन वेदेह मन्तं मन्तेन खत्तिय,
> परिवारयिस्सं राजानं जम्बुदीपं व सागरो ॥२६८॥

[हे विदेह-नरेश ! मैंने उनका अर्थ अपने अर्थ से, हे क्षत्रिय ! मैंने उनकी मन्त्रणा अपनी मन्त्रणा से और उनके राजा भी ऐसे घेर लिये जैसे समुद्र ने जम्बुद्वीप को घेर रखा है ।।२६८।।]

यह सुन राजा सन्तुष्ट हुआ। तब पण्डित ने चूळनी राजा द्वारा दी गई भेंट के बारे में कहा—

दिन्नं निक्खसहस्सं मे गामासीति च कासिसु
दासी सतानि चत्तारि दिन्नं भरियासतञ्च मे,
सब्बं सेनमादाय सोत्थिनम्हि इधागतो ।।२६९।।

[मुझे हजार निकष दिये, काशी जनपद के सौ गाँव दिये, चार सौ दासियाँ दीं और सौ भार्य्यायें दीं। मैं सारी सेना लेकर सकुशल यहाँ आपहुंचा ।।२६९।।]

तब राजा अत्यन्त सन्तुष्ट और प्रसन्न हुआ और उसने बोधिसत्व की प्रशंसा करते हुए वही उल्लास-वाक्य कहा—

सुसुखं वत संवासो पण्डितेहीति सेनक
पक्खीव पञ्जरे बद्धे मच्छे जालगतेरिव,
अमित्तहत्थत्थगते मोचयीनो महोसधो ।।२७०।।

[हे सेनक ! पण्डितों के साथ रहना बड़ा सुखद है, पिंजरे में बन्द पक्षी के समान और जाल में फंसी मछली के समान हमें महोषध ने शत्रु के हाथ से मुक्त किया ।।२७०।।]

सेनक ने भी उसका कथन स्वीकार किया, वही गाथा कही—

एवमेतं महाराज पण्डिताहि सुखावहा,
पक्खीव पञ्जरे बद्धे मच्छे जालगतेरिव,
अमित्तहत्थत्थगते मोचयीनो महोसधो ।।२७१।।

[महाराज ! यह ऐसा ही है। पण्डित सुखदायक होते ही हैं। पिञ्जरे में बन्द पक्षी के समान और जाल में फंसी मछली के समान हमें महोषध ने शत्रु के हाथ से मुक्त किया ।।२७१।।]

राजा ने नगर में उत्सव की मुनादी करवा दी। सप्ताह भर उत्सव मनाया जाये। जो जो भी मुझसे स्नेह रखते हों, सभी पण्डित का सत्कार-सम्मान करें। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

आहञ्छन्तु सब्बवीणा भेरियो देण्डिमानि च,
नदन्तु मागधा संखा वग्गु वदतु दुन्दुभि ॥२७२॥

[सभी वीणा, भेरी तथा दण्डिम बजें। मागध शङ्ख नाद करें। सुन्दर दुंदुभी बजें ॥२७२॥]

नगर तथा जनपद के लोग यूँ ही पण्डित का सत्कार करने के इच्छुक थे। उन्होंने मुनादी सुनी तो और भी सत्कार किया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
बहुं अन्नञ्च पाणञ्च पण्डितस्साभिहारयुं ॥२७३॥
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
बहुं अन्नञ्च पाणञ्च पण्डितस्साभिहारयुं ॥२७४॥
समागता जानपदा नेगमा च समागता,
बहुं अन्नञ्च पाणञ्च पण्डितस्साभिहारयुं ॥२७५॥
बहुज्जनो पसन्नोसि दिस्वा पण्डितमागते,
पण्डितम्हि अनुप्पत्ते वेळुक्खेपे अवत्तथ ॥२७६॥

[रनिवास के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण सभी पण्डित के लिये बहुत अन्नपान लाये ॥२७३॥ हाथी-सवार, सैनिक, रथी और पैदल—सभी पण्डित के लिये बहुत अन्न-पान लाये ॥२७४॥ जनपद के लोग भी आये और निगम के लोग भी आये—सभी पण्डित के लिये बहुत अन्न-पान लाये ॥२७५॥ पण्डित को आया देख बहुत जन प्रसन्न हुए। पण्डित के आने पर लोगों ने वस्त्र उछाले ॥२७६॥]

तब बोधिसत्व ने उत्सव की समाप्ति पर राज-भवन पहुँच कर कहा—"महाराज चूळनी राजा की माता, देवी और पुत्र को शीघ्र ही लौटा देना चाहिये।" "तात! भिजवा दो" उसने उन तीनों जनों का महान् सत्कार कर, अपने साथ आई सेना का भी सत्कार-सम्मान करवा, उन तीनों को बड़े ठाट-बाट के साथ अपने आदमियों के संग भेजा। राजा ने जो अपनी सौ स्त्रियाँ तथा चार सौ दासियाँ दी थीं उन्हें नन्दा देवी के साथ भेज दिया। अपने साथ आई सेना भी उनके साथ लौटा दी। वे बड़े ठाट-बाट से उत्तर पञ्चाल नगर पहुँचे। तब राजा ने मां को पूछा—"मां! क्या विदेह-नरेश ने सेवा-सुश्रुषा की।" "तात क्या कहता है, मेरी देवता की तरह

पूजा की, नन्दा देवी को भी माता की तरह पूजा और पञ्चाल चण्ड को छोटा भाई बना कर रखा।" यह सुन राजा अति सन्तुष्ट हुआ और उसने बहुत भेंट भिजवाई। इसके बाद से वे दोनों मिलकर प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे।

महा उम्मग्ग काण्ड समाप्त

पञ्चाल चण्डी राजा की प्रिया थी, मन को अच्छी लगने वाली। दूसरे वर्ष उसने पुत्र को जन्म दिया। इसके दसवें वर्ष विदेह-नरेश मर गया। बोधिसत्व ने उसे छत्र धारण करवा पूछा—'देव! मैं तुम्हारे नाना चूळनी राजा के पास जाता हूँ "पण्डित! मुझे छोटेपन में छोड़कर मत जाओ। मैं तुम्हें पिता मानकर सत्कार करूंगा।" पञ्चाल चण्डी ने भी प्रार्थना की—"पण्डित! तुम्हारे जाने के बाद दूसरा शरण-स्थान नहीं है। मत जायें।" उसने भी सोचा,'मैं राजा को वचन दे चुका हूँ। बिना गये नहीं रह सकता।' लोगों के विलाप करते रहने पर भी वह अपने सेवकों को साथ ले, निकलकर उत्तर पञ्चाल नगर जा पहुँचा। राजा ने उसके आगमन की बात सुनी तो अगवानी कर बड़े सत्कार से नगर में प्रवेश कराया और उसे बड़ा सा घर दिया। किन्तु प्रथम दिये अस्सी गाँवों के अतिरिक्त और कुछ विशेष नहीं दिया। वह उस राजा की सेवा में रहने लगा।

उस समय भेरी नामक परिब्राजिका राज-भवन में भोजन करती थी। वह पण्डिता थी, मेधावी थी, उसने बोधिसत्व को कभी नहीं देखा था। केवल सुना भर था कि महोषध पण्डित राजा की सेवा में रहता है। उसने भी उसे नहीं देखा था। केवल सुना ही था कि भेरी नायक परिब्राजिका राज-भवन में भोजन करती है। नन्दादेवी बोधिसत्व से रुष्ट थी। उसका कहना था कि इसने प्रिय-वियोग कर हमें कष्ट दिया। उसने पाँच राजप्रिय स्त्रियों को आज्ञा दी कि बोधिसत्व पर आरोप लगा उससे राजा का मन खिन्न करने का प्रयत्न करें। वे इसका अवसर देखती हुई घूमती थीं।

एक दिन जब वह परिब्राजिका खाकर जा रही थी उसने राजाङ्गण में बोधिसत्व को राजा की 'सेवा' में आते देखा। वह उसे नमस्कार कर खड़ी हुई। उसने सोचा, "यह 'पण्डित' है। 'मैं इसकी परीक्षा करूंगी कि यह 'पण्डित' है अथवा 'अपण्डित'?" उसने हाथ-मुद्रा से प्रश्न पूछते हुए बोधिसत्व को देख हाथ पसारा। उसने प्रश्न किया—"पण्डित! परदेश से मँगवाकर अब तुम्हारी राजा सेवा करता है या नहीं करता है? बात क्या है?" बोधिसत्व ने समझ लिया कि हाथ-मुद्रा से प्रश्न पूछ

रही है। उसने प्रश्न का उत्तर देते हुए मुट्ठी बन्द की। उसने मन से प्रश्न का उत्तर दिया—"आर्ये! मुझसे वचन ले, मुझे बुलवा, अब राजा ने मुट्ठी बाँध ली। अब मुझे विशेष कुछ नहीं देता।" उसने उसकी बात सुन, हाथ उठाकर सिर पर रखा। इसका भावार्थ था—पण्डित! यदि कष्ट है तो मेरी ही तरह प्रव्रजित क्यों नहीं हो जाता? यह जान बोधिसत्व ने अपने पेट को स्पर्श किया। इसका भावार्थ था—'आर्ये! मुझे अनेकों का पालन-पोषण करना है, इसीसे प्रव्रजित नहीं होता।" इस प्रकार वह हाथ-मुद्रा से प्रश्न पूछ अपने निवास-स्थान को चली गई।

बोधिसत्व भी उसे नमस्कार कर राज-सेवा में पहुँचा। नन्दा देवी द्वारा नियुक्त राज-प्रिय स्त्रियों ने खिड़की में से उनकी वह क्रिया देख चूळनी राजा के पास जा शिकायत की 'देव! महोषध भेरी परिव्राजिका के साथ मिलकर तुम्हारा राज्य लेना चाहता है। वह तुम्हारा शत्रु हो गया है।' राजा ने पूछा—"तुमने क्या देखा, सुना?' 'महाराज! परिव्राजिका ने भोजनानन्तर उतरते समय महोषध को देख हाथ फैलाकर प्रश्न किया—"राजा को हाथ की हथेली की तरह या खलिहान की तरह बराबर करके क्या तू उसका राज्य नहीं ले सकता?" बोधिसत्व ने भी तलवार पकड़ने की तरह मुट्ठी बन्द कर उत्तर दिया—'कुछ दिनों के बाद इसका सिर काटकर राज्य अपने हाथ में ले लूंगा।' उसने अपना हाथ सिर पर रखा कि सिर ही काटना। बोधिसत्व ने पेट पर हाथ रखा कि उसे बीच से काटूंगा। महाराज अप्रमादी हों। महोषध को मरवा डालना योग्य है।"

उसने उनकी बात सुन सोचा—"पण्डित मुझसे द्वेष नहीं कर सकता। मैं परिव्राजिका से पूछूंगा।" अगले दिन परिव्राजिका के भोजन के समय उसने पास जाकर पूछा—"आर्ये! क्या महोषध पण्डित को देखा है?"

"हाँ महाराज! कल भोजन करके यहाँ से जाते समय देखा है?"

"कोई बातचीत हुई?"

"बाचचीत नहीं हुई।"

"यह सुन कि यह पण्डित है और यह सोच कि यदि पण्डित होगा तो समझ जायगा मैंने हाथ पसार कर हस्त-मुद्रा से उससे प्रश्न पूछा कि क्या राजा का हाथ तेरे लिये खुला है अथवा मुट्ठी बन्द है। क्या वह तुझे चीजें देता है वा नहीं देता है? पण्डित ने मुट्ठी बन्द की कि राजा ने मुझसे वचन ले, बुला अब हाथ संकुचित कर लिया है। कुछ नहीं देता। तब मैंने सिर को हाथ लगाया कि यदि कष्ट है तो मेरी तरह

प्रव्रजित हो जा। उसने पेट को हाथ लगाया कि मुझे बहुत जनों का पालन-पोषण करना है, बहुत जनों के पेट भरने हैं, इसलिये प्रव्रजित नहीं हो सकता।"

"आर्ये! महोषध पण्डित है।"

"हाँ महाराज! पृथ्वी भर में उसके समान कोई नहीं है।"

राजा ने उसकी बात सुन, उसे नमस्कार कर बिदा किया। उसके चले जाने पर पण्डित से प्रवेश किया। उसने उससे भी पूछा—"पण्डित! क्या तूने मेरी परिव्राजिका देखी?"

"हाँ महाराज! कल यहाँ से निकलते समय दिखाई दी। उसने हाथ मुद्रासे मुझसे प्रश्न पूछा। मैंने भी मे वैसे ही उत्तर दिया।" जैसा उसने कहा था वैसा ही कहा।

राजा ने उस दिन प्रसन्न हो पण्डित को सेनापति बना दिया। सारे काम उसे ही सौंप दिये। वह बहुत ऐश्वर्य-शाली हो गया। केवल राजा ही उससे अधिक ऐश्वर्य-शाली था। राजा ने एक बारगी ही मुझे इतना अधिक ऐश्वर्य-शाली बना दिया है। राजा लोग कभी-कभी मरवा डालने की नीयत से भी ऐसा करते हैं। मैं इसकी परीक्षा करूँ कि वह मेरा सुहृदय है अथवा नहीं? और कोई पता नहीं लगा सकता। मेरी परिव्राजिका ज्ञानी है। वह किसी उपाय से पता लगायेगी। वह बहुत सी सुगन्धी तथा माला आदि ले परिव्राजिका के निवास स्थान पर पहुँचा और उसे प्रणाम कर तथा उसकी पूजा कर कहा—"आर्ये! जिस दिन से तुमने राजा से मेरे गुण का वर्णन किया उस दिन से राजा मुझे अत्यधिक ऐश्वर्य्य दे रहा है। मैं नहीं जानता कि यह वह स्वाभाविक रूप से दे रहा है अथवा अस्वाभाविक रूप से? अच्छा होगा यदि किसी उपाय से यह पता लगायें कि राजा का मेरे प्रति क्या भाव है?

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और अगले दिन राज-भवन जाते-जाते ही जल-राक्षस के प्रश्नों का विचार किया। उसने सोचा—गुप्तचर की भांति, ढँग से, राजा से प्रश्न पूछकर पता लगाऊँगी कि वह पण्डित का सुहृदय है अथवा नहीं है? वह गई और भोजनान्तर बैठी। राजा भी उसे प्रणाम कर एक ओर बैठा। उसने सोचा, यदि पण्डित के प्रति राजा की दुर्भावना होगी तो वह प्रश्न पूछने पर उसे लोगों के सामने ही व्यक्त कर देगा जो ठीक नहीं होगा। मैं उसे एकान्त में

प्रश्न पूछूँगी। उसने कहा—"महाराज! मैं एकान्त चाहती हूँ।" राजा ने आदमियों को चले जाने को कहा। वह बोली—"महाराज! आपसे प्रश्न पूछूँगी?" "आर्ये! पूछ। जानता होऊँगा तो उत्तर दूँगा।" उसने जल-राक्षस के प्रश्नों की पहली गाथा कही—

सचे वो वुटहमानानं सत्तन्नं उदकण्णवे
मनुस्स बलिमेसानो नावं गण्हेय्य रक्खसो,
अनुपुब्बं कथं दत्वा मुञ्चेसि दकरक्खिनो ॥२७७॥

[यदि गम्भीर समुद्र में सात जनों (माता, नन्दादेवी, तीक्षण-मन्त्री कुमार (भाई), धनुमेखर मित्र, पुरोहित, महोषध तथा आप) की नौका को मनुष्य-बलि का इच्छुक राक्षस पकड़ ले, तो आप किस क्रम से इनकी भेंट देकर अपने आपको मुक्त करायेंगे ॥२७७॥]

यह सुन राजा ने अपना विचार व्यक्त करते हुए यह गाथा कही—

मातरं पठमं दज्जं भरियं दत्वान भातरं
ततो सहायं दत्वान पञ्चमं दज्जं ब्राह्मणं,
छट्ठा हंदज्जमत्तानं नेव दज्जं महोसधं ॥२७८॥

[सबसे पहले मैं मां की 'बलि' दूँगा, तब भार्य्या की, तब भाई की, तब मित्र की और पाञ्चवें नम्बर पर ब्राह्मण की और छठे नम्बर पर मैं अपनी 'बलि' दूँगा। महोषध की 'बलि' दूँगा ही नहीं ॥२७८॥]

इतने से यह प्रश्न समाप्त हो गया। परिब्राजिका ने जान लिया कि राजा के मन में महोषध के प्रति सुहृद भाव है। किन्तु इतने भर से पण्डित का गुण प्रसिद्ध नहीं होगा। तब उसने सोचा—मैं जनता के बीच इनका गुणगान करूँगी। राजा इनके अवगुण सुन पण्डित के गुण कहेगा। इस प्रकार पण्डित का गुण आकाश में चन्द्रमा के समान प्रकट हो जायगा। उसने अन्त:पुर के सभी लोगों को इकट्ठा करवाया और आरम्भ से फिर राजा से वही प्रश्न पूछा। राजा ने वही उत्तर दिया। तब उसने 'महाराज'! आप कहते हैं कि मैं सर्व-प्रथम माता को ही राक्षस को सौंपूंगां। माता का तो बड़ा गुण है। आपकी माता भी औरों की माता जैसी नहीं है। इसका आप पर बड़ा उपकार है' कहते हुए उसने दो गाथायें कहीं—

पोसेता ते जनेन्ती च दीघरत्तानुकम्पिका,
छम्भी तयि पदुट्ठस्मिं पण्डिता अत्थदस्सिनी,
अञ्ञं उपमिसं कत्वा वधा तं परिमोचयि ॥२७९॥
तं तादिसं पाणदादिं ओरसं गब्भधारिणिं,
मातरं केन दोसेन दज्जासि दकरक्खनो ॥२८०॥

[यह तेरा पोषण करने वाली है, तुझे जन्म देने वाली है, दीर्घकाल तक तुझ पर अनुकम्पा करती रही है। जब इसने देखा कि छम्भी (ब्राह्मण) के मन में तेरे प्रति द्वेष है, तो इस बुद्धिमती ने अन्य उपाय करके तुझे बध से बचा लिया ॥२७९॥

तू इस प्राणयदायनी, छाती से लगाकर रखने वाली, गर्भ में धारण करने वाली मां को उसके किस अपराध के कारण राक्षस को सौंपने देगा ॥२८०॥]

यह सुन राजा ने 'आर्ये! मेरी मां में बहुत गुण है। मैं यह भी जानता हूँ कि इसका मुझ पर बड़ा उपकार है। तो भी मेरे ही गुण अधिक हैं' कह, माता के अवगुण कहते हुए दो गाथायें कहीं—

दहरा विय अलंकारं धारेति अपिलन्धनं,
दोवारिके अनीकट्ठे अतिवेलं पजग्घति ॥२८१॥
ततोपि पटिराजानं सयं दूतानि सासति,
मातरं तेन दोसेन दज्जाहं दकरक्खिनो ॥२८२॥

[तरुणियों की तरह न धारण करने योग्य गहनों को धारण करती है। द्वार-पालों तथा सैनिकों के साथ देर तक हँसी-मजाक करती रहती है ॥२८१॥ फिर विरोधी राजाओं के पास अपने आप दूत भेजती रहती है। मैं माता के इसी दोष से उसे जल-राक्षस को दे दूँगा ॥२८२॥]

'अच्छा महाराज! माँ को तो आप इस अपराध के कारण राक्षस को सौंप दें, किन्तु आपकी भार्य्या तो गुणवती है, कह, गाथायें कहीं—

इत्थि गुम्बस्स पवरा अच्चन्तपियवादिनी,
अनुग्गता सीलवती छायाव अनपायिनी ॥२८३॥
अक्कोधना पञ्ञवती पण्डिता अत्थदस्सिनी,
उब्बरिं केन दोसेन दज्जासि दकरक्खिनो ॥२८४॥

[स्त्रियों में श्रेष्ठ, अत्यन्त-प्रियवादनी, अनुगामनी, सदाचारिणी, छाया की भान्ति पीछे-पीछे चलने वाली, क्रोध-रहति, प्रज्ञावान, पण्डिता तथा अर्थदर्शी (अपनी) भार्य्या किस अपराध के कारण राक्षस को (सौंप) देगा ? ।।२८३—२८४।।

उसने उसके अवगुण कहे—

खिड्डारतिसमापन्नं अनत्थवसमागतं,
सा मं सकानं पुत्तानं अयाचं याचते धनं ।।२८५।।
सोहं ददामि सारत्तो लहुं उच्चावचं धनं
सुदुच्चजं चजित्वान पच्छा सोचामि दुम्मनो,
उब्बरिं तेन दोसेन दज्जामि दकरक्खिनो ।।२८६।।

[काम-क्रीड़ा मे अनुरक्त तथा अनर्थकारी वासना के वशीभूत हुआ जान वह मुझे अपने पुत्र-पुत्रियों को दिये गये, न माँगने योग्य गहनों की याचना करती है ।।२८३।। राग के वशीभूत हुआ मै छोटी-बड़ी चीजें दे देता हूँ। न देने योग्य चीज़ों को देकर पीछे पछताता हूँ। मै अपनी भार्य्या को इसी दोष के कारण उसे जल-राक्षस को सौप दूँगा ।।२८६।।]

तब परिव्राजिका ने प्रश्न किया—'इसे तो इस दोष के कारण (राक्षस को) सौंपेगा, किन्तु तीक्षण-मन्त्रीकुमार नामका जो तेरा छोटा भाई है उसे किस दोष के कारण (राक्षस को) सौप देगा ?' उसने गाथा कही—

येनोचिता जानपदा आनीता च पटिग्गहं,
आभतं पररज्जेहि अभिट्ठाय बहुं धनं ।।२८७।।
धनुग्गहानं पवरं सूरं तिखिणमन्तीनं,
मातरं केन दोसेन दज्जासि दकरक्खिनो ।।२८८।।

[जिसने जनपद की अभिवृद्धि की और जो तुम्हें परदेस से अपने घर लौटा लाया और जिसने दूसरे राज्यों को अभिभूत कर बहुत धन प्राप्त किया उस धनुर्धाररियों में श्रेष्ठ शूर-वीर तीक्ष्ण-मन्त्री भाई को किस अपराध के कारण (जल-राक्षस को) सौंप देगा ? ।।२८७-२८८।।]

राजा ने उसका दोष कहा—

मयोचिता जानपदा आनीता च पटिग्गहं,
आभतं पररज्जेहि अभिट्ठाय बहुं धनं ।।२८९।।

धनुग्गहानं पवरो सूरो तिखिणमन्ति च,
मयायं सुखितो राजा अतिमञ्ञति दारको ॥२९०॥
उपट्ठानम्पि मे अय्ये न सो एति यथा पुरे,
भातरं तेन दोसेन दज्जाहं दकरक्खिनो ॥२९१॥

['मैंने जनपदों की अभिवृद्धि की और परदेस से घर लौटा लाया और दूसरे राज्यों को अभिभूत कर बहुत धन लाया । मैं धनुर्धारियों में श्रेष्ठ हूँ । शूर हूँ । मैं तीक्ष्ण-मन्त्री हूँ । मैंने ही इस राजा को सुखी किया है' सोच यह लड़का मेरी उपेक्षा करता है । अब यह पहले की तरह भेंट करने भी नहीं आता । इसी दोष के कारण मैं भाई को (जल-राक्षस को) सौंप दूंगा ॥२८९-२९१॥]

परिब्राजिका ने 'अच्छा' तुम्हारा भाई भी सदोष हो सकता है । किन्तु यह धनुशेखर कुमार तो तुम्हारा बड़ा स्नेही तथा उपकारी है' कह उसका गुण कहते हुए गाथायें कहीं—

एकरत्तेन उभयो तुवञ्च धनुसेख वा,
उभो जातेत्थ पञ्चाला सहाया सुसमावया ॥२९२॥
चरिया तं अनुबन्धित्थो एकदुक्खसुखो तव
उस्सुक्को ते दिवारत्तिं सब्बकिच्चेसु ब्यावटो,
सहायं केन दोसेन दज्जासि दकरक्खिनो ॥२९३॥

[तुम और धनुशेखर कुमार दोनों का जन्म एक ही समय हुआ । दोनों पञ्चाल हैं । दोनों मित्र हैं । दोनों समवयसक हैं । वह तुम्हारे पीछे चलने वाला है । तुम्हारे दुख में दुखी और तुम्हारे सुख में सुखी है । वह तुम्हारे सभी काम करने के लिए दिनरात उत्सुक रहता है । तुम किस कारण ऐसे मित्र को (जल-राक्षस को) सौंप दोगे ॥२९२-२९३॥]

राजा ने उसका दोष कहा—

चरियाय अयं अय्ये पजग्घित्थो मया सह,
अज्जापि तेन वण्णेन अतिवेलं पजग्घति ॥२९४॥
उब्बरियापि मे अय्ये मन्तयामि रहोगतो,
अनामन्ता परिसति पुब्बे अप्पटिवेदिनो ॥२९५॥
लद्धवारो कतोकासो अहिरिकं अनादरं,
सहायं तेन दोसेन दज्जाहं दकरक्खिनो ॥२९६॥

[आर्ये ! यह पहले मेरे साथ हंसी-मजाक करता रहा है। आज भी उसी तरह चिरकाल तक हंसी-मजाक करता है। मैं जब एकान्त में अपनी भार्य्या से भी बातचीत करता होता हूँ तो भी यह बिना पूर्व सूचना दिये घुस आता है। इस कारण मैं अवसर आने पर, बारी आने पर, उस आदर न करने वाले निर्लज्ज मित्र को (जल-राक्षस को) सौंप दूंगा ॥२९४-२९६॥]

परिव्राजिका बोली—अच्छा,इसका भी यह दोष है। पुरोहित तो तेरा बहुत उपकारी है। उसने उसके गुण कहे—

कुसलो सब्बनिमित्तानं रुदञ्ञु आगतागमो,
उप्पादे सुपिने युत्तो निय्याणे च पवेसने ॥२९६॥
पद्धो भुम्मन्तलिक्खस्मिं नक्खत्तपदकोविदो,
ब्राह्मणं केन दोसेन दज्जासि दकरक्खिनो ॥२९८॥

[सब लक्षणों का ज्ञाता है, सभी (जानवरों की) भाषा जानता है, सब शास्त्रों का ज्ञाता है, सभी उत्पातों तथा स्वप्नों का भाष्य-कर्त्ता है, सभी बाहर-जाने तथा बाहर से आने के नक्षत्रों से परिचित है, पृथ्वी तथा आकाश के सभी दोषों से परिचित है, सभी नक्षत्रों से सुपरिचित है—ऐसे ब्राह्मण को तू किस अपराध के कारण जल-राक्षस को सौंप देगा ? ॥२९७-२९८॥]

राजा ने दोष कहा—

परिसायम्पि मे अय्ये मीलयित्वा उदिक्खति,
तस्मा अज्ज भमुं लुद्दं दज्जाहं दगरक्खिनो ॥२९९॥

[यह परिषद के बीच में भी मेरी ओर क्रुद्ध की भांति आंखे फाड़ फाड़कर देखता है। इसलिए आज मैं इस स्थिर भौं वाले भयानक शक्ल वाले ब्राह्मण को (जल-राक्षस को) सौंप दूंगा ॥२९९॥]

तब परिव्राजिका ने 'महाराज ! अपने माता से आरम्भ करके इन पाँचों जनों को कहा कि मैं जल-राक्षस को दे दूंगा। और यह भी कहा कि इस प्रकार की श्री तथा ऐश्वर्य्य की चिन्ता न कर यह जीवन भी महोषध पण्डित के लिए बलिदान कर दूंगा। उसमें ऐसा क्या गुण है ?' पूछते हुए ये गाथायें कहीं—

ससमुद्दपरियायं महिं सागरकुण्डलं,
वसुन्धरं आवससि अमच्चपरिवारितो ॥३००॥

चातुरन्तो महारट्ठो विजितावी महब्बलो,
पथव्या एकराजासि यसो ते विपुलंगतो ॥३०१॥
सोळसित्थिसहस्सानि आमुत्त मणिकुण्डला,
नाना जनपदा नरियो देवकञ्ञूपमा सुभा ॥३०२॥
एवं सब्बंगसम्पन्नं सब्बकामसमिद्धिनं,
सुखितानं पियं दीघं जीवितं आहु खत्तिय ॥३०३॥
अथ त्वं केन वण्णेन केन वा पन हेतुना,
पण्डितं अनुरक्खन्तो पाणं चजसि दुच्चजं ॥३०४॥

[सागर से घिरी हुई पृथ्वी पर तू अमात्यों से घिरा हुआ राज्य करता है। तेरा राष्ट्र चारों दिशाओं में फैला है। तू विजयी है। तू महाबलवान है। तू पृथ्वी का एक राजा है। तेरा ऐश्वर्य्य महान् है। मोतियों, मणियों तथा कुण्डलों से लड़ी सोलह हजार स्त्रियां है, जो नाना जनपदों से आई हें नारियाँ हैं, जो सुन्दर हैं तथा जो देव-कन्याओं के समान हैं। हे क्षत्रिय! जो सर्वाङ्ग सम्पूर्ण होते हैं, जो हर तरह से स्मृद्ध होते है तथा जो सुखी होते हैं उन्हें जीवन'प्रिय' कहा गया है। तो फिर तू किस कारण से अथवा किस हेतु से पण्डित को बचाने के लिए अपने दुष्त्याज्य प्राणों का त्याग करता है ॥३००-३०४॥]

उसने उसकी बात सुन, पण्डित का गुणानुवाद करते हुए ये गाथायें कहीं—

यतोपि आगतो अय्ये मम हत्थं महोसधो,
नाभिजानामि धीरस्स अनुमत्तम्पि दुक्कतं ॥३०५॥
सचे च किस्मिचि काले मरणं मे पुरे सिया,
पुत्तेच मे पपुत्तेच सुखापेय्य महोसधो ॥३०६॥
अनागतं पच्चुप्पन्नं सब्बमत्थं विपस्सति,
अनापराधकम्मन्तं न दज्जं दकरक्खिनो ॥३०७॥

[आर्ये! जब से भी महोषध मेरे हाथ आया है, तब से मैंने इस पण्डित का एक भी दोष नहीं देखा। यदि किसी समय में इससे पहले मर जाऊं तो महोषध पण्डित मेरे पुत्रों तथा प्रपुत्रों को सुख पहुंचावेगा। यह अनागत और वर्तमान सभी बातों का ध्यान रखता है। इस निरपराध को मैं जल-राक्षस को नहीं सौंपूंगा ॥३०५-३०७॥]

इस प्रकार यह जातक कथा समाप्त होने जा रही है। तब परिव्राजिका ने सोचा—इतने से भी पण्डित के गुणों की प्रसिद्धि नहीं होगी। सारे नगर-निवासियों

के बीच, सागर के ऊपर सुगंन्धित जल छिड़कने के समान उन्हें प्रकट करूंगी। वह राजा को लिए प्रासाद से नीचे उतरी और राजाङ्गन में आसन बिछा, उस पर बैठ, उसने नागरिकों को इकट्ठा करवाया। फिर उसने राजा को आरम्भ से जल-राक्षस प्रश्न पूछे और उसके भी उक्त प्रकार से ही उत्तर देने पर नागरिकों को सम्बोधित कर कहा—

इदं सुणोथ पञ्चाला चूळनीयस्स भासितं,
पण्डितं अनुरक्खन्तो पाणं चजति दुच्चजं ॥३०८॥
मातु भरियाय भातुच्च सखिनो ब्राह्मणस्स च,
अत्तनोचापि पञ्चालो छन्नं चजति जीवितं ॥३०९॥
एवं महत्थिका पञ्ञा निपुणा साधुचिन्तनी,
दिट्ठधम्मे हितत्थाय सम्पराये सुखाय च ॥३१०॥

[हे पञ्चाल नागरिको! चूळनी के इस अभिभाषण को सुनो। यह पण्डित को बचाने के लिये अपने दुष्त्याज्य प्राणों का त्याग कर रहा है। इस प्रकार यह प्रज्ञा महान् अर्थों के सिद्ध करने वाली है, समर्थ है और कल्याणकारिणी है। यह इस लोक में हितकर होती है और परलोक में भी सुख देती है ॥३०८-३१०॥]

इस प्रकार रतन-गृह पर मणि का शिखर रखने के समान उसने बोधिसत्व के गुण कह देशना को समाप्त किया।

जल-राक्षस-प्रश्न समाप्त

महाउम्मग्ग का सम्पूर्ण वर्णन समाप्त

जातक-समोधान इस प्रकार है—

भेरी उप्पलवण्णासि पिता सुद्धोदनो अहू,
माता आसि महामाया अमरा बिम्ब सुन्दरी ॥३११॥
सुवो अहोसि आनन्दो सारिपुत्तोसि चूळनी,
महोसधो लोकनाथो एवं धारेथ जातकं ॥३१२॥

[भेरी उत्पलवर्णा थी, पिता शुद्धोदन थे, माता महामाया थी, अमरा देवी बिम्बसुन्दरी थी ॥३११॥ तोता आनन्द था, सारिपुत्र चूळनी था, और महोषध तो लोक-नाथ (बुद्ध) ही थे— इस प्रकार इस जातक को समझना चाहिये ॥३१२॥]

५४७. महावेस्सन्तर जातक

"फुसनीवरवण्णाभे. . ." यह शास्ता ने कपिलवस्तु के आश्रय निग्रोधाराम में वास करते समय 'कमल-वर्षा' के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जब शास्ता धर्म-चक्र प्रवर्तन कर चुकने के बाद क्रमशः राजगृह पहुंचे और वहाँ हेमन्त ऋतु गुजार कर मार्ग-दर्शक उदासी स्थविर के पीछे-पीछे बीस हजार क्षीणास्रवों के साथ पहली बार कपिल वस्तु गये, तब शाक्य राजाओं ने सोचा— "हम अपने जाति-श्रेष्ठ को देखेंगे।" उन्होंने इकट्ठे हो भगवान् के लिए उपयुक्त निवास-स्थान का विचार किया। उन्होंने निश्चय किया कि निग्रोध शाक्य का आराम रमणीय है। वहाँ उन्होंने हर तरह की व्यवस्था कर, गन्ध-पुष्पादि हाथ में ले, अगवानी करते हुए, सभी अलङ्कारों से अलङ्कृत, नगर के बच्चों तथा बच्चियों को पहले भेजा। उसके बाद राजकुमारों तथा राजकुमारियों को। उनके बाद गन्ध-पुष्प-चूर्णादि स्वयं ले, शास्ता की पूजा करते हुए, भगवान् के लिए ले जा, निग्रोध-आराम पहुंचे। वहाँ भगवान् बीस हजार क्षीणास्रवों से घिरे बिछे श्रेष्ठ बुद्धासन पर बैठे थे। शाक्य लोग बड़ा मान करने वाले थे, अभिमानी थे। उन्होंने यह सोच कि सिद्धार्थ कुमार हम से छोटा है, हम से कनिष्ठ है भानजा है पुत्र है, नाती है, छोटे छोटे राजकुमारों को कहा—"तुम नमस्कार करना। हम तुम्हारी पीठ पीछे बैठे रहेंगे।" जब वे बिना नमस्कार किये, इस प्रकार बैठ गये तो भगवान् ने उनका आशय समझ सोचा—'मेरे सम्बन्धी मुझे नमस्कार नहीं करते हैं। अच्छा उनसे नमस्कार कराता हूँ।" भगवान् ने अभिज्ञा-पक्षीय ध्यान लगाया और उठकर आकाश में जा पहुंचे। फिर उनके सिर पर धूल बिखेरते हुए से होकर, गण्डम्ब वृक्ष मूल में,यमक-प्रातिहारि सदृश प्रतिहारि दिखाई। राजा ने उस आश्चर्य्य को देखा तो बोला—"भन्ते! जब तुम्हारा जन्म हुआ था तब तुम्हें काल देवल को नमस्कार कराने के लिए ले जाया गया। तुम्हारे पाँव

उलट कर ब्राह्मण के सिर जा लगे। यह देख मैंने तुम्हारी वन्दना की थी। यह मेरी पहली वन्दना थी। बोने के मङ्गल दिन जम्बु-वृक्ष के नीचे शैय्या पर बैठे रहने के समय जब वृक्ष की छाया को उसी जगह खड़े देखा तो भी मैंने तुम्हारे चरणों की वन्दना की। यह मेरी दूसरी वन्दना है। अब इससे पहले न देखी गई यह प्रातिहारि देखकर भी तुम्हारे चरणों की वन्दना करता हूँ। यह मेरा तीसरी बार नमस्कार है। जब राजा ने नमस्कार किया तो एक शाक्य भी नहीं बचा जो बिना नमस्कार किये रह सके। सभी ने वन्दना की। इस प्रकार जब भगवान् सम्बन्धी-गणों से नमस्कार करवा चुके तो आकाश से उतर आसन पर बैठे। भगवान् के बैठते ही सभी रिश्तेदार समाहित हो गये। वे सब एकाग्र-चित्त होकर बैठ गये। तब महा-मेघ उठा और कमल-वर्षा हुई। ताम्र-वर्ण जल नीचे आवाज करता जाता था। जो भीगना चाहते थे वे भीगते थे; जो भीगना नहीं चाहते थे उनके शरीर पर बूंद मात्र भी नहीं गिरती थी। यह देख सभी को आश्चर्य्य हुआ। सभी कहने लगे—"अहो! अद्भुत है! अहो! बुद्धों का प्रताप! जिनके सम्बन्धियों के समागम में इस प्रकार की कमल वर्षा होती है।" यह सुन शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी मेरे रिश्तेदारों के समागम में ऐसी कमल-वर्षा हुई है' कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की गाथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में सिवि राष्ट्र के जेतुत्तर नगर में राज्य करते समय सिवि-नरेश को सञ्जय नाम के पुत्र का लाभ हुआ। उसने उसके आयु-प्राप्त होने पर फुसति नाम की मद्र-राज-कन्या को लाकर, सञ्जय को राज्य सौंप, उसे पटरानी बनाया। यह उसकी पूर्व कथा है—

अब से इकानवे वर्ष पूर्व विपश्यी नामक शास्ता लोक में उत्पन्न हुए। जिस समय वह बन्धुमती नगर के आश्रय से कल्याणकर मृगदाय में विहार कर रहे थे, एक राजा ने बन्धुम राजा के पास अनर्घ चन्दनसार के साथ लाख के मूल्य की स्वर्ण-माला भेजी। राजा की दो लड़कियाँ थीं। उसने उन दोनों को भेंट देने की इच्छा से बड़ी लड़की को चन्दनसार दे दिया और छोटी लड़की को स्वर्ण-माला दे दी। उन दोनों ने सोचा कि इन्हें हम अपने शरीर पर धारण न कर इनसे शास्ता की ही पूजा करेंगे। उन्होंने राजा से पूछा—'तात! हम चन्दनसार तथा स्वर्ण-माला से दशबलधारी

की पूजा करेंगी।" राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। ज्येष्ठ लड़की ने चन्दन को बारीक पिसवाया और स्वर्ण-पेटी भरवा कर लिवा चली। छोटी बहन ने स्वर्ण-माला को गले की माला बनवाया और सोने की पिटारी में रख लिवा चली। वे दोनों मृगदाय में विहार में पहुंची। ज्येष्ठ लड़की ने चन्दन-चूर्ण से दशबल के स्वर्ण-वर्ण शरीर की पूजा कर और शेष चूर्ण गन्धकुटी में बिखेर कर प्रार्थना की—"भन्ते! मैं भविष्य में तुम्हारे सदृश बुद्ध की माता बनूं।" छोटी लड़की ने तथागत के स्वर्ण-वर्ण शरीर की स्वर्ण-माला की छाप से पूजाकर प्रार्थना की—"भन्ते! जब तक अर्हत्व लाभ न हो तब तक यह अलङ्कार इस शरीर से पृथक् न हो।" शास्ता ने उनका अनुमोदन किया। तक दोनों आयु-पर्य्यन्त जी कर देवलोक में उत्पन्न हुई। उनमें से बड़ी बहन इकानवे कल्प से देव-लोक से मनुष्य-लोक और मनुष्य-लोक से देव-लोक में जन्म ग्रहण करती रही और अन्त में इकानवे कल्पों के समाप्त होने पर बुद्ध-माता महामाया देवी हुई। छोटी बहन भी उसी प्रकार जन्म ग्रहण करती हुई काश्यप बुद्ध के समय किसी राज की लड़की होकर उत्पन्न हुई। छाती पर चित्रित माला के समान अलङ्कृत छाती लिये पैदा होने से उसका नाम उरच्छद कुमारी ही पड़ा। सोलह वर्ष की आयु होने पर शास्ता का दानानुमोदन सुन स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुई। आगे चलकर दानानुमोदन सुनते समय ही जब पिता स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ, उसी दिन वह अर्हत्व को प्राप्त हो, प्रव्रजित होकर परिनिर्वाण को प्राप्त हुई। किकी राजा को भी और सात लड़कियाँ हुई। उन के नाम हैं—

समणी समणगुत्ता च भिक्खुणी भिक्खदायिका,
धम्मा चेव सुधम्मा च संघदासी च सत्तिमा ॥१॥

[समणी, समणगुप्ता, भिक्खुणी, भिक्खदायिका, धम्मा, सुधम्मा तथा सातवीं सङ्घदासी थी ॥१॥]

इस बुद्ध युग में वे हुई—

खेमा उप्पलवण्णा च पटाचारा च गोतमी,
धम्मदिन्ना महामाया विसाखा चाति सत्तिमा ॥२॥

[खेमा, उत्पल वर्णा, पटाचारा, गोतमी, धम्म-दिन्ना, महामाया सातवीं विशाखा हुई ॥२॥]

उनमें से 'फुसती' सुधर्मा नाम धारिणी हुई। उसने दानादि पुण्य-कर्म किये और विपश्यी नामक सम्यक् सम्बुद्ध की जो चन्दन चूर्ण से पूजा की थी उसके फल से

लाल चन्दन से रंजित शरीर सदृश हो वह देव-लोक तथा मनुष्य लोक में जन्म ग्रहण करती हुई आगे चलकर शक्र देवराज की पटरानी होकर पैदा हुई। जब वहाँ उसकी आयु पूरी हो गई और पाँचों पूर्व-निमित्त प्रकट हुए तो देवेन्द्र शक्र उसके आयु-क्षय होने की बात जान, उसे भारी ठाट-बाट के साथ नन्दन-वन ले गया। वहाँ वह अलङ्कृत शय्या पर बैठी। शक्र ने स्वयं शैय्या के पास बैठ कहा—"भद्रे फुसती! मैं तुझे दस वर देता हूँ। ग्रहण कर।" यह कहकर उसने इस हजार गाथाओं वाली वेस्सन्तर जातक की पहली गाथा कही—

फुसति वरवण्णाभे वरस्सु दसधा वरे,
पथव्या चारुपुब्बांग यं तुय्हं मनसो पियं ॥३॥

[हे श्रेष्ठ वर्ण धारिणी फुसती! हे पृथ्वी में सुन्दर अङ्गों वाली! तुझे मन से जो अच्छे लगें, ऐसे दस वर मांग ॥३॥]

इस प्रकार महावेस्सन्तर धर्म-देशना देव लोक में प्रतिष्ठित हो गई।

उसने अपने च्युत होने की बात न जान, प्रमाद वश दूसरी गाथा कही—

देवराज नमो त्यत्थु किं पापं पकतं मया,
रम्मा चावेसि मं ठाना वातोव धरणी रुहं ॥४॥

[हे देवराज! तुझे नमस्कार है, मैंने ऐसा कौनसा पापकर्म किया है जिससे तू मुझे इस रमणीक स्थान से वैसे ही गिरा देना चाहता है, जैसे हवा वृक्ष को? ॥४॥]

उसका प्रमाद देख शक्र ने दो गाथायें कही—

न चेव ते कतं पापं न च मे त्वमसि अप्पिया,
पुञ्जञ्च ते परिक्खीणं येन तेवं वदामहं ॥५॥
सन्तिके मरणं तुय्हं विनाभावो भविस्सति,
पतिगण्हाहि मे एते वरे दस पवेच्छतो ॥६॥

[न तो तूने कोई पाप ही किया है और न तू मेरी अप्रिया है। अब तेरा पुण्य समाप्त हो गया है, जिससे मैं ऐसा कहता हूँ ॥५॥ तेरा मरण समीप है, अब तेरा वियोग होगा। इस लिए मैं जो दस 'वर' दे रहा हूँ, वे ले ले ॥६॥]

उसने शक्र की बात सुन, अपना मरण निश्चित जान, वर मांगते हुए कहा—

वरं मे अदो सक्क सब्बभूतानमिस्सर,
सिविराजस्स भद्दन्ते तत्थ अस्सं निवेसने ॥७॥

नीलनेत्ता नीलभमु नीलक्खीच यथाभिगी,
फुसती नाम नामेन तत्थ पस्सं पुरिन्दद ॥८॥
पुत्तं लभेथ वरदं याचयोगं अमच्छरिं,
पूजितं पतिराजेहि कित्तिमन्तं यसस्सिनं ॥९॥
गब्भं मे धारयन्तिया मज्झिमंगं अनुन्नतं,
कुच्छि अनुन्नता अस्स चापं व लिखितं समं ॥१०॥
थना मे नप्पपतेय्युं पलिता नस्सन्तु वासव,
काये रजो न लिप्पेय वज्झञ्चापि पमोचये ॥११॥
मयूरकोञ्चाभिरुदे नारीवरगणायुते,
खुज्जचेला पकाकिण्णे सूतमागधवण्णिते ॥१२॥
चित्रग्गले ग्घुसिते सुरामांसपबोधने,
सिविराजस्स भद्दन्ते तत्थ अस्सं महोसिया ॥१३॥

[हे सब प्राणियों के ईश्वर शक्र ! यदि तू मुझे 'वर' ही देना चाहता है तो यह 'वर' दे कि मैं सिविराज के घर में पटरानी होऊं ॥७॥ मेरी नीली आंखें हों, नीली भौंएं हों, नीले नेत्र हों जैसे मृगी के। और वहाँ भी हे पुरेन्द्र ! मैं 'फुसती' नाम से ही ज्ञात होऊं ॥८॥ मुझे श्रेष्ट वस्तुओं का दाता, दानी, उदार पुत्र मिले जो अन्य राजाओं द्वारा पूजित हो, प्रशंसित हो और यशस्वी हो ॥९॥ जब मैं गर्भ धारण करूं तब मेरी कोख अनुन्नत, मध्यमाकार की ही रहे जैसे समानाकार चित्रित धनुष ॥१०॥ मेरे स्तन लम्बे न हों, हे वासव मेरे सिर के सफेद बाल नष्ट हो जायें, शरीर में बुढापा न आये और मैं प्राण-दण्ड पाये व्यक्ति को भी मुक्त करा सकूं ॥११॥ मैं सिविराज के उस घर में पटरानी बनूं, जहाँ मयूर तथा क्रौञ्चों का नाद होता हो, जहाँ सुन्दर सुन्दर नारियां हों, जो छोटे कर्मचारियोंसे घिरा हो, जहाँ सूत तथा मागध स्तुति करते हों, जहाँ चित्रित खिड़की-दरवाजों की आवाज होती हो और जहाँ 'शराब पीओ, मांस खाओ' कहकर आदमियों को प्रबोधिन किया जाता हो ॥१२-१३॥]

शक्र बोला—

ये ते दस वरा दिन्ना मया सब्बंगसोभने,
सिविराजस्स विजिते सब्बे ते लच्छसी वरे ॥१४॥

इदं वत्वान मघवा देवराजा सुजम्पति,
फुसतिया वरं दत्वा अनुमोदित्थ वासवो ॥१५॥

[हे सर्वाङ्ग शोभिनी ! मैंने जो तुझे ये दस 'वर' दिये हैं ये सभी तुझे सिविराज के राष्ट्र में प्राप्त होंगे ॥१४॥ देवेन्द्र देवराज सुजम्पति ने यह कहकर 'फुसती को 'वर' दिया और वर देकर उसका अनुमोदन किया ॥१५॥]

दसवर गाथा समाप्त

इस प्रकार उन 'वरों' को ग्रहण कर, वहाँ से च्युत हो, वह मद्रराज की पटरानी की कोख में आई। क्योंकि वह पैदा होते ही चन्दन-चूर्ण बिखरे वर्ण जैसा शरीर लेकर पैदा हुई, इसलिये नामकरण के दिन उसका नाम 'फुसती' ही रखा गया। वह बड़े ठाट-बाट से बड़ी होती हुई सोलह वर्ष की होने पर बड़ी रूपवान् हुई। तब उसे सिविराज अपने पुत्र सञ्जय कुमार के लिये ले आये। उन्होंने पुत्र के सिर पर छत्र धारण करा, 'फुसती' को सोलह हजार स्त्रियों में श्रेष्ठ बना पटरानी बना दिया। इसी लिये कहा गया है—

ततो चुता सा फुसती खत्तिये उपपज्जथ,
जेतुत्तरम्हि नगरे सञ्जयेन समागमि ॥१६॥

[वहाँ से च्युत होकर वह 'फुसती' क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न हुई और जेतुत्तर नगर में सञ्जय को प्राप्त हुई ॥१५॥]

वह सञ्जय की प्रिया हुई, मन को अच्छी लगने वाली हुई। तब शक्र ने विचार करते हुए सोचा—"मैंने जो नौ 'वर' फुसती को दिये वे सब पूरे हो गये। एक दसवां पुत्र वाला 'वर' पूरा नहीं हुआ। उसे भी पूरा कराऊंगा।"

उस समय बोधिसत्व का त्र्योत्रिंश-देवलोक में निवास था। उसकी 'आयु' समाप्त हो गई थी। यह जान शक्र ने उसके पास जाकर कहा—"मित्र ! तुझे मनुष्य लोक जाना चाहिये। वहां सिवि राजा की पटरानी फुसती की कोख में प्रवेश करना चाहिये।" शक्र ने उससे तथा अन्य साठ हजार च्युत होने वाले देव-पुत्रों से प्रतिज्ञा कराई तथा अपने स्थान को लौट आया। बोधिसत्व वहाँ से च्युत हो वहीं पैदा हुए। शेष देव-पुत्र भी साठ हजार अमात्यों के घरों में पैदा हुए। बोधिसत्व के कोख में आ जाने पर 'फुसती' को दोहद उत्पन्न हुआ। उसकी इच्छा हुई कि चारों नगर-द्वारों पर, नगर के मध्य में तथा निवास-स्थान के द्वार पर छः दान

शालायें स्थापित करा प्रतिदिन छः लाख का त्याग कर दान दे। राजा ने उसका 'दोहद' सुना तो निमित्त जानने वालों से पूछा। उनका उत्तर था—"महाराज! देवी की कोख में दान की प्रवृत्ति वाला प्राणी आया है। वह दान देने से तृप्त न होगा।" राजा यह सुनकर प्रसन्न हुआ और उसने उक्त प्रकार से ही दान दिये जाने की व्यवस्था कर दी। जबसे बोधिसत्व ने कोख में प्रवेश किया, राजा की 'आय' असीम हो गई। उसके पुण्य के प्रताप से सारे जम्बुद्वीप के राजा गण भेंट भेजने लगे। देवी बड़े ठाट से गर्भ धारण करती रही। दस महीने पूरे होने पर उसने राजा से कहा—नगर देखना चाहती हूं। राजा ने नगर को देव-नगर की तरह सजवाया, देवी को श्रेठ रथ पर चढ़ाया और नगर की प्रदक्षिणा कराई। जब वे वैश्यों की गली के बीच आये तो रानी का 'समय' हो गया। राजा को सूचना दी गई। उसने वैश्यों की गली में ही उसके लिये प्रसूतिका-गृह की व्यवस्था कर दी। उसने वहाँ पुत्र को जन्म दिया। इसी लिये कहा गया है—

दस मासे धारयित्वान करोन्ती पुरपदक्खिणं,
वेस्सानं बीथिया मज्झे जनेसि फुसती ममं ॥१७॥

[दस महीने तक मुझे गर्भ में रख, नगर की प्रदक्षिणा करते समय, वैश्यों की गली में 'फुसती' ने मुझे जन्म दिया ॥१७॥]

बोधिसत्व माता की कोख से शुद्ध रूप में आँख खोले हुए निकले। बाहर निकलते ही माता से कहा—"मां दान दूंगा। कुछ है ?" उसने उसके फैले हाथ पर हजार की थैली रखकर कहा—"तात ! जितना चाहे उतना दान कर।" बोधिसत्व ने उम्मग्ग जातक में, इस जातक में और अन्तिम जन्म में पैदा होते ही बातचीत की है। नाम-करण के दिन वैश्यों की गली में पैदा होने के कारण वेस्सन्तर नाम रखा गया। इसलिए कहा गया—

न मय्हं मत्तिकं नामं नपि पेत्तिकसम्भवं,
जातोम्हि वेस्सवीथियं तस्मा वेस्सन्तरो अहु ॥१८॥

[न मेरा नाम माता पर है और न पिता पर। वैश्य-गली में जन्म होने के कारण 'वेस्सन्तर' नाम हुआ ॥१८॥]

जन्म लेने के दिन ही आकाश में विचरण करने वाली एक हस्थिनी अभिमङ्गल माने जाने वाले एक सर्वश्वेत हाथी-बच्चे को लेकर आई और मङ्गल हस्ती के स्थान

पर रखकर चली गई। बोधिसत्व के 'प्रत्यय' से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम 'प्रत्यय' ही रख दिया गया। राजा ने 'बड़ी लम्बी' आदि दोषों से रहित मधुर-दूध वाली चौसठ दाइयाँ बोधिसत्व के लिए नियुक्त कीं। उसके साथ जन्म ग्रहण करने वाले स'ठ हजार बच्चों के लिए भी दाइयों की व्यवस्था की। वह साठ हजार बच्चों के साथ बड़ी शान से बढ़ने लगा।

राजा ने उसे लाख के मूल्य के बच्चों के गहने मंगवाकर दिये। उसने चार-पाँच वर्ष की आयु होने पर गहने उतार दाइयों को दे दिये और फिर उनके देने पर नहीं लिए। राजा को इसकी सूचना दी गई। राजा ने दूसरे गहने बनवा दिये। बोला—'मेरे पुत्र ने जो दिया ठीक दिया। यह श्रेष्ठ दान ही है।' कुमार ने वह गहने भी दे दिये। बचपन में ही उसने दाइयों को नौ बार गहने दिये। आठ वर्ष की आयु होने पर शैय्या पर पड़ा पड़ा सोचता था—"मैं अपने आपको दान में देना चाहता हूँ। यदि कोई मेरे हृदय की याचना करे तो मैं उसे छाती फाड़ कर, हृदय निकाल कर दे दूं, यदि आंखों की याचना करे तो आंखें उखाड़ कर दे दूं और यदि शरीर की याचना करे तो सारे शरीर से मांस नोंच कर दे दूं।"जब वह इस प्रकार से स्वाभाविक रूप से सरस चिन्तन कर रहा था तो चुरान्नवे नहुत दो लाख योजन मोटी यह पृथ्वी मस्त हाथी की तरह गर्जती हुई कांपी। सुमेरु पर्वत-राज अच्छी तरह सिधाई हुई बेंत की तरह झुककर, नाचता हुआ जेतुत्तरनगर के सामने आ खड़ा हुआ। पृथ्वी की आवाज होने से गरजते हुए देव ने थोड़ी देर के लिए वर्षा की। बिजली चमकी। सागर उबल पड़ा। देवेन्द्र शक्र ने ताली बजाई। महाब्रह्मा ने साधुकार दिया। ब्रह्मलोक तक शोर मच गया। कहा भी गया है—

> यदाहं दारको होमि जातिया अट्ठवस्सीको,
> तदा निसज्ज पासादे दानं दातुं विचिन्तयिं ॥१९॥
> हदयं ददेय्यं चक्खुम्पि मंसम्पि रुधिरम्पि च,
> ददेय्यं कायं सावेत्वा यदि कोचि याचये मं ॥२०॥
> सभावं चिन्तयन्तस्स अकम्पितमसंठितं,
> अकम्पितत्थ पठवी सिनेरुवन वटंसक ॥२१॥

[जब मैं जन्म से आठ वर्ष का हुआ तब प्रासाद पर बैठे बैठे मैंने दान देने का संकल्प किया। मैं हृदय दे दूँ, आंख दे दूँ, मांस दे दूं, खून दे दूं और यदि कोई मांगे तो

सुनाकर उसे शरीर दे दूं। इस प्रकार जब मैं स्वाभाविक रूप से सोच रहा था तो सिनेरु पर्वत से अलङ्कृत अकम्पित, असंस्थित पृथ्वी कांप उठी ।।१९-२१।।]

सोलह वर्ष की आयु होते होते बोधिसत्व सब शिल्पों में निष्णात हो गये। पिता ने उसे राजा बनाने का विचार कर, उसकी मां से मन्त्रणा कर, मद्र राजकुल से माद्री नाम की मामा-लड़की ला उसे सोलह हजार स्त्रियों में पटरानी बना दिया। बोधिसत्व का राज्यभिषेक किया। बोधिसत्व ने राज्य पर प्रतिष्ठित होने के बाद से प्रति दिन छः लाख का त्याग कर महादान देना आरम्भ किया। आगे चलकर माद्री देवी ने पुत्र को जन्म दिया। उसे कञ्चन जाल में ग्रहण किया गया। इससे उसका नाम जाली कुमार ही रख दिया गया। उसके पैदल चलने लगने पर लड़की ने जन्म ग्रहण किया। उसे कृष्णाजिन में लिया गया। उससे उसका नाम कृष्णाजिन ही हो गया।

बोधिसत्व हर महीने छः बार अलङ्कृत हाथी के कन्धे पर बैठे दानशालायें देखने जाते। उस समय कलिङ्ग राष्ट्र में अनावृष्टि हुई। खेती नहीं पकी। महान् अकाल पड़ गया। आदमियों को जीना कठिन हो गया तो वह चोरी करने लगे। दुर्भिक्ष से पीड़ित जनपदवासी राजाङ्गन में इकट्ठे हो चिल्लाने लगे। यह सुन राजा ने पूछा—तात! क्या बात है? उसे वह बात बताई गई। राजा ने उन्हें 'अच्छा तात! देव बरसाऊंगा' कह बिदा किया। किन्तु वह शीलग्रहण कर उपोसथ-व्रत रखकर भी वर्षा न बरसा सका। उसने नागरिकों को एकत्र कर प्रश्न किया—"मैं शील ग्रहण कर सप्ताह भर तक उपोसथव्रती रहकर भी वर्षा नहीं बरसा सका। तात क्या करना चाहिए?"" यदि देव! आप वर्षा नहीं बरसा सकते तो जेतुत्तर नगर में वेस्सन्तर नामक सञ्जय राजपुत्र है। वह दानाभिमुख है। उसके पास सर्वश्वेत मङ्गल-हाथी है। वह जहाँ जहाँ जाता है वहाँ वहाँ वर्षा होती है। ब्राह्मणों को भेज उस हाथी की याचना कर उसे मंगवायें। उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर और ब्राह्मणों को बुलवाकर उन में से आठ जनों को चुना तथा उन्हें खर्चा देकर भेजा—"जाओ उस वेस्सन्तर से हाथी मांग कर लाओ।"

ब्राह्मण क्रमशः जेतुत्तर नगर पहुंचे। उन्होंने दानशाला के सामने बैठ भोजन किया। फिर अपने शरीर पर धूल तथा राख मल कर, पूर्णिमा के दिन राजा से हाथी की याचना करने के इरादे से राजा के दान-शाला आने के समय पूर्व-द्वार पर पहुंचे। राजा भी दान-शाला को देखने की इच्छा से, प्रातःकाल ही सुगन्धित जल

के सोलह घड़ों से स्नान कर, भोजन कर, अलङ्कृत हो, अलङ्कृत हाथियों के कन्धे पर बैठ पूर्व-द्वार पहुंचा। ब्राह्मणों को वहाँ मौका नहीं मिला तो वह दक्षिण-द्वार पहुंचे और वहाँ एक ऊंची जगह पर खड़े हो जब राजा पूर्व की दान-शाला देख दक्षिण द्वार की ओर आ रहा था, तो हाथ उठा कर बोले—"आप वेस्सन्तर की जय हो।" बोधिसत्व ने ब्राह्मणों को देखा तो हाथी को उन के खड़े होने की जगह ले जा, हाथी के कन्धे पर बैठे ही बैठे पहली गाथा कही—

परूळह कच्छ नख लोमा पंकदन्ता रजस्सिरा,
पग्गय्ह दक्खिणं बाहुं किं मं याचन्ति ब्राह्मण ॥२२॥

[जिनके काछ के बाल, नाखून तथा रोम बढ़े हुए हैं, जिनके दान्तों पँर मैल है और जिनके सिर पर धूले है ऐसे ब्राह्मण आगे बढ़कर मुझसे किस चीज की याचना कर रहे हैं?॥२२॥]

यह सुन ब्राह्मण बोले—

रतनं देव याचाम सिवीनं रट्ठवड्ढन,
ददाहि पवरं नागं ईसादन्तं उरूळ्हवं ॥२३॥

[हे देव! हे सिवियों के राष्ट्रवर्धन! हम हस्ति-रतन की याचना करते हैं। हमें बड़े दान्तों वाला, महान् श्रेष्ठ हाथी'दें ॥२३॥]

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा 'मैं सिर से आरम्भ करके अपने शरीर तक का दान दे देना चाहता हूँ। ये तो वाह्य वस्तु ही मांगते हैं। इनका संकल्प पूरा करूंगा।" उसने हाथी के कन्धे पर बैठे ही बैठे कहा—

ददामि न विकम्पामि यं मं याचन्ति ब्राह्मण,
पभिन्नं कुञ्जरं दन्तिं ओपवुय्हं गजुत्तमं ॥२४॥

[मैं घबराता नहीं हूँ। ब्राह्मण जिसकी याचना करते हैं, वह मै उन्हें देता हूँ—'मद' वाला, बड़े दान्तो वाला, सवारी के योग्य, श्रेष्ठ कुञ्जर, हाथी ॥२४॥]

इतनी सूचना दे—

हत्थिक्खन्ध गतो ओरुय्ह राजा चागाधिमानसो,
ब्राह्मणानं अदा दानं सिवीनं रट्ठवड्ढनो ॥२५॥

(सिवियों के राष्ट्रवर्धन, त्यागाभिमुख राजा ने हाथी के कन्धे से उतर ब्राह्मणों को दान दिया ॥२५॥]

उसके चारों पैरों में चार लाख के मूल्य का गहना था। दोनों ओर दो लाख का गहना था। पेट के नीचे का कम्बल लाख का था। पीठ पर का मोतियों का जाल, स्वर्ण-जाल तथा मणि-जाल तीनों तीन लाख के थे। दोनों कानों के घण्टे दो लाख के थे। पीठ पर बिछा कम्बल लाख का था। माथे पर का गहना लाख का था। (दूसरे) तीन गहने तीन लाख के थे। कान का चूड़ालंकार दो लाख का था। दोनों दान्तों के अलंकार दो लाख के थे। सूण्ड का स्वस्तिक अलंकार एक लाख का था। इस प्रकार ये शरीर पर के अलंकार बाईस लाख के थे। चढ़ने की सीढी लाख की थी। खाने का कड़ाहा लाख का था। इन सभी का मूल्य चौबीस लाख हुआ। छत्र के ऊपर मणि, चूळामणी, मुक्ताहारमणी, अङ्कुश पर मणी, हाथी के गले में बांधने के मुक्ताहार में मणि, हाथी के कुम्भ पर मणी—ये सब छः अमूल्य मणियाँ और सातवां हाथी तो अमूल्य ही था। इस प्रकार ये सारी सातों अमूल्य वस्तुयें ब्राह्मणों को दे दीं। उसी प्रकार हथवान, हाथियों की देखभाल आदि करने वाले पांच सौ कुल भी दिये। उसके दान के समय उक्त प्रकार से ही पृथ्वी-कंपन आदि हुए।

इस अर्थ को प्रकाशित करते समय शास्ता ने कहा—

तदासि यं भिंसनकं तदासि लोमहंसनं,
हत्थिनागे पदिन्नम्हि मेदिनी समकम्पथ॥२६॥
तदासि भिंसनकं तदासि लोमहंसनं,
हत्थिनागे पदिन्नम्हि खुब्भित्थ नगरं तदा॥२७॥
समाकुलं पुरं आसि घोसो च विपुलो महा,
हत्थिनागे पदिन्नम्हि सिवीनं रट्ठवड्ढने॥२८॥

[जिस समय हाथी दिया गया उस समय हलचल मच गई, रोमांच हो गया और पृथ्वी काँप उठी॥२६॥ जिस समय हाथी दिया गया उस समय हलचल मच गई, रोमांच हो गया और नगर के लोग क्षुब्ध हो उठे॥२७॥ सारा नगर आकुल हो गया और नगर में बड़ा हल्ला हो गया जिस समय सिवियों के राष्ट्रवर्धन ने हाथी का दान किया॥२८॥]

इसीलिये कहा गया है—

अथेत्थ वत्तति सद्दो तुमुलो भेरवो महा,
हत्थिनागे पदिन्नम्हि मेदिनी सम्पकम्पथ॥२९॥

अथेत्थ वत्तति सद्दो तुमुलो भेरवो महा,
हत्थिनागे पदिन्नम्हि खुभित्थ नगरं तदा ॥३०॥
अथेत्थ वत्तति सद्दो तुमुलो भेरवो महा,
हत्थिनाके पदिन्नम्हि सिवीनं रट्ठवड्ढने ॥३१॥

[हाथी के दिये जाने पर महान् भयानक तुमुल नाद हुआ और पृथ्वी काँप उठी ॥२६॥ हाथी के दिये जाने पर नगर क्षुब्ध हो उठा और महान् भयानक तुमुल नाद हुआ ॥३०॥ जिस समय सिवियों के राष्ट्र वर्धन ने हाथी दिया महान् भयानक तुमुल नाद हुआ ॥३१॥]

उसके दान से क्षुब्ध हुए नगरवासी राजा के पास आये और बोले। इसीलिये कहा गया—

उग्गा च राजपुत्ता च वेसियाना च ब्राह्मणा,
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका ॥३२॥
केवलो चापि निगमो सिवयोचापि समागता,
दिस्वा नागं नीयमानं ते रञ्ञो पटिवेदयुं ॥३३॥
विधमं देवते रट्ठं पुत्तो वेस्सन्तरो तव,
कथं वो हत्थिनं दज्जा नागं रट्ठस्स पूजितं ॥३४॥
कथं नो कुञ्जरं दज्जा ईसावन्तं उरूळ्हवं,
खेत्तञ्ञुं सब्बयुद्धानं सब्बसेतं गजुत्तमं ॥३५॥
पण्डुकम्बलसञ्छन्नं पभिन्नं सत्तुमद्दनं,
दन्तिं सवाळवीजनिं सेतं केलास सादिसं ॥३६॥
ससेतच्छत्तं सउपधेय्यं साथब्बणं सहत्थिपं,
अग्गयानं राजवाहिं ब्राह्मणानं अदा धनं ॥३७॥

[उग्र राजपुत्र, वैश्य, ब्राह्मण, हाथी-सवार, सैनिक, रथ-सवार तथा पैदल, सारे निगम-वासी और सिवि राष्ट्र के निवासियों ने जब हाथी को ले जाया जाता देखा तो वे राजा के पास पहुंचे और कहने लगे ॥३२-३३॥ देव ! तुम्हारा राष्ट्र और वेस्सन्तर पुत्र विध्वस्त हो गया। राज्य-पूजित हाथी कैसेदे दिया गया? ॥३४॥ बड़े दान्तों वाले महान् सभी युद्धों का क्षेत्रज्ञ, सर्वश्वेत, श्रेष्ठ हाथी कैसे दे दिया गया? ॥३५॥ पाण्डु-वर्ग कम्बल से आच्छादित, 'मद' वाला, शत्रु के मरदन करने वाला, बड़े दान्तों वाला, वाळवीजनी-सहित, कैलाश पर्वत के समान श्वेत,

श्वेत-छत्र सहित, आस्तरण सहित, हस्ति-वैद्य सहित, हस्ति-परिचारकों सहित, राज्य-वाहन, श्रेष्ठ-दान नाग ब्राह्मणों को दे दिया गया ।।३६-३७।।]

इतना कहकर फिर बोले —

> **अन्नं पाणञ्च सो दज्जा वत्थसेनासनानिच,**
> **एतं खो दान पतिरूपं एतं खो ब्राह्मणारहं ।।३८।।**
> **अयं ते वंसराजा नो सिवीनं रट्ठवड्ढनं,**
> **कथं वेस्सन्तरो पुत्तो गजं भाजेति सञ्जय ।।३९।।**
> **सचे त्वं न करिस्ससि सिवीनं वचनं इमं,**
> **मञ्ञे तं सहपुत्तेन सिवी हत्थे करिस्सरे ।।४०।।**

[अन्न, पान, वस्त्र तथा शयनासन वह दे सकता है। यह उचित दान है। यह ब्राह्मणों को दिया जाना योग्य है। यह सिवियों के राष्ट्र की वृद्धि करने वाला वंश-परम्परागत राजा है। हे सञ्जय ! यह वेस्सन्तर हांथी का दान कैसे कर सकता है? ।।३८-३९।। यदि तू सिवियों का यह कहना नहीं करेगा तो सिवी-नागरिक तुझे और तेरे पुत्र को अपने हाथ में कर लेंगे ।।४०।।]

तब राजा ने यह समझ कि ये वेस्सन्तर के मार डालने की इच्छा रखते हैं, कहा—

> **कामं जनपदो मासि रट्ठञ्चापि विनस्सतु**
> **नाहं सिवीनं वचना राजपुत्तं अदूसकं,**
> **पब्बाजेय्यं सका रट्ठा पुत्तोहि मम ओरसो ।।४१।।**
> **कामं जनपदो मासि रट्ठञ्चापि विनस्सतु**
> **नाहं सिवीनं वचना राजपुत्तं अदूसकं,**
> **पब्बाजेय्यं सका रट्ठा पुत्तोहि मम अत्रजो ।।४२।।**
> **न चाहं तस्स दुब्भेय्यं अरियसीलवतो हिसो,**
> **असिलोकोपि मे अस्स पापञ्च पसवे बहुं,**
> **कथं वेस्सन्तरं पुत्तं सत्थेन घातयामसे ।।।४३।।**

[चाहे जनपद न रहे और चाहे राष्ट्र भी जाता रहे। मैं सिवियों के कहने से निर्दोष राजपुत्र को अपन राष्ट्र से नहीं निकालूंगा। वह मेरा ओरस पुत्र है ।।४१।। चाहे जनपद . . . वह मेरा अत्रज पुत्र है ।।४२।। मैं उससे द्वेष नहीं करूंगा, वह आर्य-

शील युक्त है। ऐसा करने से मेरी निन्दा भी होगी और मुझे बहुत पाप भी होगा। मैं वेस्सन्तर पुत्र को शस्त्र से कैसे मरवा सकता हूं ? ।।४३।।]

सिवी-वासी बोले—

मानं दण्डेन सत्थेन नहि सो बन्धना रहो,
पब्बाजेहि च नं रट्ठा वंके वसतु पब्बते।।४४।।

[उसे दण्ड न दें, उसका शस्त्र से बध न करायें, वह बन्धनागार के भी योग्य नहीं है, उसे राष्ट्र से निकाल दें। यह टेढ़े-मेढ़े पर्वतों में जाकर रहे।।४४।।]

राजा बोला—

एसो चे सिवीनं छन्दो छन्दं न पनुदामसे,
इमं सो वसतु रत्तिं कामे च परिभुञ्जतु ।।४५।।
ततो रत्या विवसने सुरियुग्गमणम्पति,
समग्गा सिवयो हुत्वा रट्ठा पब्बाजयन्तुनं ।।४६।।

[यदि सिवियों का यही मत है तो मैं उसका खण्डन नहीं करता। रात भर वह काम-भोगों का अनुभव करे। रात्रि की समाप्ति होने पर तथा सूर्य्योदय होने पर तमाम सिवि इकट्ठे होकर उसे राष्ट्र से निकाल दें।।४५-४६।।]

उन्होंने रात भर रहने देने का राजा का कहना मान लिया। उन्हें विदाकर पुत्र को संदेस भेजने के लिए दूत को बुलाकर उसके पास भेजा। उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और वेस्सन्तर के भवन पहुंच वह समाचार कह सुनाया।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए ये गाथायें कहीं गई हैं—

उट्ठेहि कत्ते तरमानो गन्त्वा वेस्सन्तरं वद,
सिवयो देव ते कुद्धा नेगमा च समागता ।।४७।।
उग्गा च राजपुत्ता च वेसियाना च ब्राह्मणा
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
केवलो चापि निगमो सिवयो चापि समागता ।।४८।।
अस्मा रत्या विवसने सुरियस्सुग्गमणम्पति,
समग्गा सिवयो हुत्वा रट्ठा पब्बाजयन्ति तं ।।४९।।

स कत्ता तरमानोव सिविराजेन पेसितो,
आमुत्तहत्थाभरणो सुवत्थो चन्दनभूसितो ॥५०॥
सीसं नहातो उदकेसो आमुत्तमणिकुण्डलो,
उपागमी पुरं रम्मं वेस्सन्तरनिवेसनं ॥५१॥
तत्थद्दस कुमारं सो रममानं सके पुरे,
परिकिण्णं अमच्चेहि तीदसानं व वासवं ॥५२॥
सो तत्थगन्त्वा रममानं कत्ता वेस्सन्तरं ब्रवी,
दुक्खं ते वेदयिस्सामि मा मे कुज्झि रथेसभ ॥५३॥
वन्दित्वा रोदमानो सो कत्ता राजानमब्रवि,
भत्ता मेसि महाराज सब्बकामरसाहरो,
दुक्खं ते वेदयिस्सामि तत्थ अस्सासयन्तु मं ॥५४॥
सिवयो देवते कुद्धा नेगमा च समागता,
उग्गा च राजपुत्ता च वेसियाना च ब्राह्मणा ॥५५॥
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
केवलो चापि निगमो सिवयो चापि समागता ॥५६॥
अस्मा रत्या विवसने सुरियस्सुग्गमणम्पति,
समग्गा सिवयो हुत्वा रट्ठा पब्बाजयन्ति तं ॥५७॥

[हे दूत ! उठ। जल्दी से जाकर वेस्सन्तर को कह कि देव ! सिविवासी तेरे प्रति क्रुद्ध हो गये हैं। निगम के लोग आये हैं। उग्र राजपुत्र, वैश्य, ब्राह्मण, हाथी-सवार, पहरेदार, रथी, पैदल, निगम के सारे लोग तथा सिवि के लोग भी आये हैं। इस रात्रि के समाप्त होने पर, सूर्य्योदय होने पर तमाम सिवि-वासी इकट्ठे होकर तुम्हें देश-निकाला दे देंगे ॥४७-४९॥ सिवि-राज द्वारा भेजा गया वह दूत शीघ्रता से वेस्सन्तर के सुन्दर भवन में आ पहुंचा। उसके हाथों में मोतियों के आभरण थे, अच्छे वस्त्र पहने था, चन्दन लगा था, सिर से नहाया था, बाल गीले थे और मणि-कुण्डल पहने था ॥५०-५१॥ वहाँ उसने मन्त्रियों से घिरे कुमार को अपने भवन में आनन्द मनाते देखा जैसे देवताओं से घिरा हुआ इन्द्र हो ॥५ ॥ उस दूत ने वहाँ आनन्द मनाते हुए वेस्सन्तर के पास जाकर कहा—'हे रथों के स्वामी ! मैं आपको दुखद बात सुना रहा हूँ। मुझ पर क्रोध न करें ॥५३॥ रोते हुए उस

दूत ने प्रणाम कर राजा को यह कहा—महाराज ! आप मेरी सब कामनायें पूरी करने वाले मेरे स्वामी हैं। मैं आपको दुखद समाचार देता हूँ। आप मुझे आश्वस्त करें ।।५४।। देव ! सिविवासी तेरे प्रति क्रुद्ध हो गये हैं ?। निगम के लोग आये हैं। उग्र-राजपुत्र, वैश्य, ब्राह्मण, हाथी-सवार, पहरेदार, रथी, पैदल, निगम के सारे लोग तथा सिवि के लोग भी आये हैं। इस रात्रि के समाप्त होने पर, सूर्योदय होने पर तमाम सिववासी इकट्ठे होकर तुम्हें देश-निकाला दे देंगें ।।५५-५७।।]

बोधिसत्व ने प्रश्न किया—

किस्मिं ये सिवयो कुद्धा नाहं पस्सामि दुक्कतं,
तं मे कत्ते वियाचिक्ख कस्मा पब्बाजयन्ति मं ।।५८।।

[सिविवासी मुझ पर क्यों क्रुद्ध हो गये हैं। मैंने कोई अपराध नहीं किया है। हे दूत ! मुझे बता कि वे मुझे देश-निकाला क्यों देंगे ? ।।५८।।]

दूत ने उत्तर दिया—

उग्गा च राजपुत्ता च वेसियाना च ब्राह्मणा,
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
नागदानेन खीयन्ति तस्मा पब्बाजयन्ति नं ।।५९।।

[उग्र राजपुत्र, वैश्य ब्राह्मण, हाथी-सवार, पहरेदार, रथी, और पैदल सभी तेरे हाथी-दान से क्रुद्ध हो गये हैं। इसीलिए तुझे देश-निकाला दे देंगें ।।५९।।]

यह सुन बोधिसत्व ने आनन्दित हो कहा—

हदयं चक्खुम्पहं दज्जं किं मे बाहिरकं धनं,
हिरञ्ञं वा सुवण्णं वा मुत्ता वेळुरिया मणि ।।६०।।
दक्खिणं वापहं बाहुं दिस्वा याचकमागते,
ददेय्यं न विकम्पेय्यं दाने मे रमती मनो ।।६१।।
कामं मं सिवयो सब्बे पब्बाजेन्तु हनन्तु वा,
नेव दाना विरमिस्सं कामं छिन्दन्तु सत्तधा ।।६२।।

[सोना, मोती, माणिक आदि बाहरी धन की क्या बात मैं हृदय तथा आंख भी दे सकता हूँ ।।६०।। भिक्षुक के आने पर दाहिनी बाँह भी दे सकता हूँ। मैं दे दूंगा। मैं काँपूंगा नहीं। मुझे दान देना अच्छा लगता है ।।६१।। चाहे सारे सिवि-

वासी मिलकर मुझे देश-निकाला दे दें, मार डालें अथवा-सात टुकड़े कर दें, मैं दान देने से नहीं रुकूंगा ॥६२॥]

यह सुन दूत ने अपनी मति से ही उसे ऐसा आदेश सुनाया जो उसे न राजा ने सुनाने को कहा था और न नागिरिकों ने। वह बोला—

एवं तं सिवयो आहु नेगमा च समागता,
कोन्तिमाराय तीरेन गिरिं आरञ्जरं पति,
येन पब्बाजिता यन्ति तेन गच्छतु सुब्बतो ॥६३॥

[सिवि-निवासी लोगों ने तथा आगत निगमवासियों ने कहा है—कोनितमा नदी क किनारे, आरञ्जर पर्वत की ओर मुँह करके, जिस रास्ते से देश से निकाले हुए लोग जाते है, उसी रास्ते से 'सुब्रत' भी जाये ॥६३॥]

यह बात उससे देवता ने कहलवाई। बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"अच्छा, अपराधियों के जाने के मार्ग से ही जाऊंगा। नागरिक मुझे किसी अन्य अपराध के कारण नहीं निकाल रहे हैं, मैंने हाथी का दान दिया है, इसीलिये निकाल रहे हैं। ऐसा है तो मैं 'सात सौ' का महादान दूंगा। नागरिक मुझे एक दिन दान देने दें। कल दान देकर तीसरे दिन चला जाऊंगा उसने कहा—

सोहं तेन गमिस्सामि येन गच्छन्ति दूसका,
रत्तिं दिवं मे खमथ याव दानं ददामहं ॥६४॥

[मैं उसी मार्ग से जाऊंगा, जिस मार्ग से अपराधी जन जाते है। जब तक मैं दान दे लूं, तब तक मुझे एक रात-दिन के लिये क्षमा करें ॥६४॥]

'अच्छा, देव नागरिकों को कहूंगा' कहकर दूत चला गया। बोधिसत्व ने उसे विदा किया और सेनापति को बुलाकर कहा—"मैं कल 'सात सौ' का दान दूंगा। सात सौ हाथी, सात सौ घोड़े, सात स रथ, सात सौं स्त्रियां, सात सौ गौएं, सात सौ दासियाँ, और सात सौ दासों की व्यवस्था करो। साथ ही नाना प्रकार के खाने-पीने की भी। सुरा की भी। सभी देने योग्य चीजें उपस्थित करो। इस प्रकार सात सौ के दान की आज्ञा दे, आमात्यों को विदाकर वह अकेला ही माद्री के निवास-स्थान पर पहुंचा और शैय्या पर बैठ उसके साथ बातचीत करने लगा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

आमन्तयित्थ राजानं मद्दिं सब्बंगसोभनं,
यं ते किञ्चि मया दिन्नं धनं धञ्ञञ्च विज्जति ॥६५॥
हिरञ्ञं वा सुवण्णं वा मुत्ता वेलुरिया बहू,
सब्बे तं निदहेय्यासि यञ्च ते पेत्तिकं धनं ॥६६॥

[राजा ने उस सर्वाङ्गशोभन माद्री को सम्बोधित करके कहा—"जो कुछ भी मेरा दिया धन और धान्य है, हिरण्य, सोना, मोती तथा विल्लौर, और जो कुछ भी तेरा पैतृक धन है उस सब को 'निधि' करके रख दे ॥६५-६६॥]

तमब्रवी राजपुत्तो मद्दी सब्बंगसोभना,
कुहिं देव निदहेय्यामियं तं मे अक्खाहिपुच्छितो ॥६७॥

[उस सर्वाङ्ग सुन्दरी राजपुत्री माद्री ने उससे प्रश्न किया—'देव! बतायें कि इस धन को मैं 'निधि' करके कहाँ रखूं? ॥६७॥]

वेस्सन्तर बोला—

सीलवन्तेसु दज्जासि दानं मद्दि यथारहं,
न हि दाना परं अत्थि पतिट्ठा सब्ब पाणिनं ॥६८॥

[माद्री! सदाचारियों को यथा योग्य दान दे। सभी प्राणियों के लिए दान से बढ़कर सहारा नहीं है ॥६८॥]

उसने 'अच्छा' कहकर उसका वचन स्वीकार कर लिया। आगे उपदेश देते हुए कहा—

पुत्तेसु मद्दि दय्यासि सस्सुया ससुरम्हि च,
यो च तं भत्ता मञ्ञेय्य सकच्चं तं उपट्ठहे ॥६९॥
नो चे तं भत्ता मञ्ञेय्य मया विप्पवसेन ते,
अञ्ञं भत्तारं परियेस मा किसित्थ मया विना ॥७०॥

[हे माद्री! पुत्रों तथा सास और श्वसुर के प्रति मैत्री का भाव रखना। मेरे बाद जो भी तेरा स्वामी बने उसकी भी अच्छी तरह सेवा करना। मेरे जाने पर यदि कोई तेरा 'स्वामी' न बने तो तू दूसरा 'स्वामी' खोज लेना, मेरे बिना कष्ट मत पाना ॥६९-७०॥]

माद्री सोचने लगी, यह वेस्सन्तर ऐसी बातें क्यों बोल रहा है। उसने प्रश्न किया—"देव ! यह ऐसी अनुचित बात मुँह से क्यों निकाल रहे हो ?" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—"भद्रे ; मैंने हाथी का दान दिया है। इसलिए सिवि लोग मुझ पर क्रुद्ध हो मुझे देश से निकाल रहे हैं। कल मैं 'सात सौ' का महादान देकर, परसों नगर से से निकल जाऊंगा।" वह बोला—

अहं हि वनं गच्छामि घोरं वाळमिगायुतं,
संसयो जीवितं मय्हं एककस्स ब्रहावन ॥७१॥

[मैं जंगली जानवरों के भयानक वन में जाता हूँ। वहाँ जंगल में अकेले रहते हुए का जीवित रहना संदिग्ध है ॥७१॥]

तमब्रवी राजपुत्ती मद्दी सब्बंगसोभना,
अभुम्मे कथं भणसि पापकं वत भाससि ॥७२॥
नेस धम्मो महाराज यं त्वं गच्छेय्य एकको,
अहम्पि तेन गच्छामि येन गच्छसि खत्तिय ॥७३॥
मरणं वा तया सद्धि जीवितं वा तया बिना,
तदेव मरणं सेय्यो यञ्चे जीवे तया बिना ॥७४॥
अग्गिं निज्जालयित्वान एकजालसमाहितं,
तत्थ मे मरणं सेय्यो यञ्चे जीवे तया बिना ॥७५॥
यथा आरञ्ञकं नागं दन्तिं अन्वेति हत्थिनी,
जेस्सन्तं गिरिदुग्गेसु समेसु विसमेसु च ॥७६॥
एवं तं अनुगच्छामि पुत्ते आदाय पच्छतो,
सुभरा ते भविस्सामि न ते हेस्सामि दुब्भरा ॥७७॥

[सर्वाङ्गशोभना माद्री राजपुत्री बोली—तू अयथार्थ बात क्यों बोलता है। बुरी बात क्यों मुँह से निकालता है ? ॥७२॥ महाराज। यह धर्म नहीं है कि आप अकेले ही जायें। हे क्षत्रिय ! जहाँ आप जायेंगे, वहाँ मैं भी आपके साथ जाऊंगी ॥७३॥ तेरे साथ मरना और तेरे बिना जीना—इन दोनों में तेरे बिना जीने से तेरे साथ मरना ही श्रेयस्कर है ॥७४॥ आग जला कर, उसकी एक ज्वाला में जलकर मर जाना तेरे बिना जीने की अपेक्षा अच्छा है ॥७५॥ जैसे हस्तिनी जंगल में विचरने वाले नाग के पीछे पीछे पहाड़, दुर्ग,

सम तथा विषम स्थानों में जाती है, उसी प्रकार में भी पुत्रों को लेकर आपके पीछे पीछे जाऊंगी । मैं आपके लिए सुभर रहूंगी। दूभर नहीं बनूंगी ॥७६-७७॥)

यह कह उसने हिमालय का वर्णन आरम्भ किया, मानो उसने उसे पहले देखा हो—

इमे कुमारे पस्सन्तो मञ्जुके पियभाणिनो,
आसीनेवन गुम्बस्मि न रज्जस्स सरिस्ससि ॥७८॥
इमे कुमारे पस्सन्तो मञ्जुके पियभाणिनो,
कीळन्ते वनगुम्बस्मि न रज्जस्स सरिस्ससि ॥७९॥
इमे कुमारे पस्सन्तो मञ्जुके पियभाणिनो,
अस्समे रमणीयम्हि न रज्जस्स सरिस्ससि ॥८०॥
इमे कुमारे पस्सन्तो मञ्जुके पियभाणिनो,
कीळन्ते अस्समे रम्मे न रज्जस सरिस्ससि ॥८१॥
इमे कुमारे पस्सन्तो मालधारी अलंकते,
अस्समे रमणीयम्हि न . . . . ॥८२॥
इमे कुमारे पस्सन्तो मालधारी अलंकते,
कीलन्ते अस्समे . . . . ॥८३॥
यदा दक्खसि नच्चन्ते कुमारे मालधारिनो,
अस्समे रमणीयम्हि . . . . ॥८४॥
यदा दक्खसि नच्चन्ते कुमारे मालधारिनो,
कीळन्ते अस्समे . . . . ॥८५॥
यदा दक्खसि मातंगं कुञ्जरं सट्ठिहायनं,
एकं अरञ्ञे विचरन्तं न रञ्जस सरिस्ससि ॥८६॥
यदा दक्खसि मातंगं कुञ्जरं सट्ठिहायनं,
सायंपातो विचरन्तं न रज्जस्स सरिस्ससि ॥८७॥
यदा कणेरुसंघस्स यूथस्स पुरतो वजं,
कोञ्चं काहिति मातंगो कुञ्जरो सट्ठिहायनो,
तस्स तं नदतो सुत्वा न रज्जस्स सरिस्ससि ॥८८॥
दुभतो वनविकासे यदा दक्खसि कामदं,
वने वालमिगाकिण्णो न रज्जस्स सरिस्ससि ॥८९॥

मिगं दिस्वान सायण्हं पञ्चमालिनं आगतं,
किम्पुरिसे च नच्चन्ते न रज्जस सरिस्ससि ॥९०॥
यदा सोस्ससि निग्घोसं सन्दमानाये सिन्धुया,
गीतं किम्पुरिसानञ्च न रज्जस्स सरि ससि ॥९१॥
यदा सोस्ससि निग्घोसं गिरिगब्भरचारिनो,
वस्समानस्स लूकस्स न रज्जस्स सरि ससि ॥९२॥
यदा सीहस्स व्यग्घस्स खग्गस्स गवयस्सच,
वने सोस्ससि वाळानं न रज्जस्स सरिस्सति ॥९३॥
यदा मोरीहि परिकिण्णं बीरहिनं मत्थ कासिनं,
मोरं दक्खिसि नच्चन्तं न रज्जस्स सरि ससि ॥९४॥
यदा मोरीहि परिकिण्णं अण्डजं चित्रपेक्खुनं,
मोरं दक्खिसि नच्चन्तं न रज्जस्स सरिस्ससि ॥९५॥
यदा मोरीहि परिकिण्णं नीलगीवं सिखण्डिनं,
मोरं दक्खिसि नच्चन्तं न रज्जस्स सरि ससि ॥९६॥
यदा दक्खिसि हेमन्ते पुप्फिते धरणीरूहे,
सुरभिसम्पवायन्ते न रज्जस्स सरिस्ससि ॥९७॥
यदा हेमन्तिके मासे हरितं दक्खिससि मेदिनिं,
इन्द्रगोपक सञ्छन्नं न रज्जस्स सरिस्ससि ॥९८॥
यदा दक्खिसि हेमन्ते पुप्फिते धरणीरुहे,
कुटजं बिम्बजालञ्च पुप्फितं लोमपद्मकं,
सुरभिसम्पवायन्ते न रज्जस्स सरिस्ससि ॥९९॥
यदा हेमन्तिके मासे वनं दक्खिसि पुप्फितं,
ओपुप्फानि च पद्मानि न रज्जस्स सरिस्ससि ॥१००॥

[इन सुन्दर, प्रियभाषी कुमारों को जंगल में बैठे देखकर राज्य की याद नहीं आयेगी ॥७८॥ इन......जंगल में खेलते देखकर......आयेगी ॥७९॥ इन सुन्दर......रमणीय आश्रम में देखकर.......आयेगी ॥८०॥ इन सुन्दर......रमणीय आश्रम में खेलते देखकर ...... आयेगी ॥८१॥ इन मालाधारी अलंकृत कुमारों को आश्रम में देखकर राज्य की याद नहीं आयेगी ॥८२॥ इन मालाधारी ......आश्रम में खेलते देखकर......

आयगी ॥८३॥ जब मालाधारी कुमारों को आश्रम में नाचते देखेगा, तब राज्य की याद नहीं आयगी ॥८४॥ जब मालाधारी......आश्रम में खेलते देखेगा, तब......आयेगी ॥८५॥ जब साठ वर्ष के मातङ्ग हाथी को वन में अकेले विचरते देखेगा तो राज्य की याद नहीं आयेगी ॥८६॥ जब साठ वर्ष के...... सायं प्रातः विचरते देखेगा तो......आयेगी ॥८७॥ जब हथिनियों के समूह के आगे आगे जाता हुआ, साठ वर्ष का मातङ्ग हाथी क्रौंच नाद करेगा, तो उसके उस नाद को सुनकर राज्य की याद नहीं आयेगी ॥८८॥ जब जंगली मृगों से घिरे जंगल में दोनों ओर में उठने वाली, सभी कामनाओं को पूरा करने वाली घटायें देखेगा तो राज्य की याद नहीं आयेगी ॥८९॥ शाम के समय मृग को अप्या देख तथा किन्नरों को नाचता देख राज्य की याद नहीं आयेगी ॥९०॥ जब बहती हुई नदियों का निर्घोष तथा किन्नरों का गीत सुनेगा तो राज्य की याद नहीं आयेगी ॥९१॥ जब गिरि-गह्वर में रहने वाले उल्लू की आवाज सुनेगा तो राज्य की याद नहीं आयेगी ॥९२॥ जब वन में व्याघ्र, सिंह, गेंडें, भैंसे तथा अन्य जंगली जानवरों की आवाज सुनेगा तो राज्य की याद नहीं आयेगी ॥९३॥ जब मोरनियों से घिरे हुए, मोर-पंख वाले, पर्वत पर बैठे मोर को नाचते देखेगा तो राज्य की याद नहीं आयेगी ॥९४॥ जब मोरनियों से घिरे, विचित्र, अण्डज मोर को नाचते देखेगा तो राज्य की याद नहीं आयेगी ॥९५॥ जब मोरनियों से घिरे हुए, नीली गर्दन वाले, कलगी वाले मोरकोनाचते देखेगा तो राज्य की याद नहीं आयेगी ॥९६॥ जब हेमन्त ऋतु में सुगन्धित फूलों को पुष्पित देखेगा तो राज्य की याद नहीं आयेगी ॥९७॥ जब हेमन्त के महीने में पृथ्वी को हरित-वर्ण और बीर-बहूटियों से ढका देखेगा तो राज्य की याद नहीं आयेगी ॥९८॥ जब हेमन्त ऋतु में कुटज, कुरवक तथा लोम पद्म को और पुष्पों को फूला देखेगा और सुगन्धित वायु को चलते देखेगा तो राज्य की याद नहीं आयेगी ॥९९॥ जब हेमन्त के महीनों में वन को पुष्पित और पद्मों को गिरा देखेगा तो राज्य की याद नहीं आयेगी ॥१००॥]

इस प्रकार माद्री ने हिमालय-वासिनी की तरह इतनी गाथाओं से हिमालय का वर्णन किया।

हिमालय-वर्णन समाप्त

फुसती देवी को भी जब पता लगा कि उसके पुत्र को बहुत कठोर आज्ञा मिली है तो उसने सोचा कि मैं देखूं कि वह क्या करता है? जाकर पता लगाने के उद्देश्य

से वह छिपी छिपी जाकर शयनागार के द्वार पर खड़ी हुई। जब उसने उन दोनों की बातचीत सुनी तो वह करुणार्द्र हो विलाप करने लगी।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तेसं लालप्पितं सुत्वा पुत्तस्स सुणिसाय च,
करुणं परिदेवेसि राजपुत्ती यसस्सिनी ॥१०१॥
सेय्यो विसं मे खायितं पपाता पपतेय्याहं,
रज्जुया बज्झ मिय्याहं कस्मा वेस्सन्तरं पुत्तं
पब्बाजेन्ति अदूसकं ॥१०२॥
अज्झायकं दानपतिं याचयोगं अमच्छरिं,
पूजितं पतिराजेहि कित्तिमंतं यसस्सिनं,
कस्मा वेस्सन्तरं पुत्तं पब्बाजेन्ति अदूसकं ॥१०३॥
मातापेत्तिभरं जन्तुं कुलेजेट्ठापचायिनं,
कस्मा वेस्सन्तरं पुत्तं पब्बाजेन्ति अदूसकं ॥१०४॥
रञ्ञो हितं देवहितं जातीनं सखिनं हितं,
हितं सब्बस्स रट्ठस्स कस्मा वेस्सन्तरं पुत्तं पब्बाजेन्ति अदूसकं॥१०५॥

[अपने पुत्र तथा पुत्र-वधु की बातचीत सुन, यशस्वी राजपुत्री करुणापूर्ण विलाप करने लगी ॥१०१॥ मेरे लिये यह अच्छा है कि मैं विष खा लूं अथवा प्रपात से गिर पड़ूं, अथवा रस्सी बांधकर मर जाऊं—मेरे निर्दोष वेस्सन्तर पुत्र को देश-निकाला क्यों दिया जा रहा है? ॥॥१०२॥ अध्ययन-शील, दाता, त्यागी, मात्सर्य्य-रहित, विरोधी-राजाओं द्वारा पूजित, कीर्ति-प्राप्त तथा यशस्वी—मेरे निर्दोष वेस्सन्तर पुत्र को देश-निकाला क्यों दिया जा रहा है? ॥१०३॥ माता-पिता के सेवक, कुल में बड़ों का आदर करने वाले—मेरे निर्दोष वेस्सन्तर पुत्र को देश-निकाला क्यों दिया जा रहा है? ॥१०४॥ राजा का हितैषी है, देवताओं का हितैषी है, रिश्तेदारों का हितैषी है, मित्रों का हितैषी है तथा सारे राष्ट्र का हितैषी है—मेरे निर्दोष वेस्सन्तर पुत्र को देश-निकाला क्यों दिया जा रहा है? ॥१०५॥]

इस प्रकार वह करुण-विलाप कर तथा पुत्र और पुत्र-वधू को आश्वस्त कर राजा के पास जाकर बोली—

मधूनिव पलातानि अम्बा व पतिता छमा,
एवं हेस्सति ते रट्ठं पब्बाजेन्ति अदूसकं ॥१०६॥
हंसो निक्खीणपत्तोव पल्ललस्मिं अनूदके,
अपविद्धो अमच्चेहि एको राज विहीयसि ॥१०७॥
तं तं ब्रूमि महाराज अत्थो ते मा उपच्चगा,
मा तं सिवीनं वचना पब्बाजेसि अदूसकं ॥१०८॥

[तू निर्दोष को देश-निकाला दे रहा है, तेरा राष्ट्र मधु-मक्खियों रहित मधु के छत्ते की तरह अथवा जमीन पर गिरे आमों की तरह हो जायेगा। जल रहित तालाब में पंख रहित हंस की तरह हो जायगा। अमात्यों से विहीन होकर तू अकेला ही रह जायगा। हे महाराज ! मैं कहती हूँ जिसमें तेरा अनर्थ न हो, तू सिवियों का कहना मानकर निर्दोष को देश-निकाला न दे ॥१०६-१०८॥]

यह सुन राजा ने कहा—

धम्मस्सापचितिं कुम्मि सिवीनं विनयं धजं,
पब्बाजेमि सकं पुत्तं पाणा पियतरो हि मे ॥१०९॥

[मैं सिवियों की ध्वजा वेस्सन्तर कुमार को दण्डित करके धर्म की पूजा कर रहा हूँ। अपने प्राण से भी अधिक प्रिय-पुत्र को देश-निकाला दे रहा हूँ ॥१०९॥]

यह सुन देवी रोती-पीटती हुई बोली—

यस्सपुब्बं धजग्गानि कणिकाराव पुप्फिता,
यायन्त मनुयायन्ति स्वाज्जेकोव गमिस्सति ॥११०॥
यस्स पुब्बे धजग्गानि कणिकारवनानि च,
यायन्तमनुयायन्ति स्वाज्जेकोव गमिस्सति ॥१११॥
यस्स पुब्बे अनीकानि कणिकाराव पुप्फिता,
यायन्तमनुयायन्ति स्वज्जेकोव गमिस्सति ॥११२॥
यस्स पुब्बे अनीकानि कणिकारवनानि च,
यायन्तमनुयायन्ति स्वाज्जेकोव गमिस्सति ॥११३॥
इन्दगोपकवण्णाभा गन्धारा पण्डुकम्बला,
यायन्तमनुयायन्ति स्वाज्जेकोव गमिस्सति ॥११४॥

[जिसकी ध्वजायें पहले सुपुष्पित कर्णिकार की तरह स्वर्णमय थीं और उसके जाते समय उसका अनुकरण करती थीं, वह आज अकेला ही जायेगा ।।११०।। जिसकी ध्वजायें पहले कर्णिकार-वन की तरह स्वर्णमय थीं और.......... जायेगा ।।१११।। जिसकी सेनायें पहले सुपुष्पित कर्णिकार की तरह स्वर्णमय थीं और......जायेगा ।।११२।। जिसकी सेनायें पहले कर्णिकार वन की तरह स्वर्णमय थीं और......जायेगा ।।११३।। इन्द्रगोपक के वर्ण समान वर्ण वाले, गन्धार-देश के लाल-कम्बल वाले जिसके जाते समय उसका अनुकरण करते थे, वह आज अकेला ही जायेगा ।।११४।।]

यो पुब्बे हत्थिना याति सिविकाय रथेन च,
स्वाज्ज वेस्सन्तरो राजा कथं गच्छति पत्तिको ।।११५।।
कथं चन्दनलित्तंगो नच्चगीतप्पबोधनो,
खराजिनं फरसुञ्च खारिकाजञ्च हाहिति ।।११६।।
कस्मा नाभिहरीयन्ति कासावा अजिनानि वा,
पविसन्तं ब्रह्मारञ्ञं कस्मा चीरं न बज्झरे ।।११७।।
कथं नु चीरं धारेन्ति राजपब्बजिता जना
कथं कुसमयं चीरं मद्दी परिदहेस्सति ।।११८।।
कासियानि च धारेत्वा खोमकोदुम्बरानि च,
कुसचीरानि धारेन्ती कथं मद्दी करिस्सति ।।११९।।
वटहाहि परियायित्वा सिविकाय रथेन च,
साकथज्ज अनुज्चंगी पथं गच्छति पत्तिका ।।१२०।।
यस्सा मुदुतला हत्था चरणा च सुखेधिता,
सा कथज्ज अनुच्चंगी वनं गच्छति भीरुका ।।१२१।।
यस्सा मुदुतला पादा चरणा च सुखेधिता
पादुकाहि सुवण्णाहि पीळमानाव गच्छति,
सा कथज्ज अनुच्चंगी पथं गच्छति पत्तिका ।।१२२।।
यास्सु इत्थिसहस्सस्स पुरतो गच्छति मालिनी,
सा कथज्ज अनुच्चंगी वनं गच्छति एकिका ।।१२३।।
यास्सु सिवाय सुत्वान मुहुं उत्तसते पुरे,
सा कथज्ज अनुच्चंगी वनं गच्छति भीरुका ।।१२४।।

यास्सु इन्दस्स गोत्तस्स उलूकस्स पवस्सतो,
सुत्वान नदतो भीता वारूणीव पवेधति,
सा कथज्ज अनुच्चंगी वनं गच्छति भीरुका ॥१२५॥

[जो पहले हाथी, पालकी या रथ से जाता था, वह वेस्सन्तर राजा आज पैदल कैसे जायेगा ? ॥११५॥ जिसका अङ्ग चन्दन से लिप्त होता था, जिसे नृत्य-गीत द्वारा प्रबुद्ध किया जाता था, वह किस प्रकार अजिन-चर्म, फरसा और झोली-वहँगी ढोयेगा ? ॥११६॥ ये कापाय वस्त्र तथा अजिन (चर्म) क्यों नहीं बांधते हैं। ये बड़े जंगल में प्रवेश करते हुए चीर (-वल्कल) क्यों नहीं बांधते ? ॥११७॥ राज प्रव्रजित जन चीर कैसे धारण करेंगे ? माद्री असमय में ही चीर कैसे धारण करेगी ? ॥११८॥ काशी, खोम तथा कोदुम्बर वस्त्र धारण करने के बाद यह कुश (-तृण) का वस्त्र माद्री कैसे धारण करेगी ? ॥११९॥ जो रथ और पालकी में बैठकर आती जाती थी, वह अनिन्दित-अङ्गी पैदल कैसे जायगी ? ॥१२०॥ जिसके हाथ और चरण अत्यन्त कोमल हैं, वह अनिन्दित अङ्गों वाली डरपोक आज बन कैस जा रही है ? ॥१२१॥ जिसके पांव कोमल हैं और चरण सुख में पल हे और जो स्वर्ण-पादुकाओं पर भी कष्ट से चलती थी, वह अनिन्दित अंग वाली आज पैदल कैसे जायगी ? ॥१२२॥ जो मालाधारिणी हजार-स्त्रियों के आगे आगे जाती थी, वह अनिन्दित अङ्ग वाली आज अकेली वन कैसे जा रही है ? १२३॥ जो पहले गीदड़ी की आवाज सुनकर बारबार डर जाती थी, वह अनिन्दिन अङ्ग वाली डरपोक आज वन कैसे जा रही है ? ॥१२४॥ जो कोसिय गोत्र के उल्लू की आवाज सुनकर वारुणी यक्षिणी की तरह कांपती थी, वह अनिन्दित-अङ्ग वाली डरपोक आज बन कैसे जा रही है ? ॥१२५॥]

सकुणी हतपुत्ताव सुञ्ञं दिस्वा कुलावकं,
चिरं दुक्खन झायिस्सं सुञ्ञं आगम्मिमं पुरं ॥१२६॥
सकुणी हतपुत्ताव सुञ्ञं दिस्वा कुलावकं,
किसा पण्डु भविस्सामि पिये पुत्ते अपस्सती ॥१२७॥
सकुणी हतपुत्ताव सुञ्ञं दिस्वा कुलावकं,
तेन तेन पधाविस्सं पिये पुत्ते अपस्सती ॥१२८॥

कुररी हतछापाव सुञ्ञं दिस्वा कुलावकं,
चिरं दुक्खेन झायिस्सं सुञ्ञं आगम्मिमं पुरं ॥१२९॥
कुररीव हत छापाव सुञ्ञं दिस्वा कुलावकं,
किसा पण्डु भविस्सामि पिये पुत्ते अपस्सती ॥१३०॥
कुररी हतछापाव सुञ्ञं दिस्वा कुलावकं,
तेन तेन पधाविस्सं पिये पुत्ते अपस्सती ॥१३१॥
सा नून चक्कवाकी व पल्ललस्मिं अनूदके,
चिरं दुक्खेन झायिस्सं सुञ्ञं आगम्मिमं पुरं ॥१३२॥
सा नून चक्कवाकीव पल्ललस्मि अनूदके,
किसा पण्डु भविस्सामि पिये पुत्ते अपस्सती ॥१३३॥
सा नून चक्कवाकीव पल्ललस्मि अनूदके,
तेन तेन पधाविस्सं पिये पुत्ते अपस्सती ॥१३४॥
एवं चे मे विलपन्ती या राजपुत्तं अदूसकं,
पब्बाजेसि वनं रट्ठा मञ्ञे हेस्सामि जीवितं ॥१३५॥

[जिस प्रकार हत-पुत्र शकुनी घोंसले को खाली देखकर दुखी होती है, उसी प्रकार मैं भी इस नगर को शून्य देखकर चिरकाल तक दुखी रहूँगी ॥१२६॥ जिस प्रकार हत-पुत्र शकुनी घोंसले को खाली देखकर (दुखी होती है) उसी प्रकार मैं भी प्रिय पुत्र के न देख सकने के कारण कृश, पाण्डु-वर्ण हो जाऊँगी ॥१२७॥ जैसे घोंसले को खाली देखकर हत-पुत्र शकुनी उसी प्रकार मैं प्रिय पुत्र के न देख सकने के कारण जहाँ-तहाँ भागती फिरूँगी ॥१२८॥ हत-शिशु कुररी की तरह...... भागती फिरूँगी ॥१२९-१३१॥ जल रहित तालाब में चक्रवाकी की तरह..... फिरूँगी ॥१३२-१३४॥ यदि मेरे इस प्रकार विलाप करते रहने पर भी तू निर्दोष राजपुत्र को देश-निकाला दे देगा तो मुझे लगता है कि मैं प्राण छोड़ दूंगी ॥१३५॥]

देवी के रोने-पीटने की आवाज सुन सञ्जय की सभी सिवि-कन्यायें इकट्ठी होकर रोने-पीटने लगीं। उनके रोने-पीटने की आवाज सुन बोधिसत्व के निवास-गृह में वैसे ही रोना-पीटना आरम्भ हो गया। दोनों राज-कुलों में कोई भी होश संभाले न रह सका। हवा के झोंके से मर्दित शाल वृक्षों की तरह गिरकर रोने पीटने लगे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तस्सा लालप्पितं सुत्वा सब्बा अन्तेपुरे, बहू,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं सिविकञ्ञा समागता ॥१३६॥
सालाव सम्पमथिता मालुतेन पमद्दिता,
सेन्ति पुत्ता च दारा च वेस्सन्तरनिवेसने ॥१३७॥
ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं वेस्सन्तरनिवेसने ॥१३८॥
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं वेस्सन्तरनिवेसने ॥१३९॥

[उसका विलाप सुन सिवि-राज की सभी लड़कियां अन्तःपुर आकर बाहें पकड़ कर रोने लगीं। जैसे हवा द्वारा ताड़ित वृक्ष गिर पड़ते हैं, उसी प्रकार वेस्सन्तर के राज-भवन में स्त्री-पुत्र गिरे पड़े थे ॥१३६-१३७॥ रनवास के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण वेस्सन्तर के निवास-गृह में बाहें पकड़ कर रोते थे। हाथी-सवार पहरेदार रथी तथा पैदल वस्सन्तर के निवास-गृह में बाहें पकड़ कर रोते थे ॥१३८-१३९॥]

ततो रत्या विवसने सुरियस्सुग्गमणम्पति,
अथ वेस्सन्तरो राजा दानं दातुमुपागमी ॥१४०॥
वत्थानि वत्थकामानं सोण्डानं देथ वारुणिं,
भोजनं भोजनत्थीनं सम्मा देथ पवेच्छय ॥१४१॥
माच किञ्चि वणिब्बके हेठयित्थ इधागते,
तप्पेथ अन्नपाणेन गच्छन्तु पटिपूजिता ॥१४२॥
तेसु मत्ता किलन्ताव सम्पतन्ति वणिब्बका,
निक्खमन्ते महाराजे सिवीनं रट्ठवड्ढने ॥१४३॥
अच्छेच्छुं वत भो रुक्खं नानाफलधरं दुमं,
यथा वेस्सन्तरं रट्ठा पब्बाजेन्ति अदूसकं ॥१४४॥
अच्छेच्छुं वत भो रुक्खं सब्बकामददं दुमं,
यथा वेस्सन्तरं रट्ठा पब्बाजेन्ति अदूसकं ॥१४५॥
अच्छेच्छुं वत भो रुक्खं सब्बकामरसाहरे,
यथा वेस्सन्तरं रट्ठा पब्बाजेन्ति अदूसकं ॥१४६॥

[तब रात के बीतने पर और सूर्य्य के उदय होने पर वेस्सन्तर राजा दान देने के लिये आया ।।१४०।। (उसने आज्ञा दी)—"वस्त्र की इच्छा करने वालों को वस्त्र, शराबियों को वारुणि, भोजन चाहने वालों को भोजन अच्छी प्रकार दिया जाय ।।१४१।। यहाँ आने वाला कोई भिखारी कष्ट न पाये। उन्हें अन्न-पान से सन्तुष्ट किया जाय। वे आदृत होकर लौटें ।।१४२।। उनमें से क्लान्त-मत्त भिखारी गिर पड़ते थे और विलाप करते थे कि सिवियों के राष्ट्र-वर्धन महाराज वेस्सन्तर के चले जाने पर (हमें कौन दान देगा?) ।।१४३।। यह जो निर्दोष वेस्सन्तर को देश से निकालना है, यह फलों से लदे हुए पेड़ को काट डालने के समान है ।।१४४।। यह जो निर्दोष वेस्सन्तर को देश से निकालना है, यह सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले वृत्त को काट डालने के समान है ।।१४५।। यह जो निर्दोष वेस्सन्तर को देश से निकालना है, यह सब इच्छाओं की पूर्ति करने वाले वृक्ष को काट डालने के समान है ।।१४६।।]

ये वुद्धा ये च दहरा ये च मज्झिमपोरिसा,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु निक्खमन्ते महाराजे
सिवीनं रट्ठवड्ढने ।।१४७।।

[जो वृद्ध थे, जो छोटे थे और मध्यम आयु के थे, सभी सिवियों के राष्ट्रवर्धन महाराज के निकलने पर बांहें पकड़ कर रोने लगे ।।१४७।।]

अतियक्खा वस्सवरा इत्थागारञ्च राजिनो,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दु निक्खमन्ते महाराजे सिवीनं
रट्ठवड्ढने ।।१४८।।

[भूत-विद्या के ज्ञाता, हिजड़े तथा स्त्रियों के गृह के राज-कर्मचारी—सभी सिवियों के राष्ट्रवर्धन महाराज वेस्सन्तर के निकलने पर बाहें पकड़ कर रोने लगे ।।१४८।।]

थियोपि तत्थ पक्कन्दं या तम्हि नगरे अहू,
निक्खमन्ते महाराजे सिविनं रट्ठवड्ढने ।।१४९।।
ये ब्राह्मणा ये च समणा अञ्ञेवापि वणिब्बका,
बाहा पग्गय्ह पक्कन्दुं अधम्मो किर भो इति ।।१५०।।

[उस नगर में जो स्त्रियां भी थीं वे भी सिवियों के राष्ट्रवर्धन महाराज के निकलने पर रोने-पीटने लगीं ।।१४९।। जो ब्राह्मण थे, जो श्रमण थे और जो दूसरे भिखारी थे, वे भी बाहें पकड़ कर रोने लगे कि यह अधर्म हो रहा है ।।१५०।।]

यथा वेस्सन्तरो राजा यजमानो सके पुरे,
सिवीनं वचनत्थेन सम्हा रट्ठा निरज्जति ।।१५१।।
सत्तहत्थिसते दत्वा सब्बालंकारभूसिते,
सुवण्णकच्छे मातंगे हेमकप्पनवाससे ।।१५२।।
आरूळ्हे गामणीयेहि तोमरंकसपाणिहि,
एस वेस्सन्तरो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ।।१५३।।

[जैसे वेस्सन्तर राजा अपने नगर में यज्ञ करता हुआ सिवियों के कहने से अपने राष्ट्र से निकाला जा रहा है ।।१५१।। सभी अलंकारों से विभूषित, स्वर्ण से लदे, स्वर्ण से कसे ऐसे सात सौ मातङ्ग हाथी देकर जिन पर तोमर-अंकुस धारी ग्रामणी बैठे हैं, वेस्सन्तर राजा अपने राष्ट्र से निकलता है ।।१५२-१५३।।)

सत्त अस्ससते दत्वा सब्बालंकारभूसिते
आजानीयेव जातिया सिन्धवे सीघवाहिने,
आरूळ्हे गामणीयेहि इल्लिया चापधारिहि,
एस वेस्सन्तरो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ।।१५४-।।१५५।।
सत्त रथसते दत्वा सन्नद्धे उस्सितद्धजे,
दीपे अथोपि वेय्यग्घे सब्बालंकार भूसिते।।१५६।।
आरूळ्हे गामणीयेहि चापहत्थेहि वम्मिहि,
एस वेस्सन्तरो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ।।१५७।।
सत्त इत्थिसते दत्वा एकमेका रथे ठिता,
सन्नद्धा निक्ख रज्जूहि सुवण्णेन अलंकता ।।१५८।।
पीतालंकारा पीतवसना पीताभरणभूसिता,
आळार पमुखा हसुला सुपञ्ञा तनु मज्झिमा,
एस वेस्सन्तरो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ।।१५९।।
सत्त धेनु सते दत्वा सब्बाकंसुपधारणा,
एस वेस्सन्तरो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ।।१६०।।

सत्त दासिसते दत्वा सत्त दाससतानि च,
एस वेस्सन्तरो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ॥१६१॥
हत्थि अस्सरथे दत्वा नारियो च अलंकता,
एस वेस्सन्तरो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ॥१६२॥
तदासि यं भिंसनकं तदासि लोमहंसनं,
महादाने पविन्नम्हि मेदिनी समकम्पथ ॥१६३॥
तदासि यं भिंसनकं तदासि लोमहंसनं,
यम्पञ्जलिकतो राजा सम्हा रट्ठा निरज्जति ॥१६४॥

[सभी अलंकारों से विभूषित, श्रेष्ठ, शीघ्रगामी सात सौ ऐसे घोड़े देकर जिन पर इल्लीय (खड्ग) तथा धनुषधारी ग्रामणी बैठे है, वेस्सन्तर राजा अपने राष्ट्र से निकला है ॥१५४-१५५॥ ध्वजाधारी, अस्त्र-शस्त्र युक्त सात सौ ऐसे रथ दे कर जिनमें सभी अलंकारों से विभूषित चीते तथा व्याघ्र जुते हैं और जिनमें धनुष तथा ढाल लिये ग्रामणी बैठे हैं, वेस्सन्तर राजा अपने राष्ट्र से निकला है ॥१५६-१५७॥ एक-एक रथ में बैठी हुई, स्वर्ण-रज्जु से बंधी, स्वर्ण से अलंकृत, पीले अलंकारों, वस्त्रों तथा आभूषणों से युक्त, विशाल आंखों वाली, मुँह पर मुस्कराहट वाली तथा सुश्रोणी सात सौ स्त्रियां देकर, वेस्सन्तर राजा अपने राष्ट्र से निकला है ॥१५८-१५६॥ रजतमय पात्रों सहित सात सौ गौवें देकर, वेस्सन्तर राजा अपने राष्ट्र से निकला है ॥१६०॥ सात सौ दासियां तथा सात सौ दास देकर, वेस्सन्तर राजा अपने राष्ट्र से निकला है ॥१६१॥ हाथी, घोड़े, रथ और अलंकृत नारियां देकर, वेस्सन्तर राजा अपने राष्ट्र से निकला है ॥१६२॥ उस समय हलचल मच गई, उस समय रोमांच हो गया, जिस समय महादान दिया गया, पृथ्वी काँप उठी ॥१६३॥ उस समय हलचल मच गई, उस समय रोमांच हो गया, जब हाथ जोड़े, राजा अपने राष्ट्र से निकला है ॥१६४॥]

देवताओं ने जम्बुद्वीप भर के राजाओं को सूचित कर दिया था कि वेस्सन्तर क्षत्रिय कन्याओं आदि का महादान दे रहा है। इसलिये देवताओं के प्रताप से क्षत्रिय-जन रथों में बैठकर आये और क्षत्रिय कन्या आदि उसका दान लेकर चले गये। इसी प्रकार क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्रादि भी दान ले गये। उसे दान देते ही देते शाम हो गई। वह अपने वासस्थान पहुंच, वहां से अलंकृत रथ पर बैठ माता पिता के निवास-गृह पर पहुंचा कि उन्हें नमस्कार कर कल चला जाऊंगा। माद्री देवी ने

सोचा कि मैं भी इनके साथ जाकर मातापिता की आज्ञा ले लूं, उसके साथ साथ गई। बोधिसत्व ने पिता को नमस्कार कर अपने जाने की बात कही।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

आमन्तयित्थ राजानं सञ्जयं धम्मिनं वरं,
अवरुद्धसि मं देव वंकं गच्छामि पब्बतं ॥१६५॥
ये हिकेचि महाराज भूता ये च भविस्सरे,
अतित्ता येव कामे हो गच्छन्ति यमसाधनं ॥१६६॥
सोहं सके अभिसर्सि यजमानो सके पुरे,
सिवीनं वचनत्थेन सम्हा रट्ठा निरज्जहं ॥१६७॥
अघं तंपतिसेविस्सं वने वाळमिगाकिण्णे,
खग्गदीपिनिसेविते अहं पुञ्ञानि करोमि
तुम्हें पंकम्हि सीदथ ॥१६८॥

[धार्मिक राजाओं में श्रेष्ठ सञ्जय राजा को सम्बोधित कर बोला—"हे देव! आप मुझे निकालते हैं। मैं वंक पर्वत को जाता हूँ ॥१६५॥ महाराज! जितने भी लोग हुए हैं वा होंगे वे सभी काम-भोगों में अतृप्त रहकर ही यमराज के यहाँ जायेंगे ॥१६६॥ अपने नगर में (दान-) यज्ञ करके मैंने अपने लोगों को ही कष्ट दिया। मैं सिवियों के कहने के अनुसार अपने राष्ट्र से निकाला जा रहा हूँ ॥१६७॥ वन में जंगली जानवरों के बीच रहता हुआ मैं कष्ट से रहूँगा। किन्तु उसे गेंडे-चीते आदि के वासस्थान वन में मैं पुण्य करूंगा। तुम कीचड़ में डूबोगे ॥१६८॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने इन चार गाथाओं द्वारा पिता से बातचीत कर, माता के पास जा प्रणाम कर, प्रव्रज्या की अनुमति मांगते हुए कहा—

अनुजानाहि मं अम्म पब्बज्जा मम रुच्चति,
सोहं सके अभिसर्सि यजमानो सके पुरे ॥१६९॥
सिवीनं वचनत्थेन सम्हा रट्ठा निरज्जहं
अघं तं पतिसेविस्सं वने वाळमिगाकिण्णो,
खग्गदीपिनि सेविते अहं पुञ्ञानि करोमि
तुम्हे पंकम्हि सीदथ ॥१७०॥

[मां ! मुझे अनुज्ञा दे। मुझे प्रव्रज्या अच्छी लगती है। मैंने अपने नगर में (दान-) यज्ञ करके अपनों को कष्ट दिया ॥१६९॥ सिवियों के कहने के अनुसार मैं अपने राष्ट्र से निकाला जा रहा हूँ। मैं उस जंगली जानवरों वाले वन में कष्ट से रहूँगा, किन्तु मैं उस गेंडे-चीते रहने वाले वन में पुण्य करूँगा। तुम कीचड़ में डूबोगे ॥१७०॥]

यह सुन फुसती ने कहा—

अनुजानामि तं पुत्त पब्बज्जा ते समिज्झतु,
अयञ्च मद्दी कल्याणी सुसञ्जा तनुमज्झिमा,
अच्छतं सह पुत्तेहि किं अरञ्ञे करिस्सति ॥१७१॥

[पुत्र ! तुझे अनुज्ञा देती हूँ। तेरी प्रव्रज्या सफल हो। किन्तु यह सुश्रोणी, मध्यगात्री कल्याणी माद्री जंगल में क्या करेगी ? यह अपने पुत्रों के साथ यहीं रहे ॥१७१॥]

वेस्सन्तर ने उत्तर दिया—

नाहं अकामा दासिम्पि अरञ्ञं नेतुमुस्सहे,
सचे इच्छति अन्वेतु सचे निच्छति अच्छतु ॥१७२॥

[मैं अनिच्छुक दासी को भी जंगल साथ नहीं ले जाना चाहता। यदि चाहे तो आये, यदि न चाहे तो न आये ॥१७२॥]

तब पुत्र की बात सुन राजा ने उससे प्रार्थना की। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

ततो सुण्हं महाराजा याचितुं पटिपज्जथ,
मा चन्दनसमाचारे रजोजल्लं अधारयि ॥१७३॥
मा कासियानि धारेत्वा कुसचीरमधारयि,
दुक्खो वासो अरञ्ञस्मिं माहि त्वं लक्खणे गमी ॥१७४॥

[तब महाराजा अपनी पुत्र-बधु से याचना करने गये—हे रक्तचन्दन धारिणी ! अब धूल मत धारण कर। काशी के वस्त्र पहन कर अब कुशा का चीर मत धारण कर। जंगल में रहना दुखद होता है। हे (शुभ-) लक्षणे ! तू मत जा ॥१७३-१७४॥]

तमब्रवी राजपुत्ती मद्दी सब्बंगसोभना,
नाहं तं सुखमिच्छेय्यं यं मे वेस्सन्तरं बिना ॥१७५॥

[सर्वाङ्ग शोभन राजपुत्री माद्री बोली—"जो सुख वेस्सन्तर के बिना मुझे अकेली को प्राप्त हो, मुझे उसकी इच्छा नहीं है" ॥१७५॥]

तमब्रवी महाराजा सिवीनं रट्ठवड्ढनो,
इंघ मद्दि निसामेहि वने ये होन्ति दुस्सहा ॥१७६॥

[सिवियों के राष्ट्रवर्धन महाराज ने उसे कहा—माद्री! वन में जो-जो कष्ट होते हैं, उन्हें सुन ॥१७६॥]

बहू कीटा पतंगा च मकसा मधुमक्खिका,
ते पि तं तत्थ हिंसेय्युं तं ते दुक्खतरं सिया ॥१७७॥
अपरे पस्स सन्ताये नदीनुपनिसेविते,
सप्पा अजगरा नाम अविसा ते महब्बला ॥१७८॥
ते मनुस्सं मिगं वापि अपिमासन्नमागतं,
परिक्खिपित्वा भोगेहि वसमानेन्ति अत्तनो ॥१७९॥
अञ्ञेपि कण्हजटिनो अच्छा नाम अघम्मिगा,
न तेहि पुरिसो दिट्ठो रुक्खमारुय्ह मुच्चति ॥१८०॥
संघट्टयन्ता सिंगानि तिक्खग्गानि महारिनो,
महिसा विचरन्तेत्थ नदिं सोतुम्बरं पति ॥१८१॥
दिस्वा मिगानं यूथानं गवं सञ्चरते वने,
धेनूव वच्छगिद्धाव कथं मद्दि करिस्ससि ॥१८२॥
दिस्वा सम्पतिते घोरे दुमग्गेसु प्लवंगमे
अखेत्तञ्ञाय ते मद्दि भविस्सते महब्भयं ॥१८३॥
या त्वं सिवाय सुत्वान मुहुं उत्तससे पुरे,
सा त्वं वंक अनुप्पत्ता कथं मद्दि करिस्ससि ॥१८४॥
ठिते मज्झन्तिके काले सन्निसिन्नेसु पक्खिसु,
सनतेव ब्रहारञ्ञं तत्थ किं गन्तुमिच्छसि ॥१८५॥

[बहुत से कीट-पतङ्ग, मच्छर तथा मधुमक्खियां भी वहां तुझे कष्ट दे सकती हैं। उससे तुझे बहुत दुःख होगा ॥१७७॥ नदियों के समीप रहने पर और भी संताप

देख। महाबलशाली सर्प और विष-रहित अजगर हैं जो पास आये हुए मनुष्य अथवा पशु को फन से घेरकर अपने वश में कर लेते हैं ॥१७८-१७९॥ दूसरे भी काले बालों वाले दुखदायी रीछ हैं। उन्होंने कभी आदमी नहीं देखा। वृक्ष पर चढ़ने से ही आदमी उनसे बचता है ॥१८०॥ तेज सींगों वाले, प्रहार देने वाले भैंसे आपस में सींग लड़ाते हुए सोतुम्बर नदी के किनारे विचरते हैं ॥१८१॥ मृगों के समूह तथा गौओं को वन में विचरते देख वत्स-लोभी माद्री क्या करेगी ? ॥१८२॥ पेड़ों की शाखाओं पर भयानक बन्दरों को कूदते देख वन-भूमि का ज्ञान न होने के कारण हे माद्री ! तुझे बहुत डर लगेगा ॥१८३॥ जो तू पहले गीदड़ी की आवाज सुनकर बार-बार डर जाती थी, हे माद्री ! वंक पर्वत पहुँच कर तू क्या करेगी ॥१८४॥ मध्याह्न के समय, पक्षियों के बैठे होने पर और भयानक जंगल में आवाज होती है, वहां क्या जाने की इच्छा करती है ? ॥१८५॥]

तमब्रवी राजपुत्ती मद्दी सब्बंगसोभना,
यानि एतानि अक्खासि वने पटिभयानि मे,
सब्बानि अभिसम्भोस्सं गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥१८६॥
कासं कुसं पोटकिलं उसीरं मुञ्जबब्बजं,
उरसा पनुदहेस्सामि नास्स हेस्सामि दुन्नया ॥१८७॥
बहूहि वत चरिया हि कुमारी विन्दते पतिं,
उदरस्सुपरोधेन गोहनुब्बेठनेन च ॥१८८॥
अग्गिस्स परिचरियाय उदकुम्मुज्जनेन च,
वेधब्बं कटुकं लोके गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥१८९॥
अपिस्सा होति अप्पत्तो उच्छिट्ठम्पि भुञ्जितुं,
यो नं हत्थे गहेत्वान अकामं परिकड्ढति,
वेधब्बं कटुकं लोके गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥१९०॥
केसग्गहणमुक्खेपा भुम्या च परिसुम्भना,
दत्वा च नोपक्कमति बहुं दुक्खं अनप्पकं,
वेधब्बं कटुकं लोके गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥१९१॥
सुक्कच्छवी वेधवेरा दत्वा सुभगमानिनो,
अकामं परिकड्ढन्ति उलूकञ्ञेव वायसा,
वेधब्बं कटुकं लोके गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥१९२॥

अपि ञातिकुले फीते कंसपज्जोतते वसं,
नेवातिवाक्यं न लभे भातुहि सखिकाहि च,
वेधब्बं कटुकं लोके गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥१९३॥
नग्गा नदी अनुदका नग्गं रट्ठं अराजिकं
इत्थीपि विधवा नग्गा यस्सापि दस भातरो,
वेधब्बं कटुकं लोके गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥१९४॥
धजो रथस्स पञ्ञाणं धूमो पञ्ञाणमग्गिनो
राजा रट्ठस्स पञ्ञाणं भत्ता पञ्ञाणमित्थिया,
वेधब्बं कटुकं लोके गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥१९५॥
या दळिद्दी दळिद्दस्स अड्ढा अड्ढस्स कित्तिमा,
तं वे देवा पसंसन्ति दुक्करं हि करोति सा ॥१९६॥
सामिकं अनुबन्धिस्सं सदा कासायवासिनी
पथव्यापि अभेज्जन्त्या निच्छे वेस्सन्तरं विना,
वेधब्बं कुटुकं लोके गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥१९७॥
अपि सागरपरियन्तं बहुवित्तधरं महिं,
नाना रतनपरिपूरं निच्छे वेस्सन्तरं विना ॥१९८॥
कथन्नु तासं हृदयं सुखरा वत इत्थियो,
या सामिके दुक्खितम्हि सुखमिच्छन्ति अत्तनो ॥१९९॥
निक्खमन्ते महाराजे सिवीनं रट्ठवड्ढने,
तमहं अनुबन्धिस्स सब्बकामददो हि मे ॥२००॥

[सर्वाङ्ग शोभन राजपुत्री माद्री ने उसे कहा—"जो तूने मुझे वन में ये भय बताये हैं। इन सब को मैं सहन करूँगी। हे रथेसभ ! मैं जाऊंगी ही ॥१८६॥ कास, कुस, पोटकिल, उसीर, मुञ्ज तथा बबब्ज जितने भी घास हैं उनको मैं छाती से चीरती हुई चली जाऊंगी। उनके कारण मैं अपना रास्ता नहीं छोड़ूंगी ॥१८७॥ बहुत कठिनाई से कुमारियों को पति मिलता है, उपवास से, गऊ के जबड़े से कुटवाने से (?), अग्नि-परिचर्य्या से तथा जलमें डुबकियां लगाने से। हे रथेसभ ! लोक में वैधव्य बहुत कष्टदायी है, मैं जाऊंगी ही ॥१८८-१८६॥ उसे उच्छिष्ठ खाना भी नहीं मिलता और कोई भी उस अनिच्छुक को हाथ से पकड़ कर खींचता है। हे रथेसभ ! लोक में वैधव्य बहुत कष्टदायी है, मैं जाऊंगी ही ॥१९०॥ बालों से

पकड़ कर (?) भूमि पर गिरा देते हैं और इस प्रकार बहुत दुख देकर भी खड़े देखते रहते हैं। लोक में वैधव्य बहुत कष्टदायी है। मैं जाऊंगी ही ।।१६१।। पाउडर लगाकर अपने आपको सुन्दर मानने वाले, विध्वा स्त्री की कामना करने वाले लोग उस अनिच्छुक को कुछ भी देकर उसे वैसे ही खींचते हैं जैसे कौवे उल्लु को। लोक में वैधव्य बहुत कष्टदायी है, मैं जाऊंगी ही ।।१६२।। स्वर्ण जैसे स्मृद्ध कुलमें रहकर भी विधवा को भाई और सखियों के तिरस्कार-वचन सहने ही पड़ते हैं। हे रथेसम ! लोक में वैधव्य बहुत कष्टदायी है, मे जाऊंगी ही ।।१६३।। बिना जल के नदी नंगी है, बिना राजा के राष्ट्र नंगा है, दस भाई होने पर भी बिना पति के स्त्री भी नंगी ही है। हे रथेसभ ! लोक में वैधव्य बहुत कष्टदायी है, मैं जाऊंगी ही ।।१६४।। ध्वजा से राष्ट्र की घोषणा होती है, धुएँ से आग की घोषणा होती है, राजा से राष्ट्र की घोषणा होती है, स्वामी से स्त्री की घोषणा होती है। हे रथेसम ! लोक में वैधव्य बड़ा कष्टदायी है, मैं जाऊंगी ही ।।१६५।। जो यशस्वी स्त्री अपने धनी पति के साथ धनी और दरिद्र पति के साथ दरिद्री बन कर रहती है देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं, क्योंकि वह बड़ा दुष्कर कार्य्य करती है ।।१६६।। मैं काषाय वस्त्र धारिणी होकर स्वामी का ही अनुसरण करुंगी। अविभक्त पृथ्वी की स्वामिनी होकर भी मै वेस्सन्तर के बिना रहना नही चाहती। हे रथेसभ ! लोक में वैधव्य बहुत कष्टदायी है, मैं जाऊंगी ही ।।१६७।। चाहे अनेक प्रकार से सुन्दर, नाना रत्नों से परिपूर्ण, सागर पर्य्यन्त सारी पृथ्वी भी मुझे मिले, मै वेस्सन्तर के बिना नहीं चाहती ।।१६८।। उन स्त्रियों का हृदय कैसा है ! वे स्त्रियां बड़ी ही कठोर हृदया होंगी जो स्वामी के दुखी रहने पर अपने लिये सुख चाहती हैं ।।१६६।। सिवियों के राष्ट्रवर्धन महाराज के निकलने पर मैं उसका अनुसरण करूँगी। वह मेरी सब कामनाओं की पूर्ति करने वाला है ।।२००।।)

तमब्रवी महाराज मद्दिं सब्बंगसोभनं
इमे ते दहरा पुत्ता जाली कण्हाजिना चुभो,
निक्खिप्प लक्खणे गच्छ मयं ते पोसियामसे ।।२०१।।

[महाराज ने उस सर्वाङ्ग शोभन माद्री को कहा—ये जाली और कृष्णाजिन तेरी सन्तान हैं। हे शुभ-लक्षणे ! इन्हें यहीं छोड़ जा। हम इनका पालन-पोषण करेंगे ।।२०१।।]

तमब्रवी राजपुत्ती मद्दी सब्बंगसोभना
पिया मे पुत्तका देव जाली कण्हाजिना चुभो,
त्यामहं तत्थ रमेस्सन्ति अञ्ञे जीवसोकिनं ॥२०२॥

[सर्वाङ्ग शोभना राजपुत्री माद्री ने उसे कहा—"देव ! जाली तथा कृष्णाजिन दोनों मेरी प्रिय सन्तान हैं। ये दोनों जंगल में हम शोकाकुलों का दिल बहलायेंगे ॥२०२॥]

तमब्रवी महाराज सिवीनं रट्ठवड्ढनो,
सालीनं ओदनं भुत्वा सुचिं मंसूपसेचनं,
रुक्खफलानि भुञ्जन्ता कथं काहन्ति दारका ॥२०३॥
भुत्वा सतफले कंसे सोवण्णे सतराजिके,
रुक्खपत्तेसु भुञ्जन्ता कथं काहन्ति दारका ॥२०४॥
कासियानि च धारेत्वा खोमकोदुम्बरानि च,
कुस चीरानि धारेन्ता कथं काहन्ति दारका ॥२०५॥
वय्हाहि परियायित्वा सिविकाम रथेन च,
पत्तिका परिधावन्ता कथं काहन्ति दारका ॥२०६॥
कूटागारे सयित्वान निवाते फुस्सितग्गळे,
सयन्ता रुक्खमूलस्मिं कथं काहन्ति दारका ॥२०७॥
पल्लंकेसु सयित्वान गोणके चित्तसन्थते,
सयन्ता तिणसन्थारे कथं काहन्ति दारका ॥२०८॥
गन्धिकेन विलिम्पित्वा अगरूचन्दनेन च,
रजोजल्लानि धारेन्ता कथं काहन्ति दारका ॥२०९॥
चमरीमोरहत्थेहि वीजितंगा सुखेधिता,
दट्ठाडंसेहि मकसेहि कथं काहन्ति दारका ॥२१०॥

[सिवियों के राष्ट्रवर्धन महाराज ने उसे कहा—शालीधान का शुद्ध समांस भात खाकर अब वृक्षों के फल खाते हुए ये बच्चे कैसे क्या करेंगे ? ॥२०३॥ सतराजिक भार के सात फलकों से बने हुए स्वर्णमय थालों में भोजन करने के बाद अब वृक्षों के पत्तों में खाते हुए बच्चे कैसे क्या करेंगे ? ॥२०४॥ काशिक, खोमक और उदम्बर वस्त्र धारण करने के बाद अब कुश-चीर पहने हुए बच्चे कैसे क्या

करेंगे ? ।।२०५।। पालकी और रथ वाहनों से जाकर अब पैदल दौड़ते हुए बच्चे कैसे क्या करेंगे ? ।।२०६।। अच्छी प्रकार से बन्द कूटागार की निवास-स्थानों में शयन करके अब वृक्षों की छाया में सोने वाले बच्चे कैसे क्या करेंगे ? ।।२०७।। लम्बे बालों वाले चित्रित आस्तरण बिछे पलंगों पर सोकर अब तिनकों के बिछौनों पर सोने वाले बच्चे कैसे क्या करेंगे ? ।।२०८।। अगरु तथा चन्दन के लेप करने वाले अब धूल में लोटते हुए बच्चे कैसे क्या करेंगे ? ।।२०९।। जिनके शरीर पर चंवरी तथा मोर-पंख झुलाये जाते थे और जो सुखपूर्वक पाले गये हैं अब डाँसों तथा मच्छरों से काटे जाने पर बच्चे कैसे क्या करेंगे ? ।।२१०।।]

इस प्रकार उनके बातचीत करते हुए ही रात बीत गई। रात बीत जाने पर सूर्य्योदय हुआ। बोधिसत्व के लिये चार सिन्धव घोड़े जुता हुआ अलंकृत रथ ला कर राजद्वार पर खड़ा कर दिया गया। माद्री ने सास-ससुर को प्रणाम किया और शेष स्त्रियों से अनुज्ञा ले, उन्हें देख, अपने दो पुत्रों को ले, वेस्सन्तर से भी पहले रथ पर जा पहुंची। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तमब्रवी राजपुत्ती मद्दी सब्बंगसोभना,
मा देव परिदेवेसि मा च त्वं विमनो अहु,
यथा मयं भविस्साम तथा हेस्सन्ति दारका ।।२११।।
इदं वत्वान पक्कामि मद्दी सब्बंगसोभना,
सिविमग्गेन अन्वेसि पुत्ते आदाय लक्खणा ।।२१२।।

[सर्वाङ्ग शोभना माद्री राजपुत्री उससे बोली—देव ! आप रोयें नहीं तथा अपना मन भी खराब न करें। जैसे हम रहेंगे वैसे ही बच्चे भी रहेंगे ।।२११।। इतना कह सर्वाङ्ग-शोभना, सुलक्षणा माद्री पुत्रों को लेकर सिवि-राजा के ही मार्ग से गई ।।२१२।।]

ततो वेस्सन्तरो राजा दानं दत्वान खत्तियो,
पितु मातु च वन्दित्वा कत्वा च नं पदक्खिणं ।।२१३।।
चतुवाहिं रथं युत्तं सीघमारुय्ह सन्दनं,
आदाय पुत्तदारञ्च वंकं पायासि पब्बतं ।।२१४।।

[तब वह क्षत्रिय वेस्सन्तर राजा दान दे, माता-पिता की वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर, चार घोड़े जुते रथ में शीघ्र चढ़कर, स्त्री-पुत्र को साथ ले वंक पर्वत पहुंचा ।।२१३-२१४।।]

ततो वेस्सन्तरो राजा येनासि बहुको जनो,
आमन्त खो तं गच्छाम अरोगा होन्तु जातयो ॥२१५॥

[तब वेस्सन्तर राजा ने जहां बहुत से आदमी थे, वहां पहुंच कर कहा—आप लोगों की अनुज्ञा ले जा रहे हैं। हमारे सम्बन्धी सुखी रहें ॥२१५॥]

इस प्रकार जब बोधिसत्व ने उन्हें सूचित किया और उपदेश दिया कि वे अप्रमादी रहकर दानादि पुण्य करें और उपदेश देकर जगाने लगा तो बोधिसत्व की माता ने आभरणों सहित सात रतनों से भरी गाड़ियां दोनों ओर भेजी कि मेरा पुत्र दानशील है, दान दे। उसने भी अपने शरीर के गहने उतार आये याचकों को अट्ठारह बार दिये और बाद में सभी दे दिये। वह नगर से निकला तो उसकी इच्छा हुई कि घूम कर नगर को देखे। उसके संकल्प के अनुसार जितनी जगह पर उसका रथ खड़ा था, उतनी पृथ्वी कट कर, पलट गई और उसने रथ का मुह नगर की ओर कर दिया। उसने माता-पिता का निवासस्थान देखा। उस करुणा के प्रभाव से पृथ्वी-कम्पन आदि हुए। इसीलिये कहा गया—

निक्खमित्वान नगरा निवत्तित्वा विलोकिते,
तदापि पठवी कम्पि सिनेरुवन वटंसक[1] ॥२१६॥

[जब नगर से निकल कर उसने रुक कर देखा उस समय भी सुमेरु शीर्षाभरण वाली पृथ्वी कांपी ॥२१६॥]

स्वयं देख कर माद्री को भी दिखाने के लिये गाथा कही—

इंघ मद्दि निसामेहि रम्मरूपं व दिस्सति,
आवासो सिविसेट्ठस्स पेत्तिकं भवनं मम ॥२१७॥

[माद्री! ध्यान दे। सिविश्रेष्ठ का निवास-स्थान मेरा पैत्रिक भवन रमणीय दिखाई देता है ॥२१७॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने साथ जन्मे साठ हजार अमात्यों तथा शेष जनता को देखा और सबको रोक दिया। फिर रथ को हांकते हुए कहा—"भद्रे! यदि पीछे से भिखमंगे आयें तो ख्याल रखना।" वह भी देखती बैठी रही। उसके 'सात सौ' के दान में कुछ ब्राह्मण न पहुंच सके थे। ऐसे चार ब्राह्मणों ने नगर में आकर पूछा—

---

१. चरिया पिटक अकित्ति वग्ग।

"राजा कहां है?" उत्तर मिला—"दान देकर चला गया।" तब उन्होंने पूछा—"कुछ लेकर गया है?" उत्तर दिया—"रथ से गया है।" उन्होंने उससे घोड़े मांगने की इच्छा से उसका पीछा किया। माद्री ने उन्हें आते देखा तो कहा—"देव! याचक आ रहे हैं।" बोधिसत्व ने रथ रोक दिया। उन्होंने आकर घोड़े मांगे। बोधिसत्व ने उन्हें चारों घोड़े दे दिये।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

> **तं ब्राह्मणा अन्वगमुं ते तं अस्से अयाचिसुं,**
> **याचितो पटिपादेसि चतुन्नं चतुरो हये ॥२१८॥**

[उन ब्राह्मणों ने पीछा किया। उन्होंने उससे घोड़े मांगे। मांगने पर उसने चारों को चार घोड़े दे दिये ॥२१८॥]

घोड़े दे दिये जाने पर रथ का धुर आकाश में ही स्थित रहा। ब्राह्मणों के जाते ही चार देव-पुत्र लाल मृगों का रूप बनाकर आये और रथ के धुरे को खींच ले गये। बोधिसत्व ने यह जान कि वे देव-पुत्र हैं, यह गाथा कही—

> **इंघ मद्दि निसामेहि चितरूपंव दिस्सति,**
> **मिगा रोहिच्चवण्णेन दक्खिणस्सावहन्ति मं ॥२१९॥**

[माद्री लाल मृगों के रूप में (देव-पुत्र) सुन्दर दिखाई देते हैं और वे मुझे चतुर-अश्वों की तरह खींचे लिये जा रहे हैं ॥२१९॥]

उनके इस प्रकार चलते रहने पर एक और ब्राह्मण ने आकर रथ मांगा। बोधिसत्व ने स्त्री-पुत्र को उतार उसे रथ दे दिया। रथ दे दिये जाने पर देव-पुत्र अन्तर्धान हो गये।

रथ के दिये जाने की बात प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

> **अथेत्थ पञ्चमो आग सो तं रथमयाचथ,**
> **तस्स तं याचितोदासि नचरसुमहतो मनो ॥२२०॥**
> **ततो वेस्सन्तरो राजा ओरोपेत्वा सके जनं,**
> **अस्सासयी अस्सरथं ब्राह्मणस्स धनेसिनो ॥२२१॥**

[तब एक पांचवाँ ब्राह्मण आया और उसने उससे रथ की याचना की। उस के मांगने पर उसने दे दिया और उसने अपना मन मैला नहीं किया। तब वेस्सन्तर

राजा ने अपने लोगों को उतार धन-खोजी ब्राह्मण को अश्वरथ देकर प्रसन्न कर दिया ।।२२०-२२१।।]

तब से वे सभी पैदल ही हो लिये। बोधिसत्व ने माद्री से कहा—

त्वं मद्दि कण्हाजिनं गण्ह लहुका एसा कणिट्ठिका,
अहं जालिं गण्हिस्सामि गरुको भातिकोहिसो ।।२२२।।

[माद्री ! कृष्णार्जिना छोटी है, हलकी है। तू इसे ले। इसका भाई जालि भारी है। मैं उसे लेता हूँ ।।२२२।।]

ये कह दोनों जने दोनों बच्चों को गोद में उठाकर चले। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

राजा कुमारं आदाय राजपुत्ती च दारिकं,
सम्मोदमाना पक्कामुं अञ्ञमञ्ञ पियंवदा ।।२२३।।

[राजा ने कुमार को लिया और राजपुत्री ने कुमारिका को और दोनों परस्पर मधुर सम्भाषण करते हुए चले ।।२२३।।]

दान-काण्ड समाप्त

रास्ता चलते चलते वे आदमियों को आते देखकर पूछते—वङ्क पर्वत कहाँ है ? इसीलिए कहा गया—

यदि केचि मनुजा एन्ति अनुमग्गे पटीपथे,
मग्गं ते पटिपुच्छाम कुहिं वंकत पब्बतो ।।२२४।।
ते तत्थ अम्हे पस्सित्वा करुणं परिदेवयुं,
दुक्खं ते पटिवदेन्ति दूरे वंकत पब्बतो ।।२२५।।

[यदि उधर से कोई आदमी आते दिखाई देते तो हमें रास्ता पूछते कि वङ्क-पर्वत कहाँ है ? वे हमें देखकर करुणा से दुखी होते और दुख से कहते कि वङ्क पर्वत दूर है ।।२२४-२२५।।]

तब मार्ग के दोनों ओर फलदार वृक्षों को देखकर बच्चे रोते। बोधिसत्व के प्रताप से फलदार वृक्ष झुककर हाथ के पास आ जाते। तब वह उन पर से पके फल तोड़कर उन्हें देता। यह देख माद्री ने आश्चर्य प्रकट किया। इसीलिए कहा गया है—

यदि पस्सन्ति पवने दारका फलिते दुमे,
तेसं फलानं हेतुहि उपरोदन्ति दारका ॥२२६॥
रोदन्ते दारके दिस्वा उब्बिग्गा विपुला दुमा,
सयमेवोनमित्वान उपगच्छन्ति दारके ॥२२७॥
इदं अच्छेरकं दिस्वा अब्भुतं लोमहंसनं,
साधुकारं पवत्तेसि मद्दी सब्बंगसोभना ॥२२८॥
अच्छेरं वत लोकस्मि अब्भुतं लोमहंसनं,
वेस्सन्तरस्स तेजेन सयमेवोमता दमा ॥२२९॥

[यदि बच्चे वन में फलदार वृक्षों को देखते,तो बच्चे उन फलों के लिये रोने लग जाते ॥२२६॥ बच्चों को रोते देख बहुत उद्विग्न-चित्त हुए पेड़ स्वयं झुककर बच्चों के समीप हो जाते ॥२२७॥ यह अद्भुत रोमांचित करने वाला आश्चर्य देखकर सर्वाङ्ग शोभन माद्री ने 'साधुकार' दिया ॥२२८॥ लोक में रोमाञ्चित कर देने वाला अद्‌भुत आश्चर्य्य है—वेस्सन्तर के प्रताप से वृक्ष स्वयमेव झुक गये हैं ॥२२९॥]

जेतुत्तर नगर से स्वर्णगिरिताल नामका पर्वत पाँच योजन था, वहाँ से कोन्तिमार नदी पाञ्च योजन है। वहाँ से आरञ्जर गिरि नामका पर्वत पाञ्च योजन है। वहाँ से दुर्निविष्ट ब्राह्मण-ग्राम पाञ्च योजन। वहाँ से मातुल नगर दस योजन। इस प्रकार वह मार्ग जेतुत्तर-नगर से तीस योजन था। देवताओं ने मार्ग को छोटा कर दिया। एक ही दिन में वे मातुल नगर पहुंच गये।

इसीलिये कहा गया—

संखिपिसु पथं यक्खा अनुकम्पाय दारके,
निक्खन्त दिवसेनेव चेतरट्ठमुपागमुं ॥२३०॥

[देवताओं ने बच्चों पर दया करके मार्ग छोटा कर दिया। जिस दिन वे चले थे, उसी दिन चेतराष्ट्र पहुंच गये ॥२३०॥]

चलते-चलते जेतुत्तर नगर से जलपान के समय निकल शाम होते-होते चेतराष्ट्र के मातुल नगर जा पहुंचे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ते गन्त्वा दीघमद्धानं चेतरट्ठमुपागमुं,
इद्धं फीतं जनपदं बहुमंस सुरोदनं ॥२३१॥

[बहुत दूर चलकर वे चेत राष्ट्र आ पहुंचे। यह जन पद मांस, सुरा तथा भात से समृद्ध था ।।२३१।।)

उस समय मातुल नगर में साठ हजार क्षत्रिय रहते थे। बोधिसत्व नगर के भीतर न जा, नगर के द्वार पर शाला में बैठ रहे। तब माद्री ने बोधिसत्व के पाँव की धूल झाड़ी और उसके पाँव दबाने लगी। फिर बोसित्व के आगमन की बात प्रकट करने के लिए वह शाला से निकली और उसकी आँखों के सामने खड़ी हो गई। इससे नगर में आती जातीं स्त्रियों ने उसे देख घेर लिया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

चेतियो परिकरिंसु दिस्वा लक्खणमागतं
सुखुमाली वतयं अय्या पत्तिका परिधावप्ति ।।२३२।।
वटहाहि परियायित्वा सिविकाय च खत्तिया
साज्ज मद्दी अरञ्ञस्मि पत्तिका परिधावति ।।२३३।।

[उस शुभ लक्षणा माद्री को आया देख चेदि (?) की स्त्रियों ने घेर लिया। कहने लगीं—यह सुकुमारो पैदल चल रही है। जो क्षत्राणी पालकी में बैठकर चलती थी, वह माद्री आज जंगल में पैदल दौड़ रही है ।।२३२-२३३।।]

जनता ने माद्री, वेस्सन्तर तथा उसके पुत्रों को अनाथ अवस्था में आये देखा तो जाकर राजाओं को सूचना दी। साठ हजार राजा रोते—पीटते उसके पास पहुंचे। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तं दिस्वा चेतपामोक्खा रोदमाना उपागमुं,
कच्चिन्नु देव कुसलं कच्चिदेव अनामयं,
कच्चि पिता आरोगा ते सिवीनञ्च अनामयं ।।२३४।।

[यह देख चेत (जनपद) के प्रमुख लोग रोते हुए आये और पूछने लगे—देव! कुशल तो है? देव! नीरोग तो हैं? देव! आपके पिता स्वस्थ तो हैं? और सिवि के लोग भी सकुशल तो है? ।।२३४।।]

को ते बलं महाराज को नु ते रथमण्डलं,
अनस्सको अरथको दीघमद्धानमागतो,
कच्चीनामित्तेहि पकतो अनुप्पत्तोसिमं दिसं ।।२३५।।

[महाराज! आपकी सेना कहाँ है? आप का रथ कहाँ है? आप बिना घोड़े के, बिना रथ के दूर तक चले आये हैं। क्या शत्रुओं से अभिभूत होकर इस ओर आना हुआ है?॥२४२॥]

तब बोधिसत्व ने उन राजाओं को अपने आगमन का कारण बताते हुए कहा—

कुसलञ्चेव मे सम्म अथो सम्म अनामयं,
अथो पिता अरोगो मे सिवीनञ्च अनामयं ॥२४३॥
अहं हि कुञ्जरं दज्जं ईसादन्तं उरूळहवं,
खेत्तञ्ञुं सब्बयुद्धानं सब्बसेतं गजुत्तमं ॥२४४॥
पण्डुकम्बलसञ्छन्नं पभिन्नं सत्तुमद्दनं,
दन्तिं सवाळबीजनिं सेतं केलाससादिसं ॥२४५॥
ससेतच्छत्तं सउपधेय्यं साथब्बणं सहत्थिपं,
अग्गयानं राजवाहिं ब्राह्मणानं अदासहं ॥२४६॥
तस्मिं मे सिवयो कुद्धा पिता च उपहतो मनो,
अवरुद्धति मं राजा वंकं गच्छामि पब्बतं
ओकासं सम्मा जानाथ वने यत्थ वसामसे ॥२४७॥

[मित्रो! मैं सकुशल हूँ। मित्रो! मैं निरोग हूँ। मेरा पिता भी स्वस्थ है। और सिवी के लोग भी सकुशल हैं॥२४३॥ मैंने बड़े भारी, बड़े दान्तों वाले, सभी युद्धों के क्षेत्र मे परिचित, सर्व-श्वेत श्रेष्ठ कुञ्जर हाथी का दान कर दिया, जो पाण्डु-वर्ण कम्बल से ढका था, जिसके माथे से मद बह रहा था, जो शत्रुओं का मर्दन करने वाला था, जो बड़े दान्तों वाला था, विशाल पंखे वाला था और कैलाश के समान श्वेत था॥२४४-२४५॥ मैंने श्वेत-छत्र सहित, गद्दी सहित, हस्ति-चिकित्सक सहित और हथवान् सहित वह राजा का श्रेष्ठ वाहन ब्राह्मणों को दे दिया॥२४६॥ इसी से सिवी लोग क्रुद्ध हो गये है, और राजा का मन भी मेरे प्रति खराब हो गया है। राजा मेरे विरुद्ध हो गया है। मैं वङ्क पर्वत जाता हूँ। हे मित्रो! जंगल में हम जिस जगह रहें, हमें वहाँ रहने की अनुज्ञा दो॥२४७॥]

वे राजा बोले—

स्वागतं ते महाराज अथो ते अदुरागतं,
इस्सरोसि अनुप्पत्तो यं इधत्थि पवेदय ॥२४८॥

साकं भिसं मधुं मंसं सुद्धं सालीनमोदनं,
परिभुञ्ज महाराज पाहुणो नोसि आगतो ॥२४९॥

[महाराज ! आपका स्वागत है। आप का आना शुभ है। आप हमारे 'ईश्वर' आ गये हैं। जो कुछ यहाँ कहने का हो कहें ॥२४८॥ हे महाराज ! आप हमारे अतिथि आये हैं—शाक, भिस, मधु, मांस और शुद्ध शाली धान का भात ग्रहण करें ॥२४९॥]

वेस्सन्तर ने उत्तर दिया—

परिग्गहीतं यं दिन्नं सब्बस्स अग्घियं कतं,
अवरुद्धति मं राजा वंकं गच्छामि पब्बतं,
ओकासं सम्माजानाथ वने यत्थ वसामसे ॥२५०॥

[जो कुछ तुमने दिया वह मैंने स्वीकार किया। आप सबने मेरा बड़ा उपकार किया। किन्तु राजा मेरे विरुद्ध है। मैं वङ्क पर्वत जा रहा हूँ। वहाँ हमारे रहने के लिये योग्य जगह बताओ ॥२५०॥]

वे राजागण बोले—

इधेव ताव अच्छस्सू चेतरट्ठे रथेसभ
याव चेता गमिस्सन्ति रञ्ञो सन्तिके याचितुं,
निज्झापेतुं महाराजं सिवीनं रट्ठवड्ढनं ॥२५१॥
तं तं चेता पुरक्खत्वा पतीता लद्धपच्चया,
परिवारेत्वान गच्छन्ति एवं जानाहि खत्तिया ॥२५२॥

[हे रथेसभ ! तबतक यहाँ इस चेतिय राष्ट्र में ही रहें। ये लोक सिवियों के राष्ट्रवर्धन महाराज से प्रार्थना करने और आपकी निर्दोषता प्रकट करने जायेंगे ॥२५१॥ हे क्षत्रिय ! आप यह जानें कि ये प्रतिष्ठा तथा प्रसन्नता पूर्वक तुझे आगे करके घेर कर ले जायेंगे ॥२५२॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

मा वो रुच्चित्थ गमणं रञ्ञो सन्तिक याचितुं,
निज्झापेतुं महाराजं राजा तत्थ न इस्सरो ॥२५३॥
अच्चुग्गता हि सिवयो बलत्था नेगमाच ये,
ते पधंसेतुमिच्छन्ति राजानं मम कारणा ॥२५४॥

[आप लोग राजा से प्रार्थना करने और महाराज पर मेरी निर्दोषता प्रमाणित करने के लिये जाने का संकल्प न करें। वहाँ राजा के हाथ में अधिकार नहीं है। वहाँ सिवि जनपद वासी, सेना तथा निगम-वासी अत्यन्त क्रुद्ध हो गये हैं। वे मेरे कारण राजा को निकालना चाहते हैं ॥२५४॥]

उन राजाओं ने कहा—

स चे एसा पवत्तेत्थ रट्ठस्मिं रट्ठवड्ढन,
इधेव रज्जं कारेहि चेतेहि परिवारितो ॥२५५॥
इद्धं फीतञ्च रट्ठं इद्धो जनपदो महा,
मतिं करोहि त्वं देव रज्जस्समनुसासितुं ॥२५६॥

[हे राष्ट्रवर्धन ! यदि उस राष्ट्र का ऐसा समाचार है तो चेतिय लोगों के बीच रहकर आप यही राज्य करें। यह राष्ट्र तथा यह महाजनपद स्मृद्ध है। हे देव ! आप यहीं राज्य का अनुशासन करने का संकल्प करें ॥२५ ॥]

वेस्सन्तर ने उत्तर दिया——

न मे छन्दो मति अत्थि रज्जस्समनुसासितुं,
पब्बाजितस्स रट्ठस्मा चेतपुत्ता सुणाथ मे ॥२५७॥
अतुट्ठा सिवया अस्सु बलत्था नेगमा च ये,
पब्बाजितस्स रट्ठस्मा चेता रज्जेभिसेचयुं ॥२५८॥
असम्मोदियम्पि वो अस्स अच्चन्तं मम कारणा,
सिवीनं भण्डनञ्चापि विग्गहो मेन रुच्चति ॥२६९॥
अथस्स भण्डनं घोरं सम्पहारोचनप्पको,
एकस्स कारणा मय्हं हिंसेय्युं बहुके जने ॥२६०॥
परिग्गहीतं यं दिन्नं सब्बस्स अग्घियं कतं,
अवरुद्धति मं राजा वंकं गच्छामि पब्बतं,
ओकासं सम्मा जानाथ वने यत्थ वसामसे ॥२६१॥

[हे चेतिय-पुत्रों सुनो। मैं राष्ट्र से निकाला गया हूँ। मेरी राज्य का अनुशासन करने की इच्छा नहीं है ॥२५७॥ सिवी-जनपद वासी, सेना तथा निगम-वासी यह सुनकर असंतुष्ट हो सकते हैं कि चेतिय वासियों ने देश से निकाले हुए को राजा बनाया ॥२५८॥ मेरे कारण मेल-मिलाप टूट सकता है। मुझे यह अच्छा नहीं

लगता कि सिवियों से झगड़ा लड़ाई हो ।।२५९।। इस प्रकार बहुत झगड़ा और लड़ाई हो सकती है। मेरे एक के कारण बहुतों की हिंसा हो सकती है ।।२६०।। जो कुछ तुमने दिया वह मैंने स्वीकार किया। आप सबने मेरा बड़ा उपकार किया। किन्तु राजा मेरे विरुद्ध है। मैं वंक पर्वत जा रहा हूँ। वहाँ हमारे रहने के लिये योग्य जगह बताओ ।।२६१।।]

इस प्रकार अनेक तरह से आग्रह करने से भी बोधिसत्व ने राज्य की इच्छा नहीं की। उन राजाओं ने उसका बहुत सत्कार किया। वह नगर में जाना नहीं चाहता था। लोगों ने उस शाला को ही अलंकृत कर, कनात घेर, महाशयनासन बिछवा, सभी ओर पहरा बिठा दिया। एक दिन, एक रात वह उनके पहरे की शाला में रहा। अगले दिन प्रातःकाल ही नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन खा, उन राजाओं से घिरा हुआ शाला से निकला। साठ हजार क्षत्रिय पन्द्रह योजन तक उसके साथ साथ गये। वहाँ जंगल के द्वार पर खड़े हो उन्होंने आगे का पन्द्रह योजन का रास्ता बताते हुए कहा—

तग्घ ते मयमक्खाम यथापि कुसला तथा,
राजिसी यत्थ सम्मन्ति आहुतग्गी समाहिता ।।२६२।।
एस सेलो महाराज पब्बतो गन्धमादनो,
यत्थत्वं सह पुत्तेहि सह भरियायचच्छसि ।।२६३।।
तं चेता अनुसासिसु अस्सु नेत्ता रुदम्मुखा,
इतो गच्छ महाराज उज्जु येनुत्तरामुखो ।।२६४।।
अथ दक्खिसि भद्दन्ते विपुलं नाम पब्बतं,
नाना दुमगणाकिण्णं सीतच्छायं मनोरमं ।।२६५।।
तमतिक्कम्म भद्दन्ते अथ दक्खिसि आपकं,
नदिं केतुमतिं नाम गम्भीरं गिरिगब्भरं ।।२६६।।
पुथु लोममच्छाकिण्णं सुपतित्थं महोदिकं,
तत्थ न्हात्वा पिवित्वा च अस्सासेत्वा च पुत्तके ।।२६७।।
अथ दक्खिसि भद्दन्ते निग्रोधं मधुविप्फलं,
रम्मके सिखरे जातं सीतच्छायं मनोरमं ।।२६८।।
अथ दक्खिसि भद्दन्ते नालिकं नाम पब्बतं,

नानादिजगणाकिण्णं सेलं किम्पुरिसायुतं ॥२६९॥
तस्स उत्तरपुब्बेन मुचलिन्दो नाम सो सरो,
पुण्डरीकेहि सञ्छन्नो सेतसोगान्धियेहि च॥२७०॥
सो वनं मेघसंकासं धुवं हरितसद्दलं,
सीहोवामिसपेक्खीव वनसण्ड विगाहिय,
पुप्फरुक्खेहि सच्छन्नं फलरुक्खेहि चूभयं ॥२७१॥
तत्थ बिन्दुस्सरा वग्गु नाना वण्णा बहु दिजा,
कुज्जन्तमुपकुज्जन्ति उतुसम्पुप्फिते दुमे ॥२७२॥
गन्त्वा गिरिविदुग्गानं नदीनं पभवानि च,
सो दक्खसि पोक्खरणिं करञ्जककुधायुतं॥२७३॥
पुथुलोममच्छाकिण्णं सुपतित्थं महोदिकं,
समञ्च चतुरस्सञ्च साधुं अप्पटिगन्धियं ॥२७४॥
तस्सा उत्तरपुब्बेन पण्णसालं अमापय,
पण्णसालं अमापेत्वा उञ्छाचरियाय ईहथ ॥२७५॥

[अच्छा, जैसा हम जानते हैं वैसा हम तुझे बताते हैं कि ध्यानावस्थित, अग्निहोत्री राजर्षि कहाँ रहते हैं ? ॥२६२॥ महाराज ! यहाँ गन्धमादन पर्वत है, जहाँ आप पुत्रों तथा भार्य्या सहित रहेंगे ॥२६३॥ उन्होंने रोते हुए अश्रु-पूर्ण नेत्रों से उसे कहा—महाराज ! यहाँ से सीधे उत्तर-मुख जायें ॥२६४॥ वहाँ तेरा भला हो, तू नाना वृक्षों से आकीर्ण, शीतल छाया वाले, मनोरम पर्वत को देखेगा ॥२६५॥ तेरा भला हो, उससे आगे तू केतुमति नाम की नदी देखेगा—जो गहरी है और जो गिरि में से निकलती है ॥२६६॥ वहाँ बहुत रोमों वाली मछलियों से आकीर्ण, सुतीर्थ, बहुत जल वाली नदी पर स्नान कर तथा पानी पीकर बच्चों को आश्वस्त करना ॥२६७॥ वहाँ तेरा भला हो, तू सुन्दर शिखर पर उत्पन्न मनोरम शीतल छाया वाले निग्रोध (वृक्ष) को देखेगा जिसमें मधुर फल लगे होंगे ॥२६८॥ तब, तेरा भला हो, तू नाना पक्षियों से आकीर्ण नालिक नाम पर्वत देखेगा, जहाँ किन्नरों का वास है ॥२६९॥ उसके उत्तर-पूर्व मुचलिन्द नाम का तालाब है जहाँ श्वेत-सुगन्धित कँमल खिले हैं ॥२७०॥ वहाँ बादलों के समान निरन्तर नील-वर्ण रखने वाला वन है, जो फूल और फल के वृक्षों से लदा है । आप शिकार खोजने वाले सिंह की तरह उस वन में जायें ॥२७१॥ वहाँ नाना प्रकार के बहुत से मधुर-स्वर

वाले पक्षी हैं। वे ऋतु अनुकूल पुष्पित वनों पर बैठकर कुंजन तथा प्रति-कुंजन करते हैं ।।२७२।। वहाँ से गिरि दुर्गों तथा नदी-नालों को पारकर करञ्ज तथा ककुध युक्त पुष्करिणी को देखेगा ।।२७३।। वहाँ बहुत लोमवाली मछलियाँ हैं, बढ़िया (स्नान) तीर्थ हैं, बहुत जल है, बराबर है, चतुष्कोण है, स्वादु है, खराब गन्ध नहीं है ।।२७४।। उसके उत्तर-पूर्व पर्णशाला बनायें और वहाँ फल-फूल चुगकर खाते हुए जीवन यापन करें ।।२७५।।]

तब उन राजाओं ने उसे पन्द्रह योजन का मार्ग बताकर बिदा किया। वेस्सन्तर को मार्ग में कोई बाधा न हो और किसी शत्रु को अवसर न मिल जाय सोच एक चतुर सुशिक्षित आदमी को वन के दरवाजे पर पहरेदार बनाकर बिठा दिया और उसे आज्ञा दी कि तू आने जाने वालों पर नजर रखना। इसके बाद वे अपने घर चले गये। स्त्री-पुत्र सहित वेस्सन्तर भी गन्ध मादन पर्वत पहुंचा। उस दिन वह वहीं रहा। तब वड़े पर्वत की छाया में उत्तराभिमुख चल केतुमती नदी के किनारे बैठ वनचर (मनुष्य) का दिया हुआ मांस खाया। उसे सोने की सुई दी। फिर नहा कर, (पानी) पीकर, थकावट उतारी और नदी पार कर सान पर्वत के शिखरपर स्थित निग्रोध की छाया में कुछ देर बैठा और उसके फल खाये। वहाँ से उठकर चल देने पर नालिक नाम के पर्वत पर पहुँचा। उसे छोड़ मुचलिन्द तालाब के किनारे किनारे पूर्वोत्तर कोने पर पग-डण्डी से जा घोर वन में पहुँचा। उसे भी पारकर गिरि-दुर्ग-नदी-नालों से आगे उस चौकोर पुष्करिणी पर पहुँचा।

उस समय देवराजा शक्र ने ध्यान लगाया तो उसे पता लगा कि बोधिसत्व ने हिमालय में प्रवेश किया है। उसे निवास-स्थान चाहिए। उसने विश्वकर्मा को बुलाकर भेजा—"तात! तू जा वङ्क पर्वत के अन्दर रमणीय स्थान पर आश्रम बनाकर आ।" उसने वहाँ पहुँचा दो पर्णशालायें बनवाई। रात्रि और दिन के लिए दो चन्क्रमण-भूमियाँ बनवाई। उनके सिरों पर नाना प्रकार के पुष्प-वृक्ष तथा कदली-वन लगवाये। फिर प्रव्रजितों की सभी आवश्यकताओं की व्यवस्था कर वहाँ यह अक्षर लिखवा दिये कि जो प्रव्रजित होना चाहें, वे इन्हें लेलें। तब अमनुष्यों, भयानक-शब्दों, जंगली जानवरों तथा पक्षियों को दूर हटा वह अपने निवास-स्थान को लौट आया।

बोधिसत्व ने भी जब पगडण्डी देखी तो समझा कि यह प्रव्रजितों के रहने की जगह होगी। उसने माद्री तथा अपने दोनों पुत्रों को आश्रम के सीमा-द्वार पर

खड़ा किया और स्वयं आश्रम में प्रविष्ट हुआ। जब अक्षर देखे तो समझ गया कि शक्र ने हमें देख लिया है। उसने पर्णशाला-द्वार खोल अन्दर प्रवेश किया और खड्ग तथा धनुष छोड़, कपड़े उतार, ऋषियों का वेष पहन लिया। फिर हाथ में लाठी ले, पर्णशाला से निकला और चन्क्रमण-भूमि पर चढ़ इधर-उधर चन्क्रमण किया। उसके बाद प्रत्येक बुद्ध सदृश शान्त-भाव से स्त्री-बच्चों के पास पहुँचा।

माद्री बोधिसत्व के चरणों पर गिरी और रोई। फिर उसी के साथ आश्रम की सीमा में प्रवेश कर, अपनी पर्णशाला में जा तपस्वी-वेष पहना। बाद में पुत्रों को भी तपस्वी-कुमार बना दिया। चारों क्षत्रिय वङ्क पर्वत में रहने लग गये। तब माद्री ने बोधिसत्व से वरदान मांगा—"—देव! आप फल-मूल के लिए न जाकर यही रहें। मै फल-मूल लाऊँगी।" इसके बाद से वह जंगल से फल-मूल लाकर तीनों जनो को पोसने लगी। बोधिसत्व ने भी वरदान मांगा—"माद्री! अब हम प्रब्रजित हो गये है। स्त्री ब्रह्मचर्य्य में बाधक है। अब से तू असमय मेरे पास न आना।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। बोधिसत्व की मैत्री के प्रताप से चारों ओर तीन योजन तक के सभी जानवर भी परस्पर मैत्री-चित्त हो गये।

माद्री देवी भी प्रातःकाल ही उठ, खाने-पीने की चीज उपस्थित कर, मुँह धोने का जल तथा दातुन लाती और फिर आश्रम में झाड़ दे, दोनों पुत्रों को पिता के पास छोड़, टोकरी खंति और कांटा हाथ में ले जंगल जाती। वहाँ से फूल-मूल ले, टोकरी भर, शाम को लौटती और फल-फूल को पर्णशाला में रख स्वयं स्नान करती तथा पुत्रों को भी स्नान कराती। तब चारों क्षत्रिय पर्णशाला के द्वार पर बैठ फल-मूल खाते। तब माद्री दोनों पुत्रों को ले अपनी पर्णशाला चली जाती। इस प्रकार वे सात महीने तक उसी पर्वत में रहे।

वन-प्रवेश काण्ड समाप्त

उस समय कलिङ्ग राष्ट्र में दुन्निविट्ठ ग्राम में रहने वाला पूजक नाम का एक ब्राह्मण था। उसने भीख मांगकर सौ कार्षापण इकट्ठे किये। उन्हें एक ब्राह्मण-परिवार के पास रखकर वह और धन खोजने के लिये गया। उसके आने में विलम्ब हुआ तो वह धन खर्च हो गया। जब उसने लौटकर मांगा तो कार्षापण न दे सकने के कारण उन्होंने अपनी अमित्रतापन नामक लड़की उसे दे दी। वह उसे कालिङ्ग

राष्ट्र में दुन्निविट्ठ गांव में ले गया और वहीं रहने लगा। अमित्रतापन अच्छी तरह ब्राह्मण की सेवा करती। तब दूसरे तरुण-ब्राह्मण उसके गुणों की ओर देख अपनी अपनी भार्य्याओं को ताड़ते। कहते—"यह बूढ़े ब्राह्मण की सेवा करती है। तुम हमारी ओर से क्यों लापरवाही करती हो?" उन्होंने सोचा, 'इस अमित्रतापन को इस गाँव से भगायेंगे।' इसलिये नदी तीर्थ आदि पर इकट्ठी हो वे उसकी हँसी उड़ाने लगीं।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

अहुवासी कलिंगेसु पूजको नाम ब्राह्मणो,
तस्सासि दहरा भरिया नामेनामित्ततापना ॥२७६॥

ता नं तत्थ गतावोचुं नदीउदकहारिका,
थियो तं परिभासिंसु समागन्त्वा कुतूहला ॥२७७॥

अमित्ता नून ते माता अमित्तो नून ते पिता,
ये तं जिण्णस्स पादंसु एवं दहरियं सतिं॥२७८॥

अहितं वत ते ञाती मन्तयिंसु रहोगता,
ये तं जिण्णस्स पादंसु एवं दहरियं सतिं॥२७९॥

दुक्करं वत ते ञाती मन्तयिंसु रहोगता,
ये तं जिण्णस्स पादंसु एवं दहरियं सतिं॥२८०॥

पापकं वत ते ञाती मन्तयिंसु रहोगता,
ये तं जिण्णस्स पादंसु एवं दहरियं सतिं॥२८१॥

अमनापं वत ते ञाती मन्तयिंसु रहोगता,
ये तं जिण्णस्स पादंसु एवं दहरियं सतिं॥२८२॥

अमनाप वासं वससि एवं दहरिया सती,
या त्वं वससि जिण्णस्स मतं ते जीविता वरं॥२८३॥

न हि नून तुय्हं कल्याणि पिता माता च सोभने,
अञ्ञं भत्तारं विन्दिंसु ये तं जिण्णस्स पादंसु
एवं दहरियं सतिं॥२८४॥

दुप्पिटंठ ते नवमियं अकतं अग्गिहुत्तकं,

ये तं जिण्णस्स पादंसु एवं दहरियं सतिं ॥२८५॥
समणे ब्राह्मणे नून ब्रह्मचरियपरायणे
सा त्वं लोके अभिसपि सीलवन्ते बहुस्सुते,
या त्वं वससि जिण्णस्स एवं दहरिया सती ॥२८६॥
न दुक्खं अहिना दट्ठं न दुक्खं सत्तिया हतं,
तञ्च दुक्खञ्च तिप्पञ्च यं पस्से जिण्णकं पतिं ॥२८७॥
नत्थि खिड्डा नत्थि रति जिण्णेन पतिना सह,
नत्थि अल्लापसल्लापो जग्घितम्पि न सोभति ॥२८८॥
यदा दहरो दहरा च मन्तयन्ति रहोगता,
सब्बेसं सोका नस्सन्ति ये केचि हदयनिस्सिता ॥२८९॥
दहरा त्वं रूपवती पुरिसानं अभिपत्थिता,
गच्छ ञाति कुले अच्छ किं जिण्णो रमयिस्सति ॥२९०॥

[कलिङ्ग राष्ट्र में पूजक नाम का ब्राह्मण था। उसकी अमित्रतापन नाम की भार्य्या थी ॥२७६॥ नदी जल लाने वाली स्त्रियाँ वहाँ जाने पर (जैसे) कुतूहल से उसका मजाक उड़ाती थीं ॥२७७॥ निश्चय से तेरे माता और पिता तेरे शत्रु हैं, जिन्होंने इस तरुण अवस्था में तुझे एक बूढ़े को सौंप दिया है ॥२७८॥ निश्चय से तेरे रिश्तेदारों ने एकान्त में तेरे विरुद्ध मन्त्रणा की है, जिन्होंने इस तरुण अवस्था में तुझे एक बूढ़े को सौंप दिया है ॥२७९॥ निश्चय से तेरे रिश्तेदारों ने एकान्त में बड़ी दुष्कर मन्त्रणा की है, जिन्होंने......दिया है ॥२८०॥ निश्चय से तेरे रिश्तेदारों ने बड़ी बुरी मन्त्रणा की है, जिन्होंने ......दिया है ॥२८१॥ निश्चय से तेरे रिश्तेदारों ने बड़ी प्रतिकूल मन्त्रणा की है......दिया है ॥२८२॥ इस तरुणाई में जो तू बूढ़े के साथ रहती है यह तो प्रतिकूल वास है। ऐसे रहने से तो मरना अच्छा है ॥२८३॥ हे कल्याणी ! हे सुन्दरी ! तेरे माता पिता ने तेरे लिये दूसरा पति नहीं ही खोजा ! इस तरुणाई में तुझे बूढ़े को सौंप दिया है ॥२८४॥ तेरा नौमी का यज्ञ ठीक नहीं हुआ होगा। तूने अग्नि-होत्र भी ठीक नहीं किया होगा। इस तरुणाई में तुझे बूढ़े को सौंप दिया गया ॥२८५॥ तूने ब्रह्मचारी, सदाचारी, बहुश्रुत श्रमण-ब्राह्मणों को बुरा-भला कहा है इसीलिये तुझे इस तरुणाई में बूढ़े के

साथ रहना पड़ रहा है ।।२८६।। सर्प का काटना इतना दुखदायी नहीं, शक्ति से मारा जाना इतना दुखदायी नहीं, जितना तीव्र दुख बूढ़े पति के साथ रहना है।।२८७।। बूढ़े पति के साथ न क्रीड़ा होती है, न रति होती है, न बातचीत होती है और उसका हँसना भी अच्छा नहीं लगता ।।२८८।। जब तरुण और तरुणी एकान्त में बातचीत करते हैं तो उनके हृदय के सभी शोक नष्ट हो जाते हैं ।।२८९।। तू तरुण है, रूपवान है, तुझे आदमी चाहते हैं। जा अपने पिता के घर जाकर रह। यह बूढ़ा क्या रमण करेगा ? ।।२९०।।]

जब उन्होंने उसका मजाक उड़ाया तो वह पानी का घड़ा ले रोती हुई घर पहुँची। ब्राह्मण ने पूछा—'आप क्यों रोती है ?" उसने उसे बताते हुए यह गाथा कही—

न ते ब्राह्मण गच्छामि नदिं उदकहारिया,
थियो मं परि भासन्ति तया जिण्णेन ब्राह्मण ।।२९१।।

[ब्राह्मण ! मैं अब तेरे लिये नदी पर पानी लेने न जाऊँगी। तेरे बूढ़ेपन की बात कहकर स्त्रियां मेरा मजाक उड़ाती हैं ।।२९१।।]

पूजक बोला—

मामेत्वं अकरा कम्मं मा मे उदकमाहरि,
अहं उदकमाहिस्सं मा भोति कुपिता अहू ।।२९२।।

[तू मेरा काम मत किया कर। तू पानी मत लाया कर। मैं पानी ले आऊँगा। देवी ! कुपित न हों ।।२९२।।]

ब्राह्मणी बोली—

नाहं तम्हि कुले जाता यं त्वं उदकमाहरे,
एवं ब्राह्मण जानाहि न ते वच्छामहं घरे ।।२९३।।
सचे मे दासं दासिं वा नानयिस्ससि ब्राह्मण,
एवं ब्राह्मण जानाहि न ते वच्छामि सन्तिके ।।२९४।।

[मैं ऐसे कुल में पैदा नहीं हूँ कि तू पानी लाये। हे ब्राह्मण ! तू यह जान ले कि मैं तेरे घर में नहीं रहूँगी ।।२९३।। हे ब्राह्मण ! यदि तू मेरे लिये दास या दासी

नहीं लायेगा, तो हे ब्राह्मण ! तू यह जान ले कि मैं तेरे घर में नहीं रहूँगी ॥२९४॥]

पूजक बोला—

नत्थि मे सिप्पट्ठानं वा धनं धञ्ञं व ब्राह्मणी,
कुतोहं दासं दासिं वा आनयिस्सामि भोतिया,
अहं भोतिं उपट्ठिस्सं मा भोति कुपिता अहू ॥२९५॥

[हे ब्राह्मणी ! मेरा कोई कारखाना नहीं, धन नहीं, धान्य नहीं। देवी ! मैं दास या दासी कहाँ से लाऊँ ? देवी ! क्रुद्ध मत हो। मै देवीकी सेवा करूँगा ॥२९५॥]

ब्राह्मणी बोली—

एहि ते अहमक्खिस्सं यथा मे वचनं सुतं,
एस वेस्सन्तरो राजा वंके वसति पब्बते ॥२९६॥
तं त्वं गन्त्वान याचस्सु दासं दासिञ्च ब्राह्मण,
सो ते दस्सति याचितो दासं दासिञ्च खत्तियो ॥२७९॥

[यहाँ आ, जैसा मैंने सुना है, वैसा मैं कहती हूँ। यह वेस्सन्तर राजा वंक पर्वत म रहता है। ब्राह्मण ! तू जाकर उससे दास और दासी की याचना कर। वह क्षत्रिय मांगने पर तुझे 'दास' और 'दासी' देगा ॥२९६-२९७॥]

पूजक बोला—

जिण्णोहमस्मि अबलो दीघोवद्धा सुदुग्गमो,
मा भोति परिदेवेसि मा च त्वं विमना अहू,
अहं भोतिं उपट्ठिस्सं मा भोति कुपिता अहू ॥२९८

[मैं बूढ़ा हूँ। दुर्बल हूँ। मार्ग लम्बा है और कठिन है। देवी ! मत रो पीट और मन खराब मत कर। देवी ! क्रुद्ध मत हो। मै तेरी सेवा करूँगा ॥२९८॥]

ब्राह्मणी बोली—

यथा अगन्त्वा संगामं अयुद्धोव पराजितो,
एवमेव तुवं ब्रह्मे अगन्त्वाव पराजितो ॥२९९॥
सचे मे दासं दासिं वा नानयिस्ससि ब्राह्मण

एवं ब्राह्मण जानाहि न ते वच्छामहं घरे,
अमनापं ते कीरस्सामि तं ते दुक्खं भविस्सति ॥३००॥
नक्खत्ते उतुपब्बेसु यदा मं दक्खसि लंकतं,
अञ्ञेहि सद्धिं रममानं तं ते दुक्खं भविस्सति ॥३०१॥
अदस्सनेन मह्यं ते जिण्णस्स परिदेवतो,
भीय्यो वंका च पलिता बहू हेस्सन्ति ब्राह्मण ॥३०२॥

[जैसे कोई बिना संग्राम में गये, बिना लड़े ही पराजित हो जाय, उसी प्रकार हे ब्राह्मण ! तू बिना संग्राम में गये ही पराजित हो गया। हे ब्राह्मण ! यदि तू मेरे लिये 'दास' 'दासी' नहीं लायेगा तो हे ब्राह्मण ! तू यह बात जान ले कि मैं तेरे घर नहीं रहूँगी। मैं तुझे अच्छी न लगने वाली बात करूंगी, जिससे तुझे दुःख होगा ॥२९९-३००॥ नक्षत्र-उत्सव में या पर्व-उत्सव में जब तू मुझे अलंकृत को किसी दूसरे के साथ रमण करते देखेगा तो तुझे दुःख होगा ॥३०१॥ हे ब्राह्मण ! जब तू मुझे न देख पायेगा और रोयेगा तो तेरे बदन पर और झुरियां पड़ जायेंगी तथा बाल भी और सफेद हो जायेंगे ॥३०२॥]

यह सुन ब्राह्मण डर गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो सो ब्राह्मणो भीतो ब्राह्मणिया वसानुगो,
अट्टितो कामरागेन ब्राह्मणिं एतदब्रवि ॥३०३॥
पाथेय्यं मे करोहि त्वं संकुल्या सगुळानिच,
मधुपिण्डिका च सुकतायो सत्तु भत्तञ्च ब्राह्मणी ॥३०४॥
आनयिस्सं मेथुनके उभो दासकुमारके,
ते तं परिचरिस्सन्ति रत्तिन्दिवमतन्दिता ॥३०५॥

[तब वह ब्राह्मण डर गया। ब्राह्मणी के वशीभूत हुए उस ब्राह्मण ने कामुकता से पीड़ित हो उस ब्राह्मणी से कहा—तू मेरे लिये गुड़ के पुओं सहित संकुलि का पाथेय तैयार कर। हे ब्राह्मणी ! अच्छी तरह तैयार किये गये लड्डू हों और सत्तु-भोजन हो ॥३०३-३०४॥ मैं दोनों दास-कुमारों की जोड़ी लेकर आऊंगा, जो रात दिन अप्रमाद-पूर्वक तेरी सेवा करेंगे ॥३०५॥]

उसने जल्दी से पाथेय तैयार कर ब्राह्मण को सूचना दी। उसने घर में मरम्मत की जगह मरम्मत की और दरवाजे को मजबूत बनाया। फिर जंगल से लकड़ी ला और घड़े में पानी ला सभी बरतन भर दिये। फिर वहीं तपस्वी का भेष बना उसे ताकीद की—"भद्रे ! अब से असमय बाहर मत निकलना। मेरे आने तक अप्रमादी रहना।" इसके बाद जूते पहन और पाथेय की थैली कँधे पर लटका, अमित्रतापन की प्रदक्षिणा कर, आंखों में आंसु भरकर चला।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इदं वत्वा ब्रह्मबन्धु पटिमुञ्चि उपहना,
ततो सो मन्तयित्वान भरियं कत्वा पदक्खिणं ॥३०६॥

पक्कामि सो रुण्णमुखो ब्राह्मणो सहितब्बतो,
सिवीनं नगरं फीतं दासपरियेसनं चरं ॥३०७॥

[उस ब्राह्मण-बन्धु ने यह कहा और जूते पहने। तब भार्य्या के साथ बातचीत कर और उसकी प्रदक्षिणा कर तपस्वी के भेष में वह ब्राह्मण घर से रोता रोता निकला। वह दास की खोज में सिवियों के समृद्ध नगर की ओर चला ॥३०७॥]

उसने उस नगर में पहुंच इकट्ठे हुए जनों से पूछा—"वेस्सन्तर कहाँ है ?"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सो तत्थ गन्त्वा अवच ये तत्थासुं समागता,
कुहिं वेस्सन्तरो राजा कत्थ पस्सेमु खत्तियं ॥३०८॥

सो जनो तं अवचासि ये तत्थासुं समागता,
तुम्हेहि ब्रह्मे पकतो अतिदानेन खत्तियो,
पब्बाजितो सका रट्ठा वंके वसति पब्बते ॥३०९॥

तुम्हेहि ब्रह्मे पकतो अतिदानेन खत्तियो,
आदाय पुत्तदारञ्च वंके वसति पब्बते ॥३१०॥

[जो लोग वहाँ इकट्ठे हुए थे, वहाँ पहुँचकर उसने पूछा—"वेस्सन्तर राजा कहाँ है ? हम उस क्षत्रिय को कहाँ देखें ?॥३०८॥ जो लोग वहाँ इकट्ठे हुए थे, उन्होंने उसे उत्तर दिया—"हे ब्राह्मणो ! तुम से तंग आकर, अति-दान के कारण

उसे देश-निकाला मिला है। अब वह वङ्क पर्वत पर रहता है॥३०९॥ हे ब्राह्मण! तुम से तंग आकर, स्त्री-पुत्र को लेकर वह क्षत्रिय वङ्क पर्वत पर रहता है॥३१०॥]

'इस प्रकार हमारे राजा का नाशकर, यह फिर चला आया है, जरा ठहर' कह लोगों ने ढेले और डण्डे हाथ में ले उसका पीछा किया। देवताओं के वशीभूत हो उसने वंक पर्वत का ही रास्ता ग्रहण किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सो चोदितो ब्राह्मणिया ब्राह्मणो कामगिद्धिमा,
अघं तं पतिसेवित्थ वने वाळमिगाकिण्णे
खग्गदीपिनिसेविते॥३११॥
आदाय वेलुवं दण्डं अग्गिहुत्तं कमण्डलुं,
सो पाविसि ब्रह्मरञ्जं यत्थ अस्सोसि कामदं॥३१२॥

तं पविट्ठं ब्रहारञ्ञं कोका नं परिवारयुं,
विक्कन्दि सो विप्पनट्ठो दूरे पन्था अपक्कमि॥३१३॥

ततो सो ब्राह्मणो गन्त्वा भोगलुद्धो असञ्ञतो,
वंकस्सोहरणे नट्ठो इमा गाथा अभासथ॥३१४॥

[ब्राह्मणी से प्रताड़ित कामुक-ब्राह्मण ने जँगली गेंडे, चीते आदि जंगली जानवरों के निवास-स्थान जंगल में प्रवेश कर दुःख प्राप्त किया। उसने बेल का डण्डा, सरवा तथा कमण्डल लिया और जिस जगह उसने कामनाओं की पूर्ति करने वाले वेस्सन्तर की बात सुनी थी, उस बड़े जंगल में प्रवेश किया। जब वह उस बड़े जंगल में घुसा तो उसे कुत्तों ने घेर लिया। वह मार्ग-भ्रष्ट होकर चिल्लाया और रास्ते से दूर चला गया। तब वह भोग-लोभी, दुराचारी ब्राह्मण वङ्क-पर्वत के मार्ग से पथ-भ्रष्ट हो ये गाथायें कहने लगा॥३१४॥]

को राजपुत्तं निसभं जयन्तं अपराजितं
भये खेमस्स दातारं को मे वेस्सन्तरं विदू॥३१५॥
यो याचतं पतिट्ठासि भूतानं धरणीरिव,
धरणूपमं महाराजं को मे वेस्सन्तरं विदू॥३१६॥

यो यावतं गती आसि सवन्तीनंव सागरो,
उदधूपमं महाराजं को मे वेस्सन्तरं विदू ॥३१७॥

कल्याणतित्थं सुचिमं सीतुदकं मनोरमं
पुण्डरीकेहि सञ्छन्नं युत्तं किञ्जक्खरेणुना,
रहदूपमं महाराजं को मे वेस्सन्तरं विदू ॥३१८॥

अस्सत्थं व पथे जातं सीतच्छायं मनोरमं
सन्तानं विस्समेतारं किलन्तानं पतिग्गहं,
तथूपमं महाराजं को मे वेस्सन्तरं विदू ॥३१९॥

निग्रोधं व पथे जातं सीतच्छायं मनोरमं,
सन्तानं विस्समेतारं किलन्तानं पटिग्गहं,
तथूपमं महाराजं को मे वेस्सन्तरं विदू ॥३२०॥

अम्बं इव पथे जातं सीतच्छायं मनोरमं,
सन्तानं विस्समेतारं किलन्तानं पटिग्गहं,
तथूपमं महाराजं को मे वेस्सन्तरं विदू ॥३२१॥

सालं इव पथे जातं सीतच्छायं मनोरमं,
सन्तानं विस्समेतारं किलन्तानं पटिग्गहं,
तथूपमं महाराजं को मे वेस्सन्तरं विदू ॥३२२॥

द्रुमं इव पथ जातं सीतच्छायं मनोरमं,
सन्तानं विस्समेतारं किलन्तानं पटिग्गहं,
तथूपमं महाराजं को मे वेस्सन्तरं विदू ॥३२३॥

एवञ्च मे विलपता पविट्ठस्स ब्रहावने,
अहं जानन्ति या वज्जा नन्दि सो जनये ममं ॥३२४॥

एवञ्च में विलपतो पविट्ठस्स ब्रहावने,
अहं जानन्ति यो वज्जा ताय सो एकवाचाय,
पसवे पुञ्ञं अनप्पकं ॥३२५॥

[कौन है जो मुझे उस राजपुत्र वेस्सन्तर का पता बतायेगा जो श्रेष्ठ है, जो विजयी है, जो अपराजित है तथा जो भय-भीत को निर्भय करने वाला है ॥३१६ ॥

कौन हूं जो मुझे महाराज वेस्सन्तर का पता बतायेगा जो याचकों का वैसा ही प्रतिष्ठा-स्थान है जैसे पृथ्वी सभी प्राणियों का और जो पृथ्वी के समान है ॥३१६॥ कौन है जो मुझे महाराज वेस्सन्तर का पता बतायेगा जो याचकों की उसी प्रकार प्रतिष्ठा है जैसे सागर नदियों की ओर जो सागर के समान है ॥३१७॥ कौन है जो मुझे महाराज वेस्सन्तर का पता बतायेगा जो कल्याण-तीर्थ, पवित्र शीतल जल वाले, मनोरम, कमलों से आच्छन्न, कमलों की रेणु युक्त तालाब के समान है ॥३१८॥ कौन हूं जो मुझे महाराज वेस्सन्तर का पता बतायेगा जो रास्ते में उत्पन्न अश्वत्थ वृक्ष की तरह . . . निग्रोधवृक्ष की तरह . . . आम्र वृक्ष की तरह . शाल वृक्ष की तरह . . . वृक्ष की तरह शीतल छाया वाले है, मनोरम हैं, श्रान्तों को विश्राम देने वाले हैं, क्लान्तों को आश्रय देने वाले हैं ॥३१९- ३२३॥ इस प्रकार इस घोर जंगल में प्रवेश कर विलाप करते हुए मुझको जो यह कहेगा कि मैं जानता हूँ, वह मुझे अत्यन्त आनन्द देगा ॥३२४॥ इस प्रकार इस घोर जंगल में प्रवेश कर विलाप करते हुए मुझको जो यह कहेगा कि मैं जानता हूँ वह इस एक वचन से बहुत पुण्य कमायेगा ॥३२५॥]

उसका विलाप सुना तो पहरे पर नियुक्त चेतिय-पुरुष ने, जो मृग का शिकारी बना हुआ जंगल में घूम रहा था, सोचा—'यह ब्राह्मण ! वेस्सन्तर का निवास-स्थान जानने के लिए विलाप कर रहा है। यह किसी धार्मिक बात के लिए नहीं आया है। यह माद्री अथवा बच्चे मांगेगा। इसे यहीं मार डालता हूँ।' उसने उसके पास जा, धनुष खेंच उसे डराया—'ब्राह्मण ! तुझे जीता न रहने दूंगा।'

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तस्स चेतो पटिस्सोसि अरञ्ञे लुद्दको चरं,
तुम्हेहि ब्रह्मे पकतो अतिदानेन खत्तियो,
पब्बाजितो सका रट्ठा वंके वसति पब्बते ॥३२६॥

तुम्हेहि ब्रह्मे पकतो अतिदानेन खत्तियो,
आदाय पुत्तदारञ्च वंके वसति पब्बते ॥३२७॥

अकिच्चकारी दुम्मेधो रट्ठा विवनमागतो,
राजपुत्तं गवेसन्तो बको मच्छमिवोदके ॥३२८॥

तस्स त्याहं न दस्सामि जीवितं इध ब्राह्मण,
अयं हि ते मया नुन्नो करो पास्सति लोहितं ॥३२९॥
सिरो ते वज्झयित्वान हदयं छेत्वा सबन्धनं,
पन्थ सकुणं यजिस्सामि तुय्हं मंसेन ब्राह्मण ॥३३०॥
तुय्हं मंसेन मेदेन मत्थकेन च ब्राह्मण,
आहुतिं पग्गहेस्सामि छेत्वान हदयं तव ॥३३१॥
तं मे सुयिट्ठं सुहुतं तुय्हं मंसेन ब्राह्मण,
न च त्वं राजपुत्तस्स भरियं पुत्तेच नेस्ससि ॥३३२॥

[जंगल में घूमने वाले शिकारी ने उसे यह प्रत्युत्तर दिया—'हे ब्राह्मण ! तुम से तंग आकर, अति-दान के कारण उसे देश-निकाला मिला है। अब वह वङ्क-पर्वत पर रहता है ॥३२६॥ हे ब्राह्मण ! तुम से तंग आकर, स्त्री-पुत्र को लेकर वह क्षत्रिय वङ्क-पर्वत पर रहता है ॥३२७॥ तू अहित-करने वाला है, तू मूर्ख है। तू राजपुत्र को खोजते खोजते राष्ट्र से यहां जंगल में आया है, जैसे जल में मछली ॥३२८॥ हे ब्राह्मण ! मैं तुझे जीवित न रहने दूंगा। यह मेरे द्वारा खीचां हुआ तीर तेरा रक्त-पान करेगा ॥३२९॥ तेरा सिर काट कर और तेरा हृदय पृथक करके हे ब्राह्मण ! मैं पथ-शकुन नाम का यज्ञ करूंगा ॥३३०॥ हे ब्राम्हण ! तेरे मांस, चर्बी और मस्तक से तथा तेरा हृदय काटकर मैं आहुति दूंगा ॥३३१॥ हे ब्राह्मण ! तेरे मांस से मेरा यज्ञ अच्छी तरह होगा। और तू राज-पुत्र की भार्य्या तथा बच्चों को भी न ले जा सकेगा ॥३३२॥]

उसने उसका कहना सुन, मृत्यु से भयभीत हो, झूठ बोलते हुए कहा—

अवज्झो ब्राह्मणो दूतो चेतपुत्त सुणोहि मे,
तस्मा दूतं न हनन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥३३३॥
निज्झत्ता सिवयो सब्बे पिता नं दट्ठुमिच्छति,
माता चदुब्बला तस्स अचिरा चक्खूनि जीयरे ॥३३४॥
तेसांह पहितो दूतो चेतपुत्त सुणोहि मे,
राजपुत्तं नयिस्सामि यदि जानासि संस मे ॥३३५॥

[हे चेति-पुत्र। सुन। ब्राह्मण-दूत अवध्य होता है। इसलिए दूत को नहीं मारते हैं। यही पुराना नियम है। सभी सिवी शान्त हो गये हैं। पिता उसे देखना चाहता है। उसकी माता दुर्बल हो गई है। शीघ्र ही उसकी आंखें जाती रहेंगी। हे चेति-पुत्र! मेरी बात सुन। मैं उनका भेजा हुआ दूत हूँ। यदि उनका पता मालूम हो, तो मुझे बता।।३३३-३३५]

तब चेति-पुत्र यह समझ कि यह वेस्सन्तर को लेने आया है, प्रसन्न हुआ। उसने कुत्तों को बाँध, ब्राह्मण को पेड़ से उतार शाखाओं के बीच बिठा यह गाथा कही—

पियस्स मे पियो दूतो पुण्णपत्तं ददामि ते,
इमञ्च मधुनो तुम्बं मिगसत्थिञ्च ब्राह्मण,
तञ्च ते देसमक्खिस्सं यत्थ सम्मति कामदो ।।३३६।।

[तू मेरे प्यारे का प्रिय-दूत है। मैं तुझे भरा पात्र देता हूँ। यह मधु का भरा हुआ तुम्बा है और यह मृग की जांघ है। और मैं तुझे वह देश भी बताता हूँ जहाँ कामनाओं की पूर्ति करने वाला रहता है ।।३३६।।]

पूजक-काण्ड समाप्त

चेतिय-पुत्र ने ब्राह्मण को भोजन कराया और रास्ने के लिये उसे कमण्डलु भरा शहद तथा पकी हुई मृग की जांघ दी और रास्ते पर खड़े हो दाहिना हाथ उठा बोधिसत्व का निवास-स्थान बताते हुए कहा—

एस सेलो महाब्रह्मे पब्बतो गन्धमादनो,
यत्थ वेस्सन्तरो राजा सह पुत्तेहि सम्मति ।।३३७।।
धारेन्तो ब्राह्मणं वण्णं आसदञ्चयसं जटं,
चम्मवासी छमा सेति जातवेदं नमस्सति ।।३३८।।
एते नीला पदिस्सन्ति नानाफलधरा दुमा,
उग्गता अब्भकूटं व नीला अञ्जनपब्बता ।।३३९।।
धवस्स कण्णा खदिरा साला फन्दनमालुवा,
सम्मवेधन्ति वातेन सकिं पीता व माणवा ।।३४०।।
उपरि दुमपरियायेसु संगीतियोव सूयरे,
नज्जूहा कोकिलसंघा सम्पतन्ति दुमा दुमं ।।३४१।।

अव्हयन्तेव गच्छन्तं सारवापण्णसमेरिता,
रमयन्तेव आगन्तुं मोदयन्ति निवासिनं,
यत्थ वेस्सन्तरो राजा सह पुत्तोहि सम्मति ॥३४२॥
धारेन्तो ब्राह्मणं वण्णं आसदञ्च मसं जटं,
चम्मवासी छमा सेति जातवेदं नमस्सति ॥३४३॥

[हे महाब्राह्मण ! यह गन्धमादन पर्वत है, जहाँ पुत्रों सहित राजा वेस्सन्तर वास करता है ॥३३७॥ श्रेष्ठ वेष में अकुश, आहुति डालने का सरुआ, तथा जटा धारण किये हुए वह पृथ्वी पर चर्म बिछाकर सोता है और अग्नि की पूजा करता है ॥३३८॥ ये नील-वर्ण, आकाश-शिखर के समान, अञ्जन पर्वत पर उगे हुए फलदार वृक्ष दिखाई देते हैं ॥३३९॥ पहली बार मदिरा पिये तरुण की भान्ति धव, अश्व-कर्ण, खदिर, शाल, फन्दन तथा मालुव के पेड़ हवा मे हिल रहे हैं ॥३४०॥ पेड़ों की ऊपरी शाखाओं पर संगीत सुनाई देता है। नज्जूह तथा कोकिल एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदते हैं ॥३४१॥ शाखाओं के हिलने वाले पत्ते जाने वालों को बुलाते (प्रतीत होते) है, आने वालों का दिल बहलाते हैं और रहने वालों को सुख देते है। वहीं पुत्रों सहित राजा वेस्सन्तर निवास करता है ॥३४२॥ श्रेष्ठ-वेष में अंकुश, आहुति, डालने का सरवा तथा जटा धारण किये हुए वह पृथ्वी पर चर्म बिछाकर सोता है और अग्नि को नमस्कार करता है ॥३४३॥]

इससे आगे भी आश्रम-भूमि की प्रशंसा करता हुआ कहने लगा—

अम्बा कपित्था पनसा साला जम्बु विभीतका,
हरीतका आमलका अस्सत्था खदरानि च ॥३४४॥
चारू तिम्बरुक्खाचेत्थ निग्रोधा च कपित्थना,
मधु मधुका थेवन्ति नीचे पक्काचुदुम्बरा ॥३४५॥
पोखता भवेय्या च मुद्दिका च मधुत्थिका,
मधुं अनेलकं तत्थ सकमाऽऽय भुञ्जरे ॥३४६॥
अञ्ञेत्थ पुप्फिता अम्बा अञ्ञे तिट्ठन्ति दोविला,
अञ्ञे आमा च पक्का च भेकवण्णा तदूभयं ॥३४७॥
अथेत्थ हेट्ठा पुरिसो अम्बपक्कानि गण्हति,

आमानि चेव पक्कानि वण्णगन्धरसुत्तमे ॥३४८॥

अतेव मे अच्छरियं हिंकारो पटिभाति मं,
देवानमिव आवासो सो भति नन्दनूपमो ॥३४९॥

विभेदिका नाळिकेरा खज्जुरीनं ब्रहावने,
मालाव गन्थिता ठन्ति धजग्गानेव दिस्सरे,
नानावण्णेहि पुप्फेहि नभं ताराचितामिव ॥३५०॥

कुटजी कुटठतगरी पाटलियो च पुप्फिता,
पुन्नागा गिरिपुन्नागा कोविळारा च पुप्फिता ॥३५१॥

उद्दालका सोमरुक्खा अगरु भल्लियो व हू,
पुत्तजीवा च ककुधा असनाचेत्थ पुप्फिता ॥३५२॥

कुटजा सलळा नीपा कोसम्ब लबुजा धवा,
साला च पुप्फिता तत्थ पलाल खल सन्निभा ॥३५३॥

तस्साविदूरे पोक्खरणी भूमिभागे मनोरमे,
पदुमुप्पलसञ्छन्ना देवानमिव नन्दने ॥३५४॥

अथेत्थ पुप्फरसमत्ता कोकिला मञ्जुभाणिका,
अभिनादेन्ति पचनं उतुसम्पुप्फिते दुमे ॥३५५॥

भस्सन्ति मकरन्देहि पोक्खरे पोक्खरे मधु,
अथेत्थ वाता वायन्ति दक्खिणा अथ पच्छिमा,
पदुम किञ्जक्खरेणूहि ओकिण्णो होति अस्समो ॥३५६॥

थूला सिंघाटका चेत्थ संसादिया पसादिया,
मच्छकच्छप व्याविद्धा बहूचेत्थमुपयानका,
मधुँभिसेहि सवति खीरं सप्पिमुळालिहि ॥३५७॥

सुरभि तं वनं वाति नानागन्धसमेरितं,
सम्मद्दतेव गन्धेन पुप्फसारवाहि तं वनं,
भमरा पुप्फगन्धेन समन्तामभिनादिता ॥३५८॥

अथेत्थ सुकणा सन्ति नानावण्णा बहूदिजा,
मोदन्ति सहभरियाहि अञ्ञमञ्ञं पकूजिनो ॥३५९॥

नन्दिका जीव पुत्ता च जीवपुत्ता पियाचनो,
पिया पुत्त ! पिया नन्दा दिजा पोक्खरणीधरा ॥३६०॥

मालाव गन्थिता ठन्ति धजग्गानेव दिस्सरे,
नानावण्णेहि पुप्फेहि कुसलेहेव सुगन्धिका,
यत्थ वेस्सन्तरो राजा सह पुत्तेहि सम्मति ॥३६१॥

धारेन्तो ब्राह्मणं वण्णं आसदञ्च मसञ्जटं,
चम्मवासी छमा सेति जातवेदं नमस्सति ॥३६२॥

[आम, कैथ, कटहल, शाल, जामुन, विभीतक, हर्रे, आंवला, अश्वत्थ तथा खैर के पेड़ ॥३४४॥ सुन्दर तिम्ब-वृक्ष, न्यग्रोध, कैथ, महुआ, और नीचे पके गूलर शोभा देते हैं ॥३४५॥ मधु चाहने वाले पारेवत भवेय्य (फल ?), अंगूर तथा शुद्ध मधु स्वयं लेकर खाते हैं । कुछ आमों पर बौर आ गया है, कुछ में गुठली पड़ गई है। कुछ कच्चे हैं और कुछ पके हैं—दोनों का वर्ण मेण्डक के वर्ण के समान है ॥३४६-३४७॥ वहाँ नीचे खड़ा हुआ आदमी ही पके आम तोड़ सकता है—कच्चे और पके आम, वर्ण तथा रस में श्रेष्ठ ॥३४८॥ मुझे आश्चर्य होता है। यह निवास-स्थान देवताओं के नन्दन-वन की तरह सुशोभित है ॥३४९॥ ताड़, नारियल और खजूरों के घोर जंगल मे इन फलों की मालायें सी गुथी हुई हैं । ये अलंकृत ध्वजाओं के समान प्रतीत होते हैं । नाना वर्ण के पुष्प आकाश के तारागणों के समान सुशोभित हैं ॥३५०॥ कुटजी, कुट्ठ, तगरी तथा पाटलि पुष्पित हैं। पुन्नाग, गिरि-पुन्नाग और कोविळार पुष्पित हैं ॥३५१॥ उद्दालक, सोम-वृक्ष, अगरू, बहुत से भल्लिय, पुत्रजीव, ककुध तथा असन पुष्पित हैं ॥३५२॥ कुटज, सलळ, नीप, कोसम्ब, लबुज, धव और शाल इतने पुष्पित थे कि उनका नीचे पड़ा हुआ ढेर पराल के खलिहान के समान था ॥३५३॥ उससे थोड़ी ही दूर पर मनोरम प्रदेश मे पुष्करिणी थी, जो कमलों से ढकी थी और देवताओं के नन्दन-वन की पुष्पकरिणी के समान थी ॥३५४॥ वहाँ पुष्पों के रस से मस्त, मधुर-भाषिणी कोयल हैं, जो ऋतु के अनुसार पुष्पित वृक्षों पर बैठ बन को निनादित कर देती हैं ॥३५५॥ पद्मनी के पत्तों पर मकरन्द झरता है। दक्षिण तथा पश्चिम से हवा चलती है। पद्म की रेणु से आश्रम ढका हुआ है ॥३५६॥ वहाँ बड़े बड़े सिंघाड़े हैं, स्वयं उत्पन्न धान गिर

कर मच्छ-कच्छप युक्त पानी में बहे जाते दिखाई देते हैं । यहाँ बहुत से कर्कट हैं। भिसों से मधु चूता है और मृणालों से दूध ।।३५७।। इस वन में नाना प्रकार की सुगन्धित हवा चलती है । पुष्पशाखाओं से यह वन लोगों को मस्त बना देता है। पुष्प-गन्ध के कारण चारों ओर भ्रमर गूँजते हैं ।।३५८।। यहाँ नाना वर्णों के पक्षी हैं। वे परस्पर चहचहाते हुए अपनी भार्य्याओं के साथ आनन्द मनाते है ।।३५९।। यहाँ पुष्करिणी पर नन्दिका, जीव-पुत्र, जीव-पुत्र-प्रिय, पिय-पुत्र तथा प्रियानन्दा नाम के पक्षी है ।।।३६०।। नाना वर्णों के पुष्प ऐसे लगते है जैसे कुशाल लोगों ने मालायें गूँथी हों और वे ध्वजाओं के समान सुशोभित हैं । यहाँ पुत्रों सहित वेस्सन्तर राजा रहता है ।।३६१।। श्रेष्ठ वेश अंकुश, आहुति डालने का सरवा तथा जटा धारण किये हुए वह पृथ्वी पर चर्म बिछाकर सोता है और अग्नि को नमस्कार करता है ।।३६२।।]

इस प्रकार जब चेतिपुत्र ने वेस्सन्तर के निवास-स्थान का पता दे दिया तो पूजक ने प्रसन्न हो कुशल-क्षेम की बात करते हुए यह गाथा कही—

इदञ्च मे सत्तुभत्तं मधुना पटिसंयुतं,
मधुपिण्डिका च सुकतायो सत्तुभत्तं ददामिते ।।३६३।।

[यह मेरे पास मधु-मिश्रित सत्तु-भोजन है और अच्छी तरह बने लड्डू हैं। मैं तुझे यह सत्तु-भोजन देता हूँ ।।३६३।।]

यह सुन चेति-पुत्र ने कहा—

तुय्हेव सम्बलं होतु नाहं इच्छामि सम्बलं,
इतोपि ब्रह्मे गण्हाहि गच्छ ब्रह्मे यथासुखं ।।३६४।।
अयं एकपदी एति उजुं गच्छति अस्समं,
इसीपि अच्चुतो तत्थ पंकदन्तो रजस्सिरो,
धारेन्तो ब्राह्मणं वण्णं आसदञ्च मसञ्जटं ।।३६५।।
चम्पवासी छमा सेति जातवेदं नमस्सति,
तं त्वं गन्त्वान पुच्छस्सु सो ते मग्गं पवक्खति ।।३६६।।

[यह 'पाथेय' तेरा ही रहे। मैं 'पाथेय' नहीं चाहता। हे ब्राह्मण ! यहाँ से भी 'पाथेय' ले जा और सुखपूर्वक जा ।।३६४।। यह पगडण्डी सीधी आश्रम जाती

है। वहाँ एक ऋषी भी रहता है, जिसके दान्त मैले हैं और सिर में धूल है। उसका श्रेष्ठ वेष है, और वह अंकुश, आहुति डालने का सराव तथा जटायें धारण किये है। वह चर्म बिछाकर पृथ्वी पर सोता है। उसे जाकर तू पूछना। वह तुझे मार्ग बतायेगा ।।३६५-३६६।।]

इदं सुत्वा ब्रह्मबन्धु चेतं कत्वा पदक्खिणं,
उदग्गचित्तो पक्कामि येनासि अच्चुतो इसि ।।३६७।।

[यह बात सुन, ब्रह्म-बन्धु ने चेति-पुत्र की प्रदक्षिणा की और प्रसन्न चित्त हो जहाँ अच्चुत ऋषि था वहाँ गया ।।३६७।।]

उपवन वर्णन समाप्त

गच्छन्तो भारद्वाजो सो अद्दस अच्चुतं इसिं,
दिस्वान तं भारद्वाजो सम्मोदि इसिना सह ।।३६८।।
कच्चिन्नु भोतो कुसलं कच्चि भोतो अनामयं,
कच्चि उञ्छेन यापेसि कच्चि मूलफला बहू ।।३६९।।
कच्चि डंसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे कच्चि हिंसा न विज्जति ।।३७०।।

[उस भारद्वाज (पूजक) ने जाते हुए अच्चुत-ऋषी को देखा। उसे देख भारद्वाज ने ऋषी के साथ कुशल-वार्ता की। आप सकुशल तो हैं? आप निरोग तो हैं? क्या फल-मूल चुगकर ही जीवन-यापन करते है? क्या फल-मूल बहुत हैं? क्या डंक मारने वाले जानवर, मच्छर तथा रेंगने वाले कीड़े थोड़े ही हैं? क्या जंगली जानवरों के वन में हिंसा नहीं होती? ।।३६८-३७०।।]

तपस्वी बोला—

कुसलञ्चेव मे ब्रह्मे अथो ब्रह्मे अनामयं,
अथो उञ्छेन यापेमि अथो मूलफला बहू ।।३७१।।
अथो डंसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वालमिगाकिण्णे हिंसा मय्हं न विज्जति ।।३७२।।
बहूनि वस्सपूगानि अस्समे वसतो मम,
नाभिजानामि उप्पन्नं आबाधं अमनोरमं ।।३७३।।

स्वागतं ते महाब्रह्मे अथो ते अदुरागतं,
अन्तो पविस भद्दन्ते पादे पक्खालयस्सुते ॥३७४॥
तिन्दुकानि पियालानि मधुके कासुमारियो,
फलानि खुद्दकप्पानि भुञ्ज ब्रह्मे वरं वरं ॥३७५॥
इदम्पि पाणीयं सीतं आभतं गिरिगब्भरा,
ततो पिव महाब्रह्मे सचे त्वं अभिकंखसि ॥३७६॥

[हे ब्राह्मण ! मैं सकुशल हूँ। हे ब्राह्मण ! मैं निरोग हूँ। मैं फल-मूल चुगकर जीवन यापन करता हूँ। फल-मूल भी बहुत हैं ॥३७१॥ डंक मारने वाले, मच्छर तथा रेंगने वाले जानवर भी अधिक नहीं है। वन में जंगली जानवर हैं किन्तु मुझे कष्ट नहीं होता ॥३७२॥ मुझे आश्रम में रहते बहुत से वर्ष हो गये। मुझे कभी कोई बुरी बीमारी नहीं हुई ॥३७३॥ महाब्राह्मण ! तेरा स्वागत है। महाब्राह्मण ! तेरा आना शुभ है। तेरा भला हो। तू अन्दर प्रवेश कर और अपने पाँव धो ॥३७४॥ तिन्दुक, पियाल, मीठें कासुमारिय तथा दूसरे अच्छे-अच्छे, छोटे-बड़े फल खा ॥३७५॥ यह गिरि-गह्वर से लाया हुआ शीतल पानी है। हे महाब्रह्मे ! यदि इच्छा हो तो पी ॥३७६॥]

पूजक बोला—

पटिग्गहीतं यं दिन्नं सब्बस्स अग्घियं कतं
सञ्जयस्स सकं पुत्तं सिवीहि विप्पवासितं,
तमहं दस्सनमागतो यदि जानासि संस मे ॥३७७॥

[जो कुछ मुझे दिया, वह मैंने स्वीकार किया। यह सब अमूल्य है। सञ्जय के अपने पुत्र को सिवि-वासियों ने देश-निकाला दे दिया है। मैं उसे देखने आया हूँ। यदि जानता हो तो मुझे बता ॥३७७॥]

तपस्वी बोला—

न भवं एति पुञ्ञत्थं सिविराजस्स दस्सनं,
मञ्ञे भवं पत्थयति रञ्ञो भरियं पतिब्बतं ॥३७८॥
मञ्ञे कण्हाजिनं दासिं जालिं दासञ्च इच्छसि,
अथवा तयो मातापुत्ते अरञ्ञो नेतुमागतो,
न तस्स भोगा विज्जन्ति धनं धञ्ञञ्चब्राह्मण ॥३७९॥

[आपका सिविराज को देखने आना शुभ-संकल्प नहीं मालूम देता। मालूम होता है कि आप राजा की पतिव्रता भार्य्या को चाहते हैं ।।३७८।। मालूम होता है कि आप कृष्णाजिना को दासी रूप में और जालि को दास रूप में चाहते हैं। अथवा हो सकता है कि तीनों माता-पुत्रों को जंगल से लेने आये हों। हे ब्राह्मण ! उसके पास अब धन-धान्य रूपी भोग-पदार्थ नहीं हैं ।।३७९।।]

यह सुन पूजक बोला—

अकुद्धरूपाहं भोता नाहं याचितुमागतो,
साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो ।।३८०।।
अदिट्ठपुब्बो सिविराजा सिवीहि विप्पवासितो,
तमहं दस्सनमागतो यदि जानासि संस मे ।।३८१।।

[आप मुझ पर क्रोध न करें। मै याचना करने नहीं आया हूँ। आर्यो का दर्शन अच्छा है और उनकी संगति सुखदायक है। जब से सिवियों ने उसे देश से निकाला है, तब से मैंने सिविराज को नहीं देखा है। मै उसे देखने के लिये आया हूँ। यदि जानता है तो मुझे बता ।।३८०-३८१।।]

उसने उसका विश्वास कर कहा—'अच्छा, तुझे बताता हूँ। आज तू यहीं रह। उसे फल-मूल से संतर्पित कर अगले दिन हाथ उठाकर मार्ग दिखाते हुए कहा—

एस सेलो महाब्रह्मे पब्बतो गन्धमादनो,
यत्थ वेस्सन्तरो राजा सह पुत्तेहि सम्मति ।।३८२।।

. . . .

. . . .।।३९१।।

[यहाँ पृष्ठ (५७८-५७९) पर आई सं० ३४० से सं० ३४९ तक की गाथाओं की पुनरावृत्ति है। अर्थ पृष्ठ (५७९) पर ही देखें ।।३८२-३९१।।]

करेरिमाला वितता भूमिभागे मनोरमे,
सद्दलाहरिता भूमि न तत्थुद्धंसते रजो ।।३९२।।
मयूर गीव संकासा तूलफस्ससमूपमा,
तिणानि नातिवत्तन्ति समन्ता चतुरंगुला ।।३९३।।
अम्बा जम्बूकपित्था च नीचे पक्कावुदुम्बरा,

परिभोगेहि रुक्खेहि वनं तं रतिवड्ढनं ॥३९४॥
वेळुरियवण्णूपनिभं मच्छगुम्बनिसेवितं,
सुचि सुगन्धं सलिलं आपो तत्थपि संदति ॥३९५॥
तस्साविदूरे पोक्खरणी भूमिभागे मनोरमे,
पदुमुप्पलसञ्छन्ना देवानमिव नन्दने ॥३९६॥
तीणि उप्पलजातानि तस्मिं सरसि ब्राह्मण,
विचित्र नीलानेकानि सेतलोहितकानि च ॥३९७॥

[सुन्दर भूमि पर करेरी-पुष्पों की माला फैली थी । सतत हरित वर्ण पृथ्वी पर धूल नहीं उड़ रही थी ॥३९२॥ मोर की गर्दन के समान, रूई जैसे कोमल तिनके चारों ओर चार अङ्गुल से अधिक नहीं बढ़ते थे ॥३९३॥ आम, जामुन, कैथ तथा नीचे पके गूलर आदि फल-दार वृक्षों से वह वन सुशोभित था ॥३९४॥ बिल्लौर के रंग के मच्छों के समूह से युक्त, पवित्र, सुगन्धित जल वाली नदी वहाँ बहती है ॥३९५॥ उसके पास ही रमणीय भूमिभाग में पुष्करिणी है जो देवताओं के नन्दन वन के पद्मों से ढकी है ॥३९६॥ हे ब्राह्मण! उस पुष्करिणी में तीन प्रकार के उत्पल हैं—कुछ नीले हैं, कुछ सफेद हैं तथा कुछ लाल हैं ॥३९७॥]

इस प्रकार चतुष्कोण पुष्करिणी की शोभा का वर्णन कर अब मुचलिन्द तालाब का वर्णन करते हुए कहा—

खोमा च तत्थ पदुमा सेतसोगन्धिकेहि च,
कलम्बकेहि सच्छन्नो मुचलिन्दो नाम सो सरो ॥३९८॥
अपेत्थ पदुमा फुल्ला अपरियन्ताव दिस्सरे,
गिम्हा हेमन्तिका फुल्ला जण्णुतग्घा उपत्थरा ॥३९९॥
सुरभि सम्पवायन्ति विचित्रा पुप्फसन्थता,
भमरा पुप्फगन्धेन समन्तामभिनादिता ॥४००॥

[मुचलिन्द नाम का वह तालाब खोम सदृश पद्मों से तथा श्वेत-सुगन्धित कलम्बकों से आच्छन्न था ॥३९८॥ यहाँ पुष्पित-पद्मों की कहीं कोई सीमा नहीं दिखाई देती—ग्रीष्मकाल तथा हेमन्त-काल में पुष्पित होने वाले पुष्प पानी में जाँघ तक ऊँचे खड़े हैं ॥३९९॥ नाना प्रकार के फूलों की सुगन्धी से सुगन्धित

वायु चलती है और पुष्पों की सुगन्धी से आकर्षित होकर फूल चारों ओर गूंजते हैं ।।४००।।]

अथेत्थ उदकन्तस्मिं रुक्खा तिट्ठन्ति ब्राह्मण,
कदम्बा पाटली फुल्ला कोविळारा च पुप्फिता ।।४०१।।
अंकोला कच्चिकारा च पारिजञ्ञा च पुप्फिता,
वारणसायना रुक्खा मुचलिन्दमभितो सरं ।।४०२।।
सिरीसा संतपारीसा साधु वायन्ति पद्मका
निग्गुण्डी सिरिनिग्गुण्डी असनाचेत्थ पुप्फिता ।।४०३।।
पंगुरा वकुला साला सोमञ्जना च पुप्फिता,
केतका कणिकारा च कणवेरा च पुप्फिता ।।४०४।।
अज्जुना अज्जुकण्णा च महानामा च पुप्फिता,
सम्पुप्फितग्गा तिट्ठन्ति पज्जलन्तेव किंसुका ।।४०५।।
सेतपण्णी सत्तपण्णा कदलीयो कुसुम्भरा,
धनुतक्कारी पुप्फेहि सिंसपावरणेहि च ।।४०६।।
अच्छिवा सबला रुक्खा सल्लकियो च पुप्फिता,
सेतगेरुच तगरा मंसिकुट्ठा कुलावरा ।।४०७।।
वहरा च रुक्खा वुद्धा च अकुटिला चेत्थ पुप्फिता,
अस्समं उभतो ठन्ति अग्यागारं समन्ततो ।।४०८।।

[हे ब्राह्मण ! वहाँ सरोवर के तट पर वृक्ष खड़े है—कदम्ब, पाटली तथा कोविलार । सभी सुपुष्पित हैं ।।४०१।। मुचलिन्द सरोवर के चारों ओर अंकोल, कच्चिकार, पारिजञ्ञ और पुष्पित वारणसायक वृक्ष थे ।।४०२।। सिरीस, श्वेत-पारिस तथा पद्मक अच्छी तरह सुगन्ध देते हैं । निग्गुण्डी सिरिनिग्गुण्डी तथा असन वहाँ पुष्पित हैं ।।४०३।। पङ्गुर, वकुल, शाल और पुष्पित सोभञ्जन । केतक, कणिकार और पुष्पित कणवेर ।।४०४।। अर्जुन, अर्जुन-कर्ण और पुष्पित महानाम किंसुक इस प्रकार पुष्पित खड़े हैं, मानों प्रज्वलित हों ।।४०५।। श्वेत पर्णी, सप्त-पर्णी, कदली तथा कुसुम्भर वृक्ष हैं जो धनुतक्कारी पुष्पों से तथा सरसों की चादर से ढके थे ।।४०६।। अच्छिव, सबल तथा सुपुष्पित सल्लकी । श्वेतगेरू, तगर, मंसि,

कुट्ठ तथा कुलावर वृक्ष ।।४०७।। छोटे, बड़े, सीधे तथा पुष्पित पेड़ अग्नि-आगार को चारों ओर से घेर आश्रम के दोनों ओर खड़े हैं ।।४०८।।]

अथेत्थ उदकन्तस्मिं बहुजातो फणिज्जको,
मुग्गतियो कटतियो सेवालसिसकं बहु ।।४०९।।
उद्दापवन्तं उल्लुळितं मक्खिका हिंगुजालका,
दासीमकचकोचेत्थ बहू नीचेकलम्बका ।।४१०।।
फलम्बरकसञ्छन्ना रुक्खा तिट्ठन्ति ब्राह्मण,
सत्ताहं धारियमानानं गन्धो तेसं न विज्जति ।।४११।।
उभतो सरं मुचलिन्दं पुप्फा तिट्ठन्ति सोभना,
इन्दीवरेहि सञ्छन्नं वनन्तमुपसोभितं ।।४१२।।
अद्धमासं धारियमानानं गन्धो तेसं न छिज्जति,
नीलपुप्फिसेतवारी पुप्फिता गिरिकण्णिका,
कटेरुकेहि सञ्छन्नं वनन्तं तुलसीहि च ।।४१३।।
सम्मद्दतेव गन्धेन पुप्फसाखाहि तं वनं,
भमरा पुप्फगन्धेन समन्तामभिनादिता ।।४१४।।
तीणि कक्कारुजातानि तस्मिं सरसि ब्राह्मण,
कुम्भमत्तानि चेकानि मुरजमत्तानि ता उभो ।।४१५।।

[वहाँ पानी के तट पर बहुत से कणिज्जक, मूंग, मांस शैवाल तथा लाल चंदन हैं।।४०९।। वहाँ पानी हिल्लोरें भरता है। हिङ्गजालक पौदों पर मधुमक्खियां गुञ्जार करती घूमती है। दासी तथा मकचक थे और बहुत से नीचकलम्बक थे। ।।४१०।। हे ब्राह्मण ! एलम्बक नाम की लताओं से पेड़ ढके हुए हैं। उनके पुष्पों की गन्ध सप्ताह भर तक रहती है। मुचलिन्द सरोवर के दोनों ओर सुन्दर पुष्प है। वन के सिरे पर इन्दीवर शोभा दे रहे हैं। उनके पुष्पों की गन्ध आध महीने तक नही जाती। नीलपुष्फी, श्वेतवारी तथा गिरिकर्णिका से सुशोभित है। कटेरुक तथा तुलसी वृक्ष से वन आच्छादित है।।४११-४१३।। पुष्पों वाली शाखाओं के पुष्पों की सुगन्धी से वह वन मस्त है पुष्पों की गन्ध से भौंरें चारों ओर गुंजार कर रहे है।।४१४।।] ब्राह्मण ! उस

तालाब में तीन कक्कारु-फल हैं—एक घड़े जितने बड़े और दो मृदङ्ग जितने बड़े ॥४१५॥]

> अथेत्थ सासपो बहुको नादियो हरितायुतो,
> असी तालाव तिट्ठन्ति छेज्जा इन्दीवरा बहू ॥४१६॥
> अप्फोटा सुरियवल्लीच काळिया मधुगन्धिया,
> असोका मुदयन्ती च वल्लिभो खुद्दपुप्फियो ॥४१७॥
> कोरण्डका अनोजाच पुप्फिता नागवल्लिका,
> रुक्खमारुय्ह तिट्ठन्ति फुल्ला किंसुकवल्लियो ॥४१८॥
> कटेरुहा च वासन्ती यूथिका मधुगन्धियो,
> नीलिया सुमना भण्डी सोभति पदुमुत्तरो ॥४१९॥
> पाटली समुद्दकप्पासी कणिकारा च पुप्फिता,
> हेमजाला च दिस्सन्ति रुचिरा अग्गिसिखूपमा ॥४२०॥
> यानि कानि च पुप्फानि थलजानुदकानि च,
> सब्बानि तत्थ दिस्सन्ति एवं रम्मो महोदधी ॥४२१॥

[वहाँ सरसों बहुत है, हरा आयुत तथा नादिय (नहमुन) बहुत हैं, असी (वृक्ष) ताड़ वृक्ष के समान खड़े हैं तथा इन्दीवर काटने योग्य हैं ॥४१६॥ वहाँ अप्फोट (लता) है, सुरियवल्ली है, काळिया है, मधुगन्धिया है, अशोक है, मुदयन्ती है, वल्लिभो है और खुदपुप्फियाँ हैं ॥४१७॥ कोरण्डक और अनोज नाग-लतायें पुष्पित हैं, फूली हुई किंसुक लतायें वृक्षों पर चढ़ी हुई हैं ॥४१८॥ कटेरुह, वासन्ती तथा जूही मधु के समान गन्ध वाले पुष्प-वृक्ष हैं। नीलिया सुमना लता, भण्डी और पद्मुत्तर वृक्ष सुशोभित है ॥४१९॥ पाटली, समुद्र कप्पासी और कर्णिकार पुष्पित हैं। ये स्वर्ण-जाल के समान सुन्दर और अग्नि-शिखा के समान दिखाई देते हैं। ॥४२०॥ जितने भी स्थल अथवा जल में उत्पन्न होने वाले पुष्प हैं, वे सभी वहां दिखाई देते हैं। मुचलिन्द सरोवर ऐसा रमणीय है ॥४२१॥]

> अथस्सा पोक्खरणिया पहूता वारिगोचरा,
> रोहिता नळपी सिङ्गुकुम्भीला मकरा सुसू ॥४२२॥
> मधु च मधुलट्ठी च तालीसा च पियंगुका,

उन्नका भद्दमुत्ता च सपुप्फा च लोलुपा ।।४२३।।
सुरभी च रुक्खा तगरा पहूता तुङ्गवण्टका,
पद्मका नरदा कुट्ठा झामका च हरेणुका ।।४२४।।
हलिद्दका गन्धसिला हिरिवेरा च गुग्गुला,
विभेदिका, चोरका कुट्ठा कप्पूरा च कलिंगुच ।।४२५।।

[इस पुष्करिणी में जल के जीव बहुत हैं—रोहित, नलपी, सिङ्गु, मगर-मच्छ, मकर तथा सोंस (?) ।।४२२।। मधु, मलहरी, तालीस, प्रियङ्गु (=राई), उन्नक, भद्रमुस्त, शत-पुष्प तथा लोलुप (पौदे) हैं ।।४२३।। वहां सुगन्धित वृक्ष हैं—तगर, तुङ्गवंटक, पद्मक, नरद, कुट्ठ, झामक तथा हरेणुक ।।४२४।। हलदी, गन्धशिला, हिरिवेट, गुग्गल, विभेदिक, चोरक, कुट्ठ, कपूर तथा कलिङ्ग हैं ।।४२५।।]

अथेत्थ सीहब्यग्घा च पुरिसालू च हत्थियो,
एणेय्य पसदा चेव रोहिच्चा सरभा मिगा ।।४२६।।
कोट्ठसुणा सुलोपी च तुलिया नळसन्निभा,
चपरी चलनी लङ्घी झापिता मक्करा पिचु ।।४२७।।
कक्कटा कतमाया च इक्का गोणसिरा बहू,
खग्गा वराहा नकुला कालकेरत्थ बहूतसो ।।४२८।।
महिसा सोणा सिगाला च पम्पका च समन्ततो,
आकुच्चा पचलाका च चित्रका चापि दीपियो ।।४२९।।
पेलका च विघासादा सीहा कोकनिसातका,
अट्ठपादा च मोरा च भस्सरा च ककुत्थका ।।४३०।।
चंकोटा कुक्कुटा नागा अञ्ञमञ्ञं पकूजिनो,
बका बलाका नज्जूहा दिन्दिभा कुञ्जवादिका ।।४३१।।
ब्यग्घीनसा लोहपिट्ठा पम्पका जीवजीवका,
कपिञ्जरा तित्तिरायो कुलावा पटिकुत्तका ।।४३२।।
मद्दालका चेतकेदु भण्डुतित्तिरनामका,
चेलाबका पिंगुलायो गोधका अंगहेतुका ।।४३३।।

करविया च सग्गा च उहुंकारा च कुक्कुहा,
नानादिजगणाकिण्णं नानासरनिकुज्जितं ॥४३४॥

[वहाँ शीघ्र-व्याघ्र हैं, पुरिसालू-यक्षणियां हैं, हाथी है, एणेय्य चितकवरे मृग हैं और रोहित तथा शरभ मृग हैं। गीदड़ हैं, कुत्ते हैं, सुलोपी (मृग) हैं, तुलिय (बिल्ले) हैं, नल पुष्प के से वर्ण के बन्दर है, चमरी, चलनी तथा लङ्घी वात-मृग हैं, झापित, मर्कट और पिचू (बन्दर) है ॥४२६-४२७॥ कर्कट तथा कतमाया (मृग), भालु और बहुत से वन-वृषभ है। गेंडे है, सूअर है, मगर-मच्छ है और बहुत से काल-मृग है ॥४२८॥ भैंसे है, बन्दर है, गीदड़ है और चारों ओर पम्पक (?) हैं। गोह है, गजकुम्भ मृग है, चित्रक है तथा दीपि मृग है। खरगोश हैं, विधा-साद (पक्षी) हैं, सिंह है, कोक (भेड़िये) को खाने वाले जानवर है, शरभ मृग है, मोर हैं, हंस हैं तथा ककुत्थ (पक्षी) है ॥४२९-४३०॥) चकोर हैं, मुर्गे है, परस्पर चिंघाड़ने वाले नाग हैं, बगुले है, सारस हैं, नज्जुहा (पक्षी) हैं, दिन्दिया (पक्षी) है तथा कुज्जवादिक (पक्षी) है ॥४३१-॥ बाज़ है, लोहित पृष्ठ (पक्षी) हं, पम्पक (पक्षी) है, जीव जीवक है, कपिंजर है, तीतर है, कुलाव तथा पटिकुत्तक हैं ॥४३२॥ पद्दाल है, चेतकेदु हैं, भण्डु है, तीतर है, चेलावक है, पिङ्गल है, गोधक हैं तथा अङ्ग हेतुक है ॥४३३॥ कोयल है, चातक हैं, उल्लु है और कुक्कु है। इस प्रकार नाना तरह के पक्षियों से आकीर्ण तथा नाना प्रकार के स्वरों से गुञ्जारित हैं ॥४३४॥]

अथेत्थ सकुणा सन्ति नीलका मञ्जुभाणका,
मोदन्ति सहभरि याहि अञ्ञमञ्ञं पकुजिनो ॥४३५॥
अथेत्थ सकुणा सन्ति दिजा मञ्जुस्सरा सिता,
सेतच्छकूटा भद्रक्खा अण्डजा चित्रपेक्खुणा ॥४३६॥
अथेत्थ सकुणा सन्ति दिजा मञ्जुस्सरा सिता,
सिखण्डिनीलगीवाहि अञ्ञमञ्ञं पकुजिनो ॥४३७॥
ककुत्थका कुलीरका कोट्ठापोक्खरसातका,
काळामेय्या बलीयक्खा कदम्बा सुवसाळिका ॥४३८॥
हलिद्दा लोहिता सेता अथेत्था नळका बहू,

वारणा हिंगुराजा च कदम्बा सुवकोकिला ॥४३९॥
उक्कुसा कुररा हंसा आटा परिवदन्तिका,
पाकहंसा अतिबला नज्जुहा जीवजीवका ॥४४०॥
पारेवता रविहंसा चक्कवाका नदीचरा,
वारणाभिरुदा रम्भा उभो कालूपकूजिनो ॥४४१॥
अथेत्थ सकुणा सन्ति नानावण्णा बहू दिजा,
मोदान्ति सह भरियाहि अञ्ञमञ्ञं पकूजिनो ॥४४२॥
अथेत्थ सकुणा सन्ति नानावण्णा बहू दिजा,
सब्बे मरजूनि कूजन्ति मुचलिन्दमभितो सरं ॥४४३॥
अथेत्थ सकुणा सन्ति करवी नाम ते दिजा,
मोदन्ति सह भरियाहि अञ्ञमञ्ञं पकूजिनो ॥४४४॥
अत्थेत्थ सकुणा सन्ति करवी नाम ते दिजा,
सब्बे मञ्जूनि कूजन्ति मुचलिन्दमभितो सरं ॥४४५॥
एणेय्यपसदाकिण्णं नाम संसेवितं वनं,
नानालताहि सञ्छन्नं कदलीमिगसेवितं ॥४४६॥
अथेत्थ सासपो बहुको नीवारो वरको बहु,
सालो अकट्ठ पाको चं उञ्छुतत्थ अनप्पको ॥४४७॥
अयं एकपदो एति उजुं गच्छति अस्समं,
खुदं पिपासं अरतिं तत्थ पत्तो न विन्दति,
यत्थ वेस्सन्तरो राजा सह पुत्तेहि सम्मति ॥४४८॥
धारेन्तो ब्राह्मणं वण्णं आसदञ्च मसंजटं,
चम्मवासी छमा सेति जातवेदं नमस्सति ॥४४९॥

[यहाँ मधुर-बोली वाले नीले पक्षी हैं। वे अपनी भार्य्याओं के साथ परस्पर कूजते हैं ॥४३५॥ यहाँ निरन्तर मधुर-बोली बोलने वाले पक्षी है जिनकी आँखों के गोलक तथा आँखें सुन्दर हैं, जो अण्डज है और जिनके विचित्र पर हैं ॥४३६॥ यहाँ निरन्तर मधुर-बोली बोलने वाले पक्षी हैं, जिनके सिर पर कलगी है, जिनकी गरदन नीली है और जो परस्पर कूजते हैं ॥४३७॥ ककुत्थक हैं, मुर्गे हैं, कोट्ठ हैं,

पोक्खर हैं और सातक हैं, काळामेय्य हैं, बलीयक्ष हैं और कदम्ब (वृक्ष) पर बैठने वाले तोते मैना हैं ।।४३८।। वहाँ बहुत से पीले, लाल और श्वेत रंग के सरकण्डे हैं, वारण, हिङ्गुराज तथा कदम्ब पर रहने वाले तोते तथा कोयल हैं ।।४३९।। कुररी हैं, कुररा हैं, चम्मच-चोंचे हैं, परिवदन्तिका हैं, पाक-हंस हैं, अति-बल (पक्षी) हैं, नज्जुहा हैं तथा जीव जीवक हैं ।।४४०।। कबूतर हैं, रवि-हंस हैं, नदीचर चक्रवाक है, सुन्दर स्वर वाले वारण (पक्षी) हैं, जो दोनों समय गूंजते हैं ।।४४१।। इस प्रकार नाना तरह के बहुत से पक्षी हैं जो अपनी भार्य्याओं के साथ परस्पर कूजते हैं ।।४४२।। इस प्रकार नाना तरह के बहुत से पक्षी हैं जो मुचलिन्द तालाब के चारों ओर सुन्दर कुंजन करते हैं ।।४४३।। यहाँ कोयल पक्षी हैं जो अपनी भार्य्याओं के साथ परस्पर कुंजन करते हुए आनन्द मनाते हैं ।।४४४।। यहाँ कोयल पक्षी हैं जो मुचलिन्द सरोवर के चारों ओर सुन्दर कुंजन करते हैं ।।४४५।। एणि तथा पसद मृगों से आकीर्ण, नागों से सेवित है, नाना प्रकार की लताओं से ढका हुआ है और कदली मृग से सेवित है ।।४४६।। वहाँ सरसों बहुत है, नीवार तथा वरक बहुत है, साली है, अकट्ठपाक है, और वहाँ ऊख बहुत है ।।४४७।। यह जो पगडण्डी आती है, वह सीधी आश्रम जाती है, वहाँ पहुंचने वाले को क्षुधा, पिपासा और असन्तोष नहीं रहता और सन्तान सहित वेस्सन्तर राजा वहीं रहता है ।।४४८।। श्रेष्ठ वेष में अंकुश, आहुति डालने का सरवा तथा जटा धारण किये हुए वह पृथ्वी पर चर्म बिछा कर सोता है और अग्नि को नमस्कार करता है ।।४४९।।]

इदं सुत्वा ब्रह्मबन्धु इसिं कत्वा पदक्खिणं,
स्सन्तरो उदग्गाय वेयचलोतमिक्किप अहू ।।४५०।।

[यह सुना तो उस ब्राह्मण ने ऋषी की प्रदक्षिणा की और प्रसन्न होकर वहाँ गया जहाँ वेस्सन्तर राजा था ।।४५०।।]

महावन वर्णन समाप्त

पूजक भी अच्चुत तपस्वी के बताये मार्ग से गया और चौकोर पुष्करिणी पर पहुँच सोचने लगा—आज बहुत शाम हो गई। अब मद्री जंगल से लौट आयेगी। स्त्रियां दान देने में बाधा उपस्थित करने वाली होती हैं। कल जिस समय वह जंगल में गई होगी, उस समय मैं आश्रम पहुँच वेस्सन्तर से बच्चों की याचना कर,

उसके आने से पहले उन्हें लेकर चला जाऊँगा। वह समीप के ही एक सानु-पर्वत पर चढ़ आराम की जगह लेट रहा।

उस रात ब्राह्म-मुहूर्त में माद्री ने स्वप्न देखा। स्वप्न ऐसा था—एक आदमी है। काला रंग है। दो काषाय वस्त्र पहने है। दोनों कानों में लाल मालाएं धारण किये, हाथों में शस्त्र लिये डराता हुआ आया है और पर्णशाला मे प्रवेश कर माद्री को जटा से पकड़, खींचकर भूमि पर पट गिरा दिया है। वह रोती रही है। उसकी दोनों आँखें निकाल, दोनों हाथ काट, छाती चीर, रक्त चूते हृदय-माँस को लेकर चला गया है। वह जाग गई तो उसे डर लगा। उसने सोचा कि मैंने बुरा स्वप्न देखा है। स्वप्न का अर्थ लगाने वाला मेरे वेस्सन्तर के समान कोई नहीं है। मैं उसे जाकर पूछूंगी। उसने पर्णशाला जा बोधिसत्व का पर्णशाला-द्वार खटखटाया। बोधिसत्व ने पूछा—"कौन है?" "देव! मैं माद्री हूँ।" "भद्रे। हमने परस्पर जो तय किया था, उसका उल्लंघन कर असमय क्यों आई है?" "देव! काम राग के कारण नहीं आई हूँ। मैंने बुरा स्वप्न देखा है।" "माद्री! तो सुना।" उसने जैसा देखा था वैसा कह सुनाया। बोधिसत्व ने स्वप्न का विचार किया तो समझ लिया कि मेरी दान-पारमिता की पूर्ति होने जा रही है। कल याचक आकर मुझ से मेरी सन्तान माँगेगा। उसने माद्री को सान्तवना देकर विदा करने के लिए कहा—"माद्री! तेरे दुशयन अथवा दुर्भोजन के कारण चित्त चंचल हो गया होगा। डर मत।" रात बीतने पर उसने अपने सभी कृत्य समाप्त कर, दोनों पुत्रों को गोद में ले उनका चुम्बन लिया—'आज मैंने बुरा स्वप्न देखा। तात! अप्रमादी होकर रहना।' फिर बोधिसत्व को दोनों बच्चे सौंप और दोनों के बारे में सावधान रहने के लिये कह, टोकरी आदि ले, आँसू पोछंती हुई, फल-मूल लेने के लिये जंगल गई।

पूजक भी यह समझ कि अब माद्री जंगल गई होगी, सानु-पर्वत से उतरा और पग-डण्डी के रास्ते आश्रम की ओर आया। बोधिसत्व भी पर्णशाला के बाहर पत्थर की पटड़ी पर स्वर्ण-प्रतिमा की तरह बैठकर प्यासे शराबी की तरह उसकी प्रतीक्षा करने लगे कि अब माँगने वाला आयेगा। उसके बच्चे भी पैरों के पास खेल रहे थे। उसने रास्ता देखते हुए ब्राह्मण को आते देखा। उसने सात महीने से उठा-कर रखी हुई दान-धुरी को पुनः उठाते हुए की तरह प्रसन्नता पूर्वक 'ब्राह्मण! तू आ' कहते हुए जालिया कुमार को संबोधित कर यह गाथा कही—

उट्ठेहि जालि पतिट्ठ पोराणं विय दिस्सति,
ब्राह्मणं विय पस्सामि नन्दियो माभिकीररे ।।४५१।।

[जालि उठकर प्रतिष्ठित हो। पूर्व जैसा ही दिखाई देता है। ब्राह्मण जैसा देखता हूँ। मेरे मन में आनन्द हिलोरें ले रहा है ।।४५१।।]

यह सुन कुमार ने कहा—

अहम्पि तात पस्सामि यो सो ब्रहाव दिस्सति,
अत्थिको विय आयाति अतिथि नो भविस्सति ।।४५२।।

[तात! वह जो ब्राह्मण जैसा आता है, मुझे भी दिखाई देता है। वह याचक की तरह चला आ रहा है। वह हमारा अतिथि होगा ।।४५२।।]

यह कह कुमार उसका सत्कार करने के लिये आसन से उठा और ब्राह्मण की अगवानी कर उसका सामान लेना चाहा। ब्राह्मण ने उसे देखते ही सोचा—यह वेस्सन्तर का पुत्र जालीय कुमार होगा। उसने आरम्भ से ही कठोर वचन बोलने का निश्चय कर ताली बजाई—'दूर हो।' कुमार ने दूर हटकर सोचा—'क्या कारण है। यह ब्राह्मण अति कठोर है।' उसने उसके शरीर की ओर ध्यान दिया, तो उसे आदमी के अट्ठारह दोष दिखाई दिये। ब्राह्मण ने भी बोधिसत्व के पास जा कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा—

कच्चिन्नु भोतो कुसलं कच्चि भोतो अनामयं,
कच्चि उञ्छेन यापेथ कच्चि मूलफला बहू ।।४५३।।
कच्चि डंसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे कच्चि हिंसा न विज्जति ।।४५४।।

[देखें गाथा संख्या ३७२ तथा ३७३।।]

बोधिसत्व ने भी उससे कुशल-क्षेम की बातचीत करते हुए कहा—

कुसलञ्चेव नो ब्रह्मे अथो ब्रह्मे अनामयं,
अथो उञ्छेन यापेम अथो मूल फला बहू ।।४५५।।
अथो डंसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे हिंसा अम्हं न विज्जति ।।४५६।।

[देखें गाथा संख्या ३७४ तथा ३७५।।]

सत्त नो मासे वसतं अरञ्ञे जीवसोकिनं,
इमम्पि पठमं पस्साम ब्राह्मणं देववण्णिनं,
आदाय बेळुवं दण्डं अग्गिहुतं कमण्डलुं ॥४५७॥

[जंगल में बिना किसी के रहते सात महीने हो गये। यह देव-ब्राह्मण का प्रथम ही दर्शन है—विल्व का डण्डा, अग्नि-होम तथा कमण्डल लिये हुए ॥४५७॥]

स्वागतं ते महाब्रह्मे अथो ते अदुरागतं,
अन्तो पविस भद्दन्ते पादे पक्खालयस्सुते ॥४५८॥
तिन्दुकानि पियालानि मधुके कासुमारियो,
फलानि खुद्दकप्पानि भुञ्ज ब्रह्मे वरं वरं ॥४५९॥
इदम्पि पाणियं सीतं आभतं गिरिगब्भरा,
ततो पिव महाब्रह्मे सचे त्वं अभिकंखसि ॥४६०॥

[देखें गाथा संख्या ३७७, ३७८ तथा ३७९॥]

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा—'यह ब्राह्मण इस घोर-जंगल में व्यर्थ नहीं आया होगा। बिना बिलम्ब किये मैं इससे आने का कारण पूछूंगा।' उसने यह गाथा कही—

अथत्वं केन वण्णेन केन वा पन हेतुना,
अनुप्पत्तो ब्रहारञ्ञं तं मे अक्खाहि पुच्छितो ॥४६१॥

[हे ब्राह्मण ! मैं पूछता हूँ मुझे बता कि तू किस उद्देश्य से किस हेतु से इस घोर-जंगल में आया है ? ॥४६१॥]

पूजक ने उत्तर दिया—

यथा वारिवहो पूरो सब्बकाले न खीयति,
एवं तं याचिता गच्छि पुत्ते मे देहि याचितो ॥४६२॥

[जैसे भरी हुई नदी कभी क्षीण नहीं होती। इसी प्रकार मैं तुमसे माँगने आया हूँ। मेरे मांगने पर आप अपनी सन्तान मुझे दें ॥४६२॥]

यह सुन बोधिसत्व ने प्रसन्न हो पसारे हाथ पर हज़ार की थैली रखते हुए की तरह पर्वत को गुजाँते हुए ये गाथायें कहीं—

ददामि न विकम्पामि इस्सरो नय ब्राह्मण,
पातो गता राजपुत्ती सायं उञ्छातो एहीति ॥४६३॥
एकरत्तिं वसित्वान पातो गच्छसि ब्राह्मण,
तस्सा नहाते उपघाते अथ ने मालधारिने ॥४६४॥
एकरत्तिं वसित्वान पातो गच्छसि ब्राह्मण,
नानावत्थेहि सञ्छन्ने नानागन्धविभूसिते,
नाना मूलफला किण्णे गच्छिस्सादाय ब्राह्मण ॥४६५॥

[मैं कांपता नहीं हूँ। मैं देता हूँ। तू मेरे बच्चों का स्वामी है। इन्हें ले जा। राजपुत्री प्रातःकाल फलमूल चुगने गई है। शाम तक लौट आयेगी। हे ब्राह्मण! एक रात रहकर प्रातःकाल जाना जब वह आकर इन्हें नहला देगी, सूंघ लेगी और मालाएं पहना देगी।। हे ब्राह्मण! एक रात रहकर प्रातःकाल नाना प्रकार के वस्त्रों से अच्छादित, नाना प्रकार की सुगन्धियों से विभूषित और नाना प्रकार के फल-मूल के साथ इन्हें लेकर जाना ॥४६३-४६५॥]

पूजक बोला—

न वासमभिरोचामि गमणं मय्ह रुच्चति,
अन्तरायोपि मे अस्स गच्छञ्ञेव रथेसभ ॥४६६॥
न हेता याचयोगी नं अन्तरायस्स कारिया,
इत्थियो मन्तं जानान्ति सब्बं गण्हन्ति वामतो ॥४६७॥
सद्धाय दानं ददतो मासं अद्दक्खि मातरं,
अन्तरायम्पि सा कयिरा गच्छञ्ञेव रथेसभा ॥४६८॥
आमन्तयस्सु ते पुत्ते मा ते मातरमद्दसुं,
सद्धाय दानं ददतो एवं पुञ्ञं पवड्ढति ॥४६९॥
आमन्तयस्सु ते पुत्ते मा ते मातरमद्दसुं,
मादिसस्स धनं दत्वा राज सग्गं गमिस्ससि ॥४७०॥

[मैं रहना नहीं चाहता। मुझे जाना ही अच्छा लगता है। हे रथेसम! कुछ बाधा भी हो सकती है। मैं तो जाऊँगा ही ॥४६६॥ स्त्रियाँ दान-शीला नहीं होती। वे बाधा ही डालने वाली होती हैं। स्त्रियाँ मन्त्र जानती है। वे सभी कुछ उल्टा करके

ग्रहण करती हैं ।।४६७।। श्रद्धापूर्वक दान दिये जाते हुओं को इनकी माँ न देखे। इस प्रकार श्रद्धा से दान देने से अधिक पुण्य होता है ।।४६८।। अपने पुत्रों को बुला। वे माता को न देखें। हे राजन! मेरे जैसे को (पुत्र) धन देने से तुझे स्वर्ग लाभ होगा ।।४६९-४७०।।]

वेस्सन्तर बोला—

सचेत्वं निच्छसे दट्ठुं मम भरियं पतिब्बतं,
अय्यकस्सपि दस्सेहि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ।।४७१।।
इमे कुमारे दिस्वान मञ्जुके पियभाणिन,
पतीतो सुमनो वित्तो बहुं दस्सति ते धनं ।।४७२।।

[यदि तू मेरी पति-व्रता भार्य्या को नहीं देखना चाहता है। तो मेरे पिता को जालि तथा कृष्णाजिना दोनों को दिखाना। इन सुन्दर प्रिय-भाषी कुमारों को देखकर प्रसन्न-चित्त हुआ मेरा पिता तुझे बहुत धन देगा ।।४७१-४७२।।]

पूजक बोला—

अच्छेदनस्स भायामि राजपुत्त सुणोहि मे,
राजा दण्डाय मं दज्जा विक्किणेय्य हनेय्य वा,
जीनो धनञ्च दासे च गारय्हस्स ब्रह्मबन्धुया ति ।।४७३।।

[हे राजपुत्र! मेरी बात सुन। मुझे डर लगता है कि कहीं ये मुझसे छीन न लिये जायें। सम्भव है राजा मेरे दण्ड की व्यवस्था करे, मुझे बिकवावे (?) या मरवावे। ब्राह्मणी भी मेरी निन्दा करे कि इसने धन तथा दास दोनों को गँवाया ।।४७३।।]

वेस्सन्तर बोला—

इमे कुमारे दिस्वान मञ्जुके पियभाणिने,
धम्मे ठितो महाराज सिवीनं रट्ठवड्ढनो,
लद्धा पीति सोमनस्सं बहुं दस्सति ते धनं ।।४७४।।

[इन सुन्दर प्रिय-भाषी कुमारों को देखकर, सिवियों का राष्ट्र-वर्धक धार्मिक महाराजा प्रसन्न हो तुझे बहुत धन देगा ।।४७४।।]

पूजक बोला—

नाहं तम्पि करिस्सामि यं मं त्वं अनुसाससि,
दारके च अहं नेस्सं ब्राह्मणिया परिचारके ॥४७५॥

[जो बात तू मुझ करने को कहता है, वह मैं नहीं करूँगा। मैं ब्राह्मणी के लिये सेवक-बच्चे ले जाऊँगा ॥४७५॥]

उसकी ऐसी कठोरवाणी सुन बच्चे पर्णशाला के पिछवाड़े भागे। वहाँ पिछवाड़े से भी भाग घनी झाड़ियों में जा छिपे। वहाँ भी उन्हें ऐसा लगता था कि कहीं पूजक आकर पकड़ न ले। वे डर के मारे काँपते थे और कहीं भी ठहर न सकने के कारण जहाँ-तहाँ दौड़कर पुष्करिणी के किनारे पहुँचे। वहाँ वे वल्कल-चीर को अच्छी तरह कस, पानी में उतर, कमल-पत्र से सिर ढक पानी में जा छिपे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो कुमारा व्यथिता सुत्वा लुद्दस्स भासितं,
तेन तेन पधाविंसु जालिकण्हाजिना उभो ॥४७६॥

[उस क्रूर की वाणी सुन बच्चे दुखी हुए। वे दोनों—जालि और कृष्णाजिना—जहाँ-तहाँ दौड़ने लगे ॥४७६॥]

पूजक को भी जब कुमार न दिखाई दिये तो उसने बोधिसत्व को खरी-खोटी सुनाई—"वेस्सन्तर! तू ने अभी मुझे बच्चे दिये। जब मैंने कहा कि मैं जेतुत्तर नगर नहीं जाऊँगा और बच्चों को ब्राह्मणी की सेवा करने के लिये ले जाऊँगा तो तूने संकेत से बच्चों को भगा दिया और अब ऐसे बैठा है जैसे कुछ नही जानता हो। मालूम होता है कि संसार में तेरे समान झूठा कोई नहीं है।" यह सुना तो बोधिसत्व ने सोचा, वे डरकर भाग गये होगें। उसने कहा 'ब्राह्मण! चिन्ता न कर। मैं तुझे कुमारों को लाकर देता हूँ।' वह उठकर पर्णशाला के पिछवाड़े गया। तब उसने जाना कि वे घने झंगल में घुस गये। वह उनके पैरों के चिह्न के अनुसार पुष्करिणी के तट पर पहुंचा। जब उसने देखा कि उनके पाँव पानी में उतरे हैं तो वह समझ गया कि पानी में उतर कर छिपे होगें। उसने "तात! जालिनी" बुलाकर दो गाथायें कहीं—

एहि तात पियपुत्त पूरेथ मम पारमिं,
हदयं मेभिसिञ्चेथ करोथ वचनं मम ॥४७७॥

याननावा च मे होथ अचला भवसागरे,
जातिपारं तरिस्सामि सन्तारेस्सं सदेवकं ॥४७८॥

[तात प्रियपुत्र। आ। मेरी पारमिता को पूरा कर। मेरे हृदय को सींच। मेरा कहना कर। भवसागर को पार करने के लिये मेरी स्थिर नौका-वाहन बन। मैं जन्म-मरण के बन्धन के पार जाऊँगा और सदेव लोक का उद्धार करूँगा ॥४७८-४७८॥]

कुमार ने पिता का शब्द सुना तो सोचने लगा—'ब्राह्मण चाहे मेरा जो कुछ करे। मैं पिता के साथ दो बातें नहीं करूँगा।' उसने सिर निकाला और कँवल के पत्ते हटा पानी से निकला। फिर बोधिसत्व के दाहिने पाँव पर गिर, पैर का गिट्टा जोर से पकड़ रोने लगा। तब बोधिसत्व ने पूछा—"तात! तेरी बहन कहाँ है?" "तात! भय का कारण उपस्थित होने पर प्राणी अपनी रक्षा करते ही हैं।" बोधिसत्व ने समझा कि मेरे बच्चों ने परस्पर एक दूसरे को वचन दिया होगा। उसने 'अम्म कण्ह! आ' बुलाते हुए दो गाथायें कहीं—

एहि अम्म पियधीति पूरेथ मम पारमिं,
हदयं मेमिसिञ्चेथ करोथ वचनं मम ॥४७९॥
याननावा च मे होथ अचला भवसागरे,
जातिपारं तरिस्सामि उद्धरिस्सं सदेवकं ॥४८०॥

[अम्म प्रिय पुत्री! आ। मेरी पारमिता को पूरा कर। मेरे हृदय को सींच। मेरा कहना कर। भव-सागर के पार करने के लिये मेरी स्थिर नौका-वाहन बन। मैं जन्म-मरण के बन्धन के पार जाऊंगा और सदेव लोक का उद्धार करूंगा।४७९-४८०॥]

उसने भी सोचा कि पिता के साथ दो बातें नहीं करूँगी। वह भी उसी तरह बाहर निकली और बोधिसत्व के बायें पाँव पर गिरकर, पैर का गिट्टा जोर से पकड़ रोने लगी। उनके आँसू बोधिसत्व के खिले कमलों जैसे चरणों पर पड़ते। बोधिसत्व ने बच्चों को उठाकर आश्वसान दिया और बोला—"तात जालि! क्या तू मेरे दानी होने की बात नहीं जानता? तात मेरे उद्देश्य को पूरा कर।" उसने वहाँ खड़े ही खड़े जैसे कोई बैलों का मूल्य निश्चित

करे बच्चों का मूल्य निश्चित कर दिया। उसने पुत्रों को सम्बोधित कर कहा—"तात जालि ! यदि तू दासता से मुक्त होना चाहे तो ब्राह्मण को हजार निकष देकर मुक्त हो जाना। तेरी बहन असाधरण सुन्दरी है। कोई नीच-जाति का आदमी ब्राह्मण को कुछ भी धन दे, तेरी बहन को दासता से मुक्त कर, 'जाति' को कलङ्कित कर सकता है। राजा के अतिरिक्त कोई दूसरा 'सभी सौ चीजें' नहीं दे सकता। इस लिये यदि तेरी बहन दासता से मुक्त होना चाहे तो ब्राह्मण को 'सौ दास सौ दासियाँ, सौ हाथी, सौ घोड़े, तथा सौ निकष, इस प्रकार सभी सौ सौ चीजें देकर दासता से मुक्त होवे। इस प्रकार बच्चों का मूल्य निश्चित कर, उन्हें आश्वासन दे, आश्रम ले जा, कमण्डल से पानी ले, ब्राह्मण को बुलाया, और यह प्रार्थना की कि मेरा यह दान सर्वज्ञ-ज्ञान का प्रत्यय बने, ब्राह्मण को प्रिय-पुत्रों का दान कर दिया। उसने कहा—'हे ब्राह्मण ! सौ पुत्रों से, हजार पुत्रों से और लाख पुत्रों से भी सर्वज्ञता-ज्ञान मेरे लिये प्रियतर है।'

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो कुमारे आदाय जालिं कण्हाजिनञ्चुभो,
ब्राह्मणस्स अदा दानं सिवीनं रट्ठवड्ढनो ॥४८१॥

ततो कुमारे आदाय जालिं कण्हाजिनञ्चुभो,
ब्राह्मणस्स अदा वित्तो पुत्तके दानमुत्तमं ॥४८२॥

तदासि यं भिंसनकं तदासि लोमहंसनं,
यं कुमारे पदिन्नम्हि मेदिनी समकम्पथ ॥४८३॥

तदासि यं भिंसनकं तदासि लोमहंसनं,
यं पञ्जलिकतो राजा कुमारे सुखवच्छिते,
ब्राह्मणस्स अदा दानं सिवीनं रट्ठवड्ढनो ॥४८४॥

[तब सिवियों के राष्ट्र-वर्धन ने जालि तथा कृष्णाजिना दोनों बच्चों को ब्राह्मण को दान कर दिया ॥४८१॥ तब जालि और कृष्णाजिना दोनों बच्चों को ले उसने ब्राह्मण को पुत्रों का उत्तम दान दे दिया ॥४८२॥ तब शोर हो गया, तब रोमाञ्च हो उठा। बच्चों का दान दिये जाते समय पृथ्वी काँप उठी ॥४८३॥ उस समय शोर हो गया, उस समय रोमाञ्च हो गया जब सिवियों

के राष्ट्र-वर्धन राजा ने सुख में पले हुए बच्चों को कर-बद्ध हो ब्राह्मण को दान दे दिया ।।४८४।।]

बोधिसत्व दान दे चुकने पर खड़े हो यह सोचते हुए कि मेरा दान सु-दान है बच्चों को देखने लगे। पूजक भी घने जंगल में घुसा। वहाँ दान्त से एक लता काट उसने कुमार का दाहिना हाथ तथा कुमारी का बायां हाथ एक साथ बांधा और उसी लता की छड़ी ले उन्हें पीटता हुआ ले चला।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो सो ब्राह्मणो लुद्दो लतं दन्तेहि छिन्दिय,
लताय हत्थे बंधित्वा लताय अनुमज्जय ।।४८५।।

ततो सो रज्जुमादाय दण्डमादाय ब्राह्मणो,
आकोटयन्तो ते नेति सिविराजस्स पेक्खतो ।।४८६।।

[तब उस क्रूर ब्राह्मण ने दान्तों से लता काटी और लता से उनके हाथ बाध और लता से ही उन्हें पीटने लगा। तब सिविराज की नजर के सामने ही रस्सी और डण्डा हाथ में लिए वह ब्राह्मण उन्हें पीटते हुए ले गया ।।४८६।।]

जहाँ जहाँ उन्हें चोट लगती वहीं से चमड़ी छिल जाती। रक्त बहता। चोट के समय परस्पर एक दूसरे को सहारा देते। एक अड़-बड़ जगह पर ब्राह्मण फिसल कर गिर पड़ा। बच्चों के कोमल हाथों पर से कठोर लता बंधन खिसक गया। वे रोते-पीटते भाग कर बोधिसत्व के पास जा पहुंचे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो कुमारा पक्कामुं ब्राह्मणस्स पमुञ्चिय,
अस्सुपुण्णेहि नेत्तेहि पितरं सो उदिक्खति ।।४८७।।

वेधं अस्सत्थ पत्तंव पितुपादाभिवन्दति,
पितुपादानि वन्दित्वा इदं वचनमब्रवि ।।४८८।।

अम्मा च तात निक्खन्ता त्वञ्च नो तात दस्ससि,
याव अम्मम्पि पस्सेमु अथ नो तात दस्ससि ।।४८९।

अम्मा च तात निक्खन्ता त्वञ्च नो तात दस्ससि
मा नो त्वं तात अदया याव अम्मापि एति नो

तदायं ब्राह्मणो कामं विक्किणातु हनातु वा ।।४९०।।

बलंकपादो अद्धनखो अथो ओबद्धपिण्डिको,
दीघुत्तरोठ्ठो चपलो कळारो भग्गनासको ।।४९१।।

कुम्भूदरो भग्गपिठ्ठि अथो विसमचक्खुलो,
लोहमस्सु हरितकेसो वलीनं तिलकाहतो ।।४९२।।

पिंगलो च विनतो च विकतो च ब्रह्म खरो,
अजिनानि च सन्नद्धो अमनुस्सो भयानको ।।४९३।।

मनुस्सो उदाहु यक्खो मंसलोहितभोजनो,
गामा अरञ्ञं आगम्म धनं तं तात याचति,
नीयमाने पिसाचेन किन्नु तात उदिक्खसि ।।४९४।।

अस्मा नून ते हदयं आयसं दळहबंधनं,
यो नो बद्धे न जानासि ब्राह्मणेन धनेसिना,
अच्चायिकेन लुद्देन यो नो गावोव सुम्भति ।।४९५।।

इधेव अच्छतं कण्हा न सा जानाति किस्मिचि,
मिगीव खीरसम्मत्ता यूथा हीना पकन्दति ।।४९६।।

[तब ब्राह्मण से मुक्त होकर वच्चे निकल भागे। अश्रु-पूर्ण नेत्रों से कुमार पिता की ओर देखने लगा ।।४८७।। पीपल के पत्ते की तरह काँपते हुए उसने पिता के चरणों की वन्दना की। पिता के चरणों की वन्दना कर उसने यह कहा ।।४८८।। "तात! अम्मा बाहर गई है। आप हमें दे रहे हैं। हम अम्मा को देख ले। तब तात आप हमें दें ।।४८९।। तात! अम्मा बाहर गई है। आप हमें दे रहे हैं। हे तात! जब तक हमारी मां नहीं आती, तब तक आप हमें न दें। बाद में यह ब्राह्मण चाहे हमें बेचे चाहे मारे ।।४९०।। चौड़ा पैर, सड़े नाखून, गली हुई पिण्डली, लम्बा होंठ, टपकती हुई राल, सूअर जैसे दाँत, टूटी हुई नाक, घड़े जैसा पेट, टूटी-कमर, बेंहगी आँख, ताम्र वर्ण मुँह, लाल-बाल, तिलों वाली झुर्रियाँ पड़ी चमड़ी, पिङ्गल-वर्ण आँखें, कन्ध , पीठ और कमर झुकी हुई, कटकट करती हुई हड्डियाँ, लम्बा अस्निग्ध, अजिन-चर्म पहने, भयानक राक्षस जैसा है ।।४९१-४९३।। यह मनुष्य है अथवा रक्त-मांस खाने वाला कोई यक्ष है,जो गांव से जंगल में आकर तुझसे

धन मांगता है। हे तात! हमें पिशाच लिये जा रहा है। आप क्या देखते हैं?॥४६४॥ तात! आपका हृदय हमारे प्रति लोहे जैसा कठोर है। धन-लोभी ब्राह्मण ने हमें बांध रखा है और आप को जैसे पता ही नहीं। अत्यन्त क्रूर ब्राह्मण हमें पशुओं की तरह पीट रहा है ॥४६५॥ यह कृष्णा कुछ नहीं जानती। यह यहीं रहे। यह उस मृगी की भान्ति है जो समूह से पृथक होने पर रोती है॥४६६॥]

ऐसा कहने पर बोधिसत्व ने कुछ नहीं कहा। तब कुमार ने माता-पिता को लेकर विलाप करना आरम्भ किया—

न मे इदं तथा दुक्खं लब्भा हि पुमुना इदं,
यञ्च अम्मं न पस्सामि तं मे दुक्खतरं इतो ॥४९७॥
न मे इदं तथा दुक्खं लब्भा हि पुमुना इदं,
यञ्च तातं न पस्सामि तं मे दुक्खतरं इतो ॥४९८॥
सा नून कपणा अम्मा चिररत्ताय रुच्छति,
कण्हाजिनं अपस्सन्ती कुमारिं चारुदस्सनिं ॥४९९॥
सो नून कपणो तातो चिररत्ताय रुच्छति,
कण्हाजिनं अपस्सन्तो कुमारिं चारुदस्सनिं ॥५००॥
सो नून कपणा अम्मा चिरं रुच्छति अस्समे,
कण्हाजिनं अपस्सन्ती कुमारिं चारुदस्सनिं ॥५०१॥
सो नून कपणो तातो चिरं रुच्छति अस्समे,
कण्हाजिनं अपस्सन्तो कुमारिं चारुदस्सनिं ॥५०२॥
सा नून कपणा अम्मा चिररत्ताय रुच्छति,
अड्ढरत्तेव रत्तेवा नदीव अवसुच्छति ॥५०३॥
सो नून कपणो तातो चिररत्ताय रुच्छति,
अड्ठरत्तेव रत्ते वा नदीव अवसुच्छति ॥५०४॥
इमे ते जम्बुका रुक्खा वेदिसा सिन्धुवारिका,
विविधानि रुक्खजातानि तानि अज्जजहा से ॥५०५॥
अस्सत्था पनसा चेमे निग्रोधा च कपित्थना,
विविधानि फल जातानि तानि अज्ज जहामसे ॥५०६॥

इमे तिटठन्ति आरामा अयं सीतोदिका नदी,
यत्थस्सु पुब्बे कीळाम तानि अज्ज जहामसे ॥५०७॥

विविधानि पुप्फजातानि अस्मिं उपरिपब्बते,
यानस्सु पुब्बे धारेम तानि अज्ज जहामसे ॥५०८॥

विविधानि फलजातानि अस्मिं उपरि पब्बते,
यानस्सु पुब्बे भुञ्जाम तानि अज्ज जहामसे ॥५०९॥

इमे नो हत्थिका अस्सा बलिवद्दा च नो इमे,
येहिस्सु पुब्बे कीळाम तानि अज्ज जहामसे ॥५१०॥

[मेरे लिये यह दुःख नहीं है। पुरुष को ऐसा दुख-सुख होता ही है। यह जो मुझे माता का दर्शन नहीं मिलेगा, यही बड़ा दुःख है ॥४९७॥ मेरे लिये यह... होता ही है। यह जो पिता का दर्शन नहीं मिलेगा, यही बड़ा दुःख है ॥४९८॥ वह बिचारी माँ चारुदर्शना कुमारी के दर्शन के बिना चिरकाल तक रोती रहेगी ॥४९९॥ वह बिचारे तात चारुदर्शना...चिरकाल तक रोते रहेंगें ॥५००॥ वह बिचारी माँ चारुदर्शना कुमारी के दर्शन बिना आश्रम में चिरकाल तक रोती रहेगी ॥५०१॥ वह बिचारे तात...आश्रम में...रोते रहेंगें ॥५०२॥ वह बिचारी मां चिरकाल तक रोती रहेगी और आधी रात वा रात के बीतने पर नदी की तरह सूख जायगी ॥५०३॥ वह बिचारे तात चिरकाल तक...सूख जायेंगें ॥५०४॥ ये वे जामुन के वृक्ष और लटकते हुए सिन्धुवारिक तथा अन्य नाना प्रकार के पेड़ है। आज हम उन्हें छोड़ रहे है ॥५०५॥ अश्वरथ,कटहल, न्यग्रोध, कैथ (और) बहुत से फल हैं। आज हम उन्हें छोड़ रहे हैं ॥५०६॥ ये आश्रम है और यह शीतल जल वाली नदी है, जहाँ हम खेलते रहे हैं। आज हम उन्हें छोड़ रहे हैं ॥५०७॥ इस पर्वत पर नाना प्रकार के पुष्प हैं, जिन्हें हम पहले धारण करते रहे हैं। आज हम उन्हें छोड़ रहे हैं ॥५०८॥ इस पर्वत पर नाना प्रकार के फल हैं, जिनका हम पहले उपभोग करते रहे हैं। आज हम उन्हें छोड़ रहे हैं ॥५०९॥ ये हमारे हाथी, घोड़े और बैल हैं, जिनसे हम पहले खेलते रहे हैं। आज हम उन्हें छोड़ रहे हैं ॥५१०॥]

जिस समय वह इस प्रकार विलाप कर रहा था उसी समय पूजक भी आया और उसे बहिन सहित पकड़ कर पीटता हुआ ले चला। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

नीयमाना कुमारा ते पितरं एतद अवुं,
अम्मं आरोग्यं वज्जासि त्वञ्च तात सुखी भव ॥५११॥
इमे नो हत्थिका अस्सा बलिबद्दाच नो इमे,
तानि अम्माय दज्जासि सोकं तेहि विनेस्सति ॥५१२॥
इमे नो हत्थिका अस्सा बलिबद्दा च नो इमे,
तानि अम्मा उदिक्खन्ती सोकं पटिविनेस्सति ॥५१३॥

[जब उन बच्चों को ले जा रहे थे तो वे पिता से बोले—मां को आरोग्य कहना और हे तात ! तू सुखी रहना। ये हमारे हाथी, घोड़े और बैल है। इन्हें अम्मा को दे देना। ये उसके शोक को दूर करेंगे। ये हमारे हाथी, घोड़े और बैल हैं। इन्हें देखकर अम्मा अपना शोक दूर करेगी ॥५११-५१३॥]

पुत्रों को लेकर बोधिसत्व के मन में बहुत शोक उत्पन्न हुआ। उसका हृदय-मांस गर्म हो गया। जैसे किसी हाथी को केशर सिंह ने पकड़ लिया हो अथवा चन्द्रमा राहु के मुँह में चला गया हो, उस तरह वह काँपता हुआ अपने आपको संभाले न रख सका। अश्रुपूर्ण नेत्रों से पर्णशाला में प्रवेश कर करुणा-पूर्ण विलाप करने लगा। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो वेस्सन्तरो राजा दानं दत्वान खत्तियो,
पण्णसालं पविसित्वा करुणं परिदेवयि ॥५१४॥

[तब वेस्सन्तर राजा दान देकर, पर्णशाला में प्रविष्ट हो करुणा-पूर्ण विलाप करने लगा ॥५१४॥]

इससे आगे बोधिसत्व की विलाप-गाथायें हैं—

कंन्वज्ज छाता तसिता उपरुच्छन्ति दारका,
सायं संवेसनाकाले को ने दस्सति भोजनं ॥५१५॥
कंन्वज्ज छाता तसिता उपरुच्छन्ति दारका,
सायं सावेसनाकाले अम्म छातम्ह देथ नो ॥५१६॥

कथन्नु पथं गच्छन्ति पत्तिका अनुपाहना,
सन्ता सूणेहि पादेहि को ने हत्थे गहेस्सति ॥५१७॥

कथं नु सो न लज्जेय्य सम्मुखा पहरं मम,
अदूसकानं पुत्तानं अलज्जि वत ब्राह्मणो ॥५१८॥

योहि मे दासिदासस्स अञ्ञो वा पन पेस्सियो,
तस्सापि सुविहीनस्स को लज्जी पहरिस्सति ॥५१९॥

वारिजस्सेव मे सतो बद्धस्स कुमिना मुखे,
अक्कोसति पहरति पिये पुत्ते अपस्सतो ॥५२०॥

[भूख, प्यास लगने पर बच्चे अब किसके सामने रोयेंगे ? शाम को सोने के समय उन्हें कौन भोजन देगा ? ॥५१५॥ भूख, प्यास लगने पर बच्चे अब किसके सामने रोयेंगे ? शाम को किसे कहेंगे कि माँ भूख लगी है, हमें भोजन दे ॥५१६॥ बिना जूते के वे नंगे कैसे पैदल चलेंगे। उन कोमल पैर वालों को थक जाने पर कौन हाथ में लेगा ॥५१७॥ उसे मेरे सामने ही निर्दोष बच्चों को पीटने में कैसे लज्जा नहीं आई ? वह ब्राह्मण निर्लज्ज है ॥५१८॥ जो मेरा दासी-दास हो अथवा और वैसा ही कोई भी हो उसे कौन शरमदार आदमी पीटेगा ? ॥५१९॥ जाल में बँधी हुई मछली के समान मेरे रहते मेरी आँखों के सामने ही यह मेरी प्रिय संतान को गाली देता है, पीटता है ! ॥५२०॥]

सन्तान के प्रति स्नेह होने से बोधिसत्व के मन में संकल्प-विकल्प उठने लगे—यह ब्राह्मण मेरे बच्चों को बहुत कष्ट देता है। ब्राह्मण का पीछा कर उसे मार बच्चों को ले आऊँ। फिर बच्चों को कष्ट देना तो अनुचित है; किन्तु दान देकर सोचना भी सत्पुरुषों का धर्म नहीं है। इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिये राजा के संकल्प-विकल्प के सम्बन्ध में ये दो गाथायें हैं—

आदु चापं गहेत्वान खग्गं बन्धित्वा वामतो,
आनयामि सके पुत्ते पुत्तानं हि वधो दुखो ॥५२१॥

अद्ठानमेतं दुक्खरूपं यं कुमारा विहञ्ञरे,
सतञ्च धम्ममञ्ञाय को दत्वा अनुतप्पति ॥५२२॥

[धनुष लेकर और बाई ओर खड्ग बांध कर अपने पुत्रों को ले आऊं। पुत्रों का वध बहुत कष्टदायक है ।।५२१।। कुमारों का कष्ट पाना बहुत अनुचित और दुखद है, किन्तु सत्पुरुषों का धर्म जान, देकर कौन अनुताप करे ।।५२२।।]

उस समय उसने बोधिसत्व की परम्परा को याद किया। उसने देखा कि सभी बोधिसत्वों ने धन का त्याग, अङ्ग का त्याग, जीवन का त्याग, सन्तान का त्याग और भार्य्या का त्याग किया है। ऐसा कोई नहीं है जो बिना ये पांच त्याग किये बुद्ध हो गया हो। मैं भी उनमें से हूँ। बिना बेटा-बेटी का त्याग किये मैं भी बुद्ध नहीं हो सकता हूँ। हे वेस्सन्तर! क्या दूसरों के दासता करने के लिये दिये गये पुत्रों के दुख को तू नहीं जानता जो ब्राह्मण का पीछा कर उसे मारने की सोचता है। दान दे चुकने के बाद उसकी चिन्ता करना तेरे योग्य नहीं। इस प्रकार उसने अपने आपका निग्रह किया और दृढ़ संकल्प किया कि यदि वह बच्चों को मार भी डाले तो दान दे चुकने के बाद मे वे मेरे कुछ नही लगते। इस प्रकार का निश्चय कर वह पर्णशाला से निकला और पर्णशाला के द्वार पर पत्थर-शिला पर स्वर्ण-मूर्ति की तरह आ बैठा।

पूजक भी बच्चों को पीटता हुआ ले चला। तब कुमार ने विलाप किया —

सच्चं किरेवमाहंसु नरा एकच्चिया इध,
यस्स नित्थ सका माता यथा नत्थि तथेव सो ।।५२३।।

एहि कण्हे मरिस्साम नत्थत्थो जीवितेन नो,
दिन्नम्हापि जनिन्देन ब्राह्मणस्स धनेसिनो,
अच्चायिकस्स लुद्दस्स यो नो गावोव सुम्भति ।।५२४।।

इमे ते जम्बुका रुक्खा वेदिसा सिन्धुवारिता,
विविधानि रुक्खजातानि तानि कण्हे जहामसे ।।५२५।।

अस्सत्था पनसा चेमे निग्रोधा च कपित्थना,
विविधानि फलजातानि तानि कण्हे जहामसे ।।५२६।।

इमे तिट्ठन्ति आरामा अयं सीतोदका नदी,
यत्थस्सु पुब्बे कीळाम तानि कण्हे जहामसे ।।५२७।।

विविधानि पुप्फजातानि अस्मिं उपरि पब्बते,
यानस्सु पुब्बे धारेय तानि कण्हे जहायसे ॥५२८॥
विविधानि फलजातानि अस्मिं उपरिपब्बते,
यानस्सु पुब्बेते भुञ्जाम तानि कण्हे जहाससे ॥५२९॥
इमे नो हत्थिका अस्सा बलिवद्दा च नो इमे,
येहिस्सु पुब्बे कीळाम तानि कण्हे जहाससे ॥५३०॥

[यहाँ कुछ आदमियों ने सत्य ही कहा है कि जिसकी अपनी मां नहीं है, उसका होना न होना बराबर है ॥५२३॥ आ कृष्णा मरें। हमारे जीने का कोई प्रयोजन नहीं है। हमें राजा ने धन के लोभी अत्यन्त क्रूर ब्राह्मण को दे दिया है जो हमें पशुओं की तरह पीटता है ॥५२४॥ अगली गाथाओं के अर्थ के लिये देखें गाथा संख्या ५०५ मे गाथा संख्या ५१० तक।]

फिर ब्राह्मण एक विसम स्थान पर फिसल कर गिर पड़ा। उनके हाथ से बंधन खिसक गया। वे पिटे मुर्गा-मुर्गी की तरह भाग कर एक दौड़ में ही फिर पिता के पास आ पहुँचे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

नीयमाना कुमारा ते ब्राह्मणस्स पमुञ्चिय,
तेन तेन पधाविंसु जाली कण्हाजिना उभो ॥५३१॥

[उन बच्चों को ब्राह्मण लिये जा रहा था। जाली तथा कृष्णाजिना दोनों उसके हाथ से छूट कर इधर-उधर भाग गये ॥५३१॥]

पूजक जल्दी से उठा और लता तथा डण्डा हाथ में लिये ही कल्प के अन्त में उठने वाली आग की तरह उठ कर आया और बोला—तुम भागने में बड़े चतुर हो। वह फिर उनके हाथ बांध ले चला।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो सो रज्जुमादाय दण्डमादाय ब्राह्मणो,
आकोटयन्तो ते नेति सिविराजस्स पेक्खतो ॥५३२॥

[तब सिविराज की नजर के सामने ही रस्सी और डण्डा लिये वह ब्राह्मण उन्हें पीटता हुआ ले चला ॥५३२॥]

इस प्रकार लिये जाते समय कृष्णार्जिना रुक कर पिता की ओर देखती हुई पिता से बोली। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तं तं कण्हाजिनावोच अयं मं तात ब्राह्मणो,
लट्ठिया पतिकोटेति घरे जातं व दासियं ॥५३३॥
न चायं ब्राह्मणो तात धम्मिका होन्ति ब्राह्मणा,
यक्खो ब्राह्मणवण्णेन खादितुं तात नेति नो,
नियमाने पिसाचेन किन्नु तात उदिक्खसि ॥५३४॥

[कृष्णार्जिना उसे बोली—'तात! यह ब्राह्मण मुझे घर में पैदा हुई दासी की तरह लाठी से पीटता है ॥५३३॥ तात! यह ब्राह्मण नहीं है, ब्राह्मण तो धार्मिक होते हैं। यह तो ब्राह्मण-वेष में कोई यक्ष है जो हमें खाने के लिये ले जा रहा है। तात! हमें पिशाच लिये जा रहा है। आप क्या देख रहे हैं? ॥५३४॥]

छोटी बच्ची के विलाप से और उसे कांपते हुए जाता देख बोधिसत्व के मन में महान् शोक उत्पन्न हुआ। उसका हृदय गर्म हो गया। गर्म साँस नाक से ही न निकल सकने के कारण मुँह से आने जाने लगी। आंसू रक्त बनकर आंखों से निकलने लगे। तब उसने सोचा कि यह ऐसा दुःख स्नेह के ही कारण होता है और किसी कारण से नहीं। मुझे स्नेह न कर मध्यस्थ ही होना चाहिये। उसने अपने ज्ञान-बल से उस शोक-रूपी शल्य को निकाल फेंका और प्रकृतिस्थ हो बैठा। गिरि-द्वार तक बिना पहुँचे ही कुमारी विलाप करती हुई गई—

इमे नो पादुका दुक्खा दीघोचद्धा सुदुग्गमो,
नीचे वोलम्बते सुरियो ब्राह्मणे च तरेति नो ॥५३५॥
ओकन्दामसि भूतानि पब्बतानि वनानि च,
सरस्स सिरसा वन्दाम सुपतित्थे च आपके ॥५३६॥
तिणलता च ओसध्यो पब्बतानि वनानि च,
अम्मं आरोग्य वज्जाथ अयं नो नेति ब्राह्मणो ॥५३७॥
वज्जन्तु भोन्तो अम्मञ्च मद्दिं अम्हाक मातरं,
सचे अनुपतितुकामासि खिप्पं अनुपतियासि नो॥५३८॥
अयं एकपदी एति उजुं गच्छति अस्समं,
तमेव अनुपतियासि अपि पस्सेसि नो लहुं ॥५३९॥

अहोवत रे जरिनि वनमूलफलहारिके,
सुञ्ञं दिस्वान अस्समं तं ते दुक्खं भविस्सति ॥५४०॥
अतिवेलं नून अम्माय उञ्छालद्धो अनप्पको,
या नो बद्धे न जानाति ब्राह्मणेन धनेसिना,
अच्चायिकेन लुद्देन यो नो गावोव सुम्भति ॥५४१॥
अहज्ज अम्मं पस्सेमु सायं उञ्छातो आगतं,
दज्जा अम्मा ब्राह्मणस्स फलं खुद्देन मिस्सितं ॥५४२॥
तदायं असितो धातो न बाळ्हं तरयेय्य नो,
सूणा च वत नो पादा बाळ्हं तारेति ब्राह्मणो,
इति तत्थ विलपिंसु कुमारा मातु गिद्धिनो ॥५४३॥

[हमारे पाँव दुख रहे हैं। रास्ता लम्बा और दुर्गम है। सूर्य्य सिर पर है और ब्राह्मण हमें जल्दी चला रहा है ॥५३५॥ हम सभी को नमस्कार करते हैं, पर्वतों को, वनों को, सरोवर को भी सिर से नमस्कार करते हैं तथा सुतीर्थ वाली नदी को ॥५३६॥ हे तृण-लताओ! हे ओषधियो! हे पर्वतो! हे वनो! अम्मा को 'आरोग्य' कहना। हमें यह ब्राह्मण लिये जा रहा है ॥५३७॥ आप हमारी माँ माद्री को कहें कि यदि वह हमारे पीछे आना चाहे तो शीघ्र आये ॥५३८॥ यह पगडण्डी आती है। यह सीधी आश्रम जाती है। इसी पगदडण्डी से चली आये तो हमसे शीघ्र भेंट हो सकती है ॥४३६॥ अरी जटाधारिणी! अरी वन से फलमूल लेकर आने वाली! आश्रम सूना देखकर तुझे दुःख होगा ॥५४०॥ निश्चय से माँ को फल-मूल बहुत विलम्ब से मिले हैं। वह नहीं जानती कि धन के लोभी ब्राह्मण ने हमें बांध लिया है। यह अति क्रूर है। यह हमें पशुओं की तरह पीटता है ॥५४१॥ जब मां शाम को फल-मूल चुग कर आयेगी तब हम उसे देखेंगे। माँ! ब्राह्मण को मधु मिश्रित फल दे ॥५४२॥ तब यह खा पीकर सन्तुष्ट हुआ रहने से हमें बहुत नहीं चलायगा। हमारे पाँव सूज गये हैं। ब्राह्मण बहुत जल्दी चलाता है। इस प्रकार वे मातृ-स्नेही बच्चे विलाप करते थे ॥५४३॥]

कुमार पर्व समाप्त

जब राजा ने ब्राह्मण को अपने पुत्र देकर पृथ्वी को गुंजा दिया तो ब्रह्म लोक तक हल्ला हो गया। उससे हिमवन्तवासी देवताओं का हृदय पिघल गया। उन्होंने

ब्राह्मण द्वारा लिये जाते हुओं का विलाप सुन आपस में मंत्रणा की—यदि माद्री समय रहते आश्रम लौट आयेगी तो वहाँ बच्चों को न देख, वेस्सन्तर से पूछा और यह जान कि वे ब्राह्मण को दे दिये गये हैं, वह स्नेह-बहुल होने से तुरन्त पीछा करेगी और बहुत कष्ट पायेगी। उन्होंने तीनों देव-पुत्रों को आज्ञा दी कि तुम सिंह, व्याघ्र तथा चीते का रूप बना, देवी का जाने का रास्ता रोक, सूर्य्यास्त के बाद मार्ग न दे ऐसा करो कि वह चन्द्रमा के प्रकाश में ही आश्रम पहुंचे और सिंह आदि से उसकी रक्षा करो ताकि उसे कष्ट न हो।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तेसं लालप्पितं सुत्वा तयो वाळा वने मिगा,
सीहो व्यग्घो च दीपी च इदं वचनमब्रवुं ॥५४४॥
माहेव नो राजपुत्ती सायं उञ्छातो आगमा,
माहेवम्हाकं निब्भोगे हेठयित्थ वने मिगा ॥५४५॥
सीहोचेनं विहेठेय्य व्यग्घो दीपी च लक्खणं,
नेव जालीकुमारस्स कुतो कण्हाजिना सिया,
उभयेनेव जीयेथ पतिं पुत्ते च लक्खणा ॥५४६॥

[उनका विलाप सुन उन देव-पुत्रों को आज्ञा हुई कि तुम सिंह, व्याघ्र और चीता—इस प्रकार से तीनों जंगली जानवर बन जाओ ॥५४४॥ राजपुत्री रात को फल-मूल चुग कर न लौटे और हमारी सीमा में उसे किसी भी जंगली-जानवर का कष्ट न हो ॥५४५॥ यदि इस सुन्दरी की सिंह, व्याघ्र अथवा चीते ने हिंसा की तो न जालीकुमार रहेगा और न कृष्णाजिना। सुन्दरी अपने पति तथा बच्चों के साथ जीती रहे ॥५४६॥]

उन पुत्रों ने 'अच्छा' कह उन देवताओं की बात स्वीकार की और सिंह, व्याघ्र तथा चीते की शकल बना उसके आने के रास्ते में क्रमशः लेट रहे। माद्री ने भी सोचा कि आज मैंने बुरा स्वप्न देखा है। आज मै समय से ही आश्रम जाऊंगी। वह काँपती काँपती फल-मूल खोजती रही। उसके हाथ से खंती गिर गिर जाती थी। उसके कंधे से उसका उद्ग्रीव गिर गिर जाती थी। दाहिनी आंख फड़कती थी। फलदार वृक्ष बिना फल वाले वृक्ष प्रतीत हो रहे थे और बिना फलवाले फलदार वृक्ष। दसों दिशायें नहीं दिखाई दे रही थीं। वह सोचने लगी कि क्या कारण है कि जो पहले कभी नहीं होता था वह आज हो रहा है। वह कहने लगी—

खणित्तिकं मे पतति दक्खिणक्खिच फन्दति,
अफला फलिनो रुक्खा सब्बा मुय्हन्ति मे दिसा ।।५४७।।
तस्सा सायण्हकालम्हि अस्समा गमणं पति,
अत्थमितम्हि सुरियम्हि वाळा पन्थे उपट्ठहुं।।५४८।।

नीचेचो लम्बते सुरियो दूरे च वत अस्समो,
यं तेसं इतो हस्सं तं ते भुञ्जेय्युं भोजनं ।।५४९।।
सो नून खत्तियो एको पण्णसालाय अच्छति,
तोसेन्तो दारके छाते ममं दिस्वा अनायतिं ।।५५०।।

ते नून पुत्तका मय्हं कपणाय वराकिया,
सायं संवेसनाकाले खीरपीता व अच्छरे ।।५५१।।
ते नून पुत्तका मय्हं कपणाय वराकिया,
सायं संवेसना काले वारिपीताव अच्छरे ।।५५२।।
ते नून पुत्तका मय्हं कपणाय वराकिया,
पच्चुग्गता मं तिट्ठन्ति वच्छा बालाव मातरं ।।५५३।।

ते नून पुत्तका मय्हं कपणाय वराकिया,
पच्चुग्गता मं तिट्ठन्ति हंसाव उपरि पल्लले ।।५५४।।
ते नून पुत्तका मय्हं कपणाय वराकिया,
पच्चुग्गता मं तिट्ठन्ति अस्समस्साविदूरतो ।।५५५।।

एकायनो एकपथो सरा सोब्भा च पस्सतो,
अञ्ञं मग्गं न पस्सामि येन गच्छेय्य अस्समं ।।५५६।।
मिगा नमत्थु राजानो काननस्मिं महब्बला,
धम्मेन भातरो होथ मग्गं मे देथ याचिता ।।५५७।।

अवरुद्धस्सहं भरिया राजपुत्तस्स सिरीमतो,
तञ्चाहं नातिमञ्ञामि रामं सीतावनुब्बता ।।५५८।।
तुम्हे च पुत्ते पस्सेथ सायं संवेसनं पति,
अहञ्च पुत्ते पस्सेय्यं जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ।।५५९।।
बहुञ्चिदं मूलफलं भक्खो चायं अनप्पको,
ततो उपड्ढं दस्सामि मग्गं मे देथ याचिता ।।५६०।।

राजपुत्ती च नो माता राजपुत्तो च नो पिता,
धम्मेन भातरो होथ मग्गं मे देथ याचिता ।।५६१।।

[मेरी खंती गिरती है, मेरी दाहिनी आंख फड़कती है, बिना फल वाले वृक्ष फलदार प्रतीत होते हैं, मुझे सभी दिशायें मूढ़ बना रही हैं ।।५४७।। शाम को जब सूर्य्यास्त हो गया और उसके आश्रम आने का समय हुआ तो मार्ग में जंगली जानवर आ बैठे ।।५४८।। सूर्य्य नीचे आ गया है और आश्रम दूर है। जो कुछ मैं यहाँ से ले जाऊँगी, उसी का वह भोजन करेंगे ।।५४९।। मुझे न आता देख वह क्षत्रिय अकेला बैठा भूखे बच्चों को संतोष दे रहा होगा ।।५५०।। मुझ बिचारी के वे बच्चे शाम को जैसे बिना दूध के रहते हैं वैसे (बिना फल-मूल के) रहेंगे ।।५५१।। मुझ बिचारी के वे बच्चे शाम को जैसे बिना पानी के रहते हैं वैसे (बिना फल-मूल के) रहेंगे ।।५५२।। वे मुझ बिचारी के बच्चे वैसे ही मेरी प्रतीक्षा करते खड़े रहते हैं जैसे बछड़े अपनी माँ की ।।५५३।। वे मुझ बेचारी के बच्चे मेरी प्रतीक्षा में खड़े होंगे जैसे सरोवर पर हंस ।।५५४।। वे मुझ बेचारी के बच्चे आश्रम के पास मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे ।।५५५।। एक ही रास्ता है, एक ही पथ है, तालाब तथा प्रपातों को देखते हुए। आश्रम जाने का मुझे दूसरा रास्ता नहीं दिखाई देता ।।५५६।। हे जानवरो! तुम्हें नमस्कार है। तुम जंगल में महाबलवान् राजा हो। तुम मेरे धर्म के भाई हो। मैं मांग रही हूँ। मुझे रास्ता दो ।।५५७।। मैं देश से निकाले गये श्रीमान् राजपुत्र की भार्य्या हूँ। मै उसी प्रकार उसकी उपेक्षा नही करती हूँ जैसे पति-व्रता सीता राम की ।।५५८।। तुम शाम को सोने के समय अपने अपने बच्चों को देखते हो। मैं भी जाली और कृष्णाजिना अपने दोनों बच्चों को देखूं ।।५५९।। फल-मूल बहुत हैं और खाद्य-सामग्री भी बहुत है। मैं इसमें से आधे तुम्हें दे दूंगी। तुम मांगने पर रास्ता दे दो ।।५६०।। हमारी माता राजपुत्री है, हमारा पिता राजपुत्र है। तुम धर्म के भाई बनो। मैं मांगती हूँ। मुझे रास्ता दे दो ।।५६१।।]

जब उन देवपुत्रों ने समय देख समझा कि अब उसे जाने देने का ठीक समय है तो वे उठकर चले गये।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने यह गाथा कही—

तस्सा लालप्पमानाय बहुं कारुञ्ञसंहितं,
सुत्वा नेलपतिं वाचं वाळा पन्था अपक्कमुं ।।५६२।।

[उसे अत्यन्त करुणा पूर्ण स्वर में विलाप करते (देख) और उसकी मधुर वाणी सुन जानवर रास्ते से हट गये ।।५६२।।]

जंगली जानवरों के चले जाने पर वह भी आश्रम पहुंची । वह पूर्णिमा-उपोसथ का दिन था । उसने योगाभ्यास के चबूतरे के सिरे पर खड़े हो, जहाँ उसे पहले बच्चे दिखाई दे जाते थे, वहाँ उन्हें न देख कहा—

इमम्हि नं पदेसम्हि पुत्त पंसुकुण्ठिता,
पच्चुग्गता मं तिट्ठन्ति वच्छा बालाव मातरं ।।५६३।।
इमम्हि नं पदेसम्हि पुत्ताका पंसुकुण्ठिता,
पच्चुग्गता मं तिट्ठन्ति हंस.व उपरि पल्लले ।।५६४।।
इमम्हि नं पदेसम्हि पुत्तका पंसुकुण्ठिता,
पच्चुग्गता में तिट्ठन्ति अस्समस्साविदूरतो ।।५६५।।
ते मिगा विय उक्कण्णा समन्तामभिधाविनो,
आनन्दितो पमुदिता वग्गमानाव कम्परे,
त्यज्जपुत्त न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ।।५६६।।
छकलीव मिगी छापं पक्खी मुत्ताव प ंजरा,
ओहाय पुत्ते निक्खमिं सीहीवामिसगिद्धिनी,
त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ।।५६७।।
इदं तेसं परक्कन्तं नागानमिव पब्बते,
वितको परिकिण्णायो अस्समस्साविदूरतो,
त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ।।५६८।।
वालुकायपि ओकिण्णा पुत्तका पंसुकुण्ठिता,
समन्तामभिधावन्ति ते न पस्सामि दारके ।।५६९।।
ये मं पुरे पच्चुदेन्ति अरञ्ञा दूरमायतिं,
त्यज्जपुत्ते न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ।।५७०।।
छकलिंव मिगिं छापा पच्चुग्गन्त्वान अस्समा,
दूरे मं पविलोकेन्ति ते न पस्सामि दारके ।।५७१।।
इदञ्चतेसं कीळनकं पतितं पण्डुबेळुवं,
त्यज्ज पुत्तेन पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ।।५७२।।

थना च मटिहमे पूरा उरो च सम्पदालति,
त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ॥५७३॥
उच्छंगे मे विचिनन्ति थना एकाव लम्बति,
त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो॥५७४॥
यस्सु सायण्हसमयं पुत्तका पंसु कुण्ठिता,
उच्छंगे मे विवत्रन्ति ते न पस्सामि दारके ॥५७५॥
अयं सो अस्समो पुब्बे समज्जो रटि भाति मं,
त्यज्ज पुत्ते अपस्सन्त्या भमते विय अस्समो ॥५७६॥
किमिदं अप्पसद्दोव अस्समो पटिभाति मं,
काकोळापि न वस्सन्ति मता में नून दारका ॥५७७॥
किमिदं अप्पसद्दोव असम्मोपटिमाति मं,
सकुणापि न वस्सन्ति मता मे नून दारका ॥५७८॥

[इस जगह मेरे धूल-धूसरित बच्चे आकर मेरी प्रतीक्षा में खड़े हो जाते थे जैसे छोटे बछड़े अपनी मां की ॥५६३॥ इस जगह......जैसे सरोवर के ऊपर हंस ॥५६४॥ इस जगह आश्रम से थोड़ी ही दूर पर मेरे धूल-धूसरित बच्चे आकर मेरी प्रतीक्षा में खड़े हो जाते थे ॥५६५॥ वे जो हिरन के बच्चों की तरह उछलते हुए चारों ओर दौड़ते थे, आनन्दित, प्रमुदित, उछल कूदकर (माता के हृदय को) कंपाते थे, मैं आज जाली और कृष्णाजिना अपने दोनों बच्चों को नहीं देखती ॥५६६॥ जैसे बकरी, मृगी अथवा पिंजरे से मुक्त पक्षी और मांस-लोभिनी सिंहनी अपने बच्चों को छोड़कर चली जाती है, उसी प्रकार मैं उन्हें छोड़कर निकली। मैं आज ......नहीं देखती ॥५६७॥ पर्वत पर नागों के पद-चिह्न के समान ये उनके पद-चिह्न हैं और ये आश्रम से थोड़ी ही दूर पर बिखरे हुए बालू के ढेर हैं। मैं आज......नहीं देखती ॥५६८॥ बालू लगे और धूल-धूसरित बच्चे मेरे चारों ओर दौड़ते थे। उन बच्चों को (आज) नहीं देखती ॥५६९॥ जंगल में दूर मे आते देखकर ही जो पहले मेरी अगवानी करते थे मैं आज......नहीं देखती ॥५७०॥ बकरी और मृगी के बच्चों के समान जो आश्रम से मेरी अगवानी करने के लिये जाते थे और मुझे दूर से ही देखते थे, उन बच्चों को आज नहीं देखती ॥५७१॥ यह उनके खेलने का पाण्डु-वर्ण बिल्व गिरा पड़ा है । मैं आज......नहीं देखती ॥५७२॥ मेरे स्तन दूध से भरे हैं और हृदय फट रहा है। मैं आज....

नहीं देखती ।।५७३।। मेरी गोद में लोटते थे, एक स्तन से लटक जाती थी। मैं आज......नहीं देखती ।।५७४।। शाम को जो धूल-धूसरित बच्चे मेरी गोद में लोटते थे, मैं उन बच्चों को नहीं देखती ।।५७५।। यह आश्रम मुझे पहले महफिल की तरह मालूम देता था, आज जब बच्चे नहीं दिखाई देते हैं तो वह आश्रम मुझे घूमता हुआ मालूम देता है ।।५७६।। यह क्या है कि आश्रम में कुछ आवाज नहीं सुनाई देती। कौवे तक भी नहीं बोल रहे हैं। निश्चय से बच्चे मर गये हैं ।।५७७।। यह क्या है......नहीं सुनाई देती। पक्षी तक भी.....गये हैं ।।५७८।।]

इस प्रकार विलाप करती हुई वह बोधिसत्व के पास पहुंची और फलों की टोकरी उतारी। जब उसने बोधिसत्व को चुप-चाप बैठे और उसके पास बच्चों को न देखा तो वह बोली—

किमिदं तुण्हीभूतोसि अपि रत्तेव मे मनो,
काकोळापि न वस्सन्ति मता मे नून दारका ।।५७९।।
किमिदं तुण्हीभूतोसि अपि रत्तेव मे मनो,
सकुणापि न वस्सन्ति मता मे नून दारका ।।५८०।।
कच्चिनु में अय्यपुत्त मिगा खादिंसु दारके,
अरञ्जे इरिने विवने केन नीतामे दारका ।।५८१।।
आदु ते पहिता दूता आदु सुत्ता पियंवदा,
आदु बहि नो निक्खन्ता खिड्डासु पसुता नु ते ।।५८२।।
नेवासं केसा दिस्सन्ति हत्थपादा न जालिनो,
सकुणानं व ओपातो केन नीता मे दारका ।।५८३।।

[आप चुप क्यों हैं। मेरा मन रात जैसा है। कौवे भी नहीं बोलते हैं। निश्चय से मेरे बच्चे मर गये हैं ।।५७९।। आप चुप क्यों हैं?......पक्षी भी...... गये हैं ।।५८०।। आर्य-पुत्र! क्या मेरे बच्चों को जंगली जानवर खा गये? इस वीरान सूने जंगल में से मेरे बच्चों को कौन ले गया? ।।५८१।। क्या उन्हें कहीं दूत बनाकर भेज दिया है? क्या वे प्रियभाषी सोये पड़े हैं? क्या वे खेलने में मस्त होकर बाहर गये हैं? ।।५८२।। न उनके बाल दिखाई देते हैं और न जाली के हाथ-पाँव दिखाई देते हैं। क्या पक्षी आ पड़े हैं? मेरे बच्चों को कौन ले गया? ।।५८३।।]

ऐसा कहने पर भी बोधिसत्व कुछ नहीं बोला। तब उसने 'देव ! मुझसे बोलते क्यों नहीं, मेरा क्या अपराध है ?' पूछते हुए कहा—

इदं ततो दुक्खतरं सल्लविद्धो यथा वणो,
त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ॥५८४॥
इदम्पि दुतियं सल्लं कम्पेति हदयं मम,
त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि त्वञ्च मं नाभिभाससि ॥५८५॥
अज्जेव मे इमं रत्तिं राजपुत्त न संससि,
मञ्ञे उक्कन्त सत्तं मं पातो दक्खिसि नो मतं ॥५८६॥

[यह उससे भी बढ़कर दुःख है, जैसे जख्म को शल्य से बींध दिया गया हो, यह जो मैं जाली और कृष्णाजिना दोनों बच्चों को नहीं देखती हूँ ॥५८४॥ यह जो दूसरा शल्य है वह मेरे हृदय को कँपाता है, मैं जाली और कृष्णाजिना दोनों बच्चों को नहीं देखती हूँ और आप भी मुझसे नहीं बोलते हैं ॥५८५॥ हे राजपुत्र ! यदि आज ही रात मुझे नहीं बतायेंगे तो ऐसा लगता है कि आप मुझे प्रातःकाल विगत-जीव मरा हुआ पायेंगे ॥५८६॥]

बोधिसत्व ने कठोर वाणी मे उसका पुत्र-शोक दूर करने के विचार से कहा—

ननूमद्दी वरारोहा राजपुत्ती यसस्सिनी,
पातो गतासि उञ्छाय किमिदं सायमागता ॥५९०॥

[हे माद्री ! हे श्रेष्ठ नारी ! हे राजपुत्री ! हे यशस्विनी ! तू फल-मूल लेने के लिये प्रातःकाल गई और अब रात (सायंकाल) को लौटी है ! ॥५९०॥]

उसने उसकी बात सुन उत्तर दिया—

ननुत्वं सद्दमस्सोसि ये सरं पातुमागता,
सीहस्स विनदन्तस्स व्यग्घस्स च निकुज्जितं ॥५९१॥
अहु पुब्बनिमित्तं मे विचरन्त्या ब्रहा वने,
खणित्तो मे हत्था पतितो उग्गीवञ्चापि अंसतो ॥५९२॥
तदाहं व्यथिता भीता पुथुं कत्वान अञ्जलिं,
सब्बा दिसा नमस्सिसं अपि सोत्थि इतो सिया ॥५९३॥
माहेव नो राजपुत्तो हतो सीहेन दीपिना,
दारका वा परामट्ठा अच्छकोकतरच्छिहि ॥५९४॥

सीहो ब्यग्घो च दीपी च तयो वाळा वने मिगा,
ते मं परिया वरुं मग्गं तेन सायम्हि आगता ॥५९५॥

[क्या तूने तालाब पर पानी पीने आये दहाड़ते हुए सिंह और व्याघ्र की आवाज नहीं सुनी ? ॥५९१॥ घोर जंगल में विचरते समय इस दुःख का पूर्व-लक्षण प्रकट हुआ। मेरे हाथ से खंती गिर पड़ी और कंधे से उद्ग्रीव भी खिसक पड़ा ॥५९२॥ तब मैंने व्यथित और भयभीत होकर बारबार हाथ जोड़कर सभी दिशाओं को नमस्कार किया कि अब कल्याण हो ॥५९३॥ राजपुत्र को सिंह, चीते आदि न मारें और बच्चे भालू, भेड़िये तथा लकड़-बग्घे से बचे रहें ॥५९४॥ सिंह, व्याघ्र और चीता, इन तीन जंगली जानवरों ने मेरा रास्ता रोक लिया। इसलिये मैं शाम को आई ॥५९५॥]

बोधिसत्व ने उससे उतनी ही बात की। फिर अरुणोदय होने तक कुछ नहीं बोला। तब से माद्री नाना प्रकार से विलाप करती रही—

अहं पतिञ्च पुत्तेच आचेरमिव माणवो,
अनुट्ठिता दिवारत्तिं जटिनी ब्रह्मचारिणी ॥५९६॥
अजिनानि परिदहित्वा वनमूलफलहारिया,
विचरामि दिवारत्तिं तुम्हं कामा हि पुत्तका ॥५९७॥
इमं सुवण्णहालिद्दिं आभतं पण्डुबेळुवं,
रुक्खपक्कानि चाहासिं इमेते पुत्ता कीळना ॥५९८॥
इमं मुळालवटकं सालुकं पिञ्जरोदकं,
भुञ्ज खुद्देहि संयुत्तं सहपुत्ते हि खत्तिय ॥५९९॥
पदुमं जालिनो देहि कुमुदं पन कुमारिया,
मालिने पस्स नच्चन्ते सिविपुत्तानि चव्हय ॥६००॥
ततो कण्हाजिनायापि निसामेहि रथेसभ,
मञ्जुस्सराय वग्गुया अस्समं उपयन्तिया ॥६०१॥
समानसुखदुक्खम्हा रट्ठा पब्बाजिता उभो,
अपि सिविपुत्ते पस्सेसि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ॥६०२॥
समणे ब्राह्मणे नून ब्रह्मचरिय परायणे,
अहं लोके अभिसपिं सीलवन्ते बहुस्सुते,
स्वज्ज पुत्ते न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ॥६०३॥

[मैंने जटाधारिणी ने, ब्रह्मचारिणी ने दिन रात पति तथा पुत्रों की ऐसी सेवा की जैसे विद्यार्थी अपने आचार्य की ।।५९६।। हे बच्चो ! तुम्हारे ही हित में अजिन चर्म धारण करके दिनरात वन के फलमूल खोजती फिरती हूँ ।।५९७।। यह मैं स्वर्ण-वर्ण हलदी लाई हूँ और यह पाण्डु-वर्ण बिल्व। और हे पुत्र ! यह दूसरे वृक्ष पर पके हुए फल हैं। ये तुम्हारे खिलौने हैं ।।५९८।। यह मूल-खण्ड है, यह सालु है और ये सिंघाड़े हैं। हे क्षत्रिय ! इन्हें पुत्रों के साथ मधु-मिश्रित करके खायें ।।५९९।। जाली को पद्म दें और कुमारी को कुमुद। नाचते हुए मालाधारी जीवों (?) को देखें और सिविपुत्र को बुलायें ।।६००।। हे रथेसभ ! तब मधुर स्वर वाली, सुन्दर, आश्रम आने वाली कृष्णार्जिना की ओर भी ध्यान दें ।।६०१।। हम दोनों सुख-दुख में समान रहे हैं और राष्ट्र से निकाले गये हैं। मुझे जालि और कृष्णाजिन बच्चे दिखायें ।।६०२।। मैंने निश्चय मे ब्रह्मचारी, सदाचारी, बहुश्रुत श्रमण-ब्राह्मणों को लोक में शाप दिया होगा। मैं आज जाली और कृष्णार्जिना दोनों बच्चों को नहीं देखती हूँ ।।६०३।।]

उसके इस प्रकार विलाप करने पर भी बोधिसत्व ने कुछ नहीं कहा। उसके चुप रहने पर वह कांपती हुई चन्द्रमा के प्रकाश में बच्चों को खोजने लगी। जहाँ-जहां जामुन के वृक्ष आदि के नीचे वे खेलते थे उन उन स्थानों पर जा विलाप करती हुई वह कहने लगी—

इमे ते जम्बुका रुक्खा वेदिसा सिन्धुवारिका,
विविधानि रुक्खजातानि ते कुमारा न दिस्सरे ।।६०४।।
अस्सत्था पनसा चेमे निग्रोधा च कपित्थना,
विविधानि फल जातानि ते कुमारा न दिस्सरे।।६०५।।
इमे तिट्ठन्ति आरामा अयं सीतोदिका नदी,
यत्थस्सु पुब्बे कीळिंसु ते कुमारा न दिस्सरे ।।६०६।।
विविधानि फळजातानि अस्मि उपरि पब्बते,
यानस्सु पुब्बे भुञ्जिसु ते कुमारा न दिस्सरे ।।६०७।।
इमे ते हत्थिका अस्सा बलिवद्दा च ते इमे,
ये हिस्सु पुब्बे कीळिसु ते कुमारा न दिस्सरे ।।६०८।।

[ये वे जामुन के वृक्ष हैं, वेदिसा (वृक्ष) हैं, सिन्धुवारिका (वृक्ष) हैं तथा अन्य नाना प्रकार के वृक्ष हैं। वे बच्चे नहीं दिखाई देते ।।६०४।। पीपल, कटहल,

न्यग्रोध तथा कैथ नाना प्रकार के फल हैं, वे बच्चे नहीं दिखाई देते ।।६०५।। ये वे आराम हैं और यह शीतल नदी है, जहाँ वे पहले खेलते थे, वे बच्चे नहीं दिखाई देते ।।६०६।। इस पर्वत के ऊपर नाना प्रकार के पुष्प हैं, जिन्हें वे पहले धारण करते थे। वे बच्चे नहीं दिखाई देते ।।६०७।। इस पर्वत के ऊपर नाना प्रकार के फल हैं, जिन्हें वे पहले खाते थे। वे बच्चे दिखाई नहीं देते ।।६०८।। ये हाथी, घोड़े और ये बैल हैं जिनसे वे पहले खेलते थे। वे कुमार दिखाई नहीं देते ।।६०९।।]

जब उसे पर्वत के ऊपर बच्चे नहीं दिखाई दिये तो वहाँ से उतरी और फिर आश्रम आकर उन्हें खोजने लगी। वहां उनके खिलौने देख बोली—

इमे सामा ससोलूका बहुका कदली मिगा,
येहिस्सु पुब्बे कोळिंसु ते कुमारा न दिस्सरे ।।६१०।।
इमे हंसा च कोञ्चा च मयूरा चित्रपेक्खुणा,
ये हिस्सु पुब्बे कोळिंसु ते कुमारा न दिस्सरे ।।६११।।

[ये (स्वर्ण-) मृग हैं, ये खरगोश हैं, ये उल्लू हैं और ये बहुत से कदली मृग हैं जिनसे वे पहले खेलते थे। अब वे बच्चे दिखाई नहीं देते ।।६१०।। ये हंस हैं, ये क्रौंच हैं और ये चित्रित परों वाले मोर हैं, जिनसे वे पहले खेलते थे। अब वे बच्चे दिखाई नहीं देते ।।६११।।]

जब उसे आश्रम में भी अपनी प्रिय सन्तान दिखाई नहीं दी तो वह वहाँ से निकली और पुष्पित गहन-वन में चली गई। उस स्थान को देखती हुई वह बोली—

इमा ता वनगुम्बायो पुप्फिता सब्बकालिका,
यत्थस्सु पुब्बे कीळिंसु ते कुमारा न दिस्सरे ।।६१२।।
इमा ता पोक्खरणियो रम्मा चक्कवाकुपकूजिता,
मन्दालकेहि सञ्छन्ना पदुमुप्पलकेहि च,
यत्थस्सु पुब्बे कीळिंसु ते कुमारा न दिस्सरे ।।६१३।।

[ये सर्वदा पुष्पित रहने वाले वन-समूह हैं, जहाँ वे पहले खेलते थे। अब वे बच्चे दिखाई नहीं देते ।।६१२।। ये वे रमणीक पुष्करिणियाँ हैं जहां चक्रवाक

गूंजते हैं और जो मन्दालक, पद्म-उत्पलों से ढकी हैं और जहाँ पहले बच्चे खेलते थे अब वे बच्चे दिखाई नहीं देते ।।६१३।।]

जब उसे कहीं भी बच्चे न दिखाई दिये तो वह फिर बोधिसत्व के पास पहुँची और उसे चिन्तित देख बोली—

> **न ते कट्ठानि भिन्नानि न ते उदकमाभतं,**
> **अग्गिपि ते न हापितो किन्नु मन्दोव झायसि ।।६१४।।**
> **पियो पियेन संगम्म समो मे व्यप ञ्ञति,**
> **त्यज्ज पुत्ते न पस्सामि जालिं कण्हाजिनञ्चुभो ।।६१५।।**

[न तो तूने लकड़ी ही तोड़ी है और न पानी ही ला रखा है। आग भी नहीं जलाई है। क्या सोच कर रहे हे ? ।।६१४।। (पहले) प्रिय का प्रिय से मेल होने से दुःख दूर हो जाता था । मैं आज जालि और कृष्णाजिना दोनों बच्चों को नहीं देखती हूँ ।।६१५।।]

उसके ऐसा कहने पर भी बोधिसत्व चुप-चाप ही बैठा रहा । उसके कुछ न बोलने पर वह शोक-मग्ना आहत-मृगी की तरह काँपती हुई, जहाँ जहाँ पहले गई थी वहाँ-वहाँ फिर जा कर लौटी। वह बोली—

> **न खो नो देव पस्सामि येन ते निहता मता,**
> **काकोळापि न वस्सन्ति हता मे नून दारका ।।६१६।।**
> **न खो नो देव पस्सामि येन ते निहता मता,**
> **सकुणापि न वस्सन्ति मता मे नून दारका ।।६१७।।**

[देव ! मुझे वे दिखाई नहीं देते। ये भी नहीं जानती कि कैसे मरे ? कौवे भी नहीं बोलते हैं। मेरे बच्चे निश्चय से मर गये ।।६१६।। देव ! मुझे वे. . . .मरे ? पक्षी भी. . . . .मर गये ।।६१७।।]

इतना बोलने पर भी बोधिसत्व मौन ही रहा । पुत्र-शोक से अभिभूत होने के कारण वह तीसरी बार भी उन्हीं स्थानों में वायु-वेग से घूमी । एक रात में घूमने की जगह घूमने पर पन्द्रह योजन की (सी) हो गई । रात बीत गई। अरुणोदय हो गया। वह फिर जाकर बोधिसत्व के पास खड़ी हो विलाप करने लगी।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा---

सा तत्थ परिदेवित्वा पब्बतानि वनानि च,
पुन देवस्समं गन्त्वा सामिकस्सन्ति रोदति ॥६१८॥
न खो नो देव पस्सामि येन ते निहता मता,
काकोळापि न वस्सन्ति हता मे नून दारका ॥६१९॥
न खो नो देव पस्सामि येन ते निहता मता,
सकुणपि न वस्सन्ति मता मे नून दारका ॥॥६२०॥
न खो नो देव पस्सामि येन ते निहता मता,
विचरन्ति रुक्खमूलेसु पब्बतेसु गुहासु च ॥६२१॥
इति मद्दी वरारोहा राजपुत्ती यसस्सिनी,
बाहा पग्गय्ह कन्दित्वा तत्थेव पतिता छमा ॥६२२॥

[वह पर्वतों तथा वनों में विलाप कर चुकने के बाद फिर स्वामी के पास जा कर रोने लगी ॥६१८-६२०॥ देव ! मैं वृक्षों के नीचे, पर्वतों में और गुहाओं में घूमती हूँ। मुझे पता नहीं लगता कि वे कैसे मरे हैं ॥६२१॥ इस प्रकार वह श्रेष्ठ-देवी, यशस्विनी, राजपुत्री हाथ उठाकर रोती हुई वहीं जमीन पर गिर पड़ी ॥६२२॥]

बोधिसत्व यह समझ कि यह मर गई है सोचने लगा कि माद्री विदेश में अनुचित जगह पर मरी। यदि जेतुत्तर नगर में इसकी काल क्रिया हुई होती तो बहुत सत्कृत होती। दोनों राष्ट्र दहल जाते। मैं जंगल में अकेला हूँ। मै क्या करूँ ? उसे बहुत शोक हुआ। लेकिन उसने होश संभाला और सोचा कि पहले देखता हूँ, उसने उसके हृदय पर हाथ रखकर देखा तो वह गर्म लगा। वह कमण्डल में जल ले आया। यद्यपि सात महीने तक उसका शरीर-संसर्ग नहीं हुआ था तो भी स्नेह की अधिकता के कारण वह प्रव्रजित-भाव का ख्याल न रख सका। उसने अश्रु-पूर्ण नेत्रों से उसका सिर उठाकर जांघ में रखा और पानी के छींटे दे, बैठा बैठा उसका मुंह और छाती मलने लगा। माद्री को भी थोड़ी देर के बाद होश आ गया। वह उठी और लज्जा-भय का ख्याल कर बोधिसत्व को नमस्कार करके बोली—"स्वामी वेस्सन्तर ! बच्चे कहाँ गये हैं ?"

"देवी ! मैंने एक ब्राह्मण को दास-कर्म के लिये दे दिये।"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

मज्झपत्तं राजपुत्तिं उदकेन अभिसिञ्चथ,
अस्सत्थं तं विदित्वान अथ नं एतदब्रवि ॥६२३॥

[उस अपने पास आई हुई राजपुत्री पर पानी छिड़का और जब उसे आश्वस्त जाना तो उसे यह कहा ।।६२३।।]

तब उसने पूछा—"पुत्र ब्राह्मण को देकर मेरे सारी रात विलाप करके घूमते रहने पर भी मुझे क्यों नहीं बताया ?" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

आदियेनेव ते मद्दि दुक्खं न कातुमिच्छियं,
दलिद्दो याचको वुढ्ढो ब्राह्मणो घरमागतो,
तस्स दिन्ना मया पुत्ता माद्दि मा भायि अस्सस ।।६२४।।
मं पस्स मद्दि मा पुत्ते मा बाळहं परिदेवसि ,
लच्छाम पुत्ते जीवन्ता अरोगा च भवामसे ।।६२५।।
पुत्ते पसुञ्च धञ्जञ्च यञ्च मञ्ञं घरे धनं,
दज्जा सप्पुरिसो दानं दिस्वा याचकमागते ,
अनुमोदाहि मे मद्दि पुत्तके दानमुत्तमं ।।६२६।।

[माद्री ! मैंने तुझे आरम्भ में ही दुःख पहुँचाना नहीं चाहा । एक दरिद्र बूढ़ा ब्राह्मण घर आ गया था । माद्री ! मैंने उसे पुत्र दे दिये हैं । भय मत कर। आश्वस्थ हो ।।६२४।। माद्री ! मेरी ओर देख । पुत्रों की ओर न देख । अधिक मत रो । जीते रहे तो पुत्र मिल जायेंगे और हम सुखी होंगे ।।६२५।। याचक के आने पर सत्पुरुष को चाहिये कि पुत्र, पशु, धान्य और घर में जो धन हो वह उसे दे । माद्री ! पुत्रों का दान श्रेष्ठ है । तू मेरा अनुमोदन कर ।।६२६।।]

माद्री बोली—

अनुमोदामि ते देव पुत्तके दानमुत्तमं,
दत्वा चित्तं पसादेहि भिय्यो दानददोभव ।।६२७।।
यो त्वं मच्छेरभूतेसु मनुस्सेसु जनाधिप,
ब्राह्मणस्स अदा दानं सिवीनं रट्ठवड्ढनो ।।६२८।।

[हे देव ! जो तूने पुत्रों का श्रेष्ठ दान दिया है, मैं उसका अनुमोदन करती हूँ । (दान) देकर चित्त को प्रसन्न कर तथा और भी दान देने वाला हो ।।६२७।। हे राजन ! हे सिवियों के राष्ट्रवर्धन ! आपने जो मात्सर्य्य-युक्त मनुष्यों में ब्राह्मण को दान दिया (उससे भी और अधिक दान दें) ।।६२८।।]

ऐसा कहने पर बोधिसत्व ने माद्री को कहा—'माद्री ! यह तू क्या कहती

है ? यदि पुत्र दे कर मैंने चित्त प्रसन्न न किया होता तो ये आश्चर्य न हुए होते' कह सभी पृथ्वी के नाद करने आदि आश्चर्य्यों का वर्णन किया। तब माद्री ने उन आश्चर्य्यों की बात सोच दान का अनुमोदन करते हुए कहा—

निन्नादिता ते पठवी सद्दो ते तिदिवं गतो,
समन्ता विज्जुता आगुं गिरीनं व पतिस्सुता ।।६२९।।

[तेरे लिये पृथ्वी ने निनाद किया। वह शब्द त्रि-दिव (लोक) तक पहुँचा। पर्वतों के प्रति-श्रुत शब्द की तरह चारों ओर से अकाल-बिजली उठी ।।६२९।।]

तस्स ते अनुमोदन्ति उभो नारद पब्बता,
इन्दो च ब्रह्मा च प्रजापती च,
सोमो यमो वेस्सवणोव राजा;
सब्बे देवा अनुमोदन्ति तावतिंसा स इन्दका ।।६३०।।
इति मद्दी वरारोहा राजपुत्ती यसस्सिनी,
वेस्सन्तरस्स अनुमोदि पुत्तके दानमुत्तमं ।।६३१।।

[दोनों नारद-पर्वत (वासी देवताओं) ने उसके दान का अनुमोदन किया। इन्द्र ने किया, ब्रह्मा ने किया और प्रजापति ने किया। सोम, यम तथा कुबेर ने किया। सभी देवता अनुमोदन करते हैं और त्रयोत्रिंश देवता ।।६३०।। इस प्रकार श्रेष्ठ देवी, यशस्विनी, राजपुत्री माद्री ने वेस्सन्तर द्वारा दिये गये पुत्रों के श्रेष्ठ दान का अनुमोदन किया ।।६३१।।]

माद्री-पर्व समाप्त

इस प्रकार जब वे आपस में मेल की बातचीत कर रहे थे शक्र ने सोचा— 'वेस्सन्तर राजा ने कल पूजक को पुत्रों का दान दे पृथ्वी को गुंजा दिया। अब कोई हीन पुरुष उसके पास जा, सभी लक्षणों से युक्त शीलवती माद्री को उससे माँग, राजा को अकेला छोड़, माद्री को ले कर (न) चल दे। तब वह अनाथ, असहाय हो जाय।' उसने और सोचा कि मै ब्राह्मण वेष से उसके पास जा, माद्री को माँग, उसको (दान-) पारमिता को शिखर पर चढ़ा, किसी के लिये अदेय बना, फिर उसे उसी को लौटा कर आऊँगा। वह सूर्य्योदय के समय उसके पास पहुँचा। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो रत्या विवसने सुरियस्सुग्गमणम्पति,
सक्को ब्राह्मणवण्णेन पातो तेसं अविस्सथ ॥६३२॥

[तब रात्रि की समाप्ति होने पर, सूर्योदय होने पर, प्रातःकाल ही शक्र ब्राह्मण-वेष में उनके सामने प्रकट हुआ ॥६३२॥]

उसने कुशल-क्षेम पूछी—

कच्चिन्नु भोतो कुसलं कच्चि भोतो अनामयं,
कच्चि उञ्छेन यापेथ कच्चि मूलफला बहू ॥६३३॥
कच्चि डंसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे कच्चि हिंसा न विज्जति ॥६३४॥

[देखें गाथा संख्या ॥३७२ तथा ३७३॥]

बोधिसत्व ने भी उत्तर दिया—

कुसलञ्चेव नो ब्रह्मे अथो ब्रह्मे अनामयं,
अथो उञ्छेन यापेम अथो मूलफला बहू ॥६३५॥
अथो डंसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे हिंसा अम्हं न विज्जति ॥६३६॥
सत्त नो मासे वसतं अरञ्ञे जीवसोकिनं,
इमम्पि दुतियं पस्साम ब्राह्मणं देववण्णिनं,
आदाय बेळुवं दण्डं धारेन्तं अजिनक्खिपं ॥६३७॥

[देखें गाथा संख्या ३७४ तथा ३७५ ॥ जंगल में बिना किसी के (अकेले) रहते सात महीने हो गये। यह देव वर्ण ब्राह्मण का दूसरा दर्शन है—बिल्व का डण्डा और अजिन-चर्म का पहनावा ॥६३७॥]

स्वागतं ते महाब्रह्मे अथो ते अदुरागतं,
अन्तो पविस भद्दन्ते पादे पक्खालयस्सुते ॥६३८॥
तिन्दुकानि पियालानि मधुके कासुमारियो,
फलानि खुद्दकप्पानि भुञ्ज ब्रह्मे वरं वरं ॥६३९॥
इदम्पि पानीयं सीतं आभतं गिरिगब्भरा,
ततो पिव महाब्रह्मे सचेत्वं अभिकङ्खसि ॥६४०॥

[देखें गाथा संख्या ३७७, ३७८ तथा ३७६।।]

इस प्रकार उसके साथ कुशल-क्षेम बतिया कर आने का कारण पूछा—

अयत्वं केन वण्णेन केन वा पन हेतुना,
अनुपत्तो ब्रह्‌ारञ्ञं तं मे अक्खाहि पुच्छितो ।।६४१।।

[देखें गाथा संख्या ४६०।।]

तब शक्र ने 'महाराज ! मै बूढ़ा हो गया हूँ। यह मै आपकी भार्य्या माद्री की याचना करने आया हूँ। वह मुझे दें' कह गाथा कही—

यथा वारिवहो पूरो सब्बकालं न खीयति,
एवं तं याचितागञ्छिं भरियं मे देहि याचितो ।।६४२।।

[जैसे भरी हुई नदी कभी क्षीण नहीं होती। इसी प्रकार मैं तुमसे याचना करने आया हूँ। मेरे मांगने पर आप अपनी भार्य्या मुझे दें ।।६४२।।]

ऐसा कहने पर बोधिसत्व ने 'ब्राह्मण ! कल बच्चे दे दिये थे। जंगल में अकेला रह कर तुझे माद्री कैसे दे दूँ ?' न कह फैलाये हाथ पर हजार की थैली रखने की तरह बिना चिपके, बिना बँधे, आसक्ति रहित हो कर पर्वत को गुँजाते हुए यह गाथा कही—

ददामि न विकम्पामि यं मं याचसि ब्राह्मण,
सन्तं नप्पटिगुहामि दाने में रमती मनो ।।६४३।।

[हे ब्राह्मण ! जो तू माँगता है मैं देता हूँ। मै विचलित नहीं होता हूँ। जो है उसे मैं छिपाता नहीं हूँ। मुझे दान देना अच्छा लगता है ।।६४३।।]

यह कह शीघ्र ही कमण्डलु से जल ले हाथ पर गिरा ब्राह्मण को भार्य्या दे दी। उसी क्षण उपरोक्त प्रकार के सभी आश्चर्य हुए।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

मद्दिं हत्थे गहेत्वान उदकस्स च कमण्डलुं,
ब्राह्मणस्स अदा दानं सिवीनं रट्ठवड्ढनो ।।६४४।।
तदासि यं भिंसनकं तदासि लोमहंसनं,
मद्दिं परिच्चजन्तस्स मेदिनी समकम्पथ ।।६४७।।
नेवस्स मद्दी भकुटी न सन्धीयति न रोदति,
पेक्खतेवस्स तुण्ही सा एसो जानाति यं वरं ।।६४८।।

[सिवियों के राष्ट्रवर्धन ने हाथ में पानी का कमण्डलु लिया और माद्री को हाथ से पकड़ कर ब्राह्मण को दान दिया ।।६४४।। उस समय भय उत्पन्न हुआ, उस समय रोमांच हुआ। जब माद्री त्यागी गई उस समय पृथ्वी कांप उठी ।।६४७।। माद्री ने न भौं टेढ़ी की, न विरोध किया और न रोई। वह यह मान कर कि यह जानता है कि क्या श्रेष्ठ है चुपचाप देखती रही ।।६४८।।]

कहा भी गया है—

जालिं कण्हाजिनं धीतं मद्दिदेविं पतिब्बतं,
चजमानो न चिन्तेसिं बोधिया येव कारणा ।।६४८।।
न मे देस्सा उभो पुत्ता मद्दी देवी न देस्सिया,
सब्बञ्ञुतं पियं मय्हं तस्मा पिये अदासहं ।।६४९।।

[जालि (कुमार) कृष्णाजिना पुत्री और माद्री पतिव्रता का त्याग करते हुए बोधि के ही कारण से मैंने चिन्ता नहीं की ।।६४८।। दोनों बच्चों से भी मेरा द्वेष नहीं और माद्री से भी मेरा द्वेष नहीं। किन्तु मुझे सर्वज्ञता प्रिय है। इसलिए मैंने प्रियों का त्याग कर दिया ।।६४९।।]

बोधिसत्व ने 'माद्री कैसा है' पूछते हुए मुंह देखा। उसने 'देव! मेरी ओर क्या देखते हैं?' कह सिंह-नाद करते हुए यह गाथा कही—

कोमारी यस्सहं भरिया सामिको मम इस्सरो,
यस्सिच्छे तस्स मं दज्जा विक्किणेय्य हनेय्य वा ।।६५०।।

[मैं कुमारी जिसकी भार्य्या हूँ, वह मेरा स्वामी है, वह मेरा ईश्वर है। वह जिसे चाहे उसे दे, बेचे वा मार डाले ।।६५०।।]

शक्र ने उनके श्रेष्ठ विचार की स्तुति की। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

तेसं संकप्पमञ्ञाय देविन्दो एतदब्रवि,
सब्बे जिताते पच्चूहा ये दिब्बा ये च मानुसा ।।६५१।।
निन्नादिता ते पठवी सद्दो ते तिदिवं गतो,
समन्ता विज्जुता आगुं गिरीनं व पटिस्सुता ।।६५२।।
तस्स ते अनुमोदन्ति उभो नारद पब्बता,
इन्दो च ब्रह्मा च पजापती च,

सोमो यमो वेस्सवणो च राजा,
सब्बे देवा अनुमोदन्ति दुक्करं हि करोति सो ॥६५३॥
दुद्दं ददमानानं दुक्करं कम्मकुब्बतं,
असन्तो नानुकुब्बन्ति सतं धम्मो दुरन्नयो ॥६५४॥
तस्मा सतञ्च असतञ्च नाना होति इतो गति,
असन्तो निरयं यन्ति सन्तो सग्गपरायणा ॥६५५॥
यमेतं कुमारे अददा भरियं अददा वने वसं,
ब्रह्मयानमनोककम्म सग्गे ते तं विपच्चतु ॥६५६॥

[उनका संकल्प जान देवेन्द्र बोला—दिव्य तथा मानुष सभी शत्रुओं को जीत लिया है ॥६५१॥ तुमने पृथ्वी गुंजा दी। तुम्हारा स्वर त्रिदिव (लोक) तक पहुँच गया। गिरियों की प्रति-श्रुति के समान चारों ओर से (अकाल) बिजली कौंध गई। दोनों नारद पर्वतों के अधिवासी देवता तेरा अनुमोदन करते हैं—इन्द्र, ब्रह्मा और प्रजापती। सोम, यम और राजा कुबेर सभी देवता अनुमोदन करते हैं कि बड़ा दुष्कर कार्य्य किया है ॥६५२-६५३॥ देने वालों के लिये देना कठिन है, करने वालों के लिये यह कर्म दुष्कर है। असत्पुरुष ऐसा कर्म नहीं करते। सत्पुरुषों की गति दुर्ज्ञेय है ॥६५४॥ इसलिये सत्पुरुषों तथा असत्पुरुषों की गति भिन्न भिन्न होती है। असत्पुरुष नरक को जाते हैं, सत्पुरुष स्वर्ग को जाते हैं ॥६५५॥ जो बच्चों का दान किया और जो जंगल में रहते भार्य्या का दान दिया, यह ब्रह्म-यान नरक-लोक को लांघ कर स्वर्ग में फल दायक हो ॥६५६॥]

इस प्रकार शक्र ने अनुमोदन कर और यह सोच कि मुझे अब यहाँ विलम्ब नहीं करना चाहिये और यह इसे ही देकर जाना चाहिये, ये गाथायें कहीं—

ददामि भोतो भरियं मद्दिं सब्बंगसोभनं,
त्वञ्ञेव मद्दिया छन्नो मद्दीच पतिनासह ॥६५७॥
यथा पयो च संखो च उभो समानवण्णिनो,
एवं तुवञ्च मद्दीच समानमनचेतसा ॥६५८॥
अवरुद्धेथ अरञ्ञस्मिं उभो सम्मथ अस्समे,
खत्तिया गोत्तसम्पन्ना सुजाता मातुपेत्तितो,
यथा पुञ्ञानि कयिराथ ददन्ता अपरापरं ॥६५९॥

[मैं तेरी सर्वाङ्ग सुन्दरी भार्य्या माद्री तुझे देता हूँ। तू ही माद्री के अनुरूप है और माद्री पति के अनुरूप है ।।६५७।। जैसे दूध और शङ्ख का वर्ण एक ही जैसा है, उसी प्रकार तू और माद्री समान मन और चित्त वाली है ।।६५८।। यहाँ जंगल में दोनों एक-चित्त हो कर (?) रहो। वह माता पिता की ओर से सुजात है, सगोत्र है, क्षत्रिया है। यथापूर्व जब तब दान करते हुए पुण्य कर्म करो ।।६५९।।]

यह कह 'वर' देने के लिये अपने आपको प्रकट करते हुए कहा—

सक्कोहमस्मि देविन्दो आगतोस्मि तवन्तिके,
वरं वरस्सु राजिसि वरे अट्ठ ददामि ते ।।६६०।।

[मैं देवेन्द्र शक्र तेरे पास आया हूँ। हे राजर्षी! वरदान माँग। मैं तुझे आठ वर देता हूँ ।।६६०।।]

यह कहते हुए वह अपने दिव्य-स्वरूप में प्रज्वलित होता हुआ तरुण-सूर्य्य की तरह आकाश में स्थिर हुआ।

तब बोधिसत्व ने 'वर' माँगते हुए कहा—

वरं चे मे अदो सक्क सब्बभूतानमिस्सर,
पिता मं अनुमोदेय्य इतो पत्तं सकं घरं,
आसनेन निमन्तेय्य पठमं तं वरं वरे ।।६६१।।
पुरिसस्स वधं न रोचेय्यं अपि किब्बिसकारिकं,
वज्झं वधम्हा मोचेय्यं दुतियेतं वरं वरे ।।६६२।।
ये च वुद्धा ये च दहरा ये च मज्झिमपोरिसा,
ममेव उपजीवेय्युं ततियेतं वरं वरे ।।६६३।।
परदारं न गच्छेय्यं सदारपसुतो सियं,
थीनं वसं न गच्छेय्यं चतुत्थेतं वरं वरे ।।६६४।।
पुत्तो मे सक्क जायेथ सो च दीघायुको सिया,
धम्मेन जिने पठविं पञ्चमेतं वरं वरे ।।६६५।।
ततो रत्या विवसने सुरियुग्गमणं पति,
दिब्बा भक्खा पातुभवेय्युं छट्ठमेतं वरं वरे ।।६६६।।
ददतो मे न खीयेथ दत्वा नानुतपेय्याहं,
ददं चित्तं पसादेय्यं सत्तमेतं वरं वरे ।।६६७।।

इतो विमुच्चमानाहं सग्गगामी विसेसगु,
अनिब्बत्ती ततो अस्सं अट्ठमेतं वरं वरे ॥६६८॥

[हे सब प्राणियों के 'ईश्वर' शक्र ! यदि तू मुझे वर देना चाहता है तो पहला 'वर' तो यह दे कि जब मैं यहाँ से अपने घर जाऊँ तो मेरा पिता मेरा अनुमोदन करे तथा मुझे आसन लेने के लिये कहे ॥६६१॥ दूसरा 'वर' यह दे कि राजापराधी भी हो मुझे उसका 'बध' अच्छा न लगे। मैं जो बध होने जा रहा हो उसे बध से मुक्त करा दूँ ॥६६२॥ तीसरा 'वर' दे कि जो बूढ़े हैं, जो छोटे हैं और जो मध्यमावस्था के हैं वे सब मेरे ही सहारे जीयें ॥६६३॥ चौथा 'वर' दे कि मैं परस्त्रीगमन न करूँ, अपनी स्त्री में ही अनुरक्त रहूँ। मैं स्त्रियों के वशीभूत न होऊँ ॥६६४॥ पाँचवाँ 'वर' दे कि जो मेरा पुत्र हो वह ही दीर्घायु हो और धर्म से पृथ्वी को जीते ॥६६५॥ छठा 'वर' दे कि रात्री के बीत जाने पर सूर्य्य का उदय होने पर दिव्य भोजन प्रादुर्भूत हों ॥६६६॥ सातवां 'वर' दे कि मेरे दान देने से धन समाप्त न हो और देकर मुझे अनुताप न हो और देने से मेरे चित्त में आनन्द हो ॥६६७॥ आठवाँ 'वर' दे कि यहां से छूटने पर मैं विशेष रूप से स्वर्गगामी होऊँ और वहाँ से फिर जन्म-मरण के बन्धन से मोक्ष लाभ करूँ ॥६६८॥]

तस्स तं वचनं सुत्वा देविन्दो एतदब्रवी,
अचिरं वत ते तातो पिता तं दट्ठुमेस्सति ॥६६९॥

[उसकी यह बात सुन उसे देवेन्द्र ने कहा—तात ! तेरा पिता शीघ्र ही तुझे देखने आयेगा ॥६६९॥]

शक्र ने बोधिसत्व को इतना कहा और अपने स्थान को चला गया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने यह गाथा कही—

इदं वत्वान मघवा देवराजा सुजम्पति,
वेस्सन्तरे वरं दत्वा सग्गकामं अपक्कमी॥ ६७०॥

[देवराज देवेन्द्र सुज पति ने ऐसा कहा और वेस्सन्तर को 'वर' देकर स्वर्ग लोक को चला गया ॥६७०॥]

शक्र पर्व समाप्त

बोधिसत्व और माद्री प्रसन्नता पूर्वक शक्र के दिये हुए आश्रम में रहने लगे। जूजक भी बच्चों को लिये साठ योजन के मार्ग पर निकल पड़ा। देवता बच्चों की

हिफाजत करते थे। सूर्य्यास्त होने पर पूजक बच्चों को बांध जमीन पर लिटा देता और स्वयं भयानक जंगली जानवरों के डर के मारे वृक्ष पर चढ़ शाखाओं के अन्दर पड़ रहता। उस समय एक देव-पुत्र वेस्सन्तर का रूप बना और एक देवकन्या माद्री का रूप बना, आकर, बच्चों को मुक्त कर, हाथ-पाँव की मालिश कर, नहला, सजा, खाना खिला, दिव्य शैय्या पर सुला, अरुणोदय के समय फिर बँधे हुओं के रूप में ही सुलाकर अन्तर्धान हो जाते।

इस प्रकार वे देवताओं की कृपा से निरोगी रह चले जा रहे थे। पूजक के सिर पर भी देवता सवार था। वह भी दो सप्ताह में कालिङ्ग राष्ट्र पहुंचने के बजाय जेतुत्तर नगर जा पहुंचा। उस दिन ब्राह्म-मुहूर्त्त में सञ्जय सिविराज ने भी स्वप्न देखा। स्वप्न ऐसा था। जब राजा दरबार में बैठा था एक आदमी ने कँवल के दो फूल लाकर राजा के हाथ में रख दिये। राजा ने दोनों कानों पर धारण कर लिये। उनकी रेणु निकल कर राजा के पेट पर पड़ी। उसने जाग कर प्रातःकाल ही ब्राह्मणों से पूछा। उन्होंने बताया—'देव! बहुत दिन के गये सगे लौट कर आयेंगे।' वह प्रातःकाल ही नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन खा दरबार में बैठा। देवताओं ने ब्राह्मण को राजाङ्गन में पहुंचा दिया। उस समय राजा ने बच्चों की ओर देखकर कहा—

कस्सेतं मुखमाभाति हेमं वुत्तत्तभग्गिवा,
निक्खं व जातरूपस्स उक्कामुखपहंसितं ॥६७१॥
उभो सदिसपच्चंगा उभो सदिसलक्खणा,
जालिस्स सदिसो एको एका कण्हाजिना यथा ॥६७२॥
सीहा बिला व निक्खन्ता उभो सम्पतिरूपका,
जातरूपमया येव इमे दिस्सन्तिदारका ॥६७३॥

[यह अग्नि-दीप्त स्वर्ण के समान किसका मुँह दिखाई देता है, मानों सुनार की आग में पड़ा हुआ सोना हो ॥६७१॥ दोनों के अंग-प्रत्यङ्ग समान हैं, दोनों के लक्षण एक हैं, एक जालि के समान है, दूसरी कृष्णाजिना के समान ॥६७२॥ गुफा से निकले सिंह के समान दोनों रूपवान हैं। ये दोनों बच्चे स्वर्ग के समान प्रतीत होते हैं ॥६७३॥]

इस प्रकार राजा ने तीन गाथाओं से बच्चों की प्रशंसा कर एक अमात्य को आज्ञा दी—"जा बच्चों सहित इस ब्राह्मण को ले आ।" वह जल्दी से जाकर लिवा लाया। तब ब्राह्मण ने राजा को कहा—

कुतो नु भवं भारद्वाज इमे आनेसि दारके ।

[भारद्वाज! ये बच्चे कहाँ से लाये?]

पूजक बोला—

मय्हं ते दारका देव दिन्ना वित्तेन सञ्जय,
अज्ज पन्नरसा रत्ति यतो दिन्ना मे दारका ।।६७४।।

[हे सञ्जय! मुझे ये बच्चे सन्तुष्ट चित्त द्वारा दिये गये हैं। आज इन बच्चों को मुझे मिले पन्द्रह दिन हो गये ।।६७४।।]

राजा ने पूछा—

केन वा वाचपेय्येन सम्माजायेन सद्दहे,
को ते तं दानमददा पुत्तके दानमुत्तमं ।।६७५।।

[किस प्रिय-वचन से तुझे प्राप्त हुए। सम्यक-ज्ञान से हमारे मन में श्रद्धा उत्पन्न कर। तुझे यह दान किसने दिया है? पुत्र-दान श्रेष्ठ है ।।६७५।।]

पूजक बोला—

यो याचतं पतिट्ठासि भूतानं धरणीरिव,
सो मे वेस्सन्तरो राजा पुत्तेदासि वने वसं ।।६७६।।
यो याचतं गती आसि सवन्तीनंव सागरो,
सो मे वेस्सन्तरो राजा पुत्तेदासि वने वसं ।।६७७।।

[जैसे प्राणियों के लिये पृथ्वी, उसी प्रकार जो याचकों का आधार है, उस वेस्सन्तर राजा ने मुझे वन में रहते हुए पुत्र दिये। जैसे नदियों के लिये सागर उसी प्रकार जो याचकों का शरण स्थान है, उस वेस्सन्तर राजा ने वन में रहते हुए मुझे पुत्र दिये ।।६७६-६७७।।]

यह सुन अमात्यगण वेस्सन्तर की निन्दा करने लगे—

दुक्कतं वत भो रञ्ञा सद्धेन घरमेसिना,
कथं नु पुत्तके दज्जा अरञ्ञे अवरुद्धको ।।६७८।।
इमं भोन्तो निसामेथ यावन्तेत्थ समागता,
कथं वेस्सन्तरो राजा पुत्तेदासि वने वसं ।।६७९।।

दासं दासिञ्च सो दज्जा अस्सं वास्सतरी रथं,
हत्थिञ्च कुञ्जरं दज्जा कथं सो दज्जा दारके ॥६८०॥

[घर में रहते समय भी श्रद्धावान् राजा ने दुष्कर कार्य्य किया। अब जंगल में निर्वासित रहने पर वह बच्चों का दान कैसे कर सकता है? ॥६७८॥ आप जितने लोग यहाँ आये हैं, सुनें कि वेस्सन्तर राजा वन में रहते समय बच्चों का दान कैसे कर सकता है? ॥६७९॥ वह दास-दासियों का दान कर सकता है, घोड़े, खच्चर तथा रथ का दान कर सकता है, कुञ्जर हाथी का दान कर सकता है, वह बच्चों का दान कैसे कर सकता है? ॥६८०॥]

यह सुना तो कुमार पिता की निन्दा नहीं सहन कर सका। उसने वायु-प्रताड़ित सिनेरु पर्वत की भान्ति हाथ उठाकर यह गाथा कही—

यस्स नत्थि घरे दासो अस्सोवास्सतरी रथो,
हत्थी च कुञ्जरो नागो किं सो दज्जा पितामह ॥६८१॥

[हे पितामह! जिसके घर में दास न हो, घोड़ा न हो, खच्चर न हो, रथ न हो, हाथी न हो और कुञ्जर नाग न हो वह क्या दे? ॥६८१॥]

राजा बोला—

दानमस्स पसंसाम न च निन्दाम पुत्तका,
कथं नु हदयं आसि तुम्हे दत्वा वणिब्बके ॥६८२॥

[बच्चे! हम इस दान की प्रशंसा करते हैं। हम इस दान की निन्दा नहीं करते। तुम्हें याचक को देकर उसका हृदय कैसा था? ॥६८२॥]

कुमार बोला—

दुक्खस्स हदयं आसि अथो उण्हम्पि पस्ससि,
रोहि हेव तम्बक्खो पिता अस्सूनि वत्तयि ॥६८३॥

[उसका हृदय दुःख-पूर्ण था, उसकी आँखें गरम थीं और (ताम्रवर्ण) रोहिणी के समान ताम्रवर्ण की थीं। पिता की आँख से आंसू भी गिरे थे ॥६८३॥]

अब (कृष्णाजिना के जिस वचन को सुन कर उसके आंसू गिरे) वह वचन बताया—

यं तं कण्हाजिनावोच अयं मं तात ब्राह्मणो,
लट्ठिया पतिकोटेति घरे जातं व दासियं ॥६८४॥

न चायं ब्राह्मणो तात धम्मिका होन्ति ब्राह्मणा,
यक्खो ब्राह्मणवण्णेन खादितुं तात नेति नो,
नीयमाने पिसाचेन किन्नु तात उदिक्खसि ॥६८५॥

[कृष्णाजिना ने कहा—तात ! मुझे यह ब्राह्मण घर में उत्पन्न हुई दासी की तरह लाठी से पीटता है। तात यह ब्राह्मण नहीं है। ब्राह्मण तो धार्मिक होते हैं। यह तो ब्राह्मण-वेश में कोई यक्ष है जो हमें खाने के लिये ले जा रहा है। तात ! हमें पिशाच लिये जा रहा है, आप क्या देख रहे हैं ? ॥६८४-६८५ ॥]

राजा ने जब देखा कि बच्चे ब्राह्मण को छोड़ नहीं रहे हैं तो उसने गाथा कही—

राजपुत्ती च वो माता राजपुत्तो च वो पिता,
पुब्बे मे अंकमारुटह किन्नु तिट्ठथ आरका ॥६८६॥

[तुम्हारी माता राजपुत्री है, तुम्हारा पिता राजपुत्र है। पहले आकर मेरी गोद में बैठो। दूर क्यों खड़े हो ? ॥६८६॥]

कुमार बोला—

राजपुत्ती च नो माता राजपुत्तो च नो पिता,
दासा मयं ब्राह्मणस्स तस्मा तिट्ठाम आरका ॥६८७॥

[हमारी माता राजपुत्री है, हमारा पिता राजपुत्र है, किन्तु हम ब्राह्मण के दास हैं, इसलिये दूर खड़े हैं ॥६८७॥]

राजा बोला—

मा सम्मेवं अवचुत्थ डटहते हदयं मम,
चितका विय मे कायो आसने न सुखं लभे ॥६८८॥
मा सम्मेवं अवचुत्थ भीयो सोकं जनेथ मं,
निक्किणिस्सामि दण्डेन न वो दासा भविस्सथ ॥६८९॥
किमग्घियं हि वो तात ब्राह्मणस्स पिता अदा,
यथाभूतं मे अक्खाथ पटिपादेन्तु ब्राह्मणं ॥६९०॥

[सौम्य ! ऐसी बात मुंह से मत निकाल। मेरा हृदय जलता है। जैसे चिता पर वैसे ही मेरे शरीर को इस आसन पर सुख नहीं मिल रहा है ॥६८८॥ सौम्य ! ऐसी बात मुँह से मत निकाल। इससे मेरा शोक और भी बढ़ता है। मैं मूल्य देकर

छुड़ा लूंगा। तुम दास नहीं रहोगे ॥६८९॥ तात ! तुम्हारे पिता ने तुम्हारा कितना मूल्य लगाकर तुम्हें ब्राह्मण को दिया था। मुझे यथार्थ कहो ताकि ब्राह्मण को धन दिया जाय ॥६९०॥]

कुमार बोला—

> सहस्सग्घं हि मं तात ब्राह्मणस्स पिता अदा,
> अच्छं कण्हाजिनं कञ्ञं हत्थिना च सतेन वा ॥६९१॥

[पिता ने हजार कीमत लगा कर मुझे ब्राह्मण को दिया और अच्छी कृष्णाजिना की सौ हाथी आदि.... ॥६९१॥]

राजा ने बच्चों को मुक्ति-मूल्य दिलाते हुए कहा—

> उट्ठेहि कत्ते तरमानो ब्राह्मणस्स अवाकर,
> दासीसतं दाससतं गवं हत्थूसभं सतं,
> जातरूपसहस्सञ्च पुत्तानं देहि निक्कयं ॥६९२॥

[हे कर्मचारी ! उठ। जल्दी कर। ब्राह्मण को सौ दासी-दास, सौ गौवें, सौ हाथी, सौ बैल और हजार निकष बच्चों के मुक्ति-मूल्य स्वरूप दे ॥६९२॥]

> ततो कत्ता तरमानो ब्राह्मणस्स अवाकरी,
> दासीसतं दाससतं गवं हत्थूसभ सतं,
> जातरूपसहस्सञ्च पुत्तानं दासि निक्कयं ॥६९३॥

[तब कर्मचारी ने शीघ्रता से ब्राह्मण को सौ दासी-दास, सौ गौवें, सौ हाथी, सौ बैल और हजार निकष बच्चों के मुक्ति-मूल्य स्वरूप दिये ॥६९३॥]

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

> निक्किणित्वा नहापेत्वा भोजयित्वान दारके,
> समलंकरित्वा भण्डेन उच्छंगे उपवेसयुं ॥६९४॥६९४॥
> सीसं नहाते सुचिवत्थे सब्बाभरणभूसिते,
> राजा अंके करित्वान अय्यको परिपुच्छथ ॥६९५॥
> कुण्डले घुसिते माले सब्बालंकारभूसिते,
> राजा अंके करित्वान इदं वचनमब्रवि ॥६९६॥
> कच्चि उभो अरोगा ते जालि मातापिता तव,
> कच्चि उञ्छेन यापेन्ति कच्चि मूलफला बहू ॥६९०॥

कच्चि डंसा च मकसा च अप्पमेव, सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे कच्चि हिंसा न विज्जति ।।६९८।।

[उनका मुक्ति-मूल्य दे, स्नान करा, खिला-पिला, गहनों से अलंकृत कर गोद में बिठाया ।।६९४।। सिर नहाये, साफ वस्त्र पहने और सब अलंकारों से भूषित बच्चों को दादा-राजा ने अंक में बिठा कर पूछा ।।६९५।। जिनके कुण्डल मनोरम आवाज कर रहे थे और जो मालाओं तथा सभी अलंकारों से अलंकृत थे उन्हें गोद में बिठा कर राजा ने यह बात कही—"जाली ! क्या तेरे माता-पिता दोनों निरोग हैं ? क्या फल-मूल चुग कर जीवन यापन करते हैं ? क्या फल-मूल बहुत हैं ? ६९६-६९७।। क्या डांस और मच्छर तथा दूसरे रेंगने वाले थोड़े ही हैं ? क्या जंगली जानवरों से आकीर्ण वन में हिंसा नहीं होती ? ।।६९८।।]

कुमार ने उत्तर दिया—

अथो उभो अरोगा मे देव मातापिता मम,
अथो उञ्छेन यापेन्ति अथो मूलफला बहू ।।६९९।।
अथो डंसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे हिंसा तेसं न विज्जति ।।७००।।
खणन्तालुक लम्बानि बिलालीतक्कलानि च,
कोलं भल्लाटकं बेल्लं सा नो आहच्च पोसति ।।७०१।।
यञ्चेव सा आहरति वनमूलफलहारिका,
तं नो सब्बे समागन्त्वा रत्तिं भुञ्जाम नो दिवा ।।७०२।।
अम्मा च नो किसा पण्डु आहरन्ति दुमप्फलं,
वातातपेन सुखुमाली पदुमं हत्थगतामिव ।।७०३।।
अम्माय पतनूकेसा विचरन्त्या ब्रहावने,
वने वाळमिगाकिण्णे खग्गदीपिनिसेविते ।।७०४।।
केसेसु जटं बन्धित्वा कच्छे जल्लमधारयी,
चम्मवासी छमा सेति जातवेदं नमस्सति ।।७०५।।

[हे देव ! मेरे दोनों माता पिता निरोग हैं। वे फल-मूल चुग कर गुजारा करते हैं और फल-मूल बहुत हैं ।।६९९।। और डांस तथा मच्छर अधिक नहीं हैं, तथा रेंगने वाले जानवर भी। वन में जंगली जानवरों से हिंसा भी नहीं है ।।७००।।

वह आलु तथा कलम्ब खन कर लाती है और बिलाली तथा तक्कल भी। वह कोल, भल्लाटक तथा बेल्ले लाकर हमें पोसती है ॥७०१॥ वह वन-फल-मूल लाने वाली जो कुछ भी लाती है उसे हम इकट्ठे होकर रात में खाते हैं, दिन में नहीं ॥७०२॥ वृक्षों के फल चुग-चुग कर लाती हुई अम्मा कृष्ण और पाण्डु-वर्ण की हो गई है। हवा और धूप लगने से उसकी दशा कुम्हलाय हुए कंवल की सी हो गई है ॥७०३॥ घोर जंगल में घूमती हुई मां के बाल क्षीण पड़ गये हैं। गेंडे और चीते वाले वन में जंगली जानवर हैं। केशों की जटायें बांध कर, काछ गीली रखते हैं। वे चर्म पर रहने वाले पृथ्वी पर सोते हैं और अग्नि को नमस्कार करते हैं ॥७०४-७०५॥]

इस प्रकार मां के दुःख का वर्णन कर पितामह को दोष देते हुए यह कहा—

पुत्ता पिया मनुस्सानं लोकस्मि उदपज्जिसुं,
नहनूनम्हाकं अय्यस्स पुत्ते स्नेहो अजायथ ॥७०६॥

[लोक में आदमियों को पुत्र प्रिय होते हैं। हमारे पितामह को अपने पुत्र से स्नेह नहीं है ॥७०६॥]

तब राजा अपना दोष प्रकट करता हुआ बोला—

दुक्कतञ्च हि नो पुत्त भूनहच्चं कतं मया,
योहं सिवीनं वचना पब्बाजेसिं अदूसकं ॥७०७॥
यं मे किञ्चि इध अत्थि धनं धञ्ञं च विज्जति,
एतु वेस्सन्तरो राजा सिविरट्ठे पसासतु ॥७०८॥

[पुत्र! मैंने दुष्कृत कार्य्य किया। मैंन सिवियों के कहने से निर्दोष पुत्र को निकाल दिया। यह मैने भ्रूण-हत्या जैसा कर्म किया ॥७०७॥ जो कुछ मेरे पास यहां धन धान्य है, (वह सब उसका है) वेस्सन्तर राजा आये और सिवि राष्ट्र पर अनुशासन करे ॥७०८॥]

कुमार बोला—

न देव मय्हं वचना एहिति सिविसुत्तमो,
सयमेव देवो गन्त्वान सिञ्च भोगेहि अत्रजं ॥७०९॥

[देव! मेरे कहने से सिवि-श्रेष्ठ आने वाले नहीं हैं। आप स्वयं जाकर अपने पुत्र पर सम्पत्ति की वर्षा करें ॥७०९॥]

ततो सेनापति राजा सञ्जयो अज्झभासथ,
हत्थि अस्सा रथा पत्ती सेना सन्नाहयन्तु नं,
नेगमा च मं अन्वेन्तु ब्राह्मणा च पुरोहिता ॥७१०॥
ततो सट्ठिसहस्सानि युधिनो चारुदस्सना,
खिप्पमायन्तु सन्नद्धा नाना वण्णे हिलंकता ॥७११॥
नीलवण्णधरानेके पीतानेके निवासिता
अञ्ञे लोहित उण्हीसा सुद्धानेके निवासिता,
खिप्पमायन्तु सन्नद्धा नानावत्थेहिलंकता ॥७१२॥
हिमवा यथा गन्धधरो पब्बतो गन्धमादनो,
नानारुक्खेहि सञ्छन्नो महा भूतगणालयो ॥७१३॥
ओसधेहि च दिब्बेहि दिसा भाति पवाति च,
खिप्पमायन्तु सन्नद्धा दिसा भन्तु पवन्तु च ॥७१४॥
ततो नागसहस्सानि योजयन्तु चतुद्दस,
सुवण्णकच्छा मातंगा हेमकप्पनवाससा ॥७१५॥
आरूळहा गामणीयेहि तोमरंकुसपाणिहि,
खिप्पमायन्तु सन्नद्धा हत्थिक्खन्धेहि दस्सिता ॥७१६॥
ततो अस्स सहस्सानि योजयन्तु चतुद्दस,
आजानीया च जातिया सिन्धवा सीघवाहना ॥७१७॥
आरूळहा गामणीयेहि इल्लिया चापधारिहि,
खिप्पमायन्तु सन्नद्धा अस्सपिट्ठेहिलंकता ॥७१८॥
ततो रथसहस्सानि योजयन्तु चतुद्दस,
अयो सुकतनेमियो सुवण्णचितपक्खरे ॥७१९॥
आरोपेन्तु धजे तत्थ चम्मानि कवचानिच
विप्फालेन्तु च चापानि दळहधम्मा पहारिनो,
खिप्पमायन्तु सन्नद्धा रथेसु रथजीविनो ॥७२०॥

[तब राजा सञ्जय ने सेनापति को कहा—हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सेना को तैयार करो। निगम के लोग तथा ब्राह्मण और पुरोहित मेरा अनुकरण करें ॥७१०॥ तब चारु-दर्शन, नाना प्रकार से अलंकृत, साठ हजार योधा तैयार होकर शीघ्र आयें ॥७११॥ अनेक नील वस्त्रधारी, अनेक पीत वस्त्रधारी, अनेक लाल पगड़ी

वाले, अनेक सफेद वस्त्र वाले नाना प्रकार के वस्त्रों से अलंकृत होकर शीघ्र आयें ।।७१२।। जैसे गन्धमादन हिमालय पर्वत सुगन्धित (वस्तुओं) को धारण किये है, नाना प्रकार के वृक्षों से आच्छादित है, यक्षादि का घर है और दिव्य औषधियों की सुगन्धि से दिशायें चमक रही हैं तथा प्रवाहित हो रही हैं, उसी प्रकार वे शीघ्र तैयार होकर आयें। दिशायें चमकें और प्रवाहित हों ।।७१३-७१४।। उसके बाद चौदह हजार हाथी रहें—जिनकी काछ में सोना हो और जो सुनहरी साज से कसे हों ।।७१५।। उन पर तोमर-अंकुश-धारी ग्रामणी बैठे हैं। हाथियों के कन्धों पर बैठे हुए वे तैयार होकर शीघ्र आयें ।।७१६।। उसके बाद चौदह हजार घोड़े हों, जो श्रेष्ठ जाति के आजानीय घोड़े हों और शीघ्रगामी हों ।।७१७।। उन पर इल्लिय-खड्ग तथा धनुषधारी ग्रामणी बैठे हों। वे तैयार होकर शीघ्र आयें ।।७१८।। उसके बाद चौदह हजार रथ हों जिनकी नेमियां अच्छी तरह बनी हों और जिनकी किनारियाँ सूनहरी हों ।। ७१९ ।। उन पर ध्वजायें चढ़ाई जायं, चर्म के कवच चढ़ाये जायें, दृढ प्रहार देने वाले धनुष चढ़ायें जायें। रथ जीवी लोग रथ में बैठ तैयार होकर शीघ्र आयें ।।७२०।।]

इस प्रकार राजा ने सेना के बारे में आज्ञा दे 'मेरे पुत्र के आने के लिये जेतुत्तर नगर से वंक पर्वत तक आठ उषभ (विस्तृत) मार्ग समतल करके अलंकृत करने के लिये यह यह करो' आज्ञा देते हुए कहा—

> **लाजा ओलोपिया पुप्फा मालागन्धविलेपना,**
> **अग्घियानि च तिट्ठन्तु येन मग्गेन एहिति ।।७२१।।**
> **गामे गामे सतं कुम्भा मेरयस्स सुरायच,**
> **मग्गम्हि पतितिट्ठन्तु येन मग्गेन एहिति ।।७२२।।**
> **मंसा पूवा संकुलियो कुम्मासा मच्छसंयुता,**
> **मग्गम्हि पतितिट्ठन्तु येन मग्गेन एहिति ।।७२३।।**
> **सप्पि तेलं दधि खीरं कंगु वीहि बहू सुरा,**
> **मग्गम्हि पतितिट्ठन्तु येन मग्गेन एहिति ।।७२४।।**
> **आळारिका च सूदा च नट नट्टक गायका,**
> **पाणिस्सरा कुम्भथूनियो मण्डका सोकज्झायिका ।।७२५।।**
> **आहञ्ञन्तु सब्बवीणा भेरियो देण्डिमानिच,**
> **खरमुखानि धम्मन्तु वदन्तु एकपोक्खरा ।।७२६।।**

मुतिंगा पणवा संखा गोधा परिवदेन्तिका
दिन्दिमानि च हञ्ञन्तु कुटुम्बा दिन्दिमानि चाति ॥७२७॥

[जिस मार्ग से वह आयेगा उस मार्ग पर खील बिखेरे जायें, पुष्प, माला-गन्ध-विलेपन आदि के वितान हों और अमूल्य चीजें रहें ॥७२१॥ जिस मार्ग से वह आयेगा उस मार्ग पर गाँव गाँव में सुरा तथा मेरय के सौ सौ घड़े रखे जायें ॥७२२॥ जिस मार्ग से वह आयेगा उस मार्ग पर मांस, पूए, मट्ठी, मत्स्य मिश्रित कुल्माष रखे जायें ॥७२३॥ जिस मार्ग से वह आयेगा उस मार्ग पर घी, तेल, दही, खीर तथा कङ्गु और धान की बनी बहुत सी शराब रखी जाय ॥७२४॥ योजन बनाने वाले, नट, नर्तक, गायक, हस्त-संगीत वाले, कुम्भथून (ढोल) बजाने वाले, मुण्ड-गायक (?), जादूगर (हों) ॥७२५॥ सभी वीणायें, भेरी और देण्डिम बजें। शङ्ख फूंके जायें। एकपोक्खर (ढोल) बजें ॥७२६॥ मृदङ्ग, पणव, शङ्ख, गोध, परिवदेन्ति, दिन्दिमानि तथा कुटुम्बदिन्दिमानि बाजे बजें ॥७२७॥]

इस प्रकार राजा ने मार्ग को अलंकृत करने की आज्ञा दी। पूजक भी सीमा से अधिक खाकर उसे पचा न सकने के कारण वहीं मर गया। राजा ने उसका शरीर-कृत्य कराया और नगर में मुनादी कराई। उसके किसी रिश्तेदार का पता नहीं लगा। धन फिर राजा का ही हो गया। सातवें दिन सारी सेना इकट्ठी हो गई राजा बड़े ठाट-बाट से जाली को मार्ग-दर्शक बना कर चला।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सा सेना महती आसि उय्युत्ता सिविवाहिनी,
जालिना मग्गनायेन वंकं पायासि पब्बतं ॥७२८॥
कुंचं नदति मातंगो कुंजरो सट्ठिहायनो,
कच्छाय बज्झमानाय कुंचं नदति वारणो ॥७२९॥
आजानीया हसिंस्सु नेमिघोसो अजायथ,
अब्भं रजो अच्छादेसि उय्युत्ता सिविवाहिनी ॥७३०॥
सा सेना महती आसि उय्युत्ता हारहारिणी,
जालिना मग्गनायेन वंकं पायासि पब्बतं ॥७३१॥
ते पाविंसु ब्रहारञ्ञं बहुसाखं महोदकं,
पुप्फरुक्खेहि सञ्छन्नं फलरुक्खेहि चूभयं ॥७३२॥

तत्थ बिन्दुस्सरा वग्गु नानावण्णा बहू दिजा,
कुज्जन्तमुपकुज्जन्ति उतुसम्पुप्फिते दुमे ॥७३३॥
ते गन्त्वा दीघमद्धानं अहोरत्तानमच्चये,
पदेसं तं उपागच्छुं यत्थ वेस्सन्तरो अहू ॥७३४॥

[वह सिविवाहिनी सेना बड़ी थी। वह जाली के मार्ग-नायकत्व में वंक पर्वत को प्राप्त हुई ॥७२८॥ कांछ बंधे साठ वर्ष के मातङ्ग वारण ने क्रौञ्च नाद किया ॥७२९॥ आजानीय घोड़े हिनहिनाये, रथ के पहिये की आवाज हुई। धूल से आकाश ढक गया। सिविवाहिनी सेना चली ॥७३०॥ वह ले जाने वाली सेना बड़ी थी। वह जाली के मार्ग-नायकत्व में वंक पर्वत को प्राप्त हुई ॥७३१॥ वे उस बहुत शाक तथा बहुत जल वाले घोर जंगल में प्रविष्ट हुए जो कि फूलों और फलों के वृक्षों से ढका था ॥७३२॥ वहाँ ऋतु के अनुसार फूले वृक्षों पर सुस्वर, सुन्दर, नाना वर्ण के बहुत से पक्षी परस्पर चहचहाते थे ॥७३३॥ वे दिन-रात दीर्घ सफर तै करके वहां पहुंचे जहां वेस्सन्तर था ॥७३४॥]

महाराजपर्व समाप्त

जालिकुमार ने मुचलिन्द सरोवर के किनारे छावनी डाल, चौदह हजार रथों को आये रास्ते पर ही रोक, जिस तिस स्थान पर सिंह, व्याघ्र, गेंडे के मार्ग आदि पर चौकी बैठा दी। हाथी आदि का बड़ा शोर हुआ। बोधिसत्व ने यह सुन सोचा—क्या कोई शत्रु पिता को मार कर अब मुझे मारने के लिय आया है? वह मृत्यु-भय के मारे माद्री सहित पर्वत पर चढ़ गया और वहां से सेना देखी। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

तेसं सुत्वान निग्घोसं भीतो वेस्सन्तरो अहू,
पब्बतं अभिरूहित्वा भीतो सेनं उदिक्खति ॥७३५॥
इंघमद्दिनिसामेहि निग्घोसो यादिसो वने,
आजानीया हसिस्सन्ति धजग्गानि च दिस्सरे ॥७३६॥
इमे नून अरञ्ञम्हि मिगसंघानि लुद्दका
वागुराहि परिक्खिप्प सोब्भं पातेत्वा तावदे,
विक्कोसमाना तिप्पाहि हन्ति तेसं वरं वरं ॥७३७॥

यथा भयं अवूसका अरञ्ञे अवरुद्धका,
अमित्तहत्थत्थगता पस्स दुब्बलघातकं ॥७३८॥

[उनकी आवाज सुन वेस्सन्तर डर गया। उसने डर के मारे पर्वत पर चढ़ वहाँ से सेना को देखा ॥७३५॥ माद्री! सुन। वन में जैसी आवाज आ रही है। श्रेष्ठ घोड़े हिनहिना रहे हैं और ध्वजायें दिखाई दे रही हैं ॥७३६॥ जैसे जंगल में शिकारी जानवरों को जाल में फंसाकर उसी समय प्रपात में गिरा देते हैं उसी प्रकार ये हमें तीव्र शक्ति खोंच खोंच कर मार डालेंगे ॥७३७॥ जैसे हम निर्दोष जंगल भेज दिये गये हैं, उसी प्रकार हम शत्रु के हाथ में पड़ गये हैं। इस दुर्बल-घात देख ॥७३८॥]

उसने उसकी बात सुन और यह सोच कि अपनी ही सेना होगी, बोधिसत्व को आश्वासन देते हुए गाथा कही—

अमित्ता नप्पसहेय्युं अग्गीव उदकण्णवे,
तदेव त्वं विचिन्तेहि अपि सोत्थि इतो सिया ॥७३९॥

[जिस प्रकार आग पानी को हानि पहुंचाने में समर्थ नहीं होती उसी प्रकार शत्रु समर्थ नहीं होंगे। वैसा ही तू सोच। इससे कल्याण होगा ॥७३९॥]

बोधिसत्व ने शोक पर विजय पाई और उसके साथ ही पर्वत से उतर पर्णशाला द्वार पर बैठा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो वेस्सन्तरो राजा ओरोहित्वान पब्बता,
निसीदि पण्णसालायं दळ्हं कत्वान मानसं ॥७४०॥

[तब वेस्सन्तर राजा पर्वत से उतर और चित्त को दृढ़ करके पर्णशाला के द्वार पर बैठा ॥७४०॥]

उस समय सञ्जय ने देवी को सम्बोधित करके कहा—"भद्रे फुसति! यदि हम सभी एक साथ जायेंगे तो बहुत शोक होगा। पहले मैं जाता हूँ। तब यह अन्दाजा करके कि अब शोक शान्त करके बैठे होंगे, तू सब लोगों के साथ आना। थोड़े समय के बाद जाली और कृष्णाजिना आवें।" यह कह रथ को रोक और उसका मुँह जिधर से आये थे उधर फेर, जहाँ तहाँ चौकी बिठा, अलंकृत हाथी के कन्धे से उतर जहाँ पुत्र था वहाँ पहुंचा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

निवत्तयित्वान रथं वोत्थापेत्वान सेनियो,
एकं अरञ्ञे विहरन्तं पिता पुत्तं उपागमि ॥७४१॥
हत्थिक्खन्धतो ओरुय्ह एकंसो पञ्जलीकतो,
परिकिण्णो अमच्चेहि पुत्तं सिञ्चितुमागमि ॥७४२॥
तत्थद्दस कुमारं सो रम्मरूपं समाहितं,
निसिन्नं पण्णसालायं झायन्तं अनकुतोभयं ॥७४३॥

[रथ को रोक कर और सैनिकों को नियुक्त कर पिता जंगल में अकेले रहने वाले पुत्र के पास आया ॥७४१॥ हाथी के कन्धे से उतर, चादर को एक कन्धे पर कर, अमात्यों से घिरा राजा, हाथ जोड़े ? पुत्र पर धन की वर्षा करने आया ॥ ॥७४२॥ उसने वहां उस सुन्दर, एकाग्र चित्त, निर्भय, ध्यानी कुमार को पर्णशाला में बैठे हुए देखा ॥७४३॥]

तञ्च दिस्वान आयन्तं पितरं पुत्तगिद्धिनं,
वेस्सन्तरो च मद्दी च पच्चुग्गन्त्वा अवन्दिसुं ॥७४४॥
मद्दी च सिरसा पादे ससुरस्साभिवादयि,
मद्दी अहञ्हि ते देव पादे वन्दामि ते सुसा,
तेसु तत्थ पलिस्सज्ज पाणिना परिमज्जथ ॥७४५॥

[पुत्र-स्नेही पिता को आते देखकर, वेस्सन्तर तथा माद्री ने आगे बढ़कर वन्दना की ॥७४४॥ 'देव ! मैं तुम्हारे चरणों की बहुत बहुत वन्दना करती हूँ' कह माद्री ने सिर से ससुर के चरणों में अभिवादन किया। उन दोनों ने उस (आश्रम की) भूमि को हृदय लगा कर हाथ से उसका परिमार्जन किया ॥७४०-७४५॥]

तब रो पीट कर शोक के शान्त होने पर राजा ने उनका कुशल-क्षेम पूछते हुए कहा—

कच्चि वो कुसलं पुत्त कच्चि पुत्त अनामयं,
कच्चि उञ्छेन यापेथ कच्चि मूलफला बहू॥७४६॥
कच्चि डंसा च मकसा च अप्पमेव सिरिंसपा,
वने वाळमिगाकिण्णे कच्चि हिंसा न विज्जति ॥७४७॥

[पुत्र ! कुशल तो है ! पुत्र निरोग तो हो ? क्या फल-मूल चुग कर ही गुजारा करते हो ? क्या फल-मूल बहुत है ? ।।७४६।। क्या डाँस, मच्छर तथा रेंगने वाले जानवर थोड़े ही हैं ? जंगली जानवरों से घिरे जंगल में क्या हिंसा नहीं होती ? ७४७।।]

पिता की बात सुन बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

अत्थिनो जीविका देव या च यादिसि कीदिसा,
कसिरा हि जीविका होम उञ्छाचरियाय जीवितं ।।७४८।।
अनिद्धिनं महाराज दमेतस्संव सारथि,
त्यम्हा अनिद्धिका दन्ता असमिद्धि दमेति नो ।।७४९।।
अपि नो किसानि मंसानि पितु मातु अदस्सना,
अवरुद्धानं महाराज अरञ्ञे जीव सोकिनं ।।७५०।।

[देव ! हमारी जीविका जैसी तैसी है। हम फल-मूल चुग कर खाते हैं। यह जीविका कष्टकर ही है ।।७४८।। महाराज ! जैसे सारथी घोड़े का दमन करता है वैसे ही दरिद्रता आदमी का दमन करती है। हम भी दरिद्र होने के कारण दमित हैं। दरिद्रता हमारा दमन करती है ।।७४६।। और फिर माता पिता का दर्शन न मिलने से हम और भी कृष हैं। महाराज ! जंगल में निकाल दिये गये शोकाकुलों को (क्या सुख ?) ७५०।।]

यह कह फिर पुत्रों का समाचार पूछते हुए कहा—

येपिते सिविसेट्ठस्स दायादप्पत्तमानसा,
जाली कण्हाजिनाचुभो, ब्राह्मणस्स वसानुगा,
अच्चायिकस्स लुद्दस्स यो ने गावोव सुम्भति ।।७५१।।
ते राजपुत्तिया पुत्त यदि जानाथ संसय,
परियापुणाथ नो खिप्पं सप्पदट्ठंव माणवं ।।७५२।।

[जो भी श्रेष्ठ सिवि के दायाद—जाली तथा कृष्णार्जिना—असफल मनोरथ होकर ब्राह्मण के वशीभूत हुए, जो क्रूर ब्राह्मण उन्हें गौवों की तरह पीटता है ।।७५१।। उन राजपुत्र तथा राजपुत्री के बारे में यदि कुछ जानते हो तो कहो। जिस प्रकार सर्प से डसे गये माणवक को शीघ्र (औषधि दी जाती है), उसी प्रकार हमें भी शीघ्र बताओ ।।७५१।।]

उभो कुमारा निक्कीता जाली कण्हाजिना चुभो,
ब्राह्मणस्स धनं दत्वा पुत्त मा भायि अस्सस ।।७५३।।

[जाली और कृष्णार्जिना दोनो बच्चे ब्राह्मण को धन देकर छुड़ा लिये गये है। पुत्र! डर मत। आश्वस्थ रह ।।७५३।।]

यह सुन बोधिसत्व ने आश्वस्थ हो पिता का कुशल क्षेम पूछा—

कच्चिन्नु तात कुसलं कच्चि तात अनामयं,
कच्चिन्नु तात मे मातु चक्खुं न परिहायति ।।७५४।।

[तात! कुशल तो है? तात निरोग तो है? तात! मेरी मां की नजर कमजोर तो नही पड रही है? ।।७५४।।]

राजा बोला—

कुसलञ्चेव मे पुत्त अथो पुत्त अनामयं,
अथोपि पुत्त ते मातु चक्खुं न परिहायति ।।७५५।।

[पुत्र! मै सकुशल हूँ। पुत्र! मै निरोग हूँ। पुत्र! तेरी माता की नजर भी कमजोर नही पड रही है ।।७५५।।]

बोधिसत्व ने प्रश्न किया—

कच्चि अरोगं योग्गं ते कच्चि वहति वाहनं,
कच्चि फीता जनपदा कच्चि वुट्ठि न छिज्जति ।।७५६।।

[क्या तेरे रथ ठीक है? क्या वे सवारी देते है? क्या जनपद स्मृद्ध है? क्या अनावृष्टि तो नही होती? ।।७५६।।]

राजा बोला—

अथो अरोगं योग्गं मे अथो वहति वाहनं,
अथो फीता जनपदा अथो वुट्ठि न छिज्जति ।।७५७।।

[मेरे रथ ठीक है। वे सवारी देते है। जनपद स्मृद्ध है। अनावृष्टि नहीं होती ।।७५६।।]

जिस समय वे इस प्रकार बातचीत कर रहे थे तो फुसती देवी भी यह समझ कि अब शोक को कम कर बैठे होगे, बहुत बडी जमात के साथ पुत्र के पास पहुंची।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

इच्चेवं मन्तयानं माता नेसं अदिस्सथ,
राजपुत्ती गिरिद्वारे पत्तिका अनुपाहना ।।७५७।।

तञ्च दिस्वान आयन्तिं मातरं फुसतिन्दिनि,
वेस्सन्तरो च मद्दी च पच्चुग्गन्त्वा अवन्दिसुं ॥७५८॥
मद्दी च सिरसा पादे सस्सुया अभिवादयि,
मद्दी अहञ्हि ते अय्ये पादे वन्दामि ते सुसा,॥७५९॥

[उन्हे इस प्रकार मन्त्रणा करते हुए माता ने देखा—राजपुत्री पर्वत-द्वार पर नंगे पाँव खड़ी थी ॥७५७॥ पुत्र-स्नेही माता को आते देख वेस्सन्तर तथा माद्री ने आगे बढ़कर मां को प्रणाम किया ॥७५८॥ 'आर्ये ! मैं तुम्हारे चरणों की बहुत बहुत वन्दना करती हूँ' कह माद्री ने सास के चरणो में सिर से अभिवादन किया ॥७५९॥]

जब वे फुसती देवी की वन्दना कर खड़े थे तो कुमारों तथा कुमारियों से घिरे हुए बच्चे आये। माद्री खड़ी उनका रास्ता ही देख रही थी। उसने जब उन्हें सकुशल आते देखा तो वह अपने आप को संभाले न रख सकी। जैसे तरुण बछड़ों को देखकर गऊ उसी प्रकार वह विलाप करती हुई भागी। वे भी उसे देख रोते हुए उसी की ओर दौड़ कर आये।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

मद्दिञ्च पुत्तका दिस्वा दूरतो सोत्थिमागता,
कन्दन्तामभिधाविंसु वच्छा बालाव मातरं ॥७६०॥
मद्दी च पुत्तके दिस्वा दूरतो सोत्थिमागते,
वारुणी व पवेधेन्ति थनधाराभिसिञ्चथ ॥७६१॥

[बच्चो ने दूर से माद्री को देखा कि सकुशल चली आ रही है। वे रोते हुए मा के पास वैसे ही दौड़ कर आये जैसे छोटा बछड़ा मां के पास ॥७६०॥ माद्री ने भी जब अपनी सन्तान को दूर से सकुशल आते देखा तो कांपते हुए उसने वारुणी की तरह स्तन-धाराओं से उनका अभिसिञ्चन किया ॥७६१॥]

उस समय पर्वतों ने आवाज की। पृथ्वी काँप उठी। समुद्र में ज्वार भाटा आ गया। गिरिराज सुमेरु झुक गया। छः कामावचर देव-लोकों में कोलाहल हो गया। शक्र देवराज तथा छः क्षत्रिय परिषदें बेहोश हो गईं। उनमें एक भी इस योग्य नहीं था कि किसी दूसरे के शरीर पर पानी छिड़क सके। 'पुष्कर-वर्षा' बरसाने के संकल्प से छः क्षत्रियों के स्थान पर पुष्कर-वर्षा बरसाई गई। जो भीगना चाहते थे वे भीगते

थे, जो भीगना नहीं चाहते थे उन पर एक बूंद भी नहीं ठहरती थी। जैसे कँवल के पत्ते पर से उसी प्रकार उनकी देह से पानी लुढक जाता था। इस प्रकार वह वर्षा वैसी ही थी जैसी पुष्कर-वन मे पडी बरसात हो। छः क्षत्रिय आश्वस्थ हुए। जनता को यह देख बडा आश्चर्य हुआ कि सम्बन्धियो के सम्मेलन मे पुष्कर-वर्षा हुई और महापृथ्वी कापी।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

समागतानं जातीनं महाघोसो अजायथ,
पब्बता समनादिंसु मही पकम्पिता अहु,
वुट्ठिधारं पवेच्छन्तो देवो पावस्सि तावदे ॥७६२॥
अथ वेस्सन्तरो राजा जातीहि समगच्छथ,
नत्तारो सुनिसा पुत्तो राजा देवीच एकतो ॥७६३॥
यदा समागता आसुं तदासि लोमहंसनं,
पञ्जलिका तस्स याचन्ति रोदन्ता भेरवेवने ॥७६४॥
वेस्सन्तरञ्च मद्दिञ्च सब्बेरट्ठा समागता,
त्वं नोसि इस्सरो राजा रज्जं कारेथ नो उभो ॥७६५॥

[आये हुए सम्बन्धी बडा हल्ला करने लगे। पर्वतो का निनाद हुआ। पृथ्वी काँप उठी। उसी समय देव ने वर्षा की धारा बरसाई ॥७६२॥ तब वेस्सन्तर राजा अपने सम्बन्धियो के साथ गया—नाती, पुत्र वधु, पुत्र, राजा तथा देवी, सभी एक साथ ॥७६३॥ जब सभी इकट्ठे हो गये तब रोमाच हुआ। उस भयानक वन मे राष्ट्र से आकर सभी हाथ जोड कर वेस्सन्तर तथा माद्री से प्रार्थना करने लगे —आप हमारे ईश्वर राजा है। आप दोनो हम पर राज्य करे। ॥७६५॥]

क्षत्रिय काण्ड समाप्त

यह सुन बोधिसत्व ने पिता के साथ बातचीत करते हुए यह गाथा कही—

धम्मेन रज्जं कारेन्तं रट्ठा पब्बाजयित्थ मं,
त्वञ्च जानपदा चेव नेगमा च समागता ॥७६६॥

[तू ने, तथा जनपद और निगम के लोगो ने धर्मानुसार राज्य करते हुए मुझे देश से निकाल दिया ॥७६६॥]

तब राजा ने पुत्र से क्षमा मांगी—

दुक्कतञ्च हिनो पुत्त भून हच्चं कतं मया,
योहं सिवीनं वचना पब्बाजेसि अदूसकं ॥७६७॥

[पुत्र ! मैंने दुष्कृत किया। मैंने भ्रूण-हत्या के समान पाप किया। मैंने सिवियों के कहने से निर्दोष को देश से निकाल दिया ॥७६७॥]

यह गाथा कह अपना दुःख दूर करने के लिये कहते हुए यह गाथा कही—

येन केनचि वण्णेन पितु दुक्खं उदब्बहे,
मातु भगिणिया चापि अपि पाणेहि अत्तनो ॥७६८॥

[मां, बहन और पिता का दुःख जैसे भी हो दूर करना चाहिये। अपने प्राण दे कर भी ॥७६८॥]

राजा ने बोधिसत्व से राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना की। बोधिसत्व ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उसकी स्वीकृति जान उसके साथ उत्पन्न साठ हजार अमात्य बोले—"महाराज ! अब यह नहाने का समय हो गया है। धूल उतार फेंकें।" बोधिसत्व ने उन्हें 'थोड़ा सब्र करो' कह पर्णशाला में प्रवेश किया, ऋषि-वेष उतारा, संभाल कर रखा और फिर पर्णशाला से निकल पर्णशाला की तीन बार प्रदक्षिणा कर पांच अङ्गों से उसकी वन्दना की—"यहाँ रहकर मैंने साढ़े नौ महीने तक श्रमण-धर्म पालन किया है। (दान-) पारमिता की पूर्ति करने की कामना से दान देकर पृथ्वी को कंपा दिया है।" नाई आदि ने उसकी हजामत बनाने आदि का कार्य किया। तब देव-राज के समान सभी अलंकार पहने हुए विराजमान उसका राज्याभिषेक किया गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

ततो वेस्सन्तरो राजा रजोजल्लं पवाहयि,
रजोजल्लं पवाहेत्वा सङ्खवण्णमधारयि ॥७६९॥

[तब वेस्सन्तर राजा ने धूल धो डाली। धूल साफ करके राजवेष धारण कर लिया ॥७६९॥]

तब उसका महान् ऐश्वर्य्य हुआ। जहाँ देखो तहाँ पृथ्वी कांपती थी। वाराङ्गनाओं ने मंगल-घोषणा की। तमाम बाजे बजे। महासमुद्र की कोख में बादल की गर्जना के समान आवाज हुई। हस्ति-रतन को अलंकृत कर ले चले। वह खङ्ग-रतन

बांध कर हाथी-रतन पर सवार हुआ। उसी समय साथ उत्पन्न साठ हजार अलंकृत अमात्य घेर कर खड़े हो गये। माद्री देवी को भी स्नान करा कर, अलंकृत कर उसका अभिषेक किया। उसके सिर पर अभिषेक-जल गिराते हुए 'वेस्सन्तरो तं पालेतु' आदि मङ्गल-वचन कहे गये।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

सीसं नहातो सुचिवत्थो सब्बाभरण भूसितो,
पच्चयं नागमारुय्ह खग्गं बन्धि परन्तपं ॥७७०॥
ततो सट्ठि सहस्सानि युद्धिनो चारुदस्सना,
सहजाता परिकरिंसु नन्दयन्ता रथेसभं ॥७७१॥
ततो मद्दिम्पि नहापेसुं सिविकञ्ञा समागता,
वेस्सन्तरो तं पालेतु जाली कण्हाजिनाचुभो,
अथोपि तं महाराजा सञ्जयो अभिरक्खतु ॥७७२॥

[सिर से स्नान कर, शुद्ध वस्त्र पहन, शत्रुओं को अनुतप्त करने वाला राजा खङ्ग बांध कर अपने जन्म के दिन ही पैदा हुए नाग पर चढ़ा ॥७७०॥ तब साथ उत्पन्न, चारु-दर्शन, साठ हजार योधाओं ने राजा को प्रसन्न करते हुए घेर लिया ॥७७१॥ तब सिवि-कन्याओं ने आकर माद्री को भी स्नान करवाया और आशीर्वचन कहे—"जाली तथा कृष्णार्जिना दोनों और वेस्सन्तर तेरी रक्षा करें। और महाराज सञ्जय भी तेरी रक्षा करें ॥७७२॥]

इदञ्च पच्चयं लद्धा पुब्बे किलेसमत्तनो,
आनन्दियं आचरिंसु रमणीये गिरिब्बजे ॥७७३॥
इदञ्च पच्चयं लद्धा पुब्बे किलेसमत्तनो,
आनन्दि वित्ता सुमना पुत्ते संगम्म लक्खणा ॥७७४॥
इदञ्च पच्चयं लद्धा पुब्बे किलेसमत्तनो,
आनन्दि वित्ता पतीता सह पुत्तेहि लक्खणा ॥७७५॥

[भिक्षुओ, इस प्रतिष्ठा को प्राप्त हो और अपने (वनवास के) पहले कष्टों की याद कर रमणीय गिरि ब्रज में वेस्सन्तर तथा माद्री ने आनन्द मनाया। इस प्रतिष्ठा को प्राप्त हो और अपने (वनवास के) पहले कष्टों की याद कर, पुत्रों से मिलकर प्रसन्न-वदन माद्री और भी प्रसन्न हुई। इस प्रतिष्ठा को प्राप्त हो और ......प्रीति-युक्त माद्री ने आनन्द मनाया ॥७७३-७७५॥]

इस प्रकार हर्षित हो पुत्रों से बोली—

एकभत्ता पुरे आसिं निच्चं थण्डिलसायिनी,
इति मेतं वतं आसि तुम्हं कामाहि पुत्तका ॥७७६॥
तं मे वतं समिद्धज्ज तुम्हे संगम्म पुत्तका,
मातुजम्पि तं पालेतु पितुजम्पि च पुत्तका ॥७७७॥
अथोपितं महाराज सञ्जयो अभिरक्खतु,
यं किञ्चत्थि कतं पुञ्ञं मय्हं चेव पितुच्च ते,
सब्बेन तेन कुसलेन अजरो त्वं अमरो भव ॥७७८॥

[हे बच्चो ! तुम्हारी कामना से मेरा यह व्रत था—एक बार भोजन करना और भूमि पर सोना ॥७७६॥ हे बच्चो ! तुम्हें प्राप्त कर आज मेरा वह व्रत पूरा हो गया। माता तथा पिता दोनों द्वारा अर्जित पुण्य तुम्हारी रक्षा करे ॥७७७॥ महाराज सञ्जय भी तुम्हारी रक्षा करें। मैंने और तेरे पिता ने जितना भी पुण्य अर्जित किया है, उस सारे कुशल-कर्म के प्रताप मे तुम अजर-अमर होओ ॥७७८॥]

फुसती देवी ने भी 'अब से मेरी पुत्र-वधु इन वस्त्रों को पहने और इन आभूषणों को धारण करे' कह सन्दूक भर भेजा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

कप्पासिकञ्च कोसेय्यं खोमकोदुम्बरानि च,
सस्सु सुण्हाय पाहेसि येहि मद्दि असोभथ ॥७७९॥
ततो खोमञ्च कायूरं अंगदं मणिमेखलं,
सस्सु सुण्हाय पाहेसि येहि मद्दी असोभथ ॥७८०॥
ततो खोमञ्च कायूरं गीवेय्यं रतनामयं,
सस्सु सुण्हाय पाहेसि येहि मद्दी असोभथ ॥७८१॥
उन्नतं मुखफुल्लञ्च नाना रत्ते च माणिये,
सस्सु सुण्हाय पाहेसि येहि मद्दी असोभथ ॥७८२॥
उग्गत्थनं गिंगमकं मेखलं पटिपादुकं,
सस्सु सुण्हाय पाहेसि येहि मद्दी असोभथ ॥७८३॥
सुत्तञ्च सुत्तवज्जञ्च उपनिज्झाय सेय्यसि,
असोभथ राजपुत्ती देवकञ्ञाव नन्दने ॥७८४॥

सीसं नहाता सुचिवत्था सब्बाभरणभूसिता,
असोभथ राजपुत्ती तावतिंसा व अच्छरा ॥७८५॥
कदलीव वातच्छु पिता जाता चित्त लतावने,
दन्तावरण सम्पन्ना राजपुत्ती असोभथ ॥७८६॥
सकुणी मानुसिनीच जाता चित्तपत्ता पति,
निग्रोधपक्क बिम्बोट्ठी राजपुत्ती असोभथ ॥७८७॥

[कपास के वस्त्र, कोसेय्य-वस्त्र, खोमक तथा उदुम्बर—सास ने पुत्र-बधु के पास भेजे जिनसे माद्री सुशोभित हुई ॥७७९॥ और स्वर्ण-निर्मित ग्रीवाभरण, अङ्गद तथा मणि-मेखला—सास ने पुत्र-बधु के पास भेजे जिनसे माद्री सुशोभित हुई ॥७८०॥ फिर स्वर्ण-निर्मित (दूसरा) ग्रीवाभरण तथा रतन निर्मित ग्रीवा-भरण—सास ने पुत्र-बधु के पास भेजे जिनमे माद्री सुशोभित हुई ॥७८१॥ उन्नत-आभरण, माथे का आभरण, तथा नाना प्रकार के मणिमय आभरण—सास ने पुत्र-बधु के पास भेजे जिनसे माद्री सुशोभित हुई ॥७८२॥ उग्गत्थन (आभरण) गिङ्गमक (आभरण), मेखला तथा पादाभरण—सास ने पुत्र-बधु के पास भेजे जिनसे माद्री सुशोभित हुई ॥७८३॥ सूत वाले तथा बिना सूत के आभरण धारण करके रहती थी। राजपुत्री नन्दन-वन में देवकन्याओं के समान सुशोभित थी ॥७८४॥ सिर से नहाई हुई, साफ वस्त्र पहने राजपुत्री त्र्योत्रिंश भवन की अप्सराओं के समान सुशोभित होती थी ॥७८५॥ चित्र लतावन में उत्पन्न, वायु-स्पर्शित स्वर्ण कदली की तरह और (विम्बफल सदृश) होठों से युक्त राजपुत्री सुशोभित होती थी ॥७८६॥ जैसे मनुष्य शरीर में उत्पन्न हुई शुकुनी सुन्दर परों से आकाश में जाती हुई सुशोभित होती है, उसी प्रकार पके न्यग्रोध के समान होंठों वाली राजपुत्री सुशोभित होती थी ॥७८७॥]

तस्सा च नागमानेसुं नातिवद्धं व कुञ्जरं,
सत्तिक्खमं सरक्खमं ईसादन्तं उरूळहवं ॥७८८॥
सा मद्दी नागमारुहि नातिवद्धं व कुञ्जरं,
सत्तिक्खमं सरक्खमं ईसादन्तं उरूलहवं ॥७८९॥

[उस माद्री के लिये शक्ति और बाणों को सहने में समर्थ रथ की धुरि सदृश द तों वाला प्रौढ़, बड़ा हाथी लाया गया ॥७८८॥ वह माद्री शक्ति और बाणों के

सहने में समर्थ रथ की धुरि सदृश दान्तों वाले, प्रौढ़, बड़े हाथी पर चढ़ी ।।७८६।।]

वे दोनों बड़े ठाट-बाट से छावनी पर पहुंचे। बारह अक्षोहिणी सेना के साथ सञ्जय राजा महीना भर पर्वत-क्रीड़ा वन-क्रीड़ा करता रहा। बोधिसत्व के तेज से इतने बड़े जंगल में किसी जंगली जानवर वा पक्षी ने किसी को कष्ट नहीं दिया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

सब्बम्हि तं अरञ्ञम्हि यावन्तेत्थ मिगा अहू,
वेस्सन्तरस्स तेजेन नाञ्ञमञ्ञमहेठयुं ।।७९०।।
सब्बम्हि तं अरञ्ञम्हि यावन्तेत्थ दिजा अहू,
वेस्सन्तरस्स तेजेन नाञ्ञमञ्ञमहेठयुं ।।७९१।।
सब्बम्हि तं अरञ्ञम्हि यावन्तेत्थ मिगा अहू,
एकज्झं सन्निपतिंसु वेस्सन्तरे पयातम्हि,
सिविनं रट्ठवड्ढने ।।७९२।।
सब्बम्हि. . . . . दिजा अहू,
एकज्झं. . . . . पयातम्हि
सिविनं रट्ठवड्ढने ।।७९३।।
सब्बम्हि तं अरञ्ञम्हि यावन्तेत्थ मिगा अहू,
नास्सु मञ्जूनि कूजिंसु वेस्सन्तरो पयातम्हि,
सिवीनं रट्ठवड्ढने ।।७९४।।
सब्बम्हि. . . . . दिजा अहू,
नास्सु मञ्जूनि कूजिंसु वेस्सन्तरे पयातम्हि,
सिवीनं रट्ठवड्ढने ।।७९५।।

[उस सारे जंगल में जितने जंगली पशु थे, वेस्सन्तर के तेज से किसी ने परस्पर हिंसा नहीं की ।।७९०।। उस सारे . . .जितने पक्षी थे, वेस्सन्तर के. . . . . . की ।।७९१।। उस सारे जंगल में जितने जंगली पशु थे, सिवियों के राष्ट्रवर्धन वेस्सन्तर के चले जाने पर सभी एक जगह इकट्ठे हुए ।।७९२।। उस सारे जंगल में जितने पक्षी थे, सिवियों. . . इकट्ठे हुए ।।७९३।। उस सारे जंगल में जितने जंगली

पशु थे, सिवियों के राष्ट्र वर्धन वेस्सन्तर के चले जाने पर, उनमें से कोई भी मधुर स्वर से नहीं बोला ।।७९४।। उस...पक्षी थे...बोला ।।७९५।।]

सञ्जय नरेश महीना भर वन-क्रीड़ा में लगा रहा। तब उसने सेनापति को बुलाकर पूछा—"तात ! हम चिरकाल से जंगल में रह रहे हैं। क्या तूने मेरे पुत्र का गमन-मार्ग अलंकृत कर लिया ?" उसका उत्तर था—"हाँ ! देव ! अब यह चलने का समय है।" उसने वेस्सन्तर को सूचित कराया और सेना ले चल दिया। वंक गिरि से जेतुत्तर नगर तक साठ योजन अलंकृत मार्ग पर बोधिसत्व बड़े ठाट-बाट से चल पड़ा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

पटियत्तो राजमग्गो विचित्तो पुप्फसन्थतो,
वसी वेस्सन्तरो यत्थ यावताव जेतुत्तरा ।।७९६।।
ततो सट्ठिसहस्सानि युधिनो चारुदस्सना,
समन्ता परिकरिंसु वेस्सन्तो पयातम्हि सिवीनं रट्ठवड्ढने ।।७९७।।
ओरोधा च कुमारा च वेसियाना च ब्राह्मणा,
समन्ता परिकरिंसु वेस्सन्तरे पयातम्हि
सिवीन रट्ठवड्ढने ।।७९८।।
हत्थारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारका,
समन्ता परिकरिंसु वेस्सन्तरे पयातम्हि
सिवीनं रट्ठवड्ढने ।।७९९।।
समन्ता जानपदा नेगमा च समागता,
समन्ता परिकरिंसु वेस्सन्तरे पयातम्हि
सिवीनं रट्ठवड्ढने ।।८००।।
करोटिया चम्मधरा खग्गहत्था सुवम्मिनो,
पुरतो पटिपज्जिंसु वेस्सन्तरे पयातम्हि
सिवीनं रट्ठवड्ढने ।।८०१।।

[जहाँ वेस्सन्तर रहता था, वहाँ से जेतुत्तर नगर तक राजमार्ग अलंकृत था, सजा हुआ था और फूल बिखरे थे ।।७९६।। तब सिवियों के राष्ट्रवर्धन वेस्सन्तर के

जाने पर साठ हजार, चारु-दर्शन योद्धाओं से चारों ओर से आकर घिर गये ।।७६७।। सिवियों के राष्ट्रवर्धन वेस्सन्तर के जाने पर रनिवास के लोग, कुमार, वैश्य तथा ब्राह्मण सभी आकर घिर गये ।।७६८।। सिवियों के राष्ट्रवर्धन वेस्सन्तर के जाने पर हाथी-सवार, सैनिक, रथी और पैदल सभी आकर घिर गये ।।७६६।। सिवियों के राष्ट्रवर्धन वेस्सन्तर के जाने पर आये हुए जनपद वासी तथा निगम वासी सभी चारों ओर से घिर आये ।।७००।। सिवियों के राष्ट्रवर्धन वेस्सन्तर के जाने पर किरीटधारी (?) चर्मधारी, खड्गधारी तथा कवचधारी योधा आगे आगे चले ।।८०१।।]

साठ योजन मार्ग दो महीने में तै करके राजा जेतुत्तर नगर पहुंचा। अलंकृत नगर में प्रवेश कर वह प्रासाद पर चढ़ा।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

ते पाविसुं पुरं रम्मं बहुपाकारतोरणं,
उपेतं अन्नपाणेहि नच्चगीतेहि चूभयं ।।८०२।।
वित्ता जानपदा आसुं नेगमा च समागता,
अनुप्पत्ते कुमारम्हि सिवीनं रट्ठवड्ढने ।।८०३।।
चेलुक्खेपो अवत्तित्थ आगते धनदायके,
नन्दिप्पवेसि नगरे बन्धनमोक्खो अघोसथ ।।८०४।।

[वे बहुत प्राकारों तथा तोरणों वाले नगर में प्रविष्ट हुए जो अन्न-पान तथा नृत्य-गीत से युक्त था ।।८०२।। सिवियों के राष्ट्रवर्धन कुमार के आगमन पर जनपद के लोग तथा आये हुए निगम-वासी प्रसन्न हुए ।।८०३।। धन के दाता बोधिसत्व के आगमन पर वस्त्र उछाले गये। नगर में वेस्सन्तर महाराज की आज्ञा प्रचलित हुई और (कैदियों की) मुक्ति की घोषणा की गई ।।८०४।।]

जिस दिन उसने नगर में प्रवेश किया उसी दिन ब्राह्म-मुहूर्त के समय बोधिसत्व सोचने लगा—"रात बीतने पर मेरे आने की बात सुन याचक लोग आयेंगे। उनको मैं क्या दूंगा?" उस समय शक्र का आसन गर्म हुआ। उसे विचार करने पर जब यह कारण ज्ञात हुआ तो उसने राजभवन के पश्चिम और पूर्व की ओर सात रत्नों की ऐसी घोर वर्षा की कि कमर तक ढेर लग गया। सारे नगर में घुटनों तक वर्षा हुई। अगले दिन बोधिसत्व ने 'उन उन घरों के पश्चिम-पूर्व में बरसा हुआ धन

उन्हीं का हो' घोषणा करा शेष धन अपने घर में भण्डारों में संग्रह करवा दान स्थापित किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

जातरूपमयं वस्सं देवो पावस्सि तावदे,
वेस्सन्तरे पविट्ठम्हि सिवीनं रट्ठवड्ढने ॥८०५॥
ततो वेस्सन्तरो राजा दान दत्वान खत्तियो
कायस्स भेदा सप्पञ्ञो सग्गं उपपज्जथ ॥८०६॥

[जिस समय शिवियों के राष्ट्रवर्धन वेस्सन्तर नगर में प्रवेश किया उसी समय देव ने सोने की वर्षा बरसाई ॥८०५॥ तब वह बुद्धिमान् क्षत्रिय वेस्सन्तर राजा दान दे, शरीर छूटने पर स्वर्गलोक में पैदा हुआ ॥८०६॥]

नगर काण्ड समाप्त

शास्ता ने इस हजार गाथाओं वाली महावेस्सन्तर धर्म-देशना को ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पूजक देवदत्त था। अमित्र-तापना चिञ्चा माणविका थी। चेतपुत्र छन्न था। अच्चुत तपस्वी सारिपुत्र था। शक्र अनुरुद्ध था। सञ्जय नरेन्द्र सुद्धोदन महाराजा। फुसती देवी महामाया थी। माद्री देवी राहुलमाता थी। जाली कुमार राहुल था। कृष्णाजिना उत्पल वर्णा। शेष परिषद् बुद्ध-परिषद थी। वेस्सन्तर महाराज तो मैं ही था।

महानिपात वर्णन समाप्त

जातकर्थकथा समाप्त